NTA UGC NET EXAM STUDY MATERIAL

UGC NET

Hindi

Notes | MCQs

Study Of Education

To Create Educators

विषय सूची

भाग 1	हिन्दी भाषा का विकास
भाग 2	काव्यगुण
भाग 3	हिन्दी कहानी का विकास
भाग 4	अस्तित्ववाद
भाग 5	भारतेन्दु युग
भाग 6	हिन्दी साहित्य का रीतिकाल
भाग 7	देवरानी जेठानी की कहानी - पण्डित गौरीदत्त
भाग 8	नाटक व सारांश व महत्वपूर्ण तथ्य
भाग 9	विद्यानिवास मिश्र – मेरे राम का मुकुट भीग रहा है
भाग 10	अरे यायावर रहेगा याद
भाग 11	हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल
	बहु विकल्पीय प्रश्न

भाग 1

हिन्दी भाषा का विकास

इकाई-1 हिन्दी भाषा का विकास

भाषा शब्द संस्कृत के भाष् (धातु) से बना है। जिसका अर्थ है कहना, बोलना, व्यक्त करना है।

परिभाषाः

"भाषा वह साधन है जिसके द्वारा अपने मन के विचारो को दूसरों तक पहुँचाना है और दूसरो के विचार समझना है।"

"विचार अभिव्यक्ति के माध्यम को भाषा कहते है।"

"जिन ध्वनि चिह्नों द्वारा मनुष्य परस्पर विचार विनिमय करता है, उसको समष्टि रूप से भाषा कहते हैं" - डॉ. बाबू राम सक्सेना

"भाषा वह साधन है, जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों पर भली भाँती प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचार आप स्पष्टतया समझ सकते हैं।" - कामता प्रसाद 'गुरु'

"मनुष्य और मनुष्य के बीच वस्तुओं के विषय में अपनी इच्छा और मति का आदान-प्रदान करने के लिए व्यक्त ध्वनि संकेतों का जो व्यवहार होता है उसे भाषा कहते हैं।" - डॉ श्याम सुन्दरदास

हिन्दी भाषा का विकास

- हिन्दी' विश्व की लगभग 3,000 भाषाओं में से एक है।
- आकृति या रूप के आधार पर हिन्दी वियोगात्मक या विश्लिष्ट भाषा है।

संयोगात्मक और वियोगात्मक क्या है ?

संयोगात्मक भाषाएँ वे है जिनमें शब्दों के साथ कारक जुड़े होते है। जैसे:- संस्कृत, पालि, प्राकृत आदि।

वियोगात्मक भाषाएँ वे है जिनमें शब्दों के साथ कारक साथ न होकर शब्द से अलग होते है। जैसे:- अपभ्रंश, हिन्दी आदि।

- भाषा-परिवार के आधार पर हिन्दी भारोपीय परिवार की भाषा है।
- भारत में 4 भाषा-परिवार भारोपीय, द्रविड़, आस्ट्रिक व चीनी-तिब्बती-मिलते हैं। भारत में बोलने वालों के प्रतिशत के आधार पर भारोपीय परिवार, सबसे बड़ा भाषा-परिवार है।

भाषा-परिवार	भारत में बोलने वालों का प्रतिशत
भारोपीय	73 प्रतिशत
द्रविड़	25 प्रतिशत
आस्ट्रिक	13 प्रतिशत
चीनी-तिब्बती	0.7 प्रतिशत

- हिन्दी, भारोपीय/भारत-यूरोपीय के भारतीय-ईरानी शाखा के भारतीय आर्य उपशाखा की एक भाषा है।
- भारतीय आर्यभाषा को तीन कालों में विभक्त किया जाता है।

नाम	प्रयोग काल	उदाहरण
प्राचीन भारतीय आर्यभाषा	1500 ई. पू. - 500 ई. पू.	वैदिक संस्कृत व लौकिक संस्कृत
मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा	500 ई. पू. - 1000 ई.	पालि, प्राकृत, अपभ्रंश ।
आधुनिक भारतीय आर्यभाषा	1000 ई. - अब तक	हिन्दी और हिन्दीतर भाषाएं-बांग्ला,
		उड़िया, असमिया, मराठी, गुजराती,
		पंजाबी, सिंधी आदि

	प्राचीन भारतीय आर्यभाषा	
नाम	प्रयोग काल	अन्य नाम
वैदिक संस्कृत	1500 ई. पू. - 1000 ई. पू.	छान्दस् (यास्क, पाणिनी)
लौकिक संस्कृत	1000 ई. पू. - 500 ई. पू.	संस्कृत, भाषा (पाणिनी)

	मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा	
नाम	प्रयोग काल	विशेष
पालि (प्रथम प्राकृत काल)	500 ई. पू. - 1 ई.	भारत की प्रथम देश भाषा भगवान
		बुद्ध के सारे उपदेश पालि में ही हैं।
प्राकृत (द्वितीय प्राकृत काल)	1 ई. - 500 ई.	भगवान महावीर के सारे उपदेश
		प्राकृत में ही हैं
अपभ्रंश (तृतीय प्राकृत काल)	अपभ्रंश 500 ई. - 1000 ई.	
अवहट्ट	अवहट्ट 900 ई. - 1100 ई.	संक्रमणकालीन/संक्रांतिकालीन भाषा

आधुनिक भारतीय आर्यभाषा

प्राचीन हिन्दी	1100 ई. - 1400 ई.
मध्यकालीन हिन्दी	1400 ई. 1850 ई.
आधुनिक हिन्दी	1850 ई. - अब तक

- हिन्दी की आदि जननी संस्कृत है। संस्कृत पालि, प्राकृत भाषा से होती हुई अपभ्रंश तक पहुंचती है। फिर अपभ्रंश, अवहट्ट से गुजरती हुई प्राचीन/प्रारंभिक हिन्दी का रूप लेती है। सामान्यतः, हिन्दी भाषा के इतिहास का आरंभ अपभ्रंश से माना जाता है।

हिन्दी का विकास क्रम :

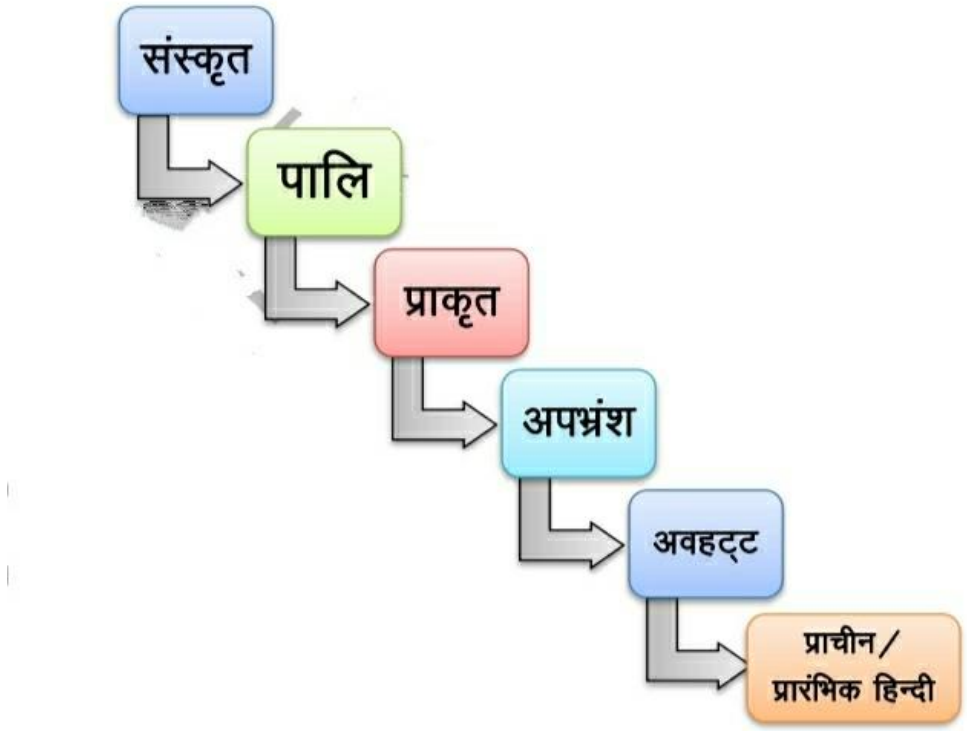

अपभ्रंश

- अपभ्रंश भाषा का विकास 500 ई. से लेकर 1000 ई. के मध्य हुआ और इसमें साहित्य का आरंभ 8 वीं सदी ई. (स्वयंभू कवि) से हुआ, जो 13 वीं सदी तक जारी रहा।
- अपभ्रंश शब्द का यों तो शाब्दिक अर्थ है 'पतन' किन्तु अपभ्रंश साहित्य से अभीष्ट है-प्राकृत भाषा से विकसित भाषा विशेष का साहित्य |

- प्रमुख रचनाकार : स्वयंभू - अपभ्रंश का वाल्मीकि ('पउम चरिउ' अर्थात् राम काव्य), धनपाल ('भविस्सयत कहा- अपभ्रंश का पहला प्रबंध काव्य), पुष्पदंत ('महापुराण', 'जसहर चरिऊ'), सरहपा, कण्हपा आदि सिद्धों की रचनाएँ ('चरिया पद', 'दोहाकोश') आदि।

अपभ्रंश से आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का विकास		
अपभ्रंश के भेद	**आधुनिक भारतीय आर्यभाषा**	
शौरसेनी	**पश्चिमी हिन्दी**	**ट्रिक : शौप से गुजारा**
	राजस्थानी	
	गुजराती	
अर्द्धमागधी	**पूर्वी हिन्दी**	**ट्रिक : अपूर्वी चंदेला (निशानेबाज)**
मागधी	**बिहारी**	**ट्रिक : माँ बाप बि उडे आसमान में**
	उडिया	
	बांग्ला	
	असमिया	
खस	**पहाड़ी (शौरसेनी से प्रभावित)**	
	पंजाबी (शौरसेनी से प्रभावित)	**ट्रिक : बाप है सिंधी**
	सिन्धी	
महाराष्ट्री	**मराठी**	
पैशाची	**लहँदा**	
	पंजाबी	

हिन्दी भाषा विकास और बोलियाँ

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने आधुनिक आर्यभाषा काल (1000ई.से अब तक) को भी पुनः निम्न तीन भागों में विभाजित किया है

(1) प्राचीन काल (1000 ई. से 1500 ई. तक)

(2) मध्यकाल (1500 ई. से 1800 ई. तक)

(3) आधुनिक काल (1800 ई. से अब तक)

प्राचीन हिन्दी काल- इस काल को मुख्यतः 'अवहट्ठ काल' के नाम से जाना जाता है। प्रारम्भ में अपभ्रंश और हिन्दी दोनों का सम्मिलित प्रयोग देखने को मिलता है, जिसे ही 'अवहट्ठ' भाषा कहा गया ।

अब्दूर रहमान,विद्यापति, ज्यातिरीश्वर ठाकुर व दामोदर पंडित ने स्वरचित निम्नांकित ग्रन्थों में प्रयुक्त भाषा को 'अवहट्ठ' भाषा कहकर पुकारा है।

अब्दुर रहमान- सन्देश रासक　　विद्यापति- कीर्तिलता और कीर्तिपताका

ज्योतिरीश्वर ठाकुर- वर्ण-रत्नाकर　　दामोदर पण्डित- उक्ति व्यक्ति प्रकरण

विशेष

- अवहट्ठ' भाषा को ही 'परवर्ती अपभ्रंश' 'प्राचीन हिन्दी' अथवा 'प्रारम्भिक हिन्दी' कहा जाता है।
- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे 'प्राकृताभास' कहकर पुकारा है।
- चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' ने इसे पुरानी हिन्दी' कहा है।
- 'अपभ्रंश' से व 'अवहट्ठ' से प्रभावित प्राचीन हिन्दी का 'आदिकाल' या 'शिशुकाल' कहा जाता है।
- विद्यापति ने इसे 'देसिल बअना' कहा है।
- प्राचीनकाल में अवहट्ठ के अलावा ब्रज,अवधी एवं खडी बोली का भी प्रयोग देखने को मिलता है।
- सुधीर अग्रवाल द्वारा रचित 'प्रद्युम्न चरित' (1354 ई.) में 'ब्रज भाषा' का सुंदर प्रयोग हुआ है।
- मुल्ला दाउद द्वारा रचित 'चदांयन' (1379 ई.)में अवधी भाषा का प्रयोग हुआ है।
- गोरखनाथ,अमीर खुसरो,जयदेव, नामदेव,रामानंद आदि ने खडी बोली का सुंदर प्रयोग किया है।

मध्यकाल

इस काल में भाषा के तीन रूप देखने को मिलते है।

1. ब्रज भाषा
2. अवधी भाषा

3 खडी भाषा

ब्रज भाषाः प्रारम्भ में अष्टछाप कृष्णभक्त कवियों के द्वारा इस भाषा को विकसित किया गया। आगे चलकर रीतिकाल में के शवदास,मतिराम,बिहारी,देव,पद्माकर,भिखारीदास द्वारा इस भाषा में काव्य लिखा गया।

अवधी भाषाः इस भाषा के विकास में प्रेममार्गी काव्य धारा के कवियों एवं तुलसीदास का महत्त्वपूर्ण योगदान माना जाता है।

खडी बोली: कबीर, नानक, दादू, मलूकदास, रज्जब, गंग, रहीम, आलम, प्राणनाथ आदि द्वारा इस भाषा को विकसित किया गया।

आधुनिक काल -

इस काल में खड़ी बोली का अधिक विकास हुआ। इस काल को निम्नानुसार उपविभाजित किया जा सकता है -

1. सदा सुखलाल 'नियाज' - सुखसागर
2. इंशा अल्ला खां - रानी केतकी की कहानी
3. मुंशी लल्लू लाल - प्रेम सागर (1810 ई.)

4. सदल मिश्र - नासिकेतोपाख्यान (1803 ई.)

नोट :- 1. इस युग में राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द ने हिन्दी के गँवारूपन को दूर करना।

2. राजा लक्ष्मण सिंह द्वारा हिन्दी के स्वरूप निर्धारण में दो सीमान्तों का अनुगमन किया गया।

(ii) भारतेन्दु युग (1850 ई. से 1900 ई. तक) - इस युग में हिन्दी नयी चाल में ढली। गद्य में पूर्णरूपेण खडी बोली का प्रयोग किया जाने लगा परन्तु पद्य में ब्रज भाषा का बोलबाला बना रहा। भारतेन्दु मण्डल के प्रमुख कवियों ने इस युग में खड़ी बोली को विकसित किया।

(iii) द्विवेदी युग (1900 ई. से 1920 ई. तक) - इस युग में ब्रज भाषा का प्रयोग सीमित हो गया। ब्रजभाषा बोली बन गयी तथा खडी बोली हिन्दी भाषा बन गयी। गद्य व पद्य दोनों प्रकार के काव्यों में खड़ी बोली का प्रयोग किया जाने लगा। महावीर प्रसाद द्विवेदी के नेतृत्व में खड़ी बोली का अद्भूत विकास हुआ।

(iv) छायावादी युग (1920 ई. से 1936 ई. तक) - यह खड़ी बोली हिन्दी का स्वर्णयुग माना जाता है। प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी वर्मा आदि के द्वारा हिन्दी का उत्तरोत्तर विकास किया गया।

(v) छायावादोत्तर युग (1936 ई. से) - इस युग में अज्ञेय के नेतृत्व में तारसप्तक के कवियों के द्वारा एवं डॉ. जगदीश गुप्त के द्वारा सम्पादित 'नयी कविता' के माध्यम से अन्य कवियों के द्वारा खड़ी बोली हिन्दी का विकास किया गया।

- हिन्दी भाषा का विकास - हिन्दी भाषा का विकास विविध प्रकार की अपभ्रंश भाषाओं से निम्नानुसार हुआ माना जाता है।

क्र.सं. अपभ्रंश का नाम	विकसित उपभाषा	विकसित बोलियाँ
1. शौरसेनी	(1) पश्चिमी हिन्दी	(1) आकार बहुला बोलियाँ
		(क) खड़ी बोली (कोरवी)
		(ख) हरियाणवी (बांगरू/जाट)
		(ग) दक्खिनी
		(II) ओकार बहुला बोलियाँ
		(क) ब्रज (अन्तर्वेदी)
		(ख) बुंदेली (बुंदेलखंडी)
		(ग) कन्नौजी
		ट्रिक:-कन्ने खडी राधा ने हरि को
		ब्रज में बुंदीरूपी दक्षिणा दी
	(II) राजस्थानी	
		(क) मेवाती
		(ख) मालवी
	ट्रिक: राजस्थानी ढूँढ़े मामा जमें	(ग) मारवाड़ी
		(घ) ढूँढ़ाड़ी

	(III) गुजराती	
2. अर्ध-मागधी	(1) पूर्वी हिन्दी	(क) अवधी (बैसवाड़ी)
		(ख) बघेली
		(ग) छत्तीसगढ़ी
ट्रिक:-अपुर्वी ने अब तक 36 मारे		
3. मागधी	(1) बिहारी	(क) भोजपुरी
		(ख) मैथिली
		(ग) मगही
	(II) उड़िया	
	(III) बंगाल	
	(iv) असमिया	
ट्रिक:-बिहारी मेंम भोज करो		
4. महाराष्ट्री	(1) मराठी	(क) देशी
		(ख) कोंकणी
		(ग) बरारी
		(घ) नागपुरी
ट्रिकः देशी कोक पिए बना		
5. ब्राचड	(1) सिंधी	
6. कैकय/पैशाची	(1) लहँदा	
	(II) पंजाबी	
7. दरद	(1) कश्मीरी	(क) डोगरी
		(ख) संथाली
8. खस	(1) पहाड़ी	मध्यवर्ती पहाड़ी - (क) कुमायुंनी
		(ख) गढ़वाली
		पश्चिमी पहाड़ी - (क) नेपाली
| ट्रिकः कुमायुं नेपाल के पहाडी गढ में है।		

देवनागरी लिपि

लिखित ध्वनि-संकेतों को लिपि कहा जाता है। किसी भाषा को जिन ध्वनि संकेतों के माध्यम से लिखा जाता है, उन ध्वनि-संकेतों को उस भाषा की लिपि कहते है। उदाहरण के लिए हिन्दी देवनागरी लिपि में, अंग्रेजी रोमन लिपि और उर्दू फारसी लिपि में लिखी जाती है।

भारत के प्राचीन शिलालेखों एवं सिक्कों में दो लिपियां मिलती हैं- ब्राह्मी, लिपि और खरोष्ठी लिपि। देवनागरी लिपि का विकास ब्राह्मी लिपि से हुआ जो पहले गुप्त लिपि फिर कुटिल लिपि और अन्ततः 10 वीं शताब्दी में देवनागरी लिपि के रूप में विकसित हुई।

नामकरणः

देवनागरी लिपि के नामकरण के सम्बन्ध में कई मत प्रचलित हैं, जिनमें से प्रमुख निम्नवत् है :

1. कुछ विद्वानों गुजरात के नागर ब्राह्मणों की लिपि होने से इसे नागरी लिपि कहते है।
2. कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार, नगर की लिपि होने से इसे नागरी लिपि कहते है।
3. एक अन्य मत से, नागवंशी राजाओं की लिपि होने से इसे नागरी कहा गया।
4. तान्त्रिका चिह्न 'देवनगर' से सम्बन्धित होने का कारण इसे नागरी कहा गया।
5. स्थापत्य की एक शैली नागर शैली थी, जिसमें चतुर्भुजी आकृतियां होती थी। नागरी लिपि में चतुर्भुजी अक्षर ग, प, भ, म, आदि हैं। अतः इसे देवनागरी लिपि कहा गया।
6. वस्तुतः ये सभी मत अनुमान पर आधारित हैं, अतः इनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। इस सम्बन्ध में इतना ही कहा जा सकता है कि देवनागरी लिपि का विकास ब्राह्मी लिपि से हुआ। ब्राह्मी लिपि की उत्तरी शाखा को नागरी कहा जाता था जो बाद में देव भाषा संस्कृत से जुड़ गई, परिणामतः नागरी का नाम देवनागरी हो गया।

देवनागरी लिपि का विकास

देवनागरी लिपि का सर्वप्रथम प्रयोग गुजरात के नरेश जयभट्ट के एक शिलालेख में मिलता है। 8 वीं शताब्दी में राष्ट्रकुल नरेशों में भी यही लिपि प्रचलित थी और 9 वीं शताब्दी में बडौदा के ध्रुवराज ने भी अपने राज्यादेशों में इसी लिपि का प्रयोग किया है। यह लिपि भारत के सर्वाधिक क्षेत्रों में प्रचलित रही है। उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, बिहार महाराष्ट्र, राजस्थान, गुजरात आदि प्रान्तों में उपलब्ध शिलालेख, ताम्रपत्रों, हस्तलिखित प्राचीन ग्रन्थों में देवनागरी लिपि का ही सर्वाधिक प्रयोग हुआ हैं।

आजकल देवनागरी की जो वर्णमाला प्रचलित है, वह 11 वीं शती में स्थिर हो गई थी और 15 वीं शती तक उसमें सौन्दर्यपरक स्वरूप का भी समावेश हो गया था। ईसा की 8 वीं शती में जो देवनागरी लिपि प्रचलित थी, उसमें वर्गों की शिरोरेखाएं दो भागों में विभक्त थीं जो 11 वीं शता में मिलकर एक हो गयी । यथा

11 वीं शताब्दी की यही लिपि वर्तमान में प्रचलित है और हिन्दी, संस्कृत, मराठी भाषाओं को लिखने में प्रयुक्त हो रही है। देवनागरी लिपि पर कुछ अन्य लिपियों का प्रभाव भी पडा है। उदाहरण के लिए, गुजराती लिपि में शिरोरेखा नहीं है, आज बहुत से लोग देवनागरी में शिरारेखा का प्रयोग लेखन में नहीं करते। इसी प्रकार अंग्रेजी की रोमन लिपि में प्रचलित विराम चिह्न भी देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दी ने ग्रहण कर लिए है।

देवनागरी में सुधार और संशोधन

देवनागरी लिपि में समय-समय पर अनेक सुधार एवं संशाधन होते रहे है, जिन्हें देवनागरी लिपि का विकासात्मक इतिहास कहा जा सकता है। ये सुधार इसके दोषों का निराकरण करने हेतु तथा इसे लेखन एवं टंकण आदि की दृष्टि से अधिक उपयोगी बनने हेतु किए जाते है। इन सुधारों एवं संशोधनों का क्रमबद्ध विवेचन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

(1) सर्वप्रथम बम्बई के महादेव गोविन्द रानाडे ने एक लिपि सुधार सीमित का गठन किया। तदनन्तर महाराष्ट्र साहित्य परिषद् पुर्ण ने सुधार योजना तैयार की।

(2) सन् 1904 में 'तिलक' ने 'केसरी पत्र में देवनागरी लिपि के सुधार की चर्चा की, परिणामतः देवनागरी के टाइपों की संख्या 190 निर्धारित की गई और इन्हें "तिलक टाइप' कहा गया।

(3) तत्पश्चात् वीर सावरकर, महात्मा गांधी, विनोबा भावे और काका कालेलकर ने इस लिपि में सुधार का प्रयास करते हुए इसे सरल एवं सुगम बनाने का प्रयास किया। 'हरिजन' पत्र में काका कालेलकर ने देवनागरी की स्वर ध्वनियों के स्थान पर 'अ' पर मात्राएं लगाने का सुझाव दिया, जिससे देवनागरी लिपि में वर्गों की संख्या कम की जा सकें। काका कालेलकर की बहुत-सी पुस्तकों में इस लिपि का प्रयोग किया गया। इस लिपि का एक उदाहरण प्रस्तुत है:

प्रचलित देवनागरी	**काका कालेलकर की लिपि**
उसके खेत में ईख अच्छी है	असके खेत में भीख अच्छी है

(4) डॉ. श्यामसुंदर दास ने यह सुझाव दिया कि प्रत्येक वर्ग में पंचम वर्ण- ङ, ञ, म, न, ण के स्थान पर केवल अनुस्वार का प्रयोग किया जाये। यथाः

अङ्क = अंक। पञ्च = पंच।

कम्बल = कंबल। कन्धा = कंधा।

कण्ठ = कंठ।

श्यामसुन्दर दास जी का यह सुझाव व्यावहारिक था, इसलिए आज के लोग पंचमाक्षरों के स्थान पर केवल अनुस्वार का प्रयोग करते हैं।

(5) डॉ. गोरखप्रसाद का सुझाव था कि मात्राएं व्यंजनों के दाहिनी ओर ही लगाई जाएं; अर्थात् जो मात्राएं प्रचलित देवनागरी में दाएं, बाएं, ऊपर-नीचे लगती हैं, वे सब व्यंजन के दाहिनी ओर लगनी चाहिए।

(6) काशी के विद्वान् श्रीनिवास जी का सुझाव था कि देवनागरी लिपि के वर्गों की संख्या कम करने हेतु उसमें से सभी महाप्राण ध्वनियां निकाल दी जाएं तथा अल्पप्राण ध्वनियों के नीचे कोई चिह्न लगाकर उन्हें महाप्राण बना लिया जाए। जैसे क को ख बनाने के लिए क के नीचे रेखा खींचकर उसे महाप्राण बना दिया गया है। अर्थात् ख = क्

(7) सन् 1935 में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के सभापतित्व में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसमें लिपि सुधार समिति का गठन किया गया, जिसमें लिपि सुधार समिति का गठन हुआ। 5 अक्टूबर, सन् 1941 को इस लिपि सुधार समिति ने निम्न सुझाव दिए:

(अ) सभी मात्राओं, अनुस्वार, रेफ आदि को ऊपर - नीचे न रखकर उच्चारण क्रम में रखा जाए। यथाः ।

कुल = क ल मूल = म ल

जेल = ज 'ल धर्म = धम

(ब) ह्रस्व इ की मात्रा को भी व्यंजन के आगे लगाया जाए, किन्तु उसे नीचे तनिक बाई ओर मोङ दिया जाए और दीर्घ ई की मात्रा को तनिक दाई और मोङ दें, जिससे उनमें अन्तर किया जा सके। जैसे:

मिल = मील मील = मील

(स) संयुक्ताक्षरों में आधे अक्षर को आधे रूप में और पूरे अक्षर को पूरे रूप में लिखा जाना चाहिए । यथाः

प्रेम = प्रेम

भ्रम = भ्रम, त्रुटि = रुटि।

(द) स्वरों के स्थान पर 'अ' में मात्राएं लगाकर काम चलाया जाए।

(य) पूर्ण विराम के लिए खडी रेखा की प्रयुक्त की जाए।

(र) रव के स्थान पर गुजराती ख का प्रयोग करें।

(8) इसी क्रम में सन् 1947 में उत्तर प्रदेश सरकार ने आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में एक लिपि सुधार समिति का गठन किया, जिसने निम्नांकित सुझाव दिए:

(अ) अ की बारहखड़ी भ्रामक है।

(ब) मात्राएं यथास्थान रहें, किन्तु उन्हें थोडा दाहिनी ओर हटाकर लिखा जाए।

(स) अनुस्वार तथा पंचम वर्ण के स्थान पर सर्वत्र शून्य से काम चलाया जाए।

(9) सन् 1953 ई. में उत्तर प्रदेश सरकार ने अन्य प्रदेशों की सरकारों के प्रतिनिधियों की बैठक बुलाकर इन सुझावों को थोड़े हेर-फेर के साथ स्वीकार कर लिया और यह जोङ दिया कि ह्रस्व इ की मात्रा व्यंजन के दाहिनी ओर ही लगाई जाए, किन्तु दीर्घ ई से उसकी भिन्नता दिखाने हेतु उसे तनिक छोटे रूप में कर दिया जाए।

यथा- किसी = कोसी

(10) सन् 1953 ई. में ही डॉ. राधाकृष्णन् की अध्यक्षता में एक उच्चस्तरीय समिति ने लिपि सुधारों पर गहन विचार-विमर्श किया। इस समिति ने विभिन्न प्रान्तों के 100 से अधिक प्रतिनिधि और 14 मुख्यमन्त्रियों ने भाग लेकर विचार-विमर्श किया। समिति के सर्वमान्य सुझाव निम्नवत् थे:

(क) ख, ध, भ, छ को घुण्डीदार की रखा जाए।

(ख) संयुक्त वर्णों को स्वतन्त्र तरीके से लिखा जाए, यथाः

प्रेम = प्रेम श्रेय = श्रेय

(ग) 'क्ष' का प्रयोग देवनागरी लिपि में जारी रखा जाए।

(11) उक्त सुझावों के अतिरिक्त भाषा विज्ञान के अधिकारी, विद्वानों डॉ. उदयनारायण तिवारी, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, डॉ. भोलानाथ तिवारी तथा डॉ. हरदेव बाहरी आदि ने भी देवनागरी लिपि के दोषों का निराकरण करते हुए उसमें कुछ सुधार करने के सुझाव दिए। यथाः

(क) संयुक्त अक्षरों में प्रयुक्त होने वाली 'र' ध्वनि के लिए 'र' के नीचे हलन्त लगाकर काम चलाया जाए।

(ख) संयुक्त अक्षरों- क्ष, श्र, द्य, त्र को वर्णमाला से निकाल दिया जाए और इनके स्थान पर क्ष, श्र, द्य, त्र से काम चलाया जाए।
(ग) म्ह, ल्ह, न्ह, रह संयुक्त व्यंजन होते हुए भी मूल महाप्राण व्यंजन हैं, अतः इनके लिए स्वतन्त्र लिपि चिह्न होने चाहिए।
(घ) नागरी लिपि का प्रयोग हिन्दी, मराठी, संस्कृत, नेपाली आदि भाषाओं के लिए होता है, अतः इन भाषाओं की कुछ ध्वनियों को अंकित करने के लिए देवनागरी लिपि में अतिरिक्त चिह्न ग्रहण कर लिए जाएं तो निश्चय ही सभी भाषाओं को पूरी तरह लिखने की सामर्थ्य इसमें आ जाएगी और तब यह और भी अधिक उपादेय हो जायेगी।
इस प्रकार देवनागरी लिपि में समय-समय पर अनेक सुधार एवं संशोधन होते रहे है। प्रयास यही रहा है कि इस लिपि को अधिकाधिक उपयोगी बनाया जाए।
देवनागरी लिपि भारत की एक प्रमुख लिपि है, जो संस्कृत, हिन्दी, मराठी और नेपाली भाषाओं को लिखने में प्रयुक्त होती है। संसार की कोई भी लिपि पूर्णतः उपयुक्त नहीं कही जा सकती, क्योंकि प्रत्येक लिपि में जहां कुछ विशेषताएं होती हैं, वहीं कुछ दोष भी विद्यमान रहते हैं। ऐसी स्थिति में उसी लिपि को वैज्ञानिक लिपि कहा जा सकता है, जिसमें गुण अधिक हों और दोष न्यूनतम हों।
यहां हम देवनागरी लिपि के गुण-दोषों का विवेचन अंग्रेजी की रोमन लिपि और उर्दू की फारसी लिपि की तुलना करके करेंगे और इस प्रकार देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता की परीक्षा करेंगे।

देवनागरी लिपि की विशेषताएँ

देवनागरी लिपि की प्रमुख विशेषताएं निम्नवत् हैं :

(1) **वर्ण विभाजन में वैज्ञानिकता**- देवनागरी लिपि में स्वरों एवं व्यंजनों का वर्गीकरण वैज्ञानिक पद्धति पर किया गया है। साथ ही स्वर और व्यंजन वैज्ञानिक ढंग से क्रमबद्ध किए गए हैं। इस लिपि में मूलतः 14 स्वर, 35 व्यंजन और तीन संयुक्ताक्षर अर्थात् कुल 52 वर्ण है। व्यंजनों का वर्गीकरण उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न के आधार पर किया गया है। इस विभाजन के कारण एक ओर तो वर्णों को शुद्ध रूप में उच्चारित किया जा सकता है तथा दूसरी ओर सुव्यवस्थित क्रम होने से उन्हें स्मरण रखने में भी सुविधा रहती है। रोमन लिपि में स्वर और व्यंजन परस्पर मिले हुए हैं, किन्तु देवनागरी में पहले स्वर ध्वनियां हैं, फिर व्यंजन ध्वनियों को क्रमबद्ध किया गया है।

(2) **प्रत्येक ध्वनि के लिए एक चिह्न** - देवनागरी लिपि की यह अन्यतम विशेषता है कि इसमें प्रत्येक ध्वनि के लिए केवल एक चिह्न है, जबकि रोमन लिपि और फारसी लिपि में एक ध्वनि के लिए कई-कई विकल्प है, अतः वहां लिखने में भिन्नता आ सकती है, पर देवनागरी में प्रत्येक शब्द की केवल एक ही वर्तनी हो सकती है। उदाहरण के लिए, देवनागरी की 'क' ध्वनि रोमन लिपि में कई तरह लिखी जा सकती है यथाः

कैट - Cat क के लिए C
किंग - King क के लिए र
क्वीन - Queen क के लिए Q
कैमिस्ट्री- Chemistry क के लिए Ch

इसी प्रकार फारसी लिपि में देवनागरी की 'ज' ध्वनि को व्यक्त करने के लिए चार विकल्प हैं- जे , ज्वाद , जोय , जाल।

स्पष्ट है कि देवनागरी लिपि रोमन और फारसी लिपियों की तुलना में अधिक वैज्ञानिक है।

(3) अपरिवर्तनीय उच्चारण- देवनागरी लिपि के वर्ण चाहे जहां प्रयुक्त हों, उनका उच्चारण अपरिवर्तित रहता है, जबकि रोमन लिपि में एक वर्ण एक शब्द में जिस रूप में उच्चारित होता है, दूसरे शब्द में उस रूप में उच्चारित नहीं होता और उसका उच्चारण परिवर्तित हो जाता हैं। यथाः

But - बट में U का उच्चारण अ है।
Put - पुट में U का उच्चारण उ है।

इसी प्रकार

City - सिटी में C का उच्चारण 'स' है।
Camel - कैमल में C का उच्चारण 'क' है।

(4) **उच्चारण और लेखन में एकरूपता-** देवनागरी लिपि में जो बोला जाता है, वही लिखा जाता है। इसे देवनागरी लिपि की प्रमुख विशेषता माना गया है। रोमन लिपि में यह विशेषता नहीं है, वहां उच्चारण और लेखन में भिन्नता दिखाई पड़ती है। यथा :

Knowledge - नॉलेज में KNW का उच्चारण ही नहीं होता।
knife - नाइफ में k लिखा तो जाता है, पर बोला नहीं जाता।
Psychology - साइकॉलजी में P अनुच्चरित है।

देवनागरी लिपि में इस प्रकार के 'साइलेन्ट' वर्ण नहीं हैं। इस प्रकार इस लिपि में ध्वन्यात्मक सामंजस्य है तथा उच्चारण और लेखन में एकरूपता होने से यह वैज्ञानिक लिपि कहा जा सकती है।

(5) **वर्णात्मक लिपि-** देवनागरी लिपि वर्णात्मक लिपि है, ध्वन्यात्मक नहीं क्योंकि इसके सभी वर्ण उच्चारण के अनुरूप है। रोमन लिपि और फारसी लिपि में यह गुण नही है। देवनागरी लिपि में 'ज' ध्वनि को अंकित करने के लिए 'ज' वर्ण का प्रयोग होगा, किन्तु रोमन लिपि में 'ज' ध्वनि को अंकित करने के लिए 5 या z लिखा जाएगा। इसी प्रकार फारसी में इसे 'जीम' से लिखा जाएगा।

(6) **सतग्र ध्वनियों को अंकित करने की क्षमता-** देवनागरी लिपि में किसी भी भाषा में प्रयुक्त होने वाली समग्र ध्वनियों को अंकित किया जा सकता है। रोमन लिपि इस दृष्टि से सक्षम नहीं है। उदाहरण के लिए रोमन लिपि में हिन्दी भाषा में प्रयुक्त होने वाली ध्वनियों न,ण, ङ्, ञ् को व्यक्त करने के लिए केवल 'N से ही काम चलाया जाता है। सब जानते है कि न और ण तथा ङ्, ञ् अलग-अलग ध्वनियां हैं किन्तु अंग्रेजी की रोमन लिपि में इनके अन्तर को व्यक्त करने के लिए अलग-अलग लिपि चिह्न नहीं है। स्पष्ट है कि हम

रोमन लिपि से केवल काम चला सकते हैं, किन्तु हिन्दी भाषा में प्रयुक्त ध्वनियों को ठीक-ठीक नहीं लिख सकते। रोमन लिपि में महाप्राण व्यंजन भी स्वतन्त्र रूप से अलग वर्ण के रूप में नहीं हैं, केवल H लगाकर व्यंजन को महाप्राण बना लिया जाता है। जो अधिक उचित नहीं है। अपनी क्षमता के कारण आज देवनागरी लिपि समस्त भारतीय भाषाओं की लिपि बनने में समर्थ है। देवनागरी में उपलब्ध इस गुण को सम्पूर्णता भी कहा गया है। अपनी इस सम्पूर्णता के कारण यह वैज्ञानिक लिपि कही जा सकती है।

(7) **गत्यात्मक लिपि-** देवनागरी लिपि की एक विशेषता यह भी है कि यह अत्यन्त व्यावहारिक एवं गत्यात्मक है। आवश्यकतानुसार इसने अनेक नए लिपि चिह्नों को भी अंगीकार कर लिया है। उदाहरण के लिए, फारसी लिपि की जो ध्वनियां हिन्दी में व्यवहृत होती हैं, उन्हें व्यक्त करने के लिए देवनागरी लिपि के कई वर्षों के नीचे बिन्दी लगाकर उच्चारणगत विशिष्टता को व्यक्त किया जाता हैं। यथा- क, ख, ग, ज, फ। इसी प्रकार अंग्रेजी शब्दों में व्यवहृत होने वाली ध्वनि 'ऑ' को भी देवनागरी लिपि में एक वर्ण के रूप में कहीं -कहीं आ गई हैं। इस प्रकार देवनागरी लिपि स्थिर एवं अपरिवर्तनीय लिपि न होकर गत्यात्क लिपि है।

(8) सरल, कलात्मक एवं सुन्दर- देवनागरी लिपि रोमन और फारसी लिपि की तुलना में सरल, कलात्मक एवं सुन्दर भी है। रोमन लिपि में जहां वर्णमाला के चार प्रारूप हैं- लिखने के कैपिटल अक्षर, छापे के कैपीटल अक्षर, लिखने के छोटे अक्षर तथा छापे के छोटे अक्षर, वहीं देवनागरी लिपि में अक्षर केवल एक ही तरह से लिखे जाते है। फारसी लिपि लिखने में बड़ी कठिन है।

(9) कम खर्चीली- लिपि की एक विशेषता यह भी मानी गई है कि वह कम खर्चीली होनी चाहिए; अर्थात् कम स्थान घेरती हो तथा मुद्रण, टाइप आदि में अधिक खर्चीली न हो। देवनागरी लिपि संयुक्ताक्षरों एवं मात्राओं के कारण कम स्थान घेरती है, अतः रोमन लिपि या फारसी लिपि की तुलना में कम खर्चीली है। जैसे:

थोथा - Thotha चन्द्रिका - Chandrika

Fonet - School

(10) **स्पष्टता-** देवनागरी लिपि में पर्याप्त स्पष्टता हैं। इसमें एक वर्ण में दूसरे वर्ण का भ्रम होने की बहुत कम गुंजाइश है, किन्तु फारसी लिपि में यह दोष बहुत है। एक नुक्ता होने या न होने से खुदा से जुदा हो जाता है। इसी प्रकार अंग्रेजी का रोमन लिपि में भी बहुत अक्षरों में शीघ्रता से लिखने में पारस्परिक भ्रम होने की सम्भावना हो जाती है। यथा :

e और c 0 और Q

j और । m और n

(11) **नियमबद्धता-** देवनागरी लिपि में जो नियमबद्धता है, वह सम्भवतः संसार की किसी लिपि में नहीं है। इसमें प्रत्येक वर्ण अपने निश्चित स्थान पर क्यों है, इसका उत्तर दिया जा सकता है। वाग्यन्त्र को ध्यान में रखकर तथा उच्चारण स्थान में रखकर इसके स्वरों एवं व्यंजनों का स्थान निर्धारित किया गया है। रोमन लिपि के सम्बन्ध में इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया जा सकता है कि A के बाद B क्यों आती है, किन्तु देवनागरी लिपि में इस प्रश्न का उत्तर दिया जा सकता है कि क के बाद ख और ख के बाद ग क्यों आता है

? ये सभी कंठ्य ध्वनियां हैं और इनका उच्चारण स्थान कण्ठ है, अतः ये स्थान पर संयोजित की गई हैं। देवनागरी लिपि के व्यंजन वर्णों का क्रम इस प्रकार है:

क ख ग घ ङ कंठ्य

च छ ज झ ञ तालव्य

ट ठ ड ढ ण मूर्धन्य

त थ द ध म दन्त्य

प फ ब भ म ओष्ठ्य

य र ल व अन्तस्थ

श ष स ह ऊष्म

देवनागरी लिपि में व्यंजन संयोग के नियम भी प्रायः सुनियोजित हैं, अतः इनमें वर्तनी की भूलों की सम्भावना कम रहती है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि देवनागरी लिपि में वे सभी विशेषताएं उपलब्ध है जो एक वैज्ञानिक लिपि में होनी चाहिए। उसी लिपि को वैज्ञानिक लिपि कहा जा सकता है, जिसमें गुण अधिक हों और दोष न्यूनतम हों। यद्यपि दुनिया की कोई भी लिपि ऐसी नहीं होगी, जिसमें कोई दोष ही न हो, तथापि वैज्ञानिक लिपि के लिए के लिए कम से कम दोषों वाली लिपि को ही मान्यता मिलेगी। देवनागरी लिपि की विशेषताएं अधिक हैं, दोष कम हैं, अतः इसे वैज्ञानिक लिपि कहा जा सकता है।

देवनागरी लिपि के दोष

देवनागरी लिपि में जहां अनेक विशेषताएं हैं, वहीं कुछ अभाव भी है। इनका विवरण निम्नवत् है:

(1) देवनागरी लिपि में कुछ चिह्नों में एकरूपता नहीं है, यथा - 'र' का संयोग चार रूपों में होता हैं- धर्म, क्रम, पृथ्वी, ट्रेन।

(2) कुछ अक्षर अभी भी दो प्रकार से लिखे जाते हैं- अ, प्र, ण, ल, ळ, झ, आदि।

(3) मात्राओं को कोई व्यवस्थित नियम नहीं है। कोई मात्रा ऊपर लगती है तो कोई पीछे।

(4) साम्य- मूलक वर्गों के कारण इसे पढ़ने-समझने में कभी- कभी परेशानी हो जाती है। इस प्रकार के साम्य-मूलक वर्ण है- व, ब, म, भ, घ, ध।

(5) देवनागरी में कहीं-कहीं क्रमानुसारिता का गुण भी नहीं है। पिता शब्द में सबसे पहले इ ध्वनि लिखि गई है, फिर प ध्वनि अंकित की गई है, जबकि उच्चारण में 'इ' , 'प' के बाद बोली जाती है।

(6) शिरोरेखा के कारण इस लिपि को शीघ्रता से लिखन में कठिनाई का अनुभव होता है। सम्भवतः इसीलिए बहुत से लोग लिखने में शिरोरेखा का प्रयोग नहीं करते।

(7) व्यंजन संयोग में कहीं-कहीं अनियमितता है यथाः प्रेम में प पूरा लिखा गया है और र आधा, जबकि वास्तव में प आधा होना चाहिए और र पूरा।

(8) टाइपिंग और मुद्रण हेतु रोमन लिपि देवनागरी लिपि से अधिक सुगम है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि नागरीलिपि को और अधिक उपयोगी एवं वैज्ञानिक बनने की आवश्यकता है। उसके अभावों को दूर करके उपयोगी एवं व्यावहारिक सुझाव देने की आज भी जरूरत है, तभी इस लिपि को पूर्णतः वैज्ञानिक लिपि कहा जा सकेगा।

देवनागरी लिपि का मानक स्वरूप

(अ) मानकीकृत देवनागरी वर्णमाला

(1) स्वर- अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ

(2) अनुस्वार- अं

(3) विसर्ग- अः

(4) व्यंजन-

क ख ग घ ङ	कंठ्य
च छ ज झ ञ	तालव्य
ट ठ ड ढ ण	मूर्धन्य
त थ द ध म	दन्त्य
प फ ब भ म	ओष्ठ्य
य र ल व	अन्तस्थ
श ष स ह	ऊष्म
क्ष, त्र ज्ञ, श्र	संयुक्त व्यंजन
ड़, ढ़	द्विगुण व्यंजन

नोट

1. देवनागरी लिपि में कुल 52 वर्ण हैं।
2. देवनागरी लिपि में 11 स्वर है।
3. अनुस्वार, विसर्ग को 'अयोगवाह' कहा जाता है, इनकी संख्या 2 है।
4. व्यंजनों की कुल संख्या 39 है।
5. व्यंजनो में से 4 संयुक्त व्यंजन और द्विगुण व्यंजन हैं।
6. 11 स्वर + 2 अयोगवाह + 39 व्यंजन = 52 वर्ण
7. कोई भी वर्ण दो प्रकार से नहीं लिखा जाएगा।

देवनागरी लिपि का मानकीकरण

लिपि के विविध स्तरों पर पाई जाने वाली विषमरूपता को दूर कर उसमें एकरूपता लाना ही मानकीकरण है। लिपि का मानकीकरण करने के लिए निम्न तथ्य महत्त्वपूर्ण हैं:

1. एक ध्वनि को अंकित करने के लिए विविध लिपि चिह्नों में से एक को मान्यता दी जाती है। यथा- देवनागरी लिपि में निम्न प्रकार वर्ण द्विविध प्रकार से लिखे जाते है:

अ, झ, ल, ध, भ, ण

इनमें से प्रथम पंक्ति में लिखे हुए वर्ण ही मान्य हैं। द्वितीय पंक्ति के वर्ण अमान्य हैं।

2. ध्वनियों के उच्चारण में भी एकरूपता लानी आवश्यक है। क्षेत्रीय उच्चारण के कारण लोग अलग-अलग ढंग से ही ध्वनि का उच्चारण करते हैं। यथा :

पैसा, पइसा, पाइसा

इनमें से पहला 'उच्चारण ही' मानक उच्चारण है, शेष दो उच्चारण ठीक नहीं हैं।

3. वर्तनी की एकरूपता भी भाषा की शुद्धता के लिए परम आवश्यक है। देवनागरी लिपि में ई, यी तथा ये,ए के प्रयोग कहाँ करने चाहिए और कहाँ नहीं, इस सम्बन्ध में भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय की 'वर्तनी समिति' ने कई महत्त्वपूर्ण निर्णय लेकर मानकीकरण की दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया है। इसके अनुसार -

(अ) संज्ञा शब्दों के अन्त में 'ई' का प्रयोग होना चाहिए, 'यी' का नहीं। यथा :

मिठाई, भलाई, बुराई, लड़ाई, पढ़ाई, खुदाई।

(ब) जिन क्रियाओं के भूतकालिक पुल्लिग एकवचन रूप के अन्त में 'या' आता है उसके बहुवचन रूप में 'ये' और स्त्रीलिंग रूप में 'यी' का प्रयोग उचित हैं।

यथा :

आया - आयी, आये - शुद्ध प्रयोग है।

गया - गयी, गये-शुद्ध प्रयोग है।

(स) जिन क्रियाओं के भूतकालिक पुल्लिग एकवचन के अन्त में 'आ' आता है उनके बहुवचन रूपों में 'ए' और स्त्रीलिंग रूपों में 'ई का प्रयोग उचित है। यथा :

हुआ-हुई, हुए-शुद्ध प्रयोग है।

(द) विधि क्रिया और अव्यय में 'ए' का प्रयोग ही उचित है। यथा : चाहिए, दीजिए, लीजिए, कीजिए, पीजिए, इसलिए,

के लिए।

(य) वर्गों के पंचमाक्षर के बाद यदि उसी वर्ग का कोई वर्ण हो तो वहां अनुस्वार का प्रयोग ही करना चाहिए। यथा :

वंदना, हिंदी, नंदन, चंदन, अंत, गंगा।

(र) अंग्रेजी के जिन शब्दों में 'ओ' ध्वनि का प्रयोग होता है उनके लिए हिन्दी की देवनागरी लिपि मे अर्धचन्द्र का प्रयोग करना चाहिए। यथा -

College- कॉलेज

Office- ऑफिस

Doctor- डॉक्टर

(ल) संस्कृत के जो शब्द विसर्ग युक्त हैं यदि वे तत्सम रूप में हिन्दी में लिखे गये हों तो विसर्ग सहित लिखे जाने चाहिए, किन्तु यदि तद्भव रूप में प्रयुक्त हों तो बिना विसर्ग के भी काम चल सकता है। यथा :

दुःख - तत्सम रूप में

दुख - तद्भव रूप में

(व) भय्या को भैया, गवय्या को गवैया तथा रुपइया को रुपैया रूप में ही लिखा जाना चाहिए। इनमें से प्रथम रूप अशुद्ध एवं द्वितीय शुद्ध है।

(श) हिन्दी के संख्यावाचक शब्दों की वर्तनी का मानकीकरण 5 फरवरी, 1980 को हिन्दी निदेशालय, दिल्ली के प्रमुख विद्वानों ने किया है। इनमें से अशुद्ध लिखे जाने कुछ शब्दों के मानक शुद्ध रूप अग्रवत् हैं :

अशुद्ध रूप	मानक शुद्ध रूप
1. एगारह	ग्यारह
2. छ:	छह
3. सत्तरह	सत्रह
4. इकत्तीस	इकतीस
5. उनचास	उनचास
6. तिरेपन	तिरपन
7. उन्यासी	उनासी
8. छियाछठ	छियासठ
9. छयासी	छियासी
10. उनत्तीस	उनतीस

4. कुछ क्रिया रूपों का भी मानकीकरण किया गया है। यथा : अशुद्ध प्रयोग

शुद्ध प्रयोग	शुद्ध प्रयोग
करा	किया
होएंगे	होंगे
होयगा	होगा

(स) नासिक्य व्यंजन जहां स्वतन्त्र रूप में संयुक्त हुए हों वहां वे अपने मूल रूप में ही लिखे जाने चाहिए। यथा-अन्न, गन्ना, उन्मुख, सम्मति, सन्मति ।

राजभाषा एवं राष्ट्रभाषा

संविधान द्वारा स्वीकृत सरकारी कामकाज की भाषा राजभाषा कहलाती है। राजभाषा का प्रावधान संविधान की धारा 343 से 351 के अनुच्छेदों में वर्णित है।

अनुच्छेद 343 में संघ की राजभाषा के रूप में हिन्दी व देवनागरी को लिपि के रूप में मान्यता मिली। भारतीय संविधान ने 14 सितम्बर, 1949 को हिन्दी व देवनागरी को लिपि के रूप में मान्यता मिली। भारतीय संविधान ने 14 सितम्बर, 1949 को हिन्दी को मान्यता दी। इसी कारण 14 सितम्बर को प्रतिवर्ष हिन्दी दिवस मनाया जाता है। अनुच्छेद 120 के अनुसार संसद का कार्य हिन्दी या अंग्रेजी में होगा।

अनुच्छेद 210 के अनुसार प्रान्तों के राज्य विधानमण्डलों का कार्य राज्य की राजभाषा में या हिन्दी/अंग्रेजी में होगा।

अनुच्छेद 344 के अनुसार प्रारम्भ से 5 वर्ष की समाप्ति पर राष्ट्रपति एक आयोग गठित करेगा जो निश्चित की जाने वाली एक प्रक्रिया के अनुसार राष्ट्रपति को सिफारिश करेगा कि किन शासकीय प्रयोजनों के लिए हिन्दी का प्रयोग अधिकाधिक किया जा सकता है। साथ ही अंग्रेजी, न्यायालयों में प्रयुक्त होने वाली भाषा के स्वरूप, विभिन्न प्रयोजनों के लिए अंकों का रूप तथा संघ की राजभाषा तथा राज्य के बीच या एक-दूसरे राज्य के बीच भाषा सम्बन्धी सुझाव देगा।

अनुच्छेद 345 के अनुसार किसी राज्य के विधानमण्डल, विधि द्वारा उस राज्य में प्रयुक्त होने वाली या किन्हीं अन्य भाषाओं को या हिन्दी को शासकीय प्रयोजनों के लिए स्वीकार करेगा और ऐसा नहीं हो सकने की स्थिति में अंग्रेजी का प्रयोग यथावत् रहेगा।

अनुच्छेद 346 के अनुसार संघ द्वारा प्राधिकृत भाषा एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच में तथा किसी राज्य और संघ की सरकार के बीच पत्र आदि की राजभाषा होगी। यदि कोई राज्य परस्पर हिन्दी भाषा को स्वीकार करेंगे तो उस भाषा को प्रयोग किया जा सकेगा।

अनुच्छेद 347 यदि किसी राज्य की जनसंख्या का एक बडा भाग यह चाहता हो कि उसके द्वारा बोली जाने वाली भाषा को उस राज्य में मान्यता दी जाए और इस निमित्त से माँग की जाए, तो राष्ट्रपति यह निर्देश दे सकेगा कि ऐसी भाषा को भी उस राज्य में सर्वत्र या उसके किसी भाग में ऐसे प्रयोजन के लिए जो वह विनिर्दिष्ट करे, शासकीय मान्यता दी जाए।

अनुच्छेद 348 के अनुसार जब तक संसद विधि द्वारा उपबन्ध न करे तब तक उच्चतम न्यायालय तथा प्रत्येक उच्च न्यायालय में सब तरह की कार्यवाही अंग्रेजी भाषा में होगी। संसद के प्रत्येक सदन या राज्य के विधानमण्डल के किसी सदन में विधेयकों, अधिनियमों, प्रस्तावों, आदेशों, नियमों, विनियमों आदि की भाषा अंग्रेजी होगी।

अनुच्छेद 349 के अनुसार राज्य भाषा से सम्बन्धित संसद यदि कोई विधेयक या संशोधन पुनः स्थापित या प्रस्तावित करना चाहे तो राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी लेनी पड़ेगी और राष्ट्रपति आयोग की सिफारिशों पर और उन सिफारिशों की गठित रिपोर्ट पर विचार करने के पश्चात् ही अपनी मंजूरी देगा, अन्यथा नहीं।

अनुच्छेद 350 के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति किसी शिकायत को दूर करने के लिए संघ या राज्य के किसी अधिकारी या प्राधिकारी को यथास्थिति संघ में या राज्य में प्रयोग होने वाली किसी भाषा में अभ्यावेदन देने का हकदार होगा।

अनुच्छेद 351 में सरकार के उन कर्त्तव्यों एवं दायित्वों का उल्लेख किया गया है। जिनका पालन हिन्दी के प्रचार-प्रसार और विकास के लिए उसे करना है। आठवीं अनुसूची की भाषाएँ असमिया, उडिया, उर्दू, कन्नड, कश्मीरी, गुजराती, तमिल, तेलुगू, पंजाबी, बांग्ला, मराठी, मलयालम, संस्कृत, सिन्धी, हिन्दी, नेपाली, कोंकणी, मणिपुरी, बोडो, सन्थाली, डोगरी, मैथिली (22 भाषाएँ)।

राजभाषा आयोग 1955

राष्ट्रपति ने एक राजभाषा आयोग की नियुक्ति की, जिसके 21 सदस्य थे। इस आयोग के कुछ मुख्य सुझाव 1. किन्हीं मामलों में अंग्रेजी भाषा का ज्ञान आवश्यक होते हुए भी सार्वजनिक क्षेत्र में विदेशी भाषा का व्यवहार उचित नहीं है।

2. हिन्दी सर्वाधिक बोली व समझी जाने वाली भाषा है, यही सारे भारत का एक माध्यम है।
3. चौदह वर्ष की उम्र तक भारत के प्रत्येक छात्र को हिन्दी का ज्ञान करा देना चाहिए।
4. हिन्दी क्षेत्र के विद्यार्थियों को एक और भाषा विशेषतः दक्षिण भारत की भाषा, अनिवार्य रूप से सीखनी चाहिए।
5. भारत सरकार के प्रकाशन अधिक-से-अधिक हिन्दी में हों।
6. संसद व विधानमण्डलों में हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं का व्यवहार होना चाहिए।
7. प्रतियोगी परीक्षाओं में हिन्दी एक अनिवार्य प्रश्न-पत्र रखा जाए।
8. भारत की भाषाओं में निकटता लाने की व्यवस्था करनी चाहिए।

बानवेवाँ संशोधन अधिनियम 2003 द्वारा वर्ष 2004 में चार भाषाएँ बोडो, सन्थाली, डोगरी, मैथिली जोडी गई। 26 जनवरी, 1950 को संविधान लागू हो गया और उसमें यह व्यवस्था की गई कि हिन्दी को 1965 ई. तक राजभाषा के पद पर आसीन कर दिया जाएगा। इसके बाद राष्ट्रपति राजभाषा आयोग, संसद और सरकार ने आदेश सुझाव अधिनियम अनुदेश और नियम निर्धारित किए, जिनके द्वारा राजभाषा हिन्दी के प्रयोग को सुनिश्चित किया गया।
राजभाषा अधिनियम 1976 इस अधिनियम के द्वारा हिन्दी का अधिक-से-अधिक प्रयोग करने के लिए कुछ प्रभावी कदम उठाए गए हैं, जो इस प्रकार हैं -
1. भारत के राज्यों को 3 वर्गों में बाँटा गया है
क वर्ग के क्षेत्र उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा एवं दिल्ली। ये सभी हिन्दी भाषी क्षेत्र हैं।
ख वर्ग के क्षेत्र पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र, केन्द्रशासित-चण्डीगढ़ तथा अण्डमान निकोबार।
ग वर्ग के क्षेत्र शेष सभी राज्य एवं संघशासित क्षेत्र।
2. केन्द्रीय कार्यालयों से 'क' श्रेणी के राज्यों को भेजे जाने वाले पत्र हिन्दी में देवनागरी लिपि में भेज जाएँगे।
3. 'ख' श्रेणी के राज्यों से पत्र-व्यवहार हिन्दी व अंग्रेजी दोनों भाषाओं में किया जा सकता है।
4. केन्द्रीय कार्यालयों में प्रेषित हिन्दी पत्रों का उत्तर भी हिन्दी में ही दिया जाएगा।
5. केन्द्र सरकार के कार्यालयों में सभी पत्र, रजिस्टर हिन्दी व अंग्रेजी दोनों भाषाओं में होंगे।
6. केन्द्र सरकार के कर्मचारी हिन्दी या अंग्रेजी में टिप्पणी लिख सकेंगे।
7. कोई भी व्यक्ति आवेदन या अपील हिन्दी या अंग्रेजी में दे सकता है। यदि आवेदन या अपील हिन्दी में हो या उस पर हस्ताक्षर हिन्दी में है तब उसका उत्तर हिन्दी में देना अनिवार्य है।
8. जहाँ 80 प्रतिशत से अधिक कर्मचारी हिन्दी में कार्य करते हों वहाँ टिप्पणी, प्रारूप इत्यादि का कार्य हिन्दी में किया जा सकेगा।

वर्तमान में हिन्दी विश्व की तीसरी सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा है, फिर भी भारत में यह उपेक्षित रही है। आज भी सरकारी कामकाज अंग्रेजी में ही होता है। इसका मुख्य कारण राजनीतिक इच्छाशक्ति का न होना है। यदि हमारी सरकार अदम्य इच्छाशक्ति रखे तो वह दिन दूर नहीं जब यह भाषा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर द्वितीय स्थान पर आ जाए।

सम्पर्क भाषा

सम्पर्क भाषा वह भाषा है जो हमें अन्य लोगों के सम्पर्क में लाए। डॉ. भोलानाथ तिवारी। वर्तमान में अंग्रेजी सम्पर्क भाषा का काम कर रही है क्योंकि यदि हमें तमिल भाषा-भाषी व्यक्ति से सम्पर्क साधना है तो तमिल आनी चाहिए अन्यथा अंग्रेजी। हर जाति या देश की एक सम्पर्क भाषा होनी चाहिए एक ऐसी भाषा जो उस देश में कहीं चले जाने ड्केपर काम आए अर्थात जिसका व्यवहार देशव्यापी हो । हिन्दी सम्पर्क भाषा भारत में काफी लम्बे अरसे से रही है।

दक्षिण से आकर मध्वाचार्य, बल्लभाचार्य, निम्बार्काचार्य और अन्य आचार्य सारे भारत में इसी भाषा के माध्यम से अपने धार्मिक विचारों का प्रचार करते रहे।

दक्षिण के तीर्थों - तिरुपति, मदुरै, कन्याकुमारी और रामेश्वरम् तक उत्तर भारत के लोग जाते थे तो हिन्दी से काम चलता था। वर्तमान में रेडियो, टी.वी. सिनेमा, समाचार पत्र-पत्रिकाएँ हिन्दी का बेहतर प्रचार-प्रसार कर रहे हैं। सभी

प्रदेशों के लोग हिन्दी प्रदेशों में आकर सरकारी/प्राइवेट नौकरी करते हैं तथा वे शीघ्र ही हिन्दी का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार हिन्दी का सम्पर्क भाषा रूप उज्ज्वल हो रहा है।

भाषा व बोली में अन्तर

भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से इनमें कोई अन्तर नहीं माना जाता है। समय व परिस्थिति के अनुसार भाषा बोली व बोली भषा में परिवर्तित हो सकती है। फिर भी व्यावहारिक दृष्टि से इनमें कुछ अन्तर इस प्रकार है -

1. भाषा का क्षेत्र बोली की तुलना में अधिक विस्तृत होता है, जैसे-हिन्दी भाषा हिन्दी क्षेत्रों में फैली है जबकि खडी बोली केवल पश्चिमी उत्तर प्रदेश में ही व्याप्त है।
2. भाषा के अन्तर्गत एक से अधिक बोलियों का समावेश होता है परन्तु एक से अधिक भाषाओं से अपना सम्बन्ध सिद्ध नहीं कर सकती।
3. एक भाषा की बोलियों के बीच बोधगम्यता होती है परन्तु दो भाषाओं के बीच यह सम्भव था।
4. भाषा की प्रधावित करने वाले अनेक कारक होते है। राजनीतिक कारणों से खडी बोली आधारित भाषा रूप को भाषा का दर्जा मिला तो साहित्यिक कारणों से एक समय ब्रज और अवधी सिरमौर रही।
5. भाषा अपने सम्बद्ध भौगोलिक क्षेत्र में शिक्षा का माध्यम होती है, जैसे-तमिल भाषा केवल तमिलनाडु में ही प्रचलित है। बोली शिक्षा का माध्यम नहीं हो सकती।
6. भाषा से ही बोली का निर्माण होता है, बोली से भाषा नहीं बनती।
7. बोली में परिवर्तन सम्भव है परन्तु भाषा में यह सम्भव नहीं समाज भाषा के परम्परागत, व्याकरणबद्ध, प्राचीन रूप को सुरक्षित रखना चाहता है। विभिन्न भाषाओं के व्याकरण भी इसी दृष्टि से तैयार किए जाते है।
8. भाषा का प्रयोग राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सम्भव है परन्तु बोली का नहीं। अंग्रेजी भाषा का प्रयोग अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर होता है परन्तु बोली का प्रयोग केवल स्थानीय स्तर पर ही सम्भव है।
9. साहित्य की रचना प्रायः भाषा में ही होती है। मध्यकाल में ब्रजभाषा व अवधी भाषा में साहित्य रचा गया। बोली में साहित्य की रचना बहुत कम होती है। लोक साहित्य की रचना ही बोली में होती है।

10. भाषा का प्रयोग औपचारिक सन्दर्भो में होता है जबकि बोली अनौपचारिक सन्दर्भो में।

मानक भाषा

मानक भाषा वह भाषा होती है जिसका मानकीकरण किया गया हो। हिन्दी की अनेक बोलियाँ व उपबोलियाँ हैं जिनमें खडी बोली हिन्दी में शिक्षा का प्रचार-प्रसार होता है। इस खडी बोली के अन्तर्गत अन्य क्षेत्रीय बोलियाँ समाविष्ट नहीं है।

हिन्दी के विविध रूप

खडी बोली हिन्दी के चार विविध रूप हैं

1.उर्दू

उर्दू मुसलमानों की बोली है। यह फारसी लिपि में लिखी जाती है। उर्दू का जन्म खडी बोली से हुआ है। उर्दू कोई अलग भाषा न होकर खड़ी बोली से ही विकसित हुई है। यही कारण है कि विद्वान् हिन्दी व उर्दू को परस्पर बहनें मानते हैं।

उर्दू में अरबी-फारसी शब्दों की बहुलता रहती है तथा यह फारसी लिपि में लिखी जाती है। ब्रिटिश औपनिवेशकाल के पूर्व यह हिन्दू व मुस्लिम दोनों की भाषा थी परन्तु ब्रिटिश औपनिवेश के दौरान अंग्रेजों ने हिन्दू व मुस्लिम दोनों में फूट डालकर उर्दू को मुस्लिमों एवं हिन्दी को हिन्दुओं की भाषा घोषित दिया।
उर्दू की प्रारम्भिक पुस्तक - 'बानो बहार' (रचनाकाल-18 वीं शती)

हॉब्सन जॉब्सन शब्दकोष के अनुसार 'उर्दू' शब्द भारत में बाबर के समय में आया परन्तु वास्तव में यह शब्द बाबर के पूर्व ही तुर्कों के साथ उर्दू रूप में इस देश में आ चुका था। ।

उर्दू के प्रारम्भिक कवियों इब्राहिम आदिलशाह, मुहम्मद कुली कुतुबशाह, सुल्तान मुहम्मद कुतुबशाह का उदाहरण देकर रामधारी सिंह दिनकर यह सिद्ध करते हैं कि उर्दू का जन्म दिल्ली और आगरा में नहीं, प्रत्युत दक्खिनी भारत में हुआ। उनकी मान्यता है कि दिल्ली और आगरा तो इस्लामी संस्कृति के गढ़ थे और बाहर से आने वाले मुस्लिम इन्हीं केन्द्रों पर ठहरते थे। इसलिए यहाँ फारसी के श्रोता मिल जाते थे। उस कारण कवि या तो ब्रज या अवधी या शुद्ध फारसी में लिखते थे। धीरे-धीरे अरबी, फारसी और हिन्दी का मिश्रित प्रयोग होने लगा और उर्दू भाषा का जन्म हुआ।

उर्दू का आधार भले ही हिन्दी अथवा खडी बोली रहा है परन्तु अरबी-फारसी तुर्की शब्दावली के आधिक्य ने उसे हिन्दी से भिन्न जमीन भी प्रदान की है। स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान महात्मा गाँधी सदृश नेताओं के प्रयास से यह भाषा शब्दावली की दृष्टि से हिन्दी के निकट अवश्य आई परन्तु उससे पहले और बाद में भी इसमें क्लिष्ट अरबी-फारसी शब्दावली का प्रयोग बढ़ता रहा है। आज यह प्रयोग इस सीमा तक बढ़ गया है कि

पड़ोसी मुल्क पाकिस्तान ने इसे अपनी राष्ट्रभाषा घोषित किया हुआ है। भारत के संविधान में इसे स्वतन्त्र भाषा का स्थान दिया है।

अन्य स्तरों पर भी यह भाषा हिन्दी की तुलना में कुछ विशिष्टता लिए हुए है, जैसे-इसमें नागरी के स्थान पर फारसी लिपि को स्वीकार किया गया है। उर्दू में 'क', 'ख', 'ग', 'ज', 'फ' पाँच छवियों मिलती हैं जो हिन्दी में नहीं है। इनका प्रयोग सिर्फ उर्दू के जानकार हिन्दी भाषी ही करते हैं। साहित्यिक दृष्टि से भी उर्दू का विशिष्ट स्थान है।

उर्दू के लेखक व शायर

1. गालिब
2. जफर
3. साहिर लुधियानवी
4. फिराख गोरखपुरी
5. राजिन्दर सिंह बेदी
6. मोहम्मद इकबाल

2.दक्खिनी

दक्खिनी शब्द का प्रयोग 'दक्षिण का निवासी' तथा दक्षिण को भाषा इन दो अर्थों में किया जा सकता है। भारतीय साहित्य में 'दक्षिण पथ' शब्द का प्रयोग अनेक स्थानों पर मिलता है। भारत में मुस्लिमों के आने के बाद यह दक्षिणपथ ही दक्खिनी कहलाया एवं इस प्रदेश की भाषा दक्खिनी कहलाई। दक्खिनी का प्रयोग बीजापुर, गोलकुण्डा, अहमदपुर बरार, मुम्बई तथा मध्य प्रदेश तक फैला रहा है। इस भाषा के लिए 'दक्खिनी' नाम का प्रयोग पहली बार 17 वीं शताब्दी में देखने में आता है।

दक्खिनी कोई स्वतन्त्र भाषा न होकर मूलतः 14 वीं, 15 वीं सदी की खड़ी बोली हिन्दी है। भारत आने पर तमाम मुस्लिमों ने माध्यम भाषा खडी बोली को ही स्वीकार किया। मुस्लिमों के साथ-साथ वहाँ रहने वाले हिन्दुओं ने भी इस बोली को स्वीकार किया और इस प्रकार दक्षिण में 'दक्खिनी' प्रचलित हो गई। प्रसिद्ध इतिहासकार गार्सा द तासी दक्खिनी को हिन्दी का ही एक अन्य नाम स्वीकार करते है। उनके अनुसार दक्षिण में प्रयुक्त हिन्दू-मुसलमानों की मिश्रित भाषा ही दक्खिनी है। ग्रियर्सन महोदय भी दक्खिनी को हिन्दुस्तानी का ही एक रूप मानते हैं। इसका प्रयोग मुख्य रूप से दक्षिण के मुस्लिम करते हैं। सुनीति कुमार चटर्जी इसे हिन्दुस्तानी तो नहीं परन्तु उसकी सहोदर भाषा स्वीकार करते है। रामविलास शर्मा दक्खिनी को खडी बोली का ही एक विशिष्ट रूप मानते हैं। डॉ. भोलानाथ तिवारी इसे प्राचीन खडी बोली मानते है। मलिक मोहम्मद भी डॉ. तिवारी के मत से सहमत हैं।

दक्खिनी भाषा में खडी बोली के अतिरिक्त ब्रज, हरियाणी, मेवाती, पंजाबी तथा कुछ अवधी के भी रूप पाए जाते है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि दक्खिनी इन सभी भाषाओं और बोलियों से प्रभावित है वरन् इन सभी बोलियों का विकास एकसाथ हुआ।

दक्खिनी भाषा में साहित्य की पर्याप्त मात्रा में रचना हुई है। गद्य एवं पद्य दोनों विधाओं में साहित्य की रचना हुई। 15 वीं से 18 वीं सदी में दक्खिनी को बहमनी वंश तथा अन्य राजाओं का आश्रय प्राप्त होने के कारण इस भाषा में साहित्य लेखन को काफी बल मिला। दक्खिनी के प्रारंभिक साहित्यकार ख्वाजा बन्दानवाज गेसूदराज को माना जाता है। इनकी रचना मिराजुल आशिमीन दक्खिनी गद्य का प्रथम उदाहरण है। दक्खिनी के कुछ प्रमुख साहित्यकार इस प्रकार हैं -

1. शाह मीराजी
2. शाह बुरहानुद्दीन
3. सैयद मुहम्मद हुसैनी
4. अब्दुल्ला बेलूरी
5. गुलाम अली
6. शेख असरफ
7. निजामी
8. मुहम्मद कुली कुतुबशाह

'दक्खिनी' दक्षिण की भाषा होने के कारण कहलाई। इसकी लिपि उर्दू के समान फारसी लिपि है। इसको 'गूजरी' भी कहते हैं क्योंकि दक्खिनी का गुजरात में प्रयुक्त होने वाला रूप 'गूजरी' भी कहा जाता है। इसमें अरबी-फारसी के अतिरिक्त गुजराती शब्द भी मिलते हैं।

3. रेख्ता

रेख्ता का शाब्दिक अर्थ है - "गिरी हुई जिस प्रकार संस्कृत भाषा का सरल रूप प्राकृत भाषा है, और इसका प्रयोग नाटकों, अशिक्षित लोगों द्वारा होता है, उसी प्रकार फारसी भाषा के शब्दों को सरल करके बोलचाल की जो भाषा बनी वह 'रेख्ता' कहलाई।

मुस्लिम शासन के दौरान जब दिल्ली व आगरा के मुस्लिम दरबारों में फारसी भाषा का प्रयोग हो रहा था तभी दक्षिण भारत के मुसलमानी दरबारों में उर्दू का प्रयोग हो रहा था तभी दक्षिण भारत के मुसलमानी दरबारों में उर्दू का प्रयोग हो रहा था। जब इसी उर्दू में अरबी-फारसी के शब्द मिल गए तो यह मिश्रित भाषा 'रेखा' कहलाई। अतः स्पष्ट है कि रेखा भाषा में उर्दू, अरबी व फारसी के शब्दों का मिश्रण था। यहीं भाषा शायरों की प्रिय भी बनी। शायर गालिब लिखते हैं

रेख्ते के तुम्हीं उस्ताद नहीं हो गालिब ।
कहते हैं अगले जमाने में कोई मीर भी था।।

स्त्रियों के द्वारा प्रयोग होने के कारण यह भाषा रेख्ती भी कहलाई। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने रेख्ता भाषा को उर्दू की एक शैली माना है।

4.हिन्दुस्तानी

हिन्दुस्तानी शब्द का प्रयोग एक शैली के लिए होता रहा है। 17 वीं शताब्दी में इस रूप में 'हिन्दुस्तानी' का पहला प्रयोग स्वामी प्राणनाथ में मिलता है। यूरोपीय यात्री, ईसाई पादरी और अंग्रेज कालीन सरकारी कर्मचारी हिन्दी से अधिक हिन्दुस्तानी शैली का प्रयोग करते थे। 1800 ई. तक यही स्थिति स्वीकार्य रही। 1800 ई. में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना हुई और वहाँ हिन्दुस्तानी विभाग की स्थापना की गई। फोर्ट विलियम कॉलेज के प्राचार्य जॉन गिलक्राइस्ट ने इसे ग्रामीण हिन्दी तथा उर्दू दो रूपों में ग्रहण किया। फोर्ट विलियम कॉलेज में हिन्दुस्तानी के नाम पर उर्दू पढ़ाई जाती थी। 19 वीं शताब्दी में यूरोपीय विद्वानों द्वारा लिखे गए सभी हिन्दुस्तानी कोश 'उदू के ही कोश है।

हेनरी यूल तथा बर्गेल कृत प्रसिद्ध कोश हाब्सन-जाब्सन में भी हिन्दुस्तानी जबान को उर्दू ही कहा गया है। 17 वीं शताब्दी में जब पुर्तगाली हिन्दुस्तान में व्यापार के लिए आए तो उन्होंने देश की भाषा देश के नाम 'इन्दोस्तान' के आधार पर इन्दोस्तानी रखा। अंग्रेजों ने इसे ही हिन्दुस्तानी रूप में ग्रहण किया।
। डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने भी इसका प्रयोग 17 वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही स्वीकार किया है। डॉ. भोलानाथ तिवारी इसे 15 वीं शताब्दी से पहले का स्वीकार करते हैं। बाबर की आत्मकथा तुजुके बाबरी में भी हिन्दुस्तानी शब्द का उल्लेख मिलता है।

हिन्दुस्तानी के सबसे प्रबल समर्थक एवं प्रचारक महात्मा गाँधीजी की मान्यता थी कि जिसको उत्तर में हिन्दू व मुसलमान बोलते हैं और जो नागरी अथवा फारसी लिपि में लिखी जाती है, हिन्दुस्तानी वह भाषा है। 1935 ई. में महात्मा गाँधी ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन के नागपुर अधिवेशन के अवसर पर हिन्दी को देश के नाना वर्णों और समुदायों को जोडने वाली अर्थात् एकता की भाषा कहकर राष्ट्रीय भाषा घोषित कर दिया।
गाँधीजी ने अपने भाषणों, पत्र-व्यवहार तथा लेखन में सर्वत्र इसी भाषा का प्रयोग किया। इसके प्रचार-प्रसार हेतु 1938 ई. में सैय्यद महमूद, ताराचन्द, भगवानदास, जाकिर हुसैन, सैय्यद सुलेमान प्रदवी आदि विद्वानों ने भी हिन्दुस्तानी के आन्दोलन को आगे बढ़ाने में भरपूर सहयोग दिया। कांग्रेस का समस्त कार्य 'हिन्दोस्तानी में ही होता था। सुभाषचन्द्र बोस ने इसे सार्वदेशिक भाषा की संज्ञा दी।

संचार माध्यम एवं हिन्दी

रॉबर्ट एण्डरसन के अनुसार "वाणी, लेखन या संकेतों द्वारा विचारों अभिमतों या सूचना का विविध विनिमय करना संचार कहलाता है।" संचार एक अर्थपूर्ण सन्देश है जिसमें एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से सूचना का आदान-प्रदान करता है। संचार से सूचनाओं का आदान-प्रदान होने के साथ-साथ हमारा जनसम्पर्क बढ़ता है। हम एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं, सूचनाएँ अधिक होने पर व्यक्ति अत्यधिक ज्ञानवान व शक्तिशाली होता है और वह ज्यादा-से-ज्यादा उच्च प्रस्थिति प्राप्त करता है। संचार के माध्यम हैं - रेडियो, टीवी, इन्टरनेट, फैक्स, समाचार पत्र, पुस्तकें, पत्रिकाएँ, पोस्टर, पैम्फलेट, वीडियो ऑडियो, कैसेट डीवीडी, सीडी उपग्रह संचार आदि ।

इन्टरनेट का उपयोग आज प्रायः जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हो रहा है। इस तकनीक का व्यापक उपयोग इलेक्ट्रॉनिक मेल के रूप में होता है। कम्प्यूटरों पर सन्देश टाइप करके इसे भेजने का काम, इसके द्वारा ही सम्पन्न होता है। इन्टरनेट सेवा का सर्वाधिक लाभ व्यापारियों, उद्यमियों और व्यापारियों को घर बैठे ही अन्तर्राष्ट्रीय बाजार का रुख का पता चल जाता है।

संचार के क्षेत्र में अत्याधुनिक संचार प्रणालियों का प्रयोग होने लगा है। सूचना प्रौद्योगिकी के प्रयोग से सूचना और सन्देश कम समय में अत्यधिक लोगों तक पहुँचाए जा सकते हैं। आधुनिक संचार प्रणाली की उपयोगिता सरकारी प्रशासन से लेकर कम्पनी प्रबन्धन, विपणन, बैंकिंग, बीमा, शिक्षा, घरेलू आँकडों के प्रोसेसिंग आदि तक फैली हुई है।

आज भारत अन्तरिक्ष विज्ञान तथा उपग्रह संचार के क्षेत्र में नई उपलब्धियाँ हासिल करते हुए आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ रहा हैं। इनसेट उपग्रहों की श्रृंखला भारत के लिए मील का पत्थर साबित हुई है। इसने देश में आधुनिकतम सूचना प्रौद्योगिकी का विकास करने में मदद पहुंचाई है।

आज लोग घर बैठे-बैठे अपने टीवी पर हवाई जहाज अथवा ट्रेन में अपने आरक्षण की अन्तिम स्थिति की सहजता से जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। किसी भी देश की घटना की जानकारी चन्द मिण्टों में प्राप्त हो जाती है।

टीवी, रेडियो, इन्टरनेट आदि पर हिन्दी का खूब प्रयोग हो रहा है। ये हिन्दी ही है जिसके माध्यम से दूरदराज ग्रामीण इलाकों में सूचनाएँ पहुँचाई जाती है। विज्ञापन भी हिन्दी में ही दिखाए जाते हैं। संचार माध्यमों में हिन्दी का इतना अधिक प्रयोग हुआ है जिससे हिन्दी का भविष्य उज्ज्वल बना है। हिन्दी भाषी फिल्में (बॉलीवुड) भी हिन्दी को प्रचार-प्रसार करने में सहायक सिद्ध हुई हैं।

साहित्य अकादमी पुरस्कार

साहित्य अकादमी नई दिल्ली द्वारा प्रतिवर्ष भारतीय संविधान की 8वीं अनुसूची में शामिल 22 भारतीय भाषाओं के अलावा अंग्रेजी एवं राजस्थानी यानी कुल 24 भाषाओं में प्रदान किया जाता है। पहली बार 1955 में ये पुरस्कार दिये गये थे। उस समय पुरस्कार राशि 5000 थी जो आज 2003 से 50000 रुपये कर दी गई है। और अब यह राशि एक लाख कर दी गई है।

समय	रचनाकार	रचना	विधा का प्रकार
1955	माखनलाल चतुर्वेदी	हिम तरंगिणी	काव्य
1956	वासुदेव शरण अग्रवाल	पद्मावत संजीवनी व्याख्या	व्याख्या
1957	आचार्य नरेन्द्र देव	बौद्ध धर्म–दर्शन(मरणोपरांत)	दर्शन
1958	राहुल सांकृत्यायन	मध्य एशिया का इतिहास	इतिहास
1959	रामधारी सिंह 'दिनकर'	संस्कृति के चार अध्याय	भारतीय संस्कृति
1960	सुमित्रानंदन पंत	कला और बूढ़ा चाँद	काव्य
1961	भगवतीचरण वर्मा	भूले–बिसरे चित्र	उपन्यास
1962	किसी को पुरस्कार नहीं दिया गया।		
1963	अमृतराय	प्रेमचंद : कलम का सिपाही	जीवनी
1964	अज्ञेय	आँगन के पार द्वार	काव्य
1965	डॉ. नगेन्द्र	रस सिद्धांत	विवेचना
1966	जैनेन्द्र कुमार	मुक्तिबोध	उपन्यास
1967	अमृतलाल नागर	अमृत और विष	उपन्यास
1968	हरिवंशराय बच्चन	दो चट्टानें	काव्य
1969	श्रीलाल शुक्ल	रागदरबारी	उपन्यास
1970	रामविलास शर्मा	निराला की साहित्य साधना	जीवनी
1971	नामवार सिंह	कविता के नये प्रतिमान	साहित्यिक आलोचना
1972	भवानीप्रसाद मिश्र	बुनी हुई रस्सी	काव्य
1973	हजारी प्रसाद द्विवेदी	आलोक पर्व	निबंध
1974	शिवमंगल सिंह सुमन	मिट्टी की बारात	काव्य
1975	भीष्म साहनी	तमस	उपन्यास
1976	यशपाल	मेरी तेरी उसकी बात	उपन्यास
1977	शमशेर बहादुर सिंह	चुका भी हूँ मैं नहीं	काव्य
1978	भारतभूषण अग्रवाल	उतना वह सूरज है	काव्य
1979	धूमिल	कल सुनना मुझे (मरणोपरांत)	काव्य
1980	कृष्णा सोबती	जिन्दगीनामा–जिन्दा रुख.	उपन्यास
1981	त्रिलोचन	ताप के ताये हुए दिन	काव्य
1982	हरिशंकर परसाई	विकलांग श्रद्धा का दौर	व्यंग्य
1983	सर्वेश्वरदयाल सक्सेना	खूँटियों पर टँगे लोग	काव्य
1984	रघुवीर सहाय	लोग भूल गये हैं	काव्य
1985	निर्मल वर्मा	कव्वे और काला पानी	कहानी–संग्रह
1986	केदारनाथ अग्रवाल	अपूर्वा	काव्य
1987	श्रीकांत वर्मा	मगध (मरणोपरांत)	काव्य
1988	नरेश मेहता	अरण्या	काव्य
1989	केदारनाथ सिंह	अकाल में सारस	काव्य
1990	शिवप्रसाद सिंह	नीला चाँद	उपन्यास
1991	गिरिजाकुमार माथुर	मैं वक्त के हूँ सामने	काव्य
1992	गिरिराज किशोर	ढाई घर	उपन्यास
1993	विष्णु प्रभाकर	अर्धनारीश्वर	उपन्यास
1994	अशोक वाजपेयी	कहीं नहीं वहीं	काव्य
1995	कुँवर नारायण	कोई दूसरा नहीं	काव्य

1996	सुरेन्द्र वर्मा	मुझे चाँद चाहिये	उपन्यास
1997	लीलाधर जगूड़ी	अनुभव के आकाश में चाँद	काव्य
1998	अरुण कमल	नये इलाके में	काव्य
1999	विनोद कुमार शुक्ल	दीवार में एक खिड़की रहती थी	उपन्यास
2000	मंगलेश डबराल	हम जो देखते हैं	काव्य
2001	अलका सरावगी	कलिकथा वाया बाईपास	उपन्यास
2002	राजेश जोशी	दो पंक्तियों के बीच	काव्य
2003	कमलेश्वर	कितने पाकिस्तान	उपन्यास
2004	वीरेन डंगवाल	दुष्चक्र में स्रष्टा	काव्य
2005	मनोहर श्याम जोशी	क्याप	उपन्यास
2006	ज्ञानेन्द्रपति	संशयात्मा	काव्य
2007	अमरकांत	इन्हीं हथियारों से	उपन्यास
2008	गोविन्द मिश्र	कोहरे में कैद रंग	उपन्यास
2009	कैलाश वाजपेयी	हवा में हस्ताक्षर	काव्य
2010	उदय प्रकाश	मोहनदास	कहानी
2011	काशीनाथ सिंह	रेहन पर रग्घू	उपन्यास
2012	चन्द्रकान्त देवताले	पत्थर फेंक रहा हूँ	कविता–संग्रह
2013	मृदुला गर्ग	मिलजुल मन	उपन्यास
2014	रमेशचंद्र शाह	विनायक	उपन्यास
2015	रामदरश मिश्र	आग की हँसी	काव्य
2016	नासिरा शर्मा	पारिजात	उपन्यास
2017	रमेश कुंतल मेघ	विश्वमिथक सरित्सागर	कोश ग्रंथ
2018	चित्रा मुद्गल	पोस्ट बॉक्स नः 203 नाला सोपारा	उपन्यास
2019	नंद किशोर आचार्य	छिलते हुए अपने को	काव्य

ज्ञानपीठ पुरस्कार

क्र.	रचना	साहित्यकार	वर्ष	पुरस्कार
1.	चिदंबरा (1959)	पंत	1968 ई.	चतुर्थ
2.	उर्वशी (1961)	'दिनकर'	1972 ई.	आठवाँ
3.	कितनी नावों में कितनी बार (1967)	'अज्ञेय'	1978 ई.	चौदहवाँ
4.	यामा (1936)	महादेवी वर्मा	1982 ई.	18 वाँ
5.	सम्पूर्ण साहित्य	नरेश मेहता	1992 ई.	28 वाँ
6.	सम्पूर्ण साहित्य	निर्मल वर्मा (पंजाबी लेखक गुरदयाल सिंह के साथ संयुक्त रूप से)	1999 ई.	35 वाँ
7.	सम्पूर्ण साहित्य	कुँवर नारायण	2005 ई.	41 वाँ
8.	संपूर्ण साहित्य	अमरकांत व श्रीलाल शुक्ल को संयुक्त रूप में	2009 ई.	45 वाँ
9.	सम्पूर्ण साहित्य	केदारनाथ सिंह	2013 ई.	49 वाँ
10.	सम्पूर्ण साहित्य	कृष्णा सोबती	2017 ई.	53 वाँ

नोट : वर्ष 1984 ई. के बाद यह पुरस्कार लेखक के समग्र योगदान पर दिया जाने लगा है।

ज्ञानपीठ पुरस्कार ट्रिक: चिउकिया

हिन्दी की स्वनिम व्यवस्था

किसी भाषा की मूलभूत इकाई स्वनिम व्यवस्था कहलाती है। 'स्वनिम' शब्द 'स्वन' से बना है। 'स्वन' का अर्थ होता है- वाक् ध्वनि। भाषा विशेष में प्रयोग करने पर यह वाक् ध्वनि अर्थभेदक होकर 'स्वनिम' कहलती हैं। स्वन या ध्वनि भाषा की लघुतम इकाई मानी जाती है।

स्वनिम शब्द अंग्रेजी भाषा के 'फोनिक' का नवीनम हिंदी अनुवाद है। इसके लिए अब तक 'ध्वनि-ग्राम' का प्रयोग होता रहा है, किंतु भारत सरकार के पारिभाषिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग में 'फोनिक' का हिन्दी अनुवाद स्वनिम कर दिया गया है।

'स्वन' विज्ञान या 'ध्वनि ग्राम' वह विज्ञान है, जिसमें किसी भाषा विशेष के नियमों का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। 'स्वनिम' शब्द संस्कृत भाषा की 'स्वन' धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है 'ध्वनि' या 'आवाज करना' | यह भाषा की लघुतम अखंड इकाई है,
जैसे काम, कशक, रोकना आदि शब्दों में 'क' ध्वनि (स्वन) लघुतम एवं अखंड इकाई है।

स्वनिम की विभिन्न वैज्ञानिकों द्वारा विभिन्न परिभाषाएँ दी गई हैं

डॉ. भोलाराम के अनुसार, " स्वनिम किसी भाषा की वह अर्थभेदक ध्वन्यात्मक इकाई है, जो भौतिक यथार्थ न होकर मानसिक यथार्थ होती है तथा जिसमें एक से अधिक ऐसे उपसर्ग होते है, जो ध्वन्यात्मक दृष्टि से मिलते-जुलते हैं, अर्थभेदक में असमर्थ तथा आपस में मुक्त वितरक होते हैं।"
डॉ. तिलक के अनुसार, " भाषा विशेष के उच्चारित पक्ष की विषम स्वनिक अर्थभेदक तत्व की इकाई स्वनिम है।"
डेनियर जोन्स के अनुसार, " स्वनिम मिलती-जुलती ध्वनियों का परिवार हैं।"
ब्रागार तथा ट्रेगर के अनुसार, " ध्वनि सामान्य ध्वनियों का समूह है, जो किसी भाषा विशेष की उसी प्रकार के अन्य समूह से व्यतिरेकी भिन्न होता है।"

स्वनिम व्यवस्था के प्रकार

स्वनिम व्यवस्था दो प्रकार की होती है- खण्ड्य ध्वनियाँ और खण्ड्येतर ध्वनियाँ। इन ध्वनियों का संक्षिप्त वर्णन निम्न है

खण्ड्य ध्वनियाँ

- खण्ड्य ध्वनियाँ दो प्रकार की होती है- स्वर तथा व्यंजन। जिनका उच्चारण बिना किसी सहायता के हो उन्हें स्वर कहते है। हिन्दी में स्वर 11 है। अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ।
- व्यंजन स्वरों की सहायता से बोले जाते हैं। मुख्य रूप से हिन्दी में व्यंजन 33 होते हैं। दो अतिरिक्त व्यंजन ङ, ढ़ होते हैं और चार संयुक्त व्यंजन क्ष, त्र, ज्ञ और श्र होते है।
- क वर्ग- क ख ग घ ङ
  च वर्ग- च छ ज झ ञ
  ट वर्ग- ट ठ ड ढ ण
  त वर्ग- त थ द ध न
  प वर्ग- प फ ब भ म
  चार अन्तःस्थ व्यंजन- य र ल व
  ऊष्म व्यंजन- श ष स ह

खण्ड्येतर ध्वनियाँ

ध्वनियों के साथ कुछ ऐसे तत्व होते हैं, जिन्हें ध्वनियों से अलग नहीं किया जा सकता, परन्तु ये स्वयं ध्वनि नहीं होते। इन्हें खण्ड्येतर ध्वनियाँ या ध्वनि गुण कहा जाता है। ध्वनि गुण निम्नलिखित रूप में होते है।

- मात्रा किसी ध्वनि के उच्चारण में लगा समय ध्वनि की मात्रा कहलाता है। मात्रा के आधार पर ही स्वर हस्व या दीर्घ होते है। मात्राओं के अर्थभेदक होने पर ध्वनि स्वनिमिक होती है। स्वरों के मात्रा-भेद के उदाहरण है:

बल-बाल, दिन-दीन, कुल-कूल, जन-जान। हिन्दी की व्यंजन ध्वनियों में भी काल-मात्रा होती है, परन्तु व्यंजन के द्वित्व-रूप में मात्रा का प्रयोग किया जाता है; जैसे- सता-सत्ता, पका-पक्का, अमा-अम्मा आदि।

- बालाघात जब किसी ध्वनि पर उच्चारण करते समय विशेष रूप से बल दिया जाए, तो उसे बलाघात कहा जाता है।

डॉ. बाबूराम सक्सेना के अनुसार, "किसी विशेष ध्वनि पर वाक्य अथवा पद की अन्य ध्वनियों की अपेक्षा उच्चारण में अधिक प्राण शक्ति लगाना बलाघात कहलाता है।"

• सर ध्वनि को उत्पन्न करने वाली कम्पन-आवत्ति सर का प्रमख कारण होती है। इसके आधार पर ही इसे उच्च या निम्न किया जा सकता है। सुर के तीन भेद होते हैं- उच्च, निम्न और सम। उच्च में सुर ऊपर जाता है, निम्न में ऊपर से नीचे आता है सम में बराबर रहता है।

- अनुनासिकता अनुनासिक को स्वर गुण के रूप में जाना जाता है। यह अर्थभेदक इकाई है; जैसेमाँग-मांग, साँस-सांस, सँवार-संवार आदि।
- संगम या संहिता किन्हीं दो भाषिक इकाइयों के बीच कुछ समय के लिए रुकने पर उस अनुच्चरित समय का सीमांकन, संगम या संहिता कहलाता हैं। जैसे- खा+या = खाया, बन+आया = बनाया आदि। यदि उपयुक्त संगम या संहिता न हो तो अभिप्सित अर्थ से परे अर्थ मिलने की सम्भावनाएँ बढ़ जाती है।
-

हिन्दी की बोलियाँ- वर्गीकरण तथा क्षेत्र

- हिन्दी की पाँच उपभाषाएँ हैं-
  1. पश्चिमी हिन्दी,
  2. पूर्वी हिन्दी,
  3. राजस्थानी,
  4. पहाडी
  5. बिहारी।

  - 'पश्चिमी हिन्दी' उपभाषा का विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है।

  - पश्चिमी हिन्दी उपभाषा के अन्तर्गत कौरवी, ब्रज, हरियाणी, बुन्देली और कन्नौजी बोलियों की गणना की जाती है।
- 'दक्खिनी' पश्चिमी हिन्दी उपभाषा की वह बोली है, जो पश्चिमी क्षेत्र से बाहर मुम्बई, चेन्नई और हैदराबाद के आसपास बोली जाती है।
- हरियाणी, कौरवी और दक्खिनी बोलियाँ आकारबहुला है।
- ब्रज, बुन्देली और कन्नौजी ओकारबहुला बोलियाँ है।
- हरियाणी, कौरवी और दक्खिनी बोलियों पर 'पंजाबी' का प्रभाव अधिक है।
- भाषा विज्ञान की दृष्टि से बुन्देली और कन्नौजी 'ब्रजभाषा' की ही उपबोलियाँ है।
- 'पूर्वी हिन्दी' उपभाषा के अन्तर्गत अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी बोलियाँ आती है।

- "बिहारी हिन्दी' के अन्तर्गत बिहार, झारखंड और पूर्वी उत्तरप्रदेश के भूभाग में बोली जाने वाली उपभाषाएँ आती है; जैसे- भोजपुरी, मगही और मैथिली
- राजस्थानी हिन्दी के अन्तर्गत मारवाडी, मेवाती, मेवाडी हाडौती, जयपुर (शेखावटी) आदि बोलियों की गणना की जाती है।
- हिन्दी साहित्य के आदिकाल का अधिकतम साहित्य राजस्थान से प्राप्त हुआ है।
- डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी ने 'भोली' को राजस्थानी उपभाषा की बोली माना है।
- वस्तुतः आदिभीली (अनार्य) राजस्थानी और गुजराती का मिश्रित रूप है। - राजस्थानी हिन्दी की बोलियों में सर्वाधिक साहित्य 'मारवाडी' में लिखा गया है।
- जयपुरी को 'ढूँढ़ाणी' भी कहते है।
- 'पहाडी हिन्दी' के तीन उपरूप हैं- पश्चिमी, पूर्वी और मध्य ।
- पश्चिमी पहाडी के अन्तर्गत हिमाचल प्रदेश की अनेक बोलियों की गणना की जाती है।
- पूर्वी पहाडी ही 'नेपाली' है, जिसे भारतीय संविधान की अष्टम् सूची में स्थान प्राप्त है।
- मध्य पहाडी की दो उपभाषाएँ हैं- 'कुमाउँनी' और 'गढ़वाली'।

कौरवी

- बीम्स, ग्रियर्सन, सुनीतिकुमार चटर्जी, धीरेन्द्र वर्मा आदि अधिकांश भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार खडी बोली (मानक हिन्दी) का आधार 'कौरवी' है।
- खडी बोली (मानक हिन्दी) का आधार कोलबुक ने 'कन्नौजी', इस्टविक तथा मुहम्मद हुसेन 'आजाद' ने 'ब्रजभाषा' और मसऊद हसन खाँ ने 'हरियाणी' को माना है।
- 'कौरवी' रामपुर, मुरादाबाद, बिजनौर, मेरठ, मुजफ्फर-नगर, सहारनपुर, देहरादून के मैदानी भाग, अम्बाला (पूर्वी भाग) और पटियाला के पूर्वी भाग में बोली जाती है।
- 'कौरवी' का क्षेत्र हरियाणी, ब्रज और पहाडी बोलियों के बीच में पड़ता है।

- 'कौरवी' के क्षेत्र को पहले कुरु जनपद कहते थे। इसी आधार पर राहुल सांकृत्यायन ने इस बोली को 'कौरवी' नाम दिया था।

- 'कौरवी' में लोकगीत और लोककविताएँ मिलती हैं, परन्तु उच्च साहित्य मानक हिन्दी में ही मिलता
- इस बोली के आदि अक्षरों में 'स्वरलोप होता है; जैसे गूंठा (अंगूठा), साढ़ (असाढ़), ठाना (उठाना), लाज (इलाज), कट्ठा (इकट्ठा), खसबू (खूशबू), तम (तुम) इत्यादि।
- इसमें दीर्घ स्वरों के बाद भी व्यंजन का द्वित्व रूप होता है; जैसे गाड्डी (गाडी), बेट्टा (बेटा), सज्जा (सजा) आदि।
- 'कौरवी' में मूर्धनय ध्वनियों की अधिकता है; जैसे- देणा, लेणा, चपडासी, कुडकी (कुर्की) आदि।

हरियाणी

- हरियाणी या हरियाणवी का विकास उत्तरी शौरसेनी अपभ्रंश के पश्चिमी रूप से हुआ है।

- 'हरियाणी' खडी बोली, अहीरवाटी, मारवाडी से घिरी हुई बोली है। कुछ लोग इसे खड़ी बोली का पंजाबी से प्रभावित रूप मानते हैं।
- हरियाणी का क्षेत्र सामान्यतः हिसार, रोहतक करनाल, पटियाला, नाभा, जींद और दिल्ली प्रदेश का सम्मिलित भूभाग है हरियाणा और वहाँ की बोली को हरियाणी कहते है।
- ग्रियर्सन ने हरियाणी को 'बाँगरू' नाम दिया। इस क्षेत्र में जाटों का बाहुल्य हैं, अतः इस बोली को 'जादू' भी कहते हैं।
- डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने हरियाणी को स्वतन्त्र बोली न मानकर खड़ी बोली का ही एक उपरूप माना है।
- हरियाणी में लोकसाहित्य पर्याप्त है, परन्तु लिखित साहित्य का अभाव सा है।

बुन्देली

- उत्तरप्रदेश तथा मध्यप्रदेश की सीमा के झाँसी, जालौन, हमीरपुर, बाँदा, छतरपुर, सागर, ग्वालियर, भोपाल, ओरछा, नरसिंहपुर, सिवनी, होशंगाबाद तथा उसके निकटवर्ती भूभाग को बुन्देलखण्ड कहते हैं तथा इसकी बोली को बुन्देलखण्डी या बुन्देली कहते है।
- बुन्देला राजपूतों के आधिपत्य के कारण इस क्षेत्र का नाम बुन्देलखण्ड पडा।
- 'लालकवि' ने छत्रसाल बुन्देला की आज्ञा से 'बुन्देली' में 'छत्रप्रकाश' नामक ग्रन्थ की रचना की।
- पद्माकर और केशवदास का सम्बन्ध बुन्देलखण्ड से रहा है, परन्तु उनके ग्रन्थों की भाषा बुन्देली प्रभावित 'ब्रज' ही रही।
- बुन्देली में लोकसाहित्य पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं, जिसमें 'ईशुरी के फाग' बहुत प्रसिद्ध है।
- हिन्दी प्रदेश की प्रसिद्ध लोकगाथा 'आल्हा' मूलतः बुन्देली की एक उपबोली 'बनाफरी' में लिखा गया था।
- डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार 'बुन्देली' कन्नौजी के समान ब्रज की एक उपबोली है।
- बुन्देली में दस स्वरों (अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ) के अनुनासिक रूप भी मिलते हैं; जैसे- ऊँठा (अगूंठा), न्यौ (नाखून) आदि।
- व्यंजनों में महाप्राण से अल्पप्राण की प्रवृत्ति मिलती है; जैसे- जीब (जीभ), दूद (दूध), हाँत (हाथ) आदि।

कन्नौजी

- कन्नौजी शब्द संस्कृत 'कान्यकुब्ज' से विकसित है; कान्यकुब्ज- कण्णउज्ज- कन्नौज।
- कन्नौजी जनपद का पुराना नाम पांचाल था। कन्नौज ही 'कन्नौजी' बोली का केन्द्र है।
- 'कन्नौजी' ब्रजभाषा के इतनी अधिक समान है कि इसे ब्रजभाषा की ही एक उपबोली माना जाता
- उत्तरप्रदेश के शाहजहाँपुर, हरदोई, कन्नौज, फर्रुखाबाद, कानपुर, इटावा और पीलीभीत में कन्नौजी बोली जाती है।
- कन्नौजी का शुद्ध रूप कन्नौज, फर्रुखाबाद, इटावा औरैया में व्यवहृत होता है। अन्य क्षेत्रों की कन्नौजी अवधी, ब्रज, बुंदेली आदि से प्रभावित है।
- डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने कन्नौजी को ब्रजभाषा का ही एक उपरूप माना है।

- कन्नौजी में स्वयमध्य 'ह' के लोप की प्रवृत्ति पाई जाती है, जैसे- करहु- करउ, कहिहौं-कहयौं आदि।
- ब्रज के अन्तिम 'यो' तथा 'वो' के स्थान पर कन्नौजी में अधिकांश स्थलों पर 'ओ' मिलता है; जैसे- गयो-गओ, भयो-भओ, खायो-खाओ आदि। - कन्नौजी में 'वा' तथा 'इया' प्रत्ययों का प्रयोग बहुत होता है बच्चा-बच्चवा या बचवा, लडका-लरिकवा, बाप-बपुआ, छोकरी-छोकरिया आदि।

बघेली

- डॉ. बाबूराम सक्सेना ने 'बघेली' को 'अवधी' की ही उपबोली माना है।
- 'बघेली' का उद्‌भव अर्धमागधी अपभ्रंश के ही एक क्षेत्रीय रूप से हुआ है।
- रीवा तथा आसपास का क्षेत्र बघेल राजपूतों के वर्चस्व के कारण बघेलीखण्ड कहलाया और वहाँ की बोली 'बघेलखंडी' या 'बघेली' कहलाई।
- बघेली को 'दक्षिणी अवधी' भी कहते हैं। इस बोली का क्षेत्र रीवा है। अतः इसे "रीवाई' भी कहा जाता है।
- यह बोली मध्य प्रदेश के दमोह, जबलपुर, मॉडला, बालाघाट, उत्तर प्रदेश के बाँदा, फतेहपुर, हमीरपुर इत्यादि जिलों के कुछ भागों में प्रचलित है।
- बघेली क्षेत्र के उत्तर में अवधी तथा भोजपुरी, पुरब में छत्तीसगढ़ी, दक्षिण में मराठी तथा दक्षिणी-पश्चिम में बुन्देली क्षेत्र पडते हैं।
- बघेली बोली लोकसाहित्य सम्पन्न है, परन्तु साहित्य का अभाव है।
- "तिरहारी', 'जुडार', 'गहोरा', 'बघेली', की मुख्य बोलियाँ हैं।
- बघेली के अन्तर्गत सर्वनामों में 'मुझे के स्थान पर म्वाँ, मौहीं; 'तुझे' के स्थान पर त्वाँ, तौही; विशेषण में 'हा' प्रत्यय लगता है; जैसे- मरकहा, गंजहा, नीकहा, कटहा आदि।
- बघेली में मोर का म्वार, तोर का त्वार, पेट का प्याट, देता का द्‌यात रूप होता है।

छत्तीसगढ़ी

- छत्तीसगढ़ की बोली 'छत्तीसगढ़ी' कहलाती है। इसे 'लरिया' या 'खल्टाही' भी कहते है।
- "छत्तीसगढ़ी' बोली का विकास अर्धमागधी अपभ्रंश के दक्षिणी रूप में हुआ है।
- छत्तीसगढ़ी की मुख्य उपबोलियाँ-सरगुजिया, सदरी, बैगानी, बिंझवाली आदि है। - इस बोली का क्षेत्र सरगुजा, कोरिया, विलासपुर, रायगढ, खैरागढ़, रायपुर, दुर्ग, नन्दगाँव, काँकेर आदि है।
- छत्तीसगढ़ी के कुछ शब्दों में महाप्राणीकरण की प्रवृत्ति है, जैसे- इलाका-इलाखा। - इसमें अघोषीकरण पाया जाता है; जैसे- शराब-शराप, बंदगी-बंदगी, खराब-खराप आदि।
- छत्तीसगढ़ी में 'स' के स्थान पर 'छ' तथा 'छ' के स्थान पर 'स' बोलने की प्रवृत्ति है; जैसे

सीतापुर-छीतापुर, छेना-सेना आदि।

बिहारी हिन्दी

- जॉर्ज ग्रियर्सन ने भोजपुरी, मगही और मैथिली बोलियों को 'बिहारी' हिन्दी उपभाषा कहा है।

- बिहारी हिन्दी को दो भागों में 'पूर्वी बिहारी' और 'पश्चिमी बिहारी' में विभाजित किया जा सकता है।
- पूर्वी बिहारी के अन्तर्गत 'मैथिली' और 'मगही' दो बोलियाँ है।
- पश्चिमी बिहारी में मात्र 'भोजपुरी' बोली है।।
- बिहारी हिन्दी का उद्भव मागधी अपभ्रंश से हुआ है।

भोजपुरी

- बोली के अर्थ में 'भोजपुरी का सर्वप्रथम प्रयोग 1789 ई. में हुआ यह शब्द काशी के राजा चेतसिंह के सिपाहियों की बोली के लिए प्रयुक्त हुआ है।
- बोलने वालों की संख्या की दृष्टि से हिन्दी की बोलियों में 'भोजपुरी' का प्रथम स्थान है।
- बिहार राज्य का 'भोजपुर' जनपद इस बोली का केन्द्र है।
- भोजपुरी का अधिकांश भूभाग उत्तर प्रदेश में और कुछ भाग बिहार प्रांत में है।
- उत्तरप्रदेश के वाराणसी, गाजीपुर, देवरिया, बलिया, आजमगढ़, महाराजगंज, मऊ, चंदौली, संत कबीरनगर, सोनभद्र, कुशीनगर के सम्पूर्ण जिले, जौनपुर, मिर्जापुर एवं बस्ती जिलों के पूर्वी भाग में भोजपुरी बोली जाती है।
- बिहार प्रान्त के छपरा, सीवान, गोपालगंज, भोजपुर, भभुआ, रोहतास, सासाराम, मोतिहारी, पूर्वी चम्पारण, पश्चिमी चम्पारण इत्यादि जिलों तथा उनके आसपास के क्षेत्र में भोजपुरी बोली जाती है।
- झारखण्ड राज्य के राँची और पलामू के कुछ भागों में भोजपुरी व्यवहृत होती है।
- भोजपुरी में लोकगीतों की समद्ध मौखिक परम्परा रही है।
- लोककवि और नाटककार "भिखारी ठाकुर ने 'बिदेसिया' सहित बारह नाटकों की रचना की। इन्हें भोजपुरी व 'शेक्सपियर' कहा जाता है।
- महेन्द्र मिसिर के पूरबी लोकगीत, मुजरे और विवाह के विदाई गीत अत्यन्त लोकप्रिय हैं। "नदी नारे न जाओ श्याम पइंया परूँ" सदृश उनके कई गीत हिन्दी और भोजपुरी फिल्मों में व्यवहृत हुए है।
- भारत के बाहर मॉरिशस, सूरीनाम, त्रिनिदाद, गुआना, फिजी आदि में भोजपुरी बोलने वालों की संख्या अच्छी खासी है।

मगही

- 'मगही' शब्द 'मागधी' का विकसित रूप है। मगही या मागधी का अर्थ है- 'मगध की भाषा', परन्तु आधुनिक मगही प्राचीन मगध तक ही सीमित नहीं है।
- यह बोली बिहार राज्य के पटना, गया, मुंगेर, जहानाबाद, नालंदा, नवादा, जमुई, शेखपुरा, औरंगाबाद, लक्खीसराय, भागलपुर तथा झारखण्ड राज्य के पलामू, हजारीबाग तथा उसके निकटर्ती भूभाग में बोली जाती है।
- मगही का परिनिष्ठित रूप 'गया' जिले में व्यवहृत होता है।
- पटना की मगही पर मैथिली, भोजपुरी तथा उर्दू का प्रभाव है।

- दक्षिणी सीमा की मगही ओडिया से पश्चिमी सीमा की मगही 'भोजपुरी' से और पूर्वी सीमा की 'बंगाली' से प्रभावित है।
- मगही में लोक साहित्य पर्याप्त है जिसमें 'गोपीचंद' और 'लोरिक' के लोकगीत प्रसिद्ध है।

मैथिली

- मिथिला की बोली को 'मैथिली' कहा जाता है। इसका उद्भव मागधी अपभ्रंश के मध्यवर्ती रूप से हुआ है।
- भोजपुरी क्षेत्र के पूर्व में तथा मगध के उत्तर में "मिथिला' है और वहाँ की बोली 'मैथिली' है।
- मैथिली का क्षेत्र बिहार के उत्तरी भाग में पूर्वी चम्पारन, मुजफ्फरपुर, मुंगेर, भागलपुर, दरभंगा, पूर्णिया तथा उत्तरी संथाल परगना है। इसके अतिरिक्त यह माल्दह, दिनाजपुर, भागलपुर, तिरहुत सबडिवीजन की सीमा के पास नेपाल की तराई में भी बोली जाती है।
- मैथिली की छह बोलियाँ हैं- उत्तरी मैथिली, दक्षिणी मैथिली, पूर्वी मैथिली, पश्चिमी मैथिली, छिकाछिकी तथा जोलहा बोली।
- बिहारी हिन्दी की बोलियों में केवल 'मैथिली' ही साहित्यिक दष्टि से सम्पन्न है।
- विद्यापति की पदावली की भाषा मैथिली है।
- मैथिली साहित्य के प्राचीनकाल के गीतकारों में विद्यापति और गोविन्ददास मध्यकाल के नाटककारों में रणजीतलाल और जगत प्रकाश मल्ल, कीर्तनिया नाटक लिखने वालों में उमापति उपाध्याय, एकांकीकारों में शंकरदेव, संत कवियों में साहेब रामदास, कृष्णभक्त कवियों में मनबोध झा और आधुनिक काल के साहित्यकारों में चंदा झा, तंत्रनाथ झा, हरिमोहन झा प्रसिद्ध है।

राजस्थानी हिन्दी

- सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने राजस्थान की विभिन्न बोलियों को सामूहिक रूप से 'राजस्थानी हिन्दी' कहा।
- डॉ. ग्रियर्सन ने राजस्थानी बोलियों को पाँच वर्गों में विभाजित किया- (1) पश्चिमी राजस्थानी (2) उत्तरी पूर्वी राजस्थानी (3) मध्यपर्वी राजस्थानी (4) दक्षिणपूर्वी राजस्थानी (5) दक्षिणी राजस्थानी।

मारवाडी

- पश्चिमी राजस्थानी (मारवाडी) बोली का उद्भव शौरसेनी अपभ्रंश के नागर रूप से हुआ है।
- 'मारवाडी' राजस्थान के जोधपुर, अजमेर, मेवाड, सिरोही, बीकानेर, जैसलमेर, उदयपुर, चुरू, नागौर, पाली, जालौरा, बाडमेर जिलों में तथा पाकिस्तान के सिंध प्रान्त के पूर्वी भाग में बोली जाती है।
- लोक साहित्य की दृष्टि से 'मारवाडी' सम्पन्न उपभाषा है।
- मेवाडी, सिरोही, बागडी, थली, शेखावटी आदि 'मारवाडी' की प्रमुख उपबोलियाँ है।
- मीराबाई के पद कहीं 'मारवाडी' और कहीं 'ब्रजभाषा' में है।
- हिन्दी साहित्य के आदिकालीन 'वीरगाथा काव्य' इसी उपभाषा में लिखे गए।
- पुरानी मारवाडी को ही 'डिंगल' कहा गया है।

जयपुरी

- यह राजस्थान के पूर्वी भाग की बोली है। इसका केन्द्र जयपुर है और जयपुर का पुराना नाम "ढूँढ़ाण' है, इसलिए इस बोली को 'ढूँढ़ाणी' भी कहते हैं। -
- 'जयुपरी' बोली का उद्भव शौरसेनी अपभ्रंश के उपनागर रूप से हुआ है। -
- जयपुरी की मुख्य उपबोलियाँ हैं- तोरावटी, काठंडा, चौरासी, अजमेरी और हाडौती।
- 'हाडौती' कोटा, बूंदी, बारन और झालावाङ में बोली जाती है।

मेवाती

- मेवाती राजस्थानी के उत्तर-पूर्व की बोली है। इस पर ब्रजभाषा का प्रभाव है।
- 'मेवाती' नाम 'मेव' जाति के इलाका 'मेवात के नाम पर पड़ा है।
- मेवाती का क्षेत्र अलवर, गुङगाँव, भरतपुर तथा आस-पास है।
- इसकी एक मिश्रित उपबोली 'अहीरवाटी' है, जो गुङगाँव, दिल्ली, करनाल के पश्चिमी क्षेत्रों में बोली जाती है। इस पर हरियाणी का प्रभाव है।
- मेवाती की अन्य उपबोलियाँ राठी, नहेर, कठर, गुजरी आदि है।

मालवी

- दक्षिणी राजस्थानी की प्रतिनिधि बोली 'मालवी' है।
- उज्जैन के आसपास का क्षेत्र 'मालव' या 'मालवा' नाम से कई शताब्दियों से प्रसिद्ध रहा है। यहाँ की बोली की 'मालवी' कहते है।
- यह उज्जैन, इन्दौर, देवास, रतलाम, भोपाल, होशंगाबाद, परताबगढ़, गुना, नीमच, टोंक तथा आस-पास के क्षेत्र में व्यवहृत होती है। 'मालवी' बुन्देली और मारवाडी के बीच की स्थिति में है।
- मालवी की मुख्य उपबोलियाँ-सोंडवाडी, राँगडी, पाटबी, रतलामी, आदि है।

कुमाउँनी

- नैनीताल, अल्मोङा एवं पिथौरागढ़ क्षेत्र का परम्परागत नाम कूर्मांचल है, जिसे अब 'कुमाऊँ' कहते हैं तथा यहाँ की बोली को 'कुमाउँनी'।
- कुमाउनी पर दरद, खस, राजस्थानी, खडी बोली हिन्दी आदि के अतिरिक्त 'किरात' 'भोट' आदि तिब्बत-चीनी परिवार की भाषाओं का प्रभाव रहा है।
- कुमाउँनी में प्राचीन साहित्य तो नहीं परन्तु आधुनिक काल में साहित्य सर्जन हो रहा है। लोक साहित्य की दृष्टि से कुमाउँनी सम्पन्न बोली है।
- कुमाउँनी की दस से अधिक उपबोलियाँ हैं; जैसे- खसपरजिया, कुमैयाँ, फल्दकोटिया, पछाईं, चौगरखिया, गंगोला, दानपुरिया, सीराली, सोरियाली, अस्कोटी, जोहारी, रउचोभैंसी तथा भोटिया।

गढ़वाली

- कुमाऊँ के पश्चिमी छोर से यमुना तक का भूभाग 'केदारखण्ड' कहलाता है। मध्यकाल में यहाँ पवार राजपूतों और पाल वंश के राजाओं का शासन था। बावन गढ़ियों में बँटे होने के कारण इस क्षेत्र को 'गढ़वाल' कहा गया। गढ़वाल की बोली 'गढ़वाली' है। उत्तराखण्ड राज्य के टिहरी गढ़वाल की बोली गढ़वाली का आदर्श रूप मानी जाती है।
- गढ़वाली में भोटिया, शक किरात, नागा और खस जातियों की भाषाओं के अनेक तत्व मिश्रित है।
- गढ़वाली लोकगीतों के अनेक संग्रह प्रकाशित है। वर्तमान में गद्य और पद्य में विभिन्न विधाओं में साहित्य लिखा जा रहा है।

दक्खिनी

- दक्खिनी का मूल आधार दिल्ली के आसपास की 14 वीं-15वीं सदी की खडी बोली है।
- दक्षिण में प्रयुक्त होने के कारण इसे 'दक्खिनी' बोली कहा जाता है।
- मुस्लिम शासन के विस्तार के साथ हिन्दुस्तानी बोलने वाले प्रशासक, सिपाही, व्यापारी, कलाकार, फकीर, दरवेश इत्यादि भारत के पश्चिमी और दक्षिणी भाग में नए, उनके साथ यह भाषा भी। पहुँची। उत्तर भारत से जाने वाले मुसलमानों और हिन्दुओं द्वारा प्रयुक्त होने लगी।
- दक्खिनी में कुछ तत्व पंजाबी, हरियाणी, ब्रज तथा अवधी के भी हैं, क्योंकि इन क्षेत्रों से भी लोग दक्षिण में गए जिससे यह भाषा मिश्रित हो गई।
- दक्खिनी का मुख्य क्षेत्र बीजापुर, गोलकुंडा, अहमदनगर तथा गौणतः बरार, मुम्बई तथा मध्य प्रदेश है।
- 'दक्खिनी' पर बाद में उर्दू का भी प्रभाव पडा। साथ ही तमिल, तेलुगू तथा कन्नड का भी प्रभाव लक्षित होता है।
- 'दक्खिनी' की मुख्य उपबोलियाँ- गुलबर्गी, बीदरी, बीजपुरी और हैदराबादी है। प्राचीनकाल से ही दक्खिनी में साहित्य सर्जन होता रहा है।
- दक्खिनी के शरफुद्दीन-बू-अली कलन्दर ने लिखा है

"सजन सकारे जाएँगे, नैंन मरेंगे रोय।
विधना ऐसी रैन का, भोर कबौं न होय।।"

- ख्वाजा बन्दा नेवाज गेसूरदराज कृत 'मेराजुल आशकीन' दक्खिनी गद्य की पहली पुस्तक मानी जाती है। "शिकारनामा' और 'तिलावतुल- वजूद दो अन्य रचनाएँ है।
- मुहम्मद कुली कुतुबशाह एक श्रेष्ठ कवि है।
- मुल्लाबजही दक्खिनी के विशेष उल्लेखनीय साहित्यकार है, ये मुहम्मद कुली कुतुबशाह के समकालीन थे, क्योंकि इनके द्वारा लिखी गई प्रेमकथा 'कुतुबमुश्तरी' के नायक मुहम्मद कुली कुतुबशाह स्वयं है।
- मुल्लावजही कृत 'सबरस' को उर्दू साहित्य की प्रथम गद्य रचना माना जाता है।
- हैदराबाद निवासी सैयद हुसेन अली खाँ ने 1838 ई. में 'चादरवेश' का फारसी से दक्खिनी में अनुवाद किया था।

- 'दक्खिनी' में 'महाप्राण' व्यंजनों के स्थान पर 'अल्पप्राण' व्यंजनों के प्रयोग की प्रवृत्ति है; जैसेदेक (देख), गुला (घुला), कुच (कुछ), समज (समझ), अदिक (अधिक) इत्यादि।

भाग 2

काव्यगुण

काव्यगुण

काव्यगुण का अर्थ है- दोषाभाव, शोभाकारी या आकर्षक धर्म ।

भरतमुनि के अनुसार - दोष का विपर्यय गुण है। गुण के प्रतिष्ठाता आचार्य वामन हैं, जिनके अनुसार गुण काव्य-मूल शोभा (सौंदर्य) के तत्त्व हैं (काव्यशोभायाः कर्तारौ धर्मः गुणः)। वस्तुतः, काव्य की शोभा को संपादित करने वाला तत्त्व या विशेषता 'गुण' अथवा काव्यगुण है। आनंदवर्द्धन ने गुणों का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं माना और इसे रसाश्रित स्वीकार किया है। मम्मट, विश्वनाथ की भी यही मान्यता है।

गुणों की संख्या -

गुणों की संख्या के संबंध में विद्वानों के बीच मतभेद है। भारतमुनि, दण्डी ने 10, वामन ने 20, भोज ने 24, (जो बाह्य, आभ्यन्तर और वैशेषिक भेदों में 72 होते हैं), अग्निपुराणकार ने 18 गुण माना है। कुंतक ने गुणों का इन सबसे । भिन्न दृष्टिकोण रखते हुए सिर्फ 2 गुण (औचित्य, सौभाग्य) माने हैं। आनंदवर्द्धन ने रस के धर्मरूप में गुण को माना और चित्त की 3 अवस्थाओं (द्रुति, दीप्ति और व्यापकत्व) के आधार पर 3 गुणों-माधुर्य, ओज और प्रसाद को स्वीकार किया है। मम्मट ने 10 गुणों का खंडन कर आनंदवर्द्धन द्वारा प्रतिपादित 3 गणों को ही सिद्ध किया है। हिन्दी के रीति आचार्यों ने उक्त 3 गुणों को ही स्वीकार किया है। देव ने भरतमुनि, दंडी के 10 गुणों को स्वीकार करते हुए यमक और अनुप्रास मिलाकर 12 गुण बताये हैं। रामचंद्र शुक्ल ने गुण को रसाश्रित माना जबकि श्यामसुंदर दास ने इसे शैली के अंतर्गत स्वीकार किया है।

मम्मट, आनंदवर्द्धन द्वारा प्रतिपादित निम्नांकित तीन गुणों को भारतीय काव्यशास्त्र में सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया है।

1. माधुर्य गुण

माधुर्य का अर्थ है- श्रुतिसुखदाता, समासरहितता, आर्द्रता, चित्त को द्रवित करने की विशेषता, भावमयता, अह्लादकता इत्यादि। देवेन्द्रनाथ शर्मा के अनुसार-जिस रचना को पढ़कर या सुनकर हृदय में द्रुति उत्पन्न हो, उसे माधुर्य गुण कहते हैं। द्रुति का अर्थ पिघलना या द्रवित होना है। कन्हैयालाल पोद्दार के शब्दों में जिस काव्यरचना से अंतःकरण आनंद से द्रवीभूत हो जाये, उसमें माधुर्य गुण होता है। शृंगार, करुण एवं शान्त रसों के लिए यह गुण उपयुक्त होता है।

भरतमुनि के अनुसार - माधुर्य का अर्थ 'श्रुतिमधुरता'; दण्डी के अनुसार रसमयता (रस से सम्पन्न) , वामन के अनुसार उक्ति वैचित्र्य और मम्मट के अनुसार माधुर्य का अर्थ - आह्लादकता एवं शृंगार रस में द्रवित करने की विशेषता है। मम्मट ने काव्य-गुण को परिभाषित करते हुए कहा है कि

आह्लादकत्वं माधुर्यं शृंगारे द्रुतिकारणम् ।
करुणे विप्रलम्भे तत् शांते चातिशयात्वितम् ।।

माधुर्य गुण के व्यंजक -

डॉ. देवेन्द्रनाथ शर्मा के अनुसार माधुर्य गुण के निम्नांकित व्यंजक हैं -

1. सभी वर्गाक्षर (ट वर्ग को छोड़कर) अर्थात् क वर्ग, च वर्ग, त वर्ग, प वर्ग।
2. संयुक्ताक्षर का प्रायः अभाव ; यदि संयुक्ताक्षर हो तो पंचमाक्षर के या अनुस्वार के साथ। जैसे अंग, नंदन चुंबन, संशय।
3. लघु र,ण ; जैसे - रवि, परिणत
4. समास का अभाव अथवा समास की अल्पता (समास बड़े नहीं हों या हो तो छोटे-छोटे)

उदाहरण -

1. किंकण कंकण नूपुर सुनि। कहत लखन सन राम हृद गुनि। - तुलसी
2. वर दे वीणावादिनी! वर दे। नव गति, नव लय, ताल छंद नव नवल कंठ, नव जलद मन्द्र रव नव नभ के नव विहग वृन्द को नव पर, नव स्वर दे। - निराला

2. ओज गुण

ओज का शाब्दिक अर्थ है- तेज, दीप्ति, जोश, आवेग इत्यादि । जिस काव्य को पढ़ने या सुनने से मन में ओज, तेज, उत्साह, साहस, पौरुष, वीरता, आवेश इत्यादि का संचार हो, उसे ओज गुण कहते हैं। यह वीर, रौद्र, भयानक एवं वीभत्स रस के लिए उपयुक्त होती है।

दण्डी के अनुसार समासयुक्त पदों की बहुलता से ओज गुण होता है। वामन अक्षरविन्यास का संश्लिष्ट, संयुक्ताक्षरों का प्रयोग ओज गुण के लिए आवश्यक मानते हैं। मम्मट ने ओजगुण के विषय में कहा है कि -

दीप्त्यात्म विस्तृतेर्हेतुरोजो वीररसस्थितिः
वीभत्स रौद्ररसयोः तस्याधिक्यं क्रमेण च ।।

डॉ. देवेन्द्रनाथ शर्मा ने ओज गुण के व्यंजक को माधुर्य गुण बिल्कुल विपरीत बताते हुए इसके व्यंजक इस प्रकार प्रतिपादित किये हैं -

1. टवर्ग (माधुर्य गुण में टवर्ग के अतिरिक्त व्यंजन रहते हैं)।
2. संयुक्ताक्षरों का आधिक्य ।
3. रेफ का अधिक प्रयोग । रेफ का प्रयोग दो प्रकार से हो सकता है - किसी वर्ण के ऊपर, जैसे-अर्क, कर्क, कर्कट ; या वर्ण के नीचे, जैसे - वक्र शुभ्र तीव्र ।
4. समास का बाहुल्य ।

उदाहरण

1. हिमाद्रि-तुंग शृंग से, प्रबुद्ध शुद्ध भारती स्वयंप्रभा समुज्ज्वला, स्वतंत्रता पुकारती।। - (चंद्रगुप्त, जयशंकर प्रसाद)

2. मुझे तोड़ लेना वनमाली, उस पथ में देना तुम फेंक मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जायें वी अनेक। - (पुष्प की अभिलाषा, माखन लाल चतुर्वेदी)

3. प्रसाद गुण

प्रसाद का शाब्दिक अर्थ है - प्रसन्नता, खिल जाना या विकसित होना। भरतमुनि के अनुसार जिसमें स्वच्छता, सरलता और सहजग्राह्यता हो अर्थात् सुनते ही अर्थबोध हो जाये उसे प्रसाद गुण कहते हैं। देवेन्द्रनाथ शर्मा कहते हैं कि - जिस गुण से युक्त रचना अनायास हृदय में व्याप्त हो जाये, वह प्रसाद गुण कहलाता हैं दंडी के अनुसार - प्रसिद्ध अर्थों में शब्द का ऐसा प्रयोग, जिसे सुनते ही अर्थ समझ में आ जाये 'प्रसाद गुण है। वामन ने प्रसाद में प्रसाद में शौथिल्य की विशेषता मानी है और इसे ओजगुण का विरोधी कहा है। मम्मट ने कहा है कि - जैसे सूखे ईंधन में अग्नि

तथा स्वच्छ वस्त्र में जल तुरंत फैल जाता है, उसी प्रकार चित्त को रस में और रचना में तुरंत व्यक्त कर दे, वह गुण प्रसाद है। देखें, मम्मट का कथन -

शुष्कन्धनाग्निवत स्वच्छ जलवत सहसैव यः
व्याप्नोत्यत् प्रयादोऽसौ सर्वत्र विहित स्थितिः ।

प्रसाद गुण का व्यंजक -
प्रसाद गुण का एकमात्र व्यंजक सरल, सहज शब्दावली का प्रयोग है। यह सभी रसों में उपयोगी होता है।

उदाहरण -
1. कुछ भी बन, बस कायर मत बन, ठोकर मार, पटक मत माथा
तेरी राह रोकते पाहन, कुछ भी बन, बस कायर मत बन।। - नरेन्द्र शर्मा

2. सीस पगा न झगा तन मैं प्रभु, जानै को आहि बसै केहि ग्रामा
धोती फटी सी लटी दुपटी अरु पांय उपानहु की नहीं सामा
द्वार खरौ द्विज दुर्बल देख रहयौ चकि सौ बसुधा अभिरामा
पूछत दीनदयाल के धाम बतावत, आपनौ नाम सुदामा।। - नरोत्तमदास

काव्य प्रयोजन

काव्य प्रयोजन का तात्पर्य है-'काव्य रचना का उद्देश्य' |

काव्य किस उद्देश्य से लिखा जाता है और किस उद्देश्य से काव्य पढ़ा जाता है इसे दृष्टिगत रखकर काव्य प्रयोजनों पर विस्तृत विचार-विमर्श काव्यशास्त्र में किया गया। काव्य प्रयोजन काव्य प्रेरणा से अलग है,

क्योंकि काव्य प्रेरणा का अभिप्राय है काव्य की रचना के लिए प्रेरित करने वाले तत्व जबकि काव्य प्रयोजन का अभिप्राय है काव्य रचना के अनन्तर (बाद में) प्राप्त होने वाले लाभ। यहां हम काल-क्रमानुसार विभिन्न आचर्यों द्वारा निर्द्रिष्ट काव्य प्रयोजनों की समीक्षा करेंगे।

1. **भरत मुनि** - 'नाट्य शास्त्र' के रचयिता भरत मुनि ने नाटक के प्रयोजनों पर विचार करते हुए लिखा है :

धर्म्य यशस्यं आयुष्यं हितं बुद्धि विवर्धनम् ।
लोको उपदेश जननम् नाट्यमेतद् भविष्यति।।

भरत मुनि द्वारा निर्दिष्ट इन प्रयोजनों में भौतिक प्रयोजनों का व्यापक उल्लेख है, किन्तु काव्य का प्रधान उद्देश्य आनन्द प्राप्ति है जिसका उल्लेख यहां नहीं किया गया। एक अन्य स्थान पर उन्होंने नाटक का उद्देश्य दुःखात व्यक्ति को सुख और शान्ति की प्राप्ति करना बताया है।

2. **भामह -** आचार्य भामह ने काव्य प्रयोजनों की चर्चा करते हुए लिखा है :

धर्मार्थ काम मोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।
करोति कीर्ति प्रीतिञ्च साधुकाव्य निबन्धनम् ।।

अर्थात् धर्म, अर्थ, काम मोक्ष की प्राप्ति कलाओं में निपुणता के साथ-साथ उत्तम काव्य से कीर्ति और प्रीति (आनन्द) की भी प्राप्ति होती है। भामह के प्रयोजन व्यापक हैं तथा इनमें कवि और पाठक दोनों के काव्य प्रयोजनों की चर्चा है।

3. **आचार्य वामन** - वामन के अनुसार :

"काव्यं सद्रष्टा द्रष्टार्थ प्रीति-कीर्ति-हेतुत्वात् ।"

अर्थात् काव्य में दो प्रमुख प्रयोजन हैं :
1. प्रीति अथवा आनन्द साधना
2. कीर्ति अथवा यश प्राप्ति

4. **आचार्य मम्मट -** आचार्य मम्मट ने अपने ग्रन्थ 'काव्यप्रकाश में काव्य प्रयोजनों पर विस्तृत चर्चा की है। उनके अनुसार :

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये ।
सद्यः परिनिर्वृत्तये कान्तासम्मित तयोपदेशयुजे।।

अर्थात् काव्य यश के लिए, अर्थ प्राप्ति के लिए, व्यवहार ज्ञान के लिए, अमंगल शान्ति के लिए, अलौकिक आनन्द की प्राप्ति के लिए और कान्ता के समान मधुर उपदेश प्राप्ति के लिए प्रयोजनीय होते है।

मम्मट ने मूलतः छः काव्य प्रयोजन बताए हैं जो निम्नवत हैं :

1. यश प्राप्ति,
2. अर्थ प्राप्ति,
3. लोक व्यवहार ज्ञान,
4. अनिष्ट का निवारण या लोकमंगल,
5. आत्मशान्ति या आनन्दोपलब्धि,
6. कान्तासम्मित उपदेश।

इनमें से काव्य की रचना करने वाले कवि के प्रयोजन है-यश प्राप्ति, अर्थ प्राप्ति, आत्मशान्ति तथा काव्य का अस्वादन करने वाले पाठक के काव्य प्रयोजन है-लोक व्यवहार ज्ञान, अमंगल की शान्ति, आनन्दोपलब्धि और कान्तासम्मित उपदेश | मम्मट के ये काव्य प्रयोजन अत्यन्त व्यापक हैं। अब हम इनमें से प्रत्येक पर अलग-अलग विचार करेंगे।

1. **यश प्राप्ति** - यश प्राप्ति की इच्छा से कविगण काव्य रचना में प्रवृत्त होते रहे हैं। अतः यश प्राप्ति को मम्मट ने काव्य का प्रमुख प्रयोजन माना है। काव्य रचना करके अनेक महाकवियों ने अक्षय यश प्राप्त किया है। कालिदास, सूरदास, तुलसी, बिहारी, प्रसाद जैसे अनेक कवि आज भी अमर हैं। तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में लिखा है :

"निज कवित्त केहि लाग न नीका।
सरस होहु अथवा अति फीका।।
जो प्रबन्ध कुछ नहिं आदरहीं।
सो श्रम वाद बाल कवि करहीं।।"

अर्थात् अपनी कविता किसे अच्छी नहीं लगती, चाहे सरस हो या फीकी, किन्तु जिस रचना को विद्वानों का आदर प्राप्त नहीं होता उस रचनाकार का श्रम व्यर्थ ही है।

इससे यह ध्वनित होता है कि कवि की आकांक्षा होती है कि उसकी रचना विद्वानों के द्वारा सराही जाए अर्थात् यश प्राप्ति की कामना सभी कवियों में होती है।
जायसी ने भी पद्मावत में यह स्वीकार किया है कि मैं चाहता हूं कि अपनी कविता के द्वारा संसार में जाना जाऊं।

"औ मैं जान कवित अस कीन्हा।
मकु यह रहै जगत मंह चीन्हा।।"

रीतिकालीन कवि आचार्य कुलपति, देव और भिखारीदास ने भी अपने काव्य प्रयोजनों में यश प्राप्ति को विशेष स्थान दिया है।

यह भी उल्लेखनीय है कि कवियों ने जिन राजाओं को अपनी कविता का विषय बनाया वे भी अमर हो गए। निष्कर्ष यह है कि यश प्राप्ति काव्य का प्रमुख प्रयोजन है। अंग्रेजी की यह कहावत कवियों पर भी लागू होती है।

"Fame is the last infirmity of noble minds."

अर्थात् यश कामना महान व्यक्तियों की अन्तिम कमजोरी होती है।

2. **अर्थ प्राप्ति** - काव्य रचना का एक प्रयोजन धन प्राप्ति भी रहा है। धनोपार्जन की इच्छा से रीतिकालीन कवियों ने राजदरबारों में आश्रय ग्रहण किया। कहते हैं कि बिहारी को प्रत्येक दोहें की रचना के लिए एक अशर्फी प्राप्त होती थी। आधुनिक युग में कवि सम्मेलनों में अनेक कवि अपनी कविताओं को गाकर, सुनाकर अच्छा-खासा धन पैदा कर रहे हैं। इस प्रकार कविता धनोपार्जन का माध्यम बन गई है। इसीलिए सम्भवतः मम्मट ने अर्थ प्राप्ति को काव्य प्रयोजनों में स्थान दिया है।

3. **व्यवहार ज्ञान** - आचार्य मम्मट ने व्यवहार ज्ञान को भी काव्य का प्रयोजन माना है। रामायण आदि महाकाव्यों के अनुशीलन से पाठकों को उचित व्यवहार की शिक्षा प्राप्त होती है। संस्कृत में बहुत-सा साहित्य इसी प्रयोजन को ध्यान में रखकर लिखा गया था। पंचतन्त्र, हितोपदेश, नीतिशतक जैसे ग्रन्थ व्यवहार ज्ञान की शिक्षा देने के लिए लिखे गए। काव्य के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि हम कैसा व्यवहार करें। रामचरितमानस व्यवहार का दर्पण है।
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने चिन्तामणि में यह स्वीकार किया है कि काव्य से व्यवहार ज्ञान होता है :
"यह धारणा कि काव्य व्यवहार का बाधक है, उसके अनुशीलन से कर्मण्यता आती है, ठीक नहीं। कविता तो भाव प्रसार द्वारा कर्मण्य के लिए कर्मक्षेत्र का और विस्तार कर देती है।"

4. **शिवेतरक्षतये** - "शिवेतर' का अर्थ है-अमंगल और 'क्षतये' का अर्थ है-विनाश। इसका तात्पर्य है कि काव्य अमंगल का विनाश करता है और कल्याण का विधान करता है। अपने युग और समाज को अनिष्ट से बचाने के लिए अनेक कवियों ने काव्य रचनाएं लिखी हैं। कहा जाता है कि दिनकर जी ने युद्ध और शान्ति की समस्या को लेकर 'कुरुक्षेत्र' की रचना की और सम्पूर्ण संसार को शान्ति का सन्देश देते हुए युद्ध के अमंगल से बचाया है।
कभी-कभी कवि व्यक्तिगत अमंगल को दूर करने के लिए भी काव्य रचना करता है। कहते हैं कि संस्कृत के मयूर कवि ने कुष्ठ रोग से मुक्ति पाने के लिए 'मयूर शतक' लिखा था, इसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदास ने 'हनुमान बाहुक' की रचना बाहु रोग से मुक्ति पाने के लिए की थी।

काव्य से पठन-पाठन से भी 'अमंगल का विनाश होता है। अनेक लोग रामचरितमानस, दुर्गा सप्तशती और गुरु ग्रन्थ साहब का पाठ अमंगल के विनाश के लिए करवाते हैं।

5. **आत्मशान्ति** - काव्य पढ़ने के साथ ही तुरन्त आनन्द का अनुभव होता है और परम शान्ति की प्राप्ति होती है। काव्य का रसास्वादन करने से अलौकिक आनन्द की अनुभूति होती है। वस्तुतः आनन्दोपलब्धि ही काव्य का प्रमुख प्रयोजन है। काव्य का रसास्वादन करते समय पाठक को समाधिस्थ योगी के समान अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है। कुछ समय के लिए वह अपनी सत्ता को भूलकर काव्य के आनन्द में लीन हो जाता है। इसीलिए काव्यानन्द को 'ब्रह्मानन्द सहोदर' कहा गया है। काव्य की रचना करके कवि को भी यही आनन्द मिलता है और काव्य का रसास्वादन करके पाठक को भी ऐसे ही आनन्द की अनुभूति होती है। इस प्रकार काव्य का प्रयोजन कवि और पाठक दोनों से सम्बन्धित है। काव्य में डूबा हुआ मन साधारणीकरण की स्थिति में पहुंचकर रसमग्न हो जाता है और यही रसमग्नता परमशान्ति अर्थात् आनन्द प्रदान करती है। आचार्यों ने इसी कारण इस प्रयोजन को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानते हुए 'सकलमौलिभूत' प्रयोजन कहा है।

6. **कान्ता सम्मित उपदेश** - काव्य प्रियतमा के समान मधुर उपदेश देने वाला है। उपदेश तीन प्रकार के होते हैं :

1. प्रभु सम्मित उपदेश
2. मित्र सम्मित उपदेश
3. कान्ता सम्मित उपदेश

वेदशास्त्रों का उपदेश प्रभु सम्मित (स्वामी के उपदेश) जैसा है। वह हितकर तो है पर रुचिकर नहीं। पुराणों और इतिहास आदि का उपदेश मित्रतुल्य उपदेश है, जिसकी अवहेलना भी की जा सकती है, किन्तु काव्य का उपदेश कान्ता सम्मित उपदेश है जो हितकर भी है, रुचिकर भी है और जिसकी अवहेलना भी नहीं जा सकती।

जिस प्रकार कान्ता (प्रेयसी) मधुर हाव भावों से पुरुष को मुग्ध करके उसे अपनी इच्छानुकूल नीति मार्ग पर ले जाती है, उसी प्रकार काव्य भी मधुर कथा के द्वारा उच्च आदर्शों की शिक्षा देता हैं। जिस प्रकार मिठाई के लोभ में बालक कटु औषधि खा लेता है, उसी प्रकार रस के मधुर आस्वाद से मिश्रित शिक्षा काव्य द्वारा सरलता से कराई जा सकती है। इसीलिए कबीर, तुलसी, नानक आदि अनेक कवियों ने अपने उपदेशों का प्रचार काव्य के माध्यम से किया है। हिन्दी आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट काव्य प्रयोजन
हिन्दी आचार्यों ने काव्य प्रयोजन पर जो विचार व्यक्त किए हैं प्रायः संस्कृत आचार्यों जैसे हैं। यहीं हम कुछ प्रमुख उद्धरण प्रस्तुत कर रहे हैं :

1. **गोस्वामी तुलसीदास के काव्य प्रयोजन** - रामचरित मानस में तुलसीदास ने दो काव्य प्रयोजनों की चर्चा की है :

(i) स्वान्त : सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा
(ii) कीरति भनिति भूति भल सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होइ ।। वे काव्य में दो प्रयोजन मानते हैं :
(i) स्वान्त : सुख,
(ii) लोक मंगल |वही कविता श्रेष्ठ होती है जो गंगा के समान सबका हित करने वाली हो।

2. **भिखारीदास द्वारा निर्दिष्ट काव्य प्रयोजन**
एक लहै, तप पुंजन के फल, ज्यों तुलसी अरु सूर गुसाईं। एक लहै बहु सम्पति केशव, भूषण ज्यों बर बीर बडाई।। एकन्ह को जस-ही सों प्रयोजन, है रसखानि रहीम की नाईं। दास कवित्तन्ह की चरचा बुद्धिवन्तन को सुख दै सब ठाई।।यहां यश प्राप्ति, फल प्राप्ति, आनन्द प्राप्ति आदि को काव्य प्रयोजन के रूप में स्वीकार किया गया है।

3. **मैथिलीशरण गुप्त का मत** - गुप्तजी काव्य का प्रयोजन केवल मनोरंजन नहीं अपितु उपदेश स्वीकार करते हुए लिखते हैं।

"केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।"

इसी प्रकार वे काव्य कला के लिए सिद्धान्त का भी खण्डन करते हुए कहते हैं कि कला लोकहित के लिए होनी चाहिए

"मानते हैं जो कला को बस कला के अर्थ ही।
स्वार्थिनी करते कला को व्यर्थ ही।।"

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने काव्य प्रयोजनों पर विस्तार से विचार किया है। वे काव्य का प्रमुख प्रयोजन रसानुभूति मानते हैं।

"कविता का अन्तिम लक्ष्य जगत में मार्मिक पक्षों का प्रत्यक्षीकरण करके उसके साथ मनुष्य हृदय का सामंजस्य स्थापन है।"

कविता से केवल मनोरंजन के उद्देश्य का विरोध करते हुए वे लिखते हैं :

"मन को अनुरंजित करना उसे सुख या आनन्द पहुंचाना ही यदि कविता का अन्तिम लक्ष्य माना जाए तो कविता ही विलास की एक सामग्री हुई। ..... काव्य का लक्ष्य है जगत और जीवन के मार्मिक पक्ष को गोचर रूप में लाकर सामने रखना।"

पाश्चात्य समीक्षाशास्त्र में काव्य प्रयोजन पर कला के सन्दर्भ में विचार किया गया है। इस सम्बन्ध में दो प्रमुख मत हैं। कलावादियों के अनुसार कला का एकमात्र प्रयोजन सौन्दर्य सृष्टि है और इसीलिए वे काव्य

कला के लिए सिद्धान्त के समर्थक है, जबकि उपयोगितावादियों के अनुसार कला का उद्देश्य लोकहित का विधान करना है।

निष्कर्ष - काव्य प्रयोजन के सम्बन्ध में जो मत यहां व्यक्त किए गए हैं उनसे हम निम्न निष्कर्ष निकाल सकते हैं :

1. प्रत्येक व्यक्ति का काव्य प्रयोजन एक-सा नहीं होता।
2. आनन्द प्राप्ति काव्य का प्रमुख प्रयोजन है जिसे रसानुभूति से प्राप्त किया जाता है।
3. यश प्राप्ति, अर्थ प्राप्ति, व्यवहार ज्ञान, अमंग का विनाश, लोकोपदेश भी काव्य प्रयोजन है।
4. काव्य प्रयोजन काव्य प्रेरणा से अलग है।

काव्य रीति

> 'रीति' शब्द की व्युत्पत्ति- 'रीति' शब्द संस्कृत की 'रीङ्' धातु में 'क्तिन्' प्रत्यय के योग से बना है, जिसका मूल अर्थ होता हैं-'मार्ग'

>'रीति' शब्द का अर्थ- शब्दकोश के अनुसार 'रीति' शब्द के 'मार्ग', 'पंथ', 'वीथि', 'पद्धति', 'प्रणाली', 'शैली' इत्यादि अनेक अर्थ ग्रहण किये जाते है।

> 'काव्य रीति' का अर्थ- किसी भी काव्य की रचना करते समय कवि के द्वारा काव्य लेखन के लिए जो शैली काम में ली जाती है, उसे काव्य रीति कहा जाता है।

> 'रीति' की परिभाषा- आचार्य वामन को रीति सम्प्रदाय का प्रवर्तक माना जाता है। इन्होंने स्वरचित 'काव्यालंकार सूत्रवृत्ति' रचना में 'रीति' की परिभाषा देते हुए लिखा है"विशिष्ट पर रचना रीतिः" "विशेषोगुणात्मा" अर्थात् कवि/लेखक के काव्य लेखन की अपनी विशिष्ट गुणशैली ही काव्य रीति कहलाती है। इसका संबंध 'गुण' से माना जाता हैं। काव्य की आत्मा 'रीति'- रीति सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य वामन ने रीति को काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार किया है। यथा

"रीतिरात्मा काव्यस्य"

> 'रीति' का नामकरण- अलग-अलग आचार्यों के द्वारा काव्य रीति को निम्नानुसार अलग-अलग नामों से पुकारा गया है। यथा

आचार्य का नाम
नामकरण
आचार्य वामन
रीति

आचार्य कुन्तक
मार्ग

आचार्य मम्मट
वृत्ति

आचार्य आनंदवर्धन
पद संघटना

आचार्य विश्वनाथ
पद संघटना

आचार्य राजशेखर
वचन विन्यास क्रम

आचार्य दण्डी
मार्ग आचार्य भरतमुनि
वृत्ति (संकेत मात्र)

> 'रीति' के भेद

1. आचार्य वामन के रीति के निम्न तीन भेद स्वीकार किये है।
(अ) वैदर्भी (ब) गौडी (स) पांचाली ।

2. आचार्य कुंतक ने रीति को 'मार्ग' कहकर उसके तीन भेद माने है।
(अ) सुकुमार मार्ग (ब) विचित्र मार्ग (स) मध्यम मार्ग

3. आचार्य मम्मट ने रीति को 'वुत्ति' कहकर उसके तीन भेद माने है।
(अ) उपनागरिका वृत्ति (ब) परुषा वृत्ति (स) सुकोमला वृत्ति

4. सर्वप्रथम आचार्य रूद्रट ने समास के आधार पर 'लाटी' नामक चौथी रीति की परिकल्पना प्रस्तुत की।

5. आचार्य राजशेखर एवं आचार्य श्रीपद ने निम्न दो रीतियाँ अलग से स्वीकार की है।
(अ) मैथिली रीति (ब) मागधी रीति

6. आचार्य भोजराज ने भी 'अवंती' नामक एक अन्य काव्य-रीति की परिकल्पना प्रस्तुत की है।
सारांश- वर्तमान में सभी आचार्यो के द्वारा सर्वमान्य रूप में काव्य रीति के मख्यतः निम्न तीन भेद ही स्वीकार किये जाते है।

1. वैदर्भी रीति
2. गौडी रीति
3. पांचाली रीति

1. वैदर्भी रीति -

1. इस रीति में सुकोमल एवं सुकुमार (श्रुतिमधुर एवं संगीतात्मक) वर्णों का प्रयोग किया जाता है।
2. इस रीति में संयुक्ताक्षरों का अभाव पाया जाता है।
3. इस रीति में 'ट' वर्गीय वर्णों (विशेषतःमहाप्राण वर्णों ठ, ढ) का अभाव पाया जाता है। 4. इस रीति में सामासिक पदों का भी पूर्ण अभाव पाया जाता है।
5. यह रीति शृंगार, हास्य, करुण इत्यादि रसों की रचना के लिए उपयुक्त मानी जाती है।
6. आचार्य दण्डी ने इस रीति में इस रीति में अपने द्वारा प्रतिपादित सभी दस गुणों का समावेश माना है, परन्तु आचार्य मम्मट इसमें केवल 'माधुर्य' गुण ही स्वीकार करते है।
7. प्रारम्भ में 'विदर्भ' प्रदेश के कवियों के द्वारा अधिक प्रयुक्त किये जाने के कारण इसका नाम वैदर्भी रीति पडा है।

"माधुर्यव्यंजकैर्वर्णै रचना ललितात्मिका।
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यतै ।।"

उदाहरण (अ) "राम को रूप निहारति जानकी, कंकन के नग की परिछाँहि।
यातै सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही पल टारत नाँहि ।।"

प्रस्तुत पद में संयुक्ताक्षरों एवं सामासिक पदों का तो पूर्ण अभाव है। 'ट' वर्गीय वर्गों के अन्तर्गत केवल दो जगह अल्पप्राण 'ट' वर्ण का प्रयोग हुआ है। इसकी पदरचना सुकोमल है। अतएवं यहाँ वैदर्भी रीति है।

(ब) "देखि सुदामा की दीन दशा करुणा करिकै करुणानिधि रोये।
पानी परात को हाथ छुयो नहीं नैननि के जल सों पग धोये।"

(स) "रस सिंगार मज्जन किए कंजनु भंजनु दैन ।
अंजनु रंजनु हूँ बिना, खंजनु गंजनु नैन ।।"

(द) मृदु-मंद-मंद मंथर मंथर, लघु तरणि हंसिनी-सी सुंदर,
तिर रही खोल पालों के पर।

(य) तुम अलिंगन करते हिम कर नाचती हिलोरें सिहर-सिहर
सौ-सौ बाँहों में बाँहे भर सर में, आकुल उठ उठ गिरकर |

2. गौडी रीति

1. इस रीति में कठोर वर्गों का अधिक प्रयोग किया जाता है।
2. इस रीति में सामासिक पदों एव संयुक्त वर्णों का अधिक प्रयोग किया जाता है।
3. इस रीति में 'ट' वर्गीय महाप्राण ध्वनियों का अधिक प्रयोग किया जाता है।
4. यह रीति वीर, रोद्र, भयानक, वीभत्स आदि रसों की रचना के लिए अधिक उपयुक्त मानी जाती है।
5. आचार्य दण्डी ने इस रीति में 'ओज' व 'कांति' गुणों की प्रधानता मानी जाती है जबकि आचार्य मम्मट इसमें ओज गुण की प्रधानता मानते है।
6. प्रारम्भ में 'गौड' प्रदेश के कवियों के द्वारा अधिक प्रयुक्त किये जाने के कारण इसका नाग गौडी रीति पड है।

" ओजः प्रकाशकैर्वर्णैर्बन्ध आडम्बर पुनः ।
समासबहुला गौडी वर्णैः शेषैः पुनर्द्वयोः ।।"

उदाहरण

(अ) हिमाद्रि तुंग श्रृंग से, प्रबुद्ध शुद्ध भारती।
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती।
अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ प्रतिज्ञ सोच लो।
प्रशस्त पुण्य पंथ है, बढ़े चलो बढ़े चलो।।

प्रस्तुत पद में अनेक संयुक्ताक्षरों का प्रयोग हुआ है। 'हिमाद्रि', 'स्वयंप्रभा', 'समुज्ज्वला', 'आमर्त्य' जैसे अनेक सामासिक पदों का प्रयोग हुआ है। 'दृढ', 'ब?' जैसे पदों में 'ट' वर्गीय महाप्राण ध्वनियों का प्रयोग हुआ है। अतएव यहाँ गौडी रीति मानी जाती है।

(ब) बोल्लहिं जो जय-जय मुण्ड-रुण्ड प्रचण्ड सिर बिनु धावही।
खप्परन्हि खग अलुज्झि जुज्झहिं भटन्ह दहावहीं।
(स) हय रुण्ड गिरे गज झुण्ड गिरे, कट कट अवनि पर मुण्ड गिरे।
भू पर हय विकल वितुण्ड गिरे, लडते-लडते अरि झुण्ड गिरे।।
(द) सृष्टि दृष्टि के अंजन रंजन ताप विभंजन बरसो।
व्यग्र उदग्र जगज्जननी के अये अग्रस्तन बरसो।।
(य) 'कटिकटहिं मर्कट बिकट भट बहु कोटि कोटिन्ह धावहिं।'-तुलसी
(व) महाबीर बरिबंड भये महि-मंडल-मंडल
निज-भुज दंड उदंड चंड-अरि-मुंड-बिहंडन।। -रत्नाकर

3. पांचाली रीति

1. यह रीति वैदर्भी एवं गौडी दोनों के बीच की रीति मानी जाती है।
2. इसमें संयुक्ताक्षरों, सामासिक पदों एवं 'ट' वर्गीय वर्गों का भी कुछ मात्रा में प्रयोग किया जा सकता हैं।
3. यह रीति भी वैदर्भी की तरह भंगार, हास्य, करुण आदि रसों की रचना के लिए उपयुक्त मानी जाती है।
4. आचार्य दण्डी इस रीति में प्रसाद व माधुर्य गुणों की प्रधानता मानते है, जबकि आचार्य मम्मट इसमें केवल प्रसाद गुण की प्रधानता मानते है।
5. प्रारम्भ में पंचाल प्रदेश के कवियों के द्वारा अधिक प्रयोग में लिये जाने के कारण इसका नाम पांचाली रीति पडा है।

"समस्त पञ्चषपदो बन्धः पाञ्चालिका मता' (विश्वनाथ)

उदाहरण

(अ) या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौं ।
आठहुँ सिद्धि नवौं निधि को सुख नंद की गाय चराय बिसारौं ।
खानि कबौं इन आँखिन ते ब्रज के बन बाग तडाग निहारौं ।
कौटिक ह्वै कलधौत के धाम करील की कुंजन ऊपर वारौं ।

प्रस्तुत पद में सामासिक पदों का तो पूर्ण अभाव है परन्तु कुछ स्थानों पर 'ट' वर्गीय वर्णों एवं सयुक्तक्षरों का प्रयोग हो गया है, अतएव यहाँ पांचाली रीति मानी जाती है।

(ब) राति न सुहात, न सूहात परभात आली ।
जब मन लागि जात काहू निरमोही सौ।।

(स) मैंने विदग्ध हो जान लिया अन्तिम रहस्य पहचान लिया।
मैंने आहुति बनकर देखा यह प्रेम यज्ञ की ज्वाला है।।

(द) युग-युग चलती रहे कठोर कहानी, रघुकुल में थी एक अभागिन रानी।
निज जन्म-जन्म में सुने जीव यह मेरा, धिक्कार उसे था महा स्वार्थ ने घेरा।।

(य) गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन | नयन अमिय दृग दोष-विभंजन ।।(तुलसी)

(व) विजन वन वल्लरी पर
सोती थी सुहाग-भरी, जुही की कली। -निराला

महत्त्वपूर्ण तथ्य

• भरत के नाट्यशास्त्र में 'रीति' के लिए 'प्रकृति' शब्द प्रयुक्त हुआ हैं। भरतमुनि ने भारतवर्ष में प्रचलित 4 प्रकृतियों - 1. आवंती (पश्चिम) 2. दक्षिणात्य (दक्षिण) 3. पांचाली (मध्यप्रदेश) 4. मागधी (उडीसा-मगध) का उल्लेख किया है।

• दण्डी ने रीति के लिए 'मार्ग' तथा 'वर्त्म' शब्द का प्रयोग किया। साथ ही, रीति के आधारभूत 10 काव्यगुणों का उल्लेख किया।

• वामन की रीति के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण देन 'पांचाली' नामक तीसरी रीति की उद्‌भावना है। वामन से पूर्व गौडी और वदर्भी दो मार्ग (रीतियाँ) स्वीकार्य थे। वामन ने रीतियों की संख्या तीन कर दी। वामन ने रीति को 'पद-रचना' मानते हुए गुणों में ही उसका मूल तत्त्व माना।

- रुद्रट ने रीतियों की संख्या में बढोत्तरी कर उसकी संख्या चार कर दी। 'लाटी' नामक चौथी रीति रुद्रट की देन हैं।
- आनंदवर्द्धन ने रीति के लिए 'संघटना' शब्द प्रयुक्त किया एवं रीति को रसाश्रयी माना। इन्होंने रीति को रसस्वरूप सौंदर्य का साधन कहा। इन्होंने रुद्रट की 'लाटी' रीति को स्वीकार नहीं किया किन्तु समास को रीति का मूल तत्त्व अवश्य माना। कुंतक ने तीन रीतियों को 3 मार्ग की संज्ञा दी- 1. सुकुमार मार्ग (जिसमें रस और भावों का नैसर्गिक निर्वाह होता है।) 2. विचित्र- मार्ग (जिसमें कलापक्ष महत्त्वपूर्ण होता है) और 3. मध्यम मार्ग (जिसमें दोनों का मिश्रण होता है)

अरस्तू का अनुकरण सिद्‌धान्त

अरस्तू महान् यूनानी दार्शनिक प्लेटो (427 ई.पू. से 347 ई.पू.) का शिष्य माना जाता है। इनका स्थितिकाल (384 ई.पू. से 322 ई.पू.) निर्धारित किया जाता है। सिकन्दर महान् ने भी अरस्तू से ही शिक्षा ग्रहण की थी। (348 ई.पू.में) इनका यूनानी नाम 'अरिस्तोतेलेस' माना जाता है। प्लेटो ने एथेन्स में ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा के लिए अकादमी की स्थापना की थी। 368 ई.पू. अरस्तू इसी अकादमी में उच्चस्तरीय शिक्षा प्राप्ति के लिए प्रविष्ट हुए थे। इनके पिता मकदूनिया के राजदरबार में चिकित्सक थे।

335 ई.पू. अरस्तू ने एथेन्स के समीप 'अपोलो' नामक स्थान पर 'लीसियस' नाम से अपना एक निजी विद्‌यापीठ स्थापित किया था। अपने 62 वर्ष के जीवनकाल में अरस्तू ने तर्कशास्त्र, मनोविज्ञान, तत्त्वमीमांसा, भौतिकशास्त्र, ज्योतिर्विज्ञान, राजनीतिशास्त्र, आचार-शास्त्र तथा साहित्य शास्त्र जैसे विषयों पर लगभग 400 ग्रन्थों की रचना की थी।

"अरस्तू मेरी विद्‌यापीठ का मस्तिष्क है और शेष विद्‌यार्थी उसके शरीर है।" - प्लेटो ।

अरस्तू के साहित्य चिंतन में उनके तीन सिद्‌धांत महत्त्वपूर्ण है -

1. अनुकरण का सिद्‌धान्त।
2. त्रासदी या ट्रेजेडी का सिद्‌धान्त।
3. विवेचन का सिद्‌धान्त।

→ इनके द्‌वारा रचित निम्न दो रचनाएँ प्राप्त होती हैं -

1. पोएटिक्स या पेरिपोइएतिकेस (काव्यशास्त्र)

2. हेटेरिअस - (भाषण शास्त्र)

नोट :- 'पोएटिक्स' अरस्तू द्वारा रचित एक छोटी सी पुस्तक है। उसमें कुल 26 अध्याय हैं। यह पुस्तक अरस्तू ने अपने छात्रों को अध्यापन के लिए नोट्स रूप में तैयार की थी। इसमें काव्य की उत्पत्ति, काव्य की प्रकृति, काव्य के भेद, काव्य का प्रयोजन इत्यादि विषयों पर अरस्तु ने अपने विचार प्रकट किये हैं। इसी रचना में इन्होंने ट्रैजेडी (दुःखात काव्य), एपिक (महाकाव्य) एवं कॉमेडी (सुखान्त नाटक) की चर्चा अनुकरणात्मक काव्य के रूप में की है। इन सभी रूपों में ट्रैजेडी को सर्वाधिक महत्त्व देते हुए इन्होंने 'पोएटिक्स' रचना के चौदह अध्यायों में (छठे से उन्नीसवें तक) इसका विस्तार से विवेचन किया है।

1. अरस्तू का अनुकरण सिद्धान्त -

- 'अनुकरण' शब्द यूनानी भाषा के 'मीमेसिस' एवं अंग्रेजी भाषा के 'इमिटेशन' शब्द से रूपान्तरित होकर हिन्दी में आया है। ।
- 'अरस्तू' ने काव्य को सौन्दर्यवादी दृष्टि से देखकर इसे राजनीतिक, दार्शनिक एवं नीतिशास्त्र के बंधन से मुक्त किया। ।
- अरस्तू के अनुसार - कला प्रकृति की अनुकृति है। यहाँ प्रकृति से उसका अभिप्राय जगत के बाह्य गोचर रूप के
- साथ-साथ उसके आन्तरिक रूप यथा काम, क्रोध आदि मनोविकारों से ग्रहण किया जाता है। ।
- अरस्तू से पहले उनके गुरु 'प्लेटो' के द्वारा भी 'अनुकरण सिद्धान्त' का विवेचन किया गया था।
- प्लेटो के अनुसार काव्य त्याज्य (छोडने योग्य) माना गया है, क्योंकि ईश्वर ही सत्य है। इसकी अनुकृति संसार है और संसार की अनुकृति काव्य है। इस प्रकार काव्य अनुकरण का अनुकरण है। अनुकरण सदैव अधूरा होता है, अतः संसार अर्द्धसत्य है और काव्य चौथाई सत्य है अर्थात् तीन-चौथाई झूठ है, इसलिए त्याज्य है।
- प्लेटो के अनुसार - कविता अनुकरण का अनुकरण है। अतः सत्य से दुगुना दूर है।
- अरस्तू ने प्लेटो से भिन्न विचार प्रस्तुत करते हुए अनुकरण शब्द का प्रयोग किया है।

काव्यवस्तु के तीन रूपों का अनुकरण होता है -

1. प्रतीयमान रूप का अर्थात् जैसा अनुकर्ता को प्रतीत होता है।
2. संभाव्य रूप का अर्थात् जैसा वह हो सकता है।
3. आदर्श रूप का अर्थात् जैसा वह होना चाहिए।

अरस्तू के 'अनुकरण' शब्द की अलग-अलग विद्वानों के द्वारा अलग- अलग व्याख्या प्रस्तुत की गई है। यथा -

1. प्रो. मरे के अनुसार - अनुकरण का अर्थ सर्जना का अभाव नहीं अपितु पुनर्सर्जना है।

2. प्रो. ब्रूचर - सादृश्य वस्तु के द्वारा मूल वस्तु का पुनराख्यान → अरस्तू ने अनुकरण को हूबहू नकल नहीं माना है। उनके अनुसार कवि वस्तुओं को उनके यथास्थिति (जैसी थीं वैसी) रूप में वर्णित नहीं करता है अपितु उनके तर्कपूर्ण सम्भाव्य रूप में वर्णित करता है। वस्तुतः कवि या कलाकार अपनी संवेदना और

अनुभूति से अपूर्णता को पूर्णता प्रदान करता है और उसे आदर्श रूप देता है। अतः अनुकरण को मात्र नकल नहीं कहा जा सकता है।

- अरस्तू के अनुकरण सिद्धान्त से इतिहासकार एवं कवि का भेद भी समाप्त हो जाता है। इसके अनुसार इतिहासकार । तो केवल घटित हो चुकी घटनाओं का वर्णन करता है जबकि कवि उसका वर्णन करता है जो घटित हो सकता है।
- अरस्तू के अनुकरण सिद्धान्त के महत्त्वपूर्ण तथ्य - अरस्तू के अनुकरण सिद्धान्त में प्रमुखतः निम्न बिन्दुओं का समावेश किया जा सकता है -

1. प्लेटो ने काव्य-शास्त्र को दर्शनशास्त्र व राजनीतिशास्त्र के साथ जोडकर वर्णित किया है, जबकि अरस्तू ने काव्य शास्त्र की स्वतंत्र रूप से समीक्षा की है।
2. इनके अनुसार कविता जगत की अनुकृति है व अनुकरण मनुष्य की मूल प्रवृत्ति है।
3. अनुकरण की प्रक्रिया आनन्ददायक होती है। हम अनुकृत वस्तु में मूल का सादृश्य देखकर आनन्द प्राप्त करते हैं। 4. अनुकरण के द्वारा भयोत्पादक वस्तुओं को भी इस रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है कि आनन्ददायक प्रतीत होने लगती है।
5. काव्य कला सर्वोत्तम अनुकरणात्मक कला है तथा अन्य सभी ललित कलाओं एवं उपयोगी कलाओं से अधिक महत्त्वपूर्ण है। नाटक काव्यकला का सर्वाधिक उत्कृष्ट रूप है।
6. काव्य प्रकृति का अनुकरण है।
7. अरस्तू ने काव्य को संगीतकला के समतुल्य माना है।
8. कवि अपनी रचना में दृश्य जगत् की वस्तुओं को जैसी वे हैं, वैसी ही प्रस्तुत नहीं करता है अर्थात् या तो वह उन्हें बेहतर रूप में प्रस्तुत करता है या हीनतर रूप में प्रस्तुत करता है।
9. इनके अनुसार 'अनुकरण' केवल आकृति और स्वर का ही नहीं किया जाता अपितु आन्तरिक भावों व वृत्तियों का भी किया जाता है।
10. अरस्तू ने चित्रकार अथवा किसी अन्य कलाकार की तरह कवि को भी अनुकर्ता माना है। अन्तर इतना है कि चित्रकार रूप और रंग के माध्यम से अनुकरण करता है जबकि कवि भाषा, लय और सामंजस्य के माध्यम से अनुकरण करता है।

> अरस्तू के काव्य की आलोचनाएँ -

1. अरस्तू ने कवि की निर्माण क्षमता पर तो बल दिया है पर जीवन के विभिन्न अनुभवों से निर्मित कवि की अन्तश्चेतना को महत्त्व नहीं दिया है।
2. अरस्तू ने आन्तरिक अनुभूतियों के भी अनुकरण की बात की है, जबकि इनका अनुकरण किया जाना असम्भव है।
3. डॉ. नगेन्द्र के अनुसार - "अरस्तू का दृष्टिकोण अभावात्मक रहा है तथा त्रास और करुणा का विवेचन उसकी चरम सिद्धि रही है।"

अरस्तू का विरेचन सिद्धान्त प्लेटो ने काव्य पर आरोप लगाया था कि काव्य हमारी वासनाओं का दमन करने के स्थान पर उनका पोषण करता है। अरस्तू का मत इससे भिन्न है। वे यह तो मानते हैं कि काव्य मानवीय वासनाओं का दमन नहीं करता, पोषण ही करता है, पर वे यह स्वीकार नहीं करते कि वह अनैतिक भावनाओं को उभारता है।

"ट्रैजिडि (त्रासदी) एक ऐसे कार्य का अनुकरण है जो गंभीर है, स्वतः पूर्ण है और जिसका एक निश्चित आयाम है। यह अनुकरण एक ऐसी भाषा में होता है जो कलात्मक अलंकारों से हर प्रकार से सुसज्जित रहती है। कलात्मक अलंकारों के ये विविध प्रकार के नाटक विभिन्न भागों में पाए जाते हैं। यह अनुकरण कार्य के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, न कि वर्णनात्मक रूप में। यह अनुकरण करुणा और भय के संचार से मनोभावों को उत्तेजित कर उनका उचित विरेचन या समार्जन करता है।"

इस प्रकार उन्होंने 'विरेचन' का प्रयोग त्रासदी के कार्य को स्पष्ट करने के संबंध में किया है। अपने 'राजनीति' नामक ग्रंथ में संगीत के प्रभाव का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा है कि संगीत का अध्ययन कई उद्देश्यों से किया जाना चाहिए -1. शिक्षा के लिए, 2. विरेचन (शुद्धि) के लिए तथा 3. बौद्धिक आनंद की उपलब्धि के लिए। उनकी मान्यता है कि 'करुणा' और 'त्रास' अथवा 'आवेश' कुछ व्यक्तियों में बड़े प्रबल होते हैं, किंतु हम देखते हैं कि धार्मिमक रागों के प्रभाव से वे शांत हो जाते हैं, मानो उन आवेगों का शमन या विरेचन हो गया हो। करुणा और त्रास से आविष्ट व्यक्ति इस विधि से एक प्रकार की शुद्धि का अनुभव करते हैं और उनकी आत्मा विशद् (निर्मल) और प्रसन्न हो जाती है।"

इस प्रकार अरस्तू करुणा एवं त्रास संबंधी मनोभावों के विरेचन की बात कहते हैं, क्योंकि वे इन्हें ही त्रासद मनोभाव मानते हैं तथा दोनों को एक-दूसरे का अन्योन्याश्रित भी मानते हैं। वे यह भी मानते हैं कि "मानव-मन में करुणा का उद्रेक अपात्र नायक के पतन के कारण और भय का उद्रेक अपने आत्मीय, स्वयं आदि की दुर्घटना के कारण होता है।"

विरेचन का शाब्दिक अर्थ - ग्रीक चिकित्सा में 'केथार्सिस' की चर्चा आती है - अरस्तू ने यह शब्द वहीं से ग्रहण किया। उसका कारण यह था कि एक तो अरस्तू के पिता मैसीडोनिया के राजा के चिकित्सक थे और दूसरी ओर एथेन्स आने से पूर्व अरस्तू स्वयं चिकित्सा की शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। हिन्दी में 'Katharsis' के लिए विरेचन' शब्द का प्रयोग किया जाता है, जो भारतीय चिकित्सा का शब्द है। वह उपचार के उसी रूप से संबंधित है, जो उपचार ग्रीक चिकित्सा में 'केथार्सिस' के नाम से जाना जाता था - अपच या कुपच आदि को दूर करने के लिए दस्तावर दवा देना। हिन्दी में कुछ लोगों ने इसके लिए 'रचन' तथा 'परिष्करण' आदि शब्दों का भी प्रयोग किया, किंतु अब 'विरेचन' ही प्रचलित है।

विरेचन का स्वरूप - व्याख्याकारों ने अरस्तू के 'विरेचन सिद्धान्त' के प्रायः तीन अर्थ किए हैं -

1. धर्मपरक अर्थ, 2. नीतिपरक अर्थ और 3. कलापरक अर्थ, पर डॉ. देवीशरण रस्तोगी की मान्यता है - "विरेचन से अरस्तू का मंतव्य, निश्चय ही, भावावेगों के किसी-न-किसी प्रकार के विरेचन से था। ट्रैजिडि को देखकर व्यक्ति जिस मनःस्थिति में आता है, वह आवेगों के विरेचन की ही देन होती है-शांत चित्त और आवेगों के दबाव से मुक्त।

अरस्तू के अनुसार ट्रैजिडि करुणा और त्रास के उद्रेक द्वारा तीन कार्य संपन्न करती है-नवीन दृष्टि देती है, कलास्वाद प्रदान करती है और चित्त को शांत करती है। इन्हीं तीन अवस्थाओं के आधार पर अरस्तू ट्रैजिडि की, काव्य की, उपयोगिता सिद्ध करना चाहते थे और प्लेटो के आरोप का विधिपूर्वक खंडन करना चाहते थे। प्रो. डेविश डेशी का मत है कि "अरस्तू को अपने इस उद्देश्य में सफलता भी प्राप्त होती है। वे तीनों अवस्थाओं के आधार पर प्लेटो के आरोप को सदा के लिए निरस्त भी कर देते हैं।"

विरेचन की व्याख्या - परवर्ती आचार्यों ने विरेचन के तीन अर्थ किए हैं-1. धर्मपरक 2. नीतिपरक, 3. कलापरक।

1. धर्मपरक अर्थ - भारत के समान ही, यूनान में भी नाटक का आरंभ धार्मिक उत्सवों से ही माना जाता है। प्रो. मरे के अनुसार वर्षारंभ पर दियान्युसस नामक देवता से संबद्ध उत्सव मनाया जाता था, जिसमें उससे यही प्रार्थना की जाती थी कि वह पाप, कुकर्मों से मुक्ति दिलाकर, आगामी वर्षों में विवेक व शुद्ध-हृदय प्रदान करके मृत्यु और कलुष का नाश करे। लिवि की मान्यता है कि अरस्तू के समय यूनान में त्रासदी का प्रवेश हो गया था, जिसके पीछे कोई कलात्मक उद्देश्य नहीं था, मात्र अंधविश्वास ही प्रमुख था। उनकी मान्यता थी कि यह उत्सव विपत्तियों का नाशक हैं। 361 ई.पू. में महामारी निवारणार्थ इसे अपनाया गया, अतः अरस्तू ने भी माना कि उद्दाम आवेग के शमन के लिए भी यूनान में उद्दाम संगीत का उपयोग होता था, जो पहले व्यक्ति के आवेग को बढ़ता था, फिर इसी से उद्दाम संगीत का उपयोग होता था, जो पहले व्यक्ति के आवेग को बढ़ाता था, फिर इसी से आवेग शनैः शनैः शांत होता था। अतः विकारों के शमन की बात अरस्तू के सामने थी, यही संभवतः विरेचन की प्रेरणा का आधार बना। प्रो. गिलबर्ट मरे की मान्यता है कि विरेचन का मूलार्थ है -बाह्य उत्तेजना और अंत में उसके शमन द्वारा आत्मिक शुद्धि और शांति।

2. नीतिपरक अर्थ - जर्मन विद्वान बारनेज ने विरेचन की नीतिपरक व्याख्या की, जिसका अनुकरण कारनेई तथा रेसिन ने भी किया। मनोविकार मानव में वासना-रूप में अवस्थित रहते हैं, जिनसे करुणा, त्रास, दुःखद मनोवेगों को दमित रखने के बजाय संतुलित रखना वांछित है। रंगमंच पर त्रासदी ऐसे दृश्य उपस्थित करती है, जिनसे मनोवेग अतिरंजित रूप में सामने आते हैं। पहले तो उनमें (प्रेक्षक में) त्रास व करुणा उभरती है, फिर उन्हीं कि उपशमित होने पर मानसिक शांति का आभास होने लगता है। क्योंकि त्रासदी इनके दंश का निराकरण करके सामंजस्य स्थापित करती है, अतः विरेचन का नीतिपरक अर्थ हुआ -"विकारों की उत्तेजना द्वारा संपन्न अंतर्वृत्तियों का समंजन अथवा मन की शांति एवं परिष्कृत मनोविकारों के उत्तेजन के उपरांत उद्वेग का शमन और तज्जन्य मानसिक विशदता।"

3. कलापरक अर्थ - प्रो. बूचर की मान्यता है कि "यह (विरेचन) केवल मनोविज्ञान अथवा निदान-शास्त्र के एक तथ्य विशेष का वाचक न होकर, एक कला-सिद्धांत का अभिव्यंजक है..... त्रासदी का कर्त्तव्य-कर्म केवल करुणा या त्रास के लिए अभिव्यक्ति का माध्यम प्रस्तुत करना नहीं है, वरन् इन्हें सुनिश्चित कलात्मक परितोष प्रदान करना है, इनको कला के माध्यम में ढालकर परिष्कृत तथा स्वच्छ करना है। प्रो. बूचर के अनुसार विरेचन का कलापरक अर्थ है - पहले मानसिक संतुलन और बाद में कलात्मक परिष्कार ।
डॉ. नगेन्द्र की मान्यता है कि विरेचन में कलास्वाद का सहज अंतरभाव नहीं है। विरेचन के द्वारा नवीन दृष्टि भी प्राप्त होती है और मनःशांति भी, किंतु उन दोनों को कलास्वाद तक खींच लाना गलत है। यह विरेचन के मंतव्य से सर्वथा । बाहर की वस्तु है। उनका कथन है, "विरेचन कलास्वाद का साधक तो अवश्य है, परंतु विरेचन में कलास्वाद का सहज अंतरभाव नहीं है, अतएव विरेचन सिद्धान्त को भावात्मक रूप देना कदाचित् न्याय नहीं हैं।"

विरेचन सिद्धान्त की समीक्षा -

अरस्तू का इस संबंध में विवेचन अपर्याप्त ही है, अतः अरस्तू के अभिप्राय को स्पष्ट करने के लिए अनुमान का आश्रय लेना ही पड़ेगा। अनुकरण सिद्धांत की भांति ही अरस्तू का यह विरेचन सिद्धान्त भी प्लेटो के काव्याक्षेप का ही प्रतिवाद रूप है। प्लेटो ने यह आक्षेप लगाया कि "कविता हमारी वासनाओं का दमन करने के स्थान पर उनका पोषण और सिंचन करती है।" इसी आक्षेप का उत्तर देते हुए अरस्तू ने कहा कि "त्रासदी में करुणा तथा त्रास के उद्रेक के द्वारा उन मनोविकारों का उचित विरेचन किया जाता है।" जहाँ प्लेटो ने कविता को भावनाओं की उत्तेजना का कारण मानकर उसे त्याज्य ठहराया, वहीं अरस्तू ने कविता को भावोत्तेजना तक सीमित न मानकर उत्तेजित भावनाओं के परिष्कार एवं शमन का भी कारण माना है। गुरू ने कविता को अशांति का मूल माना है, जबकि शिष्य कविता को शांतिदायक मानता है।
अरस्तू के व्याख्याताओं द्वारा की गई विरेचन की अर्थ-व्याप्ति संभवतः अभिप्रेत अर्थ से कुछ अधिक व्यापक है। इन व्याख्याओं में आवश्यकता से अधिक अर्थ भरने की योजना हुई है। गिल्बर्ट मरे ने यूनानी भाषा और पुरा विद्या से आक्रांत होने के कारण विरेचन का संबंध प्राचीन प्रथाओं से मानकर, एक आग्रहपूर्वक चिंतन का परिचय दिया। प्रो. बूचर ने विरेचन के दो पक्ष माने-1. अभावात्मक, 2. भावात्मक | मनोवेगों के उत्तेजन और तत्पश्चात् उनके शमन से उत्पन्न मनःशांति उसका अभावात्मक पक्ष है तथा उसके उपरांत कलात्मक परितोष उसका भावात्मक पक्ष है। यह दूसरा पक्ष संभवतः अरस्तू की मान्यताओं की परिधि से बाहर है।

विरेचन सिद्धांत की देन - विरेचन सिद्धांत की देन बहुविध है। पहली देन तो यही है कि उसी ने प्लेटो द्वारा लगाए गए आरोप का निराकरण करके सदा के लिए उस आरोप को निरस्त कर दिया। दूसरी देन यह है कि उसने गत कितने ही वर्षों के काव्यशास्त्रीय चिंतन को किसी-न-किसी रूप में अवश्य ही प्रभावित किया। उसके समर्थन और विरोध की कहानी ही, एक प्रकार से, पश्चिमी काव्यशास्त्र के विकास ही कहानी है। विरेचन सिद्धांत की एक महत्ता यह भी है कि उसे कभी-कभी समर्थ आलोचकों का भी बल मिला है,

जिनमें आई.ए. रिचर्ड्स महत्त्वूपर्ण है। रिचर्ड्स की समीक्षा का मूलाधार है -अंतर्वृत्तियों का समंजन और इस धारणा के मूल में विरेचन स्पष्टतः सक्रिय दीख पड़ता है। समंजन के द्वारा भी अंततः वही उपलब्ध होता है जो विरेचन का प्राप्य है-आवेग के अवांछित अंशों से छुटकारा, चित्त का शांत हो जाना, व्यर्थ के दबावों से मुक्त होने के बाद शांति का अनुभव करना, भले ही वह आनंदावस्था न हो, उस जैसी भी न हो, किंतु उसकी भूमिका अवश्य ही होना चाहिए।

त्रासदी-विवेचन नाटक को अरस्तू ने काव्य (साहित्य) का प्रमुख भेद मानते हुए उसका विवेचन किया है। भले ही उन्होंने नाटक को निश्चित परिभाषा नहीं की परंतु भेदों-प्रभेदों का बडा ही गंभीर, विशद् एवं स्वत:पूर्ण विश्लेषण किया है। अरस्तू नाटक के दो भेद मानते हैं- त्रासदी और कामदी। त्रासदी का लक्ष्य है-त्रास और करुण भावों की उबुद्धि तथा कामदी का लक्ष्य है - हर्ष अथवा हास्य का उद्बोधन । त्रासदी का उद्देश्य भव्यतर चित्रण होता है, जबकि कामदी में मानव जीवन का अपेक्षाकृत हीनतर चित्रण होता है। कामदी की विस्तृत विवेचना का अरस्तू में अभाव है, परंतु त्रासदी का विवेचन अत्यंत पुष्ट है।

त्रासदी की परिभाषा - "त्रासदी किसी गंभीर, स्वतः पूर्ण तथा निश्चित आयाम से युक्त कार्य की अनुकृति का नाम है, जिसका माध्यम नाटक के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न रूप से प्रयुक्त सभी प्रकार के आभरणों से अलंकृत भाषा होती है, जो समाख्यान रूप में न होकर कार्य व्यापार रूप में होती है और जिसमें करुणा तथा त्रास के उद्रेक द्वारा इन मनोविकारों का उचित विरेचन किया जाता है।"
मूलतः यह त्रासदी की परिभाषा न होकर त्रासदी साहित्य का वर्णन ही है, पर इसमें त्रासदी के अंगों का निरूपण अवश्य हो गया है। इस प्रकार गंभीर कार्य-व्यापारों और गंभीर चरित्रों का विवेचन ही अरस्तू की त्रासदी तथा गंभीर नाटक का सार है।

गंभीर कार्य-व्यापार से अरस्तू का तात्पर्य उस कार्य-व्यापार से है, जो त्रासदी के प्रेक्षकों अथवा पाठकों को व्याकुल कर दे। यह दर्द और दुःखों की एक ऐसी कहानी है, जो प्रेक्षकों और पाठकों के मन में करुणा और त्रास का उद्रेक करती है। मनुष्य के सभी क्रिया-कलापों, विचारों तथा भावनाओं को अरस्तू ने इस गंभीर कार्य-व्यापार के अंतर्गत माना है, जिनका त्रासदी में अनुकरण होता है। अरस्तू के कथनानुसार कहा जा सकता है -

1. त्रासदी किसी कार्य की अनुकृति है, व्यक्ति की अनुकृति नहीं।
2. यह कार्य गंभीर एवं स्वतः पूर्ण होता है। इसमें आधारभूत कथा का निश्चित आयाम होता है।
3. त्रासदी में कार्य (जीवन-व्यापार) का वर्णन नहीं होता अपितु प्रदर्शन होता है। इसमें जीवन के गंभीर पक्ष का चित्रण होता है।
4. त्रासदी की शैली अलंकृत होता है।
5. त्रास तथा करुणा की उद्बुद्धि और फिर इनका विरेचन, त्रासदी का प्रमुख उद्देश्य है।

त्रासदी के अंग - त्रासदी-विवेचन में, अरस्तू ने त्रासदी के छः अंग माने हैं - कथानक, चरित्र-चित्रण, पद-रचना, विचार-तत्त्व, संगीत और दृश्य-विधान जिनमें कथानक, चरित्र-चित्रण और विचार-तत्त्व अनुकरण के विषय हैं, दृश्य-विधान अनुकरण की विधि है और पद-रचना तथा गीत-संगीत अनुकरण के माध्यम हैं।

अलंकार

'अलंकार' शब्द की रचना 'अलम्+कार' के योग से हुई है। यहाँ 'अलम्' का अर्थ होता है- 'शोभा' तथा 'कार' का अर्थ होता है- 'करने वाला' । अर्थात् जो शोभा में वृद्धि करता है, उसे अलंकार कहते हैं। एक संज्ञा शब्द के रूप में इसका अर्थ 'आभूषण' होता है।

अलंकार की परिभाषा :

1. काव्यादर्शकार आचार्य दण्डी के अनुसार :

"काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते।"

अर्थात् काव्य की शोभा बढ़ाने वाले धर्म (शब्द या अर्थ) ही अलंकार कहलाते हैं।

2.काव्यालंकार सूत्रवृत्तिकार आचार्य वामन के अनुसार :

"काव्यशोभायाः कर्तारो धर्माः गुणाः।
तदतिशयहेतस्त्वलंकाराः ।।"

अर्थात् काव्य की शोभा में वृद्धि करने वाले धर्म गुण कहलाते हैं तथा उनकी अतिशयता (अत्यधिक प्रयोग) अलंकार है। दूसरे शब्दों में 'गुण' काव्य के शोभाकारक हैं तथा अलंकार इसके उत्कर्ष के हेतु हैं।

3. साहित्यदर्पणकार आचार्य वामन के अनुसार :

"शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्मा शोभातिशायिनः ।
रसादीनुपकर्वन्तोऽलङ्कारास्तेऽङ्गदादिवत्।।"

अर्थात् अलंकार काव्य शब्दार्थ के अस्थिर धर्म हैं। ये केवल शोभातिशायी हैं और उसी प्रकार कविता रूपी कामिनी के शरीर की शोभा बढ़ाते हैं, जिस प्रकार कटक, कुण्डल, हार आदि आभूषण कामिनी के शरीर की शोभा बढ़ाते हैं।

4. काव्यालंकारकार आचार्य भामह के अनुसार :"न कान्तमणि निर्भूषं विभति वनितामुखम् ।" अर्थात् नायिका (कामिनी) का सुन्दर मुख भी अलंकारों के बिना शोभा नहीं पाता है।

अलंकारों की निम्न विशेषताएँ होती है -

1. अलंकार काव्य सौन्दर्य का मूल है।
2. अलंकारों का मूल वक्रोक्ति या अतिशयोक्ति है।
3. अलंकार और अलंकार्य में कोई भेद नहीं है।

4. अलंकार काव्य का शोभाधायक धर्म है।
5. अलंकार काव्य का सहायक तत्त्व है।
6. स्वभावोक्ति न तो अलंकार है तथा न ही काव्य है अपितु वह केवल वार्ता है।
7. ध्वनि, रस, संधियों, वृत्तियों, गुणों, रीतियों को भी अलंकार नाम से पुकारा जा सकता है।
8. अलंकार रहित उक्ति श्रृंगाररहिता विधवा के समान है।

विशेष -

1. ऋग्वेद (वैदिक वाङ्मय) के बाद लौकिक वाङ्मय अन्तर्गत 'रामायण' एवं 'महाभारत' ग्रंथों में भी अलंकारों का व्यापक प्रयोग किया गया है।
2. लक्षण ग्रंथों के विवेचन की दृष्टि से आचार्य भरतमुनि के द्वारा स्वरचित नाट्यशास्त्र रचना में निम्नलिखित चार अलंकार स्वीकार किये गये थे -
(i) उपमा (ii) यमक (iii) रूपक (iv) दीपक
3. अग्निपुराण में कुल चौदह अलंकारों का उल्लेख प्राप्त होता है।
4. अलंकार सम्प्रदाय के वास्तविक प्रवर्तक आचार्य भामह माने जाते हैं। इनके द्वारा रचित 'काव्यालंकार' रचना में कुल 38 अलंकारों का विवेचन किया गया है।
5. दण्डी, उद्भट एवं वामन आदि आचार्यों के द्वारा कुल 52 अलंकारों का विवेचन किया गया।
6. बारहवीं शताब्दी (आचार्य मम्मट) तक आते-आते अलंकारों की संख्या 103 तक पहुंच गई।
7. तदुपरान्त सत्रहवीं शताब्दी में पंडितराज जगन्नाथ के द्वारा स्वरचित 'रसगंगाधर' रचना में कुल 180 अलंकार स्वीकृत किये।
8. दण्डी अलंकारों के मूल में अतिशयोक्ति को मानते हैं। भामह ने जिसे 'वक्रोक्ति' कहा है, दण्डी ने उसे 'अतिशयोक्ति' कहा है।

1. यमक अलंकार

यमक अलंकार - यमक का अर्थ है - युग्म या जोडा। जहाँ शब्दों की आवृत्ति अर्थात् एक शब्द एक से अधिक बार प्रयुक्त हो और उसका अर्थ अलग-अलग हो, वहाँ यमक अलंकार होता है।
उदाहरण -
1. कनक-कनक तें सौ गुनी, मादकता अधिकाय। वा खाये बौराय जग, वा पाये बौराय ।।"
2. "सारंग ले सारंग उड्यो, सारंग पुग्यो आय। जे सारंग सारंग कहे, मुख को सारंग जाय ।।" यमक अलंकार के भेद - यमक अलंकार के मुख्यतः निम्न दो भेद माने जाते है - (i) अभंग यमक (ii) सभंग यमक (अ) अभंग यमक - जब किसी पद में शब्द के टुकड़े किये बिना ही उसकी आवृत्ति दिखलायी पड जाती है तो वहाँ अभंग यमक अलंकार माना जाता है।
उदाहरण

- "भजन कह्यो तातै भज्यौ, भज्यौ न एको बार।
- दूर भजन जातै कह्यो, सो तू भज्यौ गवार ।।"

- सजना है मुझे सजना के लिए।
- दीपक ले दीपक चली, कर दीपक की ओट ।
- जे दीपक दीपक नहीं, दीपक करता चोट ।।
- "दीरघ सांस न लेई दुःख, सुख सोई न मूल ।
- दई-दई क्यों करत है, दई-दई कबूल ।।"
- "तौ पर वारौं उरबसी, सुनु राधिके सुजान।
- तू मोहन के उरबासी, ह्वै उरबसी समान ।।"

(ब) सभंग यमक - जब किसी पद में किसी शब्द के टुकड़े करने पर ही अन्य शब्द के समान आवृत्ति दिखलायी पडती है तो वहाँ सभंग यमक अलंकार माना जाता है।

उदाहरण -

1. आयो सखि सावन विरह सरसावन, लग्यो है बरसावन, सलिल चहुँ की ओर तें।
2. जगमग जगमग हम जग का मग, ज्योतित प्रति पग करते जगमग।
3. यों परदे की इज्जत परदेसी के हाथ बिकानी थी।
4. कुमोदिनी मानस मोदिनी कहीं।
5. "मचलते चलते ये जीव हैं, दिवस में वस में रहते नहीं।
विमलता मल ताप हटा रही, विचरते चरते सुख से सभी।।'

श्लेष अलंकार

श्लेष अलंकार - जब किसी पद में प्रयुक्त एक ही शब्द के अलग-अलग सन्दर्भ के अनुसार अलग-अलग अर्थ प्रयुक्त हो जाते हैं तो वहाँ श्लेष अलंकार माना जाता है।

श्लेष शब्द 'शिलष्+अण् (अ)' के योग से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ होता है- 'चिपकना' अर्थात् जहाँ एक ही शब्द से प्रसंगानुसार अनेक अर्थ प्रकट होते हैं, वहाँ श्लेष अलंकार होता है;

उदाहरण -

1. “रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून ।
   पानी गये न ऊबरे, मोती, मानस, चून।।"
2. "चरण धरत चिन्ता करत भावत नींद न सोर।
   सुबरण को ढूँढ़त फिरै, कवि कामी अरु चोर ।।"
3. "रहिमन जे गति दीप की, कुल कपूत गति सोय ।
   बारै उजियारो करै, बढ़े अँधेरो होय ।।"

श्लेष अलंकार के भेद :- श्लेष अलंकार के प्रमुखतः दो भेद माने जाते है :

(अ) अभंग श्लेष

(ब) सभंग श्लेष

(अ) **अभंग श्लेष :**

जब किसी पद में प्रयुक्त श्लिष्ट शब्द के टुकड़े किये बिना ही शब्दकोश या लोक-प्रसिद्धि अर्थ के अनुसार अलग-अलग अर्थ प्रयुक्त हो जाते हैं तो वहाँ अभंग श्लेष अलंकार माना जाता है।

उदाहरण -

1. "नर की अरु नलनीर की, गति एकै करि जोय ।
   जेतो नीचो वै चले, तेतो ऊँचो होय ।।"
2. "मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोय।
   जा तन की झाँई परै, स्यामु हरित दुति होय।।"
3. इन्द्रनील मणि महा चषक था, सोम रहित उलटा लटका।
4. "जहाँ गाँठ तहाँ रस नहीं, यह जानत सब कोय ।
   मद्येतर की गाँठ में, गाँठ गाँठ रस होय।।"
5. "नवजीवन दो घनश्याम हमें।"
6. "लाग्यो सुमनु वै है सफलु, आतप रोसु निवारि।
   बारी बारी आपनी सींचि सुहृदता वारि।।"

(ब) सभंग श्लेष :

जब किसी पद में किसी श्लिष्ट शब्द के टुकड़े करने पर ही एक से अधिक अर्थ प्रकट होते हैं तो वहाँ सभंग श्लेष अलंकार माना जाता है।

उदाहरण -

1. "संतत सुरानीक हित जेही। बहुरि सक्र बिनवहु तेही।"
2. “चिरजीवौ जोरी जुरै, क्यों न सनेह गम्भीर।
   को घटि ए वृषभानुजा वे हलधर के बीर ।।"
3. "अजौं तौना ही रह्यौ, श्रुति सेवत इक अंग।
   नाक बास बेसरि लह्यौ, बसि मुकुतन के संग ।।"

रूपक अलंकार

रूपक का अर्थ- रूप देना

रूपक अलंकार :- जब किसी पद में उपमान एवं उपमेय में कोई भेद नहीं रह जाता है अर्थात् उपमेय में उपमान का निषेधरहित(अभेद आरोप) आरोपण कर दिया जाता है इसमें वाचक और साधारण धर्म शब्द नहीं होते है। वहाँ रूपक अलंकार माना जाता है।

आरोप क्या है ?

जब एक वस्तु को दूसरी वस्तु के साथ इस प्रकार रखा जाए, कि दोनों में कोई भेद न रहे। अर्थात उपमेय उपमान का रुप धारण कर लेता है।

उदाहरण -

- मुख कमल है। (रूपक अलंकार)

-मुख कमल के समान सुन्दर है (उपमा अलंकार)

2."अवधेस के बालक चारि सदा, तुलसी मन-मंदिर में विहरें।"

रूपक अलंकार के भेद :- रूपक अलंकार के मुख्यतः दो भेद होते है :

(1)अभेद रूपक

(2) तद्रुप रूपक

अभेद रूपक में उपमेय और उपमान एक दिखाये जाते हैं, उनमें कोई भी भेद नहीं होता है; जबकि तद्रुप रूपक में उपमान, उपमेय का रूप तो धारण करता है, पर एक नहीं हो पाता। उसे 'और' या 'दूसरा' कहकर व्यक्त किया जाता है।

(1) अभेद रूपक :

अभेद रूपक के भी पुनः निम्न तीन उपभेद कर दिये जाते है:

(अ) सांग रूपक

(ब) निरंग रूपक

(स) परम्परित रूपक

(अ) **सांग रूपक :**

जब किसी पद में उपमान का उपमेय में अंगों या अवयवों सहित आरोप किया जाता है तो वहाँ सांगरूपक अलंकार माना जाता है। दूसरे शब्दों में जब उपमेय को उपमान बनाया जाये और उपमान के अंग भी उपमेय के साथ वर्णित किये जाएं तब सांगरूपक अलंकार होता है।

इस रूपक में जिस आरोप की प्रधानता होती है, उसे 'अंगी' कहते हैं। शेष आरोप गौण रूप से उसके अंग बन कर आते है।

सामान्य पहचान के लिए जब किसी पद में एक से अधिक स्थानों पर रूपक की प्राप्ति होती है तो वहाँ सांगरूपक अलंकार माना जाता है।

उदाहरण -

1. "उदित उदयगिरि- मंच पर, रघुवर बाल-पतंग।
   बिकसे संत - सरोज सब, हरषे लोचन-मुंग।।"
2. "बीती विभावरी जाग री।।
   अम्बर-पनघट में डूबो रही तारा-घट उषा नागरी।।"
3. "नारि-कुमुदिनी अवध सर रघुवर विरह दिनेश।
   अस्त भये प्रमुदित भई, निरखि राम राकेश।।"
4. "रनित भंग घंटावली, झरत दान मधुनीर।
   मंद-मंद आवतु चल्यो, कुंजर कुंज समीर ।।"
5. "छंद सोरठा सुंदर दोहा। सोई बहुरंग कमल कुल सोहा।।
   अरथ अनूप सुभाव सुभासा | सोई पराग मकरंद सुवासा।।" "
6. बढ़त-बढ़त सम्पत्ति सलिल मन सरोज बढ़ि जाय।
   घटत-घटत फिरि ना घटै, तरु समूल कुम्हलाय ।।"
7. "जितने कष्ट कंटकों में है, जिनका जीवन सुमन खिला।
   गौरव ग्रंथ उन्हें उतना ही, यत्र तत्र सर्वत्र मिला।।"

(ब) निरंग रूपक :

जब किसी पद में अंगों या अवयवों से रहित उपमान का उपमेय में आरोपण किया जाता है तो वहाँ निरंग रूपक अलंकार होता है।

पहचान के लिए जब किसी पद में केवल एक जगह रूपक अलंकार की प्राप्ति होती है तो वहाँ निरंग रूपक अलंकार माना जाता है।

उदाहरण :

1. "चरण कमल मृदु मंजु तुम्हारे।"
2. "प्रियपति वह मेरा प्राण प्यारा कहाँ है?
   दुख-जलनिधि डूबी का सहारा कहाँ है।"
3. "अवधेश के बालक चारि सदा, तुलसी मन-मन्दिर में विहरें।।"
4. "हरि मुख पंकज, ध्रुव धनुष, खंजन लोचन मित।
   बिंब अधर कुंडल मकर, बसे रहत मो चित्त।।"

(स) **परम्परित रूपक :**

जब किसी पद में कम से कम दो रूपक अवश्य होते हैं तथा उनमें से एक रूपक के द्वारा दूसरे रूपक की पुष्टि होती हैं तो वहाँ परम्परित रूपक अलंकार माना जाता है।

पहचान के लिए जब किसी पद में कम से कम दो जगह आरोपण किया जाता हैं तथा उनमें एक आरोप दूसरे आरोप का कारण बनता है अथवा जब एक रूपक को हटा लिये जाने पर दूसरा रूपक स्वतः लुप्त हो जाता है तो वहाँ परम्परित रूपक अलंकार माना जाता है।

उदाहरण -

1. "जय जय जय गिरिराज किशोरी।
   जय महेश मुख चन्द्र चकोरी।।"
2. "राम कथा सुन्दर करतारी। संसय विहग उड़ावन हारी।।"
3. "राम कथा कलि-पन्नग भरनी। पुनि विवेक पावक कहँ अरनी।।"
4. "आशा मेरे हृदय मरु की मंजु मंदाकिनी है।"
5. "बाडव ज्वाला सोती थी, इस प्रणय सिंधु के तल में।
   प्यासी मछली सी आँखें थीं, विकल रूप के जल में।।"

(2) **तद्रुप रूपक :**

जब किसी पद में उपमेय को उपमान के दूसरे रूप में स्वीकार किया जाता है; वहाँ तद्रुप रूपक अलंकार माना जाता है।

पहचान के लिए जब किसी पद में रूपक के साथ दूसरा, दूसरी, दूसरो, दूजा, दूजी, दूजो, अपर अथवा इनके अन्य समानार्थी शब्दों का प्रयोग हो रहा हो तो वहाँ तद्रुप रूपक अलंकार माना जाता है।

उदाहरण -

1. "अपर धनेश जनेश यह, नहिं पुष्पक आसीन।"
2. "अवधपुरी अमरावती दूजी।।"
3. "दीपति वा मुखचन्द की, दिपति आठहूँ जाम।

उपमा अलंकार

उपमा अलंकार :

जब किसी पद में दो पदार्थों की समानता को व्यक्त किया जाता है अर्थात् किसी एक सामान्य पदार्थ को किसी प्रसिद्ध पदार्थ के समान मान लिया जाता है तो वहाँ उपमा अलंकार माना जाता है।

शाब्दिक विश्लेषण की दृष्टि से उपमा शब्द 'उप+मा' के योग से बना है। यहाँ 'उप' का अर्थ होता है- 'समीप' तथा 'मा' का अर्थ होता है- 'मापना' या 'तोलना' अर्थात् समीप रखकर दो पदार्थों का मिलान करना 'उपमा' के नाम से जाना जाता है।

उदाहरण -
1. "चन्द्रमा-सा कान्तिमय मुख रूप दर्शन है तुम्हारा।"

उपमा या अर्थालंकारों के अंग :

किसी भी सादृश्यमूलक अर्थालंकार के मुख्यतः निम्न चार अंग माने जाते हैं:___
(अ) उपमेय (ब) उपमान (स) वाचक शब्द (द) साधारण धर्म (अ)

उपमेय :
कवि जिस पदार्थ का वर्णन करता है, उस सामान्य पदार्थ को 'उपमेय' या 'प्रस्तुत पदार्थ' कहा जाता

उदाहरण -
उपर्युक्त पद में कवि ने 'मुख' का वर्णन करते हुए उसे चन्द्रमा के समान माना है; अतः यहाँ 'मुख' उपमेय है।

(ब) उपमान :
कवि अपने द्वारा वर्णित सामान्य पदार्थ की जिस प्रसिद्ध पदार्थ से समानता व्यक्त करता है अर्थात् जो उदाहरण प्रस्तुत करता है, उसे 'उपमान' या 'अप्रस्तुत पदार्थ' कहा जाता है।

उदाहरण -
उपर्युक्त उदाहरण में कवि ने 'मुख' की समानता (सुन्दरता) 'चन्द्रमा के साथ प्रकट की है। अतः यहाँ 'चन्द्रमा' उपमान है।

नोट:- संस्कृत में उपमेय को 'प्राकृत' तथा उपमान को 'सम' भी कहते है।

(स) वाचक शब्द :

समानता के अर्थ को प्रकट करने के लिए जिन शब्दों का प्रयोग किया जाता है, वे वाचक शब्द कहलाते है। सा, सी, से, सम, सरिस, इव, जिमि, सदृश, लौं इत्यादि उपमा वाचक शब्द माने जाते है।

उदाहरण -
उपर्युक्त उदाहरण में 'चन्द्रमा सा' पद में 'सा' वाचक शब्द है।

(द) साधारण धर्म :

उपमेय (प्रस्तुत पदार्थ) तथा उपमान (अप्रस्तुत पदार्थ) दोनों में जो समान विशेषता या समान लक्षण या समान गुण पाये जाते हैं, उसे साधारण धर्म कहा जाता है।

उदाहरण -
उपर्युक्त उदाहरण में 'चन्द्रमा' (उपमान) व 'मुख' (उपमेय) दोनों को 'कान्तिकाय बताया गया है। अतः यहाँ 'कान्तिमय' साधारण धर्म है।
उपमा अलंकार के भेद :- 'उपमा' के मुख्यतः निम्न दो भेद माने जाते है:
(1) पूर्णोपमा (पूर्णा+उपमा)
(2) लुप्तोपमा (लुप्ता+उपमा)

(1) पूर्णोपमा :

उपमा अलंकार के जिस पद में उपमा के चारों अंग मौजूद रहते हैं; वहाँ पूर्णोपमा अलंकार माना जाता
उदाहरण -
1. "राम लखन सीता सहित, सोहत पर्ण-निकेत।
   जिमि बस वासव अमरपुर, सची जयन्त समेत।।"
2. "मोम सा तन घुल चुका, अब दीप सा दिल जल रहा है।"
3. "मुख मयंक सम मंजु मनोहर"
4. "पीपर पात सरिस मन डोला।"
5. "हँसने लगे तब हरि अहा। पूर्णेन्दु सा मुख खिल गया।।"
6. "मधुकर सरिस संत गुनग्राही।"

(2) **लुप्तोपमा** :

उपमा अलंकार के जिस पद में उपमा के चारों अंगों में से कोई भी एक अंग, दो अंग या तीन अंग लुप्त हो जाते हैं तो वहाँ लुप्तोपमा अलंकार माना जाता है।

उदाहरण -

1. "कोटि कुलिस सम वचन तुम्हारा।" (धर्म लुप्ता)
2. "कुलिस कठोर सुनत कटु बानी।
   बिलपत लखन सिय सब रानी।।" (वाचक लुप्ता)
3. "नई लगनि कुल की सकुच, विकल भई अकुलाई
   दूहूँ ओर ऐंची फिरिति, फिरकी लौं दिनु जाइ।।" (उपमेय लुप्तोपमा)
4. "तीन लोक झाँकी, ऐसी दूसरी न झाँकी जैसी।
   झाँकी हम झाँकी, बाँकी जुगलकिसोर की।।" (उपमान लुप्ता)
5. 'चंचल हैं ज्यों मीन, अरुनारे पंकज सरिस ।
   निरखि न होय अधीन, ऐसो नरनागर कवन ।।" (उपमेय लुप्तोपमा)
6. "तुम्हारी आँखों का आकाश, सरल आँखों का नीलाकाश।
   खो गया मेरा मन अनजान, मृगेक्षिणी इनमें खग अज्ञान ।।" (उपमान लुप्तोपमा),
7. "नील सरोरुह स्याम, तरुन अरुन बारिज नयन।
   करउ सो मम उर धाम, सदा छीर सागर सयन ।।"

उपमा के अन्य भेद

(1) मालोपमा :

जब किसी पद में एक ही उपमेय के लिए अनेक उपमानों का प्रयोग कर दिया जाता है तो वहाँ मालोपमा अलंकार माना जाता है।

उदाहरण -

1. "काम-सा रूप प्रताप दिनेश-सा। सोम-सा शील है राम महीप का।।"
2. "रूप जाल नंदलाल के, परि कहुँ बहुरि छुटै न ।
   खंजरीट मृग-मीन से, ब्रज बनितन के नैन।।"
3. "चन्द्रमा सा कान्तिमय, मृदु कमल सा कोमल महा।
   नवकुसुम सा हँसता हुआ, प्राणेश्वरी का मुख रहा।"
4. "यह विचार की पुतलिका सी, विषम जगत की प्रतिछाया सी।
   विश्व चित्र सी सरित लहरी सी, जीवन सी छल की माया सी।।"

(2) **उपमेयोपमा** :

जब किसी पद में उपमेय और उपमान दोनों की एक-दूसरे से उपमा दी जाती है अर्थात् एक बार उपमेय को उपमान के समान तथा पुनः उपमान को उपमेय के समान मान लिया जाता है तो वहाँ उपमेयोपमा अलंकार माना जाता है।

उदाहरण -

1. "तो मुख सोहत है ससि सो, अरु ससि सोहत है तो मुख जैसो।"
2. "सब मन रंजन हैं खंजन से नैन आली, नैनन से खंजन हू लागत चपल हैं।

मीनन से महा मनमोहन हैं मोहिबे को, मीन इन ही से नीके सोहत अमल हैं।
मृगन के लोचन से लोचन हैं रोचन ये, मृगदृग इनहीं से सोहे पलापल हैं।
'सूरति निहारि देखी नीके ऐरी प्यारी जू के, कमल से नैन अरु नैन से कमल हैं।।"

(3) **रशनोपमा** :
जब किसी पद में उपमान या उपमेय उत्तरोत्तर उपमेय या उपमान होते जाते हैं तो वहाँ रशनोपमा अलंकार माना जाता है।

'रशनोपमा' शब्द 'रशन+उपमा' के योग से बना है। 'रशना' का शाब्दिक अर्थ होता है-करधनी अर्थात् कमर में बाँधा जाने वाला आभूषण (तागड़ी)। जिस प्रकार करधनी में अनेक कड़ियों से गूंथी हुई लड़ियाँ होती हैं, वैसे ही जब किसी पद में उपमेय और उपमान की एक श्रृंखला सी बना दी जाती है तो वहाँ 'रशनोपमा' अलंकार माना जाता है।
उदाहरण -
1. 'बच सी माधुरि मूररि, मूरति सी कलकीरति।
कीरति लौं सब जगत में, छाइ रही तव नीति।।"

उत्प्रेक्षा अलंकार
उत्प्रेक्षा अलंकार - जब किसी पद में उपमेय को उपमान के समान तो नहीं माना जाता है, परन्तु यदि उपमेय में उपमान की सम्भावना प्रकट कर दी जाती है, तो वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार माना जाता है।

उत्प्रेक्षा वाचक शब्द -
हिन्दी के पदों में 'मानो, मनु, मनहु, जानो, जनु, जनहु' इत्यादि शब्द उत्प्रेक्षा वाचक शब्द माने जाते हैं।

उत्प्रेक्षा अलंकार के भेद - उपमेय में उपमान की सम्भावना वस्तु रूप में, हेतु रूप में और फल रूप में की जा सकती है। इस आधार पर उत्प्रेक्षा के मुख्यतः तीन भेद माने जाते हैं :
1. वस्तूत्प्रेक्षा
2. हेतूत्प्रेक्षा
3. फलोत्प्रेक्षा

(अ) **वस्तूत्प्रेक्षा (वस्तु+उत्प्रेक्षा)** - जब किसी पद में एक वस्तु में दूसरी वस्तु की सम्भावना प्रकट की जाती है, वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार माना जाता है। इसे 'स्वरूपोत्प्रेक्षा' भी कहा जाता है।
उदाहरण -

1."कहती हुई यों उत्तरा के, नेत्र जल से भर गये।

हिम के कणों से पूर्ण मानो, हो गये पंकज नये।।"

प्रस्तुत पद में आँसुओं से भरी उत्तरा की आँखों में (एक वस्तु, उपमेय) कमल पर जमा हिमकणों (अन्य वस्तु, उपमान) की संभावना को प्रकट किया जा रहा है। अतः यहाँ वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है।

2. 'सोहत ओढ़े पीत पट स्याम सलोने गात।
मनों नीलमणि सैल पर, आतप पर्यो प्रभात ।।"

उपमेय - पीताम्बरधारी सांवले शरीर वाले श्रीकृष्ण

उपमान - नीलमणि पर्वत पर प्रातःकाल पड़ती धूप

उत्प्रेक्षा वाचक शब्द - मनों

यहाँ पीताम्बर पहने हुए भगवान श्याम (कृष्ण) की शोभा में (उपमेय) नीलमणि पर्वत पर प्रातःकाल पड़ती सूर्य की आभा (उपमान) की संभावना प्रकट की गई है। इस प्रकार एक वस्तु में अन्य वस्तु की संभावना होने के कारण यहाँ वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है।

3. "झीने पट में झुलमुली, झलकति ओप अपार ।
सुरतरु की मनु सिंधु में, लसति सपल्लव डार ||"

उपमेय - झीने (पतले या पारदर्शी) वस्त्रों से झलकती नायिका के शरीर की शोभा ।

उपमान - स्वच्छ सिंधु में पत्तों सहित झलकती देववृक्ष की डाली

उत्प्रेक्षा वाचक शब्द - मनु

4. "नील परिधान बीच सुकुमार, खुला रहा मृदुल अधखुला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मेघवन बीच गुलाबी रंग।।"

उपमेय - नीले वस्त्रों में से दिखाई दे रहे कामायनी के कोमल अंग

उपमान - बादलों के बीच से चमकती गुलाबी रंग की बिजली

उत्प्रेक्षा वाचक शब्द - ज्यों

5. "अति कटु वचन कहति कैकई। मानहु लोन जरै पर देई।"

उपमेय - कैकेयी के कटु वचन

उपमान - जले पर नमक छिड़कना

उत्प्रेक्षा वाचक शब्द - मानहु

6. "स्वर्ण शालियों की कलमें थीं, दूर दूर तक फैल रहीं।
शरद इन्दिरा के मन्दिर की, मानो कोई गैल रही।।"

उपमेय - दूर-दूर तक फैली स्वर्ण-शालियों की कलमें।

उपमान - शरद ऋतु की शोभा

उत्प्रेक्षा वाचक शब्द - मानो

7. "लसत मंजु मुनि मंडली, मध्य सीय रघुचंद्र |
ज्ञान सभा जनु तनु धरे, भगति सच्चिदानंद ।।"

उपमेय - राम व सीता के मध्य बैठी मुनि-मंडली

उपमान - सच्चिदानंद द्वारा शरीर रूप धारण करना

उत्प्रेक्षा वाचक शब्द - जनु

(ब) हेतूत्प्रेक्षा (हेतु+उत्प्रेक्षा) - जब किसी पद में अहेतु की हेतु रूप में सम्भावना या कल्पना प्रकट की जाती है अर्थात् जो वास्तविक कारण नहीं है, पर उसी में कारण खोजने की कल्पना की जाती है, तो वहाँ हेतूत्प्रेक्षा अलंकार माना जाता है।

उदाहरण -

1. "मोर मुकुट की चन्द्रिकनु, यों राजत नंदनंद।
मनु ससि सेखर की अकस, किय सेखर सतचंद।।" ।

बिहारी द्वारा रचित प्रस्तुत पद में नायिका की सखी नायिका से मोर-मुकुटधारी श्रीकृष्ण की शोभा का वर्णन करके उसके चित्त में उस अद्भुत शोभा को देखने की लालसा उत्पन्न करना और उससे अभिसार कराना चाहते हुई कहती है-"मानो श्रीकृष्ण ने भगवान् शंकर (ससिसेखर) से ईर्ष्या करने के लिए (ईष्यावश) अपने मस्तक पर सैंकडों चन्द्रमा धारण कर लिये हैं।"

यहाँ भी अहेतु में हेतु की संभावना मात्र है, अतः यहाँ हेतूत्प्रेक्षा अलंकार है।

2. "मनो कठिन आँगन चली, ताते राते पाय ।।"

यहाँ नायिका के पैर प्रकृति-प्रदत्त लाल (राते) हैं, पर कवि उनमें कठोर आँगन पर पैदल चलने के कारण को सम्भावित कर रहा है, अतः कारण खोजने का प्रयास मात्र होने के कारण यहाँ हेतुत्प्रेक्षा अलंकार है।

3. "घिर रहे थे धुंघराले बाल, अंस अवलंबित मुख के पास।
नील घन शावक से सुकुमार, सुधा भरने को विधुके पास।।"

अर्थात् कामायनी के धुंघराले बाल उसके मुख तथा कंधे तक फैले हुए थे, जिनको देखकर ऐसा लगता था मानो नीलमेघ के बालक अमृतपान करने के लिए चन्द्रमा के पास आ गये हों। यहाँ भी जो कारण बतलाया गया है, उसमें कोई वास्तविकता नहीं होकर कल्पना मात्र है। अतः यहाँ हेतूत्प्रेक्षा अलंकार है।

(स) फलोत्प्रेक्षा (फल+उत्प्रेक्षा) - जब किसी पद में अफल में फल की कल्पना की जाती है अर्थात् जो फल नहीं है, उसे फल के रूप में कल्पित किया जाता है तो वहाँ फलोत्प्रेक्षा अलंकार माना जाता है।

उदाहरण -

1. "बाजि बली रघुबंसिन के मनों सूरज के रथ चूमन चाहै" उपमेय - रघुवंश के बलवान घोडे उपमान - सूरज के रथ को चूमने की इच्छा वाचक शब्द - मनों

2. "बढ़त ताङ को पेङ यह, मनु चूमन को आकास।"

अर्थात् शायद आकाश को चूम लेने की आशा की इच्छा से यह ताङ का पेङ इतना ऊँचा बढ़ गया है। यहाँ आकाश को छूने (चूमने) के फल की इच्छा से ताङ का ऊँचा बढ़ना विसंगत सा लगता है, किन्तु कवि ने

उसे फल रूप में चित्रित किया है। अतः अफल में फल की संभावना करने के कारण यहाँ फलोत्प्रेक्षा अलंकार है।

3. "विकसि प्रात में जलज ये, सरजल में छबि देत।
पूजत भानुहि मनहु ये, सिय मुख समता हेत।।" प्रस्तुत पद में कमलों के सरोवर में खिलने की शोभा इस दोहे का वर्ण्य विषय है, जिसमें अफल में फल की संभावना का रूप देते हुए कवि कहता है कि 'वे कमल मानो सीताजी के मुख की समता प्राप्त करने के लिए भानु (सूर्य) की पूजा करते हैं।"
वस्तुतः कमलों का सरोवर में खिलना स्वाभाविक है, किन्तु उसमें सूर्यपूजा के कार्य का विधान करके अफल में फल की संभावना की गई है, अतः यहाँ फलोत्प्रेक्षा अलंकार है।

4. "तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये।
झूके कूल सों जल परसन, हिल मनहुँ सुहाये।।"

यहाँ वृक्ष स्वाभाविक रूप से यमुना के जल की ओर झुक रहे हैं, पर कवि यहाँ यह कहना चाहता है कि वे जलस्पर्श के फल के लिए झुके हुए हैं। इस प्रकार अफल में फल की संभावना होने के कारण यहाँ फलोत्प्रेक्षा अलंकार है।
5. "खंजरीट नहिं लखि परत, कछु दिन साँची बात।
बाल दृगन सम होन को, करत मनो तप जात ।।"
प्रस्तुत पद में 'कुछ समय के लिए खंजन पक्षियों का न दिखाई देना' जैसे वर्ण्य विषय को लेकर कवि ने उसकी अदृश्यता का कारण यह सम्भावित किया है कि वे मानो उस सुंदर बाला (नायिका) के नेत्रों की शोभा प्राप्त करने के लिए हिमालय पर तपस्या करने के लिए चले गये हैं। कवि की यह कल्पना इस पद में फलोत्प्रेक्षा को प्रकट कर रही है।

सन्देह अलंकार

सन्देह अलंकार - जब किसी पद में समानता के कारण उपमेय में उपमान का सन्देह उत्पन्न हो जाता है और यह सन्देह अन्त तक बना रहता है तो वहाँ सन्देह अलंकार माना जाता है।
उदाहरण -
1. वन देवी समयूँ तो वह होती है भोली भाली,
तुम्ही बताओ अतः कौन तुम, हे रमणी! रहस्यवाली।।"
प्रस्तुत पद में रूपपरिवर्तिता शूर्पणखा को देखकर लक्ष्मणजी यह निर्णय नहीं कर पा रहे हैं कि वह किसी मानव की स्त्री है अथवा किसी दानव की स्त्री है अथवा कोई वनदेवी है तथा अन्त तक भी अनिर्णय की स्थिति बनी हुई है, अतः यहाँ सन्देह अलंकार है।

2. "सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है।

सारी ही की नारी है कि नारी ही की सारी है।।"

महाभारत काल में द्रौपदी के चीर हरण के समय उसकी बढ़ती साडी (चीर) को देखकर दुःशासन के मन में यह संशय उत्पन्न हो रहा है कि यह साडी के बीच नारी (द्रौपदी) है या नारी के बीच साडी है अथवा साडी नारी की बनी हुई है या नारी साडी से निर्मित है।

इस प्रकार अन्त तक संशयात्मक स्थिति उत्पन्न होने के कारण यहाँ सन्देह अलंकार है।

3. "ये हैं सरस ओस की बूंदें या हैं मंजुल मोती।।" प्रस्तुत पद में हंसिनी अपने सामने छायी ओस की बूंदों को देखती है, परन्तु सादृश्यकता के कारण वह यह निर्णय नहीं कर पा रही है कि ये 'ओस की बूंदें' हैं अथवा सुन्दर मोती हैं। इस प्रकार अन्त तक संशय बने रहने के कारण यहाँ सन्देह अलंकार है।

भ्रान्तिमान अलंकार

भ्रान्तिमान अलंकार - जब किसी पद में किसी सादृश्य विशेष के कारण उपमेय में उपमान का भ्रम उत्पन्न हो जाता है तो वहाँ भ्रान्तिमान अलंकार माना जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब किसी पदार्थ को देखकर हम उसे उसके समान गुणों या विशेषताओं वाले किसी अन्य पदार्थ के रूप में मान लेते हैं तो वहाँ भ्रान्तिमान अलंकार माना जाता है।

उदाहरण -

- "ओस बिन्दु चुग रही हंसिनी मोती उनको जान।" प्रस्तुत पद में हंसिनी को ओस बिन्दुओं (उपमेय) में मोती (उपमान) का भ्रम उत्पन्न हो रहा है अर्थात् वह ओस की बूंदों को मोती समझकर चुग रही हैं, अतएव यहाँ भ्रान्तिमान अलंकार है।
- "भ्रमर परत शुक तुण्ड पर, जानत फूल पलास।
- शुक ताको पकरन चहत, जम्बु फल की आस ।।" .
- "नाक का मोती अधर की कान्ति से, बीज दाडिम का समझकर भ्रान्ति से।
- देखकर सहसा हुआ शुक मौन है, सोचता है अन्य शुक यह कौन है।।" यहाँ नाक के आभूषण के मोती में अनार (दाडिम) के बीज का भ्रम उत्पन्न हो रहा है, अतः यहाँ भ्रान्तिमान अलंकार है।
- "कपि करि हृदय विचारि, दीन्हि मुद्रिका डारि तब ।
- जानि अशोक अंगार, सीय हरषि उठि कर गहेउ ।।" यहाँ सीता को मुद्रिका में अशोक पुष्प (अंगार) का भ्रम उत्पन्न हो रहा है, अतः यहाँ भ्रान्तिमान अलंकार है।
- विधु वदनिहि लखि बाग में, चहकन लगे चकोर।
- वारिज वास विलास लहि, अलिकुल विपुल विभोर ।।"
- प्रस्तुत पद में किसी चन्द्रमुखी नायिका को देखकर चकोरी की उसके मुख में चन्द्रमा का भ्रम हो रहा है तथा उसके वदन में कमल की सुगंध पाकर (समझकर) भ्रमर आनंद विभोर हो गया है। अतः यहाँ उपमेयों (मुख व सुवास) में उपमानों (चन्द्रमा व कमल-गंध) का भ्रम उत्पन्न होने के कारण भ्रान्तिमान अलंकार है।
- 6. "बेसर मोती दुति झलक, परी अधर पर आनि । पट पोंछति चूनो समझि, बारी निष्ट अयानि।।"

दृष्टान्त

बिम्ब - प्रतिबिम्ब भाव होने पर, उपमेय वाक्य में जो बात कही जाती है, उसकी सत्यता प्रमाणित करने के लिए उसी से मिलता-जुलता दूसरा उपमान वाक्य कहा जाता है; जो प्रथम वाक्य भी सत्यता पर प्रमाणिकता की मोहर लगा देता है, तो वहाँ दृष्टान्त अलंकार माना जाता है।

उदाहरण -

1. करत-करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान ।
   रसरी आवत जात ते, सिल पर परत निसान।।
2. कन कन जोरै मन जुरै, खावत निबरे सोय।
   बूंद-बूंद तें घट भरै, टपकत रीता होय ।।
3. मनुष जनम दुरलभ अहै, होय न दूजी बार।
   पक्का फल जो गिरि परा, बहुरि न लागै डार

उदाहरण अलंकार

जब किसी पद में "ज्यों, जैसे, जिमि' इत्यादि शब्दों का प्रयोग किसी कथन को उदाहरण रूप में प्रस्तुत करने के लिए किया जाता है, तो वहाँ उदाहरण अलंकार माना जाता है।

उदाहरण -

1. सुख बीते दुख होत है दुख बीते सुख होत |
   दिवस गये ज्यों निसि उदित, निसिगत दिवस उद्येत।।
2. नीकी पे फीकी लगै बिन अवसर की बात।
   जैसे बरनत युद्ध में रस शृंगार न सुहात।।
3. जगत जनायो जिहि सकल, सो हरि जान्यो नाहिं।
   ज्यों आँखिन सब देखिपे, आँख न देखि जाहि।।
4. सबै सहायक सबल के, कोऊ न निबल सहाय ।
   पवन जगावत आग ज्यों, दीपहि देत बुझाय।।

विरोधाभास

विरोधाभास :

'विरोधाभास' शब्द 'विरोध + आभास' के योग से बना है, अर्थात् जब किसी पद में वास्तविकता में तो विरोध वाली कोई बात नहीं होती है, परन्तु सामान्य बुद्धि से विचार करने पर वहाँ कोई भी पाठक विरोध कर सकता है तो वहाँ विरोधाभास अलंकार माना जाता है।

उदाहरण -

1. "तन्त्री नाद कवित्त रस, सरस राग रति रंग।
अनबूड़े बूड़े तिरे, जे बूड़े सब अंग।।"

अर्थ - तन्त्री के नाद में जो व्यक्ति नहीं डूबा वह डूब गया और जो इसमें डूब गया वह तिर गया, यह विरोधाभास का कथन प्रतीत होता है।

2. "शीतल ज्वाला जलती है, ईंधनं होता दृग जल का।
यह व्यर्थ साँस चल चलकर, करती है काम अनिल का।।"

3. "अवध को अपनाकर त्याग से, वन तपोवन सा प्रभु ने किया।
भरत ने उनके अनुराग से, भवन में वन का व्रत ले लिया।।"

अर्थ - प्रस्तुत पद में राम के द्वारा वन को तपोवन सा बनाना एवं भरत के द्वारा राजभवन में ही वन का व्रत ले लेना विरोध का सा आभास कराता है।

4. "विषमय यह गोदावरी अमृतन को फल देत।
केसव जीवन हार को, असेस दुख हर लेता।।"

व्यतिरेक अलंकार

जब किसी पद में उपमान की अपेक्षा उपमेय को अधिक बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत किया जाता है अर्थात् उपमेय का उत्कर्षपूर्ण वर्णन किया जाता है तो वहाँ व्यतिरेक अलंकार माना जाता है।

उदाहरण -

1. जिनके यश प्रताप के आगे।
ससि मलीन रवि सीतल लागे।।

अर्थ - यहाँ उपमेय (यश, प्रताप) के समक्ष उपमान (चन्द्रमा व सूर्य) को भी मलीन व शीतल (तेजरहित) बताया गया है, अतः यहाँ व्यतिरेक अलंकार है।

2. जनम सिंधु पुनि बंधु विष, दिन मलीन सकलंक।
सिय मुख समता पाव किमि, चंद बापुरो रंक।।

अर्थ - प्रस्तुत पद में उपमान (चन्द्र) की अपेक्षा उपमेय (सिय मुख) की शोभा का उत्कर्षपूर्ण वर्णन किया गया है, अतः यहाँ व्यतिरेक अलंकार है।

3. राधा मुख को चन्द्र सा कहते हैं मतिरंक।

निष्कलंक है वह सदा, उसमें प्रकट कलंक ।।

असंगति

जब किसी पद में किसी कार्य का अपने मूल स्थान से हटकर किसी अन्य स्थान पर घटित होना पाया जात है अर्थात् जो काम जहाँ होना चाहिए, वहाँ नहीं होकर किसी अन्य स्थान पर होता है तो वहाँ असंगति अलंकार माना जाता है।

उदाहरण -

1. "गजन फल देखिय तत्काला।
   काक होहिं पिक वकहु मराला ।।"
2. "हृदय घाव मोरे, पीर रघुवीरे।"

अर्थ - सामान्यतः जिस व्यक्ति के शरीर पर घाव होता है, पीड़ा भी उसी को होती है, परन्तु यहाँ घाव तो लक्ष्मण के हृदय में हो रहा है तथा उसकी पीड़ा राम के हृदय में हो रही है, अतः उपयुक्त स्थान पर कार्य नहीं होने के कारण यहाँ असंगति अलंकार माना जाता है।

3. "मेरे जीवन की उलझन, बिखरी थीं उनकी अलकें।
   पी ली मधु मदिरा किसने, थीं बंद हमारी पलकें ।।"

4. "पलनि पीक अंजन अधर, धरे महावर भाल।
आजु मिलै हो भली करी, भले बनै हो लाल ।।"

अर्थ - सामान्यतः पान का बीड़ा मुख में रखा जाता है, अंजन (काजल) आँखों में लगाया जाता है तथा महावर पैरों पर लगाया जाता है, परन्तु यहाँ कवि बिहारी ने पान (पीक) को आँखों की पलकों में, अंजन को होठों पर तथा महावर को मस्तक (भाल) पर चित्रित किया है। इस प्रकार वास्तविक स्थान पर पदार्थ नहीं होने के कारण यहाँ असंगति अलंकार

5. "राज देन कहँ सुभ दिन साधा।
   कह्यो जान वन केहि अपराधा।।"

अर्थ - प्रस्तुत पद में राज्य देने के शुभ दिवस के स्थान पर उसके विपरित वन जान के आदेश का वर्णन होने के कारण यहाँ संगति अलंकार है।

6. "दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित्त प्रीति।
   परत गाँठ दुरजन हिये, दई नई यह रीति ।।"

अर्थ - सामान्यतः जो वस्तु उलझती है वही टूटती है; जो टूटती है वही जुड़ती है तथा जो मुड़ती है, गाँठ भी उसी में पड़ती हैं, परन्तु बिहारी के इस दोहे में आँखें तो नायक-नायिका की उलझ रही हैं परन्तु टूट उनके

परिवार रहे हैं। परिवार तो टूट रहे हैं परन्तु उनके हृदय में प्रेम भावना जुड़ती चली जा रही है। प्रेम तो नायक-नायिका के हृदय में जुड़ रहा है, परन्तु उसको देखकर दुर्जनों के हृदय में गाँठ पड़ रही है। विधाता की यह कैसी विचित्र लीला (रीति) है। इस प्रकार वास्तविक स्थान से अन्यत्र कार्य घटित होने के कारण यहाँ असंगति अलंकार है।

विभावना अलंकार

हमारे द्वारा जो कोई भी कार्य किया जाता है, उनके पीछे कोई न कोई कारण अवश्य निहित होता है, परन्तु जब किसी पद में वास्तविक कारण के बिना ही किसी कार्य का होना पाया जाता है तो वहाँ विभावना अलंकार माना जाता है। पहचान के लिए जब किसी पद किसी पद में 'बिना, बिनु, बिन, रहित' आदि शब्दों का प्रयोग होता है तो वहाँ विभावना अलंकार माना जाता है।

उदाहरण -

1. "निदंक नियरे राखिए आंगन कुटी छवाय।
   बिन पानी साबुन बिना निर्मल करै सुभाय ।।"
2. "बिनु पद चलै, सुनै बिनु काना। बिनु कर करम करै विधि नाना। आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी।।"

अर्थ - प्रस्तुत पद में परम पिता परमेश्वर की सर्वव्यापकता का वर्णन करते हुए कवि तुलसीदास कहते हैं कि वह परम पिता परमेश्वर बिना पैरों के चलता है, बिना कानों के सुनता है, हाथों के बिना ही अनेक कार्य करता है, मुख से रहित होने पर भी समस्त पदार्थों का उपभोग करता है तथा जिह्वा के बिना भी बहुत बड़ा वक्ता है।

यहाँ संबंधित कारणों (पैर, कान, हाथ, मुख, जिह्वा) के बिना ही चलने, सुनने, कर्म करने, रस-उपभोग करने व बोलने के कार्य हो रहे हैं, अतः यहाँ विभावना अलंकार माना जाता है।

3. "मुनि तापस जिन तें दुख नहहीं।
   ते नरेश बिनु पावक दहहीं।।"
4. "आक धतूरे के फूल चढाये ते रीझत हैं तिहुँ लोक के साँई।"
5. नैना नैक न मानहीं, कितो कहौं समुझाय ।
   ये मुँह जोर तुरंग लौं, ऐंचत हू चलि जाय ।।
6. “जदपि बसे हरि जाय उत, आवन पावत नांहि।
   मिलत मोहिं नित तदपि सखि, प्रतिदिन सपने मांहि।।"
7. "देखों नील कमल से कैसे, तीखे तीर बरसते हैं।"
8. "क्यों न उतपात होहिं बैरिन के झुण्डन में।
   कारे घन उमड़ि अँगारे बरसत हैं।" ।
9. "हँसत बाल के बदल में, यों छवि कथु अतूल ।
   फूली चंपक बेलि तें, झरत चमेली फूल ।।"

10. “पौन से जागत आगि सुनी ही पै,
    पानी सों लागत आजु मैं देखी।"
11. "सिय हिय सीतल सी लगे, जरत लंक की झार।"
12. "आग हूँ जिससे ढलकते बिन्दु हिमजल के।"
13. भयो सिन्धु तें विधु सुकवि, बरनत बिना विचार |
    उपज्यो तो मुख इन्दु ते, प्रेम पयोधि अपार ।।
14. "देखो या विधुवदन में, रस सागर उमगात।"
15. "कमल जुगल से निकलता, देखो निर्मल नीर।"

अन्योक्ति

जब किसी पद में किसी को माध्यम बनाकर अन्य व्यक्ति तक वास्तविक निहितार्थ (संदेश) पहुँचा दिया जाता है, तो वहाँ अन्योक्ति अलंकार माना जाता है।

उदाहरण -

1. स्वारथ सुकृतु न श्रमु वृथा, देखि विहंग विचारि।
   बाज पराए पानि पर तू पच्छिनू न मारि।।
2. नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास इहि काल।
   अलि कली ही सों बन्ध्यों, आगे कौन हवाल ।।
3. माली आवत देखकर कलियन करी पुकारि।
   फूले-फूले चुन्हि लिये, काल्हि हमारी बारि।।

समासोक्ति अलंकार

जहाँ पर कार्य, लिंग या विशेषण की समानता के कारण प्रस्तुत के कथन में अप्रस्तुत व्यवहार का समावेश होता है अथवा अप्रस्तुत का स्फुरण होता हे तो वहाँ समासोक्ति अलंकार माना जाता है।

समासोक्ति में प्रयुक्त शब्दों से प्रस्तुत अर्थ के साथ-साथ एक अप्रस्तुत अर्थ भी सूचित होता है जो यद्यपि प्रसंग का विषय नहीं होता है, फिर भी ध्यान आकर्षित करता है।

उदाहरण -

1. "कुमुदिनी हुँ प्रफुल्लित भई, साँझ कलानिधि जोई।"

यहाँ प्रस्तुत अर्थ है- “संध्या के समय चन्द्र को देखकर कुमुदिनी खिल उठी।"

अर्थ - इस अर्थ के साथ ही यहाँ यह अप्रस्तुत अर्थ भी निकलता है कि संध्या के समय कलाओं के निधि अर्थात् प्रियतम को देखकर नायिका प्रसन्न हुई।

2. "चंपक सुकुमार तू, धन तुव भाग्य विसाल।
तेरे ढिग सोहत सुखद, सुंदर स्याम तमाल ।।"
3. "नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास इहि काल।

अली कली ही सों बिन्ध्यो, आगे कौन हवाल ।।"
यहाँ भ्रमर के कली से बंधने के प्रस्तुत अर्थ के साथ-साथ राजा के नवोढ़ा रानी के साथ बंधने का अप्रस्तुत अर्थ भी प्रकट हो रहा है। अतः यहाँ समासोक्ति अलंकार है।
4. "जब तुहिन भार से चलता था धीरे धीरे मारुत सुकुमार।
तब कुसुमकुमारी देख-देख, उस पर जाती निस्सार ।।"

औचित्य सिद्धांत

काव्यशास्त्र में औचित्य सम्प्रदाय के प्रवर्तक के रूप में आचार्य क्षेमेन्द्र का नाम लिया जाता है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने 'औचित्य-विचार-चर्चा' नामक ग्रंथ लिखा है। इस ग्रंथ में उन्होंने औचित्य को काव्य का जीवन तत्त्व कहा है और स्थापित किया है कि 'औचित्य रससिद्धस्य स्थिर काव्यस्य जीवितम् ।

औचित्य-विवेचन - आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रंथ 'औचित्य-विचार-चर्चा' में औचित्य को काव्य की आत्मा के पद पर प्रतिष्ठित करके औचित्य सम्प्रदाय की स्थापना के साथ ही औचित्य की परिभाषा प्रस्तुत की है। औचित्य क्या है ? इसका विवेचन करते हुए स्पष्ट किया है कि 'जो वस्तु जिसके अनुरूप होती है, उसे उचित कहते है और उचित का जो भाव है, वह औचित्य कहलाता है। यथा

उचितं प्राहुराचार्यः सदृशं किल यम्य यत् ।
उचितस्य च यो भावः तदौचित्यं प्रचक्षते ।।

अर्थात् जो जिसके समान होता है, उसे आचार्यों ने उचित कहा है। उचित का जो भाव है वह औचित्य कहलता है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य को रस का जीवन होने की स्थापना की है। आचार्य क्षेमेन्द्र का स्पष्ट कथन है- "औचित्य ही रस का जीवितभूत अर्थात् प्राण है। औचित्य रस का जीवन है और काम में चमत्कारी तत्त्व है। जिस काव्य में जीवितभूत औचित्य नहीं है, उसमें अलंकारों और गुणों का विनियोग निरर्थक है। अलंकार तो अलंकार है और गुण तो गुण ही है, वह काव्य का जीवितभूत तत्त्व नहीं हो सकता, रस निविष्ट काव्य का जीवन तो औचित्य ही है।"
आचार्य क्षेमेन्द्र ने यह भी स्थापना की है कि अलंकारों में अलंकारत्व तभी होता है, जब उनका विन्यास उचित स्थान पर होता है और गुणों में गुण भी तभी होता है, जब वे औचित्य से च्युत न हों। यथा

उचितस्थन विन्यासवलंकृतिरलंकृतिः ।
औचित्यादच्युता नित्यं भवन्तीति गुणाः गुणाः ।।

औचित्यवादी आचार्य क्षेमेन्द्र ने यह भी स्थापना की है कि रसों के विनियोजन में भी औचित्य का विधान परम आवश्यक है। जब काव्य में रसों का विनियोजन उचित रूप में किया जाता है, तभी उसमें रमणीयता आती है। अनुचित स्थान व समय में रसों का नियोजन नीरसता को उत्पन्न करता है और इस प्रकार की स्थिति को काव्य में दोष माना जाता है। यही कारण है कि आचार्य आनन्दवर्धन ने अनौचित्य को रस-भृग

का एकमात्र कारण माना है। आचार्य क्षेमेन्द्र की दृष्टि में औचित्य से युक्त रस-विनियोग सहृदयों को आह्लादित करने में समर्थ होता है।

आचार्य क्षेमेन्द्र ने यह भी स्थापना की है कि औचित्य काव्य के प्रत्येक अंग में व्याप्त रहता है। तात्पर्य यह है कि औचित्य का सम्बन्ध काव्य में किसी एक ही अंग तक सीमित नहीं हैं। जिस स्थान पर औचित्य का अभाव होगा, अर्थात् औचित्य का सर्वांगपूर्ण निर्वाह होना आवश्यक है। जिस प्रकार लोक में सुन्दरी रमणीय मेखला गले में पहन ले, नितम्बों पर हार धारण कर ले, हाथ में नूपुर बाँध ले और पैर में नूपुर धारण कर ले तो कौन उसका उपहास नहीं करेगा ? इसी प्रकार यदि कोई पुरुष विनम्र व्यक्ति पर तो वीरता दिखावे और शत्रु पर करुणा प्रदर्शित करे तो कौन उसका उपहास नहीं । करेगा ? यही स्थिति काव्य में है। औचित्य के अभाव में न तो अलंकार ही शोभा धारण करता है और न गुण ही रुचिता उत्पन्न करता है। यही नहीं, अपितु रस भी रमणीयता उत्पन्न नहीं कर पाता है

कण्ठे मेखलया नितम्बफलके तारेण हारेण वा,
पाणौ नूपुरबन्धनेन चरणे केयूरपाशेन वा।
शायेंण प्रणते रिपौकरुणा नायान्ति के हास्यताम्,
औचित्येन बिना रुचिं प्रतनुतेनालंकृतिर्नोगुणाः ।।

इस प्रकार काव्य के प्रत्येक अंग में औचित्य के व्याप्त होने के कारण क्षेमेन्द्र ने औचित्य को काव्य का जीवित (प्राण) माना जाता है। उनका कथन है कि रस में रसत्व, अलंकार में अलंकारत्व, गुण में गुणत्व और रीति में रीतित्व तभी होते हैं, जबकि उनका औचित्यपूर्ण संविधान होता है।

औचित्य के भेद- आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य के अग्रांकित 27 भेद किए हैं- (1) पद, (2) वाक्य, (3) प्रबन्ध, (4) गुण, (5) अलंकार, (6) रस, (7) क्रिया, (8) कारक, (9) लिंग, (10) वचन, (11) विशेषण, (12) उपसर्ग, (13) निपात, (14) देश, (15) काल, (16) कुल, (17) व्रत, (18) तत्त्व, (19) सत्त्व, (20) अभिप्राय, (21) विभाव, (22) सार संग्रह, (23) प्रतिभा, (24) विचार, (25) नाम, (26) आशीर्वचन, (27) प्रत्यय । औचित्य के इस सत्ताईस भेदों का क्षेमेन्द्र ने विस्तार से वर्णन किया है और सभी के उदाहरण दिये हैं।

औचित्य का महत्त्व-प्रतिपादन- औचित्य की महत्ता असंदिग्ध है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के शब्दों में " चारुत्व प्रवाह में जो स्थन वक्रोक्ति का है, वही स्थान अनुभूति प्रवाह में औचित्य का है।" यह ठीक है कि विशेषणवत् प्रयुक्त औचित्य का स्वरूप विशेष्य के अनुरूप होता है, परन्तु उसका एक स्वतन्त्र अस्तित्व भी है। औचित्य की कतिपय स्थिर एवं परिनिष्ठित मान्यताएँ भी हैं। इस प्रकार औचित्य समाज सापेक्ष होते हुए भी एक नैतिक सिद्धांत है।

औचित्य ही दोष का निर्णायक तत्त्व है। शास्त्रोक दोषों के विषय में काव्याचार्यों में मतभेद रहा है। एक विद्वान द्वारा स्वीकृत दोष दूसरे विद्वान ने परिस्थिति विशेष गुण माना है। उदाहरणार्थ दण्डी के अनुसार अतिशय अनुकम्पा की विवक्षा होने पर पुररुक्ति दोष दोष न होकर अलंकार कहलाता है

अनुकम्पाद्यतिशयो यदि कश्चिद्विवक्ष्यते ।
न दोषः पुनरुक्तापि प्रत्युतेयमलंक्रिया ।।

स्पष्ट है कि दोष, गुण तथा अलंकार का रूप स्थिर न होकर समय, प्रसंग तथा परिस्थिति आदि सापेक्ष्य है। इस रूप में इनके स्वरूप का निर्णायक तत्त्व जैचित्य ही है। दोष परिहार से पूर्ण दोष ज्ञान अपेक्षित है अतः औचित्य दोष ज्ञान तथा दोषापहार का तत्त्व है। परन्तु इस औचित्य का अभिप्राय केवल दोष परिहार नहीं है। उसका एक दूसरा भावात्मक रूप भी है। रसास्वाद के बाधक तत्त्व अनौचित्य के रूप हैं उनका परिहार एक बात है और वस्तु को विशेष रूप से आस्वाद्य बनाना दूसरी बात है। इस प्रकार उसका एक रूप है दोषों अथवा विकृतियों का निषेध को ही औचित्य और दूसरा रूप है रसोत्कर्षक तत्वों की विशेष उपस्थिति।

औचित्य का अन्तिम निर्णायक सामाजिक है, क्योंकि औचित्य समाजानुमोदित व्यवहार है। रचना-प्रक्रिया के समय औचित्य के प्रति कवि का सजग प्रयत्न भले ही दृष्टिगोचर न हो, परन्तु इस दिशा में उसे सतर्क रहना अवश्य पडता है। औचित्य का सहज सन्निवेक्ष हो जाना कवित्व की अतिरिक्त उपलब्धि है। औचित्य का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। क्षेमेन्द्र ने 'औचित्य-विचार-चर्चा' के मंगलाचरण में अच्युत भगवान को औचित्य अथवा परमौचित्य रूप कहकर भगवान के अनन्त नाम-रूपों के समान औचित्य की अनन्तता और अनेकरूपता स्वीकार की है। वस्तुतः काव्य में कवि प्रतिभा नवीन उद्भावनाओं, वधाओं, रूपों और शैलियों के नवीन प्रयोग करती रहती है। उन सब नवीन प्रयोगों के सम्बन्ध में विधिनिषेध की पूर्व-प्रचलित मान्यता उपलब्ध नहीं होती। उस समय औचित्य ही उन नवप्रयोगों का नियामक तत्व होता है। इसके अतिरिक्त विधि निषेध को ही औचित्य का स्थायी रूप नहीं माना जा सकता, क्योंकि इससे विधि-निषेध रूढ़ि मात्र रह जाती है और फिर उसका औचित्य से कोई सम्बन्ध नहीं रहता।
उपर्युक्त विशेषताओं के कारण यह एक सर्वमान्य काव्य-सिद्धांत के रूप में स्वीकृत तथा समादृत था। इस विशद एवं व्यापक सिद्धांत में अन्य सभी काव्य तत्त्वों का समावेश हो जाता है। महामहोपाध्याय कुप्पूस्वामी शास्त्री ने काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों की स्थिति का एक यंत्र बनाया है और उसके बड़े और छोटे दो वृत्त में औचित्य को रखा है। शास्त्री जी के अनुसार

औचितीमनुधावन्ति सर्वे ध्वनि रसोन्नयाः ।
गुणालंकृति-रीतीनाम् नयश्चानृजुवांगमयाः ।।

अर्थात् साहित्य के सारे सिद्धांत-रस, ध्वनि, गुण, अलंकार, रीति और वक्रोक्ति आदि-औचित्य तत्व पर ही आश्रित है। काव्य के अन्य तत्व सभी ग्राह्य होते हैं। जब वे औचित्य के सहयोग से सौंदर्यवृद्धि में समर्थ होते हैं। औचित्य रस का विभिन्न तत्वों से सम्बन्ध निश्चित करता है और सर्वत्र संतुलन, सामंजस्य तथा व्यवस्था उत्पन्न करता है। काव्यशास्त्र में औचित्य का महत्व काव्य के सभी तत्वों में समन्वय लाना है। औचित्य के कारण अलंकार, रीति, वक्रोक्ति आदि की चमत्कारवादी प्रवृत्तियों का नियंत्रण हुआ। वस्तुतः जीवन में जब तक विधि निषेध की व्यवस्था रहेगी, जिसका शाश्वत रूप में रहना निश्चित है, तब तक

अर्थात् सदैव के लिए काव्य में औचित्य-अनौचित्य के ग्रहण त्याग एवं विवेक की आवश्यकता अक्षुण्ण रहेगी। इस विवेचन से स्पष्ट है कि क्षेमेन्द्र ने औचित्य विचार की चर्चा द्वारा काव्यशास्त्र का एक महान उपकार किया। निस्संदेह औचित्य ककी स्वीकृति के संकेत भरत के नाटयशास्त्र में उपलब्ध हैं और हमने भरत को ही औचित्य का उद्भावक आचार्य माना है। भामह, दण्डी और वामन में भी औचित्य स्वीकृति के परोक्ष संकेत उपलब्ध होते हैं। सम्भवतः इसी संदर्भ में ही कवियों के लिए वर्ण्य वस्तु से सम्बन्धित देशकाल के ज्ञान की अनिवार्यता पर बल दिया गया है। उपर्युक्त विवेचन से निम्नलिखित तत्त्व स्पष्ट हैं

(1) औचित्य शब्द का अर्थ उचित का भाव है और उचित का अर्थ विवेक है। काव्यशास्त्र में औचित्य का अर्थ काव्यांगों का विवेकपूर्ण तथा सन्तुलित प्रयोग है।

(2) औचित्य सौंदर्य का प्रमुख आधार है। काव्यांगों के उचित प्रयोग में ही उनका सौंदर्य निहित है।

(3) जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समान साहित्य में भी औचित्य काव्य के उत्कर्षापकर्ष का निर्णायक निकष है, एक प्रकार से आचार संहिता है।

(4) औचित्य के आदि-उद्भावक आचार्य भरत हैं। उन्होंने औचित्य शब्द का प्रयोग नहीं किया, परन्तु उनके अनुरूपता, लोकप्रामणिकता शब्द औचित्य के ही समानार्थी है। क्षेमेन्द्र के प्रेरक आचार्य भरत ही हैं।

(5) दण्डी ने 'लोकसीमानुरोध' के माध्यम से औचित्य की महत्ता स्वीकार की है।

(6) व्यवहार क्षेत्र में राजा यशोवर्मन् ने और काव्यशास्त्र में रुद्रट ने सर्वप्रथम औचित्य शब्द का प्रयोग किया है। रुद्रट ने ही उसके स्वरूप और महत्व का सर्वप्रथम विवेचन किया है।

(7) औचित्य का विस्तृत एवं व्यापक विवेचन ध्वनिप्रवर्तक आचार्य आनन्दवर्धन ने किया है।

(8) अभिनवगुप्त ने रस-ध्वनि और औचित्य में सम्बन्ध योजना की है।

(9) महिमभट्ट और भोजराज ने भी औचित्य के अभाव को दोष माना है।

(10) क्षेमेन्द्र ने औचित्य को रससिद्ध काव्य का जीवित माना है और सर्वप्रथम उसकी भावात्मक स्थिति का वर्णन किया है। उन्होंने औचित्य का सम्बन्ध काव्य के सभी अंगों से जोड़ते हुए भाव-भाषागत औचित्य की विस्तृत चर्चा की है।

(11) क्षेमेन्द्र के उपरान्त मम्मट, विश्वनाथ तथा जगन्नाथ आदि ने औचित्य की अभावात्मक स्थिति-दोषभाव रूप

औचित्य-की ही चर्चा की है।

(12) हिन्दी रीति आचार्यों ने औचित्य की विशेष चर्चा नहीं की है।

(13) हिन्दी आधुनिक आचार्यों ने इसकी स्वतन्त्र चर्चा न करके अन्य काव्यांगों के संदर्भ में ही इसका उल्लेख किया है। डॉ. वी. राघवन् इसके अपवाद हैं। कुप्पूस्वामी प्रभृति विद्वानों ने इसकी महत्ता सिद्धांत विशेष के रूप में ही स्वीकार की है।

(14) पश्चिमी विद्वानों-अरस्तू, होरेस तथा ड्राइडन आदि ने भी औचित्य की महत्ता का प्रतिपादन किया है।

(15) औचित्य सम्प्रदाय अथवा सिद्धांत विशेष न होकर काव्य का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व्यापक एवं अनिवार्य तत्व है।

कल्पना सिद्धान्त- कॉलरिज

कल्पना से तात्पर्य - कॉलरिज ने कल्पना की विस्तृत विवेचना की है। उनके अनुसार कवि को भौतिक तथा आध्यात्मिक तथ्यों का ज्ञान होना चाहिए। इसका सम्बन्ध उसकी कला से होता है। कॉलरिज मानते थे कि कवि को सद्‌बुद्‌धि से प्रेरित होना चाहिए जिससे कि वह पाठकों में रुचि उत्पन्न कर सके। उसे क्रुद्‌ध तथा ईर्ष्यालु लोगों के शब्दों की नकल करने के लिए उनकी खोज में, उनके अशिक्षित समाज के इर्द-गिर्द चक्कर काटने की आवश्यकता नहीं है। उसमें विवेक-बुद्‌धि को उत्पन्न करने वाला सहज बोध होना चाहिए, जिससे कि कवि अपनी सर्जनात्मक शक्ति की सहायता से अपनी काव्य-रचना द्‌वारा उत्पन्न की हुई उत्तेजना की मात्रा और उसके प्रकारों को हृदयगंम करने में समर्थ हो सके। कॉलरिज का कथन है कि यदि बाह्‌य नियमों के आधार पर काव्य-रचना का प्रयत्न किया जाता है, तो कविता कविता न रहकर एक यांत्रिक कला का रूप धारण कर लेती है। इस प्रकार की कविता की उपमा कॉलरिज ने संगमरमर के बने उन ठण्डे औश्र वजनदार आड्डओं से दी है जिनमें बच्चे केवल अपना मुँह ही मार सकते हैं। इस प्रकार कॉलरिज ने काव्य-सृजन के सिद्‌धांतों पर जोर दिया है। वह जिस रूप में कविता मौजूद हैं, उसका विश्लेषण ने करते हुए सर्जनात्मक शक्ति का विवेचन करने के पक्ष में थे। कॉलरिज के अनुसार कल्पना दो प्रकार की होती है -प्रारम्भिक और विशिष्ट । वे मानते हैं कि कल्पना द्‌वारा ही काव्य हृदयग्राही, मर्मस्पर्शी और सजीव बनता है। अतः कल्पना की क्षमता और महत्त्व सर्वोपरि होता है। कल्पना-प्रयोग की अन्तःशक्ति कवि का सर्वश्रेष्ठ गुण है और उसका समुचित प्रयोग काव्योत्कर्ष के क्षणों की समुचित देन है। वे इस ढंग से अपनी बात को स्पष्ट करते हैं कि "कल्पना वह शक्ति है जिसका प्रयोग कलाकार अपने सर्वोत्तम भावात्मक क्षणों में करता है।"

कॉलरिज के कल्पना सिद्‌धांत को पर्याप्त ख्याति मिली। वास्तव में उसके अन्य सिद्‌धांतों की तुलना में कॉलरिज की प्रसिद्‌धि का मूल कारण कल्पना-सिद्‌धांत ही है। प्रायः कल्पना को वह शक्ति या प्रक्रिया कहा गया है, जिससे प्रतिच्छवि का सर्जन सम्भव हो पाता है अथवा जिसके सहारे प्रतिच्छवि को ग्रहण या प्रत्यक्ष किया जाता है। अमूर्त धारणाओं और

प्रत्ययों को कलाकार इसी के सहारे मूर्त रूप देता है। मनुष्य इसी के सहारे सृजन में समर्थ होता है। एक शब्द में कह सकते हैं कि यदि कल्पना न हो तो किसी प्रतिच्छवि को प्रत्यक्ष करना सम्भव नहीं है। यही कलात्मकता जिसमें कल्पना का समावेश होता है, सृजन के लिए उपयोगी होती है। कल्पना का अंग्रेजी शब्द 'इमेजीनेशन' लैटिन के 'इमेजीनेटिव' शब्द से निकला है, जिसका अर्थ है - मानसिक चित्र की सृष्टि । कल्पना के साथ ही एक अन्य शब्द का प्रयोग भी किया जाता है - 'फैन्सी' जिसका अर्थ है -हल्की कल्पना। इस शब्द का मूल जर्मन शब्द 'फैंटेसिया' है जो अंग्रेजी तक पहुँचते-पहुँचते फैन्सी रह गया। अरस्तू से लेकर आधुनिक काल तक के विचारकों ने कल्पना पर विचार किया है। वर्ड्‌सवर्थ की एक कविता को सुनकर कॉलरिज के मन में एक विशेष आकर्षण उत्पन्न हुआ। उसने अनुभव किया कि । अपनी कविता में वर्ड्‌सवर्थ ने उन्हीं शब्दों, अलंकारों और बिम्बों का प्रयोग किया है जो दीर्घकाल से प्रयुक्त होते आ रहे हैं, किन्तु फिर भी कवि ने उन सबका ऐसा सामंजस्य बिठाया है कि उसमें एक अतिरिक्त आकर्षण आ गया है। अतः वह आम कविता होकर भी विशिष्ट बन गयी है। इस कविता में हृदयस्पर्शिता है, सुबोधिता है और हमारी बौद्‌धिक क्षमता को भी संतुष्ट करती है। कॉलरिज ने घोषित किया कि जिस शक्ति के कारण यह कविता

आकर्षित करती है, वह शक्ति कल्पना है। अतः उसने स्वीकार किया कि कल्पना में ही वह क्षमता है कि वह विरोधी और एक-दूसरे से असम्बन्धित-से दिखने वाले तत्त्वों को अंगीकृत करती है और काव्य को उत्कर्ष, चारुता और रमणीयता प्रदान करती है।

कल्पना की कोटियाँ - कॉलरिज ने कल्पना की दो कोटियाँ मानी हैं -प्राथमिक कल्पना और विशिष्ट कल्पना। उन्होंने बताया है कि "प्राथमिक कल्पना जीवन्त शक्ति है और सम्पूर्ण मानवीय ज्ञान का मूल हेतु है। विशिष्ट कल्पना प्राथमिक कल्पना की प्रतिध्वनि मात्र है। इसका अस्तित्व ज्ञान का मूल हेतु है। विशिष्ट कल्पना प्राथमिक कल्पना की प्रतिध्वनि मात्र है। इसका अस्तित्व इच्छा के अस्तित्व के साथ ही रहता है। इन दोनों कल्पनाओं के प्रकार-भेद नहीं है, केवल कोटि-भेद है। दोनों की कार्य-पद्धतियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं।" कॉलरिज ने ब्रह्मवादियों की भाँति आत्मा और जगत् दोनों को एक ही सत्ता के दो रूप स्वीकार किया है, किन्तु ब्रह्मवादियों ने आत्मा और जगत् के भिन्न-भिन्न प्रतीत होने के कारण माया को माना है। वहाँ कॉलरिज ने उसका कारण कल्पना को स्वीकार किया है। यही कारण है कि एक ही चेतना खण्ड-खण्ड रूप में दिखाई देती है। ब्रह्म इसी कल्पना-शक्ति के माध्यम से सृष्टि के निर्माण में प्रवृत्त होता है। यह समस्त मानव-ज्ञान की एक सजीव शक्ति है और सम्पूर्ण मानव प्रत्यक्षीकरण का प्रमुख साधन है। प्राथमिक कल्पना सम्पूर्ण मानवीय ज्ञान का मूल कारण तो है ही, क्योंकि इसके अभाव में उसे मानवीय ज्ञान का अनुभव और उसकी प्राप्ति नहीं हो सकती है। इन्द्रियों के सहारे हम जो भी अनुभव करते हैं, वह सबका सब अनुभव इसी ज्ञान का मूल हेतु है। प्राप्त ज्ञान को व्यवस्था देने का कार्य भी यही कल्पना करती है। यह प्राथमिक कल्पना उन सभी बिम्बों को एक-एक करके हमारे अस्तित्व-बोध को ज्ञान में बदल देती है। इस प्रकार प्राथमिक कल्पना एक महान सिद्धांत है जो व्यवस्थापिका वृत्ति का परिचायक है। सरल शब्दों में, यह प्राथमिक कल्पना हमारे अव्यवस्थित इन्द्रिय बोधों में एक संश्लिष्टता या व्यवस्था लाती है। अव्यवस्था में व्यवस्था का कार्य इसी कल्पना का प्रमुख कार्य है।

विशिष्ट कल्पना - यह प्राथमिक कल्पना का सजग मानवीय प्रयोग है। भाव यह है कि जब हम अपनी इच्छा से प्राथमिक कल्पना-शक्ति का प्रयोग करते हैं तो उस अवसर पर उसका जो रूप हो जाता है, उसे विशिष्ट कल्पना कहते है। प्राथमिक कल्पना जिस प्रकार इन्द्रिय-बोधों को एक संतुलन और व्यवस्था देती है, किन्तु महत्त्व की बात यह है कि यह व्यवस्था कार्य प्राथमिक कल्पना के बिना किसी दबाव के-सहज रूप से करती है। इसके विपरीत जब इस व्यवस्थापिका कल्पना का प्रयोग जानबूझकर या प्रयत्नपूर्वक किया जाता है, तब इसका मूल तो सुरक्षित रहता है, किन्तु कार्य-पद्धति में अन्तर हो जाता है। फलतः इसका श्रेणी-भेद भी बदल जाता है। कार्य-पद्धति में भेद का कारण हमारी स्वयं की इच्छा है। यह विशिष्ट कल्पना कलाकारों या चित्रकारों में पायी जाती है। जनसाधारण में इसका प्रसार और प्रभाव नहीं देखा जाता है। यह कल्पना प्राथमिक या आद्य कल्पना शक्ति की प्रतिध्वनि है, उसका सजग मानवी प्रयोग है। वह कलाकार को इस बाह्य संसार का प्रस्तुतीकरण तथा पुनःसृजन करने में सहयोग देती है। उसी की सहायता से कलाकार इस बाह्य जगत् को अधिक पूर्ण रूप में प्रस्तुत करता है। वह अनेक विषयों में एकसूत्रता लाती है, विषय और

विषयी का समन्वय करती है, अनेक रूपों और व्यापारों को एक सम्बद्ध एवं अखण्ड रूप में प्रस्तुत करती हुई भिन्न-भिन्न बिम्बों को व्यवस्थित करती है।

प्राथमिक कल्पना और विशिष्ट कल्पना में अन्तर यह है कि प्राथमिक कल्पना सहज रूप में बोधों को व्यवस्थित करती है और विशिष्ट कल्पना का प्रयोग सजग रूप में स्वेच्छा से किया जाता है। महत्त्व दोनों कल्पनाओं का है। कॉलरिज के कल्पना विषयक विचार मौलिक हैं। उनकी कल्पना विषयक धारणा जर्मन विचारक कॉन्ट से भी भिन्न है। कॉन्ट ने कल्पना को काव्य-रचना का गुण नहीं स्वीकार किया है। उन्होंने तो कल्पना को केवल संश्लेषणात्मक शक्ति माना है। कॉलरिज की स्थिति इससे भिन्न है। उनकी कल्पना रचनात्मक क्षमता से युक्त है और वह सक्रिय है। कॉलरिज मानते थे कि कला प्रकृति की अनुकृति नहीं है। कारण, अनुकृति का कार्य व्यर्थ की प्रतिद्वन्द्विता हैं। प्रकृति असल है और उसकी नकल की क्षमता किसी भी कलाकार में नहीं होती है। अतः कलाकार कल्पना के सहारे पुनः सृजन करता है और यह सृजन उसकी भावना के आधार पर होता है। इसमें उसे आनन्द भी मिलता है। इस प्रकार के सृजन में कल्पना ही उसका सर्वाधिक साथ देती है।

कल्पना और ललित कल्पना - कॉलरिज के अनुसार कल्पना-प्राथमिक कल्पना अथवा इमेजीनेशन जीवन्त शक्ति है। इसी कल्पना के आधार पर मनुष्य ज्ञानार्जन में समर्थ होता है। यही व्यवस्थापिका भी है। यही हमें ज्ञान भी देती है। ललित कल्पना फैन्सी है। इसे 'सैकण्डरी इमेजीनेशन', ललित कल्पना जैसे नाम दिये गये है। यह प्राथमिक कल्पना-शक्ति को सजग मानवीय प्रयोग है। तात्पर्य यह है कि जब हम अपनी इच्छा से प्राथमिक कल्पना-शक्ति का प्रयोग करते हैं तो उस अवसर पर उसका जो रूप होता है, उसे विशिष्ट कल्पना कहा जाता है। प्राथमिक कल्पना अव्यवस्थित इन्द्रियबोधों को व्यवस्थित करती है, किन्तु ऐसा वह हमारी इच्छा के कारण नहीं करती, अपितु सहज रूप में करती है। जब हम इस व्यवस्थापिका शक्ति का प्रयोग अपनी इच्छा से करते हैं, उस समय इसका मूल तो बना रहता है, किन्तु इसकी कार्य-पद्धति में भेद हो जाने के कारण इसकी कोटि बदल जाती है। इसकी कार्य-पद्धति में भेद इसलिए हो जाता है कि एक सहज रूप से काम करती है और दूसरी सजग रूप से अर्थात् हमारी इच्छा के अनुसार । इस विशिष्ट अथवा ललित कल्पना शक्ति का प्रयोग चित्रकार, दार्शनिक और कवि आदि करते हैं। अपने व्यापक अर्थ में यह एक सजग मानसिक सर्जन-क्रिया है। यहाँ यह शंका उत्पन्न हो सकती है कि जब चित्रकार, कवि, दार्शनिक और इतिहासकार सभी इसी विशिष्ट अथवा ललित कल्पना-शक्ति के द्वारा सृजन करते हैं, तो उनकी कृतियों में अन्तर क्यों और किस कारण से आता है।

वास्तव में ये सभी विशिष्ट कल्पना-शक्ति के द्वारा ही अपने कार्य में प्रवृत्त होते हैं। ये सभी अपनी अभिव्यक्ति में भाषा अथवा रंगों का प्रयोग करते हैं। इस अर्थ में सबके माध्यम एक जैसे है। छन्दबद्ध होने के कारण दार्शनिक और इतिहास-ग्रंथ काव्य नहीं कहे जा सकते और न छन्दरहित होने के कारण कोई रचना काव्य-जगत् से बहिष्कृत की जा सकती है। स्पष्ट है कि काव्य और अकाव्य का अन्तर छन्द नहीं हो सकते है। कॉलरिज ने कविता तथा कल्पना की अन्य विधियों में अन्तर स्पष्ट करते हुए अपना मत इस

प्रकार व्यक्त किया है-"किसी भी भाषा-सृष्टि का कोई न कोई उद्देश्य होता है। दार्शनिक, इतिहासकार, उपदेशक, वैज्ञानिक और कवि विभिन्न उद्देश्यों को लेकर अपनी-अपनी कृतियों की सर्जना करते हैं। इनकी कृतियों में अन्तर समझने के लिए उनके उद्देश्य भेद को जान लेना आवश्यक है।" इस प्रकार स्पष्ट है कि छन्दोबद्ध और छन्दरहित होने को ही यदि कोई विभिन्न भाषात्मक कृतियों के अन्तर को एक आधार स्वीकार करें तो कॉलरिज को कोई आपत्ति नहीं है। कॉलरिज तो उद्देश्य और विषय-वस्तु के अन्तर को ही विभिन्न कृतियों की विभिन्नता का कारण मानते हैं। अभिप्राय यह है कि उद्देश्य और विषय-वस्तु में भेद होने से कृतियों में अन्तर आ जाता है।

विद्वानों के मत-डॉ. भागीरथ दीक्षित ने स्वीकार किया है कि कॉलरिज ने कल्पना की विस्तृत व्याख्या की है। उन्होंने अपने ढंग से कॉलरिज की कल्पना को समझाने का प्रयत्न किया है। उन्होंने अपने ढंग से कॉलरिज की कल्पना को समझाने का प्रयत्न किया है। उन्होंने लिखा है कि "प्राथमिक कल्पना के द्वारा हमें वस्तुओं का प्राथमिक ज्ञान प्राप्त होता है। यह सम्पूर्ण मानवीय ज्ञान का मूल हेतु है। यदि यह शक्ति मनुष्य में न रहती, तो उसे व्यवस्थित ज्ञान न होता |..... विशिष्ट कल्पना उस प्राथमिक कल्पना-शक्ति का सजग मानवीय प्रयोग है। तात्पर्य यह है कि जब हम अपनी इच्छा से प्राथमिक कल्पना शक्ति का प्रयोग करते हैं, तो उस अवसर पर उसका जो रूप हो जाता है, उसे विशिष्ट कल्पना कहते हैं।" डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त ने भी अपनी भाषा में इन्हीं तथ्यों को व्यक्त किया है।

निष्कर्ष - उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कॉलरिज की कल्पना सम्बन्धी मान्यता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कल्पना के द्वारा ही सर्जक कलाकार प्रतिबोधन और अवबोधन के बीच की खाई को पाटने में सफल हो पाता है। बुद्धि अनुशासित कर सकती है, नियंत्रित कर सकती है, किन्तु कल्पना वह जीवन्त शक्ति है, जिसके सहारे रिक्तता को पूर्णत में बदला जा सकता है। कल्पना की इसी क्षमता और इसी विशिष्टता को कॉलरिज ने बार-बार रेखांकित किया है।

काव्य के लक्षण

संस्कृत आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट काव्य लक्षण

भामह (छठी शताब्दी)

भामह ने अपने ग्रन्थ 'काव्यालंकार' में काव्य की परिभाषा देते हुए लिखा है "शब्दार्थौ सहितौ काव्यम् ।" अर्थात् शब्द और अर्थ के 'सहित भाव' को काव्य कहते हैं।

आचार्य भामह शब्द और अर्थ के सामंजस्य पर बल देते हैं, अर्थात् कविता न तो शब्द चमत्कार है और न केवल अर्थ का सौष्ठव है।

आचार्य दण्डी (7 वीं शताब्दी)

आचार्य दण्डी ने अपने ग्रन्थ 'काव्यादर्श' में काव्य की निम्नलिखित परिभाषा दी है। "शरीरं तावदिष्टार्थ व्यवच्छिना पदावली" अर्थात् इष्ट अर्थ से युक्त पदावली तो उसका अर्थात् काव्य का शरीर मात्र है। स्पष्ट है दण्डी केवल शब्दार्थ को काव्य नहीं मानते क्योंकि उनके अनुसार शब्दार्थ तो काव्य का शरीर मात्र है, उसकी आत्मा नहीं। दण्डी अलंकारवादी आचार्य थे और अलंकार को काव्य की आत्मा मानते थे। दण्डी के अनुसार, वह शब्दार्थ जो अलंकार युक्त हो, काव्य है। अलंकार विहीन शब्दार्थ दण्डी के विचार से काव्य नहीं कहा जा सकता।

आचार्य वामन (8 वीं शताब्दी)

रीति सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य वामन अपने ग्रन्थ 'काव्यालंकार सूत्रवृत्ति' में काव्य की निम्न परिभाषा दी है। 'गुणालंकृतयों शब्दार्थौ काव्य शब्दो विद्यते।' अर्थात् गुण और अलंकार से युक्त शब्दार्थ ही काव्य के नाम से जाना जाता है।

आचार्य मम्मट (12 वीं शताब्दी)

संस्कृत काव्य धारा के प्रमुख विद्वान् आचार्य मम्मट ने अपने ग्रन्थ 'काव्यप्रकाश में काव्य की निम्न परिभाषा दी है, "तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृति पुनः क्वापि।" अर्थात् काव्य वह शब्द और अर्थ जो दोष से रहित हो, गुण से रहित हो तथा कभी-कभी अलंकार से रहित भी हो सकता है।

आचार्य विश्वनाथ (14 वीं शताब्दी)

साहित्य दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने मम्मट के काव्य लक्षण का तर्कपूर्ण खण्डन किया है। उन्होंने काव्य की निम्न परिभाषा प्रस्तुत की है। 'वाक्यरसात्मकंकाव्यम्' अर्थात् रस से पूर्ण वाक्य ही काव्य है। इस परिभाषा से स्पष्ट है कि आचार्य विश्वनाथ ने रस को ही काव्य का प्रमुख तत्त्व माना है जबकि पूर्ववर्ती आचार्यों ने गुण सम्पन्ना और सालंकारिता पर अधिक बल दिया था।

पण्डितराज जगन्नाथ (17 वीं शताब्दी)

पण्डितराज जगन्नाथ ने अपने ग्रन्थ रस गंगाधर में काव्य लक्षण को निम्न शब्दों में व्यक्त कियाः "रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्" अर्थात् रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाला शब्द ही काव्य है। इस परिभाषा में रमणीय शब्द अस्पष्ट है। बाबू गुलाबराय ने रमणीय का अर्थ मन को रमाने वाला, लीन करने वाला बताया है। रस में लीन मन आनन्द से व्याप्त हो जाता है।

नाट्यशास्त्र - मृदुललितपदाढयं गूढशब्दार्थहीनं जनपदसुखबोध्यं युक्तिमन्नृत्ययोज्यं ।
बहुकृतरसमार्ग संधिसंधानयुक्तं सभवतिशभकाव्यंनाटक प्रेक्षकाणाम् ।।

अग्निपुराण - संक्षेपाद् वाक्यमिष्टार्थं व्यवच्छिन्ना पदावली।
काव्यं स्फुरदलंकारं गुणवददोष वर्जितम् ।।

कुन्तक - शब्दार्थौ सहितौ वक्र कविव्यापारशालिनी।
बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाहलादकारिणी।।

जयदेव - निर्दोषगुणालंकार लक्षणरीतिवृत्तं वाक्यं काव्यम् ।।

हेमचन्द - अदोषौ सगुणौ सालंकारौ च शब्दार्थौ काव्यम् ।।

भोजराज - अदोषौ गुणवत्काव्यं अलंकारैरलंकृतम् ।
रसान्वितं कविः कुर्वन् कीर्तिं प्रीतिं च विन्दति।।

आनन्दवर्धन - काव्यास्यात्मा ध्वनिः ।।

आनन्दवर्धन - सहृदय हृदयहलादि शब्दार्थमयत्वमेय काव्यलक्षणम्

आचार्य वामन - रीतिरात्मा काव्यस्य

रुद्रट - 'ननु शब्दार्थौ काव्यम्'

हिन्दी आचार्यों के काव्य लक्षण

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का काव्य लक्षण शुक्ल जी ने अपने निबन्ध संग्रह चिन्तामणि भाग-1 के निबन्ध 'कविता क्या है" में काव्य की परिभाषा देते हुए लिखा है "जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्त साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है उसे कविता कहते हैं।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी "किसी प्रभावोत्पादक और मनोरंजक लेख बात या वक्तृता का नाम कविता है।" इस अर्थ में कविता अत्यन्त व्यापक हो जाती है। वह गद्य और पद्य दोनों ही रूपों में हो सकती है तथा दो गुण होने चाहिए प्रभाव डालने की क्षमता और आनन्द प्रदान करने की शक्ति।

बाबू गुलाबराय "काव्य संसार के प्रति कवि की भाव प्रधान मानसिक प्रतिक्रियाओं की श्रेय को प्रेय देने वाली अभिव्यक्ति है।"

आचार्य केशवदास "जदपि सुजाति सुलक्षणी, सुबरन सरस सुवृत्त ।

भूषन बिनु न बिराजई कविता बनिता मित्त ।।"

चिंतामणि "सगुनालंकार सहित दोष रहित जो होई।
शब्द अर्थ ताको कवित्त कहत बिबुध सब कोई।।"

कुलपति मिश्र "जगते अद्भुत लोकोत्तर चमत्कार यह लक्षण मैं करयौ।"

ठाकुर कवि "पंडित और प्रवीनन को जोह चित्त हरै सो कवित्त कहावै"

कुलपतिमिश्र (रस रहस्य) "जगत अद्भुत सुखसदन, सब्दरु अर्थत कवित्त ।
वह लच्छण मैने कियो, समूझि ग्रंथ बहुचित्त।"

देव (काव्य रसायन) "शब्द जीव तिहि अरथ मन, रसमत सुजस सरीर।
चलत वहै जुग छंद गति, अलंकार गंभीर ।।"
सुनि परैसो शब्द है, समुझि परै सो अर्थ

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी "अन्तःकरण की वृत्तियों के चित्र का नाम कविता है।"

आचार्य रामचंद्र शुक्ल "अव्यक्त की अभिव्यक्ति जगत है अतः कविता अभिव्यक्ति की अभिव्यक्ति हुई।"

आचार्य रामचंद्र शुक्ल "जगत का नाना वस्तुओं-व्यापारों का एक रूप में रखना कि वे हमारे भाव चक्र के भीतर आ जायें। यही काव्य का लक्ष्य होता है।"

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी "काव्य तो प्रकृत मानव अनुभूतियों का नैसर्गिक कल्पना के सहारे ऐसा सौन्दर्यमय चित्रण है, जो मनुष्यमात्र में स्वभावतः भावोच्छवास और सौन्दर्य संवेदन उत्पन्न करता है।"

हजारी प्रसाद द्विवेदी "साहित्य मनुष्य के अन्तर का उच्छलित आनन्द है, जो उसके अन्तर में अटाए नहीं अट सका था। साहित्य का मूल यही आनन्द का अतिरेक है। उच्छलित आनन्द के अतिरेक से उद्धृत सृष्टि ही सच्चा साहित्य है।"

नगेन्द्र "आत्माभिव्यक्ति ही वह मूल तत्त्व है, जिसके कारण कोई व्यक्ति साहित्यकार और उसका कृति साहित्य बन पाती है।"

रामविलास शर्मा "साहित्य जनता की वाणी है। उसके जातीय चरित्र का दर्पण है। प्रगति पथ में बढ़ने के लिए उसका मनोबल है। उनकी सौन्दर्य की चाह पूरी करने वाला साधन है।"

अज्ञेय "कविता सबसे पहले शब्द है और अन्त में भी यही बात रह जाती है कि कविता शब्द है।"

पंत "साहित्य अपने व्यापक अर्थ में, मानव जीवन की गम्भीर व्याख्या है।"

पंत "कविता हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी है।"

धूमिल "कविता शब्दों की अदालत में अपराधियों के कटघरे में खड़े एक निर्दोष आदमी का हलफनामा है।"

धूमिल "कविता भाषा में आदमी होने की तमीज है।"

पाश्चात्य समीक्षकों द्वारा निर्दिष्ट काव्य लक्षण

ड्राइडन "स्पष्ट संगीत कविता है।" ।
जान्सन "छन्दमयी वाणी कविता है।"
मैथ्यू आरनोल्ड "सत्य तथा काव्य सौंदर्य के सिद्धान्तों द्वारा निर्धारित उपबंधों के अधीन जीवन की समीक्षा का नाम काव्य है।"
जान मिल्टन "सरल, प्रत्यक्ष तथा रागात्मक अभिव्यक्ति काव्य है।"
वर्ड्सवर्थ "शान्ति के क्षणों में स्मरण किये हुए प्रबल मनोवेगों का सहज उच्छलन कविता है।"
एडगरे एलन "काव्य सौन्दर्य की लयपूर्ण सृष्टि है।"
मैथ्यू आर्नल्ड "कविता मूल रूप से जीवन की आलोचना है।"
कालरिज "सर्वोत्तम् व्यवस्था में सर्वोत्तम शब्द ही कविता है।" ।
हडसन "कविता कल्पना और संवेग के द्वारा जीवन की व्याख्या है।

निष्कर्ष उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि काव्य की सर्वमान्य परिभाषा दे पाना कठिन है, क्योंकि कविता प्रत्येक काल में अपना रूप बदलती है। विद्वान् अपने-अपने ढंग से काव्य की परिभाषा देते हैं तथा इन परिभाषाओं के आधार पर आधुनिक काल की नई कविता खरी नहीं उतरती।

संस्कृत के प्रख्यात काव्यशास्त्री - शास्त्रीय ग्रंथ (कालक्रमानुसार)

आचार्य- ग्रन्थ
काल

भरत-नाट्यशास्त्र

दूसरी शती ई. पू. से दूसरी शती ई. के बीच (अनुमानतः)

भामह-काव्यालंकार मेघाविरुद्ध-'अलंकार ग्रंथ' -
छठवीं शती का मध्याकल

दण्डी-काव्यादर्श
सातवीं शती का उत्तरार्द्ध

कक्कोक-रतिरहस्य

वामन-काव्यालंकारसूत्रवृत्तिः
आठवीं-नौवीं शती के बीच

उद्भट-'काव्यालंकार सारसंग्रह -
नौवीं शती का पूर्वार्द्ध

शंकुक -नाटयशास्त्र की टीका
नौवीं शती का आरम्भ

आनंदवर्धन-ध्वन्यालोक
नौवीं शती का मध्यभाग (980-1020 ई.)

रुद्रट-काव्यालंकार
नौवीं शती

रुद्रभट्ट-शृंगारतिलक
दसवीं शती

राजशेखर-काव्यमीमांसा
880-920 के बीच

धनंजय- दशरूपक
दसवीं शती

भट्टनायक-हृदयदर्पण
दसवीं शती का मध्यकाल

लोल्लट
उद्भट और अभिनवगुप्त के बीच

अभिनवगुप्त-अभिनवभारती, ध्वन्यालोकलोचन -
दसवीं-ग्यारहवीं शती

कुंतक-(कुन्तला)-वकोक्ति जीवितम्
दसवीं-ग्यारहवीं शती

भोजराज-शृंगारप्रकाश, सरस्वतीकंठाभरण -
ग्यारहवीं शती का पूर्वार्द्ध

सागरनंदी-नाटकलक्षणकोश
ग्यारहवीं शती आरम्भ
महिमभट्ट-व्यक्तिविवेक
ग्यारहवीं शती का मध्यकाल

क्षेमेन्द्र-कविकंठाभरण, औचित्य विचारचर्चा
ग्यारहवीं शती का उत्तरार्द्ध

मम्मट-काव्यप्रकाश
ग्यारहवीं शती का उत्तरार्द्ध बारहवीं

अग्निपुराण (काव्यशास्त्रीय भाग)
बारहवीं शती के निकट (अनुमानतः)

हेमचंद-काव्यानुशासन
बारहवीं शती

रामचंद्र-गुणचंद्र -नाट्यदर्पण
बारहवीं शती का पूर्वार्द्ध

शोभाकर मिश्र-अलंकार रत्नाकर
बारहवीं शती का मध्य

वाग्भट्ट (प्रथम)
बारहवीं शती का उत्तरार्द्ध

राजानक रुय्यक-अलंकार सर्वस्व
बारहवीं शती का मध्यकाल

जयदेव-चन्द्रालोक
तेरहवीं शती का मध्यभाग

शरदातनय-भावप्रकाशन
तेरहवीं शती का मध्यभाग
शिंगभूपाल-ररसार्णवसुधाक
तेरहवीं शती का मध्यकाल

विद्याधर-एकावली
तेरहवीं-चौदहवीं शती

विद्यानाथ-प्रतापरुद्रयशोभूषण
तेरहवीं-चौदहवीं शती

भानुदत्त-रसतरंगिणी, रसमंजरी
तेरहवीं-चौदहवीं शती

वाग्भट्ट (द्वितीय)-वाग्भट्टालंकार
चौदहवीं शती के आसपास

विश्वनाथ कविराज-साहित्यदर्पण
चौदहवीं शती

रूपगोस्वामी-उज्जवलनीलमणि, भक्तिरसामृत सिंधु

- पंद्रहवीं-सोलहवीं शती

केशवमिश्र-अलंकारशेखर
सोलहवीं शती का उत्तरार्द्ध

अप्पय दीक्षित-कुवलयानंद, चित्रमीमांसा -
सोलहवीं शती का मध्यभाग

जगन्नाथ-रसगंगाधर
सत्रहवीं शती का मध्यभाग

आचार्य विश्वेश्वर-अलंकार कौस्तुभ
अट्ठारहवीं शती

काव्य हेतु

'हेतु' का शाब्दिक अर्थ है कारण, अतः 'काव्य हेतु' का अर्थ हुआ काव्य की उत्पत्ति का कारण।
किसी व्यक्ति में काव्य रचना की सामर्थ्य उत्पन्न कर देने वाले कारण काव्य हेतु कहलाते हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि काव्य 'कार्य' है और 'हेतु' कारण है।

बाबू गुलाबराय ने काव्य हेतु पर विचार करते हुए लिखा है-"हेतु का अभिप्राय उन साधनों से है, जो कवि की काव्य रचना में सहायक होते हैं।"
भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य हेतुओं पर पर्याप्त विचार किया गया है और तीन काव्य हेतु माने गए हैं
1. प्रतिभा
2. व्युत्पत्ति (ज्ञान उपलब्धि के शास्त्रों का अध्ययन व लोक व्यव्हार)
3. अभ्यास
इनमें से प्रतिभा सर्वप्रमुख काव्य हेतु है जिसे काव्यत्व का बीज माना गया है। 'प्रतिभा' के अभाव में कोई व्यक्ति काव्य रचना नहीं कर सकता।
काव्य हेतुओं पर सर्वप्रथम 'अग्निपुराण' में विचार किया गया और प्रतिभा, वेदज्ञान तथा लोकव्यवहार को काव्य हेतु के रूप में स्वीकार किया गया।
नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा।
कवित्वं दुर्लभं तत्र, शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा।। -अग्निपुराण

अर्थात् "लोक में नरत्व दुर्लभ है और उसमें विद्यावान नर होना दुर्लभ है। कवित्व परम दुर्लभ है और कविता करने की शक्ति (प्रतिभा) तो और भी दुर्लभ है।"
संस्कृत काव्यशास्त्र में आचार्यों ने 'काव्य हेतु' पर पर्याप्त विचार-विमर्श किया है। यहां हम प्रमुख संस्कृत आचार्यों के 'काव्य हेतु' से सम्बन्धित मत कालक्रमानुसार प्रस्तुत कर रहे हैं।

1. आचार्य भामह का मत - आचार्य भामह ने अपने ग्रन्थ 'काव्यालंकार' में स्वीकार किया है कि गुरु के उपदेश से जड़ बुद्धि भी शास्त्र अध्ययन करने में समर्थ हो सकता है, किन्तु काव्य तो किसी 'प्रतिभाशाली' द्वारा ही रचा जा सकता है।
गुरुदेशादध्येतुं शास्त्रं जडधिमोडप्यलम् ।
काव्यं तु जायते जातु कस्यचित् प्रतिभावतः ।।
निश्चय ही भामह 'प्रतिभा' को काव्य का प्रधान हेतु स्वीकार करते हैं, किन्तु एक अन्य श्लोक में वे स्वीकार करते हैं कि "शब्दशास्त्र को जानने वालों की सेवा और उपासना करके, शब्द का तथा शब्दार्थ का ज्ञान करके तथा अन्य कवियों के कृतित्व का अध्ययन करके ही काव्य रचना में प्रवृत्त होना चाहिए।"
स्पष्ट है कि भामह 'प्रतिभा' के साथ-साथ व्युत्पत्ति (शास्त्र ज्ञान) एवं अभ्यास को भी काव्य हेतुओं में स्थान देने के पक्षधर हैं।
2. आचार्य दण्डी का मत - आचार्य दण्डी ने अपने ग्रन्थ 'काव्यादर्श' में प्रतिभा, आनन्द अभियोग (अभ्यास) और लोकव्यवहार एवं शास्त्रज्ञान को काव्य हेतुओं के रूप में मान्यता दी है। उनके अनुसार :

नैसर्गिकी च प्रतिभा श्रुतं च बहु निर्मलम् ।
आनन्दाश्चयाभियोगो अस्याः कारणं काव्य सम्पदा।।

अर्थात् "नैसर्गिक प्रतिभा, निर्मल शास्त्र ज्ञान और बढ़ा-चढ़ा अभ्यास काव्य सम्पत्ति में कारण होते है।" नैसर्गिक प्रतिभा से उनका तात्पर्य जन्मजात प्रतिभा से है, जो ईश्वर प्रदत्त होती है। इस प्रतिभा को अर्जित नहीं किया जा सकता। प्रतिभा के अभाव में निम्नकोटि की काव्य रचना निरन्तर अभ्यास एवं शास्त्र ज्ञान से हो सकती है।
3. आचार्य वामन का मत - आचार्य वामन ने अपने ग्रन्थ 'काव्यालंकार सूत्रवृत्ति' में प्रतिभा को जन्मजात गुण मानते हुए इसे प्रमुख काव्य हेतु स्वीकार किया है :

"कवित्व बीजं प्रतिभानं कवित्वस्य बीजम्"

वे लोक व्यवहार, शास्त्रज्ञान, शब्दकोश आदि की जानकारी को भी काव्य हेतुओं में स्थान देते हैं। एक अन्य स्थान पर वे काव्य हेतुओं में प्रतिभा को कवित्व का बीज स्वीकार करते हैं जो जन्म-जन्मान्तर के संस्कार से शक्ति रूप में कवि में विद्यमान होती है। अभियोग, वृद्ध सेवा, अवेक्षण, अबधान आदि से ही उत्तम काव्य का निर्माण कर सकना सम्भव हो पाता है।

4. आचार्य रुद्रट का मत - आचार्य 'रुद्रट' ने अपने ग्रन्थ 'काव्यालंकार' में प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास को काव्य हेतु स्वीकार किया है। प्रतिभा के वे दो भेद मानते हैं- सहजा और उत्पाद्या। सहजा प्रतिभा कवि में जन्मजात होती है और यही काव्य निर्माण का मूल हेतु है जबकि उत्पाद्या प्रतिभा लोकशास्त्र एवं अभ्यास से व्युत्पन्न होती है। यह सहजा प्रतिभा को संस्कारित करती है।

5. आचार्य मम्मट का मत - आचार्य 'मम्मट' ने अपने ग्रन्थ 'काव्यप्रकाश' में काव्य हेतुओं पर विचार करते हुए लिखा है।

शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्र काव्याद्यवेक्षणात् ।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे ।।

अर्थात् काव्य के तीन हेतु हैं-शक्ति, (प्रतिभा), लोकशास्त्र का अवेक्षण तथा अभ्यास । वे एक अन्य स्थान पर यह भी कहते हैं-"शक्तिः कवित्व बीजरूपः" अर्थात् 'शक्ति' काव्य का बीज संस्कार है, जिसके अभाव में काव्य रचना सम्भव ही नहीं है। जिसे अन्य आचार्य 'प्रतिभा' कहते हैं, उसी को मम्मट ने 'शक्ति' कहा है।

6. केशव मिश्र - 'प्रतिभा कारणं तस्य व्युत्पत्ति विभूषणं' अर्थात् "प्रतिभा काव्य का कारण है तथा व्युत्पत्ति उसे विभूषित करती है।"

7. हेमचन्द्र - इन्होंने अपने ग्रन्थ 'शब्दानुशासन' में लिखा है-"प्रतिभाऽस्य हेतुः प्रतिभा नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा" अर्थात् "प्रतिभा काव्य का हेतु है, तथा नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा को प्रतिभा कहते हैं।"

8. राजशेखर - "प्रतिभा व्युत्पत्ति मिश्रः समवेते श्रेयस्यौ इति" अर्थात् प्रतिभा और व्युत्पत्ति दोनों समवेत रूप में काव्य के श्रेयस्कार हेतु हैं। वे प्रतिभा के दो भेद स्वीकारते हैं-(i) कारयित्री, (ii) भावयित्री। कारयित्री प्रतिभा जन्मजात होती है तथा इसका सम्बन्ध कवि से है। भावयित्री प्रतिभा का सम्बन्ध सहृदय पाठक या आलोचक से है।

9. पण्डितराज जगन्नाथ -इन्होंने अपने ग्रन्थ 'रस गंगाधर' में 'प्रतिभा' को ही प्रमुख काव्य हेतु स्वीकार किया है:

"तस्य च कारणं कविगता केवलं प्रतिभा"

उक्त विवेचन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि काव्य के तीन प्रमुख हेतु हैं -

1. प्रतिभा, 2. व्युत्पत्ति, 3. अभ्यास।

काव्य हेतुओं का स्वरूप

(i) प्रतिभा - प्रतिभा वह शक्ति है जो किसी व्यक्ति को काव्य रचना में समर्थ बनाती हैं। राजशेखर ने प्रतिभा के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा है-सा शक्तिः केवल काव्य हेतुः ।

आचार्य भट्टतीति के अनुसार प्रतिभा उस प्रज्ञा का नाम है जो नित नवीन रसानुकूल विचार उत्पन्न करती है :

'प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मताः'

आचार्य वामन का मत है कि प्रतिभा जन्म से प्राप्त संस्कार है जिसके बिना काव्य रचना सम्भव नहीं है। अर्थात् अभिनव गुप्त ने प्रतिभा की परिभाषा करते हुए लिखा है-'प्रतिभा अपूर्व वस्तु निर्माण क्षमा प्रज्ञा'

अर्थात् प्रतिभा प्रज्ञा का वह रूप है जिसमें अपूर्व की सृष्टि करने की क्षमता होती है। कवि इसी के बल पर काव्य-सर्जना में समर्थ होता है।

वक्रोक्ति सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य कुन्तक ने प्रतिभा उस शक्ति को माना है जो शब्द और अर्थ में अपूर्व सौन्दर्य की सृष्टि करती है, नाना प्रकार के अलंकारों, उक्ति वैचित्र्य आदि का विधान करती है।

प्रतिभा प्रथमोझेद समये यत्र वक्रता।

शब्दाभिभेय योरन्तः स्फुरतीव विभाव्यते।।

आचार्य मम्मट ने प्रतिभा को एक नया नाम दिया। वे इसे 'शक्ति' कहते हैं और काव्य का बीज स्वीकार करते हैं जिसके बिना काव्य की रचना असम्भव है।

'शक्तिः कवित्व बीज रूपः संस्कार विशेषः'

अर्थात् शक्ति (प्रतिभा) कवित्व का बीजरूप संस्कार विशेष है। जिसके बिना काव्य सृजन नहीं हो सकता।

आचार्यों ने प्रतिभा का जो स्वरूप यहां स्पष्ट किया है उससे हम निम्न निष्कर्ष निकाल सकते हैं :

(1) प्रतिभा काव्य का मूल हेतु है।

(2) यह ईश्वर प्रदत्त शक्ति है।

(3) प्रतिभा नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा है।

(4) प्रतिभा के बल पर ही कवि अपूर्व शब्दों, अपूर्व भावों, अलंकारों, उक्ति वैचित्र्य आदि का विधान करता है।

(5) प्रतिभा दो प्रकार की होती है-कारयित्री प्रतिभा और भावयित्री प्रतिभा।

कारयित्री प्रतिभा वह होती है जिसके बल पर कवि कविता लिखता है और भावयित्री प्रतिभा वह होती है जिसके बल पर कोई पाठक कविता को समझता है।

सभी आचार्यों ने प्रतिभा के महत्त्व को स्वीकार किया है और इसे काव्य का मूल हेतु माना है।

डॉ. नगेन्द्र ने प्रतिभा की असाधारण कोटि को मेधा मानते हए कहा है कि प्रतिभा को नीरस और साधारण वातावरण अच्छे नहीं लगते वह असाधारणता में खुलकर खेलती है।

(2) व्युत्पत्ति - व्युत्पत्ति का शाब्दिक अर्थ है निपुणता, पांडित्य या विद्वत्ता। ज्ञान की उपलब्धि को भी व्युत्पत्ति कहा गया है। यह ज्ञानोपलब्धि शास्त्रों के अध्ययन और लोक व्यवहार के अवेक्षण से होती है। विद्वानों का मत है कि साहित्य के गहन चिन्तन-मनन से कवि की उक्ति में सौन्दर्य का समावेश हो जाता है और उसकी रचना सुव्यवस्थित हो जाती है।

रुद्रट ने यह बताया है कि छन्द, व्याकरण, कला, पद और पदार्थ के उचित-अनुचित का सम्यक् ज्ञान ही व्युत्पत्ति कहा जाता है। आचार्य मम्मट ने व्युत्पत्ति को एक नया नाम दिया है-निपुणता। यह निपुणता चराचर जगत के निरीक्षण और काव्य आदि के अध्ययन से प्राप्त होती है। राजशेखर के अनुसार-उचितानुचित विवेकौ व्युत्पत्तिः । अर्थात् उचित-अनुचित का विवेक ही व्युत्पत्ति है।

संस्कृत आचार्यों ने व्युत्पत्ति को काव्य हेतुओं में दूसरा स्थान दिया है। व्युत्पत्ति के बल पर ही कोई व्यक्ति यह निर्णय कर पाता है कि किस स्थान पर किस शब्द का प्रयोग उचित होगा। सच तो यह है कि प्रतिभा और व्युत्पत्ति समवेत रूप में ही काव्य रचना के हेतु हैं। जैसे लावण्य के बिना रूप फीका लगता है वैसे ही रूप के बिना लावण्य भी आकर्षक नहीं लगता। लोक और शास्त्र का अध्ययन कवि को त्रुटियों से बचाता है। वर्ण्य विषय का ज्ञान, ऋतु ज्ञान, देश ज्ञान, भौगोलिक जानकारी आदि से कविता में त्रुटि आने की सम्भावना नहीं रहतीं अन्यथा मूर्ख कवि रेगिस्तान में धान की खेती का वर्णन कर सकता है। शब्द शिल्प और भाषा पर अधिकार बहुज्ञता से ही होता है अतः कवि को निरन्तर सजग रहने की आवश्यकता होती है तभी वह उत्तम काव्य की रचना करने में समर्थ हो पाता है।

(3) अभ्यास - काव्य निर्माण का तीसरा हेतु अभ्यास है। भामह ने लिखा है कि शब्दार्थ के स्वरूप का ज्ञान करके सतत अभ्यास द्वारा उसकी उपासना करनी चाहिए, साथ ही अन्य कवियों के कृतित्व का अध्ययन भी करना चाहिए। जिससे अभ्यास नित्यप्रति दृढ़ होता जाए। आचार्य वामन ने भी अभ्यास को महत्त्व देते हुए लिखा है-'अभ्यासोहि कर्मसु कौशलं भावहिति।
अर्थात् अभ्यास के द्वारा ही कवि कर्म में कुशलता प्राप्त की जा सकती है।
आचार्य दण्डी ने तो अभ्यास को ही काव्य का प्रमुख हेतु माना है। वे तो यहां तक कहते हैं कि प्रतिभा और व्युत्पत्ति के अभाव में केवल अभ्यास से ही काव्य रचना में कोई कुशल हो सकता है। सरस्वती की साधना से और शास्त्रों के श्रवण से कोई भी व्यक्ति सफल कवि बन सकता है। दण्डी की यह धारणा अन्य आचार्यों ने स्वीकार नहीं की। प्रतिभा के अभाव में काव्य रचना सम्भव ही नहीं है। फिर कोरा अभ्यास व्यक्ति को कैसे कवि बना सकता है, किन्तु अभ्यास के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। प्रारम्भ में प्रतिभा सम्पन्न कवि भी अच्छी कविता नहीं लिख पाते। निरन्तर अभ्यास से ही उनकी कविता निखरती है। जो कवि कीर्ति चाहते हैं उन्हें आलस्य को त्यागकर सरस्वती की उपासना और निरन्तर कवि कर्म का अभ्यास करते रहना चाहिए। अभ्यास के महत्त्व को निम्न शब्दों में स्वीकार किया गया है:

करत-करत अभ्यास के जडमति होत सुजान।
रसरी आवत जात तें सिंल पर परत निसान।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि प्रतिभा व्युत्पत्ति और अभ्यास ही प्रमुख काव्य हेतु हैं, किन्तु प्रतिभा सर्वप्रमुख है जिसे व्युत्पत्ति और अभ्यास से निरन्तर निखारा जा सकता है। वस्तुतः ये तीनों समन्वित रूप में ही काव्य के हेतु हैं जिन्हें अलग-अलग नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार पानी को बार-बार छानने से वह निर्दोष हो जाता है और बर्तन को बार-बार मांजने से वह चमक उठता है उसी प्रकार व्युत्पत्ति और अभ्यास से प्रतिभा को निर्दोष और आकर्षक बनाया जा सकता है।

छंद

छंद- छंद शब्द 'चद्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है - आह्लादित करना। छंद वह रचना है, जो वर्ण अथवा मात्रा की संख्या से नियमित हो। हिंदी साहित्यकोश के अनुसार अक्षर, अक्षरों की संख्या एवं क्रम मात्रा, मात्रा-गणना तथा यति-गति इत्यादि से संबंधित विशिष्ट नियमों से नियोजित पद्य-रचना 'छंद' कहलाती है।

- छन्द शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख हमारे आदिग्रन्थ ऋग्वेद के दशम मण्डल के 90 वें के नवें मंत्र में प्राप्त होता है।

-"छन्दः पादौ तू वेदस्य" अर्थात् छन्द को वेदपुरुष के 'पैर/पाद' अंग के रूप में स्वीकार किया जाता है।

-लौकिक साहित्य के अन्तर्गत आचार्य पिंगल छन्द शास्त्र के प्रवर्तक आचार्य माने जाते है तथा इनके द्वारा रचित 'छन्दःसूत्र' रचना छन्दशास्त्र की सर्वप्रथम रचना मानी जाती हैं।

छन्दों का वर्गीकरण - छन्दों को मुख्यतः दो श्रेणियों में विभाजित किया जाता है।

1. वैदिक छंद
2. लौकिक छंद

वर्ण -एक पूर्ण ध्वनि को वर्ण कहते हैं। यह दो प्रकार का होते हैं - लघु और गुरु ।

लघु - व्याकरण में इसे ह्रस्व कहते हैं। इसकी एक मात्रा मानी जाती है और इसका चिह्न (।) है। सभी मूल स्वर या मूल स्वर युक्त व्यंजन लघु माने जाते हैं। जैसे - अ, इ, उ, कि, कु, कृ, त्य, भ्य इत्यादि।

गुरु - व्याकरण में इसे दीर्घ कहते हैं। गुरु की मात्रा दो गुना होती है और इसका चिह्न (s) है। सभी दीर्घ स्वर या दीर्घ स्वरयुक्त व्यंजन गुरु माने जाते हैं। जैसे - आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः, का, की, कू, के, के, को, कौ, कं, कः इत्यादि।

मात्रा - वर्ण के उच्चारण में जो समय लगता है, छंदशास्त्र में उसे मात्रा कहते है। हस्व तथा दीर्घ वर्ण की मात्रा दो मानी जाती है।

चरण या पाद- किसी छंद की प्रधान यति पर समाप्त होनेवाली पूर्ण पंक्ति उसका एक 'चरण' या 'पाद' कहलाती है। सामान्यतः छंद में 4 चरण होते हैं तथा प्रत्येक चरण में मात्राओं एवं वर्गों की संख्या क्रमानुसार नियोजित रहती है।

क्रम - प्रत्येक सुगठित छंद का अपना क्रम होता है और वह मात्रा अथवा गणों की संख्या से लयबद्ध होता है। वर्ण या मात्रा की इसी व्यवस्था को क्रम कहते हैं। दूसरे शब्दों में, छंद में कहाँ लघु वर्ण हो और कहाँ गुरु वर्ण हो वर्गों की इस व्यवस्था को क्रम कहते है।

यति-यति का अर्थ - विराम या ठहराव । लयानुकूल विरामों को यति कहते है। प्रत्येक छंद लयबद्ध होता है। लय के अनुकूल छंद को पढ़ते समय पाठक को सांस लेने, रूकने अथवा विराम लेने के लिए उसमें जो ठहराव स्थल होते हैं, उन्हें 'यति' या विराम कहते हैं।

गति छंद के प्रवाह को 'गति' कहते हैं। छंद की गेयता उसको अलौकिकता या कमनीयता प्रदान करती है। यदि गण, मात्रा आदि छंद अंग हैं तो गति उसका जीवन है। गति का निश्चय कवि के पाठ एवं समय-बोध पर निर्भर है।

गति का महत्त्व वार्णिक छंदों की तुलना में मात्रिक छंदों में अधिक होता क्योंकि वर्कित छंदों में लघु-गुरु का स्थान निश्चित होता है।

लघु	ल	i
गुरु	ग	s

इस प्रकार चिह्न अक्षर 10 हैं और यही 'पिंगल' के दक्षाक्षर' कहे जाते हैं।

छंद के भेद

- छंदों को मुख्यतः दो श्रेणियों में विभाजित किया जाता है।

1. वैदिक छंद 2. लौकिक छंद

(अ) वैदिक छंद - वेद ग्रंथों के अन्तर्गत प्रयुक्त होने वाले छंद वैदिक छंद कहलाते है। ये सात प्रकार के माने जाते है। (ब) लौकिक छंद - लौकिक साहित्य के अन्तर्गत प्रयुक्त होने वाले छंद लौकिक छंद कहलाते हैं। लौकिक छंद भी दो प्रकार के माने जाते है।

(i) मात्रिक या जाति छंद (ii) वर्णिक या वृत्त छंद

1. मात्रिक या जाति छंद - जिस छंद की गणना मात्राओं के आधार पर की जाती है, उसे मात्रिक या जाति छंद कहते है, जैसे - आर्या, दोहा, सोरठा।

2. वर्णिक या वृत्त छंद - जिस छंद की गणना वर्गों के आधार पर होती है, उसे वर्णिक या वृत्त छंद कहते हैं, जैसे शिखरिणी, मन्दाक्रान्ता, इन्द्रवज्रा, शार्दूल विक्रीडितम्, द्रुतविलम्बित, सवैया इत्यादि।

3. सम छंद - जिस छंद के चारों चरणों में समान लक्षण प्राप्त होते हैं, वह सम छंद कहलाता है, जैसे शिखरिणी, मन्दाक्रान्ता, द्रुतविलम्बित, सवैया, हरिगीतिका इत्यादि ।

4. अर्धसम छंद - जिस छंद के आधे-आधे चरणों में (प्रायः विषम व सम चरणों में) समान लक्षण प्राप्त होते हैं, वह अर्धसम छंद कहलाता है, जैसे - पुष्पिताग्रा, वियोगिनी, दोहा, सोरठा इत्यादि।

5. विषम छंद - जिस छंद के न तो सभी चरण समान होते हैं तथा न ही आधे-आधे चरण समान होते हैं अपितु अलग अलग संख्या में समानता प्राप्त होती है तो वह विषम छंद कहलाता है। जैसे उपजाति, छप्पय, कुण्डलिया इत्यादि।

6. साधारण छंद - वर्णिक छन्दों के अन्तर्गत प्रत्येक चरण में 1 से 26 तक वर्ण संख्या वाले छंद तथा मात्रिक छंदों के अन्तर्गत प्रत्येक चरण में 1 से 32 तक मात्रा संख्या वाले छंद साधारण छंद कहलाते है।

7. दण्डक छंद - वर्णिक छंदों के अन्तर्गत प्रत्येक चरण में 26 से अधिक वर्णसंख्या वाले छंद एवं मात्रिक छन्दों के अन्तर्गत प्रत्येक चरण में 32 से अधिक मात्रा संख्या वाले छंद दण्डक छंद कहलाते है।

मात्रा और वर्ण के विचार से छंद के मुख्यतः 2 भेद होते हैं मात्रिक और वर्णिक । मात्रिक छंदों में दोहा, सोरठा, रोला, चौपाई, बरवै, छप्पय, कुंडलिया इत्यादि प्रमुख हैं। वर्णिक छंदों में इन्द्रव्रजा, द्रुतविलम्बित, मंदाक्रान्ता मालिनी, शिखरिणी, सवैया, मत्तगयन्द, कवित्त इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

1. दोहा -

- यह 24 मात्राओं वाला मात्रिक अर्द्धसम छंद है।
- इसके प्रथम तथा तृतीय चरण में 13-13 एवं द्वितीय तथा चतुर्थ चरण में 11-11 मात्रायें होती हैं। अंत में लघु

(I) होना आवश्यक है।

- इसके विषम चरणों में के आदि में जगण आना वर्जित माना जाता है, जबकि सम चरणों के अंत में एक लघु वर्ण आना आवश्यक है।
- यति प्रत्येक चरण के अन्त में होती है। > तुक प्रायः सम चरणों में मिलती है।

उदाहरण -

मेरी भवबाधा हरो राधा नागरि सोय ।

ss ||s s |s ss s|| s| - 24 मात्रायें

जा तन की झाईं परै, स्याम हरित दुत होय ।।

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो छिटकाय ।

| | | | s s s | s | | s s | | s |

13 मात्रा 11 मात्रा

टूटे से फिर ना जुड़े, जुड़े गाँठ पड़ जाय।।

2. रोला -

- यह मात्रिक सम छंद होता है। -
- रोला छंद के प्रत्येक चरण में 11,13 मात्राओं के क्रम से यति होती है।
- इसमें कुल इसमें 24 मात्रायें होती हैं।
- इसमें तुक प्रायः दो-दो चरणों में मिलती है।

→ प्रायः इसके चरणांत में दो गुरु (ss) रखे जाते हैं, परन्तु ऐसा होना अनिवार्य नहीं है।

उदाहरण

जिसकी रज में लोट-लोटकर बड़े हुये हैं।

| | s || s s | s||| |s | s s - 24 मात्रायें

घुटनों के बल सरक-सरक कर खड़े हुए हैं।

हे देवी। यह नियम सृष्टि में सदा अटल है,

s s s || || | s | s |s | | | s

रह सकता है वही, सुरक्षित जिसमें बल है।

|| || s s | s | | s| || s || s

3. चौपाई -

- यह मात्रिक सम छंद है।

- चौपाई के प्रत्येक चरण में 16 मात्रायें होती है।
- >प्रत्येक चरण में अंत में जगण (ISI) और तगण (ssi) नहीं आना चाहिए।
- यति प्रत्येक चरण के अन्त में होती है।
- तुक सदैव पहले चरण की दूसरे चरण के साथ व तीसरे की चौथे चरण के साथ मिलती है।

इसके अंत में प्रायः दो गुरु (ss) रहते हैं।

उदाहरण -

मंगल भवन अमंगल हारी।

s || ||| | s || ss - 16 मात्रायें

द्रबहु सो दशस्थ अजिर बिहारी।।

जय हनुमान ज्ञान गुन सागर,

|| || s | s। || s || - 16 मात्रायें

जय कपीश तिहुँ लोक उजागर।

|| | s | || s | | s || - 16 मात्रायें

4. छप्पय -

- यह विषम मात्रिक छंद होता है। →
- >इसमें कुल 6 चरण होते है।
- » छप्पय मिश्र छंद है, जो रोला और उल्लाला के संयोग से बनता है।
- इसके छह चरणों में प्रथम चरण रोला के और दो चरण उल्लाला के होते हैं।
- >इसके प्रथम चार चरणों में 24-24 तथा अंतिम दो चरणों में 26-26 या 28-28 मात्राएँ होती है। > इसे 'गाथा' छंद भी कहा जाता है।

उदाहरण -

जिसकी रज में लोट लोटकर बड़े हुए हैं।

|| s || s s। s ||| |s |s s - 24 मात्राएँ

घुटनों के बल सरक-सरक कर खड़े हुए हैं।। (रोला)

परमहंस सम बाल्यकाल में सब सुख पाये।

जिसके कारण धूलभरे हीरे कहलाये।।

हम खेले कूदे हर्षयुक्त, जिसकी प्यारी गोद में।

|| s s s s s||| || s s s s | s - 28 मात्राएँ।

हे मातृभूमि, तुझको निरख, मग्न क्यों न हो मोद में।। (उल्लास)

5. कुंडलिया -

- यह विषम मात्रिक छंद होता है।
- इसमें कुल छह चरण होते है।
- मात्रिक छंदों में यह एक संयुक्त छंद है, जो दोहा और रोला के संयोग से बनता है।
- इसके छह चरणों में प्रथम दो चरण दोहा के तथा अंतिम चार चरण रोला के होते हैं।
- प्रत्येक चरण में 24-24 मात्राएँ होती हैं।
- इसे भी गाथा छंद कहा जाता है।

उदाहरण -

साईं बैर न कीजिये, गुरु पंडित कवि यार।
II S||| s।s || ।। || | - 24 मात्राएँ
बेटा, वनिता, पेरिया, यज्ञ करावन हार।। (दोहा) ।
यज्ञ करावन हार, राजमंत्री जो होई।
विप्र परोसी वैद्य, आप को तपै रसोई।
कह गिरधर कविराय, युगन ते यहि चली आई।
इन तेरह सों तरह, दिये बनि आवै साईं। (रोला)

6. द्रुतविलम्बित -

इसके प्रत्येक चरण में 12 वर्ण होते हैं।

- यह वर्णिक सम छंद होता है।
- इसके प्रत्येक चरण में 12 वर्ण होते है, जो क्रमशः नगण, भगण, भगण व रगण के रूप में लिखे जाते है।
- प्रत्येक चरण में बारह वर्ण होने के कारण यह जगती जाति का छंद माना जाता है।
- तुक प्रायः सम चरणों में मिलती है।
- इसमें यति प्रत्येक चरण के अन्त में होती है।

जिसका क्रम इस प्रकार होता है -

गण - न - भ - भ - र

उदाहरण -

दिवस का अवसान समीप था
||| || ।। s

गगन था कुछ लोहित हो चला

||| 5 || 5।। s ।s

तरु शिखा पर थी अब राजती,
।। ।s || 5 || s ।s

कमलिनी कुछ वल्लभ की प्रभा
||| 5 || s।। s ।s

7. कवित्त -

> यह दण्डक श्रेणी का वर्णिक सम छंद होता है।.
> इसके प्रत्येक चरण में 31 वर्ण होते हैं।
>इसमें 16,15 पर यति तथा अंतिम वर्ण गुरु (55) होता है।
> इसे 'मनहरण' या घनाक्षरी भी कहते हैं।
> इसमें 8, 8, 8, 7 वर्गों पर यति रखने का विधान होता है।
> इसमें लघु-गुरु आदि के नियम लागू नहीं होते हैं, केवल वर्गों की संख्या को गिना जाता है।

उदाहरण -
हरित हरित हार, हेरत हियो हेरात - 16 वर्ण

हरि हाँ हरिन नैनी° , हरि न कहूँ लहाँ।' - 15

वर्ण बनमाली ब्रज पर, बरसत बनमाली,

बनमाली दूर दुख, केशव कैसे सहौं ।

हृदय कमल नैन, देखि कै कमल नैन,

होहुँगी कमल नैनी, और हौं कहा कहौं।

आप घने घनस्याम, घन ही ते होते घन,

सावन के धौंस धन, स्या बिनु कौन रहौं।

डार द्रुम पलना बिछौना नव पल्लव के,

सुमन झिंगुला सौहैं तन छबि भारी दै।
पवन झुलावै केकी कीर बतरावे 'देव'
कोकिल हलावे हुलसावे कर तारी दै।
पूरित पराग सो उतारो करै राई नोन,
कंजकली नायिका लतान सिर मारी दै।
मदन महीप जू को बालक बसंत ताहि,
प्रातहि जगावत गुलाब चटकारी दै।।

8. गीतिका -

- यह मात्रिक सम छंद है।
- इसके प्रत्येक चरण में 26 मात्राएँ होती है।
- 14 और 12 पर यति और चरण की तीसरी, दसवीं, सत्रहवीं और चौबीसवीं मात्राएँ लघु होनी चाहिए।
- अंत में लघु-गुरु (15) होता है।
- प्रत्येक चरण के अन्त में क्रमशः एक लघु व एक गुरु वर्ण आना आवश्यक है।

» इसमें तुक पहले चरण की दूसरे चरण के साथ व तीसरे चरण की चौथे चरण के साथ मिलती है।

उदाहरण -

धर्म के मग में अधर्मी से कभी डरना नहीं

I S || S I S S S S S

चेतकर चलना कुमारग में कदम धरना नहीं

S III 115 ISIS III IIS 15

शुद्ध भावों में भयानक भावना भरना नहीं

S I S S S S I L S I L 115 15

बोध वर्द्धक लेख लिखने में कमी करना नहीं।।

S I S II S I 1 15 5 15 15 15

9. हरिगीतिका -

- >यह मात्रिक सम छंद होता है।
- प्रत्येक चरण में 28 मात्राएँ होती हैं।
- 16, 12 पर यति एव अंत में लघु - गुरु (ls) होता है।
- इसमें प्रत्येक चरण में 5 वीं, 12 वीं, 19 वीं व 26 वीं मात्रा लघु होती है।
- तुक प्रायः पहले चरण की दूसरे चरण से व तीसरे चरण की चौथे चरण से मिलती है।
- गीतिका के आरंभ में दो मात्राएँ जोडने से हरिगीतिका बन जाता है।

उदाहरण -

अधिकार खोकर बैठ रहना, यह महादुष्कर्म है

। । 5 । 5 । । । | || I s s s s । s

न्यायार्थ अपने बंधु को भी दण्ड देना धर्म है

5 5 1 1 1 5 S L s s si S S SLS

.इस ध्येय पर ही कौरवों औ पाण्डवों का रण हुआ

। । । । || s s । s s s ।। s । s

भव्य भारत वर्ष के कल्पान्त का कारण हुआ।

s s i S 1 1 5 S S S i s s il 15

10. उल्लाला छंद

- यह अर्धसम मात्रिक छंद होता है।
- इसके विषम चरणों में 15-15 व सम चरणों में 13-13 मात्राएँ होती है।
- इसमें यति प्रत्येक चरण के अंत में होती है।
- इसमें तुक सदैव सम चरणों में मिलती है।

उदाहरण -

हे शरणदायिनी देवि! तू, करती सबका त्राण है।

s ||| s |s | s || s || s s | 5.

15 13

हे मातृभूमि संतान हम, तू जननी तू प्राण है।।

s s | s | ss | || 5 || ss ss

15 13

ध्वनि सिद्धान्त

ध्वनि की परिभाषा - ध्वनिकार आनन्दवर्धन ने ध्वनि की परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की है -

प्रतीयमानं पुरन्यदेवं वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम् ।
यत् तत् प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवांगनासु।।

अर्थात् महाकवियों की वाणियों में वाच्यार्थ से भिन्न प्रतीयमान कुछ और ही वस्तु है, जो प्रसिद्ध अलंकारों अथवा प्रतीत होने वाले अवयवों से भिन्न, सहृदय सुप्रसिद्ध अंगनाओं के लावण्य के समान (अलग) प्रकाशित होता है। जिस प्रकार सुन्दरियों का सौंदर्य पृथक् दिखाई देने वाला समस्त अवयवों से भिन्न सहृदय नेत्रों के लिए अमृत तुल्य कुछ और ही तत्त्व है, इसी प्रकार वह (प्रतीयमान अर्थ) है और यह प्रतीयमान अर्थ तभी प्राप्त होता है, जहाँ अर्थ स्वयं को तथा शब्द अभिधेय अर्थ को गौण बनाकर उस अर्थ को प्रकाशित करते हैं। उस काव्य विशेष को विद्वानों ने 'ध्वनि' कहा है।

यथार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृत स्वार्थो ।
व्यक्तः काव्य विशेषः स ध्वनिरिति सुरिभिः कथितः ।।

अर्थात् जहाँ पर वाच्यार्थ, वाच्य अथवा वाचक प्रधानीभूत व्यंग्यार्थ को व्यक्त करते हैं, उस काव्य विशेष को ध्वनि कहते है। यह व्यंग्यार्थ मुख्यार्थ से श्रेष्ठ होना चाहिए। यद्यपि 'व्यंजना' शब्द व्याकरणों में बहुत पहले से प्रचलित था, परन्तु काव्य में उसका महत्त्व सर्वप्रथम आनन्दवर्धन द्वारा ही प्रतिपादित किया गया था। यह कार्य ध्वनिमत की स्थापना द्वारा सम्पन्न हुआ। आनन्दवर्धन इस व्यापार के मूल में शब्द की तीनों वृत्तियों को महत्त्व देकर व्यंग्यार्थ को मुख्यार्थ से श्रेष्ठ सिद्ध किया।

यत् तत् प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवांगनासु।। अर्थात् महाकवियों की वाणियों में वाच्यार्थ से भिन्न प्रतीयमान कुछ और ही वस्तु है, जो प्रसिद्ध अलंकारों अथवा प्रतीत होने वाले अवयवों से भिन्न, सहृदय सुप्रसिद्ध अंगनाओं के लावण्य के समान (अलग) प्रकाशित होता है। जिस प्रकार सुन्दरियों का सौंदर्य

पृथक् दिखाई देने वाला समस्त अवयवों से भिन्न सहृदय नेत्रों के लिए अमृत तुल्य कुछ और ही तत्त्व है, इसी प्रकार वह (प्रतीयमान अर्थ) है और यह प्रतीयमान अर्थ तभी प्राप्त होता है, जहाँ अर्थ स्वयं को तथा शब्द अभिधेय अर्थ को गौण बनाकर उस अर्थ को प्रकाशित करते हैं। उस काव्य विशेष को विद्वानों ने 'ध्वनि' कहा है।

यथार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृत स्वार्थो ।
व्यक्तः काव्य विशेषः स ध्वनिरिति सुरिभिः कथितः ।।

अर्थात् जहाँ पर वाच्यार्थ, वाच्य अथवा वाचक प्रधानीभूत व्यंग्यार्थ को व्यक्त करते हैं, उस काव्य विशेष को ध्वनि कहते है। यह व्यंग्यार्थ मुख्यार्थ से श्रेष्ठ होना चाहिए। यद्यपि 'व्यंजना' शब्द व्याकरणों में बहुत पहले से प्रचलित था, परन्तु काव्य में उसका महत्त्व सर्वप्रथम आनन्दवर्धन द्वारा ही प्रतिपादित किया गया था। यह कार्य ध्वनिमत की स्थापना द्वारा सम्पन्न हुआ। आनन्दवर्धन इस व्यापार के मूल में शब्द की तीनों वृत्तियों को महत्त्व देकर व्यंग्यार्थ को मुख्यार्थ से श्रेष्ठ सिद्ध किया।

जहाँ तक व्यंग्यार्थ का प्रश्न है, किसी भी शब्द अथवा वाक्य में व्यंग्यार्थ हो सकता है, परन्तु इस प्रकार के व्यंग्यार्थ को काव्य नहीं कह सकते चमत्कारी अथवा चारुत्व युक्त व्यंग्य को ही काव्य कहा गया है। यह व्यंग्यार्थ एक विलक्षण-अर्थ ही हुआ करता है, यह वाच्यातिशायी होता है। यह तो कुछ और ही (अन्यत् एव) है। यह विशिष्ट अर्थ प्रतिभाजन्य है, सुस्वादु (सरस) है, वाच्य के अतिरिक्त कुछ दूसरी ही वस्तु है, यही ध्वनन व्यापार होता है। यह काव्यविशेष का अर्थ है, अर्थ या शब्द या व्यापार वाच्यार्थ भी ध्वनन करता है, और शब्द भी। इस प्रकार व्यंग्य (अर्थ) भी ध्वनित होता है अथवा शब्द, अर्थ, व्यापार भी ध्वनन व्यापार है। इस प्रकार समुदाय शब्द अर्थ-वाच्य (व्यंजक) अर्थ और व्यंग्य अर्थ तथा शब्द और अर्थ का व्यापार ध्वनि है। अतः लोचनकार द्वारा दी गयी इस व्याख्या के आधार पर ध्वनि के पाँच व्युत्पत्यर्थ स्वीकार किए गए है -

ध्वनति ध्वनयति इति वा ध्वनि - जो ध्वनिवत करे व कराए, वह ध्वनि है। यह शब्द के लिए आता है। वाचक, लक्षक, व्यंजक तीनों प्रकार के शब्द जब किसी व्यंग्य अर्थ के व्यंजक होते हैं, तो ध्वनि कहे जाते हैं।

ध्वन्यत इति ध्वनि - जो ध्वनित हो वह ध्वनि है। इस कर्मप्रधान व्युत्पत्ति से ध्वनि शब्द रसादि व्यंग्यों का वाचक होता है। वस्तु, रसादि और अलंकार ध्वनित होते हैं। ये सब ध्वनि है।

ध्वन्यते अनेन इति ध्वनि - जिस कारण अर्थात् शब्द व्यापार या शब्द शक्ति द्वारा ध्वनि की उत्पत्ति होती है, वह ध्वनि है। इस प्रकार करण प्रधान ध्वनि शब्द से व्यंजना आदि शक्तियों का बोध होता है। प्रत्येक

शब्द और अर्थ के बीच सम्बन्ध स्थापित करने वाली एक-एक शक्ति होती है जो शब्द से अर्थ की उपस्थिति कराती है जिसका वर्णन क्रमशः अभिधा, लक्षणा और व्यंजना के नाम से हो चुका है।

ध्वननं ध्वनि - ध्वनित होना ध्वनि है। इस रूप में यह भाववाचक संज्ञा है। इससे वस्तु अलंकार और रसादि की सूचना समझी जाती है। अभिव्यंजन, ध्वनन, सूचन इसके समानार्थक शब्द है।

ध्वन्यत अस्मिन्निति ध्वनि - जिसमें वस्तु, अलंकार, रसादि ध्वनित हो, ध्वनि है। यह ध्वनि पद अधिकरण प्रधान है। यह शब्द गुणवाची विशेषण होकर काव्य शब्द के साथ समधिव्याव्हृत होता है। यह ध्वनि काव्य है, ऐसा व्यवहार इसी विग्रह पर अवलम्बित है।

इस प्रकार ध्वनि का प्रयोग पाँच अर्थों में होता है-व्यंजक शब्द, व्यंजक अर्थ, व्यंग्य शब्द, व्यंग्य अर्थ (व्यंजना-व्यंजना व्यापार) और व्यंग्य प्रधान काव्य | संक्षेप में ध्वनि का अर्थ है व्यंग्य, परन्तु पारिभाषिक रूप में यह व्यंग्य वाच्यातिशायी होना चाहिए। इस अतिशय्य अथवा प्राधान्य का आधार है चारुत्व अर्थात् रमणीयता का उत्कर्ष । अतएव वाच्यातिशायी का अर्थ हुआ वाच्य से अधिक रमणीय और ध्वनि का संक्षिप्त लक्षण हुआ-वाच्य से अधिक रमणीय व्यंग्य को ध्वनि कहते है।

ध्वनि के भेद

ध्वनि को दो भागों में बाँटा गया है-(1) अविवक्षितवाच्य (लक्षणामूला) ध्वनि और (2) विवक्षितवाच्य (अभिधामूला) ध्वनि । लक्षणामूला ध्वनि के भी दो भेद किए गए हैं अर्थान्तर संक्रमितवाच्य ध्वनि तथा अत्यन्त तिरस्कृत वाच्यध्वनि। इनके भी 'पदगत' और 'वाक्यगत' दो-दो भेद और किए गए है। यहाँ कुछ के उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

1. लक्षणामूला ध्वनि (अविवक्षित वाच्य)

(अ) अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि (पदगत) -

हरी-भरी सी दौड़-धूप
ओ जल माया की चल रेखा।

यहाँ कवि ने चिन्ता को सुखोत्पादक दौड़धूप के कारण 'हरी-भरी सी दौड़ धूप' बना दिया है। इस प्रक्रिया में कर्तृक्रिया सम्बन्ध तो है ही, अतः शब्द ने अपना अर्थ भी नहीं छोड़ा । अतः अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है। इससे यह ध्वनित होता है कि चिन्ता मनुष्य से दौड़-धूप कराती है। इस दौड़-धूप में व्यक्ति थकता नहीं है। अतः हरी-भरी और सुखोत्पादक है। यह 'दौड़-धूप तथा 'हरी-भरी' पद से ध्वनित किया गया है, क्योंकि चिन्ता न हरी-भरी होती है और न दौड़धूप ही। अतः यहाँ मुख्यार्थ में बाधा है। इसी प्रकार वाक्यगत ध्वनि का उदाहरण भी प्रस्तुत किया जा सकता है।

(आ) अत्यन्त तिरस्कृत वाच्यध्वनि (पदगत)

अरे कौन-से घनानंद का, चंचल सा तनमन तरसे।
वा सुजान के गीले अँगना, किसके आँसू जा बरसे।।

उपर्युक्त पंक्तियों में 'घनानंद' तथा 'सुजान' आदि पद लक्षणा-गर्भित है। आज के युग में सुजान व घनानंद का कोई सम्बन्ध नहीं है। घनानंद प्रसिद्ध कवि थे, जो सुजान से प्रेम करते थे। परन्तु सुजान ने उन्हें ठुकरा दिया था। यहाँ घनानन्द और सुजान ने अपना वास्तविक नाम (अर्थ) तिरस्कृत कर व्यथित प्रेमी तथा निर्मोही प्रेमिका का अर्थ धारण कर लिया है। ध्वन्यर्थ है-आज पावस के इन मत्त जलधरों को देखकर ऐसा लग रहा है कि जैसे प्रेमी का मन विरह से तड़प उठा और बादल के रूप में उसके आँसू उसकी प्रेमिका के आँगन में जा बरसे हों। यही आकुलता, विवशता आदि ध्वनित है। इसी प्रकार वाक्यगत अर्थान्तर संक्रमित वाच्यध्वनि का उदाहरण भी प्रस्तुत किया जा सकता है।

2. अभिधामूला (विवक्षित वाच्य) ध्वनि - अभिधामूला ध्वनि के दो भेद होते हैं -
असंलक्ष्यक्रम (रसध्वनि) तथा संलक्ष्यक्रम । संलक्ष्यक्रम | संलक्ष्यक्रम के दो भेद होते हैं-वस्तु और अलंकार ।

(अ) अभिधामूला असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि - इस ध्वनि के रस, भाव, रसाभास, भावाभास, भावशांति, भावोदय, भावशबलता, भावसंधि-ये आठ भेद किए जाते है। यहाँ एक उदाहरण शृंगार रस का उद्धृत है -

आजा अब तो ओ केवल-पात-चरन, चन्द्रवदन
साँस हर मेरी अकेली है, दुकेली कर दे।
सूने सपनों के गले डाल दे, गोरी बाँहें,
सर्द माथे पै जरा गर्म हथेली धर दे।

कवि ऐसे मदहोश वातावरण में अपनी प्रियतमा को आमंत्रित करता है-रात बडी नटखट है और शोख है, सावन की घटा आकाश पर छाई हुई है, परन्तु प्रियतमा के न आने से कवि की आकुलता बढ़ती चली जाती है। 'तो' पदांश कवि की व्याकुलता और अधीरता को ध्वनित कर रहा है। स्पष्ट है कि कवि अब और प्रतीक्षा नहीं कर सकता है। 'तो' इसकी सीमा है। अब तक तो तूने सताया है, अब तो कम से कम ऐसे में मेरी साँस दुकेली कर दे' से तात्पर्य है कि अब तो आजा और मेरा एकाकीपन अपना साथ देकर दूर कर दे। अतः यहाँ विप्रलम्भ शृंगार ध्वनित है।

(आ) अभिधामूला संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि - इसके तीन भेद किए गए हैं- शब्द शक्त्युद्भव, अर्थ शक्त्युद्भव और उभय शक्त्युद्भव । शब्दशक्ति मूलक ध्वनि के चार भेद हैं-पदगत वस्तु, वाक्यगत वस्तु, पदगत अलंकार और वाक्यगत अलंकार | इसी आधार पर इनके दो और भेद हमारी दृष्टि में किए जाने चाहिए-पदगत भाव और वाक्यगत भाव । अर्थशक्तिमूलक ध्वनि के भेद ध्वनि को प्रकाशित करने वाली वस्तु की प्रकृति के आधार पर तीन किए गए हैं -

1. स्वतःसम्भवी, 2. कविप्रौढ़ोक्ति मात्र सिद्ध, तथा 3. कविनिबद्धवक्तृ प्रौढोक्ति मात्र सिद्ध । इन तीनों में से प्रत्येक के वस्तु से वस्तु, वस्तु से अलंकार, अलंकार से अलंकार और अलंकार से वस्तु, कुल मिलाकर 12 भेद हुए। इसके अतिरिक्त प्रत्येक के पद, वाक्य और प्रबन्धगत तीन-तीन भेद करने से कुल मिलाकर 36 भेद हुए। कभी-कभी (आज के औद्योगिक एवं कम्प्यूटरीकृत युग के देखते हुए) रसादि भी इनके द्वारा प्रतीत हो सकते हैं। परन्तु हम इन सूक्ष्म कोटिकरण पर बल न देकर कुछ ही भेदों के उदाहरण विषय की स्पष्टता के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं।

1. शब्द शक्त्युद्भव-पदगत अलंकार ध्वनि ।

मोती का पानी था वो आनन्द भवन का वासी था
मुसलमान का काबा था, तो हिन्दू की वह काशी था।

यहाँ 'मोती' पद में श्लेष है। मोती मोतीलाल नेहरू तथा मुक्ता (मोती) दोनों के लिए आया है। व्यंग्य है-पं. जवाहरलाल नेहरू मोती के समान मोतीलाल नेहरू की शोभा थे। 'पानी' सामान्य धर्म है, जो दोनों की ध्वनि में है। अतः यहाँ पदगत अलंकार ध्वनि है।

2. अर्थ शक्त्युद्भव-स्वतः सम्भवी

नई फसल बोने का दिन है/ज्योति बीज बिखराओ,
नया मोङ इतिहास ले रहा, आगे कदम बढ़ाओ।

कवि नई फसल की बुआई के लिए जनता का आह्वान कर रहा है। अब बीज बिखराने का समय आ गया है। यहाँ फसल, बीज आदि वस्तु से कवि नए समाज के निर्माण आदि वस्तु को ध्वनित कर रहा है। कवि ने 'नया मोङ शब्द प्रयुक्त किया है। उसने समय की गति को पहचान कर ही नूतन समाज निर्माण की कल्पना की है। यह फसल, बीज आदि पद से ध्वनित है। अतः यहाँ पदगत वस्तु से वस्तु ध्वनित है।

3. कविप्रौढ़ोक्ति सिद्ध (वाक्यगत व वस्तु से वस्तु-)

बड़े-बड़े साम्राज्य क्षणों में फिर तो गारत होते,
राज अटारी के छज्जे मुण्डों की माल पिरोते।

देश की स्वतंत्रता के लिए क्रांति की घोर आवश्यकता है। क्रांति से जनहानि कितनी होगी, इसकी कल्पना असम्भव है। 'साम्राज्यों का गारत होना', 'छज्जों का मुंडों की माला पिरोना' आदि वाक्य कवि प्रौढ़ोक्ति है। इन वाक्यों से ही क्रांति की भीषणता (वस्तु) ध्वनित है।

4. कविनिबद्ध वक्तृप्रौढ़ोक्तिसिद्ध-वाक्यगत अलंकार से वस्तु -

अभी आग की देह जला दूं/पानी में भी आग लगा दूँ।
अभी चाँद तारों को नभ से/क्षण में तोङ यहाँ पर ला दूँ।

दरबारी के अलाउद्दीन से यह कहने पर कि पद्मिनी साध्वी है, सीता के समान है, वह हाथ में आने से पहले ही जल जाएगी, अलाउद्दीन मेघ के समान गरज उठा। उसने दरबारी से उपयुक्त कथन कहे। उपर्युक्त वाक्य अतिशयोक्तिपूर्ण हैं, परन्तु इन कथनों से अलाउद्दीन की असीम शक्ति (वस्तु) ध्वनित है।

आधुनिक युगीन काव्य में वस्तु ध्वनि का प्रयोग मन बहलाने के लिए नहीं किया गया, पर आज का कवि एक विचारक के रूप में सामने आता है। आज का विश्वबोध बदल चुका है। आज का समाज प्राचीन समाज से बहुत आगे निकल चुका है। सारी आनन्दवादी धारणाएँ खण्डित हो चुकी हैं। राजनीतिकरण (दूषित भी) औद्योगिक और कम्प्यूटरीकृत,

सामाजिक विषमताएँ और विसंगतियाँ, अन्तर्राष्ट्रीय दबाव और परिस्थितियों ने आज के मानव को इतना बदल दिया है कि वह प्रेम, करुणा, सौहार्द्र के स्थान पर अकुलाहट, छटपटाहट, कुढ़न, घुटन, संत्रास, एकाकीपन, अलगाव आदि भावों (संवेदनाओं) से आक्रांत हो चुका है। कौन कह सकता है कि प्राचीन काव्यशास्त्रियों या कवियों ने कभी इनकी कल्पना भी की होगी? अतः वस्तुध्वनि की प्रधानता स्वाभाविक है। ऐसे में ध्वनि सिद्धान्त ही हमारी सहायता कर सकता है। इसीलिए आज के काव्य में वस्तु से भाव, अनुभूतियाँ तथा संवेदनाएँ अधिक अभिव्यक्त हुई है। ध्वनिसिद्धांत में यह संशोधन आवश्यक है। उदाहरण के लिए महाकवि निराला की 'वह तोड़ती पत्थर' कविता को लें। यहाँ पत्थर तोड़ने वाली समस्त मजदूर-वर्ग की प्रतीक हैं। कविता के मध्य 'अट्टालिका' का वर्णन भी आता है, जिसमें वर्ग-विषमता की ध्वनि निकलती है। यहाँ 'वह पत्थर तोड़ने वाली' और 'अट्टालिका' के अन्दर रहने वाले वर्ग की कटुता ध्वनित है। चिलचिलाती धूप में हथौड़ से पत्थर तोड़ना और बार-बार उस ऊँची अट्टालिका में रहने वालों के प्रति क्रोध, घृणा, तिरस्कार आदि भावनाएँ जाग्रत होती है। कवि इस कविता द्वारा उन लोगों, जो समाज के शोषक है, के प्रति घृणा, क्रोध और तिरस्कार आदि भाव उत्पन्न करना चाहता है और उसका माध्यम है वह पत्थर तोड़ने वाली स्त्री। अतः यहाँ वर्गसंघर्ष (वस्तु) से भाव (घृणा, क्रोध आदि) ध्वनित है। आधुनिक काव्य में ऐसे अनेक उदाहरण देखने को मिल जायेंगे।

महत्त्वपूर्ण तथ्य -

ध्वनि सम्प्रदाय का विकास करने वाले प्रमुख आचार्य - आनंदवर्धन, अभिनवगुप्त, मम्मट, विश्वनाथ (ध्वन्यालोक), (ध्वन्यालोकलोचन), (काव्यप्रकाश), (साहित्यदर्पण) ध्वनि विरोधी आचार्य -

मुकुल भट्ट	अभिधावृत्ति मातृका
भट्ट नायक	हृदय दर्पण
महिम भट्ट	व्यक्ति विवेक
कुन्तक	वक्रोक्तिजीवितम्
धनंजय	दशरूपक

- ध्वनि-सिद्धान्त के प्रवर्तक आचार्य आनंदवर्धन (9 वीं शताब्दी) माने जाते हैं।

-ध्वनिसिद्धान्त मूलतः व्याकरण के 'स्फोटवाद' पर आधारित माना जाता है।

-सामान्यतः जहाँ काव्य में अभिधेयार्थ (मुख्यार्थ या वाच्यार्थ) एवं लक्ष्यार्थ से अधिक रमणीय और चमत्कारपूर्ण अर्थ प्रकट हो रहा हो वहीं 'ध्वनि' की सत्ता मान्य होती है।
-आचार्य मम्मट ने काव्य के उत्तम (ध्वनिकाव्य), मध्यम (गुणी काव्य), अधम (चित्र काव्य) तीन भेद किये हैं और उत्तम काव्य को ही ध्वनि काव्य कहा है
- 'इदमुत्तममतिशयिनि व्यंग्यते वाच्याद् ध्वनिबुधैः कथितः'

नयी समीक्षा

नयी समीक्षा क्या है ?

समीक्षा का अर्थ है कि अच्छी तरह देखना या छानबीन करना । अतः समीक्षा के तीन अंग स्वीकार किए गए हैअध्ययन,विश्लेषण और निर्णय ।

नयी समीक्षा का प्रारम्भ टी.एस. इलियट ने सन् 1956 में प्रकाशित अपने निबंध से किया था। उसने कहा था कि लोग नयी समीक्षा शब्द का प्रयोग अक्सर यह बिना समझे करते हैं। कि इस शब्द में कितनी विवधता है। नये साहित्य के संदर्भ में ही इस समीक्षा की शुरूआत हुई।
बीसवीं शती के पूर्वार्ध में नयी समीक्षा (New criticism) की चर्चा आरम्भ हो गई थी। इसका मूलाधार था– कृति की सम्यक् समीक्षा, न कि साहित्यकार की आलोचना।

कविता को एक वस्तु मानते हुए उसके रूपात्मक विश्लेषण पर बल दिया गया। इस बात पर भी बल दिया गया कि ऐतिहासिक, सामाजिक अथवा नैतिक धारणाओं को कृति पर थोपने के बजाय, समीक्षक को कविता की संरचना के विश्लेषण पर ही ध्यान देना चाहिए और यह देखने का प्रयास करना चाहिए कि उसके रचनात्मक अवयव कितनी सुघडता के साथ परस्पर आबद्ध हैं। इस प्रकार नयी समीक्षा में विशेष बल विषय-वस्तु पर न रहकर रूप-रचना (Form) पर आ गया और किसी भी कृति के अर्थ-विधान और शब्द-विधान (Structure and Texture) को ही सर्वाधिक महत्त्व दिया गया। अतः समीक्षा में 'विषय' गौण हो गया और 'कला' प्रधान हो गई।

जहां स्वच्छंदतावाद में काव्य को व्यक्तिगत रागात्मक अभिव्यक्ति, अनुभूति की प्रस्तुति, भावावेगों का सहज उच्छलन माना जाता था, वहीं काव्य को मुख्य रूप से 'कलात्मक रचना नहीं माना गया।

इलियट ने यह स्पष्ट किया कि "Poetry is not the expression of personality but an escape from personality " कविता की सार्थकता का आधार ही रूप बन गया, अर्थ पीछे छूट गया। कविता में शब्द-विधान, भंगिमा, प्रतीक, रूपक आदि शिल्पगत तत्त्वों पर बारीकी से विचार हुआ। डूल्मे ने तो यहां तक कह डाला कि 'सरंचना' ही काव्य की उत्कृष्टता का आधार है-"Poetry is a matter of images and

mataphors not personal expression but craft " कविता के मूल्यांकन में उसके रूप, विधायक तत्त्व, विभिन्न घटक और उपकरणों का ही महत्त्व रह गया, शेष सब कुछ पीछे छूट गया।

काव्य-भाषा पर भी विचार हुआ, जिसमें शैलीविज्ञान (Stylistics) को विशेष उपयोगी समझा गया तथा काव्य-समीक्षा की शैली भी वैज्ञानिक अधिक हो उठी। 'शब्द' के विषय में यह माना गया है कि काव्य में शब्द-अर्थ का सामान्य प्रयोग न होकर, उसका विशेष और मूर्त प्रयोग होता है। शब्द-चयन योजना, बिंब-विधान, प्रतीक-विधान, सादृश्य-विधान, वर्ण-विन्यास, अलंकार-योजना, शब्दावृत्ति, नाद-सौंदर्य, लाक्षणिकता आदि के माध्यम से कवि शब्द प्रयोग में अर्थ की व्यंजना उभार देता है। इस आधार को सामने रखकर सहज भाषा के स्थान पर जटिल भाषा को महत्त्वपूर्ण माना गया और लक्षणा आदि को काव्य का मात्र अंलकरण न मानकर आत्म-तत्त्व माना गया-" Images are not mere decorations but the very essence of an intutive language "

भाषा-विषयक इस दृष्टिकोण के कारण ब्लैकमर जैसे आलोचकों ने भाषिक सरंचना की सुघडता को ही कविता की श्रेष्ठता-सफलता का आधार माना-"The success of a poem lies in the degree to which its language represents its substance" ऐतिहासिक, नैतिक, स्वच्छंदतावादी, मनोविश्लेषणात्मक तथा मार्क्सवादी समीक्षा पद्धतियों के विरोध में बौद्धिक विश्लेषण से परिपुष्ट वस्तुनिष्ट विश्लेषण को महत्त्व दिया गया, शब्दार्थ-विश्लेषण, रचना की आंतरिक अन्विति और उसके द्वारा सहृदय पाठक को अंतः प्रवृतियों के समीकरण आदि के विश्लेषण को आग्रहपूर्वक अपनाया गया। इस नयी समीक्षा का आधार हो गया-कविता की आत्मा की खोज न कर काव्य की संरचनात्मक अन्विति, अर्थात कविता के समग्र रूप और अंगों के अतः संबंधों का विश्लेषण कर उसकी जटिल संरचना का परीक्षण करना। काव्य भाषा के सौंदर्य-तत्त्वों-तनाव, अनेकार्थकता, सार्वभौम मूर्तविधान, संदर्भालोकित अर्थ-छायाओं, रूपक, बिंब, प्रतीक आदि-का विश्लेषण और उनमें विद्यमान अन्विति-सूत्रों को खोजना आलोचक का कार्य माना गया।

"The business of criticism must be to inspect the complexities of the work and the architectual relationship between the part and the whole experience which is the artifact"

शैलीविज्ञान और अर्थ-विज्ञान से प्रभावित यह समीक्षा-पद्धति, सब कुछ छोडकर संरचना-विधान पर ही केंद्रित हो उठी और समीक्षा का कर्तव्य निर्धारित करते हुए लिओ स्पिट्जर ने कहा, " कविता की रचना का आधार शब्द ही है-ये
शब्द अपने सामान्य अर्थ को सुरक्षित रखते हुए कवि-प्रतिभा के जादू से छंद के सांचे में ढलकर अतिशय अर्थ की सिद्धि कर लेते हैं; इस अर्थ-परिवर्तन की विधि का विवेचन करना आलोचक का कर्तव्य-कर्म है।" चलिए अब नामकरण के बारे में जानते है

सन् 1911 में जे. ई. स्पिगार्न के लेख ' दि न्यू क्रिटिसिज्म' (The new criticism) में इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग हुआ, पर उसको निश्चित रूप देने का श्रेय जॉन क्रो रैनसम को है, जिनकी पुस्तक 'दि न्यू क्रिटिसिज्म' (The new criticism) 1941 में सामने आई। जहां तक इसके उन्नायकों का प्रश्न है, तो फैंक रेमंड लीविस, एलेन टेट, क्लींथ ब्रुक्स, विलियम एम्पसन, जॉन फैंक करमोड आदि महत्त्वपूर्ण हैं।
इस सिंद्धात की झलक, पूर्व-प्रचलित सिंद्धातों-वादों-'कला कला के लिए' , 'अभिव्यंजना-वाद' और 'बिंबवाद'-में भी देखी जा सकती है। यथा-नयी समीक्षा की यह मान्यता कि 'कविता की स्वायत्त सत्ता है', 'कला कला के लिए' सिंद्धात से मेल खाती है; इसी प्रकार क्रोचे के अभिव्यंजनावाद से, उन्हीं की यह मान्यता कि 'कविता उक्ति है, विचार या भाव नहीं' , मेल खाती है। साथ ही बिंबवाद से उनका यह सूत्र भी मेल खाता है कि 'कविता एक विशेष मूर्त और गोचर पदार्थ है।'

क्या आप नयी समीक्षा की अवधारणा (सिंद्धात) के बारे में जानते है?

यह बात भी कही जाती है कि नयी समीक्षा की अवधारणा के संबंध में आलोचकों में मतभेद है, फिर भी डॉ. शांतिस्वरूप गप्त की मान्यता है कि-"वे सब मानते हैं कि आलोचक का कार्य है- कृति के समग्र रूप और अंगो के अंत; संबंधों का विश्लेषण कर उसकी जटिल संरचना का परीक्षण करना, काव्य-शरीर की जीवंत प्रक्रिया का अध्ययन करना, काव्य-भाषा के विभिन्न सौंदर्य-तत्त्वों का पाठ-विश्लेषण द्वारा संधान और विश्लेषण करना और यह बताना कि उन तत्त्वों से कविता का सौंदर्य किस प्रकार बढ़ गया है, छंद और लय का अध्ययन करना और बताना कि उनके कुशल प्रयोग द्वारा किस प्रकार अर्थ-गौरव समृद्ध हुआ है, काव्य का भावन कराने के लिए असंगत अर्थ में संगति बिठाना, अनुत्पन्न अर्थ को फिर से उत्पन्न करना, पाठक के चित्त में काव्यजन्य अनुभूति का पुनरुद्घोष कराने के लिए काव्य-भाषा के मर्म का उद्घाटन करना।" के. आर. श्रीनिवास आयंगर ने इस संबंध में स्पष्ट किया है

"Stay with the poem and do not go outside of it is the main tanet of the new criticism; it iaid stress on semantics, matter, imagery, metaphor and smbol, placing emphasis always on the isolated text disassociated from biography or historical tradition and background, sensitive analysis, masterly elucidation and an almost exhaustive particularity of detail have been the marks of best specimens of this criticism.....”

कृति का महत्त्व- इस समीक्षा पद्धति में कृतिकार और उसके परिवेश को महत्त्व न देकर मात्र 'कृति' को ही महत्त्वपूर्ण माना गया। उसकी सम्यक् समीक्षा पर बल दिया गया। इसमें रचनाकार के व्यक्तित्व, जीवन-वैशिष्ट्य, चिंतन-दर्शन, भाव-विचार तथा उसके परिवेश की चिंता नहीं की गई। काव्य में नीति-उपदेश कथन जैसे तत्त्वों की उपेक्षा की गई। यहां मात्र रचना के कलात्मक रचाव को एक स्वायत्त इकाई मानकर उसके रचनात्मक सौंदर्य का परीक्षण ही महत्त्वपूर्ण माना गया।

कृति की संरचना- किसी कृति की संरचना का मूलाधार उसकी भाषिक संरचना ही मानी गई, यही नयी समीक्षा का महत्त्वपूर्ण बिंदु है। भाषा का मूलाधार शब्द और अर्थ ही हैं। नयी समीक्षा पाठ-विश्लेषण पद्धति को अपनाकर उसके आधार पर विभिन्न प्रकार के शब्द-प्रयोगों की परख करती है। वह यह परखती है कि कवि द्वारा किस प्रकार शब्द-कौशल, वर्ण-योजना, शब्द-चयन, शब्द-गुंफन, बिब-प्रतीक-अलंकार विधान, नए-नए अर्थों-सदर्भो में प्रयुक्त शब्दों के माध्यम से रचना में विशिष्ट सौंदर्य समाहित किया गया है। वह यह भी परखती है कि किस प्रकार शब्दों के वक्र–प्रयोग, संदर्भ-विनिमय, क्रम-विपर्यत तथा लय-नाद-सौंदर्य द्वारा कविता में अर्थ वैशिष्ट्य लाया गया है।

नया समीक्षक शब्द-विधान (Texture) की बारीकियों को दिखलाता हुआ यह बताता है कि शब्दों का बक्र और रमणीय प्रयोग किस प्रकार अभीष्ट अर्थ की व्यंजना करता है। शब्द-अर्थ के जटिल अतर्कित संबंधों में संगति का संधान करना, शब्दार्थ के सौंदर्य का उद्घाटन करना, शब्द-विधान (Texture) का अर्थ-विधान (Structure) के साथ समन्वय स्थापित करना और यह बताना कि उसका काव्यार्थ की संरचना के साथ किस प्रकार आंतरिक संबंध है- ये सब नयी समीक्षा की प्रविधि के अंतर्गत आते हैं।
.इस प्रकार नयी समीक्षा की प्रविधि-प्रक्रिया के तीन सोपान हैं
1. रचना का वाक्यार्थ प्रस्तुत करना
2. शब्द-विधान की बारीकियों को दिखलाकर कवि-कौशल पर प्रकाश डालना और
3. शब्द-विधान का अर्थ-विधान के साथ समन्वय करते हुए रचना के मूल अर्थ को प्राप्त करना।

शैलीविज्ञान- भाषा एवं सरंचना के क्षेत्र में नयी समीक्षा ने वैज्ञानिक आधार ग्रहण किया, जिसमें शैलीविज्ञान के कई तत्त्व भी समाहित हो गए। यथा- वस्तुनिष्ठ समीक्षा पर बल देना, काव्य-भाषा की पूर्ण समीक्षा तथा पूर्ण निर्धारित मानदंडों की अस्वीकृति आदि ।

कृति की अंखडता- यह समीक्षा पद्धति कृति की अंखडता को महत्त्व देती है, जिसमें भाव-विचार और रूप-विचार की पृथक् सत्ता अमान्य है। यह इन दोनों पक्षों को खंड-खंड करके नहीं परखती। इसकी मान्यता है कि रूप-पक्ष, दोनों ही मिलकर एक समन्वित इकाई का निर्माण करते हैं, तभी 'रचना' रचना का रूप धारण करती हैं।

रूप-विधान- नयी समीक्षा रूप-विधान को ही महत्त्व देती है, जिसमें शब्द-विधान, प्रतीक-विधान, बिंब, लय, ध्वनि, भंगिमा, सादृश्य-विरोध, पर अलग-अलग विचार करने की पद्धति विकसित हो उठी, कविता में लय और बिंब को अधिक महत्त्व दिया गया। साथ ही शब्द-विधान को ही सौंदर्य का वाहक भी माना गया। इस प्रकार नयी समीक्षा का मूलोद्देश्य है-रूप-संरचना के सभी तत्त्वों का विवेचन-विश्लेषण और उससे प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर कृति का मूल्यांकन।

निरपेक्ष दृष्टि- इससे पूर्व की समीक्षा-पद्धतियां कृति, कृतिकार तथा सहृदय की प्रतिक्रिया आदि को आधार मानकर ही कार्यरत रही थीं। नयी समीक्षा ने इन दृष्टियों को अमान्य किया और इन्हें कृति के वास्तविक स्वरूप को समझने में बाधक बताया। साथ ही ऐतिहासिक सन्दर्भ में रचना को देखना और नैतिक दृष्टि से उसका मूल्यांकन करना भी अमान्य हो गया। कुल मिलाकर नयी समीक्षा काव्य के निरपेक्ष अस्तित्व को मान्यता देती है, क्योंकि इसकी दृष्टि में काव्य स्वतः एक सत्ता है, उसका स्वतंत्र अस्तित्व है, उसका विशिष्ट रूप है।

विरोधाभास एवं अनेकार्थकता- काव्य में विरोधाभास एवं अनेकार्थकता के तत्त्व महत्त्वपूर्ण हैं। इनके द्वारा कवि ऐसी भाषा का प्रयोग करता हैं जो जटिल एवं विविध अर्थ-छवियों को व्यंजित करती हुई रचना को समृद्ध बनाती है। इसकी व्याख्या करते हुए डेविड डैचिज ने कहा है - "कविता जिस विरोधाभास और द्वन्यर्थता के साथ किसी स्थिति को अभिव्यक्त करती है उसे रेखांकित करने के लिए नए आलोचक ने कविता की अपनी परिभाषा को और भी संकीर्ण कर दिया है। ये आलोचक कविता को गहराई के साथ और सूक्ष्मता की दृष्टि से पढ़ने की महत्ता पर बल देते हैं ताकि उसकी व्यंग्यात्मक अर्थ-छायाएं और विरोधाभासपरक विवक्षाएं स्पष्ट हो जाये, क्योंकि समुचित काव्याख्यान के लिए वे उन्हें अनिर्वाय मानते है।"

इस प्रकार कविता में व्यंग्य, प्रतीक एवं रूपक को महत्त्वपूर्ण माना गया। व्यंग्य चमत्कार की सृष्टि में सहायक है और अनुभव की कुटिलता की भी अभिव्यक्ति करता है। रूपक और प्रतीक अर्थगर्भिता और अनेकार्थकता की सृष्टि में सहायक हैं।
चलिए अब हम नयी समीक्षा की भी समीक्षा कर लेते है

पूर्व समीक्षा-पद्धतियों में भावोत्कर्ष, विचारोदात्य, नैसर्गिक उद्रेक, नैतिक प्रभाव तथा जीवन-दर्शन को भी परखा गया; साथ ही समूचे परिवेश (राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक तथा सामाजिक आदि) को भी परखा गया। पर नयी समीक्षा में काव्य की पूर्ण स्वायत्त सत्ता प्रतिष्ठित करके, साहित्येतर मूल्यों के आधार को ही अमान्य कर दिया गया। इस प्रकार नयी समीक्षा एक प्रकार की प्रतिक्रियात्मक समीक्षा-पद्धति मानी जा सकती है। साथ ही यह भी कहा गया कि साहित्य न तो उपदेश की वस्तु है और न मनोरजंन का आधार; उसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व और प्रयोजन है। पर यह चिंतन एकांकी माना गया, क्योंकि कृति को ही स्वतःपूर्ण रचना मानना और संरचना-विधान को ही महत्त्व देना तथा रचना के भाव-पक्ष और उसके कथ्य की उपेक्षा करना सम्यक् एवं पूर्ण मूल्यांकन नहीं माना जा सकता। मात्र रचना-विधान पर ही ध्यान केंद्रित होते ही जीवन और काव्य का संबंध परखना कठिन हो जायेगा और काव्य के अन्य सभी पक्ष-भाव-विचार, राग, अनुभूति, संवेग, कथ्य आदि-पीछे छूट जायेंगे।

रचना-विधान जितना जटिल होगा, काव्य भी उतना ही उत्कृष्ट होगा- यह मान्यता भी एकांगी है, क्योंकि जटिल रचना-विधान, बौद्धिक क्षमता संपन्न पाठकों के लिए भी बौद्धिक व्यायाम का कारण बनेगा और भावोत्कर्ष और सुरुचि-संपन्नता, संस्कार-क्षमता, सूक्ष्म मनोवेगों की व्यंजकता पर कवि बल ही नहीं दे

सकेगा। साथ ही इसमें मात्र शब्द प्रयोग पर ही बल दिया गया। भला अर्थ-विधान के अभाव में काव्य की संप्रेषणीयता की परख कैसे हो सकती है, क्योंकि काव्य का वास्तविक महत्त्व तो उसकी संप्रषणीयता में ही निहित हैं। जटिलता का प्रयोग असामान्य है, क्योंकि संसार के सभी श्रेष्ठ काव्यों में भाषा एवं संरचनागत सरलता को ही महत्त्व प्रदान किया गया है। इनकी धारणा से तो काव्य मात्र संरचना-विधान में ही सिकुडकर रह जायेगा। इलियट ने भी इस ओर संकेत करते हुए कहा है, "आलोचक रचना में अवगाहन कर भाव-मुक्ता खोज लाने के स्थान पर शब्दों का विश्लेषण करने में ही जुट जायेंगे और आलोचक 'नींबू-निचोड' बनकर रह जायेगा।" काव्य मात्र संरचनात्मक तत्त्वों का योग नहीं है, वह एक पूर्ण 'ईकाई है, जिसमें अनेक तत्त्व समाहित हैं- सबका सम्यक् विवेचन न करना काव्य को पूर्णतः समझने में ही बाधक सिद्ध होगा।

नयी समीक्षा ने वैज्ञानिक आधार ग्रहण किया और शैलीविज्ञान को आधार बनाया, यह एक नवीन दृष्टि है, पर इसके आधार पर काव्य में दुरूहता, अस्पष्टता, उलझाव भी समाहित हो सकता है, जो उसके रसास्वादन में सर्वथा बाधक हो सकता हैं। पाठक ऐसी रचना ही पढ़ना चाहता है जिसको पढ़ते-पढ़ते ही उसे पूर्ण रसानुभूति हो सके।

निर्वैयक्तिकता का सिद्धान्त- इलियट

20 वीं शताब्दी का समीक्षक - टी. एस. इलियट को 20 वीं शताब्दी का सर्वाधिक प्रभावशाली अंग्रेजी समीक्षक माना जा सकता है। इन्होंने पाश्चात्य समीक्षा को पर्याप्त प्रभावित किया है। कवि, कविता और साहित्य समीक्षा के प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर मत व्यक्त करने वाला यह प्रतिभाशाली समीक्षक विद्वानों की दृष्टि में पर्याप्त चर्चा का विषय रहा है। अनेक समीक्षक तो ऐसे हैं कि वे इन्हें भ्रमित समीक्षक मानते हैं, किन्तु साथ ही कुछ ऐसे जिज्ञासु भी हैं जो इनके समीक्षा सिद्धांतों के प्रति आस्था रखते हैं। एक बार इलियट ने अपने विषय में लिखा था कि मैं राजनीति में राजतंत्रवादी, धर्म में ऐंग्लो कैथौलिक और साहित्य में क्लासिकवादी हूँ। इलियट के इस कथन की पर्याप्त प्रतिक्रिया हुई और इसका सबसे बडा कारण यह था कि लोग इन्हें प्रतीकवादियों से प्रभावित मानते थे जो निश्चय ही स्वच्छन्दतावादी थे, किन्तु इलियट ने जब अपने को क्लासिकवादी कहा तो आश्चर्य की सीमा न रही। इलियट ह्यूम से पर्याप्त प्रभावित थे। उनका क्लासिकवाद बहुत कुछ उन्हीं की छाया में विकसित हुआ है।

कवि और समीक्षक - प्रायः देखा जाता है कि आधुनिक कवियों में से अधिकांश ऐसे हैं जो स्वयं समीक्षक बने रहना चाहते हैं। कवि का समीक्षक बनना अच्छी चीज नहीं है क्योंकि वह जो कुछ भी कहता है वह अपनी कविता के माध्यम से ही कहता है। इलियट का भी यही अभिमत है -"कवि निष्पक्ष समीक्षक नहीं होता है, वह जो कुछ भी विचार व्यक्त करता है, सीमा में आबद्ध रहकर, किन्तु उसका भी मूल्य है। हाँ, उसकी सीमा अवश्य है।" सच बात यह है कि कवि जो कुछ भी कहता है, वह अपनी कविता की भावना को ही बढ़ा-चढ़ाकर कहता है। यह कार्य निर्णायक का नहीं, वकील का हो सकता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि आलोचक को निर्णायक बनना चाहिए, परन्तु जब वह वकील बन जाता है तो निश्चय ही आलोच्य वस्तु

के प्रति पूरी ईमानदारी नहीं बरत सकता। कवि को इस बात के लिए तैयार रहना चाहिए कि उसकी कृति की समीक्षा होगी। इसलिए कवियों को अपने मत को पाठक के ऊपर लादने का आग्रह छोड़ देना चाहिए । इलियट के काव्य सिद्धांतों में जो सिद्धांत अधिक प्रचलित हैं, उनमें उनका क्लासिकवाद, वस्तुनिष्ठ समीकरण का सिद्धांत, परंपरा का सिद्धांत और कला की निर्वैयक्तिकता का सिद्धांत प्रमुख है।

कला की निर्वैयक्तिकता का सिद्धांत

इलियट ने परंपरा पर पर्याप्त जोर दिया और इस जोर का परिणाम यह निकला कि उसने एक दूसरी स्थापना की कि "कविता व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति न होकर उससे पलायन है। उसने स्पष्ट शब्दों में कहा कि "कवि व्यक्तित्त्व की अभिव्यंजना नहीं करता है, अपितु वह तो विशिष्ट माध्यम भर होता है। उसका मस्तिष्क तो 'प्लेटिनम के टुकड़े' के समान होता है" - The poet has not a personality to express, but a medium, The mind of a poet is the shred of platinum. "जब ऑक्सीजन और सल्फर डॉई ऑक्साइड दोनों रासायनिक वस्तुएँ प्लेटिनम की उपस्थिति में परस्पर मिलती है, तो वे सल्फर एसिड का रूप धारण कर लेती हैं। यह मिश्रण तभी संभव है जब प्लेटिनम उपस्थित रहता है। नवोत्पन्न एसिड में प्लेटिनस का कोई अंश नहीं आता है और प्लेटिनम पर भी कोई प्रभाव नही पड़ता, वह निष्क्रिय तटस्थ और अविकल बना रहता है।

इससे यही स्पष्ट होता है कि इलियट कवि मस्तिष्क को मात्र माध्यम भर मानते हैं। उनका कथन है कि मन के दो कार्य हैं तथा कलाकार का भोक्ता और स्पष्टा मन सदैव अलग-अलग रहता है। "Man who suffers and the mind which creates are quite separable." सहने वाला मन ही व्यक्तित्त्व है और वह कला-सृजन में प्लेटीनम के तार की तरह अपनी पूर्वावस्था में बना रहता है। अतः काव्य-सृजन की प्रक्रिया में यह व्यक्तित्व निष्क्रिय बना रहता है, किन्तु इसकी उपस्थिति अपेक्षित बनी रहती है तथा वह उपस्थिति ही अपने आप एक विचित्र प्रक्रिया द्वारा काव्यगत संवेदनाएँ और अनुभूतियाँ कला-कृतियों में परिणत हो जाती है। इस प्रकार वह अपने इस मत के द्वारा पहली बात तो यह कहना चाहता है कि कवि का व्यक्तित्त्व और उसकी कृतियाँ अलग-अलग चीजें है। मन जो स्रष्टा है, वह भोक्ता से अलग है। काव्यगत भाव का जीवनगत भाव से कोई सम्बन्ध नहीं है।

दूसरी प्रस्थापना इस मत के माध्यम से यह भी की जाती है कि इलियट कला में 'आत्म विनाशीकरण' को मानता है। यह तो स्पष्ट ही किया जा चुका है कि वह काव्य-सृजन के दौरान कवि के भोक्ता मन को कोई स्थान नहीं देता है। फिर सहसा यह प्रश्न उठता है कि व्यक्तित्व के अभाव में कला-सृजन की प्रक्रिया के घटित होने का कारण क्या है?

इसका उत्तर इलियट ने दूसरे ही ढंग से दिया है। उनका कथन है कि "यद्यपि कला-सृजन में कवि के व्यक्तित्व का कोई हाथ नहीं रहता, किन्तु काव्यगत बिम्ब अनुभूतियाँ तथा संवेदनाएँ कलाकृतियों के रूप में

कलात्मक दबाव के कारण ढल जाती है। अतः कला-सृजन की प्रक्रिया में जो वस्तु महत्त्व की अधिकारिणी है वह है दबाव की तीव्रता है, जिससे मिश्रण तैयार होता है।

तीसरी बात जो इलियट के 'कला की निर्वैयक्तिकता' के सिद्धांत से स्पष्ट होती है वह है कवि कविता में व्यक्तित्व का प्रकाशन नहीं करता, अपितु उससे पलायन करता है। स्पष्ट ही कलाकार एक प्रकार का माध्यम भर है। वह जितना महान होगा उतना ही अपने व्यक्तित्व से पलायन करने में समर्थ हो सकेगा। कहने की आवश्यकता नहीं कि इलियट का कला सिद्धांत उन सभी मतों के विरोध में तन कर खडा है जो कला को व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति मानते हैं। आज कितने ही आलोचक और कवि-धर्मी आलोचक ऐसे हैं जो इलियट की इस मान्यता को प्रतिष्ठापित कर अपना काम चला रहे हैं। नये कवियों में अज्ञेय और उसके अनेक अनुगामियों की स्थिति ऐसी ही है। इलियट ने परंपरा सिद्धांत की प्रतिष्ठा करते हुए यह कहा है कि कलाकार की प्रगति ही इस बात पर निर्भर है कि वह परंपरा के दायित्व को निभाते हुए अपने व्यक्तित्व से पलायन करे | उसको अपने व्यक्तित्व को कला से दूर रखना चाहिए । कारण कला व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति नहीं, वरन् उससे पलायन हैं -'Art is not turning loose of emotion but an escape from emotion , not an expression of personality but an escape from personality."

इलियट के इस कथन का कई अर्थों के साथ एक अर्थ यह भी निकाला गया है कि वे कवि को स्वचालित यंत्र और कविता कृति को अचेतावस्था की उपज मानते है। उनके स्पष्ट शब्द हैं -
"The experience of writing poetry is this way, is not a vision but a motion terminating in an arrengment of words on paper." भाव यह है कवि कविता लिखता नहीं है, कविता स्वयं लिख-लिख जाती है और इसका माध्यम होता है कवि जो शब्द-विधान के सहारे उसे कागज पर उतार देता है। इतना ही नहीं, जब वह कागज पर उतर जाती है तो कवि मुक्ति पा लेता है। इलियट के इस कथन पर अनेक आपत्तियाँ की गयी हैं, किन्तु उनका निराकरण तब होता है जबकि हम उनके बाद के 'रिफाइन्ड व्यू' को पढ़ते हैं। इलियट ने स्वयं स्वीकारा है कि मेरा पहला मत हो सकता है परिपक्व नहीं हो, किन्तु अब मैं यह कहता हूँ कि निर्वैयक्तिकता के दो स्वरूप हैं -एक तो वह जो कुशल कलाकार मात्र के लिए स्वाभाविक होती है दूसरी वह जो प्रौढ़ कलाकार स्वयं अधिकाधिक उपलब्ध करता है। यह दूसरी निर्वैयक्तिकता उस प्रौढ़ शिल्पी की होती है जो अपने तीव्र और वैयक्तिक अनुभवों के सहारे सामान्य सत्य को व्यंजित करने में सक्षम होता है। इसकी चर्चा 'ऑब्जेक्टिव कोरिलेटिव थ्योरी' के अन्तर्गत की गयी है। स्पष्ट ही इलियट की निर्वैयक्तिकता का अर्थ है -कवि के व्यक्तित्व भावों की विशिष्टता का सामान्यीकरण जो भारतीय काव्यशास्त्र के साधारणीकरण के सिद्धांत के मेल में खडी दिखाई देती है। इस प्रकार इलियट यह कहते हैं कि कवि अपने निजी अनुभूत भावों की अभिव्यक्ति कविता में करता है, किन्तु उसका प्रस्तुतीकरण इस ढंग का होता है कि वे सर्व सामान्य के भाव बन जाते हैं तथा साथ ही उनका वैशिष्ट्य भी बना रहता है। अतः हमारी दृष्टि में कवि के वैयक्तिक भावों के वैशिष्ट्य का सामान्यीकरण ही कला की निर्वैयक्तिकता है।

अब केवल यह समस्या शेष रह जाती है कि 'कविता का जीवन स्वतंत्र होता है, वह अवतरित होती है, उत्पन्न नहीं की जाती है। इस पर आपत्ति यह है कि जब वह अवतरित होती है, तो कवि उसका निर्माता कैसे है? इलियट का समाधान इस प्रकार है जो उनके भाषण 'द थ्री वोइसेज ऑफ पोइट्री'-'कविता के तीन स्वर' में दिया गया है। काव्य के तीन स्वर होते हैं -

(1) प्रथम स्वर वह जिसमें कलाकार किसी अन्य की अपेक्षा स्वयं से बातचीत करता है। यहाँ उसका उद्देश्य केवल समर्पण होता है, अपनी बात को 'कम्युनिकेट' करना नहीं। वह जिस भार से दबा रहता है, उससे मुक्ति पाकर उसे पुस्तक में भेज देता है -असम्पृक्त भाव से।

(2) दूसरा स्वर वह है जिसमें वह दूसरों से बात करता है।

(3) तीसरे स्वर में वह स्वयं तो कुछ कहता नहीं, वरन् पात्र के माध्यम से कहलवाता है।

स्पष्ट है कि इलियट ने कविता के अवतरित होने की बात क्यों कही और वह कहाँ तक सही है। तीसरे प्रकार का स्वर नाटकों के संदर्भ में पठनीय है जहाँ कृतियाँ अचेतनावस्था से उद्भूत नहीं मानी जा सकती है। यहाँ कलाकार पूर्णतः सजग होकर कृति का निर्माण करता है और व्यक्तित्व से पलायन करके नहीं, वरन् उसके साथ या उसी के द्वारा। अब इसमें कोई संदेह नहीं कि इलियट के सभी मतों की परीक्षा हो चुकी है और उसमें व्याप्त विरोधाभास भी उनके परवर्ती संशोधित मतों से शमित हो जाता है।

निष्कर्ष - उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कह सकते हैं कि इलियट के द्वारा प्रतिपादित निर्वैयक्तिकता के सिद्धांत की अपने आप में भले ही महत्ता हो, किन्तु उसके इस सिद्धांत पर विभिन्न भारतीय और पाश्चात्य समीक्षकों ने आरोप भी लगाये हैं। उस पर लगाया गया प्रमुख आरोप यह है कि कविता व्यक्तित्व-निरेपक्ष नहीं हो सकती है। यह बात दूसरी है कि कवि के अनुभव कविता में व्यक्त होकर साधारणीकृत बन जायें। ऐसी स्थिति में इलियट का निर्वैयक्तिकता का सिद्धांत आगे के कवियों को स्वीकार्य नहीं हुआ।

प्रतीक, बिम्ब, मिथक,फैण्टेसी

प्रतीक विधान

- प्रतीक ऐसा शब्द चिह्न है जो किसी वस्तु का बोध कराता है। प्रतीक किसी सूक्ष्म भाव, विचार या अगोचर तत्त्व को साकार करने के लिए प्रयुक्त होता है।
- प्रतीक अप्रस्तुत का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रस्तुत का नाम है।
- यह तुरन्त मन में किसी भावना को जाग्रत कर देता है। । ये प्रारम्भ में व्यक्तिगत व धीरे-धीरे रूढ़ हो जाते हैं।

नगेन्द्र - "उपमान जब किसी पदार्थ विशेष के लिए रुढ़ हो जाता है तब प्रतीक बन जाता है।"

- कबीर ने 'बूंद' को जीवात्मा का तथा 'सागर' को परमात्मा का प्रतीक माना हैं :

बूंद समानी समुद्र में सो कत हेरी जाय ।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविता में 'पहाङ' काव्य का तथा 'जंगल' कवियों का प्रतीक है। धर्मवीर भारती का 'ठण्डा लोहा' दुःख निराशा का प्रतीक है तो अज्ञेय का 'बावरा अहेरी' सूर्य का। 'अन्धा युग' अनास्था का 'संशय की एक रात' क्षण बोध, अन्तर्द्वन्द्व का प्रतीक होकर शीर्षक रूप में सामने आया है।

- भारतीय दृष्टिकोण से इसे साध्यवसाना लक्षणा का विकसित रूप स्वीकारा है तथा किसी ने इसका आविर्भाव अन्योक्ति अलंकार में करने की चेष्टा की है। आचार्य शुक्ल ने इसे चित्रभाषावाद माना है।

प्रतीकों के भेद -

1. भावोत्प्रेरक प्रतीक - कमल, चन्द्र, कुमुदिनी
2. विचारोत्पादक प्रतीक - विभीषण, गाँधीजी - आज देश में विभीषणों की कमी नहीं है। - देश को चाहिये एक और गांधी।
3. वैयक्तिक प्रतीक - नलिनी, माली फूलि फूलि चुनि लिए, काल हमारी बार ।
4. परम्परागत प्रतीक - हँसा - एक डाल दो पँछी बैठा, कौन गुरु कौन चेला।
गुरु की करनी गुरु भरेगा, चेला की करनी चेला । उङ जा हंस अकेला ।।
5. परम्परामुक्त प्रतीक - साँप, मधुमय बसन्त - साँप!
तुम सभ्य तो हुए नहीं
नगर में बसना भी तुम्हें नहीं आया
एक बात पूछू (उत्तर दोगे)
कैसे सीखा डसना
विष कहाँ से पाया।
6. भावपरक प्रतीक - छायावादी प्रतीक
विरह का जलजात जीवन, विरह का जल जात ।
.मैं नीर भरी दुःख की बदली
परिचय इतना, इतिहास यही
उमङी कल थी, मिट आज चली।
7. व्याख्यात्मक प्रतीक - शेर, गीदङ - तेज तम अंश पर, कान्ह जिमि कंस पर
त्यों मलैच्छ वंश पर, शेर सिवराज है।
8. प्रतीकपरक प्रतीक - कमल, चाँदनी

डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी - 'कविता के लिए शाब्दिक प्रतीक होना एक आधारभूत शर्त है पर हर शाब्दिक प्रतीक कविता नहीं होता।

बिम्ब विधान

- काव्य में कार्य के मूर्तिकरण के लिए सटीक बिम्ब योजना होती है।
- बिम्ब' शब्द अंग्रेजी के 'इमेज' शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। जिसका अर्थ है -मूर्त रूप प्रदान करना।
- व्य में बिम्ब को वह शब्द चित्र माना जाता है जो कल्पना द्वारा ऐन्द्रिय अनुभवों के आधार पर निर्मित होता है।
- बिम्ब पदार्थ नहीं है, वरन् उसकी प्रतिकृति या प्रतिच्छवि है। सृष्टि नहीं पुनस्सृष्टि है।
- सी.डी. लेविस - 'काव्य बिम्ब एक ऐसा भावात्मक चित्र है जो रूपक आदि का आधार ग्रहण कर भावनाओं को तीव्र करता हुआ काव्यानुभूति को साहश्य तक पहुँचाने में समर्थ है।
- डॉ. नगेन्द्र -'काव्य बिम्ब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक ऐसी मानस छवि है जिसके मूल में भाव की प्रेरणा रहती है।

बिम्ब के तीन मूलभूत तत्त्व हैं -
(i) कल्पना, (ii) भाव और (iii) ऐन्द्रिकता।
- बिम्ब में भावनाओं को उत्तेजित करने की शक्ति एवं सामर्थ्य होता है, नवीनता एवं ताजगी होती है। बिम्ब विधान में औचित्य अर्थात् प्रसंग के प्रति अनुकूलता एवं सार्थकता होनी चाहिए तथा बिम्ब स्पष्ट या सजीव होना चाहिए ताकि प्रमाता तुरन्त ऐन्द्रिक साक्षात्कार कर सके।
- डॉ. केदारनाथ सिंह - 'बिम्ब यथार्थ का एक सार्थक टुकड़ा होता है। वह अपनी ध्वनियों और संकेतों से भाषा को अधिक संवेदनशील और पारदर्शी बनाता है। वह अभिधा की अपेक्षा लक्षणा और व्यंजना पर आधारित होता है।

बिम्बों के भेद -

1. ऐन्द्रिय बिम्ब -
(i) चाक्षुष बिम्ब
(ii) श्रव्य या नादात्मक बिम्ब
(iv) घ्रातव्य बिम्ब
(iii) स्पर्ध्य बिम्ब
(v) आस्वाद्य बिम्ब

2. काल्पनिक बिम्ब -
(i) स्मृति बिम्ब
(ii) कल्पित बिम्ब

3. प्रेरक अनुभूति के आधार पर -
(i) सरल बिम्ब
(ii) मिश्रित बिम्ब

(iii) तात्कालिक बिम्ब
(iv) संकुल बिम्ब
(v) भावातीत बिम्ब
(vi) विकीर्ण बिम्ब

- डॉ. देवीशरण रस्तोगी - 'बिम्ब प्रायः अलंकारों की सहायता लेते और इसी प्रकार अलंकार अन्ततः बिम्ब को ही लक्ष्य करते हैं।'

बिम्ब विधान के उदाहरण -
-प्रातः का नभ था, नीला शंख जैसे (चाक्षुष बिम्ब)
खरगोश की आँखों जैसा लाल सवेरा
शरद आया पुलों को पार करते हुए
अपनी नयी चमकीली साइकिल तेज चलाते हुए
घंटी बजाते हुए जोर-जोर से (श्रव्य बिम्ब)
-जैसे बहन 'दा' कहती है
ऐसे किसी बँगले के
किसी तरु (अशोक) पर कोई चिडिया कुऊकी
चलता सडक के किनारे लाल बजरी पर
चुरमुराए पाँव तले
ऊँचे तरुवर से गिरे
बड़े-बड़े पियराए पत्ते

प्रतीक एवं बिम्ब

- प्रतीक किसी सूक्ष्म भाव या अगोचर तत्त्व को साकार करने के लिए प्रयुक्त होता है, जबकि बिम्ब किसी पदार्थ कीप्रतिकृति या प्रतिच्छवि के लिए प्रयुक्त होता है।
- प्रतीक से तुरन्त मन में कोई भावना जाग्रत होती है किन्तु बिम्ब से मस्तिष्क में किसी सादृश्य का चित्र उभरता है।
- व्यक्तित्व उपमान जब रूढ़ हो जाते हैं तो वे प्रतीक बन जाते हैं जबकि बिम्ब में नवीनता व ताजगी होती है।
- प्रतीक कल्पना द्वारा किसी भावना को जाग्रत करते हैं, जबकि सटीक बिम्ब विधान से प्रमाता को तुरन्त ऐन्द्रिक साक्षात्कार होता है।
- प्रतीक में किसी भावना को साकार होने की कल्पना की जाती है जबकि बिम्ब में कार्य का मूर्तिकरण होता है।

-प्रतीक में भावना को उत्पन्न या जाग्रत करने की शक्ति होती है जबकि बिम्ब विधान में भावनाओं की उत्तेजित करने की शक्ति होती है।
- प्रतीक पर युग, देश, संस्कृति, मान्यताओं की छाप रहती है।

मिथक

पश्चिम में विशेष रूप से अमेरिका में मिथकीय आलोचना का प्रसार हो रहा है, इसे एक सार्वभौम तथा वैज्ञानिक पद्धति माना जाता है। साहित्य ही नहीं, मनोविज्ञान, नृतत्वविज्ञान, सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में भी मिथकों पर महत्त्वपूर्ण कार्य किए गए हैं, किए जा रहे हैं। 'मिथक' शब्द अंग्रेजी के 'मिथ' के हिन्दी रूपांतरण से निर्मित हुआ है। मूलतः यह शब्द यूनानी के 'माइथोस', लैटिन के 'मिथस' और जर्मनी के 'मिथोस' का ऋणी है। वस्तुतः 'मिथक' और जर्मनी के 'मिथोस' का ऋणी है। वस्तुतः 'मिथक' परंपरागत या अनुश्रुत कथा है जो किसी अतिमानवीय तथाकथित प्राणी या घटना से संबंध रखती है। विशेषतः इसका संबंध देवताओं, विश्व की उत्पत्ति तथा विश्ववासियों से है, यह एक ऐसा विश्वास है जो बिना किसी तर्क के स्वीकार कर लिया जाता है। सामान्यतः मिथ एक मिथ्या कथा है जिसकी सच्चाई की परीक्षा नहीं की जाती है। फ्रेजर, हेरिसन, एम.एम. कार्नेफोर्ड आदि ने मिथक के सर्जनात्मक पहलुओं को आगे बढ़ाया है। फ्रायड और उनके मतानुयायी मिथक को स्वप्न का सजातीय मानते हुए उसे इच्छापूर्ति का एक विधान स्वीकारते हैं। जिस प्रकार हमारा अवचेतन मन सदैव अपनी दमित कामनाओं को दिवास्वप्नों के द्वारा पूरा करता है उसी प्रकार आदिमकाल से ही मानव अपनी रागद्वेषजन्य इच्छाओं, वासनाओं तथा मृत्युजन्य संत्रास की भावनाओं को मिथकों के रूप में प्रतिफलित करता था। ग्राहम हफ के अनुसार - 'मिथक की विभिन्न भाषिक अभिव्यक्तियाँ हो सकती हैं।"

अधिकांश मिथक अर्थ - मिथक होते हैं तथा प्राकृतिक व्यवस्था तथा ब्रह्माण्ड की आदिम व्याख्याएँ प्रस्तुत करते हैं। शास्त्रीय लेखकों के पास एक बना बनाया मिथक-शास्त्र होता था। आज लेखकों ने अपना मिथक-शास्त्र स्वयं तैयार किया है ताकि उन्हें अपने विश्वासों का संवाहक बना सके। मिथक को आदिम मनुष्य की चेतना का प्राथमिक सर्जनात्मक बिम्ब कहा जाता है। इसकी उत्पत्ति के संबंध में भी विवाद है कि भाषा पहले अस्तित्व में आई अथवा मिथक । मिथक के संदर्भ में विभिन्न विचारकों के मत इस प्रकार हैं -

- विको - "भाषा की उत्पत्ति सांकेतिक अभिव्यक्ति से हुई, मिथक भाषा-विकास की मंजिल है।" -हरडर - "भाषा का आविर्भाव मिथक से हुआ है।"
- मैक्समूलर - "मिथक की उत्पत्ति भाषा से हुई एवं ये भाषा के रोग के समान हैं।"
- कैसिरर - ने भाषा और मिथक की उत्पत्ति एक साथा मानी है।
-युग - "मिथक सामूहिक आद्य बिम्ब होते हैं, अतः इस आधार पर इसे 'डीपस्ट्रक्चर' कह सकते हैं, जिसकी अभिव्यक्ति मिथक है।"

- दुर्खिम - (फ्रांसीसी समाजशास्त्री) "मिथक का संबंध प्रकृति से न होकर समाज से है।" /
-मलिनोव्स्की - "मिथक न प्रकृति के प्रति चामत्कारिक प्रतिक्रिया है न विगत का आलेख । उसका प्रयोजन सामाजिक व्यवस्था का संरक्षण और संचालन है।"
-रेनेवेलेक - "मिथक शब्द का अर्थ निश्चित कर पाना आसान नहीं है, यह एक अर्थ क्षेत्र का संकेत है।" ।
-रिचर्ड चेज - "काव्य ही मिथक और मिथक ही काव्य है। काव्य और मिथक एक ही मानवीय आवश्यकता से उद्‌भूत होते हैं। उनमें एक ही प्रकार की प्रतीकात्मक संरचनाएँ होती हैं।" मिथक के प्रति इस पक्षधरता से चेज को कुछ समालोचक 'मिथक का दीवाना' भी कहते हैं।
-श्रीमती लैंगर - 'परी कथाएँ आदि स्वयं में कला नहीं हैं, वे कला के लिए कच्चा माल हैं। मिथक की प्रकृति ऐसी है कि उसे विशिष्ट शब्दों या भाषा में बाँधना आवश्यक नहीं हैं, इसका अनुवाद हो सकता है।
-डॉ. रमेश कुंतल 'मेघ' - "मिथक मानवजाति का सामूहिक स्वप्न एवं सामूहिक अनुभव है और स्वप्न एक व्यक्ति की सुप्त आकांक्षा।"
- आचार्य हजारी प्रसाद द्‌विवेदी - "मिथक तत्त्व वस्तुतः भाषा का पूरक है। सारी भाषा ही इसके बल पर खड़ी है, साहित्य में मिथक अनंत अनुभवों का विश्लेषण है।"
-डॉ. नगेन्द्र - "साहित्य के अनन्त विस्तार को देखते हुए मिथक की दुनिया बडी छोटी है। नये कवि वर्तमान के अतीतत्व और अतीत के वर्तमानता में विश्वास करते हैं। समसामयिक अव्यवस्था के ठोस और गहरे रंग में चरितार्थ करने हेतु कवियों ने पुराकथाओं और मिथकों का भरपूर इस्तेमाल किया है।"

वस्तुतः मिथक आदिम मनुष्य का यर्थाथ है, जबकि साहित्य सभ्य मनुष्य का यथार्थवाद है जिसमें उसका अपना उद्‌देश्य और दृष्टिकोण भी समाहित है। साहित्य मिथक नहीं है परंतु साहित्य में मिथका का साभिप्राय प्रयोग होता है साहित्यकार मिथकीय बिम्बों द्‌वारा आदिम विश्वासों को नया रूप देता है और सम्प्रेषण की समस्या का समाधान करता है। लेखक एक प्रकार का 'मिथमेकर' है, वह अवचेतन में से एक आद्‌य सत्य को भाषा देता है। उदाहरणार्थ, मुक्तिबोध की कविताओं में मिथकीय प्रतीकों, सपनों का अधिकांश प्रयोग किया गया है। उनकी प्रत्येक कविता भूतप्रेत, ब्रह्मराक्षस, भैसें, पशु-पक्षी, पेड-पौधों आदि से विन्यस्त नया मिथक रचती है। मुक्तिबोध के मिथक छोटी-छोटी इकाइयों में विभक्त रहते हैं, फिर उनकी टकराहट एक व्यापक यथार्थ की अभिव्यक्ति करती है। मिथकों में असंभव के स्थान पर संभव का, यथार्थ के स्थान पर अयथार्थ का तथा अविरोधी के स्थान पर विरोधी का चयन, शेक्सपियर का पैटर्न रहा है, जिसमें अस्तित्व का संकट झाँकता रहता है। रचनाकार अपने युगीन सत्य के उद्‌घाटन और जटिल मानसिकता के रेखांकन में मिथकों को सहारा लेता है, और रचनाकार के मूल्यांकन के लिए समीक्षक को उसी तत्त्व को हथियार के रूप में इस्तेमाल करना पडता है। हाँ, यह अवश्य है कि यह प्रवृत्ति बौद्‌धिक विचार-विश्लेषण प्रधान तथा मनोवैज्ञानिक अधिक है। इसके अतिरिक्त यह अनेक विचारधाराओं से प्रभावित भी है।

'कामायनी' के मूल्यांकन से ही मिथक पर विचार हिन्दी-साहित्य में किया जाने लगा है, जिसके आधार पर यह कहा गया है कि कामायनी का मनु वेदकालीन मनु न होकर प्रसादकालीन है। वह उस संक्रमण काल का

मनु है जिसमें भारतीय समाज सांस्कृतिक जीवन-मूल्यों से कटकर औद्योगिक तथा संयान्त्रिक होने की दिशा में अग्रसर है। केदारनाथ मिश्र की 'प्रभात की कैकेयी' रचना में दशरथ और कैकेयी दोनों ही समकालीन षड्यन्त्र-प्रधान राजनीति की विडम्बनाओं के संवाहक है। दिनकर के 'कुरूक्षेत्र' का युधिष्ठिर भयानक महायुद्धों के दुष्परिणामों से आतंकित होकर 'इतिहास के अध्याय' पर रोता है और रसेल की मानवतावादी चेतना का प्रसार करता है। धर्मवीर भारती का 'अंधायुग', 'कनुप्रिया', नरेश मेहता का संशय की एक रात', नागार्जुन का 'भस्मासुर', दुष्यंत कुमार का 'एक कंठ विषपायी' जैसे रचनाएँ मिथक के कलेवर में कई प्रकार की समकालीन समस्याओं की जटिलता का विश्लेषण करती है। नाटकों में जगदीश चंद्र माथुरा का 'पहला राजा', सुरेन्द्र वर्मा का 'द्रौपदी', डॉ. शंकर शेष का 'अरे मायावी सरोवर' मिथकीय प्रयोग की नवता के सुंदर उदाहरण हैं। उपन्यासों में आचार्य चतुरसेन शास्त्री का 'वयं रक्षामः', हजारी प्रसाद द्विवेदी का 'पुनर्नवा', नरेन्द्र कोहली का 'अवसर' मिथक प्रयोग की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। वस्तुतः इन रचनाओं में मिथकीय पात्रों, मिथकीय घटनाओं, मिथकीय मूल्य तथा विचारों को एक नया आयाम मिला है वे समसामयिक परिवेश के कटु यथार्थ बन गए हैं। इन रचनाओं की मिथक चेतना में संतुलन तथा प्रयोगशीलता का अद्भुत कलात्मक समन्वय है। मिथकीय समीक्षा में मूल प्रतीकात्मक अर्थ या आद्य बिम्ब और उनसे जुड़े मिथकों के अर्थ को जानने का प्रयत्न किया जाता हैं, क्योंकि साहित्य में अन्तर्निहित मिथक अनन्त अनुभावों का विश्लेषण हुआ करता है।

मिथकीय आलोचना भाषिक आद्यसत्य को जो अवचेतन में निहित है, खोज निकालती है। वस्तुतः मानव की एक मूलभूत आवश्यकता है वह मथिकों का निर्माण करे। मिथक मात्र सृजनशील रचनाकार को ही प्रभावित नहीं करता वरन् वह संकल्पनाएँ व शैली-शिल्प भी प्रस्तुत करता है, जिनकी सहायता से मिथकीय आलोचना के लिए किसी साहित्यिक कृति की आलोचना संभव हो पाती है। मिथकीय आलोचना साहित्य की स्वायत्तता की पक्षधर है किन्तु आलोचक को सीमित दायरे में नहीं बाँधती, अपितु दूसरे ज्ञान-विज्ञान से भी सम्बद्ध होने को कहती हैं जिससे यथार्थ के प्रति उसकी दृष्टि एवं उस यथार्थ की अनुभूति के तरीके में विस्तार हो सके। मिथक के अनेक अर्थस्तर होते हैं जो रचनाकार के बोध के द्वारा प्रक्षेपित होते हैं। अप्रस्तुत के प्रस्तुतीकरण के लिए भाषिक स्तर पर भी अनेक रचनाकार मिथकीय शब्दों का प्रयोग करते हैं। ऐसे शब्द बहुत सार्थक होते हैं, क्योंकि वे स्थितियों, समग्र अनुभवों, मनोदशाओं, मूल्यों, जीवन दृष्टियों, वास्तविकताओं, घटनाओं आदि के संक्षिप्त एवं सरलीकृत पर्याय बनकर आते हैं।

निष्कर्षत : मिथकीय व्याकरण से परिचित समीक्षक के लिए साहित्य की भाषा को समझने में अधिक सुनिश्चितता तथा क्षमता आ जाती है। साहित्य में गंभीरता का आधार मिथक ही है। इसमें अन्तर्मुक्त रहस्य जिज्ञासा को सींचता रहता है। वास्तव में लेखन मूलतः एक मिथकीय प्रक्रिया है।

फैण्टेसी

काव्यशास्त्र में प्रचलित 'फैण्टेसी' शब्द एक अंग्रेजी शब्द है जो यूनानी शब्द 'फैण्टेसिया' से निर्मित है। यूनानी शब्द कैण्टेसिया का अभिप्राय है मनुष्य की वह क्षमता जो संभाव्य संसार की सर्जना करती है। इस

प्रकार फैण्टेसी का अर्थ होता है-स्वप्नचित्र रचना-प्रक्रिया अथवा सृजनशीलता में रचनाकार जब बाह्य परिवेश को पूर्णतया आत्मसात् करता है तब उस सृजनशील रचनाकार के हृदय में एक धुंधला रहस्यमय कल्पना-चित्र उभरता है और यह स्वप्निल प्रभाव उसके अभिव्यक्ति-पक्ष का माध्यम बन जाता है, इसी को 'फैण्टेसी' कहा जाता हैं। इस प्रकार फैण्टेसी एक टेक्नीक है जिसका प्रयोग एक सृजनशील साहित्यकार अपनी रचना प्रक्रिया में करता है। मनुष्य के शैशव स्वभाव का एक अभिन्न अंग है, फैण्टेसी। इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि रचनाकार के भीतर छिपा हुआ 'शिशु' ही साहित्यिक 'फैण्टेसी' का निर्माण करता है। वस्तुतः यह एक विशिष्ट कल्पना शक्ति है, जिसे दिवास्वप्नात्मक अथवा दुःस्वप्नात्मक बिम्ब की भी संज्ञा दी जा सकती है। इसे माया का आवरण, स्वप्नशीलता का पूरक एक मनोवैज्ञानिक आवश्यकता, सनक, अन्वेषण का रूप भी माना गया है। क्षमता का व्यापक विकास न होने के कारण कुछ लोग इसे शकुन अथवा देव-प्रकटीकरण के रूप में भी देखते हैं तो बीसवीं शती में फैण्टेसी को दिवास्वप्न का पर्याय मान लिया गया।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से फैण्टेसी का संबंध उसके विचार-प्रवाह तथा उसी की चक्षु बिम्बात्मक अभिव्यक्ति से है। मनोवैज्ञानिक दार्शनिक फ्रायड ने संपूर्ण साहित्य-सृजन को फैण्टेसी का एक प्रकार माना है। दरअसल, फैण्टेसी एक प्रक्रिया है जो अतीत की एक घटना अथवा कल्पित घटना के साथ जुड़कर संवेदनाओं, अनुभूतियों को स्वप्नचित्रों में परिवर्तित कर देती है। विचारों के विवेचन में भी फैण्टेसी का महत्त्वपूर्ण स्थान है, कुछ मनोवैज्ञानिकों के अनुसार फैण्टेसी बाह्य जगत् को समझने में अन्तर्दृष्टि प्रदान करती है।

सिगर के शब्दों में, "फैण्टेसी की संज्ञानात्मक निपुणता समझना चाहिए जो तादात्म्य अनुकरण तथा क्रीडा भाव के कारण अधिक विकसित होती है। इसका संबंध व्यक्ति के अहं भाव के साथ है जो सूक्ष्म विचारों को सहज संप्रेषणीय बनाती है।"

समकालीन साहित्य में तथा समीक्षाशास्त्रियों के वर्तमान परिदृश्य में फैण्टेसी एक विशिष्ट पारिभाषिक शब्द बन गया है जो विशेष प्रकार के साहित्य तथा अभिव्यक्ति उपकरण के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। मानविकी पारिभाषिक कोश के अनुसार "फैण्टसी एक स्वप्नचित्रमूलक साहित्य है, जिसमें असम्भाव्य संभावनाओं को प्राथमिकता दी जाती है।" वस्तुतः फैण्टेसी के तीन प्रयोजन हैं - 1. मनोरंजन 2. यथार्थ से पलायन 3. मानव एवं दोषयुक्त संसार के प्रति नवीन दृष्टिकोण। देवकीनन्दन खत्री के तिलस्मी उपन्यासों में फैण्टेसी के निर्धारित प्रयोजनों में प्रथम दो को प्रभावी रूप से देखा जा सकता है, तीसरे प्रयोजन के उदाहरण पाश्चात्य भाषाओं में स्विफ्ट की 'गुलीवर्ज ट्रेवेल्स' तथा वाल्तेयर की 'कांकीद' इत्यादि रचनाओं में मिल जाता है। आजकल ऐसी रचनाएँ नहीं लिखी जा रही हैं फिर भी कहीं ज्यादा गहरे स्तर पर वहाँ स्वप्नचित्रों को लक्षित किया जा सकता है। प्रत्येक रचना प्रक्रिया में फैण्टेसी की सर्जना शक्ति छिपी हुई है इसलिए रचनाकार कहीं न कहीं फैण्टेसी जैसे तत्त्व का इस्तेमाल करता ही है और अनेक गंभीर रचनाओं में फैण्टेसी के अंशों का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी', मुक्तिबोध की 'अँधेरे में', अज्ञेय कृत 'अपने-अपने अजनबी', निर्मल वर्मा कृत 'एक चिथड़ा सुख' जैसी अनेक रचनाएँ जो अनुभव के धरातल पर तीव्र अन्तर्द्वद्व को मूर्त रूप प्रदान करती हैं, फैण्टेसी परक होती हैं। कुछ रचनाओं की

समग्रता फैण्टेसी प्रेरक नहीं है अपितु उसका कुछ अंश फैण्टेसी से प्रभावित होता है जिसका आकलन फैण्टेसी मूलक विचार प्रवाह में पडकर किया जाता है। अजन्मे कल के विषय में आशावादी दृष्टिकोण अपनाने वाले और उसे आज से बेहतर मानने वाले रचनाकार फैण्टेसी से अधिक काम लेते हैं।

फैण्टेसी में मन की निगूढ वृत्तियों का अनुभूत जीवन-समस्याओं का इच्छित विश्वासों और इच्छित जीवन स्थितियों का प्रक्षेप है। रचना-प्रक्रिया में रचनाकार जीवन-जगत् के तथ्यों, प्रभावात्मक आग्रहों को, नेपथ्य में रखकर तथ्यों की स्वानुभूत विशेषताओं का स्वप्न चित्रात्मक प्रक्षेप करता है। मुक्तिबोध की कविताओं में अनेक जगह फैण्टेसी का स्पष्ट प्रयोग परिलक्षित होता है, उनका एक स्वप्न चित्र या फैण्टेसी को पता नहीं' शीर्षक कविता में क्रान्ति की कामना के उदित होने की एक घटनात्मक चित्र में प्रभावी रूप से देखा जा सकता है -
मुख है कि मात्र आँख हैं वे आलोक भरी

जो सतत् तुम्हारी चाह लिए होती गहरी

इतनी गहरी कि तुम्हारी थाहों में अजीत हलचल

मानों अनजाने रत्नों की

अनपहचानी-सी चोरी में

धर लिये गए, निज में बसने, किसलिए गए।

यहाँ स्पष्ट है कि कविता में प्रयुक्त 'तुम' मुक्तिबोध का अप्रस्तुत श्रोता है जिसके दुःख से द्रवित होकर मुक्तिबोध बार-बार उसे संबोधित करते हैं। अपने अप्रस्तुत श्रोता को कवि बताता है कि उषा की आलोक भरी आँखें उसकी मानसिक थाह के साथ इतनी गहरी हो जाती हैं कि पाठक-श्रोता के मन में हलचल मच जाती है, उसे लगता है कि वह अनजाने रत्नों की चोरी में धर-कस लिया गया। फिर अचानक वह स्वयं को स्वप्नों में घिरा पाता है। स्वप्न की समाप्ति एक प्रश्न चिह्न खडा कर देती है कि पता नहीं जिंदगी आगे किन खतरों से जूझेगी। गजानन माधव मुक्तिबोध ने 'एक साहित्यिक की डायरी' में कला के तीन क्षणों की विवेचना है - (i) जीवन का उत्कट तीव्र अनुभव क्षण (ii) अपने कसकते, दुःखते मूलों में इस अनुभव की पृथक्ता और आँखों के सामने फैण्टेसी में रूपांतरण, (iii) इस फैण्टेसी के शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया का आरंभ । उस प्रक्रिया की परिपूर्णावस्था तक की गतिमानता रचना-प्रक्रिया में फैण्टेसी का मर्म किए परिदृश्य का रूप ग्रहण कर लेता है, और इस संदर्भ में उपर्युक्त कविता में स्वर्गीय उषा 'क्रान्ति' या नवजागरण का ऐसा स्वप्न तथा उमंग भरता है। वह इस सपने में कस लिया जाता है और अब तक के अनजाने विचार-रत्नों को चुराकर प्रबिद्ध हो जाता है। चोरी में प्राथमिक आशंका के भाव निहित है और इसी स्वप्नचित्र के

बीच मुक्तिबोध का प्रिय शक्तिपुरुष उपस्थित होता है जो जनक्रांति का अग्रदूत है। यहाँ यह एक स्पष्ट करना आवश्यक है कि फैण्टेसी का कोई एक अर्थ की अंतिम अर्थ नहीं क्योंकि फैण्टेसी का विधान ही अर्थ की निरन्तरता के लिए किया जाता है। वस्तुतः प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत की असंगति सबसे ज्यादा फैण्टेसी में होती है। बाह्य जगत् और कवि चेतना के द्वंद्व उसे अभिव्यक्ति देने की कोशिश में ही रचनाकार फैण्टेसी का विधान करता जाता है।

मुक्तिबोध ने फैण्टेसी को अनुभव की कन्या तथा कृति को फैण्टेसी की पुत्री कहा है। फैण्टेसी के क्षण में वैयक्तिक अनुभव परिवर्तित होकर निर्वैयक्तिक हो जाता है। स्थितिबद्ध और स्थितिमुक्त वैयक्तिकता का समन्वय उच्चतर स्थिति में पहुँच जाता है और इसके फलस्वरूप जो प्रभाव अभास मात्र होते हैं वे कवि के मानस-पटल पर चित्र बनकर उभरते मात्र होते हैं और उन चित्रों को वह भाषाबद्ध करता है। यही कारण है कि रचनाकार के मानस पटल पर आंकलित फैण्टेसी और शब्दबद्ध फैण्टेसी में अंतर पाया जाता है, शब्दबद्ध होकर स्वप्न यथार्थ में परिवर्तित हो जाता है। मुक्तिबोध के मतानुसार- "कला के तीसरे क्षण में फैण्टेसी का मूल मर्म, अनेक संबंधित जीवनानुभवों से उत्पन्न भावों और स्वप्नों से मुक्त होकर इतना अधिक बदल जाता है कि लेखक उस पूरी फैण्टेसी उसे 'पर्सपेक्टिव' कहते हैं। मूर्त होकर जो

फैण्टेसी हमारे समक्ष उपस्थित होती है वह फैण्टेसी की प्रतिकृति नहीं अपितु फैण्टेसी-प्रसूत होती है। फैण्टेसी के रूप में अप्रस्तुत विधान सार्वजनीन समृद्ध हो जाता है और यह सार्वजनीनता अभिव्यक्ति प्रक्रिया में शब्दों के अर्थ के अर्थस्पन्दनों द्वारा पैदा होती है। अर्थस्पंदनों के पीछे सार्वजनिक सामाजिक अनुभवों की एक लंबी परंपरा होती है। इसलिए अर्थपरंपराएँ फैण्टेसी के मूल अर्थ को काटती ही नहीं हैं, तराशती भी हैं, रंगहीन ही नहीं करती, नया रंग भी चढ़ाती हैं, इसके अतिरिक्त उसे नये भावों, विचार-प्रवाहों से संपन्न करके अर्थक्षेत्र का विस्तार करती है। इसी कारण छोटी कविताओं में कुछ अधूरापन-सा नजर आता है, क्योंकि वहाँ ये परिदृश्य उभर नहीं पाते। आज के संघर्ष जीवन में भी अभिव्यक्ति के सारे खतरे उठाकर रचनाकार अपना पक्ष चुनने को विवश है।"

फैण्टेसी का उपयोग लेखक के लिए कई अर्थों में सुविधाजनक होता है। स्वप्न चित्रात्मकता विधान यदि न होता तो 'अँधेरे में' जैसी कविताएँ सिर्फ एकालाप बनकर रह जाती। सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रतीक योजना भी अर्थों के अनेकायामी स्तर खोलने में अक्षम है, फैण्टेसी के प्रयोग से किसी एक विचारधारा से प्रतिबद्ध रचनाकार भी पुनरावृत्ति जैसे दोष से ग्रस्त नहीं होता, क्योंकि फैण्टेसी से वस्तुपक्ष को गौण रखकर भावों की भाषा में उसे ध्वनित करने की अपूर्व क्षमता होती है। जीवन में जो घटनाएँ, विचार असंगत कहे जाते हैं, फैण्टेसी में वे ही संगीत का उन्मेष करते हैं।

अतः कलात्मक प्रच्छन्नता के अतिरिक्त फैण्टेसी में असंगति के द्वारा संगीत-निदर्शन की सुविधा अन्य प्रतिमानों से अधिक हैं। स्वप्निल प्रभाव में असंभव को संभव दिखाने की क्षमता है, तभी तो मुक्तिबोध का 'पुरुष' अपनी भुजाओं पर आसमान उठा लेता है, आग में कमल खिला सकता है। मुक्तिबोध की मान्यता है

कि फैण्टेसी के उपयोग की सुविधाओं में एक यह भी है कि इसके द्वारा जिये और भोगे गये जीवन की वास्तविकताओं के बौद्धिक अथवा सारभूत निष्कर्षों को अथवा जीवन-ज्ञान को कल्पना के रंगों में प्रस्तुत किया जा सकता है। फैण्टेसी के द्वारा साहित्यकार साहित्य में विलक्षण कलात्मकता में श्रीवृद्धि करता ही है साथ ही वास्तविकता के प्रदीर्घ ज्ञान गर्भ फैण्टेसी द्वारा सार रूप में जीवन की पुनर्रचना अथवा पुनस्सर्जना भी करता है।

मार्क्सवादी विचारधारा

मार्क्स तथा एंगेल्स का मत है कि साहित्य अथवा सौंदर्यबोधी चेतना की उत्पत्ति या उसमें कालानुसार हो रहे परिवर्तनों का कारण मनुष्य के सामाजिक अस्तित्व में ढूँढ़ा जाना चाहिए। चूँकि सामाजिक अस्तित्व की दशाओं में परिवर्तन होता रहता है, वर्गों में बँटे समाज की अनेक प्रक्रियाओं का प्रभाव मनुष्य के सामाजिक अस्तित्व पर पड़ता है। समाज की अनेक प्रक्रिया जाना चाहिए। चूँकि सामात्पत्ति या उसमें कालानुसा

अतः कला के अभिप्राय, भाव, सन्देश, शिल्प में भी बदलाव होता रहता है। कला और मनुष्य के सामाजिक अस्तित्व के बीच यह प्रक्रिया अन्योनाश्रित रूप में चलती रहती है, हमेशा सापेक्ष सम्बन्धों में गतिमान रहती है।

साहित्य तथा कला में यथार्थ का सबसे सटीक चित्रण होना चाहिए। मार्क्सवादी इतिहास दृष्टि ने यथार्थवाद की अवधारणा रखी, जो साहित्य और कला को देखने-परखने का एक बड़ा मापदण्ड है।

साहित्य चिन्तन में मार्क्सवादी विचारकों-लेखकों ने दो तरह से योगदान दिया। पहले में विचारकों ने मार्क्सवादी विचारधारा के सन्दर्भ में साहित्य के आधारभूत प्रश्नों पर विचार किया। आलोचना का एक मानदण्ड तय किया। मार्क्सवादी सिद्धान्त को साहित्य को देखने-परखने के लायक बनाया। दूसरा महत्त्वपूर्ण काम मार्क्सवाद या मार्क्सवाद से प्रभावित लेखकों-रचनाकारों ने किया। उन्होंने यह दिखाया कि मार्क्सवादी विचारधारा को अपनाते हुए उच्च कोटि की साहित्यिक रचनाएँ की जा सकती हैं।

इस तरह कार्ल मार्क्स के इतिहास के बारे में मानते हैं कि -
.साहित्य एवं कलाएँ विचारधारा का ही एक रूप है।
• वे मूलतः समाज के आर्थिक-भौतिक जीवन से उत्पन्न एवं उसी पर स्थित और आधारित है।
• आर्थिक-भौतिक धरातल पर परिवर्तन होने के साथ ही साहित्य, कला अथवा विचारधारा के अन्य रूपों में भी कमोबश उसी तेजी के साथ परिवर्तन हो जाता है।
.ऐसे परिवर्तनों पर विचार करते समय उत्पादन की आर्थिक परिस्थितियों - जिन्हें पदार्थ विज्ञान की भाँति ठीक से आँका जा सकता है, एवं विचारधारा के रूपों- जिनमें मनुष्य इस संघर्ष के प्रति सचेत रहता है, के बीच भेद किया जाना चाहिए।

हालाँकि मार्क्स साहित्य पर आर्थिक और भौतिक जीवन का निर्णायक प्रभाव मानते हैं तब वे उसकी स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार करते है। हालाँकि मार्क्सवादी आलोचकों में इस विषय पर पर्याप्त मत भिन्नता है।

मार्क्सवादी विचारधारा को साहित्य से जोड़ने और उसकी व्याख्या करनेवालों में कई मार्क्सवादी विचारकों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। इन विचारकों में जी.वी. प्लेखानोव, लूनाचारस्की, गोर्की, कॉडवेल, राल्फ फॉक्स, जार्ज लुकाच, अर्स्ट फिशर, रेमण्ड विलियम्स, वाल्टर बेंजामिन, फ्रेडरिक जेमसन, टेरी ईगलटन आदि का नाम लिया जा सकता है। इनके अलावा भी स्थानीय स्तर पर प्रत्येक देश में मार्क्सवादी साहित्येतिहासकार एवम् आलोचक सक्रिय रहे हैं।

प्लेखानोव ने अपनी पुस्तक कला और सामाजिक जीवन में मार्क्सवादी विचारधारा के समाजशास्त्र और सौंदर्यशास्त्र को समझाने का प्रयास किया हैं। उन्होंने कला और सामाजिक जीवन की अभिन्नता को स्वीकार किया और व्यक्तिवादी प्रवृत्ति का जोरदार विरोध किया।

उन्होंने तोल्सतॉय के कला सम्बन्धी विचारों से असहमति दिखाई। तोल्सतॉय का मानना था कि कला मानव के बीच सम्पर्क का एक माध्यम है। अतः मात्र शब्दों के माध्यम से स्थापित किए जाने वाले सम्पर्क से इस कारण विशिष्ट है कि जहाँ शब्दों के माध्यम से मानव दूसरे मानव तक अपने विचारों को पहुंचाता है, वहाँ कला के माध्यम से वह दूसरे मनुष्यों तक अपने भावों का सम्प्रेषण नहीं, भावों का सम्प्रेषण भी होता है। इसका उदाहरण कविता है, जहाँ वस्तुतः शब्द ही माध्यम का काम करते हैं। प्लेखानोव ने डार्बिन की सौन्दर्य निष्पत्तियों पर भी विचार किया है।

इसी तरह लूनाचारस्की ने भी मार्क्सवादी आलोचना पद्धति के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। मार्क्सवादी समीक्षा की समस्याएँ उनका बहुत ही चर्चित निबन्ध है। लूनाचारस्की की मूल स्थापना है कि किसी साहित्यिक कृति तथा किसी वर्ग अथवा दूसरे वर्ग के मनोविज्ञान या सामाजिक प्रकृति वाले विस्तृत समुदायों के पारस्परिक सम्बन्धों का निश्चय मुख्यतः साहित्य के वस्तु तत्त्व के आधार पर होता है।

लूनाचारस्की के बाद गोर्की महत्त्वपूर्ण मार्क्सवादी रचनाकार और आलोचक हैं। उन्होंने सन् 1934 में सर्वप्रथम समाजवादी यथार्थवाद की रूपरेखा प्रस्तुत की थी। यह अवधारणा भी आगे चलकर बहुत विवादस्पद रही। उनका मानना था कि लेखकों को अपने साहित्य के इतिहास में भलिभाँति परिचित होना आवश्यक है। इसके साथ ही लेखक को मानवीय श्रम तथा सर्जना के इतिहास से भी परिचित होना चाहिए।
इसी तरह कॉडवेल ने कविता को आधार बनाकर अपनी बात रखने की कोशिश की। कॉडवेल का मानना है कि कविता का अध्ययन विशुद्ध रूप से सौंदर्यशास्त्र की सीमा में रहकर नहीं किया जा सकता। सौंदर्यशास्त्र की सीमा में ही बन्धे रहने वाले या तो रचनाकार हो सकते हैं, या भावक, लेकिन कविता की समीक्षा के लिए उससे बाहर निकलना जरूरी है। कॉडवेल ने कविता की परिभाषा देते हुए कहा कि 'कविता साधारण

वाणी का सुथरा अथवा उदात्त रूप होती है। साधारण वाणी को यह सुथरापन या उदात्तता छन्द, तुक, लय, तान, अनुप्रास, समान अक्षरवाली पंक्तियों या समान भाव वाले स्वरों आदि से प्राप्त होता है।

राल्फ फॉक्स ने मुख्यतः उपन्यास के सन्दर्भ में अपनी मान्यताएँ प्रस्तुत की। उनकी पुस्तक उपन्यास और लोकजीवन सारे संसार में प्रसिद्ध है। हिन्दी में भी इस पुस्तक का अनुवाद हो चुका है। इन विद्वानों के अलावा कई और भी नाम है जिन्होंने मार्क्सवादी साहित्य सिद्धान्त को बनाने में अपना अहम योगदान दिया है। हिन्दी आलोचना में भी मार्क्सवादी साहित्येतिहास चिन्तन की परम्परा मिलती है। इनमें शिवदान सिंह चौहान, रांगेय राघव, प्रकाश चन्द्र गुप्त, रामविलास शर्मा, नामवर सिंह, मैनेजर पाण्डेय आदि मुख्य है। इन्होंने मार्क्सवादी के अनुरूप हिन्दी साहित्य पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। हालाँकि मार्क्सवाद के अन्य क्षेत्रों की तरह हिन्दी के इन विचारकों के बीच भी गम्भीर मतभेद हैं।

मार्क्सवादी सिद्धान्त का वर्गीकरण - मार्क्सवाद को प्रमुखतः दो वर्गों में बाँटा गया है -
1. चिर सम्मत मार्क्सवाद
2. समकालीन मार्क्सवाद

(अ) चिर सम्मत मार्क्सवाद - मार्क्सवाद की जो मान्यताएँ स्वयं मार्क्स एवं एंजेल्स के विचारों पर आधारित है, उन्हें चिरसम्मत मार्क्सवाद कहा जाता है।
→ चिरसम्मत मार्क्सवाद के सिद्धान्तों को भी पुनः चार भागों में विभाजित किया गया है, यथा - (i) द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (ii) ऐतिहासिक भौतिकवाद (iii) वर्ग-संघर्ष का सिद्धान्त (iv) अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त

(ब) समकालीन मार्क्सवाद - मानवीय पक्ष पर आधारित मार्क्सवाद समकालीन मार्क्सवाद कहलाता है। इसका उद्देश्य उत्पादन प्रणाली में पूँजीवादी की जगह समाजवाद लाना नहीं है अपितु बेबस मनुष्यों को उनकी सच्ची स्वतंत्रता दिलाना भी है।
» साहित्यिक मार्क्सवाद - डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल ने मार्क्सवादी मान्यताओं को कला और साहित्य के संदर्भ में विश्लेषित करते हुए इसे निम्नानुसार प्रस्तुत किया है -

- द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद ही मार्क्सवादी चिन्तकों, आलोचकों की कला और साहित्य संबंधी मान्यताओं का मूल केन्द्र है।
- कला के लिए दृष्टि का विरोध करते हुए जन कल्याण अथवा लोक मंगल ही इनकी दृष्टि से काव्य का अभिप्रेत प्रयोजन है।
- समाज/शोषितों का यथार्थवाद चित्रण ही इनके विचार से कला तथा साहित्य का इष्ट है।
- सामाजिक वैषम्य की समाप्ति तथा वर्ग-विहीन समाज की स्थापना ही इनका लक्ष्य हैं
- क्लासिक काव्य परम्परा को आदर देते हुए इन्होंने अपनी दृष्टि का विस्तार किया है।

- कला में इनकी दृष्टि से बाह्य का ही नहीं, अन्तर्मन का भी चित्रण होता है।
- पूर्णतः भौतिकवाद पर आधारित होने के कारण इनका धर्म, ईश्वर, आत्मा तथा दर्शन में विश्वास नहीं है।
- कला तथा साहित्य अभिव्यक्ति का एक साधन मात्र है।
- साहित्य साहित्यकार की वैयक्तिक चेतना न होकर समाज की सामूहिक चेतना है।
- समानाधिकार, स्वतंत्रता, स्वायत्तता, मानवीय गरिमा, जिस साहित्य से उत्पन्न हो सकते हैं, वही क्रान्ति और विद्रोह का जीवन दर्शन इन्हें मान्य है।

महत्त्वपूर्ण तथ्य -

- हिन्दी का प्रथम मार्क्सवादी आलोचक - शिवदान सिंह चौहान है।

- शिवदान सिंह चौहान द्वारा लिखा गया - "भारत में प्रगतिशील साहित्य की आवश्यकता" (1937) शीर्षक निबन्ध जिसे प्रथम मार्क्सवादी समीक्षा स्वीकार किया जाता है।

- हिन्दी साहित्य की जनवादी परम्परा (1953) - प्रकाश चन्द गुप्त

-दोआब - (1948) शमशेर सिंह बहादुर प्रेमचन्द और उनका युग - (1952)

भाषा और समाज (1961)

रामविलास शर्मा

निराला की साहित्य साधना (1979-72-76), तीन भाग

कामायनी एक पुर्नविचार (1961), नये साहित्य का सौंदर्य शास्त्र (1971),

मुक्तिबोध

- हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष - शिवदान सिंह चौहान ।

दूसरी परम्परा की खोज (1982) - नामवर सिंह

- अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर सर्वप्रथम 'हेनरी बारबूज' के प्रयासों से 1935 ई. में फ्रांस की राजधानी पेरिस में संसार के प्रगतिशील लेखकों को संगठित करने का प्रयास शुरू हुआ।

-इन प्रयासों से सर्वप्रथम 1935 ई. में ही पेरिस में अंग्रेजी साहित्य के प्रसिद्ध कथाकार एवं विचारक 'ई.एम. फोर्टर' की अध्यक्षता में "प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन" नामक अतरराष्ट्रीय संस्था का प्रथम अधिवेशन आयोजित हुआ। ।

-अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना 1935 ई. में लंदन में हुई। इसके प्रणेता सज्जाद जहीर व मुल्कराज आनंद थे।

- इस संस्था का प्रथम अधिवेशन 1936 ई. में मुंशी प्रेमचन्द की अध्यक्षता में 'लखनऊ में आयोजित हुआ। । इसमें मुंशी प्रेमचन्द ने सभापति पद से दिये गये भाषण में घोषित किया कि "साहित्य केवल मनोरंजन की वस्तु नहीं है, उसका लक्ष्य समाज हित होना चाहिए।"

- रामविलास शर्मा को हिन्दी साहित्य के प्रगतिवाद (मार्क्सवाद) का पितामाह कहा जाता है।

- मार्क्सवाद का प्रतिपादन 19 वीं शताब्दी के मध्य में 'कार्ल हेनरिच मार्क्स' (1818-1883 ई.) एवं 'फ्रेडरिक एंजेल्स' (1820-1895 ई.) के द्वारा किया गया था।

रस की निष्पत्ति के सिद्धान्त

भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र के छठे अध्याय में रस-सूत्र दिया - "विभावानुभाव व्यभिचारी संयोगाद्रस निष्पत्तिः"

विभाव-आलम्बन तथा उद्दीपन, अनुभाव-आश्रय की चेष्टाएँ एवं संचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति मानी है।

भरत के इस रस-सूत्र में प्रयुक्त संयोग और निष्पत्ति शब्दों की व्याख्या भिन्न-भिन्न आचार्यों ने भिन्न-भिन्न रूप में की है। अभिनवगुप्त के 'अभिनव भारती' तथा 'ध्वन्यालोकलोचन' में इन कतिपय व्याख्याओं का उल्लेख उपलब्ध है।

"विभावानुभाव व्यभिचारी संयोगादस निष्पत्तिः"

रस

विभाव+अनुभाव+संचारीभाव - रस

भरतमुनि ने स्थायी भाव की बात इस रससूत्र में नही की

आचार्य मम्मट ने 'काव्यप्रकाश में प्रमुख चार आचार्यों भट्ट लोल्लट, शंकुक, भट्टनायक एवं अभिनव गुप्त के सिद्धांतों का निरूपण किया है। पण्डितराज जगन्नाथ ने रसगंगाधर में रस निष्पत्ति सम्बन्धी ग्यारह व्याख्याओं का उल्लेख किया है। इनमें काव्यप्रकाश में उल्लिखित चार आचार्यों के मत ही विशेष विवेचनीय हैं।

भरत ने संयोग और निष्पत्ति शब्द की व्याख्या अग्रांकित रूप से की है - "जिस प्रकार नाना व्यंजनों से युक्त अन्न आदि के उपभोग से पुरुष उसका आस्वाद प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार सहृदय दर्शक विविध भावों एवं अभिनयों से युक्त

स्थायी भावों का आस्वाद प्राप्त करते हैं।" इस उद्धरण के आधार पर संयोग का अर्थ है सम्यक् योग अर्थात् विभावादि की सुव्यवस्थित योजना | भरत के अनुसार, "जिस प्रकार विविध व्यंजनों, औषधियों तथा द्रव्यों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है उसी प्रकार विविध विभावादि भावों के संयोग से नाट्य-रस निष्पन्न होता है।" । इस प्रकार भरत के अनुसार रस आस्वाद्य है और इस रूप में वह वस्तुगत अर्थात् नाट्यगत है। नाटक में विभावादि की व्यवस्थित योजना से सहृदय का स्थायी रस रूप में निवर्तित हो जाता है। भरत के इस सिद्धांतपरक सूत्र के व्याख्याताओं का सबसे बडा योगदान यह है कि उन्होंने रस के मूल भोक्ता और रसभोग की प्रक्रिया का अपने-अपने ढंग से सुन्दर और स्पष्ट विवेचन प्रस्तुत किया है।

भरत के सूत्र में प्रयुक्त विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों के स्वरूप के सम्बन्ध में परवर्ती आचार्यों का भरत से किसी प्रकार का मतभेद नहीं रहा, केवल दो शब्द संयोग तथा निष्पत्ति ही विवादग्रस्त रहे हैं और इन्हीं के आधार पर विभिन्न आचार्यों ने अपना विवेचन प्रस्तुत किया है।

रस-निष्पत्ति के व्याख्याता आचार्य

भट्टलोल्लट - उत्पत्तिवाद/ आरोपवाद/ उपचयवाद - मीमांसा दर्शन
शंकुक - अनुमितिवाद - न्याय दर्शन
भट्टनायक - भुक्तिवाद - सांख्य दर्शन
अभिनवगुप्त - अभिव्यक्तिवाद - शैव दर्शन

1. भट्ट लोल्लट का उत्पत्तिवाद/आरोपवाद

संयोग का अर्थ	भाव संबंध	निष्पत्ति का अर्थ
स्थायी भाव+ विभाव	उत्पाद्य-उत्पादक	रस की उत्पत्ति
स्थायी भाव+ अनुभाव	गम्य-गमक	रस की उत्पत्ति
स्थायी भाव+ संचारी	भाव पोष्य-पोषक	रस की पुष्टि

भरत सूत्र के प्रथम व्याख्याकार भट्ट लोल्लट हैं। इनका कोई स्वतन्त्र ग्रंथ उपलब्ध नहीं होता है। रस की उत्पत्तिवादिता का समर्थन करने वाले इनके मत के कुछ उद्धरण अभिनवगुप्त कृत 'अभिनव भारती' और 'ध्वन्यालोक लोचन' में मिलते है। भट्टलोल्लट के मत को उत्पत्तिवाद, आरोपवाद और उपचयवाद आदि विविध संज्ञाओं से अभिहित किया गया है। इस मत में निष्पत्ति का अर्थ है उत्पत्ति और संयोग का अर्थ है उत्पाध-उत्पादक भाव । भट्ट लोल्लट के अनुसार स्थायी भाव के साथ विभावादि के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। अनुभाव स्थायी भावों के पीछे उत्पन्न होते हैं और स्थायी भाव को इस योग्य बना देते है कि उसकी उत्पत्ति की प्रतीति हो सके। स्थायी भाव का आश्रय कनुकार्य (राम आदि) हैं। सीतादि आलम्बन स्थायी भाव को अनुकार्य के चित्त में ही उत्पन्न करते हैं। कुछ विद्वानों का विचार है कि भट्ट लोल्लट ने यह कहीं नहीं लिखा है कि रस का अनुभव अनुकार्य या अनुकर्ता नट आदि करते है। भट्ट लोल्लट ने मूल या मुख्य रूप से रस स्थिति मूल ऐतिहासिक अथवा काव्य-निबद्ध रामादि में मानते हुए उसे इसके अभिनय की अनुकृति में भी स्वीकार किया हैं। नट में रस किस प्रकार उत्पन्न होता है, इसका कारण भट्ट लोल्लट ने 'अनुसंधान' को बताया है। संस्कृत आचार्यों ने अनुसंधान के तीन अर्थ किये हैं - (1) आरोप, (2) अभियान, (3) योजन। तीनों शब्दों से तादात्म्य की ही ध्वनि निकलती है। नट रामादि से तादात्म्य स्थापित करके स्वयं को रामादि के रूप में एवं नटी को सीतादि के रूप में देखता है। इस आरोपण का परिणाम यह होता है कि नट के भी रत्यादि उबुद्ध होने एवं परिपुष्ट होने के अवसर को प्राप्त करते हैं। मम्मट के

विवेचन के अनुसार रस की नट में प्रतीति सामाजिक होती है। भट्ट लोल्लट के मत को संक्षेप में इस प्रकार रखा जा सकता है -

"रत्यादि स्थायी भाव आलम्बनादि विभावों से उत्पन्न होकर एवं व्यभिचारी भावों से पुष्ट होकर अनुभावों द्वारा व्यक्त होकर अनुकार्य में रस रूप में रहता है। रस के वास्तविक भोक्ता नायक-नायिका हैं। नट-नटी के अभिनय से प्रेक्षक उनमें ही नायक-नायिका का आरोपण कर लेता है। इस प्रकार नायक-नायिका का रस वास्तविक हुआ, सामाजिक प्रतीतिजन्य और इसके माध्यम नट और नटी।"

भट्ट लोल्लट के मत की उपलब्धियाँ और सीमाएँ - परवर्ती आचार्यों ने भट्ट लोल्लट की उपर्युक्त व्याख्या को अस्वीकार कर दिया एवं उस पर अनेक आक्षेप लगा दिये, किन्तु लोल्लट की व्याख्या का अपना निजी वैशिष्ट्य भी है। डॉ. नगेन्द्र ने इस मत की चार प्रमुख विशेषताओं तथा उपलब्धियों का उल्लेख किया है। -
(1) भरत-सूत्र की अन्य व्याख्याओं में यह व्याख्या मूल के सर्वाधिक निकट है।
(2) लोल्लट ने कला में वस्तु के महत्त्व को स्थापित किया है।
(3) अभिनतेता द्वारा रसानुभूति की घोषणा नाट्यकला में एक अद्भुत मोड़ उपस्थित करती है। (4) रस की व्यक्तिपरक व्याख्या का सूत्रपात लोल्लट से ही होता है।

भट्ट लोल्लट के सिद्धांत की सीमाएँ अथवा कमियाँ इस प्रकार हैं -
(1) उन्होंने सामाजिक के रसास्वादन की समस्या को दूर से देखा है। वे उसे अनुभव कर्ता नहीं, प्रतीतिकर्ता के रूप में रखकर रस-समया पर विचार करते हैं।
(2) वे अनुकार्य के विषय में मूल मात्र और कवि-निबद्ध पात्र का भेद स्पष्ट नहीं कर पाये हैं।
(3) लोल्लट के विवेचन के अनुसार रस की स्थिति प्रतयक्ष ऐन्द्रिय मानसिक भय से अभिन्न और तद्नुसार सुख-दुखात्मक हो जाती है। यह स्थिति अमान्य है।

मानवाद - शंकुक के अभिमत को अनुमितिवाद, अनुमानवाद अथवा अनुकृतिवाद कहा गया है। विद्वानों का एक वर्ग शंकुक की व्याख्या में किसी वाद के अस्तित्व से इन्कार करता है। शंकुक के अनुसार निष्पत्ति का अर्थ अनुमिति या संयोग का अर्थ गम्यगमक भाव से है। वैसे जैसा कि डॉ. नगेन्द्र ने स्पष्ट किया हैं, शंकुक की व्याख्या में नट की स्थिति प्रधान होने से निष्पत्ति का प्राथमिक अर्थ अनुकृति ही है, अनुमिति का स्थान गौण है। संक्षेप में शंकुक का मत इस प्रकार है -

शंकुक के अनुसार स्थायी भाव वास्तव में रामादि अनुकार्य में ही होता है, किन्तु रस की निष्पत्ति में विशेष योगदान नट-नटी का होता है। जब नट-नटी अनुकार्य के रूप, व्यवहार आदि का अभिनय करते हुए रंगमंच पर उनके प्रणय का दृश्य प्रस्तुत कर देते हैं तब रस की निष्पत्ति होती है। शंकुक के अनुसार रस-निष्पत्ति का अर्थ हुआ-स्थायी भाव की अनुकृति अथवा स्थायी भाव का अभिनय । शंकुक के मत में रस का आधार नट है। "जिस प्रकार उडती हुई धूल को

धुआँ समझकर कोई आग का अनुमान कर ले, उसी प्रकार जब नट यह प्रकट करता है कि विभावादि हमारे ही हैं, तब विभावादि में नियत रति इत्यादि भाव का दर्शक लोग नट मे ही अनुमान कर लेते हैं, यद्यपि यह रतिभाव उसमें होता ही नहीं है। यही अनुमति, रतिभाव सामाजिकों के आस्वाद का हेतु होने से रस कहलाता है। शंकुक के अनुसार नट में राम की प्रतीति एक विचित्र प्रतीति है, जो संदेह, यथार्थ और भ्रांति से परे है। इस कलाजन्य विशिष्ट प्रतीति को 'चित्रतुरगन्याय' का आश्रय लेकर स्पष्ट किया गया है। जिस प्रकार चित्र में अश्व से अश्व की प्रतीति होती है, उसी प्रकार अनुकर्ता नट को देखकर रामादि की प्रतीति होती है। शंकुक ने अनुकार्य (रामादि) को ऐतिहासिक न मानकर उनके कविनिबद्ध रूप को ही स्वीकार किया है।

शंकुक की उपलब्धियाँ और सीमाएँ - शंकुक की रस विषयक व्याख्या भट्ट लोल्लट के मत की विकसित कडी है। उसकी उपलब्धियाँ इस प्रकार हैं -

(1) शंकुक ने पहली बार सामाजिक के आस्वादन को मुख्य रूप से विवेचन का आधार बनाया।

(2) शंकुक ने 'अनुकरण' पर बल दिया है, वे नट के अनुकरण और सामाजिक प्रतीति को सर्वथा पृथक नहीं मानते।

(3) अनुकार्य के वास्तविक रूप को भी शंकुक ने ही स्पष्ट किया। लोल्लट ने अनुकार्य के प्रसंग में मूल पात्र और कवि-निबद्ध पात्र के बीच भ्रांति उत्पन्न कर दी थी। शंकुक ने स्पष्ट कहा है कि नाट्य में अनुकार्य का अर्थ है कवि-निबद्ध पात्र।

(4) रस-विवेचन को निश्चित दार्शनिक भूमिका पर प्रतिष्ठित करने का श्रेय शंकुक को ही प्राप्त है। शंकुक का सिद्धांत न्यायशास्त्र पर आधारित है।

उपलब्धियों की तुलना में शंकुक की सीमाएँ अधिक स्पष्ट हैं -

(1) शंकुक के अनुसार मूल पात्र के भाव का नट द्वारा अनुकरण ही रस है। इस अनुकरणवाद का भट्टतौत एवं अभिनवगुप्त ने तीव्र विरोध किया है। भट्टतौत की दृष्टि में रस की अनुकरणात्मकता न तो नट के अभिप्राय से, न सामाजिक की प्रतीति की दृष्टि से, न दार्शनिकों की दृष्टि से और न भरत के दृष्टिकोण से ही सिद्ध होती है।

(2) शंकुक के सिद्धांत में प्रत्यक्ष ज्ञान की अवज्ञा हुई है।

(3) अनुमान पर बल देने के कारण इस सिद्धांत के अनुसार प्रेक्षक का आलम्बन से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रह जाता। ऐसे किसी प्रकार के सम्बन्ध में अभाव में रसास्वादन नहीं हो सकता। (4) इस सिद्धांत में अभिनय तत्त्व को प्रधान और काव्य तत्त्व को गौण माना गया है, जबकि रस परिपाक का मूल कारण काव्य ही है, अभिनय तो उनका पोषक मात्र है।

3.भट्टनायक - भट्टनायक के पूर्व सम्पन्न रस विषयक व्याख्याओं में दो आपत्तियाँ प्रमुख थीं- (1) अदृष्टपूर्व राम आदि चरित्रों की रसानुभूति की मात्रा के सम्बन्ध में अज्ञान और (2) दूसरों के व्यवहारों के प्रति हमारी संस्कारनिष्ठ एवं परम्परागत श्रद्धा, घृणा, राग-द्वेष आदि के कारण उनके साथ तादात्म्य

सम्बन्ध का स्थापित न हो सकना । भट्टनायक ने इन आपत्तियों के निराकरण हेतु अपना भुक्तिवाद प्रस्तुत किया।

भट्टनायक के अनुसार न तो रस की उत्पत्ति होती है, न तो प्रतीति होती है और न रस की अभिव्यक्ति ही होती है। रस की भुक्ति होती है। अपने इस सिद्धांत की पृष्टि के लिए वे काव्य के तीन व्यापारों की कल्पना करते हैं- अभिधा, भावकत्व और भोजकत्व । अभिधा से सामान्य अर्थ की अनुभूति होती है। यह अर्थ ग्रहण बौद्धिक स्तर पर ही सम्पन्न होता है। भावकत्व क्रिया से हृदय को अर्थ की अनुभूति होती है। भावकत्व की जिस क्रिया के द्वारा पाठक को काव्यानुभूति होती है, उसे ही साधारणीकरण कहकर पुकारा गया है। ऐसी भाव-दशा उत्पन्न होने पर सहृदय (सामाजिक) का चित्त व्यक्तिगत संसर्गों से युक्त हो जाता है और सामाजिक के हृदय का स्थायी भाव भावित होकर रस रूप में परिणत हो जाता है। भोजकत्व व्यापार के द्वारा सामाजिक भावकत्व द्वारा सिद्ध रस का भोग करता है। यह भोग प्रत्यक्ष या परोक्ष लौकिक अनुभव से विलक्षण है। इस समय सहृदय के चित्त के सत्व का उद्रेक हो जाता है। इस सत्वोद्रेक में रजोगुण और तमोगुण की विचित्रताएँ भी सम्मिलत रहती है।

भट्टनायक के उपर्युक्त विवेचन के अनुसार निष्पत्ति का अर्थ है भावित होना या भाविति, तथा संयोग का अर्थ है-भावक -भाव्य सम्बन्ध । इस प्रकार भट्टनायक के अनुसार, रसनिष्पत्ति का अर्थ है विभावादि के भाव्यमान होने पर रस की भुक्ति ।

उपलब्धियाँ और सीमाएँ - भट्टनायक की दो विशिष्ट उपलब्धियों को प्रायः सभी आचार्यों ने स्वीकार किया है। वे इस प्रकार हैं -

(1) भट्टनायक द्वारा साधारणीकरण की परिकल्पना।

(2) सामाजिक की दृष्टि से रसास्वादन की ठीक-ठीक व्याख्या का प्रयास।

4.अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद - भट्टनायक के मत में आवश्यक संशोधन करते हुए अभिनवगुप्त ने अपनी महत्त्वपूर्ण व्याख्या प्रस्तुत की। यद्यपि अभिनवगुप्त ने स्वीकार किया है कि उन्होंने कोई नवीन मान्यता की स्थापना न करके प्राचीन मान्यताओं का ही शोधन किया है, फिर भी उनके सिद्धांत में मौलिकता का अंश न्यून नहीं है। परवर्ती आचार्य उन्हीं की व्याख्या को आदर्श मानकर चले हैं। आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार स्थायी भाव सामाजिक के अन्तःकरण में वासना रूप में सदैव वर्तमान रहते हैं। नाटक या काव्य में प्रस्तुत विभावादि के सम्पर्क में आकर स्थायी भाव अभिव्यक्त होकर रस में परिणत हो जाते हैं। यह रस ब्रह्मास्वाद के तुल्य होता है। रसास्वादन में यद्यपि सामाजिक की आत्मा की भूमिका महत्त्वपूर्ण है, किन्तु साधारणीकरण व्यष्टि के धरातल पर ही न होकर समष्टि के धरातल पर भी होता है। साधारणीकरण हो जाने से सहृदय का चित्त 'निज मोह संकट' से मुक्त होकर भाव का भोग करता है। इस भोग-व्यापार में व्यंजना ही प्रधान कारण है। अभिनवगुप्त के अनुसार निष्पत्ति का अर्थ है- अभिव्यक्ति और संयोग से उनका आशय है-व्यंग्य-व्यंजक सम्बन्ध ।

उपलब्धियाँ और सीमाएँ - अभिनवगुप्त की उपलब्धियाँ इस प्रकार हैं -

(1) पूर्ववर्ती आचार्यों की तुलना में अभिनवगुप्त की व्याख्या का दार्शनिक आधार गम्भीर एवं प्रामाणिक है।

(2) अभिनव के सर्वप्रथम रस की वस्तुपरक सत्ता को नकारकर उसकी आत्मगत व्याख्या प्रस्तुत की है।

(3) समष्टिगत रस की कल्पना अभिनव की मौलिक प्रतिभा का दिग्दर्शन कराती है। व्यक्तिवादी होते हुए भी उन्होंने रस-चक्र की पूर्णता अन्ततः सामूहिक रस-चेतना में मानी है।

अभिनवगुप्त के सिद्धांत में कुछ सीमाएँ भी हैं, जो इस प्रकार हैं -

(1) अभिनवगुप्त ने भरत के मत को अपने विचारों से इस प्रकार आक्रान्त कर दिया कि परवर्ती काव्यशास्त्र में उसका वास्तविक रूप प्रच्छन्न हो गया है।

(2) इस सिद्धांत के अनुसार काव्यास्वाद आत्मास्वाद से प्रायः अभिन्न हो जाता है जो कम से कम बुद्धि हो ग्राह्य नहीं है।

(3) रस की आत्मगत व्याख्या से सहृदयता प्रमुख हो जाती है और काव्य की सत्ता गौण हो जाती है।

रस का अर्थ व भेद

- भारतीय काव्यशास्त्र के विभिन्न सम्प्रदायों में रस सिद्धान्त सबसे प्राचीन सिद्धान्त है। रस सिद्धान्त का विशद एवं प्रामाणिक विवेचन भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में ही सर्वप्रथम उपलब्ध होता है।
- आचार्य विश्वनाथ - "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्'
- काव्य के पठन - श्रवण, दर्शन से प्राप्त होने वाला लोकोत्तर आनन्द ही आस्वाद दशा में रस कहलाता है।
- .रस की निष्पत्ति सामाजिक के हृदय में तभी होती है, जब उसके हृदय में रजोगुण और तमोगुण का तिरोभाव होकर सत्वगुण का उद्रेक होता है। इसमें ममत्व और परत्व की भावना तथा सांसारिक राग-द्वेष का पूर्णतया लोप हो जाता है।
- रस अखण्ड होता है। सहृदय को विभाव अनुभाव व्यभिचारी भावों की पृथक्-पृथक् अनुभूति न होकर समन्वित अनुभूति होती है।
- रस वेद्यान्तर स्पर्श शून्य है।
- रस स्वप्रकाशानन्द तथा चिन्मय है।
- रस को ब्रह्मानन्द सहोदर माना गया है। (साहित्य दर्पण-आचार्य विश्वनाथ)
- .रसानुभूति अलौकिक चमत्कार के समान है। रस को कुछ आचार्य सुख-दुखात्मक मानते हैं।
- .रस मूलतः आस्वाद रूप है, आस्वाद्य पदार्थ नहीं है, फिर भी व्यवहार में 'रस का आस्वाद किया जाता है। ऐसा प्रयोग गौण रूप से प्रचलित है। इसलिए रस अपने रूप से जनित है।
- .भरतमुनि ने नाट्य शास्त्र में रस सूत्र दिया है। 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पति' इस मत के अनुसार जिस प्रकार नाना व्यंजनों के संयोग से भोजन करते समय पाक रसों का आस्वादन होता है। उसी प्रकार काव्य या नाटक के अनुशीलन से अनेक भावों का संयोग होता है, जो आस्वाद-दशा में 'रस' कहलाता है।

• रस के अवयव :

1. स्थायी भाव -

• मन के भीतर स्थायी रूप से रहने वाला सुषुप्त संस्कार या वासना को स्थायी भाव कहते हैं।

• स्थायी भाव अनुमूल आलम्बन तथा उद्दीपन रूप उद्बोधन सामग्री के संयोग से रस रूप में अभिव्यक्त होते हैं।

• स्थायी भाव ऐसा सागर है जो सभी विरोधी अविरोधी भावों को आत्मसात् करके अपने अनुरूप बना लेता है।

- .मम्मट आदि आचार्यों ने (1) रति (2) हास (3) शोक (4) क्रोध (5) भय (6) जुगुप्सा (7) निर्वेद (8) विस्मय नौ स्थायी भाव माने हैं।
- रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहो भयं तथा।
- जगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायिभावाः प्रकीर्तिताः ।
- निर्वेदः स्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः ।।
- .भरत मुनि के समय प्रारम्भ में निर्वेद को छोड आठ भाव ही माने गए थे।
- .परवर्ती काल में हिन्दी के कवियों एवं आचार्यों ने वात्सल्य रस का स्थायी भाव 'वत्सल' स्वीकार किया है तथा भक्ति रस में भक्तवत्सल्य रति को ग्यारहवाँ स्थायी भाव स्वीकार किया है।

2. **विभाव**

• जो कारण हृदय में स्थित स्थायी भाव को जाग्रत तथा उद्दीप्त करें अर्थात् रसानुभूति के कारण को विभाव कहते हैं।

विभाव के दो भेद हैं -

(i) आलम्बन विभाव - जिस व्यक्ति या वस्तु के कारण स्थायी भाव जाग्रत होता है उन्हें आलम्बन विभाव कहते हैं। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार काव्य या नाट्य में वर्णित नायक-नायिका आदि पात्रों को आलम्बन विभाव कहते हैं।

(ii) उद्दीपन विभाव - स्थायी भाव को उद्दीप्त या तीव्र करने वाले कारण उद्दीपन विभाव होते हैं। नायक नायिका का रूप सौन्दर्य, पात्रों की चेष्टाएँ, ऋतु, उद्यान, चाँदनी, देश-काल आदि उद्दीपन विभाव होते हैं।

इन्हें दो भागों में विभाजित किया जाता है -

(i) विषयनिष्ठ उद्दीपन विभाव

(ii) बाह्य उद्दीपन विभाव।

शारीरिक चेष्टाएँ, हाव-भाव विषयनिष्ठ उद्दीपन विभाव तथा प्राकृतिक वातावरण, देशकाल आदि बाह्य उद्दीपन विभाव होते हैं।

3. अनुभाव -

'अनुभावो भाव बोधक' अर्थात् भाव का बोध कराने वाले अनुभाव होते हैं।

रसानुभूति में विभाव कारण रूप हैं तो अनुभाव कार्य रूप होते हैं। अनुभव कराने के कारण ही ये अनुभाव कहलाते

• आलम्बन उद्दीपन विभाव द्वारा रस को पुष्ट करने वाली शारीरिक मानसिक अथवा अनायास होने वाली चेष्टाएँ अनुभाव कहलाती हैं।

.भरत मुनि ने अनुभाव के तीन भेद (आंगिक, वाचिक, सात्विक) किए हैं। भानुदत्त ने इसके चार भेद माने जो परवर्ती आचार्यों ने स्वीकार किए -

(i) आंगिक या कायिक अनुभाव - शरीर की चेष्टाओं से व्यक्त कार्य, जैसे-भ्रू संचालन, आलिंगन, कटाक्षपात, चुम्बन आदि आंगिक अनुभाव होते हैं।

(ii) वाचिक अनुभाव - वाणी के द्वारा मनोभावों की अभिव्यक्ति (परस्परालाप) इसमें होती है, इसे 'मानसिक' अनुभाव भी कहा गया है।

(iii) सात्विक अनुभाव - ये अन्तःकरण की वास्तविक दशा के प्रकाशक होते हैं। सत्व से उत्पन्न होने के कारण इन्हें सात्विक कहा जाता है। सात्विक अनुभाव आठ हैं-स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, वेपथु, स्वरभंग, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय ।

(iv) आहार्य अनुभाव - नायक-नायिका के द्वारा पात्रानुसार, वेशभूषा, अलंकार आदि को धारण करना अथवा देशकाल का कृत्रिम रूप में उपस्थापन करना आहार्य अनुभाव कहलाता है।

4. व्यभिचारी (संचारी) भाव -

.विविधम् आभिमुख्येन रसेषु चरन्तीति व्याभिचारिणः

.व्यभिचारी (संचारी) भाव स्थायी भाव के साथ-साथ संचरण करते हैं, इनके द्वारा स्थायी भाव की स्थिति की पुष्टि होती है। एक रस के स्थायी भाव के साथ अनेक संचारी भाव आते हैं तथा एक संचारी किसी एक स्थायी भाव के साथ या रस के साथ नहीं रहता है, वरन् अनेक रसों के साथ संचरण करता है, यही उसकी व्यभिचार की स्थिति है।

.संचारी भाव उसी प्रकार उठते हैं और लुप्त होते हैं जैसे जल में बुदबुदे और लहरें उठती हैं और विलीन होती रहती

है।

• भरत मुनि ने तैंतीस संचारी भावों का उल्लेख किया है -

1. निर्वेद 2. ग्लानि 3. शंका 4. असूया 5. मद 6. श्रम 7. आलस्य 8. दैन्य 9. चिन्ता 10. मोह 11. स्मृति 12. धृति 13. व्रीडा 14. चपलता 15. हर्ष 16. आवेग 17. जडता 18. गर्व 19. विषाद 20. औत्सुक्य 21. निद्रा 22. अपस्मार 23. सुप्त 24. विबोध 25. अमर्ष 26. अवहित्था 27. उग्रता 28. मति 29. व्याधि 30. उन्माद 31. मरण 32. त्रास 33. वितर्क

रसों के प्रकार :

.नाट्यशास्त्र में आठ स्थायी भावों और उन पर आधृत आठ रसों की विवेचना प्रस्तुत की लेकिन पश्चवर्ती आचार्यों ने रसों की संख्या नौ निर्धारित की - 'शृंगार हास्य करुण रौद्र वीर भयानकाः । वीभत्साद्भुतसंज्ञो चेच्छान्तोऽपि नवमो रसः ।' '

.नागानन्द' रचना के पश्चात् 'शान्त रस', महाकवि सूरदास की रचनाओं से 'वात्सल्य रस', 'भक्तिरसामृत सिंधु' और 'उज्जवलनीलमणि' नामक ग्रंथों की रचना के पश्चात् 'भक्ति रस' को स्वीकार किया गया। इस प्रकार रसों की कुल संख्या ग्यारह हो गई।

• शृंगार रस

. शृंगार रस को रसराज कहा जाता है।

• स्थायी भाव - रति

.आलम्बन विभाव - नायक या नायिका .

उद्दीपन विभाव - नायिका के कुच, नितम्बादि अंग, एकान्त, वन-उपवन, चन्द्र-ज्योत्स्ना, वसन्त, पुष्प, नायिका अथवा अनुभाव के चेष्टाएँ - हावभाव, तिरछी चितवन, मुस्कान।

.संचारी भाव - तैंतीस संचारियों में उग्रता, मरण, आलस्य, जुगुप्सा को छोड़कर शेष सभी संचारी भाव, मुख्यतः लज्जा, शर्म, चपलता।

श्रृंगार रस दो भागों में विभक्त किया गया है

(i) संयोग शृंगार -

• आचार्य धनञ्जय - 'जहाँ अनुकुल विलासी एक-दूसरे के दर्शन-स्पर्शन इत्यादि का सेवन करते हैं। वह आनन्द से युक्त संयोग शृंगार कहलाता है।'

.आचार्य विश्वनाथ - 'जहाँ एक-दूसरे के प्रेम में अनुरक्त नायक-नायिका दर्शन-स्पर्शन आदि का सेवन करते हैं वह संयोग शृंगार कहलाता है।

.संयोग-शृंगार के वर्ण्य विषय में प्रेम की उत्पत्ति, आलम्बन एवं क्रीडाएँ होती हैं। उत्पत्ति प्रत्यक्ष दर्शन, गुण श्रवण, चित्र दर्शन या स्वप्न दर्शन द्वारा होती है। यथा

कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौन में करत हैं नैनन ही सौं बात।। (बिहारी)

संयोग शृंगार रस के अन्य उदाहरण -

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय ।

सौंह करै भौंहनु हंसे देन कहै नटि जाय ।। (बिहारी)

देखन मिस मृग-बिहँग-तरु, फिरति बहोरि-बहोरि।

निरखि निरखि रघुवीर-छवि, बाढी प्रीति न थोरि।।
देखि रूप लोचन ललचाने। हरखे जनु निज निधि पहिचाने।।
थके नयन रघुपति-छवि देखी। पलकन हू परहरी निमेखी।।
अधिक सनेह देह भइ भोरी। सरद-ससिहि जनु चितव चकोरी।।
लोचन मग रामहिं उर आनी। दीन्हे पलक-कपाट सयानी।।

(रामचरितमानस)

(ii) वियोग शृंगार -

• आचार्य भोज - "जहाँ रति नामक भाव प्रकर्ष को प्राप्त हो, लेकिन अभीष्ट को न पा सके। वहाँ विप्रलम्भ शृंगार कहा जाता है।"

• आचार्य भानुदत्त - "युवा और युवती की परस्पर मुदित पंचेन्द्रियों के पारस्परिक सम्बन्ध का अभाव अथवा अभीष्ट की अप्राप्ति विप्रलम्भ है।"

.वियोग भंगार की 10 दशाएँ निर्धारित हैं -

1. अभिलाषा 2. चिन्ता 3. स्मरण 4. गुणकथन 5. उद्वेग 6. प्रलाप 7. उन्माद 8. व्याधि 9. जडता 10. मरण।

वियोग श्रृंगार के चार प्रकार हैं - 1. पूर्वराग 2. मान 3. प्रवास 4. अभिशाप या करुणात्मक । यथा

घडी एक नहिं आवडै, तुम दरसण बिन मोय ।
तुम हो मेरे प्राण जी, काँसू जीवन होय।।
धान न भावै, नींद न आवै, विरह सतावे मोइ।
घायल सी घूमत फिरुं रे, मेरो दरद न जाणै कोइ।।

(मीरा)

वियोग शृंगार रस के अन्य उदाहरण -

बैठि, अटा सर औधि बिसूरति, पाय सँदेस नी 'श्रीपति' पी के।
देखत छाती फटै निपटै, उछटै, जब बिज्जु-छटा छबि नीके।।
कोकिल कूकैं, लौं तक लूकैं, उठें हिय हूकैं बियोगिनि ती के।
बारि के बाहक, देह के दाहक, आये बलाहक गाहक जी के।।

(श्रीपति)

अति मलीन बृखभानु-कुमारी, अध मुख रहित, उरध नहिं चितवति, ज्यों गथ हारे थकित जुआरी।
छूटे चिकुर, बदन कुम्हिलानो, ज्यों नलिनी हिमकर की मारी।।

2. हास्य रस -

.स्थायी भाव - हास

.आलम्बन विभाव - हास्यास्पद वचन, विकृत वेश या विकृत कार्य
.उद्दीपन विभाव - अनुपयुक्त वचन, अनुपयुक्त वेश, अनुपयुक्त चेष्टा
• अनुभाव - मुख का फुलाना, हँसना, आँखें बन्द होना, ओठ नथूने आदि का स्फुरण।
• संचारी भाव - चापल्य, उत्सुकता, निद्रा, आलस्य, अवहित्था ।

हास्य रस में छः प्रकार के हास्य का उल्लेख होता है।

(i) स्मित - आँखों में खुशी झलकना
(ii) हसित - मुस्कुराना
(iii) विहसित - दंतावली दिखाई देना
(iv) अवहसित - कंधे उचकाना एवं हँसी की आवाज आना
(v) अतिहसित - जोर-जोर से ठहाके लगाना
(vi) अपहसित - हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाना, इधर-उधर गिरना। यथा -

नाक चढे सी-सी करै, जितै छबीली छैल।
फिरि फिरि भूलि वही गहै, प्यौ कंकरीली गैल।।

(बिहारी)

हास्य रस के अन्य उदाहरण -

सखि! बात सुनो इक मोहन की, निकसी मटुकी सिर रीती ले के।
पुनि बाँधि लयो सु नये नतना, रू कहूँ-कहूँ बुन्द करी छल कै।।
निकसी उहि गैल हुते जहाँ मोहन, लीनी उतारि तबै चल कै।
पतुकी धरि स्याम खिसाय रहे, उत ग्वारि हँसी मुख आँचल कै।।
तेहि समाज बैठे मुनि जाई । हृदय रूप-अहमिति अधिकाई।।
तहँ बैठे महेस-गन दोऊ! विप्र बेस गति लखइ न कोऊ।।
सखी संग दै कुँवर तब चलि जनु राज-मराल ।
देखत फिरइ महीप सब कर-सरोज जय-माल ।।
जेहि दिसि नारद बैठे फूली । सो दिसि तेहि न बिलोकी भूली ।।
पुनि-पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं। देखि दसा हर-गन मुसकाहीं।।

3. करुण रस -

.स्थायी भाव - शोक
.आलम्बन विभाव - प्रिय व्यक्ति का दुख, मृत शरीर, इष्टनाश।
.उद्दीपन विभाव - आलम्बन का रुदन, मृतक दाह, यादें, स्मरण ।
• अनुभाव - अश्रुपात, विलाप, भाग्यनिन्दा, भूमिपतन, उच्छवास ।

• संचारी भाव - निर्वेद्र, मोह, अपस्मार, व्याधि, ग्लानि, स्मृति, श्रम, विषाद, जडता, उन्माद ।
राघौ गीध गोद करि लीन्हो।

नयन सरोज सनेह सलिल सुचि मनहुं अरघ जल दीन्हों।।
करुण रस के अन्य उदाहरण -
प्रिय मृत्यु का अप्रिय महा संवाद पाकर विष-भरा।
चित्रस्थ-सी, निर्जीव सी, हो रह गयी हत उत्तरा।।
संज्ञा-रहित तत्काल ही वह फिर धरा पर गिर पड़ी।
उस समय मूर्छा भी अहो! हितकर हुई उसको बडी ।।
फिर पीटकर सिर और छाती अश्रु बरसाती हुई। कुररी-सदृश सकरुण गिरा से दैन्य दरसाती हुई ।।
बहुविधि विलाप-प्रलाप वह करने लगी उस शोक में।
निज प्रिय-वियोग समान दुख होता न कोई लोक में।।
देखि सुदामा की दीन दसा करूना करि कै करुनानिधि रोये।
पानी परात को हाथ छुयो नहिं, नैननि के जल सों पग धोये ।।

4. रौद्र रस -

• स्थायी भाव - क्रोध
• आलम्बन विभाव - अपराधी व्यक्ति, शत्रु, विपक्षी, द्रोही, दुराचार ।
• उद्दीपन विभाव - कटुवचन, शत्रु के अपराध, शत्रु की गर्वोक्ति।

.अनुभाव - नेत्रों का रक्तिम होना, त्यौंरो चढ़ाना, ओठ चबाना।
.संचारी भाव - मद, उग्रता, अमर्ष, स्मृति, जडता, गर्व। यथा -
तुमने धनुष तोडा शशिशेखर का,
मेरे नेत्र देखो,
इनकी आग में डूब जाओगे सवंश राघव ।
गर्व छोडो
काटकर समर्पित कर दो अपने हाथ।
मेरे नेत्र देखो।

रौद्र रस के अन्य उदाहरण -

• श्री कृष्ण के सुन वचन अर्जुन क्रोध से जलने लगे।
सब शोक अपना भूलकर करतल-युगल मलने लगे।।
संसार देखे अब हमारे शत्रु रण में मृत पड़े।

करते हुए यह घोषणा वे हो गये उठकर खडे ।।
स काल मारे क्रोध के तनु काँपने उनका लगा।
मानो हवा के जोरे से सोता हुआ सागर जगा।
मुख बालरवि सम लाल होकर ज्वाल-सा बोधित हुआ।
प्रलयार्थ उनके मिस वहाँ क्या काल ही क्रोधित हुआ।।
भाखे लखन, कुटिल भयी भौंहें। रद-पट फरकत नैन रिसौहैं।।
कहि न सकत रघुवीर डर, लगे वचन जनु बान ।
नाइ राम-पद-कमल-जुग, बोले गिरा प्रसाद ।।

5. वीर रस -

.स्थायी भाव - उत्साह
.आलम्बन विभाव - शत्रु, शत्रु का उत्कर्ष ।
.आश्रय - नायक (वीर पुरुष)। उद्दीपन विभाव - रिपु की गर्वोक्ति, मारु आदि राग, रणभेरी, रण कोलाहल ।
.अनुभाव - अंग स्फुरण, रक्तिम नेत्र, रोमांच ।
.संचारी भाव - हर्ष, धृति, गर्व, असूया आदि ।

वीर रस के अन्तर्गत चार प्रकार के वीरों का उल्लेख किया गया है -

1. युद्धवीर (भीम, दुर्योधन)
2. धर्मवीर (युधिष्ठिर)
3. दानवीर (कर्ण)
4. दयावीर (राजा शिवि)

वीर रस के उदाहरण -

.सकल सूरसामंत, समरि बल जंत्र मंत्र तस। उट्ठिराज प्रथिराज, बाग मनो लग वीर नट। कढत तेग मनो वेग, लागत मनो बीज झट्ट घट। थकि रहे सूर कौतिग गिगन, रगन मगन भइ श्रोन धर। हर हरिष वीर जग्गे हुलस हुरव रंगि जब रत्त वर।।

(चन्दबरदाई)

स्व-जाति की देख अतीव दुर्दशा
विगर्हणा देख मनुष्य-मात्र की।

निहार के प्राणि-समूह-कष्ट को
हुए समुत्तेजित वीर-केसरी।

हितैषणा से निज जन्म भूमि की
अपार आवेश ब्रजेश को हुआ।

बनी महा बंक गठी हुई भवे,
नितान्त विस्फारित नेत्र हो गये।।
मैं सत्य कहता हूँ सखे! सुकुमार मत जानो मुझे।
यमराज से भी युद्ध में प्रस्तुत सदा जानो मुझे।
हे सारथे! हैं द्रोण क्या? आवें स्वयं देवेन्द्र भी।
वे भी न जीतेंगे समर में आज क्या मुझसे कभी।।

6. भयानक रस

• स्थायी भाव - भय
• आलम्बन विभाव - बाघ, चोर, भयंकर वन, शक्तिशाली का कोप, भयानक दृश्य।
.उद्दीपन विभाव - आलम्बन की चेष्टाएँ, नीरवता, कोलाहल।
• अनुभाव - गिडगिडाना, श्लथ होना, आँखें बन्द करना, स्वर भंग, पलायन, मूर्छा।
.संचारी भाव - दैन्य, जडता, आवेग, शंका, चिन्ता आदि ।
यथा -

और जब आई घोर काल रात्रि,
वे आततायी टूट पड़े अबलाओं पर,
नोंचते, चबाते उनका माँस, भोगते,
कर्णबेधी-चीत्कार, हाहाकार,
दुराचार दृष्टिवेधी
देख नहीं सकी अबला, अचेत हो गई -सुलक्षणा

भयानक रस के अन्य उदाहरण -
.समस्त सो सँग श्याम ज्यों कढे,
कलिंद की नन्दिनि के सु-अंक से।
खड़े किनारे जितने मनुष्य थे,
सभी महाशंकित भीत हो उठे।।
हुए कई मूर्छित घोर त्रास से,
कई भगे, मेदिनि में गिरे कई।
हुई यशोदा अति ही प्रकंपिता,
ब्रजेश भी व्यस्त-समस्त हो गये।। .

.उधर गरजती सिंधु लहरियाँ, कुटिल काल के जालों सी। चली आ रही फैन उगलती, फन फैलायें व्यालों सी।।

(जयशंकर प्रसाद)

7. वीभत्स रस -

.स्थायी भाव - जुगुप्सा

•आलम्बन विभाव - घृणास्पद वस्तु या कार्य, माँस, रक्त, अस्थि, श्मशान, दुर्गन्ध ।

.उद्दीपन विभाव - आलम्बन के कार्य, रक्त, माँस आदि का सडना, कुत्ते-गिद्ध आदि द्वारा शव नोंचना।

.अनुभाव - मुँह मोडना, नाक-आँख बंद करना, थूकना।

•संचारी भाव - मोह, असूया, अपस्मार, आवेग, व्याधि जडता आदि।

वीभत्स रस के उदाहरण -

•कहाँ कमध कहाँ मथ्थ कहाँ कर चरन अंत रूरि।
कहाँ कध वहि तेग, कहौं सिर जुट्टि फुट्टि उर।
कहौ दंत मत्त हय षुर षुपरि, कुम्भ भ्रसुंडह रूंड सब।
हिंदवान रान भय भान मुष, गहिय तेग चहुवान जब ।।

(चन्दबरदाई)

.सिर पर बैठो काग आंखि दोउ खात निकारत
खींचत जीभहिं स्यार अतिहि आनन्द डर धारत।

8. अद्भुत रस -

.स्थायी भाव - विस्मय (आश्चर्य)

.आलम्बन विभाव - अलौकिक या आश्चर्यजनक वस्तु

.उद्दीपन विभाव - आलम्बन का गुण या कार्य।

.अनुभाव - रोमाँच, कँप, स्वेद, संभ्रम ।

.संचारी भाव - वितर्क, भ्रान्ति, हर्ष, शंका, आवेग, मोह। यथा -

एक अचम्भा देख्यौ रे भाई।
ठाढा सिंह चरावै गाई।।
जल की मछली तरवर ब्याई।
पकडि बिलाइ मुरगै खाई।। (कबीर)

अद्भुत रस के अन्य उदाहरण -

.अखिल भुवन चर-अचर जग हरिमुख में लखि मातु।
चकित भयी, गदगद वचन, विकसित दृग, पुलकातु।।

.दिखरावा निज मातहि उद्भुत रूप अखंड।
रोम-रोम प्रति लागे कोटि-कोटि ब्रहमांड।।
.अगनित रवि-ससि सिव चतुरानन ।
बहु गिरि सरित सिंधु महि कानन ।
तनु पुलकित, मुख बचन न आवा।
नयन दि चरनन सिर नावा।।

9. शान्त रस -

• स्थायी भाव - निर्वेद या वैराग्य
.आलम्बन विभाव - निर्वेद उत्पन्न करने वाली वस्तु, सांसारिक नश्वरता।
.उद्दीपन विभाव - सत्संग, पुण्याश्रम, तीर्थ, एकान्त। अनुभाव - रोमांच, दृढ़ता, कथन, चेतावनी, संकल्प।
.संचारी भाव - धृति, मोह, निर्वेद, हर्ष, विमर्श ।
.आश्रय - ज्ञानी व्यक्ति । यथा -

जल में कुम्भ कुम्भ में जल है बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहिं समाना यह तथ कहयो गियानी।।

(कबीर)

शान्त रस के अन्य उदारहण -

• थिर नहिं जउबन थिर नहिं देह
थिर नहिं रहए बालमु सओं नेह ।
थिर जनु जानह ई संसार एक पए
थिर रह पर उपकार।। (विद्यापति)

.बुद्ध का संसार त्याग -
क्या भाग रहा हूँ भार देख?
तू मेरी ओर निहार देखमैं त्याग चला निस्सार देख।
अटकेगा मेरा कौन काम ।
ओ क्षणभंगुर भव! राम-राम!
.रूपाश्रय तेरा तरुण गात्र,
कह कब तक है वह प्राण-मात्र?
भीतर भीषण कंकाल-मात्र, बाहर-बाहर है टीमटाम।
ओ क्षणभंगुर भव! राम-राम!

10. वात्सल्य रस -

.स्थायी भाव - वत्सलता

.आलम्बन विभाव - बच्चा (संतान)

.उद्दीपन विभाव - आलम्बन की चेष्टाएँ

.अनुभाव - स्नेह से देखना, आलिंगन, चुम्बन, पालने झुलाना।

.संचारी भाव - हर्ष, गर्व आदि।

.आश्रय - माता-पिता। यथा -

जसोदा हरि पालने झुलावै
हलरावै दुलराय मल्हा
वै जोइ सोई कछु गावै।
मेरे लाल को आओ निन्दरिया काहे न आनि सुलावै।
कबहुँ पलक हरि मूंद लेत कबहुँ अधर फरकावै।।

(सूरदास)

वात्सल्य रस के अन्य उदाहरण -

.हरि अपने रंग में कछु गावत।
तनक तनक चरनन सों नाचत, मनहिं-मनहिं रिझावत ।
बाँहि उँचाई काजरी-धौरी गैयन टेरि बुलावत ।
माखन तनक आपने कर ले तनक बदन में नावत ।
कबहुँ चितै प्रतिबिंब खंभ में लवनी लिये खवावत।
दुरि देखत जसुमति यह लीला हरखि अनन्द बढ़ावत ।।
मैया कबहुँ बढ़ेगी चोटी।
कितनी बार मोहिं दूध पियत भई यह अजहूँ है छोटी।।

(सूरदास)

11. भक्ति रस -

• स्थायी भाव - भगवद्विषयक रति

.आलम्बन विभाव - आराध्य देव, गुरुजन, इष्ट

.उद्दीपन विभाव - आराध्य या आलम्बन का रूप, उनके कार्य एवं लीलाएँ।

• अनुभाव - अश्रु, रोमांच, कंठावरोध, गद्गद् होना, नेत्र बंद होना।

.संचारी भाव - जगुप्सा, आलस्य आदि के अतिरिक्त सभी मुख्यतः हर्ष, आवेग, दैन्य, स्मरण ।

शास्त्रों में नौ प्रकार की भक्ति (नवधाभक्ति) का उल्लेख मिलता है - 1. श्रवण 2. कीर्तन 3. स्मरण 4. पाद सेवन 5. अर्चन 6. वंदन 7. दास्य 8. साख्य 9. आत्म निवेदन।

भक्ति रस के उदाहरण -

.राम जपु राम जपु राम बावरे ।
घोर भव नीर निधि नाम निज नाव रे।। (तुलसी)
बसौ मेरे नैनन में नन्दलाल।
मोहनी सूरत सांवरी सूरत, नैणा बने विसाल |
अधर सुधारस मुरली राजती, उर वैयन्ती माल ।
क्षुद्र घटिका कटि तट सोभित नुपुर सबद रसाल |
मीरा के प्रभु सन्तन सुखदाई, भगत बछल गोपाल ।। (मीरा)
.जाको हरि दृढ करि अंग कर्यो।
सोई सुसील, पुनीत, बेद-बिद विद्या-गुननि भर्यो।
उतपति पांडु-सुतन की करनी सुनि सतपंथ डर्यो।
ते त्रैलोक्य-पूज्य, पावन जस सुनि-सुनि लोक तर्यो।
जो निज धरम बेद बोधित सो करत न कछु बिसरयो।
बिनु अवगुन कृकलासकूप मज्जित कर गहि उधर्यो।।

महत्त्वपूर्ण तथ्यः

- रस संप्रदाय काव्यशास्त्र का सबसे प्राचीनतम संप्रदाय है।
- भरतमुनि का मत है कि जिस प्रकार अनेक प्रकार के खाद्य-व्यंजनों के संयोग से रस उत्पन्न होता है उसी प्रकार नाना भावों के संयोग से भी रस की निष्पत्ति होती है।
- रस-संप्रदाय के प्रवर्तक भरतमुनि हैं। भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' रचना के छठे-सातवें अध्याय में नाटक के 4 अंगों-वस्तु, अभिनय संगीत और रस में रस को प्रमुखता दी है।
- रसविरोधी धारा के आचार्यों में - भामह, दण्डी, वामन, उद्भट्ट रुद्रट इत्यादि प्रमुख है।
- .रसवादी धारा के आचार्यों में - भट्टलोल्लट, शंकुक, भट्टनायक, रुद्रट इत्यादि आते हैं।
- .अलंकारवादी भामह अलंकार को काव्य की आत्मा मानने के कारण रस को अलंकार्य न मानकर
- अलंकार स्वीकार करते हुए कहते हैं कि रस रसवत् अलंकार है। ये विभाव को ही रस मानते हैं।
- .वामन ने रस को गुणों की कांति कहा - दीप्तरसत्वं कान्तिः । साथ ही, इन्होंने रस को अलंकार की सीमा से हटाकर गुण के साथ जोड़ा।
- .रुद्रट (अलंकारवादी) ने शांत और प्रेयान् (प्रेयस्) नामक दो रसों को जोडकर रसों की संख्या 10 कर दी। इनका मत है कि रस के अभाव में काव्य शास्त्र की भाँति नीरस हो सकता है। साथ ही, इन्होंने रस को नाटक तक सीमित रखने का विरोध एवं रसहीन काव्य को शास्त्र की श्रेणी में रखने का आग्रह किया।
- .क्षेमेन्द्र ने काव्य को 'रस जीवित' घोषित किया। इनका औचित्य सिद्धांत रस-सिद्धांत के सर्वथा अनुकूल है।

- .भानुदत्त ने रस के लौकिक और मानोरथिक दो भेद बताये और छल एवं जृम्भा जैसे नवीन भावों की उद्‌भावना की।
- .मम्मट ने असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य के अंतर्गत रस, रसाभास, भावाभास इत्यादि का वर्णन कर रस को व्यंजना का व्यापार माना।
- .रूपगोस्वामी ने भक्ति रस की प्रतिष्ठा की। इन्होंने भक्तिरस में ही सभी रसों को लाने का प्रयास किया। इन्होंने भक्ति का स्थायी भाव 'कृष्ण-रति' बताया।
- पं जगन्नाथ ने रस को 'रसनिजस्वरूप आनंद' कहा। ये 'रसो वै रसः' (वैदिक मंत्र) को साक्ष्य मानकर रस को आनंदस्वरूप मानते है तथा स्थायी भाव को ही रस मानते हैं।
- .भरतमुनि के अनुसार 8 रस हैं।
    - शांतरस को 9 वाँ रस माननेवाले - उद्‌भट
    - वात्सल्य रस को 10 वाँ रस माननेवाले - पं. विश्वनाथ
    - भक्तिरस को 11 वाँ रस माननेवाले - भानुदत्त, गोस्वामी
    - प्रेयान नामक रस के प्रतिष्ठापक - रुद्रट

लोजाइनस का उदात्तवाद

उदात्त का अर्थ - 'उदात्त' का अर्थ है भावगत महत्ता उन्मेष या उत्क्षेपण या एक भाव,एक विचार,एक शैली डॉ. बच्चनसिंह के शब्दों में उदात्तता में आत्मोत्कर्ष का सहज गुण होता है, आनन्द की सहज प्रतिष्ठा होती है। इस तरह लोंजाइनस पहले आलोचक है, जो आत्मतत्त्व को प्राथमिक महत्त्व देते है। डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में, "यद्‌यपि उन्होंने बड़े परिश्रम के साथ उदात्त की कला का विश्लेषण किया है और इसकी साधना का उचित विधान किया है, फिर भी उनके सम्पूर्ण सिद्‌धांत-प्रतिपादन में आत्मतत्त्व का स्थान ही प्रमुख रहा है- प्रतिभा का प्राथमिक महत्त्व है। काव्य की सर्जना में अन्तःप्रेरणा का प्राधान्य, काव्य का आध्यात्मिक आधार, काव्य-प्रयोजक के रूप में काव्य के उत्कर्ष पर बल तथा शैली के विभिन्न तत्त्वों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण आदि तथ्य इस मत की पुष्टि के लिए पर्याप्त प्रमाण हैं।" यह ठीक है कि काव्य में उदात्त तत्त्व आवश्यक है और उसमें कला की प्रेरक भावनाओं और धारणाओं का विश्लेषण नहीं है। वास्तव में उदात्त शैली के आधारभूत तत्त्वों का विवेचन ही लोंजाइनस ने किया है। उन्होंने उदात्त की कोई परिभाषा नहीं दी है, किन्तु फिर भी उसने विवेचन इस प्रकार किया है कि उदात्त का स्वरूप स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है। लोजाइनस ने स्वीकार किया है कि 'उदात्तता' साहित्य के सभी गुणों में महान है। यह वह गुण है, जो अन्य छोटी त्रुटियों के बावजूद साहित्य को सच्चे अर्थों में प्रभावपूर्ण बना देता है। इससे दो बातें स्पष्ट होती हैं - एक तो यह कि उसकी दृष्टि व्यावहारिक और मनोवैज्ञानिक थी, दूसरे दृष्टि की व्यावहारिता के कारण ही वह काव्य में 'उदात्त' का विवेचन करते समय उसके अन्तरंग और बाह्य दोनों तत्त्वों की विवेचना करता है।

काव्य की आत्मा उदात्तता - लोंजाइनस ने 'उदात्त' को काव्य की आत्मा स्वीकार किया है। उनकी दृढ़ धारणा है कि यदि कवि अकलात्मकता, अनावश्यक शब्दों के प्रयोग, सस्तेपन और क्लिष्टता आदि दोषों से बचे, तो

उसके काव्य में उदात्तता का गुण आ सकता है। इसी आधार पर उसने 'उदात्त' को काव्यात्मा स्वीकार करते हुए यह टिप्पणी दी है"अभिव्यंजना की श्रेष्ठता और विशिष्टता का नाम 'उदात्तता' है जिसके कारण महानतम कवि एवं इतिहास-वेत्ता गौरव प्राप्त कर अमर यश के भागी बनते हैं। श्रोताओं में केवल प्रत्यय अथवा आनन्द प्रदान करना ही उदात्त तत्त्व का कार्य नहीं है, अपितु किसी मंत्रशक्ति की भाँति उन्हें अनिवार्य रूप से अपने आप में से ऊँचे उठाकर आनन्दातिरेक की अवस्था को पहुँचा देना है। निस्संदेह हममें जो आश्चर्य की भावना उत्पन्न करता है, वह हमें मंत्रमुग्ध कर देता है और यह भाव हमेशा केवल प्रत्यय और आनन्द पैदा करने वाले भाव से कहीं अधिक बढ़कर होता है, क्योंकि हमारे विश्वास प्रायः हमारे नियंत्रण में रहते हैं, जबकि उदात्त तत्त्व के प्रभाव में अपरिमित शक्ति होती है और श्रोताओं के मन को वह मुग्ध कर देता है। उचित समय, प्रयुक्त उदात्त तत्त्व की झलक विद्युत् की भाँति प्रत्येक वस्तु को हमारे सम्मुख छितरा देती है तथा एक ही प्रहार में वक्ता की समस्त शक्ति को खोलकर रख देती है।" इससे स्पष्ट है कि लोंजाइनस ने 'उदात्त' को काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार किया है।

'उदात्त' के तत्त्व - लोंजाइनस ने 'उदात्त' के पाँच तत्त्व या स्रोत स्वीकार किये हैं। इनमें दो तत्त्व तो कवि के अन्तर्मन से सम्बन्धित हैं या कहें कि काव्यात्मा से सम्बद्ध हैं और शेष तीन काव्य के बहिर्जगत् से सम्बन्धित हैं। काव्य के ये पाँचों तत्त्व इस प्रकार हैं

1.विचारों की भव्यता या उत्कृष्टता
2.प्रतिभाप्रसूत उदात्तम आवेग
3.समुचित अलंकार-योजना
4. उत्कृष्ट भाषा
5.गरिमामय रचना-विधान ।

इन पाँचों तत्त्वों का विवेचन निम्नांकित रूप में किया जा सकता है -

विचारों की भव्यता - विचारों की भव्यता से अभिप्राय कवितागत उत्कृष्ट भाव-योजना से है। लोजाइनस के अनुसार उन्नत और विस्मयकारक विचारों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति उत्कृष्ट शैली में ही सम्भव है। विचारों की यह उत्कृष्टता स्वाभाविक होती है। लोजाइनस ने कहा है कि 'महान उक्ति आत्मा की महत्ता को प्रतिध्वनित करती है।' महान उक्ति और विचारणा स्वतः स्फुरित होती है। यह अभ्यास का विषय नहीं है, अनुभूत स्थितियों का सही अनुभवांकन है। हम विचारों की भव्यता की प्रेरणा महान कवियों, कलाकारों और चिन्तकों से ग्रहण कर सकते हैं। नये निर्माण के लिए पुराने संदर्भो को आत्मसात् करना आवश्यक होता है, किन्तु लोंजाइनस की दृष्टि में भूतकाल के विद्वानों और विचारकों की नकल करने की अपेक्षा उनकी आत्मा को ग्रहण करना चाहिए।

उदात्त आवेग - लोंजाइनस ने उदात्त के लिए आवेग और उच्च विचार दोनों को अनिवार्य माना है। उनके अनुसार न तो विशुद्ध आवेग ही उदात्त काव्य की सर्जना कर सकते हैं और न मात्र विचार ही। उदात्त के

लिए सुसंयमित और सच्चे आवेगों की संयोजना से अधिक अनुकूल और कोई दूसरा तत्त्व नहीं है जो पाठकों को ब्रह्मानन्द की प्रतीति कराये। उसके मूल शब्द है- "उदात्त के लिए भव्य या उद्दात आवेग से तात्पर्य अनुभूतियों की उत्कृष्टता से है। ठीक भी है, कवि को वास्तविक आवेश ही ऊँचा उठा सकता है। भावावेश की तीव्रता पर लोंजाइनस एक स्वतंत्र ग्रंथ भी लिखना चाहते थे, किन्तु लिख नहीं पाये। उन्होंने हर्ष, उल्लास, सम्भ्रम अर्थात् आदर और विस्मय को उदात्त के लिए आवश्यक माना है।

समुचित अलंकार योजना - लोंजाइनस के 'उदात्त' तत्त्व में तीसरा स्रोत अलंकारों का समुचित प्रयोग है। यदि अलंकार का उचित प्रयोग किया जाये तो वे औदात्य की प्रतिष्ठा में सहायक होते हैं। अलंकार स्वभावतः उदात्त के सहायक होते हैं और वे स्वयं उससे आश्चर्यजनक पोषण प्राप्त करते हैं। अलंकार अपने उत्कृष्ट रूप में तभी प्रयुक्त माना जाता है जबकि वह काव्य-सौंदर्य विधायक हो। अलंकार यदि भाव के विपरीत प्रयुक्त होता है तो उसकी स्थिति सन्देहास्पद हो जाती है। यही कारण है कि लोंजाइनस ने अलंकारों का प्रयोग चमत्कार-वृद्धि के लिए करना हेय और वर्ण्य माना है। उसकी दृष्टि में अलंकारों का प्रयोग वहीं श्रेयस्कार है जहाँ वह अर्थ गौरव कर अर्थोत्कर्ष में योग प्रदान करे। वे प्राकृतिक अभिव्यंजना में भी उदात्त का वास मानते हैं। अलंकारों को बलात् दूंस-ठाँस अशोभनीय तो है ही, औदात्य के विपरीत भी है। इस प्रकार अलंकार साध्य न होकर साधन भर रह जाते हैं। लोंजाइनस ने कतिपय अलंकारों का प्रयोग भी किया है, किन्तु वे सभी स्वाभाविक रूप से प्रयुक्त हुए हैं। उनमें कृत्रिमता का कहीं लेश भी नहीं है। उसके द्वारा प्रयुक्त अलंकारों में प्रश्नोत्तर, छिन्नशब्द, व्यतिक्रम, पुनरावृत्ति, रूप-परिवर्तन, अतिशयोक्ति, उपमा, रूपक आदि अलंकार प्रमुख हैं। साथ ही उन्होंने शब्दालंकार का भी प्रयोग किया है।

लोंजाइनस के कथन को 'एटकिन्स' ने इस प्रकार कहा है, "अलंकारशास्त्र पण्डितों ने केवल मात्रिक प्रयोग के लिए ही अलंकारों का आविष्कार नहीं किया है, वरन् शैली में चमत्कार उत्पन्न करने के लिए इनका प्रयोग किया गया है। ये अलंकार कवि के वास्तविक मनोभावों में निहित होते हैं, मानव के कलात्मक बोध के प्रतीक हैं। अतएव ये मानव-स्वभाव की व्याख्या करने में समर्थ हैं, लेकिन अलंकारों का प्रयोग अत्यन्त संयम और विवेकपूर्वक करना चाहिए। अलंकारों का प्रयोग करते समय स्थान, रीति, परिस्थितियाँ और अभिप्राय का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है।"

लोंजाइनस ने रीति को भी पर्याप्त महत्त्व दिया है और स्वाभाविकता एवं सहजता को उदात्त के महत्त्वपूर्ण तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है। रीति वह शक्ति है जो कृति को साहित्यिक बना देती है और उसे बहुत ऊँचा उठा देती है। इसीलिए कतिपय अंग्रेजी आलोचकों ने लोंजाइनस की रीति परम्परा में ही स्टाइल अथवा डिक्शन को महत्त्व दिया है
और उसे 'स्टाइल इज द मैन हिमसेल्फ' कहा है। बिना रीति की गरिमा और उसके भव्य विधान के कैसे भी उच्च विचार काव्य में उदात्त का उन्मेष नहीं कर सकते। अभिव्यंजना पक्ष में शैली का महत्त्व अनुपेक्षणीय है।

भाषा एवं शब्द-शिल्प - लोंजाइनस ने उत्कृष्ट भाषा को उदात्त तत्त्व के निमित्त आवश्यक माना है और भाषागत औदात्य में साधुभाषा और उपयुक्त शब्द-चयन को विशेष महत्त्व प्रदान किया है। उन्होंने भाषा में शब्द-चयन और रूपक आदि के प्रयोग और भाषा की सज्जा को महत्त्व दिया है। इतना ही नहीं, उन्होंने विचार और पद-विन्यास को एक-दूसरे के आश्रित माना है। निष्कर्ष यह निकलता है कि उदात्त विचार क्षुद्र या हल्की शब्दावली के माध्यम से व्यक्त नहीं हो सकते हैं, अपितु उनकी अभिव्यंजना के लिए गरिमामयी भाषा को ही महत्त्व देना चाहिए। लोंजाइनस के शब्दों में कह सकते हैं कि "भाषा की गरिमा का मूल आधार शब्द-सौंदर्य अर्थात् उपयुक्त और प्रभावशाली शब्दों का प्रयोग है। सुन्दर शब्द ही वास्तव में विचार को विशेष प्रकार का आलोक प्रदान करते हैं।" तात्पर्य यह है कि उचित और उत्कृष्ट शब्दावली का प्रयोग पाठक और श्रोता के मन को प्रभावित करता हुआ बाँध लेता है। उपयुक्त शब्द-चयन से शैली को गौरव प्राप्त होता है, उसके सौंदर्य में वृद्धि होती है और ऐसे उपयुक्त शब्दों की अपनी आभा होती है। लोंजाइनस ने बड़े-बड़े शानदार शब्दों के अंधाधुन्ध प्रयोग का विरोध किया है। उनके कथनानुसार "सुन्दर शब्द श्रेष्ठ विचारों का जीवन होते हैं।" लोंजाइनस की इस बात से प्रभावित होकर एटकिंस ने यह निष्कर्ष निकाला है कि "काव्य में कलापक्ष और भावपक्ष का समन्वय आवश्यक है।" इससे स्पष्ट है कि लोंजाइनस के आधार पर कलाकार की भाषा गरिमामय, ध्वन्यर्थव्यंजक और विचारों का भार वहन करने में सक्षम होना चाहिए। कला का निर्दोष होना निश्चिय ही कला के लिए अनिवार्य है, किन्तु प्रकृति में प्रथम वस्तु महानता है और भाषा प्रकृति की देन है। अतः कवि को अनिवार्य है, किन्तु प्रकृति में प्रथम वस्तु महानता है और भाषा प्रकृति की देन है। अतः कवि को इसी उदात्त के लिए प्रयत्न करना चाहिए। कृति में रीति और शिल्प का तो दूसरा स्थान है प्रथम स्थान तो महान विचारों और उद्दाम आवेगों का ही है। अतः कवि को दोनों तत्त्वों में एक सामंजस्य लाने की चेष्टा करनी चाहिए।

गरिमामय रचना-विधान - रचना-विधान में शब्दों की क्रमिक योजना, उनके पारस्परिक समन्वय तथा औदात्य से उसके सम्बन्ध पर विचार किया जाता है। लोजाइनस ने स्पष्ट रूप से समन्वय तथा औदात्य से उसके सम्बन्ध पर विचार किया जाता है। लोजाइनस ने स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया है कि सांमजस्य और औदात्य अभिन्न हैं। गरिमामय रचना-विधान से तात्पर्य शैली, भाषा और अलंकार आदि सभी कलात्मक पक्षों के सही संयोजन से है। यह तो ठीक है कि रचना-विधान गरिमामय हो, किन्तु यह तभी सम्भव है, जबकि उपयुक्त शब्द और सुन्दर अलंकार-योजना का प्रयोग किया जाय। लोजाइनस ने किसी भी कृति का प्राणतत्त्व सामंजस्य को ही स्वीकार किया है। उपयुक्त संयोजना के अभाव में कृति के मूल प्रतिपाद्य और मूल आवेगों को पाठकों तक सम्प्रेषित नहीं किया जा सकता है। संयोजन से ही कृति गरिमा और औदात्य प्राप्त करती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि लोंजाइनस ने एक ओर तो उदात्त की स्थापना में अलंकारवादियों का मार्ग प्रशस्त किया है और दूसरी ओर काव्य में अनुर्वर रहस्यवादियों का मार्ग प्रशस्त किया है। यह हर्ष की बात है कि पहली बार आलोचनाशास्त्र में भावपक्ष और कलापक्ष के सामंजस्य के आधार पर किसी सिद्धांत की स्थापना हुई है। स्पष्ट ही उदात्त सिद्धांत इसी प्रकार का है।

साहित्य की अवनति और उत्कृष्टता के कारण - लोंजाइनस ने इस बात पर भी विचार किया है कि साहित्य की अवनति को कब और किन परिस्थितियों में देखा जा सकता है। साहित्य को उत्कृष्टता प्रदान करने वाले कारण कौन-कौन से हैं। लोजाइनस ने साहित्य की अवनति में राजनैतिक कारणों की अपेक्षा नैतिक कारणों को अधिक महत्त्वपूर्ण माना है, इसीलिए उसने धन-लोलुपता, ऐश्वर्य-अभिलाषा, धृष्टता, अनुशासनहीनता और निर्लज्जता की निन्दा की है। उसने माना है कि इन दुर्गुणों से आदर्श के प्रति हमारी भावना न रहने के कारण मनुष्य की आत्मा को क्षति पहुँचती है। लोजाइनस के अनुसार लोगों पर अंकुश रखने वाली प्रबुद्ध निरंकुशता ही इस अवनति से हमारी रक्षा कर सकती है। साहित्य में उत्कृष्टता का सर्वोत्तम साधन उदात्त तत्त्व की प्रतिष्ठा है। साहित्य का मूल्यांकन परिपक्व अनुभूति की चरम परिणति कहा गया है। उत्कृष्ट साहित्य में कल्पना और भावावेश होना पहली शर्त है, इसके पश्चात् साहित्य में औदात्य आवश्यक है। इन सभी गुणों से साहित्य को उत्कृष्टता प्राप्त होती है। लोजाइनस को स्कॉटजेम्स ने प्रथम स्वच्छन्दतावादी आलोचक माना है, जबकि एटकिंस ने उसे अन्तिम शास्त्रवादी आलोचक कहा है। निश्चय ही लोंजाइनस की देन महत्त्वपूर्ण है और साहित्य-जगत् के लिए पर्याप्त उपयोगी है।

काव्य के तीन दोष उदात्त के अवरोधक हैं -

1. शब्दाडंबर - काव्य में चमत्कार प्रयोग हेतु थोपा गया व्यर्थ का अवांछनीय शुष्क शब्द नियोजन ।
2. बालिशता/बालेयता - साहित्यकार की विद्वत्ता प्रस्तुतीकरण की कामना अथवा पांडित्य प्रदर्शन के अन्तर्गत प्राप्त हुई कृत्रिमता और प्रदर्शनप्रियता।

के स्थान पर

3. भावाडंबर (मिथ्याभाव) - संयम के स्थान पर लेखक द्वारा की गई भाव की अमर्यादित अभिव्यक्ति अर्थात् अनपेक्षित और अनुचित भावातिरेक का झूठा आडम्बर ।

निष्कर्ष -

- उदात्त अभिव्यंजना का प्रकर्ष और वैशिष्ट्य है।
- उदात्त का कार्य अनुनयन नहीं सम्मोहन है।
- .उदात्त यकायक नहीं बल्कि सदा, सबको और संपूर्णतः सम्मोहित करता है।
- .उदात्त सृजनात्मक या रचनात्मक से भिन्न तत्त्व है। उसका प्रभाव क्रमिक नहीं, आकस्मिक होता है, उसके अलौकिक आलोक से कथ्य चमक उठता है।
- .उदात्त सहज होते हुए भी नियम-निरपेक्ष नहीं है।
- उदात्त के लिए अन्तःप्रेरणा की जितनी अपेक्षा की जाती है, उतनी ही ज्ञान द्वारा नियंत्रण की भी।
- उदात्त नैसर्गिक ही नहीं, उत्पाद्य भी है, प्रतिभा के अतिरिक्त ज्ञान (व्युत्पत्ति) और श्रम (अभ्यास) से भी उदात्त की सृष्टि संभव है।

महत्त्वपूर्ण तथ्य -

- लोंजाइनस जन्म से यूनानी थे। उनका समय ईसा की प्रथम या तृतीय शताब्दी माना जाता है लेकिन जन्मकाल के संबंध में कोई स्पष्ट प्रमाण प्राप्त नहीं होते हैं।

• पेरिइप्सुस' पत्र के रूप में पोस्तुमिउस तेरेन्तियानुस नामक एक रोमी युवक को संबोधित है, जो लोगिनुस का मित्र या शिष्य रहा होगा। पत्र की भाषा यूनानी (ग्रीक) है। यह लगभग साठ पृष्ठों की लघुकाय कृति है जिसमें छोटे-बड़े 44 अध्याय है। इसका लगभग दो-तिहाई भाग ही सम्प्रति उपलब्ध है।
.पेरिइप्सुस' का पहला अंग्रेजी रूपांतरण 1652 ईस्वी में जॉन हॉल ने 'ऑफ दि हाइट ऑफ एलेवेंस' नाम से पेरिइप्सुस का हिन्दी अनुवाद "उदात्त के विषय में" नाम से निर्मला जैन ने किया।

वक्रोक्ति का सिद्धान्त

वक्रोक्ति से अभिप्राय - वक्रोक्ति शब्द का सामान्य अर्थ वक्र + उक्ति अर्थात् टेढ़ी उक्ति है। उक्ति की वक्रता का भाव यह है कि किसी बात को इस ढंग से, चमत्कारपूर्ण ढंग से हो जाये कि सहृदय का मन आनंदित हो उठे।
बात कहने के दो ढंग हैं। एक सामान्य और दूसरा विशिष्ट।
आचार्य कुन्तक ने कहने के विशिष्ट ढंग को ही वक्रोक्ति से जोडने का प्रयास किया है। वक्रोक्ति सिद्धांत का प्रचलन ध्वनि सिद्धांत के समय से ही प्रारम्भ हो गया था। इस सिद्धांत के प्रतिष्ठापक आचार्य कुन्तक हैं। इन्होंने अपने ढंग से वक्रोक्ति की व्याख्या की और बताया कि काव्य की आत्मा वक्रोक्ति हैं। इन्होंने अपने ढंग से वक्रोक्ति की व्याख्या की और बताया कि काव्य की आत्मा वक्रोक्ति है। ध्वनि-सिद्धांत के प्रतिष्ठापक आनन्दवर्धन ने अपने से पहले के सभी आचार्यों द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों का समाहार ध्वनि सिद्धांत के अन्तर्गत किया और कहा कि ये सभी सिद्धांत ध्वनि के अन्तर्गत आते हैं।

आनन्दवर्धन द्वारा दिखाए गए इस मार्ग पर भी संस्कृत के आचार्य चलने लगे और उन्होंने यह स्वीकार कर लिया कि सभी के मूल में आनन्दवर्धन का ध्वनि-सिद्धांत ठीक बैठता है। केवल आचार्य कुन्तक ही एक ऐसे आचार्य थे, जिन्होंने आनन्दवर्धन द्वारा प्रतिपादित ध्वनि-सिद्धांत का विरोध किया और उन्होंने अपने वक्रोक्ति सिद्धांत की स्थापना की और यहाँ तक कह डाला कि वक्रोक्ति ही काव्य का प्राण है। 'वक्रोक्ति काव्य जीवितम्' कहकर आचार्य की वाणी ने सबको अपने पक्ष में कर लिया।

वक्रोक्ति का स्वरूप - भामह ने वक्रोक्ति को अतिशयोक्ति का पर्याय माना है। वे कहते थे कि वक्रोक्ति वाग्वैदग्ध्य का ही दूसरा रूप है। सभी अलंकारों की भूमिका में वक्रोक्ति विद्यमान रहती है -

सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयाऽर्थो विभाव्यते
यस्त्रोऽस्यां कविना कार्यः कोऽलंकारोऽनया विना।।

वक्रोक्ति की परिभाषा में उन्होंने कहा कि लोक की सामान्य कथन-प्रणाली से भिन्न ही वक्रोक्ति है- 'लोकातिक्रान्तिगोचर वचनम्।

दण्डी ने अपने 'काव्यादर्श' में वक्रोक्ति का विवेचन कुछ स्पष्टता से किया है। आचार्य वामन ने वक्रोक्ति को दूसरे ही रूप में व्यक्त किया। इन्होंने इसे अर्थालंकार विशेष के रूप में इसकी प्रतिष्ठा की और कहा कि -

'सादृश्याल्लक्षणावक्रोक्ति।

अर्थात् सादृश्य पर आधारित लक्षण ही वक्रोक्ति है। कुछ विद्वानों की दृष्टि में यह शब्दालंकार है। इस शब्दालंकार मानने वाला में रुद्रट, विद्याधर, मम्मट और हेमचन्द्र आदि हैं। आचार्य रुद्रक ने श्लेष-वक्रोक्ति और काकुवक्रोक्ति दो भेद किए। भोजराज ने भी ध्वनि की प्रतिक्रियास्वरूप वक्रोक्ति की महत्ता प्रतिपादित की।

आचार्य कुन्तक और वक्रोक्ति - सच तो यह है कि वक्रोक्ति का सही और विस्तृत विवेचन करने वालों में आचार्य कुन्तक का नाम ही प्रथम है। आचार्य कुन्तक ने वक्रोक्ति को काव्य का प्राण स्वीकार किया और लक्षण यों दिया -

'वक्रोक्तिरैववैदग्ध्य भङ्गीभणितिरुच्यते।' तात्पर्य यह है कि वाग्विदधत से युक्त उक्ति ही वक्रोक्ति कहलाती है। यह वैदग्ध्यभङ्गीभणिति चमत्कारमूलक होती है। वक्रोक्तिकार ने लिखा है -

लोकोत्तर चमत्कारकारि-वैचित्र्यसिद्धये।
काव्यस्यायमलंकारः कोऽव्यपूर्वो विधीयते।

कुन्तक के साथ ही महिमभट्ट ने भी वक्रोक्ति का विवेचन किया और उनकी दृष्टि में 'लोक प्रसिद्ध रीति की अवहेलना कर उसी अर्थ में वैचित्र्यपूर्ण रीति से किए गए कथन को वक्रोक्ति माना है।'

वक्रोक्तिवादी आचार्यों ने इस उक्ति वैचित्र्य को शब्दगत अर्थगत और उभयगत माना है। शब्दार्थ के वैचित्र्य के अभाव में काव्यानन्द की उपलब्धि सम्भव प्रतीति नहीं होती है। काव्य की परिभाषा में इसी शब्दार्थ समन्वय के लिए आचार्य कुन्तक की वाणी से ये बोल फूट पड़े थे -

शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनि:
बन्धे व्यस्थितौ काव्यम् ताद्विदालूहादकारिणीः।

कुन्तक ने शब्द और अर्थ दोनों को अलंकार्य माना और इन्हें अलंकृत करने वाली शक्ति वक्रोक्ति को बतलाया है जो वाग्वैदग्ध्यपूर्ण होती है।

रीति-साहित्य और वक्रोक्ति - वक्रोक्ति का प्रयोग हमें अपने रीति साहित्य में पूर्ण व्यापकता और अधिकता से मिलता है। बिहारी, देव, घनानन्द आदि कवियों की कविताओं में एक नहीं, अनेक उदाहरण ऐसे मिल

जायेंगे जो वक्रोक्ति से युक्त हैं और श्रेष्ठ और मनोहर हैं। बिहारी का सारा काव्य एक दृष्टि से इसी 'शब्दार्थ संयोग' से उत्पन्न वक्रोक्ति का उदाहरण प्रस्तुत करता है। कुन्तक ने सहृदयालादकारक की जो बात कही है, उसे हम इस दोहे में देख सकते हैं -

कागद पर लिखत न बनत कहत संदेस लजात |
कहिहै सब तेरो हियौ मेरे हिय की बात।।

आधुनिक कवि और वक्रोक्ति - रीतिकालीन कवियों के अतिरिक्त शब्द और अर्थ के संयोग से निर्मित वक्रोक्ति के उदाहरण स्वरूप प्रसाद और पंत की निम्नलिखित पंक्तियों को भी रखा जा सकता है। दोनों के क्रमशः उदाहरण देखिए

अभिलाषाओं की करवट
फिर सुप्त व्यथा का जगना
सुख का सपना हो जाना
भीगी पलकों का लगना। | -प्रसाद

पंत के काव्य में भी 'शब्दार्थौ सहितम्' के उदाहरण मिलते हैं -

इन्द्र पर उस इन्द्रमुख पर साथ ही
थे पड़े मेरे नयन, जो उदय से,
लाज से रक्तिम हुए थे-पूर्व को
पूर्व था, पर वह अद्‌वितीय अपूर्व था।

पंत

आचार्य कुन्तक की मान्यता थी कि अर्थ सहृदयालादकारक हो तथा विवक्षितार्थवाचक शब्द हो, तभी वक्रोक्ति होगी। आचार्य कुन्तक को पांचाली, वैदर्भी, गौडी शैली का विभाजन उचित नहीं लगा, अतः उन्होंने शैली के तीन भेद किए - 1. सुकुमार शैली, 2. विचित्र शैली और 3. मध्यम शैली।

वक्रोक्ति के भेद -

आचार्य कुन्तक ने वक्रोक्ति के छः भेद किए हैं। इस विभाजन में आचार्य कुन्तक की सूक्ष्म बुद्‌धि और विभाजन-कुशलता का पता चलता है। वक्रोक्ति के ये ही भेद आज भी सर्वमान्य हैं- वर्णविन्यास वक्रता, पदपूर्वार्द्‌ध वक्रता, पदपरार्द्‌ध वक्रता, वाक्य वक्रता, प्रकरण वक्रता और प्रबन्ध वक्रता। वक्रोक्ति के इन भेदों का विवेचन इस प्रकार है -

1. वर्ण विन्यास वक्रता - यह वक्रता अन्य आचार्यों का अनुप्रास ही है। अनुप्रास में भी व्यंजन का साम्य अपेक्षित है, स्वर का नहीं। कुन्तक के आधार पर यह वक्रता तीन प्रकार की है- एक वर्ण की आवृत्ति, दो वर्णों की आवृत्ति और तीन वर्षों की आवृत्ति । आगे चलकर कुन्तक ने यमक को भी इसके अन्तर्गत मान लिया है। यमक, यमकाभास अथवा यमक से साम्य रखने वाले अन्य वर्ण चमत्कार वर्ण-विन्यास वक्रता के अन्तर्गत आते हैं -

तू मोहन के उरबसी, हवै उरबसी समान।
और पद्माकर की यह पंक्ति भी उल्लेखनीय है -
बनन में बागन में बगर्यो बसन्त है।

2. पदपूर्वार्द्ध वक्रता - इस नाम से ही स्पष्ट है कि वक्रता पद के पूर्व भाग में होती है। इसके अन्तर्गत पर्याय, रूढ़ि, उपचार, विशेषण, संवृत्ति वृत्ति भाव, लिंग क्रिया आदि के प्रयोग की विधि जाती है।' अक्षर समुदाय विभक्ति रहित हाने पर प्रवृत्ति और विभक्तियुक्त होने पर पद कहलाता है। इस वक्रता के कई भेद किए गए हैं, यथा- रूढ़ि वैचित्र्य वक्रता, पर्याय वक्रता, उपचार वक्रता, विशेषण वक्रता, आदि । इनको इस प्रकार उदाहण सहित स्पष्ट किया जा सकता है -

रूढ़ि-वैचित्र्य वक्रता - यह वहाँ पर प्रयुक्त होती है जहाँ लोकोत्तर तिरस्कार अथवा प्रशंसा कथन करने के अभिप्राय से वाच्यार्थ की रूढ़ि से असम्भव अर्थ का अध्यारोप अथवा उत्तम धर्म के अतिशय का आरोप होता है। इसके प्रयोग से काव्य में एक अद्भुत सौंदर्य आ जाता है। उदाहरणार्थ -

तब ही गुन सोभा लहै, सहृदय जबहिं सराहिं।
कमल कमल हैं तबहिं जब रविकर सों विकसाहि।।

इन पंक्तियों में कमल के प्रथम रूढ़ अर्थ का विस्तार किया गया है और उस पर एक कमनीय रूप अध्यारोप करनका है जो इन पंक्तियों में है।

पर्याय वक्रता - पंत की 'कृषक बालिका के जलधर' में इस वक्रता का प्रयोग किया गया है। शब्द 'जलधर' का प्रयोग बडा वक्रोक्तियुक्त है। इसमें चमत्कार भी आ गया है।

उपचार वक्रता - उपचार वक्रता काव्य में विशेष महत्व रखती है। लक्षणा के प्रयोगों में विशेषतः इस वक्रता को अपनाया जाता है। छायावादी कविता में इसके अनेक सुन्दर प्रयोग देखने को मिलते हैं। किसी अन्य वस्तु के सामान्य धर्म का लेशमात्र सम्बन्ध से भी, दूरात्तर वस्तु पर आरोप उपचार कहलाता है -

नीरव संध्या में प्रशांत
डूबा है सारा ग्राम प्रान्त

पत्रों के आनत अधरों पर,
सो गया निखिल वन का मर्मर
ज्यों वीणा के तारों में स्वर।

विशेषण वक्रता - जिस स्थान पर कारक या क्रिया के महात्म्य या प्रभाव से वाक्य का सौंदर्य प्रस्फुटित होता है, वहाँ वक्रता का यह रूप देखने को मिलता है। प्रसाद, पंत और गुप्तजी की कविताओं में हम विशेषण वक्रता का रूप पाते

तारक चिह्न दुकूलिनी पी पीकर मधुमात्र
उलट गई श्यामा यहाँ रिक्त सुधाधर पात्र ।

लिंग वैचित्र्य वक्रता - इस वक्रता का उदाहरण छायावादी कवि पंत की इन पंक्तियों में देखा जा सकता है। पंत ने 'प्रथम रश्मि' कवित में लिखा है

प्रथम रश्मि का आना रंगिणि!
तूने कैसे पहिचाना!
कहाँ कहाँ हे बाल-बिहंगिनी ?
सीखा तूने यह गाना।

इतना ही नहीं, पंत की इन पंक्तियों में भी लिंग वैचित्र्य का रूप देखा जा सकता है -

सिखा दो ना हे मधुपकुमारि!
मुझे भी अपने मीठे गान।

3. पद-परार्द्ध वक्रता - वक्रोक्ति का तीसरा भेद पद-परार्द्ध वक्रता है। यह वक्रता पद के बाद में प्रयुक्त होती है। इसे प्रत्यय-वक्रता भी कहा जा सकता है। इसके भी कई प्रकार हैं -
कालवैचित्र्य वक्रता, कारक वक्रता, संख्या वक्रता, पुरुष वक्रता, उपग्रह वक्रता, प्रत्यय वक्रता, पद वक्रता आदि। इस प्रकार की वक्रता का उदाहरण इन पंक्तियों से समझिए -

नासा मोरि न चाय दृग करी ककासी सौंह
कांटे से कसकति हिए गडी कटीली भौंह ।।

4.वाक्य वक्रता - यह वक्रता कवि-प्रतिभा पर निर्भर होती है। प्रतिभा की भाँति ही यह प्रतिभा भी विविधरूपिणी होती है। प्रधान रूप से इसमें अलंकारों का विवेचन किया जाता है। कुंतक ने अलंकारों का बडा सुन्दर विवेचन किया है। अलंकारों में चारुता और कवि-प्रतिभा दोनों को आचार्य कुन्तक ने आवश्यक माना

है। वाक्य वक्रता के अन्तर्गत ही वस्तु-वक्रता भी आती है। वस्तु का स्वरूप भी दो प्रकार का होता है- स्वभावप्रधान और रसप्रधान | स्वभाव प्रधान में स्वभावोक्ति अलंका की संयोजना होती है और रस प्रधान में रस का चमत्कार होता है।

5. प्रकरण वक्रता - वाक्य वक्रता से थोडा विस्तृत रूप प्रकरण वक्रता का होता है। वाक्यों की सम्मिलित स्थिति प्रकरण का निर्माण करती है। यह प्रकरण वाक्य से विशाल और प्रबन्ध का अंश मात्र है। प्रबन्ध में सौंदर्य भरने के लिए प्रकरण वक्रता अत्यावश्यक होती है।

6. प्रबन्ध वक्रता - वाक्य से प्रकरण और प्रकरण से सहयोग पाकर प्रबन्ध में आई वक्रता को प्रबन्ध वक्रता का नाम दिया जाता है। जब समूचा प्रबन्ध इस वक्रता से युक्त होता है,तो उसे प्रबन्ध वक्रता कहा जाता है। निष्कर्ष - उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत वक्रोक्ति का स्वरूप देखने को मिलता है। वक्रोक्ति कथन की भंगिमा है जिसे हिन्दी साहित्य के रीतिकाल, छायावाद, प्रगतिवाद और नयी कविता तक में बखूबी देख जा सकता है। स्पष्ट है कि वक्रोक्ति का साहित्य में पर्याप्त महत्त्व है।

परीक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण :

- वक्रोक्ति सम्प्रदाय के प्रतिष्ठापरक आचार्य हैं। -कुंतक
- 'वक्रोक्ति जीवितम्' नामक ग्रंथ की रचना कर वक्रोक्ति सिद्धान्त का प्रवर्तन किस आचार्य ने किया ? कुंतक
- आचार्य कुन्तक से पूर्व वक्रोक्ति का अभिप्राय था-परिहास, श्लेष, पुष्ट-शैली, वचन विदग्धता, अतिशय कथन, अर्थालंकार का वाचक।
- वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा किस आचार्य ने घोषित किया ? - कुंतक ।
- 'उभावतावलंकारौ तयोः पुनरलंकृतिः ।
- वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभङ्गीभणितिरुच्यते ।।'
- किस आचार्य का कथन है ? -कुंतक

- -वक्रोक्ति का सर्वप्रथम शास्त्रीय विवेचन करने वाले आचार्य हैं ?
  - भामह के अनुसार वक्रोक्ति का मूल तत्त्व है
  - शब्द एवं अर्थ की वक्रता या चमत्कार ।
  - भामह ने अलंकार को काव्य का सर्वस्व मानते हुए वक्रोक्ति को उसका प्राण स्वीकार किया है।
  - वक्रोक्ति को अलंकार का मूल मानते हुए किस आचार्य ने समस्त वाङ्मय को दो भागों में स्वाभावोक्ति एवं वक्रोक्ति किया है।
  - दण्डी
- -'वक्रोक्तिशब्देन उपमादयः संकीर्णपर्यंता अलंकारा उच्यन्ते' किस आचार्य का कथन है ?

- दण्डी

- -वक्रोक्ति और अतिश्योक्ति को पर्याय मानने वाले आचार्य हैं। - भामह और दण्डी
- -'सादृश्याल्लक्षणा वक्रोक्तिः' (सादृश्य के ऊपर आश्रित लक्षणा वक्रोक्ति है) कथन किसका है ?
    - वामन ।
- -रुद्रट ने वक्रोक्ति को किस रूप में वर्णित किया है ?
    - शब्दालंकार के रूप में
- रुद्रट ने वक्रोक्ति के कितने भेद किये हैं ? - दो (काकुवक्रोक्ति, श्लेष वक्रोक्ति)
- -भोज ने वाङ्मय को कितने भागों में विभक्त किया है ? - तीन (वक्रोक्ति रसोक्ति, स्वभावोक्ति)
- -आचार्य कुंतक के अनुसार वक्रोक्ति के कितने भेद हैं ? - 6 क्रमशः इस प्रकार हैं
    - वर्ण विन्यास वक्रता, पद-पूर्वार्ध-वक्रता, पद-परार्ध-वक्रता, वाक्य-वक्रता, प्रकरण वक्रता, प्रबंध-वक्रता।
    - काव्य रचना में आए हुए वर्णों की एक, दो या अनेक बार थोडे-थोड़े अन्तर से आवृत्ति को ही वर्णविन्यास वक्रता कहा गया है। - पदपूर्वार्द्ध वक्रता के अवान्तर भेद हैं-रूढ़ि वैचित्र्य, पर्याय, उपचार, विशेषण, संवृत्ति, लिंग-वैचित्र्य, वृत्ति, क्रिया वैचित्र्य।
    - पदपरार्ध वक्रता के 6 भेद कुन्तक ने बताया है-काल, कारक, पुरुष, वचन, उपग्रह, प्रत्यय-वक्रता।
    - वाक्य वक्रता ने अन्तर्गत समग्र अलंकार वर्ग, प्रेयस, रसवत्, उर्जस्वी आदि को समाहित किया है। । प्रकरण वक्रता के नौ उपभेद, प्रबंध वक्रता के 6 भेद कुन्तक ने किया है।
    - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने वक्रोक्ति को काव्य का नित्यलक्षण नहीं माना है।
    - मानस का 'पुष्पवाटिका' और धनुर्भंग की घटना-प्रसंग किस वक्रता के अन्तर्गत माना जायेगा?
    - प्रकरण वक्रता ।
    - शैली की वक्रता को काव्य का स्वाभाविक गुण माना है - प्रसाद ।
    - छायावाद का युग वास्तव में वक्रता के वैभव का स्वर्णयुग है - नगेन्द्र
    - क्रोचे का अभिव्यंजनावाद भारतीय वक्रोक्तिवाद का ही विलायती रूप है - शुक्ल जी -आनन्दवर्धन ने वक्रोक्ति को अतिशयोक्ति के रूप में अर्थालंकार के साथ तृतीय उद्योत में व्याप्त अर्थ ग्रहण किया है।
    - भोज ने वक्रोक्ति, रसोक्ति, स्वभावोक्ति में अलंकारिक उक्तियों को समाहित किया।
    - 'वक्रोक्ति प्रसिद्धाभिधान व्यतिरेकिणी विचित्रवाभिधा' (वक्रोक्ति प्रसिद्ध कथन से भिन्न (व्यतिरिक्त) विचित्र प्रकार की अभिधा है) कथन किसका है ? - कुंतक
    - वक्रोक्ति सिद्धान्त की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। - कलावाद की प्रतिष्ठा

- भारतीय काव्यालोचन के इतिहास में सर्वप्रथम कलावाद की प्रतिष्ठा किस सिद्धान्त के द्वारा हुई? - वक्रोक्ति मत
- वक्रोक्ति सिद्धान्त की दुर्बलता है।
- काव्य के बाहय सौन्दर्य या कथन की भंगिमा पर बल देने के कारण इसमें आत्म तत्त्व का अभाव है।
- (2) रस को वक्रोक्ति का अंग मानकर उसका महत्त्व कम कर देना। । '
- कवेः कर्म काव्यम्' (कवि का कर्म ही काव्य है) कथन किसका है ? -कुंतक
- 'सालंकारस्य काव्यता' (सालंकार शब्दार्थ ही काव्यता है) कथन किसका है ? - कुंतक

वर्ड्सवर्थ का काव्यभाषा सिद्धान्त

वर्ड्सवर्थ की गणना 19वीं शताब्दी के प्रमुख समीक्षकों में की जाती है। इन्हें अपने समय का साहित्य पर्याप्त गिरा हुआ प्रतीत हुआ। अतः अपने युग की नाड़ी को पहचानकर उन्होंने अपने कुछ सिद्धान्त प्रस्तुत किए। इन्होंने स्पष्ट किया कि काव्य के द्वारा हमारे भावों को शक्ति मिलनी चाहिए। भावों को प्रभावित करने की शक्ति की काव्य की विशेषता है। ऐसा लगता है कि वर्ड्सवर्थ के स्वर में एक कुशल चिकित्सक का निदान था।

काव्यभाषा-सिद्धान्त -

वर्ड्सवर्थ ने काव्यभाषा-सिद्धान्त के विषय में अपना एक निश्चित मत प्रस्तुत किया है। उसने माना है कि कविता की भाषा जन साधारण से जुड़ी हुई होनी चाहिए। काव्य की भाषा कैसी हो, इस उन्होंने कई महत्वपूर्ण बातें कही हैं। भारतवर्ष के संस्कृत काव्यशास्त्र के आचार्य कुन्तक ने तो रीति को काव्य की आत्मा मान लिया था। उन्होंने रीति को विशिष्ट पद-रचना अर्थात् भाषा का विशिष्ट रूप बतलाया। वास्तव में काव्य का आरम्भ सभी देशों में उसी भाषा के माध्यम से होता है जो विशिष्ट जनों की नहीं, अपितु जन-सामान्य की भाषा होती है। जिस तीव्र गति से जीवन और जीवन की भाषा में परिवर्तन होता है, उस गति से साहित्य औ साहित्य की भाषा में परिवर्तन नहीं होता। अंग्रेजी भाषा के अध्ययन अध्यापन को वर्ड्सवर्थ के समय तक लगभग एक सौ बीस वर्ष पूरे हो गये थे, परन्तु आज के साहित्य में हिन्दी में जैसे शब्दों और वाक्य-विन्यास का प्रयोग हो रहा है, इस प्रकार का परिवर्तन अंग्रेजी की काव्यभाषा में नहीं आया था। जब कभी कोई काव्य-रीति रूढ़ हो जाती है, तभी उसके प्रति किसी महान साहित्यकार की प्रतिभा विरोध का स्वर ऊँचा करती है। वर्ड्सवर्थ का स्वर अपने युग की ऐसी ही रीतिबद्धता के प्रति विद्रोही रूप में व्यक्त हुआ था। वर्ड्सवर्थ रीतिबद्धता को अस्वाभाविक मानते थे। उनका कथन था कि "मैंने कई ऐसे अभिव्यंजना-प्रयोगों को जो स्वतः उचित और सुन्दर हैं, बचाया है, क्योंकि निम्न कोटि के कवियों ने उनका इतना अधिक प्रयोग बार-बार किया है कि उनके प्रति ऐसी अरुचि उत्पन्न हो गयी है कि उसे किसी कला के द्वारा दूर नहीं किया जा सकता है।" वर्डसवर्थ का यह भी मत था कि सभी देशों के प्राचीनतम कवियों ने प्राय: वास्तविक घटनाओं के द्वारा उत्तेजित भावों के कारण कविताओं की रचना की है। उन्होंने प्राकृतिक रूप से तथा मनुष्य

के रूप में लिखा है। चूंकि उनके भाव सशक्त थे, इसलिए उनकी भाषा निर्भीक और अलंकृत होती थी। बाद में निम्न कोटि के कवियों ने उस प्रभावपूर्ण भाषा का अनुकरण किया। यद्यपि उनमें उन भावों का उद्रेक नहीं था। इस प्रकार उस अलंकृत भाषा का यांत्रिक अनुकरण होने लगा। ऐसी अनुभूतियों और विचारों के लिए भी उसका सुयोग होने लगा, जिनके साथ उसका कोई प्राकृतिक संबंध नहीं रह गया था। इस प्रकार अनजान में एक ऐसी भाषा बन गयी, जो मनुष्यों की वास्तविक भाषा से तत्त्वतः भिन्न हो गयी।

वर्ड्सवर्थ का मत है कि "भाव एवं विचार तथा भाषा का संबंध स्वाभाविक है। जिस प्रकार का और जिस कोटि को भाव होगा, उसी प्रकार की और उसी कोटि की भाषा होगी।" वर्ड्सवर्थ ने मनुष्यों की वास्तविक भाषा का स्वरूप भी स्पष्ट किया है। वास्तव में मनुष्यों की वास्तविक भाषा से उनका तात्पर्य उसे भाषा से था जो भावों और विचारों के साथ स्वाभाविक रूप से जुड़ी हुई हो और उन भावों और विचारों को सहज रूप से व्यक्त कर सके। साधारण भाषा का अर्थ वर्ड्सवर्थ ने तुच्छ भाषा के रूप में नहीं माना। इतना ही नहीं, वर्ड्सवर्थ ने प्रारम्भिक काव्यभाषा और साधारण भाषा का अन्तर भी स्पष्ट किया। उन्होंने कहा कि प्रारम्भ में काव्य की भाषा और साधारण भाषा में अन्तर था। इसका एक अन्य कारण भी था। उसमें छन्द का योग पहले से ही हो चला था। यही कारण था कि उसके द्वारा लोग वास्तविक जीवन की भाषा की अपेक्षा अधिक प्रभावित होने लगे थे। प्रभाव का यह कारण अर्थात् छन्द, उनके वास्तविक जीवन से भिन्न था। बाद के कवियों ने इसका दुरुपयोग करना आरम्भ कर दिया। कालान्तर में छन्द इस असाधारण भाषा का प्रतीक बन गया। जिस किसी ने छन्द में लिखना आरम्भ किया, उसने अपनी प्रतिभा और सामर्थ्य के अनुसार उस शुद्ध और प्रारम्भिक भाषा में अपनी भाषा मिला दी। इस प्रकार एक नवीन भाषा बन गयी जो मनुष्यों की वास्तविक भाषा नहीं रह गयी थी। वर्ड्सवर्थ ने काव्यभाषा के विवेचन के अन्त में यह विचार व्यक्त किया है कि "कल्पना और भाव की कृतियों की एक और केवल एक भाषा होनी चाहिए, चाहे वे कृतियाँ गद्य में हो या पद्य में। छन्द इस प्रकार की कृतियों के लिए ऊपरी अथवा आकस्मिक तत्त्व होते हैं।"

काव्यभाषा के गुण -

वर्ड्सवर्थ ने जिस प्रकार काव्य की वस्तु साधारण जीवन से ली है, उसी प्रकार उसने भाषा भी वहीं से ग्रहण की है। उनकी दृष्टि में भाषा में भी कुछ गुण अपेक्षित होते हैं। इस संबंध में उन्होंने लिखा है कि "इन मनुष्यों का सम्पर्क उन सर्वोत्तम वस्तुओं से रहता है, जिनसे भाषा का सर्वोत्तम अंश उपलब्ध होता है। अपने सामाजिक स्तर और अपने परिचय की संकीर्ण परिधि तथा समानता के कारण वे सामाजिक कृत्रिम प्रदर्शनों के वश में अपेक्षाकृत कम रहते हैं। इसके कारण वे अपनी अनुभूतियों और विचारों को सहज रूप से व्यक्त करते हैं। इसलिए बार-बार अनुभवों तथा नियमित अनुभूतियों से उत्पन्न होने वाली यह भाषा कवियों द्वारा निर्मित समृद्ध भाषा की अपेक्षा अधिक स्थायी एवं दार्शनिक भाषा होती है।" डॉ. कृष्णदेव शर्मा ने वर्ड्सवर्थ की काव्यभाषा एवं शैली के विषय में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि "वर्ड्सवर्थ ने प्रचलित शैली और रूढ़ भाषा को अनुपयोगी मानकर उसका विकास । व्यक्तिवाद और भावात्मकता के आधार पर किया। उन्होंने परम्परागत शैली को विकृत, विरूपण, मिश्रित तथा भावहीन माना। टी. एस. इलियट की तरह वर्ड्सवर्थ ने भी सामान्य भाषा को अधिक उपादेय माना और उसी का समर्थन किया। वर्ड्सवर्थ से पूर्व कृत्रिम

भाषा के लिए जो नियम-उपनियम बनाये गये थे, वे अर्थात् वर्ड्सवर्थ उनके विरुद्ध थे। विशिष्ट काव्यगत उक्तियों, मानवीकरण और वक्रोक्ति आदि के वे विरोधी थे। यहाँ तक कि वे काव्य-रचना में विपर्यय और वैषम्य के प्रति भी अरुचि प्रकट करते थे। अनावश्यक रूप से तूंसी गयी पौराणिक कथाएँ, भावाभास तथा दंत-कथाएँ भी वर्ड्सवर्थ को रुचिकर नहीं थीं। समग्रतः वे कृत्रिमता तथा सीमित काव्य-रूपों को मान्यता देने के विरुद्ध थे। काव्य की शैली के सम्बन्ध में भी वर्ड्सवर्थ ने आपत्तियाँ उठाई हैं।"
इतना सब कुछ होते हुए भी वर्ड्सवर्थ ने काव्य में कृत्रिमता की अपेक्षा सरल भाषा के प्रयोग पर ही विशेष बल दिया है।

वर्ड्सवर्थ गद्य और पद्य की भाषा में अन्तर नहीं मानते थे। गद्य की भाषा पद्य में परिवर्तित हो सकती है। वर्ड्सवर्थ गद्य और पद्य की भाषा को एक मानते थे। गद्य और पद्य की दोनों भाषाओं में भी अपेक्षाकृत गद्य की भाषा को ही उन्होंने महत्त्व प्रदान किया था। अपनी गद्यमयी भाषा के समर्थन में वर्ड्सवर्थ ने यहाँ तक कहा था कि दोनों भाषाओं को अभिव्यंजना करने वाली इन्द्रियाँ तथा दोनों को ग्रहण करने वाली इन्द्रियाँ एक ही हैं और इनका राग और रुचि दोनों परस्पर समान हैं। जन-साधारण की भाषा से वर्ड्सवर्थ का तात्पर्य था जिसे उन्होंने अपने ग्रंथ 'लिरिकल बैलेड्स' के अतिरिक्त किसी भी अन्य ग्रंथ में प्रयोग नहीं किया है। वर्ड्सवर्थ ने बाद में सुधार और परिवर्तन की बात भी कही है कि भाषा का चुनाव लोगों की वास्तविक भाषा से करना चाहिए। यही जनसाधारण की भाषा का अर्थ है। इससे स्पष्ट होता है कि वे सामान्य भाषा को ज्यों का त्यों अपनाने के पक्ष में नहीं थे। वे उस भाषा में चुनाव करना आवश्यक समझते थे। ऐसा लगता है कि सरल भाषा से वर्ड्सवर्थ का तात्पर्य अभिव्यक्ति की सरलता से है जो आडम्बररहित, स्वाभाविक और सजीव हो तथा पाठक के मन में उलझन और अरुचि उत्पन्न न करके आनन्द प्रदान करे | सम्भवतः इसी कारण उन्होंने भाषा में चुनाव की बात पर जोर दिया है। चुनाव के संदर्भ में यह भी ध्यान देने की बात है कि वे ग्राम्यत्व और शैथिल्य के सूचक शब्दों के प्रयोग से बचने के पक्षधर थे।

वर्ड्सवर्थ का भाषा सम्बन्धी मत - वर्ड्सवर्थ का भाषा सम्बन्धी मत काव्य से सम्बन्धित विचारों से घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है। वे कविता को तीव्रतम भावावेग का उच्छलन मानते हैं और यह नित्य सनातन सत्य है कि भावावेग के समय हृदय से जो भाषा निकलती है, उसमें स्वाभाविकता, सरलता और सजीवता होती है। इस प्रकार की भाषा में कोई आडम्बर नहीं होता है। यह भाषा तो प्रसादगुण से ओतप्रोत होती है। ऐसा लगता है कि तीव्र भावावेग के समय भी भाषा में कवित्व शक्ति के प्रभाव से अनेक अलंकारों और वक्रोक्ति आदि का समावेश हो जाता है। ऐसे समावेश को वर्ड्सवर्थ कृत्रिम नहीं मानते हैं। उनकी दृष्टि में कृत्रिमता वह है जो ऊपर से चिन्तन आदि के द्वारा लायी गयी हो और जो भाषा में बोझिल बनाये। वर्ड्सवर्थ के अनुसार कवि जितना भाषा के निकट पहुंचेगा, उसकी भाषा-शैली उतनी ही सच्ची होगी और कवि-कर्म में उसे सफलता प्राप्त होगी। डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त ने वर्ड्सवर्थ की भाषागत विवेचना के संदर्भ में यह टिप्पणी दी है "जिस प्रकार जॉन डॉन ने अपनी काव्य-शैली को स्पेंसर की शैली से, ड्राइडन ने अपनी शैली को मैटाफिजिकल कवियों की कृत्रिम शैली से महान माना तथा आधुनिक युग में जिस प्रकार टी. एस. इलियट तथा एजरापाउण्ड प्रतिदिन की बोलचाल की भाषा के प्रयोग के समर्थक हैं, उसी प्रकार वर्ड्सवर्थ ने कहा कि

उनकी अपनी भाषा-शैली अधिक प्राकृतिक और स्वाभाविक है।" वर्ड्सवर्थ भाषा में उन प्रणालियों के विरोधी थे जिन्हें हम मानवीकरण, वक्रोक्ति और विपर्यय आदि के रूप में स्वीकार करते हैं। वर्ड्सवर्थ ने सत्रहवीं शताब्दी की शैलीगत विशेषताओं-विलक्षणता, दूरारूढ़ कल्पना, अतिशयोक्ति, शाब्दिक चमत्कार और अस्पष्टता की आलोचना की थी।

काव्यभाषा सम्बन्धी मत की विवेचना - कॉलरिज ने वर्ड्सवर्थ की काव्यभाषा सम्बन्धी मान्यताओं की कटु आलोचना की। स्वयं वर्ड्सवर्थ ने भी अपने काव्य में ऐसी काव्य-उक्तियों का प्रयोग किया है, जिनका सैद्धांतिक रूप से विरोध वे कर चुके थे। उदाहरण के लिए वर्ड्सवर्थ की वाक्य-रचना कहीं-कहीं अत्यन्त उलझी हुई और अस्पष्ट है। उन्होंने कभी पुस्तक सम्बन्धी बहु-अक्षर शब्दों का प्रयोग किया है। उनके काव्य में भावाभास का भी प्रयोग प्राप्त होता है। अठारहवीं शताब्दी के काव्य में प्रयुक्त वक्रोक्ति के समान उनकी अनेक कविताओं में वक्रोक्ति का प्रयोग हुआ है। वर्ड्सवर्थ ने काव्य से कृत्रिमता को दूर करने के लिए सरलता पर बल दिया है, क्योंकि वर्ड्सवर्थ के समय में अलंकृत भाषा का यांत्रिक अनुकरण हो रहा था। वर्ड्सवर्थ की मान्यता थी कि सरल और ग्रामीण जीवन से यदि विषय चुने जायेंगे तो भाषा स्वंय स्थूल हो जायेगी। वर्ड्सवर्थ की दृष्टि में कवि का कर्तव्य जन-साधारण की भाषा को काव्य में स्थान देना था। वर्ड्सवर्थ ने काव्यभाषा के सम्बन्ध में यह भी मान्यता स्पष्ट की कि काव्य की भाषा जनसाधारण की भाषा होनी चाहिए। छन्दोबद्ध भाषा और गद्य की भाषा में किसी प्रकार तात्त्विक अन्तर नहीं होना चाहिए। इस प्रकार का अन्तर हो भी नहीं सकता। इस स्थापना के लिए वर्ड्सवर्थ ने जो तर्क प्रस्तुत किए हैं, वे इस रूप में हैं कि गद्य की भाषा तथा कविता की भाषा दोनों की अभिव्यंजना करने वाली इन्द्रियाँ तथा दोनों को ग्रहण करने वाली इन्द्रियाँ समान ही हैं। इन दोनों के परिच्छेद समान तत्त्वों से निर्मित है। इन दोनों प्रकार की भाषाओं की राग के प्रति रुचि भी एक जैसी होती है।

निष्कर्ष - उपर्युक्त विवेचनोपरान्त निष्कर्ष रूप में डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त के शब्दों में कह सकते हैं कि वर्ड्सवर्थ को छन्द तथा भाषा सम्बन्धी मान्यताओं को ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं किया जा सकता है। वर्ड्सवर्थ के मित्र और सहलेखक कॉलरिज ने उनकी मान्यताओं का खण्डन किया है।

शब्द शक्तियाँ

शब्द का अर्थ बोध कराने वाली शक्ति ही शब्द शक्ति है।
आचार्य चिन्तामणि ने कहा है कि 'जो सुन पड़े सो शब्द है, समुझि परै सो अर्थ
अर्थात् जो सुनाई पड़े वो शब्द और तथा उसे सुनकर जो अर्थ समझ में आए वो उसका अर्थ है।
शब्द तीन प्रकार के होते है - (1) वाचक (2) लक्षक (3) व्यंजक अर्थ - (1) वाच्यार्थ (2) लक्ष्यार्थ
(3) व्यंग्यार्थ शक्ति/व्यापार - (1) अभिधा (2) लक्षणा (3) व्यंजना
महत्वपूर्ण :- शक्ति शब्द का प्रयोग - विश्वनाथ

'व्यापार' शब्द का प्रयोग मम्मट ने किया।

शब्द शक्ति का अर्थ और परिभाषा - शब्द शक्ति का अर्थ है-शब्द की अभिव्यंजक शक्ति। शब्द का कार्य किसी अर्थ की अभिव्यक्त तथा उसका बोध करता होता है। इस प्रकार शब्द एवं अर्थ का अभिन्न सम्बन्ध है। शब्द एवं अर्थ का सम्बन्ध ही शब्द शक्ति है। 'शब्दार्थ सम्बन्धः शक्ति । अर्थात्(बोधक) शब्द एवं अर्थ के सम्बन्ध को (शब्द) शक्ति कहते हैं। शब्द शक्ति की परिभाषा इस प्रकार भी की जा सकती है- 'शब्दों के अर्थों का बोध कराने वाले अर्थ-व्यापारों को शब्द शक्ति कहते हैं।

शब्द शक्ति के भेद

शब्द के विभिन्न प्रकार के अर्थों के आधार पर शब्द शक्ति के प्रकारों का निर्धारण किया गया है। शब्द के जितने प्रकार के अर्थ होते हैं, भाषा के जितने प्रकार के अभिप्राय होते हैं, उतने ही प्रकार की शब्द शक्तियां होती हैं। शब्द के तीन प्रकार के अर्थ स्वीकार किए गए हैं- (1) वाच्यार्थ या अभिधेयार्थ, (2) लक्ष्यार्थ, (3) व्यंग्यार्थ। इस अर्थों के आधार पर तीन प्रकार की शब्द शक्तियां मानी गई हैं- (1) अभिधा, (2) लक्षणा, (3) व्यंजना। ।

कुमारिल भट्ट ने तात्पर्या नामक चौथी शब्द शक्ति भी स्वीकार की है, जिसका सम्बन्ध वाक्य से होता है।

(1) अभिधा शब्द शक्ति - शब्द की जिस शक्ति से किसी शब्द के मुख्य अर्थ का बोध होता है। साक्षात् सांकेतिक अर्थ/मुख्यार्थ/वाच्यार्थ को प्रकट करने वाली शब्द शक्ति अभिधा कहलाती है।

"पण्डित रामदहिन मिश्र ने साक्षात् सांकेतिक अर्थ को अभिधा कहा है।" अभिधा को प्रथमा या अग्रिमा शक्ति भी कहते है।

रामचन्द्र शुक्ल ने वाच्यार्थ से ही रस की उत्पत्ति मानी।

शब्द को सुनने अथवा पढ़ने के पश्चात् पाठक अथवा श्रोता को शब्द का जो लोक प्रसिद्ध अर्थ तत्क्षण ज्ञात हो जाता है, वह अर्थ शब्द की जिस सीमा द्वारा मालूम होता है, उसे अभिधा शब्द शक्ति कहते हैं

अभिधा शब्द शक्ति से जिन शब्दों का अर्थ बोध होता है वे तीन प्रकार के होते हैं।

- रूढ़: वे शब्द जिनकी उत्पत्ति नहीं होती जैसे - घोडा, घर
- (II) यौगिक : जिनकी उत्पत्ति प्रत्यय, समास आदि से होती है जैसे - विद्यालय, रमेश
- (III) योगरूढ़ : यौगिक क्रिया से बने लेकिन निश्चित अर्थ में रूढ़ हो गये जैसे - जलज, दशानन

"अभिधा उत्तम काव्य है, मध्य लक्षणालीन
अधम व्यंजना रस विरस, उलटी कहत प्रवीन" |

देव

"शब्द एवं अर्थ के परस्पर संबंध को अभिधा कहते है"। - जगन्नाथ

"अनेकार्थ हू शब्द में, एक अर्थ की व्यक्ति

तेहि वाच्यारथ को कहें, सज्जन अभिधासक्ति"।

- भिखारीदास

विशेष:- वह किसी पद में 'यमक' अलंकार की प्राप्ति होती है तो वहाँ प्रायः अभिधा शब्द शक्ति होती है। जैसे -

1. "कनक-कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय |
वा खाये बौराय जग, वा पाये बौराय" ।। ||."
सारंग ले सारंग उड्यो सारंग पूग्यो आय।
जे सारंग सारंग कहे, मुख को सारंग जाय" ||

कभी-कभी 'उत्प्रेक्षा' अलंकार के पदों में भी उनका मुख्य अर्थ ही प्रकट होता है, अतः इस अलंकार के पदों में भी प्राय: अभिधा शब्द शक्ति होती है। जैसे -

1. "सोहत ओढ़े पीत पट, स्याम सलोने गात ।
मानहु नीलमणि सैल पर, आतप पर्यो प्रभात" || ||. "
कहती हुई यों उत्तरा के नेत्र जल से भर गये।

हिम के कणों से पूर्ण मानो हो गये पंकज नये" ||

|||. "भजन कह्यो तातै भज्यौ, भज्यौ न एको बार।
दूर भजन जाते कह्यौ, सो तू भज्यौ गवार" ।।

आचार्य भट्टनायक अभिधा शब्द शक्ति को विशेष महत्त्व देते हैं। उनकी दृष्टि से रस की अनुभूति कराने में अभिधा शब्द शक्ति ही प्रधान है। अभिधा के द्वारा ही पहले अर्थबोध होता है और उसके बाद भावकत्व के द्वारा साधारणीकरण और भोजकत्व के द्वारा रसास्वादन होता है।

(2) लक्षणा शब्द शक्ति - जहां मुख्य अर्थ में बाधा उपस्थित होने पर रूढ़ि अथवा प्रयोजन के आधार पर मुख्य अर्थ से सम्बन्धित अन्य अर्थ को लक्ष्य किया जाता है, वहां लक्षणा शब्द शक्ति होती है। जैसे -मोहन गधा है। यहां गधे का लक्ष्यार्थ है मूर्ख।

लक्षणा शब्द शक्ति के भेद -

(अ) लक्ष्यार्थ के आधार पर - इस आधार को लेकर लक्षणा के दो भेद हैं -

(1) रूढ़ा लक्षणा, (2) प्रयोजनवती लक्षणा।

(1) रूढा लक्षणा - जहां मुख्यार्थ में बाधा होने पर रूढि के आधार पर लक्ष्यार्थ ग्रहण किया जाता है, वह रूढ़ा लक्षणा होती हैं। जैसे -पंजाब वीर हैं -इस वाक्य में पंजाब का लक्ष्यार्थ है -पंजाब के निवासी। यह अर्थ रूढ़ि के आधार पर ग्रहण किया गया है अतः रूढ़ा लक्षणा है।

'राजस्थान वीर है।'

प्रस्तुत वाक्य में 'राजस्थान' का मुख्यार्थ है - राजस्थान राज्य । परन्तु यहाँ इस अर्थ की बाधा है क्योंकि राजस्थान तो जङ है, वह वीर कैसे हो सकता है? इस स्थिति में इसका यह लक्ष्यार्थ ग्रहण किया जाता है - 'राजस्थान के लोग वीर हैं।'

यह अर्थ आधार-आधेय सम्बन्ध की दृष्टि से लिया जाता है। यहाँ 'राजस्थान राज्य' आधार है तथा 'राजस्थान के लोग' -आधेय है। यह अर्थ ग्रहण करने में रूढ़ि कारण है। राजस्थान के लोगों को राजस्थान कहने की रूढ़ि है। अतएव यहाँ 'रूढ़ा-लक्षणा' शब्द शक्ति मानी जाती है।

अन्य उदाहरण -

1. पंजाब शेर है।
2. यह तैल शीतकाल में उपयोगी है।
3. मुँह पर ताला लगा लो।
4. दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति। परत गाँठ दुरजन हिये, दई नई यह रीति।।
5. भाग जग्यो उमगो उर आली, उदै भयो है अनुराग हमारो।

(2) प्रयोजनवती लक्षणा - मुख्यार्थ में बाधा होने पर किसी विशेष प्रयोजन के लिए जब लक्ष्यार्थ का बोध किया जाता है, वहां प्रयोजनवती लक्षणा होती है। जैसे- मोहन गधा है -इस वाक्य में 'गधा' का लक्ष्यार्थ 'मूर्ख' लिया गया है और यह मोहन की मूर्खता को व्यक्त करने के प्रयोजन से लिया गया है अतः यहां प्रयोजनवती लक्षणा हैं।

उदाहरण -

'श्वेत दौङ रहा है।'

'प्रस्तुत वाक्य में 'श्वेत' का मुख्यार्थ 'सफेद रंग' बाधित है क्योंकि वह दौङ कैसे सकता है। तथा इसका लक्ष्यार्थ है - 'श्वेत रंग का घोङा दौङ रहा है।' अर्थात् किसी घुङदौङ प्रतियोगिता के दौरान यह वाक्य बोला जाता है तो श्रोता इसका यह अर्थ ग्रहण कर लेता है कि 'सफेद रंग का घोङा दौङ रहा है। इस प्रकार किसी प्रयोजन विशेष (घुङदौङ) से यह अर्थ ग्रहण करने के कारण यहाँ प्रयोजनवती लक्षणा है।

अन्य उदाहरण -

1. 'गंगा पर ग्राम है।' या 'साधु गंगा में बसता है।'
2. वह स्त्री तो गंगा है।
3. भाले प्रवेश कर रहे हैं। (युद्धभूमि में 'भालेधारी सैनिक' प्रवेश कर रहे हैं।)/
4. उदित उदयगिरि मंच पर, रघुवर बाल पतंग।

विकसे संत सरोज सब, हरषे लोचन भंग।।

(ब) मुख्यार्थ एवं लक्ष्यार्थ के सम्बन्ध के आधार पर - इस आधार पर लक्षणा के दो भेद हैं-
(1) गौणी लक्षणा, (2) शुद्धा लक्षणा।

(1) गौणी लक्षणा - जहां गुण सादृश्य के आधार पर लक्ष्यार्थ का बोध होता है, वहां गौणी लक्षणा होती है। जैसे-मोहन शेर है। इस वाक्य में मोहन को वीर दिखाने लिए उसको शेर कहा गया है, अर्थात् मोहन में और शेर में सादृश्य है अतः यहां गौणी लक्षणा है। गौणी लक्षणा - लक्षणा शब्द शक्ति में लक्ष्यार्थ सदैव मुख्यार्थ से सम्बद्ध होता है। यथा -
(i) सादृश्य संबंध
(ii) आधाराधेय संबंध
(iii) सामीप्य संबंध
(iv) वैपरीत्य संबंध(v) तात्कर्म्य संबंध
(vi) कार्यकारण संबंध
(vii) अंगांगि संबंध

इनमें से जहाँ पर मुख्य अर्थ की बाधा उत्पन्न होने पर सादृश्य संबंध के आधार पर अर्थात् समान रूप, गुण या धर्म के द्वारा अन्य अर्थ ग्रहण किया जाता है तो वहाँ पर गौणी लक्षणा होती है।
सामान्यत: रूपक व लुप्तोपमा (धर्म लुप्ता) अलंकार के पदों में गौणी लक्षणा ही होती है। जैसे -
'मुख चन्द्र है।'

यहाँ मुख्यार्थ में यह बाधा है कि 'मुख चन्द्र कैसे हो सकता है।' तब लक्ष्यार्थ यह लिया जाता है कि 'मुख चन्द्रमा जैसा सुन्दर है।' यह अर्थ सादृश्य संबंध के कारण लिया जाता है अतः यहाँ गौणी लक्षणा है।
अन्य उदाहरण -
1. नारी कुमुदिनी अवध सर रघुवर विरह दिनेश।
अस्त भये प्रमुदित भई, निरखि राम राकेश।।
2. बीती विभावरी जाग री।
अम्बर पनघट में डूबो रही तारा घट उषा नागरी।

(2) शुद्धा लक्षणा - जहां गुण सादृश्य को छोडकर अन्य किसी आधार यथा-समीपता, साहचर्य, आधार-आधेय सम्बन्ध, के आधार पर लक्ष्यार्थ ग्रहण किया गया हो, वहां शुद्धा लक्षणा होती है। यथा-लाल पगडी आ रही है। यहां लाल पगडी का अर्थ है सिपाही। इन दोनों में साहचर्य सम्बन्ध है अतः शुद्धा लक्षणा है।

उदाहरण -

1. मेरे सिर पर क्यों बैठते हो। (सामीप्य संबंध)
2. पानी में घर बनाया है तो सर्दी लगेगी ही। (सामीप्य संबंध)
3. आँचल में है दूध और आँखों में पानी। (सामीप्य संबंध) .4. वह मेरे लिए राजा है। (तात्कर्म्य संबंध)
5. इस घर में नौकर मालिक है। (तात्कर्म्य संबंध)
6. पितु सुरपुर सियराम लखन बन मुनिव्रत भरत गहयो। हौं रहि घर मसान पावक अब मरिबोई मृतक दहयो।।
7. सारा घर तमाशा देखने गया है। (आधार आधेय) .

(स) मुख्यार्थ है या नहीं के आधार पर लक्षणा के भेद - लक्ष्यार्थ के कारण मुख्यार्थ पूरी तरह समाप्त हो गया है या बना हुआ है, इस आधार पर लक्षणा के दो भेद किए गए हैं-(1) उपादान लक्षणा, (2) लक्षण लक्षणा।

(1) उपादान लक्षणा - जहां मुख्यार्थ बना रहता है तथा लक्ष्यार्थ का बोध मुख्यार्थ के साथ ही होता है वहां उपादान लक्षणा होती हैं। जैसे-लाल पगडी आ रही है। इसमें लाल पगडी भी आ रही है और (लाल पगड़ी पहने हुए) सिपाही भी जा रहा है। यहां मुख्यार्थ (लाल पगडी) के साथ-साथ लक्ष्यार्थ (सिपाही) का बोध हो रहा है अतः उपादान लक्षणा है।
उदाहरण -

1. ये झंडे कहाँ जा रहे हैं ?

इस वाक्य में झण्डा धारण करने वाले पुरुषों पर झण्डे का आरोप है और अर्थ में दोनों का कथन हो रहा है, अत: सारोपा लक्षणा है| धार्य-धारक भाव से अर्थ की अभिव्यक्ति हो रही है, अतः शुद्धा लक्षणा है तथा 'झण्डे' का अपना मुख्य अर्थ लुप्त नहीं हुआ है, अतः उपादान लक्षणा है।
नोट - जहाँ भेदकातिशयोक्ति अलंकार होता है, वहाँ प्रायः उपादान लक्षणा ही कार्य करती है। जैसे -

1. औरे भाँति कुंजन में गुंजरत भौंर भीर।
   औरे भाँति बौरन के झौंरन के वै गये।।
2. औरे कछु चितवनि चलनि, औरे मृदु मुसकानि।
   औरे कछु सुख देत है, सकै न बैन बखानि ।।

(2) लक्षण लक्षणा - इसमें मुख्यार्थ पूरी तरह समाप्त हो जाता है, तभी लक्ष्यार्थ का बोध होता है।
उदाहरण -

1. आज भुजंगों से बैठे हैं, वे कंचन के घड़े दबाये । विनय हार कर कहती है, ये विषधर हटते नहीं हटाये।।
2. कच समेटि करि भुज उलटि खए सीस पट डारि। काको मन बाँधे न यह जूरौ बाँधन हारि।।

(द) सारोपा एवं साध्यवसाना लक्षणा - (1) सारोपा लक्षणा - जहां उपमेय और उपमान में अभेद आरोप करते हुए लक्ष्यार्थ की प्रतीति हो वहां सारोपा लक्षणा होती हैं। इसमें उपमेय भी होता है और उपमान भी। जैसे - उदित उदयगिरि मंच पर रघुवर बाल पतंग। यहां उदयगिरि रूपी मंच पर राम रूपी प्रभातकालीन सूर्य का उदय दिखाकर उपमेय पर उपमान का अभेद आरोप किया गया है अतः सारोपा लक्षणा है।

उदाहरण -

1. अनियारे दीरघ नयनि, किसती न तरुनि समान। वह चितवनि और कछू, चेहि बस होत सुजान।।
2. तेरा मुख सहास अरुणोदय, परछाई रजनी विषादमय ।
यह जागृति वह नींद स्वप्नमय,
खेल खेल थक थक सोने दो, मैं समझूगी सृष्टि प्रलय क्या?
3. सरस विलोचन विधुवदन लख आलि घनश्याम ।।

(2) साध्यवसाना लक्षणा - इसमें केवल उपमान का कथन होता है, लक्ष्यार्थ की प्रतीति हेतु उपमेय पूरी तरह छिप जाता है। जैसे-जब शेर आया तो युद्ध क्षेत्र से गीदड़ भाग गए। यहां शेर का तात्पर्य वीर पुरुष से और गीदड़ का तात्पर्य कायरों से है। उपमेय को पूरी तरह छिपा देने के कारण यहां साध्यवसाना लक्षणा है।

उदाहरण -

1. विद्युत की इस चकाचौंध में देख दीप की लौ रोती है।
अरी हृदय को थाम महल के लिए झोपडी बलि होती है।। .
2. पेट में आग लगी है। (भूख)
3. हिलते दुमदल कल किसलय देती गलबाँही डाली।
फूलों का चुंबन छिड़ती मधुपों की तान निराली।।
4. कनकलता पर चन्द्रमा धरे धनुष द्वै बान।
5. बाँधा था विधु को किसने इन काली जंजीरों से।
मणिवाले फणियों का मुख, क्यों भरा हुआ हीरों से।।
6. चाहे जितना अर्ध्य चढ़ाओ, पत्थर पिघल नहीं सकता।
चाहे जितना दूध पिलाओ, अहि-विष निकल नहीं सकता।।
7. लाल पगडी आ रही है। (पुलिस)

व्यंजना शब्द शक्ति

1 व्यंजना शब्द शक्ति - अभिधा और लक्षणा के विराम लेने पर जो एक विशेष अर्थ निकालता है, उसे व्यंग्यार्थ कहते हैं और जिस शक्ति के द्वारा यह अर्थ ज्ञात होता है, उसे व्यंजना शब्द शक्ति कहते हैं। जैसे - घर गंगा में है। यहां व्यंजना है कि घर गंगा की भांति पवित्र एवं स्वच्छ है।

व्यंजना शब्द शक्ति के भेद -

(अ) शाब्दी व्यंजना - जहां शब्द विशेष के कारण व्यंग्यार्थ का बोध होता है और वह शब्द हटा देने पर व्यंग्यार्थ समाप्त हो जाता है वहां शाब्दी व्यंजना होती हैं। जैसे -

चिरजीवौ जोरी जुरै क्यों न सनेह गम्भीर |
को घटि ए वृषभानुजा वे हलधर के वीर ।।

यहां वृषभानुजा, हलधर के वीर शब्दों के कारण व्यंजना सौन्दर्य है। इनके दो-दो अर्थ हैं-1. राधा, 2. गाय तथा 1. श्रीकृष्ण 2. बैल। यदि वृषभानुजा, हलधर के वीर शब्द हटा दिए जाएं और इनके स्थान पर अन्य पर्यायवाची शब्द रख दिए जाएं, तो व्यंजना समाप्त हो जाएगी।

शाब्दी व्यंजना को पुनः दो वर्गों में बांटा गया है-अभिधामूला शाब्दी व्यंजना, लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना।

(1) अभिधामूला शाब्दी व्यंजना - जहां पर एक ही शब्द के नाना अर्थ होते हैं, वहां किस अर्थ विशेष को ग्रहण किया जाए, इसका निर्णय अभिधामूला शाब्दी व्यंजना करती हैं। यह ध्यान देने योग्य बात है कि अभिधामूला शाब्दी व्यंजना में शब्द का पर्याय रख देने से व्यंजना का लोप हो जाता है तथा व्यंग्यार्थ का बोध मुख्यार्थ के माध्यम से होता है जैसे-सोहत नाग न मद बिना, तान बिना नहीं राग। यहां पर नाग और राग दोनों शब्द अनेकार्थी हैं, परन्तु 'वियोग' कारण से इनका अर्थ नियन्त्रित कर दिया गया है। इसलिए यहां पर 'नाग' का अर्थ हाथी और 'राग' का अर्थ रागिनी है। अब यदि यहां नाग का पर्यायवाची भुजंग रख दिया जाए तो व्यंग्यार्थी हो जाएगा।

उदाहरण -

"चिरजीवो जोरी जरै, क्यों न सनेह गंभीर।
को घटि, ये वृषभानुजा, वे हलधर के बीर।।" .

यहाँ पर अभिधा शब्द शक्ति के द्वारा 'वृषभानुजा' और 'हलधर के बीर' का अर्थ क्रमश: 'राधा' और 'कृष्ण' निश्चित हो जाता है, फिर भी यहाँ यह अर्थ व्यंजित होता है कि यह जोडी बिलकुल एक दूसरे के उपयुक्त है। अतएव यहाँ अभिधामूला शाब्दी व्यंजना है।

(2) लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना - जहां किसी शब्द के लाक्षणिक अर्थ से उसके व्यंग्यार्थ पर पहुंचा जाए और शब्द का पर्याय रख देने से व्यंजना का लोप हो जाए, वहां लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना होती है। यथा -"आप तो निरै वैशाखनन्दन हैं।" यहां वैशाखनन्दन व्यंग्यार्थ पर पहुंचना होता है। लक्षण है-मूर्खता। अब यदि यहां वैशाखनन्दन शब्द बदल दिया जाए तो व्यंजना का लोप हो जाए, परन्तु 'गधा' रख देने से लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना तो चरियार्थ नहीं रहेगी।

उदाहरण -

1. "कहि न सको तव सुजनता! अति कीन्हों उपकार |
सखे! करत यों रहु सुखी जीवहु बरस हजार ।।

" प्रस्तुत दोहे में अपकार करने वाले व्यक्ति कार्यों से दुःखी कोई व्यक्ति कह रहा है-"मैं तुम्हारी सज्जनता का वर्णन नहीं कर सकता। तुमने बहुत उपकार किया। इसी प्रकार उपकार करते हुए तुम हजार वर्ष तक सुखी रहो।"

यहाँ वाच्यार्थ में अपकारी की प्रशंसा की गई है, परन्तु अपकारी की कभी प्रशंसा नहीं की जा सकती है, अतः वाच्यार्थ में बाधा है। यहाँ इस वाच्यार्थ को तिरस्कृत करके विपरीत लक्षणा से 'सुजनता' का 'दुर्जनता', 'उपकार' का 'अपकार' और 'सखे' का 'शत्रु' अर्थ लिया जायेगा। यहाँ व्यंग्यार्थ 'अत्यन्त अपकार' है। अतएव यहाँ लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना है।

- अजौ तौना ही रह्यौ श्रुति सेवत इक अंग।
- नाक बास बेसरि लह्यौ बसि मुकतनु के संग।।
- फली सकल मन कामना, लूट्यो अगनित चैन।
- आजु अँचै हरि रूप सखि, भये प्रफुल्लित नैन।।

(ब) आर्थी व्यंजना - जब व्यंजना किसी शब्द विशेष पर आधारित न होकर अर्थ पर आधारित होती है, तब वहां आर्थी व्यंजना मानी जाती हैं। यथा -
आंचल में है दूध और आंखों में पानी ।।
यहां नीचे वाली पंक्ति से नारी के दो गुणों की व्यंजना होती है-उसका ममत्व भाव एवं कष्ट सहने की क्षमता। यह व्यंग्यार्थ किसी शब्द के कारण है अतः आर्थी व्यंजना है।
1. "सागर कूल मीन तडपत है हुलसि होत जल पीन।"
यह कथन सामान्यतः कोई महत्त्व नहीं रखता, परन्तु जब इस बात का पता चल जाता है कि इसको कहने वाली गोपिकाएँ हैं, तब इसका यह अर्थ निकलता है कि हम कृष्ण के समीप होते हुए भी मछली के समान तडप रही हैं। कृष्ण के दर्शन से हमें वैसा ही आनंद प्राप्त होगा, जैसा कि मछली को पानी में जाने से होता है।
2. सघन कुंज छाया सुखद शीतल मंद समीर।
   मन हवै जात अजौ वहे वा जमुना के तीर ।।
3. सिंधु सेज पर धरा वधू अब, तनिक संकुचित बैठी सी।
   प्रलय निशा की हलचल स्मृति में मान किए सी ऐंठी सी।।
4. "प्रीतम की यह रीति सखी, मोपै कही न जाय। झिझकत हू ढिंग ही रहत, पल न वियोग सुहाय ।।"
यह कथन किसी नायिका का है। व्यंग्यार्थ यह है कि नायिका रूपवती है, नायक उसमें अत्यधिक आसक्त है। यहाँ आर्थी व्यंजना इसलिए है कि 'झिझकत', 'ढिंग' आदि शब्दों के स्थान पर इनके पर्यायवाची अन्य शब्द भी रख दिये जायें तो भी व्यंग्यार्थ बना रहेगा।
-एक अन्य आधार पर व्यंजना के तीन भेद किए गए हैं-1. वस्तु व्यंजना, 2. अलंकार व्यंजना, 3. रस व्यंजना।

1. वस्तु व्यंजना - जहां व्यंग्यार्थी द्वारा किसी तथ्य की व्यंजना हो वहां वस्तु व्यंजना होती हैं। जैसे
उषा सुनहले तीर बरसती जय लक्ष्मी सी उदित हुई। उधर पराजित काल रात्रि भी जल में अन्तर्निहित हुई।।
यहां रात्रि बीत जाने और हृदय में आशा के उदय आदि की सूचना व्यंजित की गई है अतः वस्तु व्यंजना है।
2. अलंकार व्यंजना - जहां व्यंग्यार्थ किसी अलंकार का बोध कराये वहां अलंकार व्यंजना होती हैं। जैसे उसे स्वस्थ मनु ज्यों उठता है क्षितिज बीच अरुणोदय कान्त। लगे देखने क्षुब्ध नयन से प्रकृति विभूति मनोहर शान्त।।
यहां उत्प्रेक्षा अलंकार के कारण व्यंजना सौन्दर्य है अतः इसे अलंकार व्यंजना कहेंगे।
3. रस व्यंजना - जहां व्यंग्यार्थ से रस व्यंजित हो रहा हो, वहां रस-व्यंजना होती है। यथा जब जब पनघट जाऊं सखी री वा जमुना के तीर। भरि-भरि जमुना उमडि चलति हैं इन नैननि के नीर।।
यहां 'स्मरण' संचारीभाव की व्यंजना होने से वियोग रस व्यंजित है अतः रस व्यंजना है।

शब्द शक्ति का महत्व - किसी शब्द का महत्व उसमें निहित अर्थ पर निर्भर होता हैं। बिना अर्थ के शब्द अस्तित्व-विहीन एवं निरर्थक होता है। शब्द शक्ति के शब्द में निहित इसी अर्थ की शक्ति पर विचार किया जाता है। काव्य में प्रयुक्त शब्दों के अर्थ ग्रहण से ही काव्य आनन्ददायक बनता है शब्द के अर्थ को समझना ही काव्य के आनन्द को प्राप्त करने की प्रधान सीढ़ी हैं और शब्द के अर्थ को समझने के लिए शब्द शक्तियों की जानकारी होना परम आवश्यक हैं।

सम्प्रेषण सिद्धांत - रिचर्ड्स

रिचर्ड्स के पहले सामान्यतः काव्य की महत्ता के समबन्ध में भावात्मक उद्गार प्रकट किए जाते थे, किन्तु रिचर्ड्स ने उनमें परिवर्तन लाने की दृष्टि से स्वच्छन्दता-विरोधी आलोचना का प्रारम्भ किया। इसी क्रम में उन्होंने कुछ सिद्धांत प्रस्तुत किए जिनमें उनका मूल्य-सिद्धांत, काव्य-भाषा-सिद्धांत और सम्प्रेषण का सिद्धांत प्रमुख हैं। यहाँ संप्रेषण के सिद्धांत को संक्षेप में स्पष्ट किया जा रहा है।

सम्प्रेषण-सिद्धांत और रिचर्ड्स

रिचर्ड्स का सम्प्रेषण-सिद्धांत अपने आप में महत्त्वपूर्ण अवश्य है, किन्तु इसकी त्रुटियाँ भी सर्वविदित हैं। समीक्षकों ने इस सिद्धांत को स्वीकार करते हुए इसकी कमियों की ओर भी स्पष्ट संकेत किया है।
सम्प्रेषण की प्रक्रिया - काव्य कवि की अनुभूतियों की संश्लिष्ट संघटना है। काव्य वह बिन्दु है जिस पर कवि और प्रमाता दोनों का मेल होता है। कवि अपनी अनुभूतियों को सम्प्रेषित करता है और प्रमाता अपनी योग्यता के आधार पर उन्हें ग्रहण करता है। प्रमाता में भी कवि की अनुभूति के समान ही अनुभूति उत्पन्न होती है। भारतीय काव्यशास्त्र में इसी को साधारणीकरण कहते हैं। साधारणीकरण में प्रमाता को दृष्टि में रखकर विचार किया गया हैं, किन्तु रिचर्ड्स कवि की सम्प्रेषण-प्रक्रिया पर भी विचार करता है। सम्प्रेषण कैसे घटित होता है? इस सम्बन्ध में कई बातें उठ सकती हैं। यह अचेतन मन का व्यापार है, यह चेतन मन का

व्यापार है या इसमें अचेतन और चेतन मन का समन्वय रहता है। रिचर्ड्स इसे अचेतन मन का व्यापार मानता है। रचना-प्रक्रिया में कलाकार की दृष्टि में प्रमाता नहीं रहता। वह अपने संवेगों की अभिव्यक्ति तथा आत्मतुष्टि के लिए रचना करता है। इसके अतिरिक्त उस समय उसका कोई उद्देश्य नहीं रहता। गोस्वामी तुलसीदास ने भी लिखा है -"स्वांतः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा भाषा निबंध मंजुलमातनोति।"

कहने का तात्पर्य यह है कि सम्प्रेषण के प्रति वह सतर्क नहीं रहता। पाठक उसकी कलाकृति का अध्ययन करेंगे, उस पर अपनी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करेंगे आदि उसके लिए आकस्मिक और गौण है। इस प्रक्रिया में कवि को वैयक्तिक धरातल पर संतुष्ट रहना पर्याप्त है। जब रिचर्ड्स सम्प्रेषण को अचेतन मन की प्रक्रिया मान लेता है, तब उसके प्रति सतर्कता की चर्चा कोई माने नहीं रखती है। प्रश्न उठता है कि जब सम्प्रेषण कवि के अचेतन मन की प्रक्रिया है तब उसकी अनुभूतियों से पाठक की अनुभूतियों का मेल कैसे होगा? अचेतन प्रक्रिया के कारण काव्य में कवि की वैयक्तिक सनकें भी अभिव्यक्त होंगी। पाठक वैयक्तिक सनकों के साथ तादात्म्य कैसे स्थापित करेगा ?

कवि के साथ पाठक के तादात्म्य स्थापित होने के दो कारण हैं - (1) कवि की साधारणता यानी वह अन्य व्यक्तियों का तरह ही सामान्य व्यक्ति होता है, (2) कला को सही रूप देने की प्रवृत्ति । सामान्य व्यक्ति का संतोष अन्य व्यक्ति का भी संतोष बन जाता है। कलाकार का आत्मतोष और सम्प्रेषण दोनों एक साथ घटित होते हैं। दूसरे शब्दों में, यह भी कहा जा सकता है कि कलाकार का 'स्वांतःसुखाय' पाठक का भी 'स्वान्तःसुखाय' हो जाता है। कलाकार में अपनी कृति को सही रूप देने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। इस प्रवृत्ति के कारण उसमें सम्प्रेषण की क्षमता अपने आप आ जाती है। वह निर्वैयक्तिकता को प्राप्त करने के लिए निरन्तर संघर्ष करता है। इसलिए उसकी कृति में नितान्त वैयक्तिक अभिरुचियों का समावेश नहीं हो पाता, यदि होता भी है तो अत्यल्प मात्रा में। इससे स्वतः सिद्ध है कि कलागत औचित्य के कारण सम्प्रेषण की क्षमता स्वतः आ जाती है।

सवाल होता है कि कवि की अनुभूतियाँ पाठक तक कैसे सम्प्रेषित हो जाती हैं? एक का मन दूसरे का मन किस तरह एकीभूत हो जाता है? पाठक इसे किस तरह ग्रहण करता है। इस समस्या को भी रिचर्ड्स मनोविज्ञान के आधार पर सुलझाने की कोशिश करता है। इस सम्बन्ध में वह तीन प्रकार की मान्यताओं का उल्लेख करता है -

(1) कुछ लोगों के विचार से अनुभूतियाँ दूसरे व्यक्ति के पास उसी प्रकार स्थानांतरित हो जाती है जिस प्रकार एक व्यक्ति की जेब का पैसा दूसरे व्यक्ति की जेब में चला जाता है।
(2) शक्ति या सत्ता के रूप में एक मनःस्थिति होती है जो कभी एक को कभी दूसरे को और कभी अनेक को एक साथ व्याप्त हो जाती है।
(3) मन की एक व्यापक सत्ता है। उसके आधार पर सभी के मन अनेक अंशों में समानव होते हैं। एक की अनुभूति का दूसरे के पास सम्प्रेषित होने का यही आधार है।

का यही आधारधार पर सभी के मन अनेक

रिचर्ड्स को ये सभी सिद्धांत अस्वीकार्य हैं। वह एक व्यक्ति की सत्ता दूसरे व्यक्ति से अलग मानता है। एक व्यक्ति का मन भी दूसरे व्यक्ति के मन से अलग होता है। अलग-अलग व्यक्तियों की अनुभूतियाँ भी अलग-अलग होती हैं। सम्प्रेषण वहाँ घटित होता है जहाँ कुछ विशेष परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को समान अनुभूति होती है। कोई व्यक्ति अपने परिवेश के प्रति इस प्रकार प्रतिक्रिया व्यक्त करता है कि दूसरा व्यक्ति प्रभावित हो जाता है और दूसरे व्यक्ति को उसी प्रकार की अनुभूति होती है जिस प्रकार पहले व्यक्ति को। यह सम्प्रेषण की स्थिति है। सम्प्रेषण व्यापार में दो सत्ताएँ होती हैं -कवि की और प्रमाता की। कवि अनुभूतियों का सम्प्रेषण करता है और प्रमाता उसे ग्रहण करता है। प्रमाता की अनुभूति कमोबेश मात्रा में कवि की आश्रित होती है।

सम्प्रेषण के लिए वह कलाकार में दो योग्यताएँ जरूरी मानता है -साधारणता और अतीत के अनुभवों को पुनरुत्पादित करने की क्षमता। साधारणता के कारण कलाकार निर्विशेषीकृत अनुभूतियाँ प्रेषित करता है। उसे अतीत का गहरा और व्यापक अनुभव होना चाहिए। इन अनुभवों को दुहराना भर कलाकार का काम नहीं है। उसे कल्पना के आधार पर वह पुनः उत्पादित करता है। इस तरह की कल्पना को वह रचनात्मक कल्पना कहता है। कलाकार की भाँति ही प्रमाता की भी कुछ विशेषताएँ होती हैं। उसमें विवेक, संकेतग्राह्यता, एक दूसरे से असम्बद्ध, मुक्त और स्पष्ट स्मृतियों के पुनरुत्पादन की क्षमता आदि के साथ ही वैयक्तिक अप्रासंगिक प्रसंगों के नियंत्रण की शक्ति भी होनी चाहिए।

व्यक्ति-व्यक्ति की अनुभूतियों में अलगाव होता है। पर जातिगत एकता तथा टाइप व्यक्तियों की एकरूपता के फलस्वरूप मनुष्यों के आवेगों में समानता होती है। इसलिए उनकी प्ररोचनाओं और प्रतिक्रियाओं में सादृश्य परिलक्षित होता है। कुछ आवेगों में वैलक्षण्य रह सकता है। कुछ आवेग प्रागैतिहासिक काल से आज तक अपरिवर्तित रूप में विद्यमान हैं। कुछ ऐसे भी होते हैं जो फैशन की तरह बदलते रहते हैं। सफल सम्प्रेषण के लिए जरूरी है कि कलाकार और प्रमाता में आवेगों की प्ररोचनाएँ और प्रतिक्रियाएँ समान हों, पर समस्त परिस्थितियाँ और प्रतिक्रियाएँ उभयनिष्ठ या समान हों, ऐसा सम्भव नहीं है। इन असमानताओं में समता स्थापित करने के लिए कल्पना का सहारा लिया जाता है।

इस कल्पना को वह रचनात्मक कहता है। इसका सम्बन्ध जितना विगत के अनुभवों से है उतना ही वर्तमान से भी है। किन्तु रूपात्मक परिवर्तन में वर्तमान का विशेष योग होता है क्योंकि एक मनोदशा में देखा गया दृश्य बदली हुई वर्तमान दशा में बदल जाता है। कल्पना तत्त्व का सम्बन्ध कलागत विशिष्टता तथा निर्वैयक्तिकता और निस्संगता की अवस्थाओं से है। काव्य में लय, मात्रा, स्वर, आरोह-अवरोह, चित्र में रेखा और रंग प्ररोचना का कार्य करते हैं। ये तत्त्व सरल या जटिल हो सकते हैं, पर इनसे समान प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न होती हैं। कला में रूपगत तत्त्व का अधिक महत्त्व इसलिए आँका जाता है। उसने सम्प्रेषणगत दोष का भी उल्लेख किया है। काव्यगत दोष दो प्रकार के होते हैं - मूल्य सम्बन्धी और सम्प्रेषण सम्बन्धी।

संप्रेषण की दृष्टि से त्रुटिपूर्ण रचना को वह दोषयुक्त कविता कहता है जबकि मूल्य की दृष्टि से त्रुटिपूर्ण रचना को वह बुरी कविता कहता है। एला ह्विलर विल्कॉक्स की रचना सम्प्रेषण की दृष्टि से सफल है, पर मूल्य की दृष्टि से हीन है। मैथिलीशरण गुप्त की रचना 'भारत भारती' सम्प्रेषण की दृष्टि से सफल रचना है, पर मूल्य की दृष्टि से अत्यन्त सामान्य । छायावादी काव्य में कुछ सम्प्रेषण की दृष्टि से सफल न होने पर भी मूल्य की दृष्टि से मूल्यवान हैं।

सम्प्रेषण-सिद्धांत की उपयोगिता - काव्यालोचन के अन्तर्गत सम्प्रेषण-सिद्धांत की महत्ता और उपयोगिता भी विचारणीय है। ध्यान से देखें तो सम्प्रेषण शब्द साहित्य के क्षेत्र का शब्द नहीं है। रिचर्ड्स ने इसे जो अर्थ प्रदान किया है, वह अधिक अर्थवान नहीं बन पाया है। डॉ. बच्चनसिंह ने अपनी कृति में इसके सिद्धांत पक्ष की समीक्षा की है और साथ ही साथ उसकी उपयोगिता पर भी प्रकाश डाला है। उनका कथन यहाँ विकल रूप से उद्धृत किया जा रहा है -"रिचर्ड्स सम्प्रेषण को अचेतन मन का व्यापार मानता है। अचेतन मन से परिचालित होने के कारण उसका कवि वहीं पहुँच जाता है जहाँ प्लेटो का कवि था। रोमांस के विरोध में रहकर भी वह रूमानियत का बुरी तरह समर्थन करने लगता है। जहाँ तक रोमांटिक कविता का सम्बन्ध है, रचना-प्रक्रिया में अचेतन मन का योग महत्त्वपूर्ण योग स्वीकार किया जा सकता है। पर प्रबन्ध काव्यों, नाटकों, उपन्यासों के लिए यह सिद्धांत निरर्थक सिद्ध होता है। लम्बी कल्पना के दौरान कलाकार को सचेत होकर बहुत कुछ सोचना पड़ता है, संघटना में आवश्यक काट-छाँट करनी पड़ती है। कभी-कभी पुरानी वस्तुओं को निकाल कर उनके स्थान पर नयी वस्तुएँ रखनी पड़ती हैं। 'आँसू' के विभिन्न संस्करकणों में जो काट-छाँट की गयी है, वह सम्प्रेषण-सिद्धांत के विरुद्ध है। 'कामायनी' की मूल प्रति और मुद्रित प्रति का तुलनात्मक अध्ययन भी हमें इसी निष्कर्ष पर पहुंचाता है। फ्लाबेयर ने 'मदाम बवेरी' को छह बार क्यों लिखा? सम्प्रेषण और मूल्य को अलग-अलग कटघरे में नहीं रखा जा सकता। सम्प्रेष्य और सम्प्रेषण अलग-अलग नहीं हैं। सम्प्रेष्य और सम्प्रेषण भी काव्य की संघटना के अतिरिक्त कुछ नहीं है। इसलिए विवेचना का केन्द्रवर्ती बिन्दु संघटना ही है। सबसे बडी कठिनाई यह है कि पाठक को कैसे पता लगेगा कि अमुक काव्य का सम्प्रेषण सफल है या नहीं? रिचर्ड्स सम्प्रेषण की सफलता कवि और पाठक की समानुभूति में मानते हैं। लेकिन वह कौन-सा निकष है जिस पर कसकर बताया जा सके कि कवि की अनुभूति यही है। वह कहता है कि सम्प्रेषण की सफलता का रहस्य जानने के लिए समीक्षक को कविता का विधिवत् अध्ययन आवश्यक है। इसके आधार पर ही वह कृति का समुचित मूल्यांकन कर सकता है। इसीलिए आगे चलकर समीक्षकों ने उसके मूल्य सिद्धांत और सम्प्रेषण-सिद्धांत को स्वीकार नहीं किया। अतः उसकी समस्त पुस्तकों में अर्थ मीमांसा सम्बन्धी पुस्तक 'मीनिंग ऑव मीनिंग' का ही अधिक स्वागत हुआ।"

साधारणीकरण

साधारणीकरण क्या होता है

असाधारण का साधारण और विशेष से सामान्य हो जाना | कवि और पाठक की चित्तवृत्तियों का एकलय हो जाना। इस सिद्धान्त के अनुसार साहित्य के पठन, श्रवण अथवा दर्शन द्वारा सामाजिक सहृदय रससिक्त

हो साहित्य भूमि में लीन हो जाता है, वह अपनी भौतिक स्थिति से शून्य हो जाता है। ऐसी स्थिति में वह रंगमंच पर स्थित नायिका या किसी पात्र को देखकर कथा के अनुरूप भावों से तादात्म्य स्थापित कर लेता है। रंगमंच पर हो रहे उद्योग उसे सहज और सामान्य लगने लग जाते हैं - बालकृष्ण की चेष्टाओं में उसे अपने संतान की क्रीडाएँ नजर आने लगती है। ऐसी स्थिति में रंगमंच पर स्थित पात्रों का विशेषत्व समाप्त हो वे सामान्य के धरातल पर आ पहुँचते है, यही साधारणीकरण है।

काव्यशास्त्र में 'साधारणीकरण' शब्द का प्रयोग 'रसनिष्पत्ति के सन्दर्भ में हुआ है। इसका सर्वप्रथम प्रयोग भट्टनायक (10वीं शती ई. पूर्व) ने रस निष्पत्ति सम्बन्धी भरतमुनि के रस सूत्र की व्याख्या के अन्तर्गत किया है। (भट्टनायक का भुक्तिवाद का रस निष्पत्ति का सिद्धान्त) ।
साधारणीकरण में हमें यह समझना है कि साधारणीकरण होता किसका है
कुछ विद्ववानों के मत दिए जा रहें है।
भट्टनायक के अनुसार," "भावकत्वम् साधारणीकरण, तेन हि व्यापारेण विभावदायः
स्थायी च साधारणीकरण क्रियन्ते।"
अर्थात भावकत्व साधारणीकरण है। इस व्यापार से विभावादि और स्थायी भावों का साधारणीकरण होता है। इस प्रकार भट्टनायक ने 'भावकत्व' नामक व्यापार के माध्यम से साधारणीकरण का उल्लेख किया है।
विशेष: भट्टनायक ने काव्य के तीन व्यापार बताए है- अभिधा,भावकत्व,भोजकत्व
डॉ. नगेन्द्र के अनुसार, “साधारणीकरण का अर्थ है काव्य के पठन द्वारा पाठक या श्रोता का भाव सामान्य भूमि पर पहुँच जाना।"
अभिनवगुप्त के अनुसार," साधारणीकरण दो स्तर पर सम्पन्न होता है। पहले स्तर पर विभावादि देशकाल के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं, दूसरे स्तर पर प्रमाता स्व-पर की चेतना से मुक्त हो जाता है।"
इनके अनुसार विभावादि के स्थायी भाव के साथ-साथ सामाजिक की अनुभूति का साधारणीकरण होता है।
आचार्य विश्वनाथ के अनुसार," साधारणीकरण द्वारा ही प्रमाता और विभावादि में पूर्ण तादात्म्य की स्थिति को सम्भव मानते हैं।"
रामचन्द्र शुक्ल ने साधारणीकरण पर विस्तृत विचार किया है। उनकी पहली स्थापना यह है कि "साधारणीकरण आलम्बनत्व धर्म का होता है।" दूसरा यह है कि “जब तक भाव का कोई विषय इस रूप में नहीं लाया जाता कि वह सामान्यतः सबके उसी भाव को आलम्बन हो सके, तब तक उसमें रसोद्बोधन की पूर्ण शक्ति नहीं आती। विषय का इसी रूप में लाया जाना हमारे यहाँ साधारणीकरण कहलाता है।"

शुक्लजी ने आलम्बन धर्म का साधारणीकरण माना है। इस प्रकार रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार साधारणीकरण का भाव है- (1) वर्णित अथवा प्रदर्शित आलम्बन का सबके भाव का आलम्बन बनाना, (2) आश्रय के समान आलम्बन के प्रति पाठक अथवा दर्शक का भाव हो जाना।

शुक्लजी के मत की कई विचारकों ने आलोचना की है। राम दहिन मिश्र ने विभावादि के साधारणीकरण को केवल आलम्बनत्व धर्म में सीमित किये जाने पर आपत्ति की है। उन्होंने रसकोटियों के विभाजन को रस की प्रकृति के विपरीत कहा है और साधारणीकरण तथा तादाम्य का एक ही अर्थ में प्रयोग भ्रामक माना है।"

बाबू गुलाबराय ने कवि, पाठक और भाव तीनों के साधारणीकरण पर विचार किया है(नाटकीय प्रपंच,नाटककार,प्रेक्षक का साधारणीकरण) ,उनके मतानुसार साधारणीकरण की स्थिति में

(1) कवि अपने व्यक्तित्व से ऊँचा उठकर साधारणीकृत हो जाता है। अतः वह लोक प्रतिनिधि होकर भावाभिव्यक्ति करता है।

(2) पाठक का साधारणीकरण इस अर्थ में होता है कि वह अपने व्यक्तित्व के बन्धनों को तोड़कर लोक सामान्य की भाव भूमि में आता है।

(3) भावों का साधारणीकरण इस अर्थ में होता है कि इनमें भी 'अयं निजः परोवा' की भावना जाती रहती है।

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी के अनुसार, साधारणीकरण में कवि कल्पित समस्त किया व्यापारों का साधारणीकरण होता है।"

केशव प्रसाद मिश्र के अनुसार, सहृदय की चेतना का साधारणीकरण होता है। इन्होनें साधारणीकरण का संबंध योग की 'मधुमति की भूमिका' से जोडा।"

श्यामसुन्दर दास का मत

श्यामसुन्दर दास ने केशव सेन की 'मधुमति भूमिका' के संबंध में साधारणीकरण की व्याख्या कर साधारणीकरण की स्थिति में पँहुचे सहृदय की समानता समाधि में पँहुचे योगी से बताई है। साधारणीकरण की समाप्ति पर सहृदय सामाजिक पुनः वास्तविक स्थिति में लोट आता है। सहृदय के चित्त का साधारणीकरण होता है।

भाग 3

हिन्दी कहानी का विकास

हिन्दी कहानी का विकास

हिन्दी कहानी का विकास

'कहानी' का प्राचीन नाम संस्कृत में 'गल्प' या 'आख्यायिका मिलता है। आधुनिक हिन्दी कविता का जन्म वर्तमान युग की आवश्यकताओं के कारण हुआ। कहानी को पश्चिम में 'शार्ट स्टोरी' कहा जाता हैं। पाश्चात्य साहित्य में कहानी-कला का उद्‌भव सर्वप्रथम अमेरिका में एडलर एलन पो (1809-49 ई.) द्‌वारा हुआ। उन्होंने कहानी की परिभाषा देते हुए कहा है कि "छोटी कहानी एक ऐसा आख्यान है, जो इतना छोटा है कि एक बैठक में पढ़ा जा सके और जो पाठक पर एक ही प्रभाव उत्पन्न करने के उद्‌देश्य से लिखा गया हो।' मुंशी प्रेमचन्द कहानी पर विचार करते हुए कहते हैं कि "कहानी (गल्प) एक रचना है, जिसमें जीवन के किसी एक अंग या मनोविज्ञान को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्‌देश्य रहता है। उसके चरित्र, उसकी शैली तथा कथा-विन्यास सब उसी एक भाव को पुष्ट करते है।"

हिन्दी कहानी का उद्‌भव द्‌विवेदी युग में 'सरस्वती पत्रिका (1900 ई.) के प्रकाशन से प्रारम्भ होता है।

हिन्दी की प्रथम कहानी और प्रणेता

प्रणेता	कहानी	वर्ष	लेखक
रामचंद्र शुक्ल	इंदुमती	1900	किशोरीलाल गोस्वामी
डॉ. बच्चन सिंह	प्रणयिनी परिणय	1887	किशोरीलाल गोस्वामी
देवी प्रसाद वर्मा	एक टोकरी भर मिट्‌टी	1901	माधवराव सप्रे
डॉ. लक्ष्मीनारायण	लाल ग्यारह वर्ष का समय	1903	आचार्य रामचंद्र शुक्ल

(शिल्पी की दृष्टि से)

- विद्‌वानों ने 'इंदुमती' को शिक्सपीयर के 'टेम्पेस्ट' की छायानुवाद कहकर उसे मौलिक कहानी के दायरे से बाहर कर दिया।

आचार्य शुक्ल ने लिखा है -

- ."इंदुमती किसी बंग्ला कहानी की छाया नहीं है तो हिन्दी की यही मौलिक कहानी ठहरती है। इसके उपरान्त 'ग्यारह वर्ष का समय' फिर 'दुलाईवाली' का नंबर आता है।
- राजेन्द्र बाला घोष 'बंग महिला' को हिन्दी की प्रथम कहानी लेखिका माना जाता है। 'दुलाईवाली' उनकी प्रमुख कहानी है।

बंग महिला की प्रमुख कहानियाँ -

1. चंद्रदेव से मेरी बातें (1904)

2. कुंभ में छोटी बहू (1906)
3. दुलाई वाली (1907)
4. दलिया (1909 ई.)

सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित प्रमुख कहानियाँ -

कहानी	प्रकाशन वर्ष	कहानीकार
इन्दुमती	1900 ई.	किशोरीलाल गोस्वामी
प्लेग की चुडैल	1902 ई.	लाला भगवानदीन
ग्यारह वर्ष का समय	1903 ई.	आचार्य रामचंद्र शुक्ल
एक के दो दो	1906 ई.	लाला पार्वती नंदन
दुलाई वाली	1907 ई.	बंग महिला
राखी बंध भाई	1909 ई.	वृंदावनलाल वर्मा
रक्षाबंधन		विश्वंभर नाथ शर्मा 'कौशिक'
सौत	1915 ई.	प्रेमचंद
पंच परमेश्वर	1916 ई.	प्रेमचंद
उसने कहा था	1915 ई.	चंदधर शर्मा 'गुलेरी'

हिन्दी कहानी के समूचे विकास-क्रम को निम्नलिखित शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता हैं - (1) प्रेमचंद पूर्व हिन्दी कहानी (2) प्रेमचंदयुगीन हिन्दी कहानी (3) प्रेमचंदोत्तर हिन्दी कहानी (4) समकालीन हिन्दी कहानी

प्रेमचंद पूर्व हिन्दी कहानी

सन् 1900 ई. से पूर्व कहानियों के नाम पर जो संग्रह प्राप्त होते है, वे निम्नलिखित है -

रचनाकार	**रचना**
राजा शिवप्रसाद सितारे 'हिन्द'	वामा मनोरंजन (1886 ई.) .
चण्डी प्रसाद सिंह	हास्य रत्न (1886 ई.)
किशोरी लाल गोस्वामी	प्रणयिनी परिणय (1887 ई.)
अंबिकादत्त व्यास	कथा-कुसुम कलिका (1888 ई.)

सन् 1900 ई. के पश्चात हिन्दी कहानी -

कहानीकार

कहानी

किशोरीलाल गोस्वामी

1. इंदुमती (1900) 2. गुलबहार (1900)

केशवप्रसाद सिंह

1. चंद्रलोक की यात्रा (1900) 2. आपत्तियों का पहाङ (1900)

माधव प्रसाद मिश्र

1. पुरोहित का आत्म त्याग (1900) 2. मन की चंचलता (1900)

लाला भगवानदीन

1. प्लेग की चुडैल (1902 ई.)

रामचंद्र शुक्ल

1. ग्यारह वर्ष का समय (1903 ई.)

गिरिजादत्त वाजपेयी

1. पति का पवित्र प्रेम (1903 ई.) 2. पंडित और पंडितानी (1903)

कार्तिक प्रसाद खत्री

1. दामोदर राव की आत्मकहानी

सूर्यनारायण दीक्षित

1. चन्द्रहास का अद्भुत आख्यान (1906)

वेंकटेश नारायण

1. एक असरफी की आत्मकथा (1906)

बंग महिला

1. दुलाई वाली (1907)

वृन्दावन लाल वर्मा

1. राखीबंध भाई (1909) 2. तातर और एक वीर राजपूत (1910)

राधिका रमण
1. कानों में कंगना (1913) 2. बिजली

प्रसाद सिंह विश्वम्भर नाथ शर्मा
1. रक्षाबंधन (1913)

प्रेमचंदयुगीन हिन्दी कहानी

इस युग में कहानियों को जीवन की नयी समस्याओं से जोडने का प्रयास सर्वप्रथम कथा सम्राट प्रेमचंद ने ही किया। उपन्यास और कहानियाँ दोनों विधाओं में प्रेमचंद आदर्श और यथार्थ की ओर अग्रसर होते है। इसे उनकी पहली कहानी पंच परमेश्वर (1917) से आखिरी कहानी 'कफन' (1936) तक देखा जा सकता है।

- प्रेमचंद का मूल नाम नबावराय था। उर्दू में वे इसी नाम से लिखते थे।
- नबावराय के प्रथम कहानी संग्रह 'सोजे वतन' (1908) को ब्रिटिश सरकार ने जब्त कर लिया था। 'सोजे वतन' पाँच कहानियों का संग्रह था जो उर्दू में लिखा गया था।
- प्रेमचंद की प्रथम कहानी 'पंच परमेश्वर' (1917) तथा अन्तिम कहानी कफन (1936) है।

प्रेमचंद के प्रमुख कहानी-संग्रह

1. सप्त सरोज (1917)	7. प्रेम प्रतिमा (1926)
2. नवनिधि (1917)	8. प्रेम प्रतिज्ञा (1929)
3. प्रेम पूर्णिमा (1918)	9. प्रेम चतुर्थी (1929)
4. प्रेम पच्चीसी (1923)	10. प्रेम कुंज (1930)
5. प्रेम प्रसून (1924)	11. सप्त सुमन(1930)
6. प्रेम द्वादश (1926)	12. कफ़न (1936)

प्रेमचंद की प्रमुख कहानियाँ

1. नमक का दरोगा (1913)	11. अलग्योझा (1929)
2. सज्जनता का दण्ड (1916)	12. पूस की रात (1930)
3. ईश्वरीय न्याय (1917)	13. समर यात्रा (1930)
4. दुर्गा का मंदिर (1917)	14. सद्गति (1930)

5. बूढ़ी काकी (1920)	15. दो बैलों की कथा (1931)
6. सवा सेर गेहूँ (1924)	16. होली का उपहार (1931)
7. शतरंज के खिलाडी (1924)	17. ठाकुर का कुँआ (1932)
8. मुक्ति मार्ग (1924)	18. ईदगाह (1933)
9. मुक्ति धन (1924)	19. बड़े भाई साहब (1934)
10. सौभाग्य के कोडे (1924)	20. कफ़न (1936)

प्रेमचंद ने 300 कहानियाँ लिखी जो 'मानसरोवर' शीर्षक से आठ भागों में प्रकाशित है।

- चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी'
- गुलेरी जी विश्व के उन चुनिंदा कहानिकारों में से है जिन्होंने केवल तीन कहानी लिखकर हिन्दी कहानिकारों में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाया।

गुलेरी जी की प्रमुख कहानियाँ -

1. सुखमय जीवन	1911	भारत मित्र में प्रकाशित
2. बुद्धू का कांटा	1914	
3. उसने कहा था	1915	सरस्वती में प्रकाशित

- 'उसने कहा था' कहानी गुलेरी जी की सर्वश्रेष्ठ कहानी है। यह कहानी पूर्वदीप्ति (फ्लैश बैक) शैली में लिखी गई है।
- 'उसने कहा था' प्रथम विश्व युद्ध की पृष्ठभूमि पर लिखी गई प्रेम-संवेदना की कहानी हैं।

जयशंकर प्रसाद

- जयशंकर प्रसाद की प्रथम कहानी 'ग्राम' 1911 ई. में इन्दु पत्रिका में प्रकाशित हुई तथा अंतिम कहानी 'सालवती' को माना जाता है।
- प्रसाद का प्रथम कहानी संग्रह 'छाया' (1912) तथा अंतिम कहानी संग्रह इंद्रजाल (1936) है।

प्रसाद के प्रमुख कहानी संग्रह -

1. छाया (1912)
2. प्रतिध्वनि (1926)
3. आकाशदीप (1928)
4. आँधी (1931)

5. इन्द्रजाल (1936)

प्रसाद की प्रमुख कहानियाँ

1. आग		10. बिसाती
2. चन्दा	11. सालवती	
3. गुलाम		12. मधुआ
4. चित्तौड़ उद्धार	13. पुरस्कार	
5. पत्थर की पुकार	14. गुण्डा	
6. उस पार का योगी	15. छोटा जादूगर	
7. देवदासी		16. स्वर्ग के खण्डर
8. ममता	17. हिमालय का पथिक	
9. घीसू		18. समुद्र सन्तरण

अन्य प्रमुख कहानीकार एवं कहानी संग्रह -

कहानीकार
कहानी संग्रह

वृन्दावनलाल वर्मा
1. शरणागत (1950) 2. कलाकार का दण्ड (1950)

राधिकारमण प्रसाद
1. कुसुमांजलि 2. गाँधी टोपी (1938) 3. सावनी समाँ (1938) प्रमुख कहानी - 1. कानों में कंगना (1913) 2. बिजली

चतुरसेन शास्त्री

1. रजकण 2. बाहर-भीतर 3. दुखवा मैं कासो कहूँ मोर सजनी 4. सोया हुआ शहर 5. कहानी खत्म हो गई 6. स्त्रियों का ओज 7. सिंहगढ़ विजय

प्रमुख कहानियाँ - अंबपालिका, प्रबुद्ध, भिक्षुराज, हल्दी घाटी में, बाणवधु

विश्वंभरनाथ शर्मा

1. गल्प मंदिर (1919) 2. चित्रशाला (दो भागों में प्रथम -1924 द्वितीय 1929) 3. कल्लोल (1939) 4. प्रेम प्रतिमा 5. मणिमाला

राहुल सांकृत्यायन

1. सतमी के बच्चे (1935) 2. वोल्गा से गंगा (1944)

शिवपूजन सहाय

1. महिला महत्त्व (1922) 2. कहानी का प्लाट (1928)

पदुमलाल पुन्नालाल

1. अंजलि 2. झलमला (1934) 3. कनक रेखा (1961)

बद्रीनाथ भट्ट 'सुदर्शन'

1. सुप्रभात (1923) 2. परिवर्तन (1926) 3. सुदर्शन सुधा (1926) 4. तीर्थयात्रा (1927) 5. सुदर्शन सुमन (1933) 6. पनघट (1939) 7. नगीने (1947) 8. झरोखे (1939)

प्रमुख कहानियाँ - हार की जीत, दो मित्र, कवि की स्त्री, पत्थरों का सौदागर, कमल की बेटी, तीर्थयात्रा आदि।

चण्डी प्रसाद 'हृदयेश'

1. नंदन निकुंज (1923) 2. वनमाला

भगवती प्रसाद वाजपेयी

1. मधुपर्क (1929) 2 दीपमालिका (1930) 3. पुष्पकारिणी (1936) 4. हिलोर (1938) 5. खाली बोतल 6. मेरे सपने 7. ज्वार भाटा (1940) 8. कला की दृष्टि (1942) 9. उपहार (1942) 10. अंगारे (1944) 11. उतार-चढ़ाव (1950)

बेचन शर्मा 'उग्र'

1. चाकलेट (1924) 2. शैतान मण्डली (1924) 3. चिनगरियाँ (1925) 4. इन्द्रधनुष 5. घोड़े की कहानी 6. बलात्कार (1927) 7. निर्लज्जा (1929) 8. दोजख की आग (1929) 9. क्रांतिकारी कहानियाँ (1939) 10. उग्र का हास्य (1939) 11. गल्पांजलि 12. रेशमी (1942) पंजाब की महारानी (1943) जब सारा आलम सोता है (1951)

चंद्रगुप्त विद्यालंकार -

1. चंद्रकला (1929)

प्रमुख तथ्य -

- 'सुदर्शन' की कहानियों में सुधारवादी दृष्टिकोण और अंतर्द्वद्व की प्रधानता है।
- 'पाण्डेय बेचन शर्मा' 'उग्र' की कहानियों में अनाचार एवं कुरीतियों के प्रति आक्रोश दिखाई देता है।
- नंददुलारे वाजपेयी ने 'उग्र' को हिन्दी का प्रथम राजनीतिक कहानीकार माना है।
- 'उग्र' की 'चिन्गारियाँ (1925) कहानी-संग्रह अपने क्रांतिकारी विचारों के कारण ब्रिटिश सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया था।
- निराला की 'सखी' कहानी 1925 ई. में 'चतुरी चमार' के नाम से प्रकाशित हुई।

प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी कहानी

प्रेमचंद-युग के अंतिम चरण के सर्वाधिक समर्थ कहानिकारों में जैनेन्द्र कुमार, इलाचन्द जोशी, यशपाल, अज्ञेय और 'अश्क' महत्त्वपूर्ण है।

- जैनेन्द्र की कहानियों में चरित्र वैशिष्ट्य, मानसिक द्वन्द्व, स्त्री-पुरुष के संबंधों को लेकर सूक्ष्म एवं गहन स्तरों का स्पर्श आदि का चित्रण मिलता है।
- जैनेन्द्र ने कहानियों के माध्यम से पहली बार हिन्दी साहित्य में 'व्यक्ति' को स्थान मिला।
- जैनेन्द्र जी बाह्य जीवन-यथार्थ को महत्त्व नहीं देते। वे मन स्थिति में ही परिस्थिति को भी संश्लिष्ट मानते है।

प्रमुख कहानियाँ - 1. स्पर्धा, 2. पत्नी, 3. एक कैदी, 4. गदर के बाद, 5. बाहुबली, 6. तत्सम् 7. लाल सरोवर 8. जान्ह्वी

यशपाल (1903-1976 ई.)

- यशपाल जी को मार्क्सवादी दृष्टिकोण से सामाजिक यथार्थ को प्रस्तुत करते हैं।

प्रमुख कहानी-संग्रह -

1. पिंजरे की उडान (1939) ई. 2. ज्ञानदान (1943) 3. अभिशप्त (1943) 4. तर्क का तूफान (1944) 5. भस्मावृत चिनगारी (1946) 6. वो दुनिया (1948) 7. फूलों का कुर्ता (1949 ई.) 8. धर्मयुद्ध (1950 ई.) 9. उत्तराधिकारी (1951) 10. चित्र का शीर्षक (1951 ई.) 11. उत्तमी की माँ (1955) 12. तुमने क्यों कहा मैं सुन्दर हूँ (1954) 13. सच बोलने की भूल (1962) 14. खच्चर और आदमी (1965) 15. भूख के तीन दिन (1968 ई.) आदि।

प्रमुख कहानियाँ - (1) साग (2) मनु की लगाम (3) धर्मरक्षा (4) ज्ञानदान (5) प्रतिष्ठा का बोझ (6) दूसरी नाक आदि

इलाचन्द जोशी (1902-1982 ई.)

- इलाचन्द जोशी जी कथा-साहित्य में मनोविश्लेषण की एक विशिष्ट धारा के प्रवर्तक के रूप में प्रसिद्ध है।
- जोशी जी ने अपने कहानियों में दमित कामवासना, तज्जनित मानसिक विकृति, एवं दमित काम-ग्रन्थि के आधार को स्पष्ट करते हुए व्यक्ति के मानसिक उन्नयन पर बल देते है।

जोशी जी की प्रमुख कहानी-संग्रह -

1. धूपरेखा (1938 ई.) 2. दीवाली और होली (1942 ई.) 3. रोमांटिक छाया (1943) 4. आहुति (1945 ई.) 5. खण्डहर की आत्माएँ (1948 ई.) 6. डायरी के नीरस पृष्ठ (1951 ई.) 7. कंटीले फूल लजीले कांटे (1957 ई.) आदि।

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्सायन 'अज्ञेय' (1911-1987 ई.)

- 'अज्ञेय' वैज्ञानिक यथार्थ में विश्वास करने के कारण विविध स्तरों पर व्यक्ति को देखते परखते है।
- 'अज्ञेय' ने बदलते हुए संदर्भो में नये नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों को प्रतिष्ठित करने की चेष्टा की।
- 'अज्ञेय' की दृष्टि में नैतिक और सामाजिक मूल्यों का निर्णायक 'व्यक्ति' ही है।

अज्ञेय के प्रमुख कहानी-संग्रह -

1. विपथगा (1937) 2. परंपरा (1940) 3. अमरवल्लरी (1945) 4. कोठरी की बात (1945) 5. शरणार्थी (1948) 6. जयदोल (1951) 7. ये तेरे प्रतिरूप (1961)

प्रमुख कहानियाँ -1. होलीबोन की बत्तखें 2. मेजर चौधरी की वापसी 3. कड़ियाँ 4. अमरवल्लरी 5. मैना 6. सिगनेलर 7. रोज आदि

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' (1910-1996 ई.)

- 'अश्क' प्रारंभ से ही यथार्थवादी के कलाकार रहे है। उन्होंने निम्न मध्यवर्ग के जीवन को अपना कथा-विषय बनाया।

प्रमुख कहानी-संग्रह -

1. पिंजरा (1944) 2. अंकुर (1945) 3. छीटें (1949) 4. बैंगन का पौधा (1954) 5. सत्तर श्रेष्ठ कहानियाँ 6. पलंग (1961) 7. आकाशचारी (1966)

प्रमुख कहानियाँ - 1. अंकुर 2. नासूर 3. डाची 4. पिंजरा 5. गोखरू आदि।
अन्य प्रमुख कहानीकार एवं कहानी-संग्रह

कहानीकार
कहानी-संग्रह

विष्णु प्रभाकर
1.आदि और अंत (1945) 2. रहमान का बेटा (1947) 3. जिन्दगी के थपेड़ें (1952) 4. धरती अब भी घूम रही है (1970) 5. साँचे और कला (1962) 6. पुल टूटने से पहले (1977) 7. मेरा वतन (1980) 8. खिलौने (1981) 9. एक और कुंती (1985) 10. जिन्दगी एक रिहर्सल (1981) 11. आसमान के नीचे (1989) 12. कप! और आदमी (1994) 13. आखिर क्यों (1998) 14. मैं नारी हूँ (2001) 15. जीवन का एक और नाम (2002) 16. ईश्वर का चेहरा (2003)

अमृतलाल नागर
1. एक दिन हजार अफसाने (1986).

अमृतराय
1. जीवन के पहलू (1947) 2. शतिरंगे कफ़न (1948) 3. इतिहास

रांगेय राघव
1. साम्राज्य का वैभव (1947) 2. समुद्र के फेन (1947) 3. देवदासी (1947) 4. जीवन के दाने (1949) 5. अधूरी मूरत (1949) 6. अंगारे न बुझे (1951) 7. इंसान पैदा हुआ (1951)

समकालीन कहानी (नयी कहानी)

- सन् 1960 ई. से 'नयी कहानियाँ' नामक पत्रिका श्री भैरवप्रसाद गुप्त के संपादकत्व में दिल्ली से प्रकाशित होने लगी।
- 'नयी कहानी को प्रतिष्ठित करने का श्रेय मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर को है
- नामवर सिंह ने 'परिन्दे' को हिन्दी की पहली नयी कहानी माना हैं
- 'नयी कहानी' की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

1. जटिल यथार्थ की व्यापक स्वीकृति
2. आधुनिकता बोध
3. व्यक्ति की प्रतिष्ठा
4. मध्यवर्गीय जीवन चेतना
5. छिछली भावुकता का अभाव
6. सांकेतिकता समकालीन कहानीकार एवं कहानी-संग्रह भीष्म साहनी (1915-2003)
    - भीष्म साहनी प्रगतिशील जीवन दृष्टि के लिए प्रख्यात हैं
    - सत्ता और व्यवस्था के खोखलेपन को साहनी जी ने सहजता और निर्भिकता से उधेडा है।

- वे यथार्थ के कुरूप चेहरे के भीतर निहित मानवीय मूल्यों के सौन्दर्य को रेखांकित करने में दक्ष है।

प्रमुख कहानियाँ - 1. चीफ की दावत, 2. अमृतसर आ गया, 3. त्रास, 4. ओ हरामजादे 5. वाचू

मुक्तिबोध

- कविताओं की भाँति अपनी कहानियों में भी मुक्तिबोध ने फंतासी शिल्प का प्रयोग किया है।

प्रमुख कहानियाँ - 1. नयी जिन्दगी 2. काठ का सपना 3. जलना 4. पक्षी और दीमक 5. विपात्र 6. क्लाड ईथरली आदि।

- 'क्लॉड ईथरली' कहानी में मुक्तिबोध ने अणु युद्ध का विरोध करने वाली आत्मा की आवाज को प्रस्तुत किया है और पूरी कहानी को अवचेतन के अंधेरे तहखाने में पड़ी हुई आत्मा के विद्रोह की कहानी बना दिया है।

भैरव प्रसाद गुप्त (1918-1995 ई.)

- गुप्त जी के संपादकत्व में 'कहानी नव वर्षांक-1956' प्रकाशित हुआ था।
- गुप्त जी मार्क्सवादी जीवन दृष्टि के प्रतिबद्ध लेखक है। उन्होंने अपनी कहानियों में समाज के दुर्बल ओर शोषित वर्ग की समस्याओं का चित्रण किया है।

प्रमुख कहानी-संग्रह

1. मुहब्बत की राहें (1945) 2. फरिश्ता (1946) 3. बिगड़े हुए दिमाग (1948) 4. इंसान (1950) 5. सितार के तार (1951) 6. बलिदान की कहानियाँ (1951) 7. मंजिल (1951) 8. महफिल (1958) 9. सपने का अंत (1961) 10. आँखों का सवाल (1965) 11. मंगली की टिकुली (1982) 12. आप क्या कर रहे हैं (1983)

हरिशंकर परसाई (1924-1995 ई.) .

(1) हँसते है रोते है (2) जैसे उनके दिन फिरे (3) भोलाराम का जीव

अमरकांत (1925-2013 ई.)

- अमरकांत मुख्य रूप से निम्न मध्यवर्ग के जीवन संदर्भो से अपनी कहानियों की सामग्री ली है।

प्रमुख कहानियाँ - 1. जिन्दगी और जोंक 2. दोपहर का भोजन 3. डिप्टी कल्क्टरी 4. लोक परलोक

मोहन राकेश (1925-1972 ई.)

- मोहन राकेश 'नयी कहानी' के प्रवर्तकों में से एक है।
- मोहन राकेश ने संबंधी की यंत्रणा, महानगरीय जीवन की यांत्रिकता और उसके दबाव से व्यक्ति के अकेले पडते जाने की मानसिकता का चित्रण, व्यवस्था के खोखलेपन पर प्रहार और विभाजन की त्रासदी का चित्रण किया है।

प्रमुख कहानियाँ - मलबे का मालिक, आर्द्रा, मिस पाल, सेफ्टी पिन राजेन्द्र यादव (1929-2013 ई.)

- राजेन्द्र यादव 'नयी कहानी' के प्रवर्तकों में है।
- . राजेन्द्र यादव ने अपनी कहानियों में मध्यवर्ग के जीवन में बनते बिगड़ते जुडते-टूटते रिश्तों और उनसे उत्पन्न तनाव को महत्त्व दिया हैं।

प्रमुख कहानियाँ - अपने पार, अनुपस्थिति संबोधन, मेहमान
कमलेश्वर (1932-2007)

- कमलेश्वर 'नयी कहानी' के पुरोधाओं में से एक है।
- . 1972 ई. कमलेश्वर ने 'समांतर कहानी' आन्दोलन चलाया।

प्रमुख कहानियाँ- 1. राजा निरबसिया 2. खोई हुई दिशाएँ 3. मांस का दरिया
4. जार्ज पंचम की नाक 5. अपना एकांत 6. मानसरोवर के हंस 7. इतने अच्छे दिन 8. नीली झील 9. एक अश्लील कहानी 10. देवी की माँ

- 'नयी कहानी' के व्रती लेखकों-मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर में कमलेश्वर ही ऐसे है, जिन्होंने सामाजिक विसंगतियों, टूटते हुए जीवन-मूल्यों, बढ़ते हुए भ्रष्टाचार और व्यक्ति के अमानवीकरण को वाणी देने का निरंतर प्रयत्न किया है।

धर्मवीर भारती (1926-1997)
धर्मवीर भारती आधुनिकता बोध के सूत्रों से बौद्धिक स्तर पर बखूबी परिचित है, किन्तु संवेदना के स्तर पर रोमानी संस्कारों से मुक्त नहीं हो सकें। उनकी कहानियों में निम्नमध्यवर्गीय जीवन की मानसिकता का अच्छा चित्रण मिलता है।

कहानी-संग्रह -
1. मुर्दो का गांव (1946) 2. स्वर्ग और पृथ्वी (1949) 3. चाँद और टूटे हुए लोग (1955) 4. बंद गली का आखिरी मकान (1969)

प्रमुख कहानियाँ - 1. गुलकी बन्नो 2. सावित्री नं.-2 लक्ष्मीनारायण लाल (1927-1987)

इनकी कहानियाँ में अवध के गाँव, पक्षी, पशु, पेड, नदियाँ, खेत-खलिहान, त्यौहार, गीत आदि भी सजीव होकर साकार हो गये है।

कहानी संग्रह

1. सूने आँगन रस बरसै (1960) 2. नये स्वर नये रेखाएँ (1962) 3. एक बूंद जल (1964) 4. एक और कहानी (1964) 5. डाकू आये थे (1974)

निर्मल वर्मा (1929-2005)

- निर्मल वर्मा के पहले कहानी संग्रह 'परिन्दे' (1960 ई.) को डॉ. नामवर सिंह ने 'नयी कहानी' की पहली कृति माना है।
- 'परिन्दे' संग्रह की समीक्षा करते हुए नामवर सिंह ने कहा था -

"स्वतंत्रता या मुक्ति का प्रश्न, जो समकालीन विश्व का मुख्य प्रश्न बन चला है, निर्मल वर्मा की कहानियों में अलग-अलग कोण से उठाया गया है।"

फणीश्वर नाथ रेणु (1921-1977)

रेणु 'नयी कहानी' के दौर में ग्राम-अंचल की विशिष्ट, ताजी और जीवंत अनुभूति लेकर आने वाले रचनाकारों में अन्यतम रहे है।

प्रमुख कहानी - 1. तीसरी कलम उर्फ मारे गये गुलफाम, 2. रसप्रिया, 3. ठुमरी, 4. अग्निखोर, 5. आदिम रात्रि की महक आदि

अन्य प्रमुख कहानीकार एवं कहानी-संग्रह

शिवप्रसाद सिंह (1929-1998)
1. आर पार की माला (1955) 2. कर्मनाशा की हार (1958) 3. इन्हें भी इंतजार है (1961) 4. मुर्दा सराय (1966) 5. अंधेरा हँसता है (1975) 6. भेडिया (1977)

कृष्ण बलदेव वैद (1927)
1. बीच का दरवाजा (1963) 2. मेरा दुश्मन (1966) 3. दूसरे किनारे से (1970) 4. लापता (1974) 5. उसका बयान (1974) 6. वह और मैं (1978) 7. लीला और अन्य कहानियाँ (1993 ई.) 8. पिता की परछाईयाँ (1997) 9. बदचलन बीबीयों का द्वीप (2000) (10) बोधिसत्व की बीबी (2002)

प्रमुख कहानियों -1. अगर मैं आज 2. उडान 3. जामुन की गुठली 4. एक बदसूरत गली 5. टुकड़े 6. खामोशी 7. भाई की महिमा 8. एक था विमल 9. कुतुबमीनार छोटा सा 10. शैडोज आदि ।

मारकण्डेय (1932-2010)

1. पान फूल (1954 ई.) 2. पत्थर और परछाइयाँ (1956) 3. महुए का पेड (1957) 4. हंसा जाई अकेला (1957 ई.) 5. भूदान (1958) 6. माही (1962) 7. बीच के लोग (1975 ई.)

रघुवीर सहाय (1929-1990)

1. सीढ़ियों पर धूप में (1960) 2. रास्ता इधर से है (1972) 3. जो आदमी हम बना रहे है (1982 ई.)

प्रमुख कहानियाँ- 1. सेब, 2. मेरे और नंगी औरत के बीच, 3. मुठभेड, 4. तीन मिनट

गंगा प्रसाद विमल (1939 ई.)

- गंगा प्रसाद विमल 'अ-कहानी' आन्दोलन के पुरस्कारों माने जाते है।

कहानी संग्रह -

1. विध्वंस (1965) 2. शहर में (1966) 3. बीच की दरार (1968) 4. अतीत में कुछ (1972) 5. कोई शुरूआत (1973) 6. खोई हुई थाती (1995)।

रमेश बक्षी (1936-1992 ई.)

1. मेज पर टिकी हुई कुहनियाँ (1963) 2. एक अमूर्त तकलीफ (1968 ई.) 3. तलघर (1969 ई.) 4. सजा (1970) 5. पिता दर पिता (1971) 6. शवासन (1980) 7. रक्तचाप (1983) 8. खाली जेब (1988) 9. टुकड़े-टुकड़े (1988)।

रवीन्द्र कालिया (1938-2016)

1. नौ साल छोटी पत्नी (1969) 2. काला रजिस्टर (1972) 3. गरीबी हटाओ (1976) 4. गली कुचे (1976) 5. चकैया नीम (1979) 6. बाँके लाल (1982) 7. राग मिलावट मालकौष (1985) 8. सत्ताइस साल की उमर तक (1987) 9. जरा सी रोशनी (2002)

शैलेष मटियानी (1931-2001)

1. दो दुखों का एक सुख (1961) 2. सुहागिनी तथा अन्य कहानियाँ (1966) 3. हारा हुआ (1970) 4. तीसरा सुख (1972) 5. महाभोज (1975) 6. चील (1976) 7. कोहरा (1980) 8. अहिंसा (1987) 9. नाच जमूरे नाच (1989) 10. नदी किनारे का गाँव (1992)

रामदरश मिश्र (1924 ई.)

1. खाली घर (1969 ई.) 2. एक वह (1974) 3. दिनचर्या (1979) 4. सर्पदंश (1982) 5. बसंत का एक दिन (1982) 6. अपने लिए (1992) 7. आज का दिन भी (1996) 8. एक कहानी लगातार (1997) 9. फिर कब आयेंगे (1998) 10. विदूषक (2002 ई.) 11. स्वप्न भंग (2013 ई.)

शेखर जोशी (1932 ई.)
1. कोसी का घटवार (1958) 2. साथ के लोग (1978) 3. हलवाहा (1981) 4. मेरा पहाङ (1989) 5. नौरंगी बीमार है (1990) 6. डाँगरी वाले (1994) 7. बच्चे का सपना (2004) 8. आदमी का डर (2011)

प्रमुख कहानियाँ - दाज्यू (1953 पहली कहानी), कोसी का घटवार (1958), समर्पण (1961), मृत्यु (1961), दौङ (1965), रास्ते (1965), बदबू, साथ के लोग (1967) आदि।

हिमांशु जोशी (1935 ई.)
1. अन्ततः (1965) 2. रथचक्र (1975) 3. मनुष्य चिह्न (1976) 4. जलते हुए डैने (1980) 5. सागर तट के शहर (2005)

काशीनाथ सिंह (1936 ई.-2017 ई.)
1. लोग बिस्तरों पर (1968) 2 सुबह पर डर (1975) 3. आदमीनामा (1978) 4. नयी तारीख (1979) 5. कल की फटेहाल कहानियाँ (1980) 6. सदी का सबसे बड़ा आदमी (1986) 7. कविता की नई तारीख (2010) 8. खरोंच (2014)

दूधनाथ सिंह (1936 ई.)
1. सपाट चेहरे वाला आदमी (1967 ई.) 2. सुखांत (1971) 3. पहला कदम (1976) 4. माई का शोक गीत (1992) 5. नमो अंधकारः (1998) 6. धर्मक्षेत्रे करूक्षेत्रे (2002) 7. निष्कासन (2002) 8. तू फू (2011) 9. जलमुर्गियों का शिकार (2015)

प्रमुख कहानियाँ - 1. विजेता, 2. कबन्ध 3. रीछ 4. सुखान्त 5. प्रतिशोध आदि।

ज्ञानरंजन (1937 ई.)
1. फेंस के इधर उधर (1968) 2. यात्रा (1971) 3. क्षण जीवी (1977) 4. सपना नहीं (1977)

जगदीश चतुर्वेदी (1933-2015)
1. जीवन का संघर्ष (1954) 2. निहंग (1973) 3. अंधेरे का आदमी (1980) 4. विवर्त (1981) 5. डेलिया का फूल (1995) 6. आदिम गन्ध (1995)

गिरिराज किशोर (1937 ई.)

1. चार मोती बेआब (1963) 2. नीम के फूल (1964) 3. पेपरवेट (1967) 4. रिश्ता और अन्य कहानियाँ (1969) 5. शहर दर शहर (1976) 6. हम प्यार कर लें (1980) 7. जगत्तारनी और अन्य कहानियाँ (1981) 8. गाना बड़े गुलाम अली खाँ (1985) 9. वल्दरोजी (1989) 10. यह देह किसी है (1990) 11. आन्द्रे की प्रेमिका तथा अन्य कहानियाँ (1995) 12. हमारे मालिक सबके मालिक (2003) 13. दुश्मन और दुश्मन (2010)

रमेशचन्द्र शाह (1937 ई.)
1. जंगल में आग (1979) 2. मुहल्ले का रावण (1982) 3. मानपत्र (1992) 4. थियेटर (1998)

गोविन्द मिश्र (1939 ई.)
1. नये पुराने माँ बाप (1973) 2. अन्तःपुर (1976) 3. रगङ खाती आत्माएं (1978) 4. धाँसू (1978) 5. अपाहिज (1980) 6. खुद के खिलाफ (1981) 7. खाक इतिहास (1984) 8. पगला बाबा (1987) 9. आसमान कितना नीला (1992) 10. हवाबाज (1998) 11. मुझे बाहर निकालो (2004) 12. नये सिरे से (2013 ई.)

महीप सिंह (1930-2015 ई.)
1. सुबह के फूल (1959 ई.) 2. उजाले के उल्लू (1964) 3. घिराव (1968) 4. कुछ और कितना (1973 ई.) 5. कितने संबंध (1979) 6. दिल्ली कहाँ है (1985) 7. धूप की उँगलियों के निशान (1992) 8. सहमे हुए (1998) 9. ऐसा ही है (2002)

- महीप सिंह 'सचेतन कहानी' आन्दोलन के पुरस्कर्ता के रूप में ख्यात है।
- महीप सिंह की कहानियाँ तीन खण्डों में पहला 'सुबह की महक' दूसरा 'क्षणों का संकट' तीसरा 'सुबह का सन्नाटा (2000) में प्रकाशित किया गया है।

हृदयेश (1930 ई.)
1. छोटे शहर के लोग (1972) 2. अँधेरे गली का रास्ता (1977) 3. इतिहास (1981) 4. उत्तराधिकारी (1981) 5. अमरकथा (1984) 6. नागरिक (1992) 7. रामलीला तथा अन्य कहानियाँ (1993) 8. सम्मान (1996) 9. सन् उन्नीस सौ बीस (1999) 10. उसी जंगल समय में (2004) 1. कथा एक नामी घराने की (2015)

कामतानाथ (1935-2012)
1. छुट्टियाँ (1977) 2. तीसरी साँस (1977) 3. सब ठीक हो जाएगा (1983) 4. शिकस्त (1992) 5. रिश्तेनाते (1998 ई.)

विवेकीराय (1924-2017 ई.)

1. जीवन परिधि (1952) 2. नयी कोयल (1975) 3. गूंगा जहाज (1977 ई.) 4. बेटे की बिक्री (1981) 5. कालातीत (1982) 6. चित्रकूट के घाट पर (1988) 7. सर्कस (2005)

संजीव (1947 ई.)

1. तीस साल का सफरनामा (1981) 2. भूमिका तथा अन्य कहानियाँ (1987 ई.) 3. प्रेतमुक्ति (1991) 4. दुनिया की सबसे हसीन औरत (1993) 5. प्रेरणास्रोत तथा अन्य कहानियाँ (1995) 6. ब्लैक होल (1997) 7. खोज (1999) 8. गति का पहला सिद्धान्त (2004) 9. गुफा का आदमी (2006) 10. गली के मोड़ पे सूना सा कोई दरवाजा (2008) 11. झूठी है तेरी दादी (2011) 12. गैर इरादतन हत्या उर्फ मृत्यु पूर्व का इकबालिया बयान (2015 ई.)

शानी (1933-1995)

1. बबूल की छाँव (1958) 2. डाली नहीं फूलती (1959) 3. छोटे घेरे का विद्रोह (1964) 4. शर्त का क्या हुआ (1975) 5. बिरादरी तथा अन्य कहानियाँ (1978) 6. सड़क पार करते हुए (1979)

राकेश वत्स

1. अतिरिक्त तथा अन्य कहानियाँ (1970) 2. अंतिम प्रजापति (1975) 3. अभियुक्त (1979) 4. शुरूआत (1980) 5. एक बुद्ध और (1986)

मिथिलेश्वर (1950 ई.)

1. बाबू जी (1976) 2. बंद रास्तों के बीच (1978) 3. दूसरा महाभारत (1979) 4. मेघना का निर्णय (1980) 5. गाँव के लोग (1981) 6. विग्रह बाबू (1982) 7. तिरिया जनम (1982) 8. हरिहर काका (1983) 9. माटी की महक धरती गाँव की (1987) 10. एक में अनेक (1987) 11. एक थे प्रो. बी लाल (1993) 12. भोर होने से पहले (1994) 13. चल खुसरो घर आपने (2000) 14. जमुनी (2001)

सेवाराम यात्री (1933 ई.)

1. जीनियस की दुम 2. अनासक्त 3. दूसरे चेहरे (1971) 4. अलग-अलग अस्वीकार (1973) 5. काल विदूषक (1976) 6. धरातल (1977) 7. केवल पिता (1978) 8. अकर्मक क्रिया (1981) 9. खंडित संवाद (2009)

बादशाह हुसैन रिजवी (1937 ई.)

1. टूटता हुआ भय (1986) 2. पीड़ा गनेसिया की (1994) 3. चार मेहराबों वाली ढालान (2006)

धीरेन्द्र आस्थाना (1956 ई.)

1. लोग हाशिये पर (1980 ई.) 2. आदमीखोर (1982) 3. मुहिम (1984) 4. खुल जा सिम सिम 5. विचित्र देश की प्रेम कथा (1988) 6. जो मारे जायेंगे (1900)

बदी उज्जमाँ (1928-1986)

1. अनित्य (1970) 2. पुल टूटते हुए (1973) 3. चौथा ब्राह्मण (1976)

विजय मोहन सिंह (1936-2015)

1. टटू सवार (1971) 2. एक बंगला बने न्यारा (1982) 3. शेरपुर पंद्रह मील (1995) 4. गमे हस्ती का हो किससे (2000) 5. चाय के प्याले में गेंद (2012)

अब्दुल बिस्मिल्लाह (1949 ई.)

1. टूटा हुआ पंख (1981) 2. कितने कितने सवाल (1984) 3. रैन बसेरा (1989) 4. अतिथि देवो भवः (1990) 5. रफ रफ मेल (2000) 6. शादी का जोकर (2013 ई.)

नरेन्द्र कोहली (1940)

1. परिणति (1969) 2. कहानी का अभाव (1977) 3. दृष्टि देश में एकाएक (1979) 4. संबंध (1980) 5. शटल (1982) 6. नमक का कैदी (1983) 7. निचले फ्लैट में (1984) 8. संचित भूख (1985 ई.)

मधुकर सिंह (1935-2014 ई.)

1. पूरा सन्नाटा (1971) 2. भाई का जन्म (1975) 3. अगुन कापड पाठशाला (1978) 4. पहला पाठ (1979) 5. भाई (1983) 6. हरिजन सेवक (1984) 7. आषाढ़ का पहला दिन (1988) 8. माइकल जैक्सन की टोपी 9. लहु पुकारे आदमी 10. मनबोध बाबू 11. अनहद बाजे ढोल

बटरोही (1946)

1. दिवास्वप्न (1978) 2. सडक का भूगोल (1985) 3. आगे के पीछे (1989) 4. अनाथ मुहल्ले के तुल दा (1990) 5. हिडिम्बा के गाँव में (2000 ई.)

उदय प्रकाश (1952 ई.)

1. दरियाई घोडा 2. तिरिछ (1989 ई.) 3. और अंत में प्रार्थना (1994) 4. पालगोमरा का स्कूटर (1997) 5. पीली छतरी वाली लडकी (2001) 6. दत्तात्रेय का दुःख (2002) 7. मोहनदास (2006)

रमेश उपाध्याय (1942 ई.)

1. जमी हुई झील (1969) 2. शेष इतिहास (1973) 3. नदी के साथ (1976) 4. चतुर्दिक (1980) 5. पैदल अंधेरे में (1981) 6. बदलाव से पहले (1981) 7. राष्ट्रीय राजमार्ग (1984) 8. किसी देश के किसी शहर में (1987) 9. कहाँ हो प्यारे लाल (1991) 10. अर्थतन्त्र तथा अन्य कहानियाँ (1996) 11. डॉक्यू ड्रामा तथा कहानियाँ (2008) 12. एक घर की डायरी (2013 ई.) 13. त्रासदी भाई फुट (2014 ई.)

योगेश कुमार

1. परामर्श (1986 ई.) 2. मिथ्याचक्र (1987 ई.

स्वयं प्रकाश (1947 ई.)
1. मात्रा और भार (1974) 2. सूरज कब निकलेगा (1980) 3. आसमाँ कैसे कैसे (1982) 4. अगली किताब (1988) 5. आयेंगे अच्छे दिन भी (1991) 6. आदमी जात का आदमी (1994) 7. अगले जन्म (2002) 8. सन्धान (2006) 9. छोटू उस्ताद (2015)

शिवमूर्ति (1950 ई.)
1. कसाईबाडा (1980) 2. भरतनाट्यम 3. सिरी उपमा जोग 4. तिरिया चरित्तर 5. केशर कस्तूरी (1991 ई.)

रामदेव शुक्ल (1938 ई.)
1. उजली हँसी की वापसी (2002) 2. पतिव्रता (2002) 3. माटी बाबा की कहानी (2005) 4. नीलामघर (2006) 5. अपहरण (2014)

रामधारी सिंह "दिवाकर' (1954 ई.)
1. नये गाँव में 2. अलग-अलग अपरिचय (1981) 3. बीच से टूटा हुआ 4. नया घर चढ़े (1987) 5. सरहद के पार (1990) 6. धरातल (1997) 7. मखान पोखर (1998) 8. माटी पानी (1999) 9. झूठी कहानी का सच (2010) 10. हडताली मोड (2013 ई.)

असगर वजाहत (1946 ई.)
1. दिल्ली पहुँचना है 2. स्वीमिंग पुल 3. मैं हिन्दू हूँ (2006 ई.) 4. डर और अन्य कहानियाँ (2006 ई.) 5. डेमोक्रेसिया (2013)

अरूण प्रकाश (1948-2012 ई.)
1. भैया एक्सप्रेस (1992) 2. जल प्रांतर (1994) 3. मझधार किनारे (1996) 4. उस रात का दुःख 5. लाखों के बोल सहे (1995) 6. विषय राग (2003) 7. स्वप्न धार (2006 ई.)

मंजूर एहतेशाम (1948 ई.)
1. रमजान में एक मौत (1982) 2. तसबीह (1998) 3. तमाशा (2001)

ज्ञान प्रकाश विवेक (1949 ई.)
1. अलग-अलग दिशायें (1983) 2. जोसफ चला गया (1986) 3. शहर गवाह है (1989) 4. पिताजी चुप रहते है (1991) 5. उसकी जमीन (1993) 6. शिकारगाह (2003) 7. सेवा नगर कहाँ है (2007) 8. मुसाफिरखाना (2007) 9. बदली हुई दुनिया (2009) 10. कालखण्ड (2015 ई.)

शैवाल (1949 ई.)

1. समुद्रगाथा 2. मरू यात्रा (1999) 3. सुप्रभा के घर में घोडा (1999) 4. दामुल और अन्य कहानियाँ 5. अरण्यगाथा (2000) 6. यहाँ कोई गुलमोहर नहीं है (2004) 7. कथा नायिकाएँ (2012 ई.)

क्षितिज शर्मा (1950)

1. ताला बन्द है 2. समय कम है 3. गोरख धन्धा (2009) 4. ढाक के तीन पात (2011 ई.)

तेजेन्द्र शर्मा

1. काला सागर (1990) 2. ढिबरी टाईट (1994) 3. देह की कीमत (1999) 4. यह क्या हो गया (2003) 5. बेघर आखें (2007) 6. दीवार में रास्ता (2014 ई.) 7. सीधी रेखा की परतें (2014 ई.) 8. सपने मरते नहीं (2015 ई.)

प्रियंवद (1952 ई.)

1. एक अपवित्र पेड (1995) 2. खरगोश (1999) 3. फाल्गुन की एक उपकथा (2003)

कृष्ण बिहारी (1954 ई.)

1. दो औरतें (2007) 2. पूरी हकीकत पूरा फसाना (2009) 3. इन्तजार (2009) 4. दो औरतें और तीन कहानियाँ (2011) 5. श्वेत स्याम रतनार (2011) 6. उसका चेहरा (2014 ई.)

अनन्त कुमार सिंह (1955 ई.)

1. चौराहे पर (1992) 2. और लाटूर गुम हो गया (1997) 3. राग भैरवी (2002) 4. तुम्हारी तस्वीर नहीं है यह (2003) 5. कठफोडता तथा अन्य कहानियाँ (2007) 6. ब्रेकिंग न्यूज (2003 ई.)

जयनंदन (1956 ई.)

1. सन्नाटा भंग (1993 ई.) 2. विश्वबाजार का ऊँट (1997) 3. एक अकेले गान्ही जी (2001) 4. कस्तूरी पहचानो मृग (2001) 5. सूखते स्त्रोत (2003) 6. घर फूंक तमाशा (2004) 7. गाँव की सिसकियाँ (2012 ई.) 8. भीतरघात (2013 ई.) 9. सेराज बैण्डवाला (2015 ई.)

अखिलेश (1960 ई.)

1. आदमी नहीं टूटता (1983) 2. मुक्ति (1989) 3. शापग्रस्त (1997) 4. अंधेरा (2006 ई.)

भगवानदास मोरवाल (1960 ई.)

1. सिला हुआ आदमी (1986 ई.) 2. सूर्यास्त से पहले (1990) 3. असली मॉडल उर्फ सूबेदार (1994) 4. सीढ़ियाँ 5. माँ और उसका देवता (2008) 6. लक्ष्मण रेखा (2010 ई.)

राघवेन्द्र नारायण सिंह (1960)

1. प्लीज बिहेव योरसेल्फ (2010 ई.) 2. मिट्टी का मकान (2012) 3. एक दार्शनिक की चूक (2015 ई.)

सुंजय (1961 ई.)
1. कामरेड का कोट (1993) 2. नंगा (2001)

कमलाकांत त्रिपाठी
1. जानकी बुआ (1993) 2. अंतराल (2001)

ओमा शर्मा (1963 ई.)
1. भविष्य द्रष्टा (2002 ई.) 2. कारोबार (2008) 3. शुभारम्भ और अन्य कहानियाँ (2015 ई.)

प्रियदर्शन (1968 ई.)
1. उसके हिस्से का जादू (2007) 2. बारिश, धुआँ और दोस्त (2015)

प्रभात रंजन (1970 ई.)
1. जानकी पुल (2008 ई.)
पंकज सुबीर (1975 ई.)
1. ईस्ट इंडिया कंपनी (2010) 2. महुआ घटवारिन और अन्य कहानियाँ (2012 ई.)

मनोज कुमार पाण्डेय (1977 ई.) 1. शहतूत 2. पानी (2014)

तरूण भटनागर
1. गुलमेंहदी की झाडियाँ (2008 ई.) 2. भूगोल के दरवाजे पर (2014) 3. वादी मुल्तान और टच एण्ड गो (2016 ई.)

महिला कहानीकार -
सुभद्राकुमारी चौहान
1. बिखरे मोती (1932) 2. उन्मादिनी (1934 ई.)

सुमित्रा कुमारी सिन्हा
1. अचल सुहाग (1939 ई.) 2. वर्षगांठ (1942 ई.)

शिवरानी देवी
1. कौमुदी (1937 ई.)

चन्द्रकिरण सौनरेक्सा (1919-2009 ई.)
1. आदमखोर (1945 ई.)

शशिप्रभा शास्त्री (1923-2000 ई.)
1. धुली हुई शाम (1969 ई.) 2. अनुत्तरित (1975) 3. दो कहानियों के बीच (1978) 4. जोड बाकी (1981) 5. एक टुकड़ा शांतिरथ (1991 ई.) 6. पतझड (1994 ई.) 7. उस दिन भी (1996 ई.)

शिवानी (1923-2003 ई.)
1. लाल हवेली (1965 ई.) 2. पुष्पहार (1969) 3. अपराधिनी (1972 ई.) 4. रथ्या (1976) 5. स्वयंसिद्धा (1977) 6. रतिविलाप (1977) 7. पुष्पहार (1978)

कृष्णा सोबती (1925 ई.)
1. बादलों के घेरे (1980) 2. सिक्का बदला गया (प्रमुख कहानी)

दीप्ती खण्डेलवाल (1930 ई.)
1. कडवे सच (1975) 2. धूप के अहसास (1976) 3. वह तीसरा (1976) 4. सलीब पर (1977) 5. दो पल की छाँव (1978 ई.) 6. नारी मन (1979 ई.) 7. औरत और बातें (1980 ई.)

मन्नू भण्डारी (1931 ई.)
1. मैं हार गई (1957 ई.) 2. यही सच है (1966 ई.) 3. एक प्लेट सैलाब (1968) 4. निगाहों की एक तस्वीर (1968) 5. त्रिशंकु (1978 ई.)

प्रमुख कहानी - यही सच है, रानी माँ का चबूतरा

उषा प्रियंवदा (1931 ई.)
1. जिन्दगी और गुलाब के फूल (1961) 2. फिर बसन्त आया (1961) 3. एक कोई दूसरा (1966) 4. कितना बडा झूठ (1972)

मालती जोशी (1934 ई.)
1. मध्यांतर (1977) 2. पटाक्षेप (1978) 3. पराजय (1979) 4. एक घर सपनों का (1985) 5. विश्वास गाथा 6. शापित शैशव तथा अन्य कहानियाँ (1996) 7. पिया पीर न जानी (1999) 8. औरत एक रात है (2001) 9. रहिमन धागा प्रेम का 10. परख 11. वो तेरा घर ये मेरा घर 12. मिलियन डॉलर नोट तथा अन्य कहानियाँ 13. ऑनर किलिंग 14. स्नेह बंध तथा अन्य कहानियाँ (2015)

राजी सेठ (1935 ई.)
1. अन्धे मोड से आगे (1979) 2. तीसरी हथेली (1981) 3. यात्रामुक्त (1987) 4. दूसरे देश काल में (1992) 5. यह कहानी नहीं (1998) 6. गमे हयात ने मारा (2006)

कृष्णा अग्निहोत्री (1935)

1. टीन के घेरे (1970) 2. गलियारे (1974) 3. याही बनारसी रंग बा (1983) 4. जिन्दा आदमी (1986) 5. जै सियाराम (1993) 6. सर्पदंश (1997) 7. अपने-अपने कुरूक्षेत्र (2001) 8. यह क्या जगह है दोस्तों (2007) 9. जीना मरना (2010) 10. मान भी जा साँझी (2013) 11. कण्ठे जाणा (2015 ई.)

मंजुल भगत (1936-1998 ई.)

1. गुलमोहर के गुच्छे (1974) 2. टूटा हुआ इन्द्रधनुष (1976) 3. क्या छूट गया (1976) 4. आत्महत्या के पहले (1979) 5. कितना छोटा सफर (1979) 6. बावन पत्ते एक जोकर (1982) 7. सफेद कौआ (1986) 8. दूत (1992) 9. बूंद (1998 ई.) 10. अंतिम बयान (2001) मृदुला गर्ग (1938 ई.) 1. कितनी कैदें (1975) 2. टुकडा-टुकडा आदमी (1977) 3. डेफोडिल जल रहे हैं (1978) 4. ग्लेशियर से (1980) 5. उर्फ सैम (1986) 6. समागम (1996) 7. मेरे देश की मिट्टी अहा (2001)

प्रमुख कहानियाँ - 1. अगली सुबह 2. विनाशदूत 3. बेनकाब ।

चंद्रकांता (1938 ई.)

1. सलाखों के पीछे (1975) 2. गलत लोगों के बीच (1984) 3. पोशनूल की वापसी (1988) 4. दहलीज पर न्याय (1989 ई.) 5. ओ सोन किसरी (1991) 6. कोठे पर कागा (1993) 7. सूरज उगने तक (1994) 8. काली बर्फ (1996) 9. बदलते हालात में (2002) 10. अब्बू ने कहा था (2005) 11. अलकट राज देखा (2013 ई.)

ममता कालिया (1940)

1. छुटकारा (1969) 2. सीट नं. 6 (1978) 3. एक अदद औरत (1979) 4. प्रतिदिन (1983) 5. उसका यौवन (1985) 6. जाँच अभी जारी है (1990) 7. बोलने वाली (2000) 8. मुखौटा (2002) 9. निर्मोही (2006) 10. खुदकिस्मत (2010) 11. थोडा सा प्रगतिशील (2014 ई.)

चित्रा मुद्गल (1944 ई.)

1. जरा ठहरा हुआ (1980) 2. लाक्षागृह (1982) 3. अपनी वापसी (1983) 4. इस हमाम में एवं ग्यारह लंबी कहानियाँ (1987) 5. जगदम्बा बाबू गाँव रहे है (1992) 6. जिनावर (1996) 7. भूख (2001) 8. लपटें (2002) 9. पेंटिंग अकेली है (2014 ई.)

सुधा अरोडा (1946 ई.)

1. बगैर तरोशे हुए (1968 ई.) 2. युद्ध विराम (1977) 3. महानगर की मैथिली (1987) 4. काला शुक्रवार (2004) 5. एक औरत : तीन बटा चार 6. अन्नपूर्णा मण्डल की आखिरी चिट्ठी 7. बुत जब बोलते है (2015)

सूर्यबाला (1944 ई.)

1. एक इन्द्र धनुष जुबेदा के नाम (1977 ई.) 2. दिशाहीन मैं 3. थाली भर चाँद (1988 ई.) 4. मुडेर पर (1990) 5. साँझबाती (1995) 6. कात्यायनी संवाद (1996 ई.) 7. मानुष गंध (2005) 8. गौरा गुनवती (2010) 9. गैरहाजिरी के बावजूद (2014)

मेहरून्निसा परवेज (1944 ई.)

1. आदम और हव्वा (1972) 2. टहनियों पर धूप (1977) 3. फाल्गुनी (1978) 4. गलत पुरुष (1978) 5. अंतिम चढ़ाई (1982 ई.) 6. अम्मा (1977) 7. समर (1999 ई.) 8. लाल गुलाब (2006 ई.)

मृणाल पाण्डेय (1946 ई.)

1. दरम्यान (1977) 2. शब्दवेदी (1980) 3. एक नीच ट्रैजेडी (1981 ई.) 4. एक स्त्री का विदागीत (1983 ई.)

मणिका मोहिनी

1. खत्म होने के बाद (1972) 2. अभी तलाश जारी है (1976) 3. स्वप्नदंश (1978) 4. पारू ने कहा था (1979) 5. अपना-अपना सच (1982 ई.) 6. ढाई आखर प्रेम का (1983 ई.) 7. अन्वेषी (1986 ई.)

इन्दुबाली

1. टूटती जुड़ती (1981) 2. बिना छत का मकान (1983) 3. अँधेरे की लहर (1985) 4. बिखरती आकृतियाँ (1985 ई.) 5. दूसरी औरत होने का सुख कौन दिला दिया जाने (1986) 6. मेरी तीन मौंते (1991) 7. धरातल (1992) 8. चुभन (1993) 9. मैं खरगोश होना चाहती हूँ (1995 ई.) 10. पाँचवां युग (1997) 11. नहीं माँ नहीं (2008 ई.) 12. शिव नेत्र (2008 ई.)

कुसुम चतुर्वेदी

1. तीसरा यात्री (1997 ई.) 2. आंगन में उगी पौध (2000) 3. मेला उठने तक (2012 ई.)

ज्योत्सना मिलन (1941-2014 ई.)

1. चीख के आर-पार (1979) 2. खण्डहर तथा अन्य कहानियाँ (1982) 3. अँधेरे में इन्तजार (1966) 4. उम्मीद की दूसरी सूरत (2003 ई.)

मैत्रेयी पुष्पा (1944 ई)

1. चिन्हार (1991 ई.) 2 ललमनियाँ (1996 ई.) 3. गोमा हँसती है (1998 ई.)

नमिता सिंह (1944 ई.)

1. खुले आकाश के नीचे (1978 ई.) 2. राजा का चौक (1982) 3. नील गाय की आँखें (1990) 4. जंगल गाथा (1992 ई.) 5. निकम्पा लडका (1997) 6. मिशन जंगल और गिनीपत (2007 ई.)

कुसुम खेमानी (1944 ई.)
1. सच कहती कहानियाँ (2013 ई.) 2. अनुगूंज जिन्दगी की (2015 ई.) 3. अचम्भा प्रेम (2015 ई.)

कमल कुमार (1946 ई.)
1. पहचान (1984 ई.) 2. क्रमशः (1996 ई.) 3. फिर वहीं से शुरू (1998) 4. वैलेन्टाइन डे (2002 ई.) 5. घर बेघर (2006) 6. मदर मेरी और अन्य कहानियाँ (2014 ई.)

लता शर्मा (1947 ई.)
1. आखिरी नाम अल्लाह का (2003 ई.) 2. जिन दिन देखे वे कुसुम (2006) 3. देवता बोलते नहीं (2010 ई.) 4. नौ बार (2014 ई.)

क्षमा शर्मा (1955 ई.)
1. नेम प्लेट (2006) 2. रास्ता छोडो डार्लिंग (2010) 3. लडकी जो देखी पलट कर (2011 ई.) 4. इक्कीसवीं सदी का लडका

गीतांजलि श्री (1957 ई.)
1. अनुगूंज (1995 ई.) 2. वैराग्य (1999 ई.) 3. यहाँ हाथी रहते थे (2012 ई.)

मधु कांकरिया (1957 ई.)
1. अन्तहीन मरूस्थल (1999) 2. बीतते हुए (2004 ई.) 3. और अंत में ईशु (2006 ई.) 4. चिडिया ऐसे मरती है (2012) 5. भरी दोपहरी के अँधेरे (2013 ई.) 6. युद्ध और बुद्ध (2014 ई.)

मीराकांत (1958 ई.)
1. हाइफन 2. कागजी बुर्ज (2007 ई.) 3. गली दुलहिन वाली (2009),

लवलीन (1959-2009 ई.)
1. सलिल सागर कमीशन आया बनाम समाज सेवा जारी है (1977 ई.) 2. चक्रवात (1999 ई.)

नासिरा शर्मा (1948 ई.)
1. शामी कागज (1980 ई.) 2. पत्थर गली (1986 ई) 3. संगसार (1993 ई.) 4. इब्ने मरियम (1994) 5. सबीना के चालीस चोर (1907) 6. खुदा की वापसी (1998) 7. इन्सानी नस्ल (2001) 8. दूसरा ताजमहल (2002 ई.)

हिन्दी नाटक का विकास

'नाटक' शब्द 'नट' धातु से बना है, जिसका अर्थ है-'अभिनय' । 'नाटक' साहित्य की वह विद्या है जिसका परीक्षण रंगमंच पर होता है और रंगमंच युग विशेष की जनरूचि और तत्कालीन आर्थिक व्यवस्था पर निर्मित होता है। रंगमंचीय गत्यात्मकता ही नाटक का मूल मर्म है। कालिदास ने नाट्य प्रदर्शन को 'चाक्षुष यज्ञ' कहा है।

नाटक, साहित्य की प्राचीनतम विद्या है। एक ओर त्रासदी (नाटक का प्राचीनतम यूनानी रूप) पर प्लेटो और अरस्तु जैसे दार्शनिकों के विचार मौजूद है तो दूसरी ओर हमारे यहाँ भारतीय काव्यशास्त्र पर प्राचीनतम ग्रंथ 'भरत मुनि' कृत 'नाट्य शास्त्र' प्राप्त होता है। नाट्यशास्त्र में भरत मुनि ने कहा है-देवताओं के प्रार्थना करने पर ब्रह्म ने ऋग्वेद से पाठ, सामवेद से गान, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर पांचवे वेद के रूप में नाट्य वेद की रचना की। भरत मुनि ने नाटक की सृष्टि के मूल में लोक का दुख माना हैं

हिन्दी का प्राचीनतम् नाटक साहित्य जो मैथिली भाषा में मिलता है, महाकवि विद्यापति द्वारा रचित 'गोरक्ष-विजय' को माना जाता है।

डॉ. दशरथ ओझा ने अपने अनुसंधान द्वारा सिद्ध किया है कि हिन्दी का सर्वप्रथम उपलब्ध नाटक 'गय-सुकुमार रास है, जो सवंत् 1279 वि. में रचित है।

17 वीं और 18 वीं शती में कुछ ऐसे पद्य-बद्ध नाटकों की रचना हुई जिनमें शास्त्री नियमों का पालन नहीं हुआ। इन नाटकों में प्राणचन्द चौहान कृत रामायण महानाटक (1610 ई.) बनारसीदास कृत समयसागर नाटक (1693) यशवंत सिंह कृत प्रबोध चंद्रोदय (1700) नेवाज कृत शकुन्तला नाटक (1729) कृष्ण जीवन लछीराम कृत करूणाभरण (1772) गुरु गोविन्द सिंह कृत चण्डी चरित उपलब्ध है। इनमें महाराज विश्वनाथ कृत आनंद रघुनंदन (1700) ही ऐसी रचना है, जिनमें शास्त्रीय नियमों का पालन हुआ है। अमानत कृत इंदरसभा (1853 ई.) को भी गीतिनाट्य होने पर भी हिन्दी नाटकों की परंपरा से नहीं जोडा जाता। इस प्रकार हिंदी नाटक की अविछिन्न परंपरा भारतेन्दु से ही माना जा सकता हैं।

आधुनिक गद्य साहित्य के आरंभ और विकास में नाटक साहित्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही हैं। इस संबंध में आचार्य शुक्ल लिखते हैं :
"विलक्षण बात यह है कि आधुनिक गद्य साहित्य की परंपरा का प्रवर्तन नाटकों से हुआ।"

विभिन्न विद्वानों के मतानुसार हिन्दी का प्रथम नाटक एवं नाटककार

विद्वान	नाटक	नाटककार
आचार्य रामचंद्र शुक्ल	आनंद रघुनंदन	महाराज विश्वनाथ सिंह
भारतेन्दु हरिश्चंद्र	नहुष	गिरिधर दास (गोपाल चंद्र)

डॉ. दशरथ ओझा	गय सुकुमार	देल्हण
डॉ. बच्चन सिंह	आनन्द रघुनंदन	महाराज विश्वनाथ सिंह
डॉ. गणपति चंद्रगुप्त	गोरक्ष विजय	विद्यापति

- भारतेन्दु ने अपने पिता गिरिधरदास कृत 'नहुष' (1859 ई.) को हिन्दी का प्रथम नाटक, राजा लक्ष्मण सिंह कृत शकुन्तला (1862 ई.) को द्वितीय, स्वयं द्वारा रचित विद्यासुन्दर (1868 ई.) को तीसरा और श्री निवासदास के तप्तासंवरण (1883 ई.) को चौथा नाटक माना है।
- खड़ी बोली में रचित हिन्दी का पहला नाटक राजा लक्ष्मण सिंह द्वारा गद्य में अनुदित 'शकुन्तला' (1862 ई.) नाटक है। 1862 में ही शीतला प्रसाद त्रिपाठी का 'जानकी मंगल' नाटक लिखा गया। 'जानकी मंगल' नाटक आधुनिक हिन्दी का प्रथम अभिनीत नाटक माना जाता है।

- **सन् 1850 ई. से अब तक के युग को हम नाट्य रचना की दृष्टि से तीन खण्डों में विभक्त कर सकते है :**

(1) प्रसाद पूर्व हिन्दी नाटक
(2) प्रसादयुगीन
(3) प्रसादोत्तर हिन्दी नाटक

(1) प्रसाद पूर्व हिन्दी नाटक - सच्चे अर्थों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को ही नाट्य विधा के प्रवर्तक तथा विकसित करने का श्रेय दिया जाता है। भारतेन्दु के अनुदित और मौलिक नाटकों की संख्या सत्रह (17) है। भारतेंदु का प्रथम नाटक विद्यासुन्दर (1868 ई.)

भारतेन्दु के अनुदित नाटक इस प्रकार है :

अनुदित नाटक	मूल नाटक	नाटक वर्ष	भाषा
विद्या सुन्दर	चौर पंचाशिका का बंग्ला से हिंदी हिन्दी अनुवाद	संस्कृत के बंग्ला, विद्यासागर	1868 ई. संस्कृत से, का

रत्नावली	रत्नावली नाटिका	हर्ष	1868 ई.	संस्कृत
पाखंड विडंबन संस्कृत	प्रबोध चंद्रोदय के तीसरे अंक का	कवि कृष्ण मिश्र		1872 ई.
धनंजय विजय संस्कृत	धनंजय विजय	सट्टक		1873 ई.
		कांचन कवि		
कर्पूर मंजरी प्राकृत	कर्पूर मंजरी	राजशेखर		1875 ई.
मुद्रा राक्षस संस्कृत	मुद्रा राक्षस	विशाखदत्त		1878 ई.
दुर्लभ बन्धु अंग्रेजी	मर्चेट ऑफ वेनिस	शेक्सपियर		1880 ई.
सत्य हरिश्चन्द्र बंग्ला	चंड कौशिक	क्षेमेश्वर		1875 ई.
भारत जननी ई.	भारत माता			1877

भारतेन्दु के मौलिक नाटक -

1. वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति	1873	प्रहसन

2. विषस्य विषमौषधम्	1876	भाण
3. प्रेमजोगिनी (अपूर्ण)	1875	नाटिका
4. चन्द्रावली	1876	नाटिका
5. भारत-दुर्दशा	1880	लास्य रूपक
6. नीलदेवी	1881	गीति रूपक
7. अंधेर नगरी	1881	प्रहसन
8. सती प्रताप	1883	पौराणिक नाटक

भारतेन्दु युगीन अन्य प्रमुख नाटककार एवं नाटककार

नाटककार

नाटक

श्री निवास दास

(1) रणधीर प्रेममोहिनी (1878 ई.) (2) तप्तासंवरण (1883 ई.) (3) संयोगिता स्वयंवर (1885) प्रहलाद चरित

किशोरलाल गोस्वामी

(1) मयंक मंजरी (1891 ई.) (2) चौपट चपेट (1891)

राधाकृष्ण दास

(1) दुखिनी बाला (1880 ई.) ६) पद्मावती (1882) (3) धर्मालाप (1885) (4) महाराणा प्रताप (1897 ई.)

देवकीनंदन त्रिपाठी

(1) सीताहरण नाटक (1876 ई.) (2) रूक्मिणी हरण (1876 ई.) (3) रामलीला (1879 ई.) कंसवध नाटक (1879 ई.) (5) गोवध निषेध (1881 ई.) (6) रक्षाबंधन (1878)

अंबिकादत्त व्यास

(1) ललिता (1883 ई.) (2) गो संकट (1886 ई.) (3) मन की उमंग (1886 ई.) (4) भारत सौभाग्य (1881 ई)

बालकृष्ण भट्ट

(1) नलदमयंती स्वयंवर (2) नई रोशनी का विष (3) वृहन्नला (4) वेणुसंहार (1909) (5) कालिराज की महासभा (6) रेल का विकट खेल

गोपालराम गहमरी
(1) देशदशा (2) विद्या विनोद

काशीनाथ खत्री
(1) विधवा विवाह (2) सिंधु देश की राजकुमारियाँ (3) गुन्नौर की रानी

विजयानन्द त्रिपाठी
(1) महाअंधेर नगरी (1892)

देवदत्त शर्मा
(1) अति अंधेर नगरी (1895 ई.)

बलदेव प्रसाद मिश्र
(1) मीराबाई (1879) (2) नंद विदा (1909 ई.)

तोताराम वर्मा
(1) विवाह विडम्बन (1900 ई.)

प्रतापनारायण मिश्र
(1) हम्मीर हठ (2) वेणी संहार (3) भारत दुर्दशा रूपक (1902) (4) कलिकौतुक रूपक (1890)

बदरीनारायण चौधरी
(1) भारत सौभाग्य

'प्रेमघन'

दुर्गा प्रसाद मिश्र
(1) प्रभास मिलन (1899 ई.) (2) जुआरी खुआरी

राधाचरण गोस्वामी
(1) बूढ़े मुँह मुहासे (2) अमर सिंह राठौर (3) श्री दामा (1907) (4) तन मन धन गुसाई के अर्पन

खड्ग बहादुर मल्ल
(1) महारास (1885) (2) हरतालिका (3) भारते भारत (1855) (4) रति कुसुमायुध (1885) (5) कल्पवृक्ष

आगा हश्र कश्मीरी

(1) अछूता दामन (2) असीरे हर्स (3) खूबसूरत बला (4) चंडीदास नाटक (5) जहरीला साँप (6) भीष्म प्रतिज्ञा (7) यहूदी की लड़की

भारतेन्दुयुगीन प्रमुख अनुदित नाटक -

अनुवादक/नाटककार	अनुदित नाटक
राजा लक्ष्मण सिंह	शकुन्तला (1861 ई.)
लाला सीताराम	महावीर चरित (1897) उत्तर रामचरित (1897 ई.) मालती माधव (1898) नागानन्द (1900 ई.)
बालमुकुन्द गुप्त	वेणी संहार (1897)
शीतलाप्रसाद	प्रबोध चंद्रोदय (1897)
भारतेन्दु	दुर्लभ बन्धु (अधूरा अनुवाद) मर्चेट ऑफ वेनिस से
रत्नचन्द्र	भ्रमजालक (कॉमेडी ऑफ एरर्स का अनुवाद)

भारतेन्दुयुगीन नाटककारों से संबंधित महत्त्वपूर्ण तथ्य :

- भारतेन्दु ने अपने नाटकों में सर्वप्रथम भारतीय और पाश्चात्य नाट्य शैली को समाहित किया।
- भारतेन्दु ने 'नाटक' (1883) नामक निबंध में सैद्धांतिक आलोचना प्रस्तुत की। • भारतेन्दु ने काशी में 'नेशनल थियेटर' की स्थापना की।
- .अंग्रेजों द्वारा प्रथम रंगशाला 'प्ले हाउस' नाम से 1776 में कलकत्ता में स्थापित किया।

द्विवेदीयुगीन प्रमुख नाटककार एवं उनकी रचनाएँ -

नाटककार	नाटक
बदरीनाथ भट्ट दुर्गावती,	चंद्रगुप्त (1915) कुरूवन दहन (1912) विवाह विज्ञापन
बलदेव प्रसाद मिश्र	प्रभास मिलन, राजा ययाति, मीराबाई
मिश्रबंधु	नेत्रोन्मीलन (1915) शिवाजी
माधव शुक्ल	महाभारत पूर्वार्द्ध (1961)

माखनलाल चतुर्वेदी	कृष्णार्जुन युद्ध (1918)
ब्रजनंदन सहाय	उद्धव (1909)
वृन्दावन लाल वर्मा	सेनापति उदल (1909)
शिवनंदन सहाय	सुदामा (1907)
गंगा प्रसाद गुप्त	वीर जयमल (1903)

प्रसादयुगीन हिन्दी नाटक -

जयशंकर प्रसाद ने ऐतिहासिक-सांस्कृतिक नाटकों के माध्यम से अपनी सांस्कृतिक परंपरा और नये जातीय जीवन की प्रतिष्ठा की। प्रसाद ने अपने नाटकों के लिए प्रख्यात ऐतिहासिक वृत्तों का चुनाव किया। उनका मन गुप्तकाल और मौर्यकाल में रमा है जो भारतीय इतिहास के स्वर्ण-युग है।

जयशंकर प्रसाद की प्रमुख नाट्य रचनाओं का संक्षिप्त विवरण :

1. सज्जन (1910 ई.) :- इसमें युधिष्ठिर की सज्जनता का वर्णन है। यह नाटक महाभारत की घटना पर आधारित है।
2. कल्याणी परिणय :- इसमें सिल्यूकस की पुत्री कल्याणी और चंद्रगुप्त का प्रेम तथा इतिहास प्रसिद्ध चंद्रगुप्त मौर्य और सिल्यूकस की कहानी है।
3. करूणालय (1912 ई.) :- यह गीति नाट्य-शैली पर आधारित है। यह नाटक हरिश्चन्द्र और विश्वामित्र के प्रसिद्ध पौराणिक आख्यान पर आधारित है।
4. प्रायश्चित (1913 ई.) :- इसमें जयचन्द के पश्चात्ताप की मार्मिक अभिव्यक्ति तथा जयचंद के मूर्खतापूर्ण कुचक्र के कारण पृथ्वीराज के अंत का वर्णन हैं।
5. राजश्री (1915 ई.) :- इस ऐतिहासिक नाटक में हर्षवर्द्धन की बहन राजश्री के उज्जवल चरित्र पर प्रकाश डाला गया है। नाटक का आधार 'हर्षचरित' एवं चीनी यात्री हेनसांग का ऐतिहासिक विवरण है।
6. विशाख (1921 ई.) :- इसमें तक्षशिला विश्वविद्यालय के स्नातक, विशाख की चारित्रिक विशेषताएं का वर्णन है। विशाख नाटक का कथानक कल्हण की "राजतंरगिणी" पर आधारित है।
7. अजातशत्रु (1922 ई.):- यह एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाट्य रचना है, जिसका कथानक रस और द्वन्द्व दोनों ही दृष्टियों से उत्कृष्ट है। बिम्बीसार और अजातशत्रु का संघर्ष इसका मुख्य प्रतिपाद्य है। मगध, कौशल और कौशाम्बी तीनों स्थानों से यह नाटक संबद्ध है।
8. जनमेजय का यज्ञ (1926 ई.) :- इस नाटक में परीक्षित के प्रतापी पुत्र जनमेजय का नागों के साथ संघर्ष का मार्मिक वर्णन हुआ है।
9. कामना (1927 ई.) :-'कामना' एक प्रतीकात्मक और समस्यामूलक नाटक है। पाश्चात्य सभ्यता के अभिशाप को प्रदर्शित करना ही नाटककार का मुख्य उद्देश्य है। इसमें मनोविकारों को प्रतीकों के रूप में रंगमंच पर प्रस्तुत किया गया
   है।

10. स्कंदगुप्त (1928 ई.):- इसमें कुमारगुप्त की विलासी स्थिति का चित्रण हुआ है। जहाँ आंतरिक कलह, विदेशी आक्रमणों के फलस्वरूप उसके भावी क्षय के लक्षण प्रकट होने लगे थे। स्कन्दगुप्त और विक्रमादित्य का त्यागमय जीवन भारतीयों के लिए प्रेरणा स्त्रोत बना है।
11. एक घुट (1930 ई.) :- यह भी 'कामना' की भाँति एक प्रतीकात्मक समस्यामूलक नाटक/एकांकी है। इसमें प्रसाद ने प्रतीकों के माध्यम से आनंदवादी दृष्टिकोण की स्थापना की है।
12. चन्द्रगुप्त (1931 ई.) :- राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत इसमें यवनों से भारत के संघर्ष और भारत की विजय की थीम उठायी गई है। अलक्षेन्द्र का आक्रमण, नंदवंश का नाश, चंद्रगुप्त की प्रतिष्ठा की गई है।
13. ध्रुवस्वामिनी (1933 ई.) :- इसमें ध्रुवस्वामिनी के माध्यम से तलाक और पुनर्विवाह की समस्या को बड़े कौशल से उठाया गया है। इसका विशेष महत्त्व समस्यामूलक नाटक के रूप में है। ध्रुवस्वामिनी नाटक की रचना विशाख के देवी चंद्रगुप्त के आधार पर की गई है।

प्रसाद के तीन प्रमुख नाटकों के पात्र :

नाटक

पात्र

(1) स्कंदगुप्त (1928)

पुरुष पात्र - पृथ्वीसेन, स्कंदगुप्त, भट्टार्क, पुरूगुप्त, महादण्डनायक, कुमार गुप्त

स्त्री पात्र - अनन्त देवकी, देवसेना, विजया

(2) चंद्रगुप्त (1931)

पुरूष पात्र - चंद्रगुप्त, चाणक्य, शकटार सिंहरण, राक्षस, सेल्यूकस, आम्भीक

स्त्री पात्र - कार्नेलिया, एलिस, कल्याणी, अलका, मालविका, सुवासिनी

(3) ध्रुवस्वामिनी (1933)

पुरूष पात्र - रामगुप्त, चंद्रगुप्त, शकराज

स्त्री पात्र - ध्रुवस्वामिनी, मन्दाकिनी, कोमा

प्रसाद के नाटकों से संबंधित प्रमुख

- गीतिनाट्य लेखन का प्रवर्तक जयशंकर प्रसाद को माना जाता हैं।
- .'करूणालय' को हिन्दी का प्रथम गीतिनाट्य माना जाता है।
- . प्रसाद के नाटकों पर बंग्ला नाटककार द्विजेन्द्रलाल तथा अंग्रेजी के नाटककार विलियम शेक्सपियर का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा। .
- 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक पर इब्सन और बर्नार्ड शॉ का प्रभाव देखा जा सकता है। ध्रुवस्वामिनी एक समस्या नाटक है।

प्रसादयुगीन अन्य महत्त्वपूर्ण नाटककार एवं नाटक -

नाटककार

नाटक

विश्वंभर नाथ शर्मा

भीष्म (1918 ई.) अत्याचार का परिणाम

'कौशिक

(1921) हिन्दु विधवा नाटक (1935)

बद्रीनाथभट्ट

चुंगी की उम्मीदवारी (1919) चंद्रगुप्त (1915)

दुर्गावती (1925) तुलसीदास

सुदर्शन

(1) दयानन्द नाटक (1917) (2) अंजना (1923) (3) भाग्यचक्र (1937) ऑनरेरी मजिस्ट्रेट (1926)

प्रेमचन्द

(1) संग्राम (1923 ई.) (2) कर्बला (1924 ई.) (3) प्रेम की वेदी (1933)

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'

(1) महात्मा ईसा (1922) (2) चुम्बन (1937) (3) डिक्टेटर (1937) गंगा का बेटा (1940) चार बेचारे, उजबक

हरिऔध

(1) प्रद्युम्न विजय व्यायोग (1936) (2) रुक्मिणी परिणय (1937)

गोविन्द बल्लभ पंत

(1) वरमाला (1925) (2) राजमुकुट (1935) (3) अंगूर की बेटी (1937) ययाति (1935) कंजूस की खोपडी (1923) अंत:पुर का छिद्र (1940) तुलसीदास (1974)

सुमित्रानंदन पंत

(1) रजत शिखर (1952) (2) शिल्पी (1952)

विष्णु प्रभाकर

(1) डॉक्टर (1958) (2) युगे युगे क्रांति (1969)

रामनरेश त्रिपाठी
(1) सुभद्रा (1942) (2) जयंत (1934)

रामवृक्ष बेनीपुरी
(1) आम्बपाली

जी.पी. श्रीवास्तव
(1) उलटफेर (1918 ई.) (2) दुमदार आदमी (1919) (3) मरदानी औरत (1920) (4) विवाह विज्ञापन (1927) भूलचूक (1928) (5) मिस अमेरिकन (1929) साहित्य का सपूत (1934) (6) स्वामी चौखटानन्द (1936)

बदरीनाथ भट्ट
(1) चुंगी की उम्मीदवारी (1919) (2) लबडघोंघा (1926)

राधेश्याम कथावाचक
(1) कौसिल की मेम्बरी

रामदास गौड
(1) ईश्वरीय न्याय (1924)

प्रसादोत्तर नाटक -
उदयशंकर भट्ट :
विक्रमादित्य (1929), चंद्रगुप्त मौर्य (1931), दाहर या सिंध पतन (1934 ई.), कमला (1935), मुक्तिपथ (1944 ई.), शकविजय (1949 ई.), विद्रोहिणी अंबा (1935), सागर विजय (1933), मत्स्यगंधा (1937), विश्वामित्र (1938), राधा (1941), अशोक वनवंदिनी (1959), गुरू द्रोण का अंतर्निरीक्षण (1959), अश्वत्थामा (1959), असुर सुन्दरी (1972)

हरिकृष्ण प्रेमी :
स्वर्ण विहान (1930), रक्षाबंधन (1934), पाताल विजय (1936), प्रतिरोध (1937), शिव साधना (1937) स्वप्न भंग (1940), आहुति (1940), छाया (1941), बंधन (1941), उद्धार (1949), प्रकाश स्तम्भ (1954), कीर्ति स्तंभ (1955), शतरंज के खिलाडी (1955), संरक्षक (1958), सापों की सृष्टि (1959), रक्तदान (1962), आन का मान (1962), अमर बलिदान (1968), अमृत पुत्री (1970)

लक्ष्मी नारायण मिश्र -

अशोक (1926), सन्यासी (1930), राक्षस का मंदिर (1931), मुक्ति का रहस्य (1932), राजयोग (1933), सिन्दुर की होली (1934), आधी रात (1934), चित्रकूट गरूडध्वज (1945), नारद की वीणा (1946), वत्सराज (1950), दशाश्वमेघ (1950), वितस्तता की लहरें (1953), धरती का हृदय, काल विजय, गंगाद्वार (1974)।

वृन्दावन लाल वर्मा :-
धीरे-धीरे (1939), राखी की लाज (1943), सगुन (1946), फूलों की बोली (1947), झाँसी की रानी (1948), मंगलसूत्र (1949), कश्मीर का काँटा (1948), खिलौने की खोज (1950), पूर्व की ओर (1950), बीरबल (1950), नीलकण्ठ (1951), केवट (1951), पीले हाथ (1952), जहोंदरशाह (1952), ललित विक्रम (1953), देखो-देखी (1956)।

सेठ गोविन्द दास :-
हर्ष (1935), प्रकाश (1935), कर्त्तव्य (1936), शेरशाह शशिगुप्त (1942), कर्ण (1946), प्रकाश (1935), विकास (1941), संतोष कहाँ (1945), सेवापथ (1940), महत्त्व किसे (1947), गरीबी और अमीरी (1947), ग्रहण और त्याग

चंद्रगुप्त विद्यालंकार :-
अशोक (1935), रेवा (1935)

रामकुमार वर्मा :
कौमुदी महोत्सव (1954), विजयपर्व (1954), कला और कृपाण (1955), नाना फडनवीस (1956), महाराणा प्रताप (1960), शिवाजी (1965), अशोक का शोक (1967), जौहर की ज्योति (1967), अग्निशिखा (1970), जयादित्य (1971), संत तुलसीदास (1974), जयवर्धमान (1975), भगवान बुद्ध (1975), समुद्रगुप्त परा क्रमांक (1978), सम्राट कनिष्क (1978), स्वयंवरा (1980), वत्सराज उदयन, महामेघवाहन खारवेल, जहीरूद्दीन मुहम्मद बावर।

रांगेय राघव :
स्वर्गभूमि का यात्री (1951)

उपेन्द्रनाथ अश्क :
लक्ष्मी का स्वागत (1935), जय पराजय (1937), स्वर्ग की झलक (1938), छठा बेटा (1940), देवताओं की छाया (1940), अलग-अलग रास्ते (1954), अंजो दीदी (1955), भंवर (1961), बड़े खिलाडी (1967), लौटता हुआ दिन (1972), कैद उडान (1943-1945)।

समकालीन आधुनिक भाव बोध के नाटक -

- हिन्दी में भुवनेश्वर के लघुनाटक 'ऊसर' (1938 हंस में प्रकाशित) से आधुनिक भाव का आरंभ माना जाता है।
- डॉ. गिरीश रस्तोगी एवं डॉ. मदान ने 'भुवनेश्वर' के नाटक 'तांबे के कीडे' (1946 ई.) से हिन्दी में विसंगति नाटकों का आरंभ माना है।
- भुवनेश्वर का एकमात्र नाट्य संकलन 'कारवाँ (1936) है। इसमें श्यामा - एक वैवाहिक विंडबना (1933), प्रतिभा का विवाह (1933), शैतान (1934), और रहस्य रोमांस नाटक संकलित है।

आधुनिक भाव बोध के प्रमुख नाटक एवं नाटककार -

नाटककार

नाटक

मोहन राकेश

आषाढ़ का एक दिन (1958), लहरों के राजहंस (1963), आधे अधूरे (1969), पैरों तले जमीन (अधूरा)

- 'आषाढ़ का एक दिन महाकवि कालिदास के परिवेश, प्रेरणास्रोत, रचना-प्रक्रिया आदि से संबंधित है।
- मोहन राकेश कृत 'लहरों के राजहंस' नाटक का कथानक अश्वघोष के महाकाव्य "सौरानन्द" पर आधारित है।
- हिन्दी नाटकों में 'आधे-आधूरे' नाटक का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आधे अधूरे नाटक में आधुनिक जीवन में मध्यवर्गीय परिवार के वैवाहिक जीवन की आर्थिक और मनोवैज्ञानिक दोनों प्रकार की विडम्बनाओं का सफल चित्रण किया है।

विष्णु प्रभाकर

डॉक्टर (1958), युगे युगे क्रान्ति (1969), टूटते परिवेश (1974), कुहासा और किरण (1975), डरे हुए लोग (1978), वंदिनी (1979), अब और नहीं (1981), सत्ता के आर पार (1981), श्वेतकमल (1984)

भगवतीचरण वर्मा

वसीयत (1978), तारा (गीतिनाट्य)

अमृतलाल नागर

चंदनवन (1976), चक्करदार सीढ़ियाँ और अंधेरा (दोनों रेडियों नाटक)

लक्ष्मीकान्त वर्मा

तिंदुवुलम (1958), सीमांत के बादल (1963), अपना अपना जूता (1964), रोशनी एक नदी (1974), ठहरी हुई जिन्दगी (1980), आदमी का जहर

भीष्म साहनी
हानूश (1977), कबीरा खडा बाजार में (1981), माधवी (1985), मुआवजे (1993), रंग दे बसंती चोला (1998), आलमगीर (1999)।

.'हानूश' नाटक चेकोस्लोवाकिया में प्रचलित लोक कहानी पर आधारित है। इसमें श्रमशील कलाकार की अदम्य सृजनेच्छा, सत्ता की क्रूरता का चित्रण हुआ है।

- 'कबीरा खडा बाजार में' कबीर के युग-प्रवर्तक व्यक्तित्व व तत्कालीन परिस्थितियों का चित्रण किया गया है।
- 'माधवी' में गालव (विश्वामित्र के शिष्य) और माधवी की पौराणिक कथा का आधुनिक संदर्भ में चित्रण किया गया है।

भोर का तारा (1946) ओ मेरे सपने (1950)

जगदीशचंद्र माथुर
कोणार्क (1951) शारदीया (1959) पहला राजा (1969) दस तस्वीरें (1962) जिन्होंने जीना जाना (1972) दशरथ नंदन (1974) रघुकुल रीति (1985)

विनोद रस्तोगी
आजादी के बाद नये हाथ बर्फ की मीनार जनतंत्र जिंदाबाद गोपा का दान देश के दुश्मन फिसलन और पॉव भगीरथ के बेटे सराय के अंदर

लक्ष्मीनारायण लाल
अंधा कुआँ (1955) मादा कैक्टस (1959) तीन आंखों वाली मछली (1960) सूखा सरोवर (1960) नाटक बहुरंगी (1961) नाटक तोता मैना (1962) रातरानी (1962) दर्पन (1962) रक्तमाल (1963) सूर्यमुख (1968) कलंकी (1969) मिस्टर अभिमन्यु (1971) कपy (1972) दूसरा दरवाजा (1972) अब्दुल्ला दीवाना (1973) नरसिंह कथा (1975) व्यक्तिगत (1975) गुरु (1976) यक्ष प्रश्न (1976) एक सत्य हरिश्चंद्र (1976) गंगामाटी (1977) सगुन पंछी (1977) सब रंग मोहभंग (1977) पंच पुरुष (1978) राम की लड़ाई (1979) बलराम की तीर्थयात्रा (1983) कंजरीवन (1980) सुन्दररस, काफी हाउस में इन्तजार, हाथी घोडा चूहा

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना बकरी (1974), लडाई (1979), अब गरीबी हटाओ (1981), कल भारत आयेगा हवालात

शंभूनाथ सिंह
दीवार की वापसी अकेला शहर

अमृतराय
चिन्दियों की एक झालर (1969), शताब्दी (1972), हमलोग आज अभी (1973)

ज्ञानदेव अग्निहोत्री
नेफा की एक शाम (1962), माटी जागीर (1964), वतन की आबरू (1966), अनुष्ठान चिराग जल उठा (1968), शुतुरमुर्ग (1968)

रेवती शरण शर्मा
चिराग की लौ (1962), अपनी धरती (1963), अंधेरे का बेटा (1969), न धरम न इमान (1970), दीपशिखा (1973)

राजेन्द्र कुमार शर्मा
रेत की दीवार (1963), अपनी कमाई (1969), नीलामघर (1977)

सुरेन्द्र वर्मा
द्रोपदी (1972), सेतुबंध (1972), नायक खलनायक विदुषक (1972), सूर्य की पहली किरण से सूर्य की अंतिम किरण तक (1975), आठवाँ सर्ग (1976), छोटे सैयद बड़े सैयद (1982), एक दूनी एक (1987), शकुन्तला की अंगूठी (1990), कैद ए हयात (1993)

रमेश बक्षी
देवयानी का कहना (1972), तीसरा हाथी (1975), वामाचार (1977), यादों के पार (1979), कसे हुए तारा (1979)

हमीदुल्ला
उलझी आकृतियाँ (1973), दरिन्दे (1975), उत्तर उर्वशी (1979), हरबार (1986)

काशीनाथ सिंह
घोआस (1967)

विपिन कुमार अग्रवाल
तीन अपाहिज (1960), लोटन (1974), खोए हुए की तलाश

सुशील कुमार सिंह
सिंहासन खाली है (1974) बापू की हत्या हजारवीं बार, अंधेरे के राही, नागपाश, चार यारों के यार

मणि मधुकर
रस गंधर्व (1975), बुलबुल की सराय (1978), दुलारी बाई (1978), खेला पोलमपुर (1979), इकतारे की आँख (1980)

शंकर शेष
फंदी घरौंदा (1978), एक और द्रोणाचार्य (1977), अरे मायावी सरोवर (1980), रक्तबीज, बंधन अपने अपने, चेहरे, कोमल गांधार, पोस्टर, खजुराहो का शिल्पी, बिन बाती के दीप, आधी रात के बाद

दयाप्रकाश सिन्हा
पंचतंत्र (1960), मन के भँवर (1968), दुश्मन (1969), अपने-अपने दाँव (1972) इतिहास चक्र और ओह अमेरिका साँझ सवेरा (1974), मेरे भाई मेरे दोस्त (1974), सारद आपका (1980), कथा एक कंस की (1976), सीढ़ियाँ (1990)

मुद्राराक्षस
तिलचट्टा (1972), योर्स फेथफुली (1974), मरजीवा तेन्दुआ आला अफसर (1979), गुफाएँ (1979), संतोला (1980), प्रथम प्रस्तुति डाकू

गिरिराज किशोर
नरमेघ (1979), बादशाह गुलाम बेगम (1979), प्रजा ही रहने दो (1977), घोडा और घास (1980), चेहरे चेहरे किसके चेहरे (1983), केवल मेरा नाम लो (1984), जुर्म आयद (1987), काठ की तोप (2001)

दूधनाथ सिंह
यमगाथा (1990)

बृजमोहन शाह
त्रिशंकु (1973), युद्धमन (1975), शह पे मात (1976)

रामेश्वर प्रेम
चारपाई राजा नंगा है काल पात्र अज्ञातघर अंतरंग कैम्प शस्त्र संतान (1997), लोमडवेश (1980)

नरेन्द्र मोहन
कहै कबीर सुनो भाई साधो (1987), सींगधारी (1988), नो मैन्स लैण्ड (1994), अभंग गाथा (2000), मिस्टर जिन्ना (2005)

शरद जोशी
एक था गधा (1980), अंधों की हाथी (1980), बैंगन की नाव

आचार्य नंदकिशोर
देहान्तर (1987), पागलघर (1988), हस्तिनापुर (1994), जिल्ले सुभानी जूते (1944), गुलाम बादशाह (1992), किमिद्म यक्षम् (1993)

हबीब तनवीर
आगरा बाजरा (1954), शतरंज के मोहरे (1954), लाल शोहरत राय (1954), मिट्टी की गाडी (1958), मोर नांव दामाद (1973), चरणदास चोर (1975), उत्तर रामचरित्र (1978), बहादुर कलारिन (1984), पोंगा पंडित (1992), कामदेव का अपना बसंत ऋतु का सपना (1993), द ब्रोकन ब्रिज (1995), जहरीली हवा (2002), राजरक्त (2006)

कृष्ण बलदेव वैद्य
भूख आग है (1998), हमारी बुढ़िया (2000), सवाल और स्वप्न (2001)

सुदर्शन मजीठिया
चौराहा (1986), देश के लिए (1990)

नागबोडस
खूबसूरत बहु (1998), वसीयत (1998), दलित (1998), तोतो झूठ नहीं बोलता (1998), पढ़ो फारसी बेचो तेल (2002)

स्वदेश दीपक
नाटक बाल भगवान (1989), कोर्ट मार्शल (1991), जलता हुआ रथ (1998), सबसे उदास कविता (1998), काल कोठारी (1999)

राजेश जैन
वायरस (1994), विषवंश (1999)

अन्य प्रमुख नाटककार और उनके नाटक

नाटककार	नाटक

शिवमूरत सिंह	पूर्वार्द्ध
डॉ. विनय	एक प्रश्न मृत्यु
नरेश मेहता	खंडित यात्राएं
नरेन्द्र कोहली	शंबुक की हत्या, हत्यारे,
	निर्णय रूका हुआ, गारे की दीवार
रमेश चन्द शाह	मारा जाई खुसरो
अजीत कुमार	घोङा घास नहीं खाता
सुदर्शन चोपङा	काला पहाङ (1978)
शिव प्रसाद सिंह	घांटियाँ गूजती है
कमलेश्वर	अधूरी आवाज
रमेश उपाध्याय	पेपरवेट
गोविन्द चातक	काला मुँह
राजेश जोशी	जादू जंगल(1981),अच्छे आदमी,टकारा
	का गाना
रामकुमार भ्रमर	तमाशा, भस्मासुर (1980)
जयशंकर त्रिपाठी	कुरुक्षेत्र का सवेरा
प्रताप सहगल	अन्वेषक(1992),नहीं कोई अंत(1999 ई.)
सत्यव्रत सिन्हा	अमृत पुत्र (1974)
दिनेश ठाकुर	दीवार (1976)
अमृत नाहता	किस्सा कुर्सी का (1977)
अभिमन्यु अनत	गूंगा इतिहास (1995))
आलोक शर्मा	चेहरों के जंगल (1980
श्याम मोहन आस्थान	रावण तेरे कितने रूप (1986)
बी.एम. शाह	बैंक यू बाबा लोचनदास
राधा कृष्ण सहाय	खेल जारी खेल जारी (1985)

अज्ञेय	उत्तर प्रियदर्शी
संतोष नारायण	नौटियाल चाय पार्टियाँ (1963)
सुरेन्द्र चन्द्र शुक्ल	आकश झुक गया (1977), कुत्ते (1979),
	भस्मांकुर अभी जिंदा है (1980)

महिला नाटककार

नाटककार

नाटक

मन्नू भण्डारी

बिना दीवारों के घर (1965), महाभोज (1982), (महाभोज उपन्यास का नाट्य रूपांतर)

मृदुला गर्ग

एक और अजनबी (1978), जादू का कालीन (1993), कितनी कैदे (1969), दुलहिन एक पहाङ की (1969), दूसरा संस्करण (1969), तीन कैंदे (1996)

मृणाल पाण्डेय

जो राम रचि राखा (1981), मौजूदा हालत को देखते हुए (1981), आदमी जो मछुआरा नहीं था (1983)

कुसुम कुमार

संस्कार को नमस्कार (1982), ओम क्रांति क्रांति (1978), सुनो शैफाली (1979), दिल्ली ऊँचा सुनती है (1982), रावण लीला (1983), मादा मिट्टी पवन चतुर्वेदी की डायरी (1986), सलामी मंच लश्कर चौक प्रश्नकाल (2008)

गिरीश रस्तोगी

रंगनाथ की वापसी (राग दरबारी का नाट्य रूपांतर) बाणभट्ट की आत्मकथा का नाट्य रूपांतर, असुरक्षित मुझे मत मारो

प्रतिभा अग्रवाल

प्रेमचंद के 'गोदान' और अमृतलाल नागर के उपन्यास 'सुहाग के नूपुर' का नाट्य रूपांतर

शांति मेहरोत्रा

(1) एक और दिन (2) ठहरा हुआ पानी (1975)

शोभना भूटानी

(1) शायद हाँ -

मीराकांत

(1) इहामृग (2003) (2) नेपथ्य राग (2004) (3) भुवनेश्वर दर भुवनेश्वर (2008), (4) कन्धे पर बैठा था शाप (5) हुमा को उड़ जाने दो (6) अन्त हाजिर हो (2012)।

हिन्दी के प्रमुख नाटककारों का जन्म के आधार पर कालक्रम -

तोताराम वर्मा 1847-1902	डॉ. शंभुनाथ सिंह 1917-1991 ई
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 1850-1885	अमृतराय 1921-1996
श्री निवासदास 1857-1887 ई.	लक्ष्मीकान्त वर्मा 1922-2002 ई.
बदरीनारायण चौधरी 1855-1923	रागेय राघव 1923-1962
प्रतापनारायण मिश्र 1856-1904	विनोद रस्तोगी 1923
अंबिकादत्त व्यास 1858-1900	मोहन राकेश 1925-1972
रामकृष्ण वर्मा 1859-1906 ई.	कृष्ण बलदेव वैद 1927 ई.
श्री देवकीनन्दन खत्री 1861	डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल-1927-1987
राधाकृष्ण दास 1865-1907 ई.	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना 1927-1983
किशोरीलाल गोस्वामी 1865-1931	मन्नू भण्डारी 1931
मैथिलीशरण गुप्त 1886-1964	शरद जोशी 1931-1991
माखनलाल चतुर्वेदी 1889-1968ई	. विपिन कुमार अग्रवाल 1931
जयशंकर प्रसाद 1889-1937	सुदर्शन मजीठिया 1931-2000 ई.
वृन्दावनलाल वर्मा 1889-1969	शंकर शेष 1933-1981
विश्वंभर नाथ शर्मा कौशिक 1891-1945	मुद्राराक्षस 1933-2016
चतुरसेन शास्त्री 1891-1960	महेन्द्र भल्ला 1933-2015
सुदर्शन 1895-1967	नरेन्द्र मोहन 1935 ई
सेठ गोविन्ददास 1896	गिरीश रस्तोगी 1935-2014 ई.

उदयशंकर भट्ट 1898-1966	दूधनाथ सिंह 1936 ई.
गोविन्द वल्लभ पंत 1898-1996	काशीनाथ सिंह 1936 ई.
भगवती प्रसाद वाजपेयी 1899-1973	रमेश बक्षी 1936-1988 ई.
बेचन शर्मा 'उग्र' 1900-1967	गिरिराज किशोर 1937 ई.
गद वाजपेयी 189-1973	
लक्ष्मीनारायण मिश्र 1903-1987 ई.	मृदुला गर्ग 1938
भगवती चरण वर्मा 1903-1981 ई.	नागाबोडस 1939-2003
रामकुमार वर्मा 1905-1990	कुसुम कुमार (1939 ई.)
चंद्रगुप्त विद्यालंकार 1906-1982	सुरेन्द्र वर्मा 1941 ई.
जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द 1907-1986 ई	मणि मधुकर 1942-1995
रमेश बक्षी 1938-39	रामेश्वर प्रेम 1943 ई.
हरिकृष्ण प्रेमी 1908-1974 ई	स्वदेश दीपक 1942 ई.
उपेन्द्रनाथ अश्क 1911-1996	नंदकिशोर आचार्य 1945 ई.
विष्णु प्रभाकर 1912-2009 ई	असगर वजाहत-1946
भीष्म सहानी 1915-2003 ई.	मृणाल पाण्डेय (1946 ई.)
अमृतलाल नागर 1916-1990 ई.	मीराकांत (1958) ई.
भुवनेश्वर प्रसाद 1911-1925.	जगदीशचन्द्र माथुर 1917-1978

हिन्दी के प्रमुख नाटकों के पात्र -

नाटक	पुरूष पात्र	स्त्री पात्र
नीलदेवी	सूर्य देव, सोमदेव,	नीलदेवी
	बसंत, पं. विष्णु शर्मा,	
	अब्दुश्शरीफ खाँ	
स्कंद गुप्त	पृथ्वीसेन, स्कंदगुप्त,	अंतदेवकी, देवसेना, विजया
भट्टार्क, महादण्डनायक		

	पुरूगुप्त, कुमार गुप्त,	
	मातृगुप्त, चक्रपालित	
चंद्रगुप्त	चंद्रगुप्त, चाणक्य, शकटार,	अल्का, कार्नेलिया, कल्याणी
	सिंहरण, आम्भीक, राक्षस,	
	पर्वतक, सिल्युकस	
ध्रुवस्वामिनी	चंद्रगुप्त, रामगुप्त, शकराज	ध्रुवस्वामिनी, मन्दाकिनी कोमा
	शिखर स्वामी, मिहिरदेव	
आषाढ़ का एक दिन संगिणी	कालिदास, विलोम, मातुल दंतुल	अंबिका, मल्लिका, प्रिय-मंजरी, रंगिणी,
लहरों के राजहंस नंद,	श्यामांग, आनंद	सुन्दरी, अल्का, किन्नी
आधु अधूरे	महेन्द्रनाथ, अशोक, जुनेजा	सावित्री, बिन्नी, किन्नी
	सिंधानिया, जगमोहन	
डाक्टर	सतीश चंद्र	डॉ. अनीला, मधुलक्ष्मी
हानूश	हानूष, पादरी, एमिल, जेकब	कात्या, पान्या
अंजो दीदी	श्रीषत्	अंजो दीदी (अंजली)
कोणार्क	विशु, नरसिंह देव, धर्मपाल	-
पहला राजा	पृथु, शुक्राचार्य	-
मादा कैक्टस	मनमोहन	सुजाता, आनंदा
एक और द्रोणाचार	अरविन्द, विमलेन्दु	ललिता, यदु, अनुराधा
कोर्ट मार्शल	पुरूष पात्र कैप्टन कपूर, रामचन्दर	स्त्री पात्र
जलता हुआ स्थ	बाबा	-
सबसे उदास कविता	शिवदयो सिंह,	अपूर्वा
	सुकान्त डी.एस.पी. अहूजा	
द्रोपदी	मनमोहन	सुरेखा
बिना दीवरों का घर	जयंत, अजित	शोभा
एक और अजनबी	जगमोहन, इंदर	शानी, मणि

दूसरा संस्करण	ललित बत्रा, डॉ. कपूर	शैफाली, मालती
कन्धे पर बैठा	कालिदास, कुमारदास	कामिनी

था शाप

हिन्दी उपन्यास का विकास

'उपन्यास' शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है- उपन्यास । 'उप' का अर्थ है-समीप और 'न्यास' का अर्थ है - रखना। अर्थात् उपन्यास का शाब्दिक अर्थ है - समीप रखना या मनुष्य के समीप रखी हुई वस्तु। अत: वह कृति जिसे पढ़कर लगे कि वह हमारे ही जीवन का प्रतिबिम्ब है।

हिन्दी उपन्यास का आधुनिक स्वरूप यूरोपीय साहित्य से पूर्णतः प्रभावित है, जिसका सूत्रपात आधुनिक युग में हुआ। हिन्दी का प्रारंभिक उपन्यास साहित्य अंग्रेजी तथा बांग्ला से प्रभावित था।

हिन्दी का प्रथम उपन्यास

विद्वान	उपन्यासकार	उपन्यास	प्रकाशन वर्ष
डॉ. गोपाल राय	पं. गौरीदत्त	देवरानी जेठानी	1870 ई.
		की कहानी	
डॉ. विजय शंकर मल्ल	श्रद्धाराम फिल्लौरी	भाग्वती	1877 ई.
आचार्य रामचंद्र शुक्ल	श्री निवासदास	परीक्षा गुरु	1882 ई.

• मुंशी प्रेमचंद को यदि हिंदी उपन्यास का केन्द्र बिन्दु माना जाए तो हिंदी उपन्यास को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है :

(1) प्रेमचंद पूर्व हिंदी उपन्यास
(2) प्रेमचंद युगीन हिंदी उपन्यास
(3) प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास

प्रेमचंद पूर्व उपन्यास

> सामाजिक उपन्यास

उपन्यासकार
उपन्यास

गौरीदत्त

(1) देवरानी जेठानी की कहानी (1870 ई.)

श्रद्धाराम फिल्लौरी
(1) भाग्यवती (1877 ई.)

लाला श्री निवासदा
(1) परीक्षा गुरु (1882 ई.)

बाल कृष्ण भट्ट
(1) रहस्य कथा (1879) (2) नूतन ब्रह्मचारी (1886) (3) सौ अजान एक सुजान (1892)

राधाकृष्ण दास
(1) निस्सहाय हिन्दू (1890)

ठाकुर जगमोहन सिंह
श्यामा स्वप्न (1888)

लज्जाराम मेहता
(1) धूर्त रसिक लाल (1899) (2) स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी (1899) (3) आदर्श दम्पत्ति (1904) (4) बिगड़े का सुधार (1907) (5) आदर्श हिंदु (1914)

किशोरी लाल गोस्वामी
(1) लंवगलता या आदर्शबाला (1890) (2) स्वर्गीय कुसुम व कुसुम कुमारी (1889) (3) लीलावती (1901) (4) चपला व नव्य समाज (1903) (5) तरूण तपस्विनी व कुटीर वासिनी (1906) (6) पुनर्जन्म व सौतिया डाह (1907) (7) माधवी माधव व मदन मोहनी (1909) (8) अंगूठी का नगीना (1918)

अयोध्या सिंह उपाध्याय
(1) ठेठ हिंदी का ठाठ (1899) (2) अधखिला फूल (1907)

वज्रनंदन सहाय
(1) सौंदर्योपासक (1912) (2) राधाकांत (1918)

राधिकारमण प्रसाद सिंह
(1) वन जीवन व प्रेमी लहरी (1916)

ऐतिहासिक उपन्यासकार

उपन्यासकार
उपन्यास

किशोरीलाल गोस्वामी
(1) हृदयहारिणी व आदर्श रमणी (1890) (2) तारा (1902) (3) राजकुमारी (1902) (4) कनक कुसुम व मस्तानी (1903) (5) लखनऊ की कब्र व शाही महलसरा (1918) (6) सुल्ताना रजिया बेगम प रंग महल में हलाहल

गंगा प्रसाद गुप्त
(1) पृथ्वीराज चौहान (1902) (2) कुंवर सिंह सेनापति (1903) (3) हम्मीर (1904)

जयराम गुप्त
(1) कश्मीर पतन (1907) (2) मायारानी (1908) (3) नबावी परिस्तान व वाजिद अली शाह (1908) (4) कलावती (1909)

रामनरेश त्रिपाठी
(1) वीरांगना (1911)

ब्रजनंदन सहाय
(2) लालचीन (1916)

मिश्रबंधु
(3) वीरमणि (1917)

तिलस्मी-ऐयारी उपन्यास

हिंदी में 'तिलस्मी ऐयारी' उपन्यासों के प्रवर्तक बाबू देवकीनंदन खत्री (1861-1913) है।

पं. रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार :-

"पहले मौलिक उपन्यास लेखक जिनके उपन्यासों की सर्व-साधारण में धूम हुई, काशी के बाबू देवकीनंदन खत्री थे।"

बाबू देवकीनंदन खत्री के प्रमुख उपन्यास :-
(1) चंद्रकांता संतति - 24 भाग (1899) (2) नरेन्द्र मोहिनी (1893) (3) वीरेन्द्र वीर (1895) (4) कुसुमकुमारी (1899) (5) भूतनाथ (अधूरा)

- प्रदीप सक्सेना ने प्रमाणित किया है कि "चंद्रकांता यथार्थवाद के प्रथम उत्थान का महाकाव्य है।"
- -बाबू देवकीनंदन खत्री के पुत्र बाबू दुर्गाप्रसाद खत्री (1895) ने भूतनाथ उपन्यास को पूरा किया और रोहतासमठ नामक मौलिक उपन्यास लिखा।।
- हरेकृष्ण जौहर के प्रमुख ऐयारी उपन्यास

(1) कुसुम लता (1899) (2) भयानक भ्रम (1900) (3) नारी पिशाच (1901) (4) मयंक मोहिनी या माया महल (1901) (5) जादूगर (1901) (6) कमल कुमारी (1902) (7) निराला नकाबपोश (1902) (8) भयानक खून (1903) आदि ।

अन्य प्रमुख उपन्यासकार एवं उपन्यास

उपन्यासकार
उपन्यास

देवीप्रसाद उपाध्याय
सुंदर सरोजिनी (1893)

गुलाबदास
तिलस्मी बुर्ज

विश्वेश्वर प्रसाद वर्मा
वीरेन्द्र कुमार (1906)

रामलाल वर्मा
पुतली का महल (1908)

जासूसी उपन्यास

- उन्नीसवीं शती में अंग्रेजी में सर आर्थर कानन डायल (1859-1980) के जासूसी उपन्यास बहुत लोकप्रिय हुए।
- हिंदी में जासूसी उपन्यास का प्रवर्तन गोपालराम गहमरी (1866-1946) ने किया।
- -सन् 1898 में गोपालराम गहमरी ने बंग्ला से 'हीरे का मोल' उपन्यास अनूदित कर प्रकाशित कराया।
- -गोपालराम गहमरी ने 1900 ई. में 'गहमर' से 'जासूस' नामक मासिक पत्रिका निकाली।
- गोपालराम गहमरी को हिंदी का 'कानन डायल' कहा जाता है।
- गहमरी जी ने 200 से ज्यादा जासूसी उपन्यास लिखें।

इनके प्रमुख उपन्यास निम्नलिखित हैं :

(1) अद्भुत लाश (1896) (2) गुप्तचर (1899) (3) बेकसूर की फाँसी (1900) (4) सरकटी लाश (1900) (5) खूनी कौन (1900) (6) बेगुनाह का खून (1900) (7) जमुना का खून (1900) (8) डबल जासूस (1900) (9) मायाविनी (1901) (10) चक्करदार चोरी (1901) (11) जासूस की भूल (1901) (12) भयंकर चोरी (1901) (13) जादूगरनी मनोला (1901) (14) जासूस पर जासूसी (1904) (15) इन्द्रजालिक जासूस (1910) (16) भोजपुर की ठगी (1911) (17) गुप्त भेद (1913) (18) जासूस की ऐयारी (1914) आदि। अन्य

प्रमुख जासूसी उपन्यासकार

उपन्यासकार
उपन्यास

रामलाल वर्मा
(1) चालाक चोर (2) जासूस के घर खून (3) जासूसी कुत्ता (4) अस्सी हजार की चोरी

किशोरीलाल गोस्वामी
(1) जिंदे की लाश (1906)

जयरामदास गुप्त
(1) लंगडा खूनी (1907) (2) काला चाँद

रामप्रसाद लाल
(1) हम्माम का मुर्दा (1903)

घटना प्रधान उपन्यासों के महत्त्वपूर्ण उपन्यासकार एवं उनकी रचनाएँ

उपन्यासकार
उपन्यास

अंबिकादत्त व्यास
(1) आश्चर्य वृत्तांत (1893)

प्रेम विलास वर्मा
(1) प्रेममाधुरी या अनंगतकांता (1915)

विट्ठलदास नागर
(1) किस्मत का खेल (1905)

बॉकेलाल चतुर्वेदी
(1) खौफनाक खून (1912)

दुर्गाप्रसाद खत्री
(1) प्रतिशोध (1925) (2) लाल पंजा (1925) (3) रक्तमण्डल (1927)

अन्य प्रमुख उपन्यासकार एवं उपन्यास

उपन्यासकार
उपन्यास

राधाचरण गोस्वामी
(1) सौदामिनी (1891)

कुंवर हनुमंत सिंह
(2) चंद्रकला (1893)

ब्रजनंदन सहाय
(1) राजेन्द्र मालती (1897) (2) अद्‌भुत प्रायश्चित (1901) (3) अरण्यबाला (1915)

अवध नारायण
(1) विमाता (1916)

प्रेमचंद युगीन हिंदी उपन्यास

प्रेमचंद युग की मर्यादा 1918 से 1936 ई. तक मान्य है। हिंदी साहित्य में यह 'युग' छायावाद के नाम से प्रसिद्‌ध है। छायावाद अपनी समस्त दुर्बलताओं के बावजूद नव-जागरण का युग था। भावावेग, आदर्शप्रियता, राष्ट्रीयता भावना, स्वच्छदता आदि प्रवृत्तियाँ नवजागरण की ही सूचना देने वाली थी। इन प्रवृत्तियों से प्रेमचंद भी प्रभावित हुए। उपन्यास के

बारे प्रेमचंद ने कहा है :

"मैं उपन्यास को मानव-जीवन का चित्र मात्र समझता हूँ| मानव जीवन पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोजना ही उपन्यास के मूल तत्त्व है।" प्रेमचंद 'मानवतावाद' से भी प्रकाशित थे। उन्होंने 'जीवन में साहित्य का स्थान' विषय "आदि काल से मनुष्य के लिए सबसे समीप मनुष्य है। हम जिसके सुख-दुख, हँसने

रोने का मर्म समझ सकते है, उसी से हमारी आत्मा का अधिक मेल होता है।"
जीवन के अंतिम दिनों में प्रेमचंद की आदर्शवादी आस्था हिल उठी थी। सेवासदन (1918) ई. से लेकर गोदान (1936) ई. तक आते-आते भीतर ही भीतर उनके
विचारों में क्रांतिकारी परिवर्तन हो चुके थे। गोदान (1936) तक आते-आते प्रेमचंद
का आदर्शान्मुख यथार्थवाद, यथार्थोन्मुख आदर्शवाद बन गया है। प्रेमचंद का
'गोदान' एक ऐसी मनोभूमि पर प्रतिष्ठित है,
जहाँ जैनेन्द्र की आत्मकेन्द्रित अंतर्मुखी पीडा, इलाचंद जोशी की कामकुण्ठा-जनित
जटित व्यक्ति-चेतना, यशपाल का समाजोन्मुख यथार्थवाद, भगवतीचरण वर्मा और
उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का रूमानी समाजोन्मुखी व्यक्तिवाद तथा अमृतलाल
नागर का सर्व-मांगलिक मानववाद सभी के प्रेरणा-सूत्र लक्षित किये जा सकते हैं। प्रेमचंद युग के अंतिम चरण में उपर्युक्त सभी प्रवृत्तियों का उन्मेष हो चुका था।

- मुंशी प्रेमचंद (1880-1936) ई. का मूलनाम धनपत राय था। किंतु वे 'उर्दू' में 'नबावराय' के नाम से लिखते थे।
- -धनपत राय को 'प्रेमचंद' नाम उर्दू के लेखक दयानारायण निगम ने दिया था। - -प्रेमचंद को 'कथा सम्राट' की संज्ञा बंग्ला कथाकार शरतचन्द्र चटोपाध्याय ने दिया था।
- -प्रेमचंद का प्रथम प्रौढ़ उपन्यास सेवासदन (1918) ई. है। इस उपन्यास में सामाजिक अत्याचार से पीडित नारी समाज और वेश्यावृत्ति की समस्या को आधार बनाया गया है।
- -प्रेमचंद के प्रारंभिक उपन्यासों का मूल रूप उर्दू में था। प्रेमचंद ने निम्नलिखित उपन्यासों का उर्दू से हिंदी में रूपांतर किया :

उर्दू उपन्यास हिंदी में रूपांतदित उपन्यास वर्ष

असरारे मआविद	देवस्थान रहस्य	1905
हमखुर्मा व हमसबाब	प्रेमा	1907
बजारे हुस्न	सेवासदन	1918
जलवाए ईसार	वरदान	1921
गोशाएँ आफियत	प्रेमाश्रम	1922
चौगाने हस्ती	रंगभूमि	1925
किशना	गबन	1931

प्रेमचंद (1880-1936 ई.)

प्रेमा (1907) रूठी रानी (1907) सेवासदन (1918) वरदान (1921)

प्रेमाश्रम (1922) रंगभूमि (1925) कायाकल्प (1926) निर्मला (1927)

प्रतिज्ञा (1929) गबन (1931) कर्मभूमि (1933) गोदान (1936)

मंगलसूत्र (अपूर्ण (1948 ई.)

विश्वम्भर नाथ कौशिक (1891-1945 ई.) के तीन उपन्यास निम्नलिखित है -

(1) माँ (1929 ई.) - इसमें लेखक ने दिखाने की कोशिश की है कि माँ के स्नेह, त्याग और देखरेख ही बालक का विकास निर्भर हैं,

(2) भिखारिणी (1929) - अंतर्जातीय विवाह की समस्या को उठाया गया है।

(3) संघर्ष (1945) - आर्थिक विषमता के कारण प्रेम की विफलता का चित्रण

श्री नाथ सिंह (1901-1995 ई.)
(1) उलझन (1922) (2) क्षमा (1925) (3) एकांकिनी (1927) (4) प्रेम परीक्षा (1927) (5) जागरण (1937) (6) प्रजामण्डल (1941) (7) एक और अनेक (1951) (8) अपूहता (1952)

शिवपूजन सहाय (1893-1963)

(1) देहाती दुनिया (1926 ई.) - इसमें ग्रामीण जीवन का सुबोध और प्रभावकारी चित्रण किया गया है।

प्रेमचंद युगीन अन्य प्रमुख उपन्यासकार

उपन्यासकार
उपन्यास

चण्डी प्रसाद 'हृद्येश
मनोरमा (1924) मंगल प्रभात

(1898-1936)
(1926 ई.)

राधिकारमण प्रसाद सिंह
राम रहीम (1936) पुरुष और नारी (1939) संस्कार (1942) चुबन और चांटा (1956)

जी.पी. श्रीवास्तव
महाशय भडम सिंह शर्मा (1919) लतखोरी लाल (1931) विलयाती उल्लू (1932) स्वामी चौखटानंद (1936) प्रणनाथ (1925) गंगा जमुनी (1927) कल्याणी (1921)

मन्नन द्विवेदी
कल्याणी (1921)

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'
कल्याणी (1921) अप्सरा (1931) अलका (1933) निरूपमा (1936) प्रभावती (1936) चोटी की पकड, काले कारनामे (1950)

गोविन्द वल्लभ पंत
सूर्यास्त (1922) प्रतिमा (1934) मदारी (1935)

भगवती प्रसाद वाजपेयी
प्रेमपथ (1926) अनाथ पत्नी (1928) मुस्कान (1929) प्रेम निर्वाह (1934) पतिता की साधना (1936) चलते चलते (1951) टूटते बंधन (1963)

प्रकृतवादी उपन्यास

प्रकृतवाद एक विशिष्ट जीवन दर्शन है। यह मानव जीवन को वैज्ञानिक दृष्टि से प्रकृत (नेचुरल) रूप में देखने और चित्रित करने में विश्वास रखता है। इस विचारधारा के अनुसार जीवन में जिसे विद्रूप और कुत्सित कहा जाता है, वह सहज और वैज्ञानिक भी है।

प्रकृतवादी (विचारधारा) उपन्यासों का जनक जोला को माना जाता है। जोला के अनुसार:- "लेखकों का धर्म है कि वे जीवन के गंदे और कुरूप से कुरूप चित्र खींचे। मनुष्य की दुर्बलताओं रोगों और विकृतियों का वर्णन करते समय उन्हें

कोई अंश नहीं छोडना चाहिए था।

हिंदी में प्रकृतवादी उपन्यासों का प्रर्वतक पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' को माना जाता है।

हिंदी में प्रकृतवादी उपन्यासकार निम्नलिखित है :

उपन्यासकार

उपन्यास

- चतुरसेन शास्त्री (1891-1960) (1) हृदय की परख (1918) ई. (2) व्यभिचार (1923) (3) हृदय की प्यास (1931) (4) अमर अभिलाषा (1933) (5) आत्मदाह (1937) वैशाली की नगर वधू (1948) (6) मंदिर की नर्तकी (1951) (7) अपराजिता (1952) (8) आलमगीर (1954) (9) सोमनाथ (1955) (10) वयं रक्षाम् (1958) (11) सोना और खून (4 भाग 1957-58) (12) सहाद्रि की चट्टानें (1959) (12) बिना चिराग का शहर (1960 ई.)
- पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र (1900-1967) (1) चंद हसीनों के खतूत (1924) (2) दिल्ली का दलाल (1927) (3) चॉकलेट (1927) (4) बुधुआ की बेटी (1928) (5) शराबी (1931) (6) सरकार तुम्हारी आँखों में (1937) (7) जी जी जी (1937) (8) मनुष्यानंद (1935-बुथुआ की बेटी का रूपांतर) (9) फागुन के दिन-रात (1960) (10) जुहू (1963)
- -ऋषभचरण जैन (1912-1985) (1) मास्टर साहब (1927) (2) दिल्ली का व्यभिचार (1928) (3) बुर्केवाली (1928) (4) वेश्या पुत्र (1929) (5) दुराचार के अड्डे (1930) (6) चाँदनी रात (1930) (7) सत्याग्रह (1930) (8) गदर (1931) (9) भाग्य (1931) (10) भाई (1931) (11) रहस्यमयी (1931) (12) मधुकरी (1933) (13) चम्पाकली (1935) (14) बुर्काफरोश (1936) (15) मंदिर दीप (1936) (16) हर हाईनेस (1938) (17) मयखाना (1938) (18) तीन इक्के (1940ई.)

जयशंकर प्रसाद के प्रमुख उपन्यास :

(1) कंकाल 1929 - इसमें प्रसाद ने समाज के त्यागे हुए, अवैध और अज्ञात कुलशील संतानों की कथा कही हैं। इस उपन्यास का विषय प्रकृतिक है किन्तु दृष्टि सामाजिक है।

(2) तितली 1934 - इसमें ग्रामीण और कृषक जीवन का वर्णन है, पूँजीपतियों द्वारा निम्नवर्ग के शोषण का वर्णन है।

(3) इरावती 1936 - यह अपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास है।

अनूपलाल मंडल के उपन्यास :

(1) निर्वासिता (1929) (2) समाज की वेदी पर (1931) (3) साकी (1932) (4) रूपरेखा (1934) (5) ज्योतिर्मयी (1934) (6) मीमांसा (1937) (7) आवारों की दुनिया (1945) (8) दर्द की तस्वीरें (1945) (9) बुझने न पाये

- अनूपलाल मण्डल ने 'समाज की बेदी पर' और 'रूपरेखा शीर्षक उपन्यास की रचना पत्रात्मक प्रविधि से की।
- 'उग्र' जी का 'बुथुआ की बेटी' उपन्यास घोर यथार्थवादी उपन्यास है।
- 'चंद हसीनों के खतून' पत्रात्मक प्रविधि में लिखा गया हिंदी का पहला उपन्यास है।

- 'उग्र' जी अपने साहित्य में भी उग्र रूप में ही प्रकट हुए है। डॉ. गोपाल राय का कहना है : "उग्र जी इस युग के सबसे अक्खड और सबसे बदनाम उपन्यासकार थे।"

हिन्दी उपन्यास पार्ट-2

प्रेमचन्द्रोत्तर उपन्यास

> इस युग के उपन्यासों को मुख्यतः निम्न पाँच श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है -

1. मनोविश्लेषणवादी उपन्यास
2. साम्यवादी (प्रगतिवादी) उपन्यास
3. ऐतिहासिक उपन्यास
4. आंचलिक उपन्यास
5. प्रयोगवादी (आधुनिकता बोधवादी) उपन्यास

1. मनोविश्लेषणवादी उपन्यास

मनोविश्लेषण उपन्यासों की प्रमुख विशेषताएँ -

इन उपन्यासों में सामान्यतः सेक्स संबंधी कुंठाओं, दमित वासनाओं एवं मानसिक ग्रंथियों का निरूपण किया गया है। इनमें सामाजिक समस्याओं एवं राष्ट्रीय विशिष्ट परिस्थितियों की उपेक्षा हुई है। अधिकांश मनोविश्लेषणवादी उपन्यासकार व्यक्तिवादी या अतिव्यक्तिवादी माने जाते हैं। इनके नायक प्रायः दुर्बल, अस्वस्थ एवं कुण्ठाग्रस्त हैं तो नायिकाएँ स्वच्छंद एवं वासनाग्रस्त हैं। नये साहित्यकारों में अनाचार, उच्छृखलता, यौन-पीडा एवं कुंठाओं की जो प्रबलता दृष्टिगोचर होती है, वह बहुत कुछ इन उपन्यासों में देखी जा सकती है।

1. जैनेन्द्र (1905-1988 ई.)

1. परख-1929 ई.	2. सुनीता-1935 ई.
3. त्यागपत्र-1937 ई.	4. कल्याणी-1939 ई.
5. सुखदा-1952 ई.	6. विवर्त-1953 ई.
7. व्यतीत-1953 ई.	8. जयवर्धन-1956 ई.
9. मुक्तिबोध-1965 ई.	10. तपोभूमि-1974 ई.
11. अनामस्वामी-1974 ई.	12. नीलमणि
13. अनन्तर-1968 ई.	14. दशार्क-1985 ई.

(अंतिम उपन्यास) विशेष -

- इन्होंने व्यापक सामाजिक जीवन को अपने उपन्यासों का विषय न बनाकर व्यक्ति-मानस की शंकाओं, उलझनों और गुत्थियों का चित्रण किया है।
- इनके उपन्यास नायिका प्रधान उपन्यास माने जाते हैं।
- अपने उपन्यासों में यौन समस्याओं एवं स्वच्छंद प्रणय की अनुभूतियों का विशिष्ट एवं विचित्र रूप में प्रस्तुत करने के कारण इनको पर्याप्त ख्याति प्राप्त हुई।
- 'मुक्तिबोध उपन्यास के लिए इनको 1966 ई. में साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला था।
- ये 'फ्रायड' के मनोविज्ञान से प्रभावित उपन्यासकार है।
- 1973 ई. में दिल्ली वि.वि. ने इनको डी.लिट्. की मानद उपाधि प्रदान की थी।
- 1970 ई. में भारत सरकार द्वारा 'पद्म भूषण' से अलंकृत किया गया।

2.इलाचंद्र जोशी (1902-1982 ई.)

1. लज्जा -1929 ई.
2. संन्यासी-1941 ई.
3. पर्दे की रानी-1941 ई.
4. प्रेत और छाया-1946 ई.
5. निर्वासित-1946 ई.
6. मुक्तिपथ-1950 ई.
7. जिप्सी-1952 ई.
8. सुबह के भूले-1952 ई.
9. जहाज का पंछी-1955 ई.
10. ऋतुचक्र
11. घृणामयी-1929 ई. (सर्वप्रथम उपन्यास)
12. भूत का भविष्य-1973 ई.

विशेष -

- इनके उपन्यासों में काम, अहं, दंभ, आत्महीनता की ग्रंथि आदि के विविध रूपों का चित्रण अत्यन्त सूक्ष्म, यथार्थ एवंसजीव रूप में हुआ है।
- 'संन्यासी' इनका सर्वप्रसिद्ध उपन्यास है। इस उपन्यास में ही पहली बार मनोविश्लेषणत्मक पद्धति की विवृत्ति देखी जाती है।
- » ये 'फ्रायड' के मनोविश्लेषण से प्रभावित उपन्यासकार हैं।

3. अज्ञेय (1911-1987 ई.)

(1) शेखर : एक जीवनी भाग-एक (1940) शेखर के किशोरावस्थाका विश्लेषण | भाग-दो (1944) शेखर के विद्रोही व्यक्तित्व, प्रेम-प्रसंग का चित्रण।

(2) नदी के द्वीप (1951) इसमें रेखा, भुवन एवं गौरा की प्रेम कथा का मनोविश्लेषण शैली से चित्रण किया गया है।

(3) अपने अपने अजनबी (1961) इस उपन्यास का विषय 'मृत्यु से साक्षात्कार' है।

- शेखर एक जीवनी 'फ्लैश बैक शैली' में लिखी गई रचना है।
- शेखर एक जीवनी 'उपन्यास पर रोमा रोलॉ की कृति 'जाँ क्रिस्तॉफ' का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है।
- -शेखर एक जीवनी में अज्ञेय ने आज की प्रखर वैज्ञानिक-बौद्धिक चेतना के आलोक में पारस्परिक भारतीय जीवन को गहराई से देखा और अनेक स्तरों पर आस्था की पुरानी जडों को झकझोरा है।
- आलोचकों ने शेखर : एक जीवनी को 'प्रकाशमान पुच्छल तारा' कहा है।
- -नदी के द्वीप में पत्र शैली, प्रत्यवलोकन शैली, चेतना प्रवाह शैली सभी का प्रयोग एक साथ मिलता है।
- 'नदी के द्वीप' में अज्ञेय का व्यक्तिवादी जीवन-दर्शन और स्पष्ट हुआ है।
- अपने-अपने अजनबी में अज्ञेय अस्तित्ववादी दर्शन का समर्थन करते है।

4. डॉ. देवराज

1. पथ की खोज-1951 ई.
2 .बाहर-भीतर-1954 ई.
3. अजय की डायरी-1960 ई.
4. रोड़े और पत्थर-1958 ई.
5. मैं, वे और आप
6. दूसरा सूत्र
7. न भेजे गये पत्र

5. डॉ. धर्मवीर भारती

1. गुनाहों का देवता-1949 ई.
2. सूरज का सातवाँ घोडा

6. प्रभाकर माचवे

1. द्वाभा-1954
2. साँचा-1955
3. तीस-चालीस-पचास-1973
4. परंतु-1952
5. दर्द के पैबंद-1974
6. किसलिए-1975
7. द्यूत-1976

8. आँखें मेरी बाकी उनका-1983
9. लापता-1984
10. अनदेखी-1978
11. कहाँ से कहाँ-1978

7. अनंत गोपाल शेवढे

1. मृगजल
2. निशागीत

8. नरेश मेहता

1. डूबते मस्तूल-1954 ई.
2. यह पथबंधु था-1962 ई.
3. धूमकेतु-एक श्रुति-1962 ई.
4. नदी यशस्वी है
5. उत्तरकथा-1982 (2 भाग)

9. गिरिधर गोपाल

1. चाँदनी के खण्डहर-1954 ई. (24 घंटों की जिंदगी का विश्लेषण)
2. कन्दील और कुहासे

10. नरोत्तम प्रसाद नागर

1. दिन के तारे

2. साम्यवादी या प्रगतिवादी उपन्यास

प्रमुख विशेषताएँ -

- इन उपन्यासों में शोषक एवं शोषित वर्ग के विभिन्न पात्रों के माध्यम से आधुनिक युग की राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों पर प्रकाश डाला गया है। > इनमें सामाजिक क्रान्ति के व्यापक लक्ष्य को सामने रखकर जीवन की विभिन्न परिस्थितियों एवं प्रवृत्तियों का अंकन यथार्थपरक शैली में किया गया है।
- >इनके लेखन का प्रमुख उद्देश्य वर्तमान पूँजीवादी सभ्यता के दोषों, शोषक वर्ग के अत्याचारों, आर्थिक विषमता के दुष्परिणामों, शोषित वर्ग की दयनीय स्थितियों एवं समाज की यथार्थ परिस्थितियों का चित्रण करना माना जाता है।

प्रमुख साम्यवादी उपन्यासकार

1. यशपाल (1903-1976 ई.)

» जन्मस्थान-फीरोजपुर छावनी (पंजाब)

1. दादा कामरेड-1941 ई.
2. देशद्रोही-1943 ई.
3. दिव्या-1945 ई.
4. पार्टी कामरेड-1946 ई.
5. मनुष्य के रूप'-1949 ई.
6. अमिता-1956 ई.
7. बारह घंटे-1964 ई.
8. झूठा सच-1960 ई. दो भाग-प्रथम-1958 ई. (वतन और देश), द्वितीय-1960 ई. (देश का भविष्य)
9. मेरी तेरी उसकी बात-1974 (1942 की क्रान्ति पर आधारित उपन्यास)

विशेष -

- ये प्रगतिवादी उपन्यास परम्परा के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार माने जाते हैं।
- 'झूठा-सच' देश-विभाजन की त्रासदी पर आधारित इनका सर्वश्रेष्ठ चर्चित उपन्यास है।
- अपने उपन्यासों में इन्होंने नारी की समस्याओं को भी पूरी सहानुभूति से प्रस्तुत किया है।

2. भैरव प्रसाद गुप्त

1. मशाल-1951 ई.
2. नया आदमी
3. गंगा मैया-1953 ई.
4. जंजीरें
5. सत्ती मैया का चौरा
6. काशी बाबू-1987 ई.
7. अक्षरों के आगे मास्टरजी-1993
8. भाग्यदेवता-1990
9. छोटी सी शुरुआत-1997 (मृत्युपरान्त)

विशेष -

> इनका पहला उपन्यास 'शोले' 1941 ई. में प्रकाशित हुआ था।

3. रांगेय राघव

1. विषाद मठ

2. सीधा सादा रास्ता
3. बौने और घायल फूल
4. दायरे
5. कल्पना
6. हुजूर
7. प्रोफेसर
8. आखिरी आवाज
9. कब तक पुकारूँ (ब्रज के नटों के जीवन का वर्णन)
10. अँधेरे के जुगनूँ (आंचलिक श्रेणी का उपन्यास) -1953 ई.
11. मुर्दो का टीला (मोहनजोदडो का गणतंत्र) - 1948 ई.
12. घरौंदे-1946 ई.
13. चीवर-1951 ई.
14. राह न रुकी-1958
15. महायात्रा गाथा-1960 ई.
16. डॉक्टर
17. छोटी सी बात
18. प्रतिदान
19. बंदूक और बीन
20. यशोधरा जीत गई-1954 ई.
21. जब आवेगी काली घटा-1958 ई.

4. अमृतराय

1. बीज-1953 ई.
2. नागफनी का देश
3. हाथी के दाँत
4. धूआँ

5. भगवती चरण वर्मा

1. पतन-1929 ई.
2. चित्रलेखा-1934 ई.
3. भूले बिसरे चित्र-1059 ई.
4. सामर्थ्य और सीमा-1962 ई.
5. सबहिं नचावत राम गोसाईं

6. टेढ़े मेढ़े रास्ते-1946 ई.
7. अपने खिलौने-1957 ई.
8. सीधी सच्ची बातें
9. तीन वर्ष-1946 ई.
10. आखिरी दांव-1950 ई.
11. वह फिर नहीं आई-1960 ई.
12. रेखा
13. प्रश्न और मरीचिका
14. चाणक्य
15. युवराज चुण्डा 16. थके पाँव-1963 ई.
16. केरवा-1964 ई.

विशेष -

> 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' उपन्यास में एक ऐसे परिवार का चित्रण है जिसमें पिता सामंतवादी है एवं उसके तीन पुत्रों में से एक गाँधीवादी हैं, दूसरा आतंकवादी है और तीसरा साम्यवादी है।

> 'भूले बिसरे चित्र' इनका सर्वप्रसिद्ध उपन्यास है। इसमें चार पीढ़ियों की परिवर्तनशील कथा का चित्रण किया गया
है।

6. अमृतलाल नागर

1. महाकाल-1947 ई.
2. सेठ बाँके मल-1955 ई.
3. बूंद और समुद्र-1956 ई.
4. शतरंज के मोहरे-1959 ई.
5. ये कोठे वालियाँ-1961 ई.
6. सुहाग के नूपुर-1960 ई.
7. अमृत और विष
8. करवट-1985 ई.
9. एकदा नैमिषारण्ये
10. नाच्यो बहुत गोपाल
11. मानस का हंस (गोस्वामी तुलसीदास का जीवन वृत्तान्त)
12. खंजन नयन (सूरदास का जीवन वृत्तांत) - 1981 ई.
13. बिखरे तिनके-1982
14. अग्निगर्भा-1983

15. पीढ़ियाँ-1990

विशेष -

- "बूंद और समुद्र' इनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास हैं। इसमें बूंद 'व्यक्ति' का तथा समुद्र 'समाज' का प्रतीक है।
- इनका पहला उपन्यास 'महाकाल' 1947 ई. में प्रकाशित हुआ था।
- 'नाच्यो बहुत गोपाल' उपन्यास में समाज से सर्वथा उपेक्षित हरिजनों के संघर्षमय जीवन की कहानी है।

7. मन्मथनाथ गुप्त

1. अवसान 2. जययात्रा 3. सुधार 4. अंधेर नगरी 5. चक्की 6. रक्षक-भक्षक 7. दो दुनियाँ 8. बहता पानी 9. शहीद और शोहदे-1970 ई.

8. उपेन्द्रनाथ 'अश्क' (जन्म 1910 ई., जालंधर (पंजाब))

1. सितारों का खेल-1937 ई. (पहला उपन्यास)
2. गिरती दीवारें-1947 ई.
3. गरम राख-1952 ई.
4. बडी-बड़ी आँखें-1954 ई.
5. शहर में घूमता आईना-1963 ई.
6. बाँधों न नाव इस ठाँव-1964 ई.
7. एक नन्हीं किंदील-1969 ई. 8. पत्थर-अल-पत्थर-1957 ई.

विशेष -

- प्रेमचंदजी की तरह इन्होंने भी प्रारंभ में 'उर्दू में लेखन कार्य किया था।
- इन्होंने 'भूचाल' नामक साप्ताहिक पत्र का संपादन किया था।
- कुछ दिनों तक इन्होंने ऑल इंडिया रेडियो और फिल्म जगत् में भी काम किया था।

9. यज्ञदत्त शर्मा -

1. दो पहलू-1940 ई.
2. इंसान-1947 ई.
3. अंतिम चरण
4. बदलती राहें

10. महेन्द्रनाथ

1. आदमी और सिक्के-1952 ई.
2. रात अंधेरी है-1954 ई.

11. नित्यानंद वात्स्यायन

1. केला बाडी-1952 ई.

3. ऐतिहासिक उपन्यास/व्यक्तिवादी उपन्यास

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी

1. बाणभट्ट की आत्मकथा-1946 ई.
2. चारुचन्द्र लेखा 1962 ई.
3. पुनर्नवा
4. अनामदास का पोथा (अथ रैक्व आख्यान)

2. गोविंद बल्लभ पंत

1. अमिताभ-1946 ई.
2. एक सूत्र-1946 ई.
3. नूरजहाँ-1949 ई.

सामाजिक उपन्यास (गोविन्द बल्लभ पंत के)

1. प्रतिभा-1934 ई.
2. मदारी
3. यामिनी
4. मुक्ति के बंधन
5. जल समाधि
6. पर्णा
7. मैत्रेय
8 . फॉरेगैट भी नॉट
9. कागज की नाव
10. प्रगति की राह

3. वाल्मीकि त्रिपाठी

1. प्रजाप्रिय प्रजेश
2. जहाँदारशाह
3. विकलांग

4. सत्ता और संघर्ष-1963 ई.

4. उदयशंकर भट्ट

1. सागर, लहरें और मनुष्य-1956 ई.
2. एक नीड़ दो पक्षी-1959 ई.
3. नये मोड़-1954 ई.
4. लोक-परलोक-1958 ई.
5. शेष-अशेष-1960 ई.
6. दो अध्याय-1962 ई.

5. डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल

1. धरती की आँखें-1951 ई.
2. बया का घोंसला और साँप-1953 ई.
3. रूपाजीवा
4. मन वृंदावन
5. प्रेम अपवित्र नदी
6. काले फूल का पौधा
7. पुरुषोत्तम-1983
8. गली अनारकली-1985
9. कनाट प्लेस-1986

6. उषादेवी मित्रा -

1. वचन का मोल-1936 ई.
2. पिया-1937 ई.
3. जीवन री मुस्कान-1939 ई.
4. पथचारी-1940 ई.
5. आवाज-1946 ई.
6. सोहिनी-1949 ई.
7. नष्ट नीड़-1955 ई.

7. रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

1. चढ़ती धूप-1945 ई.
2. नई इमारत-1946 ई.
3. उल्का -1947 ई.

4. मरु प्रदीप-1951 ई.

8. कृष्णचन्द्र भिक्खु

1. आदमी का बच्चा-1950 ई.
2. संक्रान्ति-1951 ई.
3. भँवर जाल-1954 ई.

9. जनार्दन मुक्तिदूत

1. अधूरा उपन्यास-1951 ई.

10. विष्णु प्रभाकर (जन्म-1912 ई., मीरनपुर, मुजफ्फरनगर, उ.प्र.)

1. निशिकान्त-1955 ई.
2. अर्द्धनारीश्वर-1992
3. तट के बंधन
4. स्वप्नमयी
5. ढलती रात
6. संकल्प-1993 ई.

नोट:- 'अर्द्धनारीश्वर उपन्यास के लिए इनको 1993 ई. में साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला था।

4. आंचलिक उपन्यास (ग्रामीण उपन्यास)

प्रमुख विशेषताएँ -

- इन उपन्यासों का प्रवर्तन 1950 ई. के बाद हुआ था।
- इनमें किसी अंचल या प्रदेश विशेष के ग्रामीण वातावरण एवं लोक संस्कृति का चित्रण किया जाता है।
- इनकी भाषा में भी प्रायः ठेठ ग्रामीण बोलचाल की भाषा के शब्दों/मुहावरों का प्रयोग किया जाता है।

प्रमुख आंचलिका उपन्यासकार :

1. फणीश्वरनाथ रेणु

1. मैला आंचल-1954 ई.
2. परती परिकथा-1957 ई.
3. जुलूस-1965 ई.
4. दीर्घतपा-1964 ई.

5. कितने चौराहे-1966 ई.
6. कलंकमुक्ति -1976 ई.

विशेष -

- 'मैला आंचल' में किसान जमींदार संघर्ष तथा तत्संबंधी राजनीतिक आन्दोलनों का चित्रण किया गया है।
- 'परती परिकथा' में भी जमींदारी प्रथा के अंत, नये बंदोबस्त, भूमिदान, ग्रामीण नेताओं के अभ्युदय, नेताओं की स्वार्थ परायणता, घूस, राजनीतिक पार्टियों की धांधली आदि का चित्रण करते हुए स्वतंत्र भारत की प्रगति एवं दुर्गति का दिग्दर्शन करवाया गया है।
- डॉ. नगेन्द्र केवल इनको ही आंचलिक उपन्यासकार मानते हैं, अन्य किसी को भी नहीं।

2. नागार्जुन

1. नयी पौध-1953 ई.
2. बाबा बटेसरनाथ-1954 ई.
3. बलचनामा-1952 ई.
4. वरुण के बेटे-1957 ई.
5. हीरक जयन्ती-1961 ई.
6. दुःख मोचन-1957 ई.
7. कुम्भीपाक-1960 ई.
8. उग्रतारा-1963 ई.
9. रतिनाथ की चाची
10. चेहरे नये पुराने
11. इमरतिया

विशेष -

> इनके उपन्यासों में "मिथिला' की लोकसंस्कृति का यथार्थ चित्रण किया गया है।

3. देवेन्द्र सत्यार्थी

1. रथ के पहिए
2. कठपुतली
3. दुधगाह

4. वीरेन्द्र नारायण

1. अमराई की छाँह

5. महन्त धनराजपुरी

1. अविरल आँसू

6. शैलेश मटियानी

1. हौलदार
2. छोटे-छोटे पक्षी
3. किस्सा नर्बदाबेन गंगूबाई
4. चंद औरतों का शहर-1981
5. बावन नदियों का संगम-1981
6. गोपुली गफूरन-1981
7. अर्द्धकुंभ की यात्रा-1993
8. मुठभेड-1984
9. उत्तरकांड-1995

7. डॉ. रामदरश मिश्र

1. पानी की प्राचीर
2. जल टूटता हुआ-1969
3. दूसरा घर-1986
5. सूखता हुआ तालाब-1972
6. थकी हुई सुबह-1994
7. बिना दरवाजे का मकान-1984
8. बीस बरस-1996

8. बलवन्त सिंह

1. 'रात, चोर और चाँद'

9. राजेन्द्र अवस्थी-'तृषित'

1. जंगल के फूल-1960 ई.
2. जाने कितनी आँखें
3. एक रजनीगंधा की चोरी-1985

10. कैलास वात्स्यायन

1. 'लम्बे, ठिगने, बौने'

11. श्यामू सन्यासी

1. उत्थान

12. राही मासूम रजा

1. आधा गाँव-1966
2. दिल एक सादा कागज
3. ओस की बूंद
4. टोपी शुक्ला
5. हिम्मत जौनपुरी
6. असंतोष के दिन-1986
7. सीन-75
8. नीम का पेड-2003
9. कटरा बी आरजू

13. शिवप्रसाद सिंह

1. अलग-अलग वैतरणी
2. गली आगे मुडती है
3. दिल्ली दूर है
4. कुहरे में युद्ध
5. वैश्वानर

14. श्रीलाल शुक्ल

1. राग दरबारी-1968 ई.
2. आदमी का जहर
3. अज्ञातवास
4. पहला पडाव-1987
5. बिश्रामपुर का संत-1998
6. राग-विराग-2005

विशेष -

> 'राग दरबारी' उपन्यास के लिए इनको 1969 ई. में साहित्य अकादमी पुरस्कार एवं हिन्दी साहित्य में विशिष्ट योगदान को देखकर इनको वर्ष 2009 ई. में 'अमरकांत' के साथ संयुक्त रूप से 'भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार' प्राप्त हुआ था।

इस उपन्यास में ग्राम पंचायतों की दलबंदी, गुटबंदी तथा चुनावों के हथकंडों, सरकारी अधिकारियों एवं राजनीतिक कर्मचारियों में भ्रष्टाचार पर व्यंग्य किया गया है। यह रिपोर्ताज शैली में लिखा गया उपन्यास है।

15. विवेकी राय

1. सोना माटी-1983
2. बबूल
3. लोक ऋण
4. समर शेष है-1988
5. मंगल भवन-1994
6. अमंगल हारी-2000
7. देहरी पार-2003

16. हिंमाशु श्रीवास्तव

1. रथ के पहिए

17. कृष्णा अग्निहोत्री

1. टप्परे वाले

18. निरुपमा सेवती

1. बंटता हुआ आदमी

19. मालती पलूकर

1. इन्नी

20. रजनी पनिक्कर

1. महानगर की मीता 2. दूरियाँ

21. मालती जोशी

1. पाषाण युग

22. मीनाक्षी पुरी

1. जाने-पहचाने अजनबी

23. हरिप्रकाश त्यागी

1. दूसरा आदमी लाओ

24. सुरेन्द्र तिवारी

1. फिर भी कुछ

5 प्रयोगवादी या आधुनिकताबोधवादी उपन्यास

> अनेक लेखकों द्वारा मिलकर लिखा गया उपन्यास-ग्यारह सपनों का देश

> प्रयोगवादी काव्य परम्परा की तरह भारत की आजादी के बाद उपन्यास साहित्य में लेखकों के द्वारा कुछ नये प्रयोगकिये गये, जिनमें मुख्य उपन्यासकार निम्नानुसार हैं -

1. मोहन राकेश

1. न आने वाला कल
2. अन्तराल-1972 ई.
3. अंधेरे बंद कमरे-1961 ई.
4. नीली रोशनी की बाहें
5. काँपता दरिया

2. मन्नू भण्डारी (जन्म-1931 ई., गाँव-भानपुरा, जिला-मंदसौर, म.प्र.)

1. महाभोज
2. आपका बंटी-1971
3. एक इंच मुस्कान ('राजेन्द्र यादव' के साथ सह लेखन) 4. स्वामी

प्राप्त पुरस्कार -

1. हिंदी अकादमी दिल्ली का शिखर सम्मान (बिहार सरकार)
2. भारतीय भाषा परिषद्, कोलकत्ता सम्मान
3. राजस्थान संगीत नाटक अकादमी सम्मान
4. उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान पुरस्कार

नाट्य रूपांतरण -

1. इनके 'महाभोज' उपन्यास का नाट्य रूपान्तरण भी किया गया था।

3. शिव प्रसाद मिश्र 'रुद्र'

1. बहती गंगा-1952 ई.

नोट :- इस उपन्यास में सत्रह कहानियों (तरंगों) के माध्यम से काशी के दो सौ वर्ष के इतिहास की झलक अलग-अलग रूपों में प्रस्तुत की गई है। इनके शीर्षक भी आकर्षक रखे गये हैं। यथा -

1. गाइये गणपति जगवंदन
2. सूली ऊपर सेज पिया की
3. एही छैया झुलनी हेरानी हो राम

4. राजेन्द्र यादव

1. उखड़े हुए लोग-1956 ई.
2. सारा आकाश
3. शह और मात-1959 ई.
4. कुलटा-1958 ई.
5. मुखर चिंतन
6. प्रेत बोलते हैं-1952 ई.
7. अनदेखे अनजान पुल-1963 ई.
8. एक इंच मुसकान (मन्नू भंडारी के साथ सह-लेखन)

5. निर्मल वर्मा

1. वे दिन-1964 ई.
2. लाल टीन की छत
3. एक चिथड़ा सुख
4. रात का रिपोर्टर-1989
5. अंतिम अरण्य-2000

नोट:- हिन्दी साहित्य में सम्पूर्ण योगदान के लिए इनको 1999 ई. में भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

6. रमेश वक्षी

1. हम तिनके
2. अठारह सूरज के पौधे-1965
3. वैशाखियों वाली इमारतें-1966
4. एक घिसा हुआ चेहरा-1964
5. चलता हुआ लावा

7. अभिमन्यु अनन्त

1. सर्चलाइट की धुंधली आकृतियाँ
2. अपनी-अपनी सीमा-1983

3. लहरों की बेटी-1995

8. योगेश गुप्त

1. छविनाथ
2. टूटते हुए सूर्य बिम्ब
3. अनायास - 1982

9. श्याम परमार 'शिवानी'

1. चौदह फेरे

10. उषा प्रियंवदा

1. पचपन खंभेः लाल दीवारें-1961
2. रुकोगी नहीं राधिका-1967
3. शेष यात्रा-1984
4. अंतर्वशी-2000

11. भीष्म साहनी

1. तमस (पंजाब विभाजन' पर) - 1973
2. वसन्ती ('मजदूरों की दुर्दशा पर)
3. भाग्यरेखा
4. कडियाँ-1970
5. कुन्ती -1993
6. झरोखे
7. मय्यादास की माडी-1988
8. नीलू, नीलिमा, नीलोफर-2000

नोट :- 'तमस' उपन्यास के लिए इनको 1975 ई. में साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

12. मार्कण्डेय

1. सेमल का फूल

13. सुरेन्द्रपाल

1. लोक लाज खोई

14. रामवृक्ष बेनीपुरी (1902-1968 ई., ग्राम-बेनीपुर, जिला-मुजफ्फरपुर (बिहार))

1. पतितों के देश में

विशेष -

- इन्होंने 'तरुण भारत', 'किसान मित्र', 'बालक', 'जनवाणी', 'योगी', 'जनता', 'युवक', 'कर्मवीर', 'हिमालय', 'नयी धारा' जैसी पत्रिकाओं का संपादन कार्य किया था।
- >इनकी समस्त रचनाएँ 'बेनीपुरी ग्रंथावली' नाम से आठ खंडों में प्रकाशित हो चुकी हैं।

15. शरद देवड़ा

1. टूटती इकाइयाँ

16. राजकमल चौधरी

1. मछली मरी हुई-1966 ई.

17. दिनेशनंदिनी डालमिया

1. फूल का दर्द-1986
2. आँख मिचौली-1991
3. यह भी झूठ है-1993
4. मरजीवा-1996
5. व्यूहबद्ध-20026. जहर मोहरा-2003

18. श्रीकान्त वर्मा

1. दूसरी बार

19. गिरिराज किशोर

1. यात्राएँ-1971 ई.
2. इन्द्र सुनें
3 जुगलबंदी
4. तीसरी सत्ता-1982
5. यथाप्रस्तावित-1982
6. चिडियाघर
7. परिशिष्ट-1984
8. असलाह-1987
9. अंतर्ध्वंस-1990
10. ढाई घर-1991

11. यातनाघर-1997
12. पहला गिरमिटिया-1999

नोट :- 'ढाई घर' उपन्यास के लिए इनको 1992 ई. में साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

20. प्रमोद सिन्हा

1. उसका शहर

21. मणि मधुकर

1. सफेद मेमने-1971 ई.

22. जगदीश चन्द्र

1. धरती धन न अपना-1972 ई.
2. कभी न छोड़े खेत
3. मुट्ठी भर काँकर
4. घासगोदाम-1985
5. नरककुंड में बास-1994.
6. लाट की वापसी-2000
7. जमीन अपनी तो थी-2000

23. गोविन्द मिश्र

1. लाल पीली जमीन
2. वह अपना चेहरा-1971
3. उतरती हुई धूप
4. हुजूर दरबार-1981
5 . तुम्हारी रोशनी में-1985
6. धीर समीरे-1988
7. पाँच अंगनों वाला घर-1995
8. फूल, इमारतें और बंदर-2000
9. कोहरे में कैद रंग (इस उपन्यास के लिए इनको 2008 ई. में साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला है।)

24. रमेश चन्द्र शाह

1. किस्सा गुलाम-1986
2. पूर्वापर-19903
3. गोबर गणेश

विशेष -

> 'गोबर गणेश' उपन्यास तीन खण्डों में विभाजित है -

1. अन्नजल
2. त्रिपार्श्व
3. अपने हिस्से का आसमान

25. जगदंबा प्रसाद दीक्षित

1. मुर्दाघर-1974 ई.
2. अकाल-1997

26. धर्मेन्द गुप्त

1. नोन तेल लकडी-1981
2. खुशबू और पत्तियाँ-1983
3. नगर पुत्र हँसता है
4. गवाह है शेखपुरा-1985
5. रिश्ते शहर के-1986
6. सफर-दर-सफर-1986
7. इसे विदा मत कहो-1994
8. एक नाम : झीनी-2001
9. रंगी हुई चिडिया-1990

27. महीश सिंह

1. यह भी नहीं

28. डॉ. मनमोहन सहगल

1. जिन्दगी और जिन्दगी
2. मानव छला गया
3. बदलती करवटें
4. जिंदगी और आदमी
5. कश्मीर की कसक
6. गुरु लाधो रे
7. एक और रक्त बीज

8. अन्ना पासवान

29. देवेश ठाकुर

1. प्रिय शबनम
2. जनगाथा-1985

30. डॉ. हेमराज "निर्मम'

1. गुरुकुल-1989
2. बसन्त फिर आयेगा
3. मुझे भूल जाना

4 सीप और मोती

5. मकडी और जाल

31. सतीश जमाली

1. प्रतिबद्ध

32. रमाकान्त

1. छोटे-छोटे महायुद्ध

2 ज्यादा फर्जी अदब

33. शिवसागर मिश्र

1. अक्षत

2 जनमेजय बचा

3. अजन्मा वह

34. केशव प्रसाद मिश्र

1. काली दीवार

35. कमलेश्वर

1. तीसरा आदमी-1964 ई.
2. एक सडक सत्तावन गलियाँ-1961 ई.
3. डाक बंगला-1962 ई.
4. लौटे हुए मुसाफिर-1963 ई.
5. काली आंधी
6. समुद्र में खोया हुआ आदमी-1965

7. आगामी अतीत-1976 ई.
8. सुबह, दोपहर, शाम-1982 ई.
9. रेगिस्तान-1988 ई.
10. कितने पाकिस्तान-2000 ई. (इस उपन्यास के लिए इनको 2003 ई. में साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला था।)

36. विपिन चतुर्वेदी

1. उखड़े कदम

37. मनोहर श्याम जोशी

1. कुरु-कुरु स्वाहा-1980
2. कसप-1982
3. हरिया हरक्यूलीज की हैरानी-1994
4. टा-टा-प्रोफेसर-2001
5. हमजाद-1996
6. क्याप-2001 (इस उपन्यास के लिए इनको 2005 ई. में साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला था।)

38. यादवेन्द्रनाथ शर्मा 'चन्द्र'

1. गुनाहों की देवी
2. हजार घोडों का सवार
3. पथहीन
4. दिया जला, दिया बुझा

39. गजानन माधव मुक्तिबोध

1. विपात्र

40. हरिशंकर परसाई (1922-1995 ई.) जन्म स्थान-गाँव जमानी, होशंगाबाद (म.प्र.), संपादन-'वसुधा' पत्रिका

1. रानी नागमती की कहानी
2. तट की खोज

41. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना (1927-1983 ई.)

1. सोया हुआ जल-1977
2. पागल कुत्तों का मसीहा-1977
3. सूने चौखटे

4. कच्ची सडक-1978
5. उडते हुए रंग-1974
6. अंधेरे पर अंधेरा-1980

42. उदयराज सिंह

1. अंधेरे के विरुद्ध

43. सच्चिदानंद धूमकेतु

1. माटी की महक

44. मृणाल पाण्डे

1. पण्ढरपुर पुराण-1983
2. रास्तों पर भटकते हुए-2000

45. शिवप्रसाद सिंह

1. गली आगे मुडती है
2. नीला चाँद-1988 (साहित्य अकादमी पुरस्कार-1990 में)
3. शैलूष-1989
4. मंजुशिमा-1989
5. औरत-1992
6. कुहरे में युद्ध-1993
7. दिल्ली दूर है-1993
8. वैश्वानर-1996

46. डॉ. सुशील कुमार 'फुल्ल'

1. कहीं कुछ और
2. मिट्ठी की गंध
3. फूलों की छाया
4. नाग-फांस

47. काशीनाथ सिंह

1. अपना मोर्चा
2. काशी का अस्सी-2002

48. रवीन्द्र कालिया

2. ए.बी.सी.डी. - 2004
1. खुदा सही सलामत है-1984

49. गंगा प्रसाद विमल

1. मृगान्तक
2. अपने से अलग

51. पंकज विष्ट
1. उस चिडिया का नाम-1989

52. मधुकर सिंह

1. अर्जुन जिन्दा है

53. अशोक अग्रवाल

1. वायदा माफ गवाह

54. डॉ. इन्दुबाली

1. बांसुरिया बज उठी
2. सोये प्यार की अनुभूति

55. ममता कालिया

1. बेघर
2. लडकियाँ-1987
3. एक पत्नी के नोट्स-1997
4. दौड-2000

56. मंजुल भगत

1. अनारो
2. लेडी क्लब
3. खातुल-1983
4. तिरछी बौछार-1992
5. गंजी-1995

57. बदीउज्जमा

1. एक चूहे की मौत
2. छठा ब्राह्मण
3. सभापर्व-1994

58. कमल जोशी

1. बहता तिनका

59. हृदयेश

1. सफेद घोड़ा काला सवार
2. गाँठ-1970 ई.
3. हत्या-1971 ई.
4. साँड-1981
5. पुनर्जन्म-1985
6. दण्डनायक-1990
7. पगली घंटी-1995

60. नरेन्द्र कोहली

1. दीक्षा
2. अवसर
3. संघर्ष की ओर
4. युद्ध (2 भाग)
5. महासमर (8 खंड)
6. अभ्युदय (2 भाग)
7. तोडो कारा तोडो (3 भाग)
8. साथ रह गया दुःख
9. प्रतिक्रिया-1981
10. हम सब का घर
11. जंगल की कहानी
12. साथ सहा गया दुःख
13. अभिज्ञान-1981
14. टप्पर गाडी
15. निर्माण-1993
16. साधना-1993
17. न भूतो न भविष्यति

61. कृष्ण बलदेव वैद्य

1. मेरा बचपन
2. गुजरा हुआ जमाना-1982
3. मायालोक-1999
4. काला कोलाज-1989
5. एक नौकरानी की डायरी-2000
6. नरनारी-1996

62. शिवानी

1. कृष्णाकली-1969

63. नासिरा शर्मा

1. सात नदियाँ : एक समुंदर -1984

2 शाल्मली-1987

3. ठीकरे की मंगनी-1989
4. जिंदा मुहावरे-1993
5. अक्षयवट-2003
6. कुइयांजान-2005

64. मेहरुन्निशा परवेज

1. उसका घर

2.आँखों की दहलीज

3. अकेला पलाश-1981

65. कृष्णा सोबती (जन्म सन् 1925, गुजरात)

1. जिंदगीनामा-जिंदा रख (साहित्य अकादमी पुरस्कार-1980 में)
2. दिलोदानिश-1993
3. ऐ लड़की
4. समय सरगम-2002

66. मृदुला गर्ग (ये हिन्दी के साथ-साथ अंग्रेजी में भी लेखन कार्य करती हैं।)

1. चितकोबरा
2. मैं और मैं-1984

3. कठगुलाब-1996
4. मिलजुल मन (साहित्य अकादमी पुरस्कार, 2013)

67. राजीसेठ

1. तत्सत-1983
2. निष्कवच-1995

68. महेन्द्र भल्ला

1. उडने से पश्तर-1987
2. दो देश और तीसरी उदासी-1997
3. एक पति के नोट्स

69. अमरकांत

1. बीच की दीवार-1981
2. सुखजीवी-1982
3. इन्हीं हथियारों से (साहित्य अकादमी पुरस्कार-2007 में)

70. सुनीता जैन

1. तितिक्षा-2000 (पूर्व प्रकाशित पाँच उपन्यासों का संग्रह)

71. कुसुक अंचल

1. अपनी-अपनी यात्रा-1985
2. एक और पंचवटी-1985
3. रेखाकृति-1989
4. तापसी-2003

72. महीप सिंह

1. अभी शेष है-2004

73. हिमांशु जोशी

1. समय साक्षी है-1982

74. चंद्रकांता

1. सुराज-1982
2. अंतिम साक्ष्य-1981

3. बाकी सब खैरियत है-1983
4. ऐलान गली जिंदा है-1984
5. यहाँ वितस्ता बहती है-1992
6. अपने-अपने काणार्क-1995
7. कथासतीसर-2001

75. सूर्यबाला

1. अग्निपंखी-1984
2. दीक्षांत-1992

76. प्रभा खेतान

1. तालाबंदी-1991
2. छिन्नमस्ता-1993
3. पीली आँधी-1996
4. आओ पेपे घर चलें-1990
5. अपने-अपने चेहरे-1994

77. सिम्मी हर्षिता

1. संबंधों के किनारे-1984
2. यातना शिविर-1990
3. रंगशाला-2003

78. मैत्रेयी पुष्पा

1. सर्पदंश-1990
2. बेतवा बहती रही-1993
3. इदन्नमम-1994
4. चाक-1997
5. झूठा नट-1999
6. अल्मा कबूतरी-2000
7. कही ईश्वर फाग-2004
8. त्रियाहठ-2005

79. अलका सरावगी

1. कलिकथा : वाया बाईपास-1998 (साहित्य अकादमी पुरस्कार -2001 ई. में)

80. चित्रा मुद्गल

1. एक जमीन अपनी-1990
2. आवां-1999
3. गिलिगुड-2002

81. विनोद कुमार शुक्ल

1. फिर खिलेगा तो देखेंगे-1996
2. दीवार में एक खिडकी रहती थी-1997 (सा.अ.पु.-1999 ई. में)

82. सुरेन्द्र वर्मा

1. अंधेरे से परे-1980
2. बंबई भित्तिलेख-1981
3. मुझे चाँद चाहिए-1993 (सा.अ.पु. - 1996 ई. में)

83. दूधनाथ सिंह

1. आखिरी कलाम-2003

84. मिथिलेश्वर

1. युद्धस्थल-1981
2. प्रेम न बाडी उपजे-1995
3. यह अंत नहीं-2000
4. सुरंग में सुबह-2003

85. भगवानदास मोरवाल

1. काला पहाङ-1999
2. बावल तेरा देश में-2004

86. संजीव

1. किसनगढ़ के अहेरी-1981,
2. सर्कस-1984
3. सावधान नीचे आग है-1986
4. धार-1990
5. पाँव तले की दूब-1990
6. जंगल जहाँ शुरू होता है-2000

7. सूत्रधार-2003

87. असगर वजाहत

1. सात आसमान-1996
2. कैसी आग लगायी-2004
3. मुखडा क्या देखें-1996

88. अब्दुल बिस्मिल्लाह

1. झीनी-झीनी बीनी चदरिया-1986
2. जहरवाद-1987

89. क्षितिज शर्मा

1. उकाव-1992
2. पगडंडियाँ-2003

90. उदयप्रकाश

1. मोहनदास (सा.अ.पु. -2010 ई. में)

91. काशीनाथ सिंह

1. रेहन पर रग्घू (सा.अ.पु. - 2011 ई. में)

हिन्दी के प्रमुख उपन्यासों के पात्र

उपन्यास	पुरूष पात्र	स्त्री पात्र
परीक्षा गुरू	मदनमोहन, ब्रजकिशोर	
सेवासदन	कृष्णचंद, गजाधर, उमानाथ, पद्यसिंह,	सुमन, भोली, गंगाजली,
	विट्ठलदास	शांता, सुभद्रा
प्रेमाश्रम	प्रभा शंकर, ज्ञान शंकर, प्रेम शंकर, मनोहर	
रंगभूमि	सूरदास, ज्ञानसेवक, मिठुआ	सोफिया
गबन	रतन, रामनाथ	जापला
गोदान	होरी, गोबर, दातादीन, मातादीन, झिंगुरी सिंह	धनिया, झुनिया,
	सिलिया, चुहिया	

	ब्रजमोहन, घासीराम,श्यामू	सावित्री, सुलोचना
बाणभट्ट की आत्मकथा	बाणभट्ट, अघोर भैरव, विरतिवज्र	निपुणिका, सुचरिता, महामाया भट्टिनी
चारूचंद्र लेख	सातवाहन, विद्याधर भट्ट	चद्रलेखा, मैना, भद्रकाली
पुनर्नवा	गोपाल आर्यक, देवरात, श्यामरूप, चारूदत्त	मृणाल, चंद्रा, मंजुला
कंकाल	श्रीचंद, मंगलदेव, देवनिरंजन	किशोरी, घंटी, लतिका
तितली माधुरी	इन्द्रदेव, रामनाथ, मधुवन	तितली, श्यामदुलारी, शैला,
इरावती	आनंदभिक्षु, अग्निमित्र, खारवेल	इरावती, कालिन्दी, मणिमाला
दिव्या	पृथुसेन, शिल्पी मारिस, रूद्रधीर	दिव्या, मल्लिका, रत्नप्रभा
झूठा-सच	सोमराज, प्राणनाथ, जयदेवपुरी, गिल, असद	उर्मिला, तारा, कनक
चित्रलेखा	योगी कुमार गिरि, बीजगुप्त	चित्रलेखा
परख	सत्यधन, बिहारी	कट्टो, गरिमा
सुनीता	श्रीकांत, हरिप्रसन्न	सुनीता
त्यागपत्र	प्रमोद	मृणाल, शीला
मैला आँचल	डॉ. प्रशांत, बालदेव, बावनदास, रामदास,	कमला, मंगलादेवी, लक्ष्मी
	विश्वनाथ प्रसाद, कालीचरण	
शेखर : एक जीवनी शशि, शारदा, शांति	शेखर	सरस्वती,
नदी के द्वीप	डॉ. भुवन, चंद्रमाधव	रेखा, गौरा
अपने-अपने अजनबी	पाल, जगन्नाथन, यान	योके, सेल्मा
तमस	वानप्रस्थीजी, मुरादअली, नत्थू, जरनैल सिंह	लिजा, बन्तो, राजो
	हरनाम सिंह, रिचर्ड	
राग दरबारी	वैद्यजी, प्रिसिंपल साहब, बद्री, लंगड	
गुनाहों का देवता	चन्दर	सुधा, विनती, गेसू, पम्मी
सूरज का सातवाँ	मणिक, मुल्ला	जमुना, लिलि. सत्ती

घोड़ा		
मुझे चाँद चाहिए वर्षा वशिष्ठ		हर्षवर्धन
उखड़े हुए लोग	शरद, शकुन, देशबंधु, सूरज, कपिल	जया, पद्मा, उमा, मायादेवी
नीला चाँद	कलचूरी नरेश, कर्णदेव, देववर्मा नरेश चंद्रदेव, कीर्तिवर्मा	
सूरजीमुखी अंधेरे के	दिवाकर	स्त्री
आपका बंटी शकुन		जय, बंटी
महाभोज	दा साहब, बिसेसर, बिंदा	
आँवा नमिता, किशोरी बाई		हीरा
कठगुलाब असीमा	विपिन	स्मिता, मारियान, नर्मदा,
ग्लोबल गाँव सोमा	लालचंद असुर, सरनाभाई, शिवदास, भीखा	ललिता, बुधनी दी,
का देवता		इरोम, सत्यभामा

हिन्दी उपन्यासों से संबंधित महत्त्वपूर्ण तथ्य -

- . आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लाला श्रीनिवासदास द्वारा रचित 'परीक्षा गुरू' को अंग्रेजी ढंग का हिन्दी का पहला मौलिक उपन्यास माना है।
- . अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' द्वारा रचित 'ठेठ हिन्दी का ठेठ' उपन्यास को 'मुहावरों की पाठ्य-पुस्तक' कहा जाता है।
- . राधाकृष्ण द्वारा रचित "निस्सहाय हिन्दु' उपन्यास में मुस्लिम समाज का अंकन किया गया है। यह गोवध-निवारण के लिए लिखा गया है।
- . प्रेमचन्द को 'उपन्यास-सम्राट' की संज्ञा बंग्ला कथाकार शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय ने दिया था।
- . पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने सर्वप्रथम हिन्दी उपन्यास में पत्रात्मक विधि का प्रवर्तन किया। पत्रात्मक विधि में रचित प्रथम उपन्यास 'उग्र' द्वारा रचित 'चंद हसीनों के खतूत शिवदास, भीखा (1927) है।

- . "विशाल भारत' पत्रिका के सं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने बेचन शर्मा 'उग्र' के उपन्यासों को 'घासलेटी साहित्य' कहा था।
- . जैनेन्द्र कुमार के साहित्यों का मूल विषय काम-पीडा एवं अहं का समर्पण है।
- . जैनेन्द्र कुमार पर गांधीवादी का पर्याप्त दिखाई देता है। जैनेन्द्र गांधीवाद से प्रभावित थे।
- . जैनेन्द्र ने सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन को 'अज्ञेय' नाम दिया था।
- . गोपालराम गहमरी ने 'गहमर' से 'जासूस' नामक मासिक पत्रिका निकाला।
- . प्रेमचंद का मूल रूप से हिन्दी में लिखित पहला उपन्यास कायाकल्प है। -
- . 'कायाकल्प' में प्रेमचंद ने पुर्नजन्म को कथा का आधार बनाया है।
- . फ्लैश बैक शैली में लिखित शेखर : एक जीवनी अज्ञेय का महत्त्वपूर्ण उपन्यास है।
- . 'अपने-अपने अजनबी' उपन्यास में अज्ञेय ने 'मृत्यु से साक्षात्कार' को विषय बनाया है।
- . डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भारतेन्दु के 'पूर्ण प्रकाश' और 'चन्द्रप्रभा' को हिन्दी का प्रथम उपन्यास माना है।
- . भगवतीचरण वर्मा कृत 'चित्रलेखा' फ्रेंच उपन्यासकार अनातोले कृत 'थाया' उपन्यास पर आधारित है।
- . हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'पुनर्नवा' उपन्यास में लोरिक चंदा की कथा को मृच्छकटिकम् की कथा से जोड़ा है।
- . 'अनामदास का पोथा' उपन्यास छांदोग्य उपनिषद् पर आधारित है।
- . प्रेमचंद ने निर्मला उपन्यास में दहेज प्रथा एवं अनमेल विवाह की समस्या का चित्रण किया।
- . वृंदावनलाल वर्मा को 'सर वाल्टर स्कॉट' की उपाधि प्रदान की गई है।
- . बाबा बटेसरनाथ उपन्यास में नागार्जुन ने एक वृक्ष को उपन्यास का नायक बनाया है।
- . उपन्यासकार उपेन्द्रनाथ अश्क को 'मध्यवर्ग का प्रसिद्ध चितेरा' कहा जाता है। -
- . अज्ञेय ने 'शेखर : एक जीवनी' की प्रशंसा 'प्रकाशमान पुच्छल तारा' कहकर की है।
- .'सूरज का सातवां घोडा' उपन्यास 'आलिफ लैला और 'पंचतंत्र' के ढंग पर लिखी गई सात अलग-अलग कहानियाँ किस्सागों से जुडकर उपन्यास बन जाती है।
- . गांधी जी के जीवन पर आधारित 'पहला गिरमिटिया' उपन्यास गिरिराज किशोर द्वारा रचित है।
- .'बा' उपन्यास में गिरिराज किशोर ने कस्तूरबा गांधी के जीवन का चित्रण किया है।
- . डॉ. रामविलास शर्मा ने अमृतलाल नागर के उपन्यासों को 'हिन्दी के गैर मानक रूपों का पिटारा' कहा है।
- . प्रेमचंद के आरंभिक उपन्यासों का संकलन 'मंगलाचरण' नाम से प्रकाशित हुआ। .
- . अज्ञेय के अनुसार "शेखर की खोज अन्ततोगत्वा स्वतंत्रता की खोज" है।
- ."शेखर : एक जीवनी' पर रोम्या रोलां की पुस्तक 'ज्यों क्रिस्तोफ' का प्रभाव लेखक ने स्वीकार किया है।
- . रांगये राघव का 'विषाद मठ' (1946 ई.) बंगाल के अकाल पर आधारित है।
- . 'प्रेत बोलते है' उपन्यास को सन् 1960 ई. में 'सारा आकाश' नाम से प्रकाशित कराया गया।

- . अभिमन्यु अनत प्रथम विदेशी हिन्दी लेखक है जो हिन्दी भाषा में उपन्यास लिखते है। इन्हें मारीशस का प्रेमचंद कहा जाता है।
- . मनोहर श्याम जोशी अपने उपन्यासों को 'गप्प बाइस्कोप' कहते हैं।
- . हिन्दी साहित्य और आलोचना में प्रेमचन्द को प्रतिष्ठित करने का श्रेय डॉ. रामविलास शर्मा को दिया जाता है। उन्होंने दो महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखी-(1) प्रेमचंद (2) प्रेमचंद और उनका युग
- . डॉ. धर्मवीर ने दलित दृष्टि से प्रेमचंद साहित्य का मूल्यांकन करते हुए "प्रेमचंद : सामंत का मुंशी" और "प्रेमचंद की नीली आंखे" नाम से पुस्तकें लिखी है।

प्रमुख उपन्यासकार एवं विचारधारा

सामाजिक उपन्यास

गौरीदत्त, श्रद्धाराम फुल्लौरी, लाल श्री निवासदास, बालकृष्ण भट्ट, राधाकृष्ण दास, ठाकुर जगमोहन सिंह, लज्जाराम मेहता, किशोरीलाल गोस्वामी, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

प्रकृतवादी उपन्यासकार

चतुरसेन शास्त्री, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', ऋषभचरण जैन, जयशंकर प्रसाद, अनुपलाल मण्डल

मनोविश्लेषणवादी उपन्यासकार

जैनेन्द्र कुमार, इलाचन्द जोशी, अज्ञेय, डॉ. देवराज

प्रगतिशील उपन्यासकार

यशपाल, भैरवप्रसाद गुप्त, अमृतराय, भीष्म साहनी, अमरकांत, मारकण्डेय, जगदीश चंद्र, मुद्राराक्षस, हृदयेश, विश्वम्भर नाथ उपाध्याय, काशीनाथ सिंह संजीव

मानवतावादी (गांधीवादी) उपन्यासकार

सियाराम शरण गुप्त, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, विष्णु प्रभाकर, उदयशंकर भट्ट

व्यक्तिवादी उपन्यासकार

भगवती चरण वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, भगवती प्रसाद वाजपेयी, लक्ष्मीनारायण लाल, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

ऐतिहासिक/ पौराणिक उपन्यासकार

वृन्दावनलाल वर्मा, चतुरसेन, शास्त्री, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, राहुल सांकृत्यायन, अमृतलाल नागर, शिवप्रसाद सिंह, कोहली, इकबाल बहादुर देवसरे, मनु शर्मा

आंचलिक उपन्यासकार

फणीश्वरनाथ रेणु, नागार्जुन, देवेन्द्र सत्यार्थी, राजेन्द्र अवस्थी, शैलेष मटियानी, रामदरश मिश्र, राही मासूम रजा, श्री लाल शुक्ल, शानी, हिमांशु जोशी, विवेकी राय, भगवानदास मोरवाल

हिन्दी नाटक का विकास

'नाटक' शब्द 'नट' धातु से बना है, जिसका अर्थ है-'अभिनय' । 'नाटक' साहित्य की वह विद्या है जिसका परीक्षण रंगमंच पर होता है और रंगमंच युग विशेष की जनरूचि और तत्कालीन आर्थिक व्यवस्था पर निर्मित होता है। रंगमंचीय गत्यात्मकता ही नाटक का मूल मर्म है। कालिदास ने नाट्य प्रदर्शन को 'चाक्षुष यज्ञ' कहा है।

नाटक, साहित्य की प्राचीनतम विद्या है। एक ओर त्रासदी (नाटक का प्राचीनतम यूनानी रूप) पर प्लेटो और अरस्तु जैसे दार्शनिकों के विचार मौजूद है तो दूसरी ओर हमारे यहाँ भारतीय काव्यशास्त्र पर प्राचीनतम ग्रंथ 'भरत मुनि' कृत 'नाट्य शास्त्र' प्राप्त होता है। नाट्यशास्त्र में भरत मुनि ने कहा है-देवताओं के प्रार्थना करने पर ब्रह्म ने ऋग्वेद से पाठ, सामवेद से गान, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर पांचवे वेद के रूप में नाट्य वेद की रचना की। भरत मुनि ने नाटक की सृष्टि के मूल में लोक का दुख माना हैं

हिन्दी का प्राचीनतम् नाटक साहित्य जो मैथिली भाषा में मिलता है, महाकवि विद्यापति द्वारा रचित 'गोरक्ष-विजय' को माना जाता है।

डॉ. दशरथ ओझा ने अपने अनुसंधान द्वारा सिद्ध किया है कि हिन्दी का सर्वप्रथम उपलब्ध नाटक 'गय-सुकुमार रास है, जो सवंत् 1279 वि. में रचित है।

17 वीं और 18 वीं शती में कुछ ऐसे पद्य-बद्ध नाटकों की रचना हुई जिनमें शास्त्री नियमों का पालन नहीं हुआ। इन नाटकों में प्राणचन्द चौहान कृत रामायण महानाटक (1610 ई.) बनारसीदास कृत समयसागर नाटक (1693) यशवंत सिंह कृत प्रबोध चंद्रोदय (1700) नेवाज कृत शकुन्तला नाटक (1729) कृष्ण जीवन लछीराम कृत करूणाभरण (1772) गुरु गोविन्द सिंह कृत चण्डी चरित उपलब्ध है। इनमें महाराज विश्वनाथ कृत आनंद रघुनंदन (1700) ही ऐसी रचना है, जिनमें शास्त्रीय नियमों का पालन हुआ है। अमानत कृत इंदरसभा (1853 ई.) को भी गीतिनाट्य होने पर भी हिन्दी नाटकों की परंपरा से नहीं जोडा जाता। इस प्रकार हिंदी नाटक की अविछिन्न परंपरा भारतेन्दु से ही माना जा सकता हैं।

आधुनिक गद्य साहित्य के आरंभ और विकास में नाटक साहित्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही हैं। इस संबंध में आचार्य शुक्ल लिखते हैं :

"विलक्षण बात यह है कि आधुनिक गद्य साहित्य की परंपरा का प्रवर्तन नाटकों से हुआ।"

विभिन्न विद्वानों के मतानुसार हिन्दी का प्रथम नाटक एवं नाटककार

विद्वान	नाटक	नाटककार

आचार्य रामचंद्र शुक्ल	आनंद रघुनंदन	महाराज विश्वनाथ सिंह
भारतेन्दु हरिश्चंद्र	नहुष	गिरिधर दास (गोपाल चंद्र)
डॉ. दशरथ ओझा	गय सुकुमार	देल्हण
डॉ. बच्चन सिंह	आनन्द रघुन	महाराज विश्वनाथ सिंह
डॉ. गणपति चंद्रगुप्त	गोरक्ष विजय	विद्यापति

- भारतेन्दु ने अपने पिता गिरिधरदास कृत 'नहुष' (1859 ई.) को हिन्दी का प्रथम नाटक, राजा लक्ष्मण सिंह कृत शकुन्तला (1862 ई.) को द्वितीय, स्वयं द्वारा रचित विद्यासुन्दर (1868 ई.) को तीसरा और श्री निवासदास के तप्तासंवरण (1883 ई.) को चौथा नाटक माना है।
- खड़ी बोली में रचित हिन्दी का पहला नाटक राजा लक्ष्मण सिंह द्वारा गद्य में अनुदित 'शकुन्तला' (1862 ई.) नाटक है।

1862 में ही शीतला प्रसाद त्रिपाठी का 'जानकी मंगल' नाटक लिखा गया। 'जानकी मंगल' नाटक आधुनिक हिन्दी का प्रथम अभिनीत नाटक माना जाता है।

- **सन् 1850 ई. से अब तक के युग को हम नाट्य रचना की दृष्टि से तीन खण्डों में विभक्त कर सकते है :**

(1) प्रसाद पूर्व हिन्दी नाटक
(2) प्रसादयुगीन
(3) प्रसादोत्तर हिन्दी नाटक

(1) प्रसाद पूर्व हिन्दी नाटक -

सच्चे अर्थों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को ही नाट्य विधा के प्रवर्तक तथा विकसित करने का श्रेय दिया जाता है। भारतेन्दु के अनुदित और मौलिक नाटकों की संख्या सत्रह (17) है। भारतेंदु का प्रथम नाटक विद्यासुन्दर (1868 ई.)

भारतेन्दु के अनुदित नाटक इस प्रकार है :

अनुदित नाटक	मूल नाटक	नाटककार	वर्ष	भाषा
विद्या सुन्दर	चौर पंचाशिका का बंग्ला विद्यासागर का हिन्दी अनुवाद	संस्कृत के बंग्ला, से हिंदी	1868 ई.	संस्कृत से,
रत्नावली	रत्नावली नाटिका	हर्ष	1868 ई.	संस्कृत

पाखंड विडंबन संस्कृत	प्रबोध चंद्रोदय के तीसरे अंक का	कवि कृष्ण मिश्र	1872 ई.
धनंजय विजय संस्कृत	धनंजय विजय	सट्टक कांचन कवि	1873 ई.
कर्पूर मंजरी प्राकृत	कर्पूर मंजरी	राजशेखर	1875 ई.
मुद्रा राक्षस संस्कृत	मुद्रा राक्षस	विशाखदत्त	1878 ई.
दुर्लभ बन्धु अंग्रेजी	मर्चेट ऑफ वेनिस	शेक्सपियर	1880 ई.
सत्य हरिश्चन्द्र बंग्ला	चंड कौशिक	क्षेमेश्वर	1875 ई.
भारत जननी भारत माता		1877 ई.	

भारतेन्दु के मौलिक नाटक -

1. वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति	1873	प्रहसन
2. विषस्य विषमौषधम्	1876	भाण
3. प्रेमजोगिनी (अपूर्ण)	1875	नाटिका
4. चन्द्रावली	1876	नाटिका
5. भारत-दुर्दशा	1880	लास्य रूपक

6. नीलदेवी	1881	गीति रूपक
7. अंधेर नगरी	1881	प्रहसन
8. सती प्रताप	1883	पौराणिक नाटक

भारतेन्दु युगीन अन्य प्रमुख नाटककार एवं नाटककार

नाटककार
नाटक

श्री निवास दास
(1) रणधीर प्रेममोहिनी (1878 ई.) (2) तप्तासंवरण (1883 ई.) (3) संयोगिता स्वयंवर (1885) प्रहलाद चरित

किशोरलाल गोस्वामी
(1) मयंक मंजरी (1891 ई.) (2) चौपट चपेट (1891)

राधाकृष्ण दास
(1) दुखिनी बाला (1880 ई.) ६) पद्मावती (1882) (3) धर्मालाप (1885) (4) महाराणा प्रताप (1897 ई.)

देवकीनंदन त्रिपाठी
(1) सीताहरण नाटक (1876 ई.) (2) रूक्मिणी हरण (1876 ई.) (8) रामलीला (1879 ई.) कंसवध नाटक (1879 ई) (5) गोवध निषेध (1881 ई.) (6) रक्षाबंधन (1878)

अंबिकादत्त व्यास
(1) ललिता (1883 ई.) (2) गो संकट (1886 ई.) (3) मन की उमंग (1886 ई.) (4) भारत सौभाग्य (1881 ई)

बालकृष्ण भट्ट
(1) नलदमयंती स्वयंवर (2) नई रोशनी का विष (3) वृहन्नला (4) वेणुसंहार (1909) (5) कालिराज की महासभा (6) रेल का विकट खेल

गोपालराम गहमरी
(1) देशदशा (2) विद्या विनोद

काशीनाथ खत्री
(1) विधवा विवाह (2) सिंधु देश की राजकुमारियाँ (3) गुन्नौर की रानी

विजयानन्द त्रिपाठी
(1) महाअंधेर नगरी (1892)

देवदत्त शर्मा
(1) अति अंधेर नगरी (1895 ई.)

बलदेव प्रसाद मिश्र
(1) मीराबाई (1879) (2) नंद विदा (1909 ई.)
तोताराम वर्मा
(1) विवाह विडम्बन (1900 ई.)

प्रतापनारायण मिश्र
(1) हम्मीर हठ (2) वेणी संहार (3) भारत दुर्दशा रूपक (1902) (4) कलिकौतुक रूपक (1890)

बदरीनारायण चौधरी
(1) भारत सौभाग्य

'प्रेमघन'

दुर्गा प्रसाद मिश्र
(1) प्रभास मिलन (1899 ई.) (2) जुआरी खुआरी

राधाचरण गोस्वामी
(1) बूढ़े मुँह मुहासे (2) अमर सिंह राठौर (3) श्री दामा (1907) (4) तन मन धन गुसाई के अर्पन

खड्ग बहादुर मल्ल
(1) महारास (1885) (2) हरतालिका (3) भारते भारत (1855) (4) रति कुसुमायुध (1885) (5) कल्पवृक्ष

आगा हश्र कश्मीरी
(1) अछूता दामन (2) असीरे हर्स (3) खूबसूरत बला (4) चंडीदास नाटक (5) जहरीला साँप (6) भीष्म प्रतिज्ञा (7) यहूदी की लडकी

भारतेन्दुयुगीन प्रमुख अनुदित नाटक -

अनुवादक/नाटककार
अनुदित नाटक

राजा लक्ष्मण सिंह
शकुन्तला (1861 ई.)

लाला सीताराम
महावीर चरित (1897) उत्तर रामचरित (1897 ई.) मालती माधव (1898) नागानन्द (1900 ई.)

बालमुकुन्द गुप्त
वेणी संहार (1897)

शीतलाप्रसाद
प्रबोध चंद्रोदय (1897)

भारतेन्दु
दुर्लभ बन्धु (अधूरा अनुवाद) मर्चेंट ऑफ वेनिस से

रत्नचन्द्र
भ्रमजालक (कॉमेडी ऑफ एरर्स का अनुवाद)

भारतेन्दुयुगीन नाटककारों से संबंधित महत्त्वपूर्ण तथ्य :

- भारतेन्दु ने अपने नाटकों में सर्वप्रथम भारतीय और पाश्चात्य नाट्य शैली को समाहित किया।
- भारतेन्दु ने 'नाटक' (1883) नामक निबंध में सैद्धांतिक आलोचना प्रस्तुत की। • भारतेन्दु ने काशी में 'नेशनल थियेटर' की स्थापना की।
- . अंग्रेजों द्वारा प्रथम रंगशाला 'प्ले हाउस' नाम से 1776 में कलकत्ता में स्थापित किया।

द्विवेदीयुगीन प्रमुख नाटककार एवं उनकी रचनाएँ -

नाटककार
नाटक

बदरीनाथ भट्ट
दुर्गावती, चंद्रगुप्त (1915) कुरूवन दहन (1912) विवाह विज्ञापन

बलदेव प्रसाद मिश्र
प्रभास मिलन, राजा ययाति, मीराबाई

मिश्रबंधु
नेत्रोन्मीलन (1915) शिवाजी

माधव शुक्ल
महाभारत पूर्वार्द्ध (1961)

माखनलाल चतुर्वेदी
कृष्णार्जुन युद्ध (1918)

ब्रजनंदन सहाय
उद्धव (1909)

वृन्दावन लाल वर्मा
सेनापति उदल (1909)
शिवनंदन सहाय
सुदामा (1907)

गंगा प्रसाद गुप्त
वीर जयमल (1903)

प्रसादयुगीन हिन्दी नाटक -

जयशंकर प्रसाद ने ऐतिहासिक-सांस्कृतिक नाटकों के माध्यम से अपनी सांस्कृतिक परंपरा और नये जातीय जीवन की प्रतिष्ठा की। प्रसाद ने अपने नाटकों के लिए प्रख्यात ऐतिहासिक वृत्तों का चुनाव किया। उनका मन गुप्तकाल और मौर्यकाल में रमा है जो भारतीय इतिहास के स्वर्ण-युग है।

जयशंकर प्रसाद की प्रमुख नाट्य रचनाओं का संक्षिप्त विवरण :

1. सज्जन (1910 ई.) :- इसमें युधिष्ठिर की सज्जनता का वर्णन है। यह नाटक महाभारत की घटना पर आधारित है।
2. कल्याणी परिणय :- इसमें सिल्यूकस की पुत्री कल्याणी और चंद्रगुप्त का प्रेम तथा इतिहास प्रसिद्ध चंद्रगुप्त मौर्य और सिल्यूकस की कहानी है।
3. करूणालय (1912 ई.) :- यह गीति नाट्य-शैली पर आधारित है। यह नाटक हरिश्चन्द्र और विश्वामित्र के प्रसिद्ध पौराणिक आख्यान पर आधारित है।
4. प्रायश्चित (1913 ई.) :- इसमें जयचन्द के पश्चात्ताप की मार्मिक अभिव्यक्ति तथा जयचंद के मूर्खतापूर्ण कुचक्र के कारण पृथ्वीराज के अंत का वर्णन हैं।

5. राजश्री (1915 ई.) :- इस ऐतिहासिक नाटक में हर्षवर्द्धन की बहन राजश्री के उज्जवल चरित्र पर प्रकाश डाला गया है। नाटक का आधार 'हर्षचरित' एवं चीनी यात्री हेनसांग का ऐतिहासिक विवरण है।
6. विशाख (1921 ई.) :- इसमें तक्षशिला विश्वविद्यालय के स्नातक, विशाख की चारित्रिक विशेषताएं का वर्णन है। विशाख नाटक का कथानक कल्हण की "राजतंरगिणी" पर आधारित है।
7. अजातशत्रु (1922 ई.):- यह एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाट्य रचना है, जिसका कथानक रस और द्वन्द्व दोनों ही दृष्टियों से उत्कृष्ट है। बिम्बीसार और अजातशत्रु का संघर्ष इसका मुख्य प्रतिपाद्य है। मगध, कौशल और कौशाम्बी तीनों स्थानों से यह नाटक संबद्ध है। 8. जनमेजय का यज्ञ (1926 ई.) :- इस नाटक में परीक्षित के प्रतापी पुत्र जनमेजय का नागों के साथ संघर्ष का मार्मिक वर्णन हुआ है।
9. कामना (1927 ई.) :-'कामना' एक प्रतीकात्मक और समस्यामूलक नाटक है। पाश्चात्य सभ्यता के अभिशाप को प्रदर्शित करना ही नाटककार का मुख्य उद्देश्य है। इसमें मनोविकारों को प्रतीकों के रूप में रंगमंच पर प्रस्तुत किया गया
   है।
10. स्कंदगुप्त (1928 ई.):- इसमें कुमारगुप्त की विलासी स्थिति का चित्रण हुआ है। जहाँ आंतरिक कलह, विदेशी आक्रमणों के फलस्वरूप उसके भावी क्षय के लक्षण प्रकट होने लगे थे। स्कन्दगुप्त और विक्रमादित्य का त्यागमय जीवन भारतीयों के लिए प्रेरणा स्त्रोत बना है।
11. एक घुट (1930 ई.) :- यह भी 'कामना' की भाँति एक प्रतीकात्मक समस्यामूलक नाटक/एकांकी है। इसमें प्रसाद ने प्रतीकों के माध्यम से आनंदवादी दृष्टिकोण की स्थापना की है।
12. चन्द्रगुप्त (1931 ई.) :- राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत इसमें यवनों से भारत के संघर्ष और भारत की विजय की थीम उठायी गई है। अलक्षेन्द्र का आक्रमण, नंदवंश का नाश, चंद्रगुप्त की प्रतिष्ठा की गई है।
13. ध्रुवस्वामिनी (1933 ई.) :- इसमें ध्रुवस्वामिनी के माध्यम से तलाक और पुनर्विवाह की समस्या को बड़े कौशल से उठाया गया है। इसका विशेष महत्त्व समस्यामूलक नाटक के रूप में है। ध्रुवस्वामिनी नाटक की रचना विशाख के देवी चंद्रगुप्त के आधार पर की गई है।

प्रसाद के तीन प्रमुख नाटकों के पात्र :

नाटक

पात्र

(1) स्कंदगुप्त (1928)

पुरुष पात्र - पृथ्वीसेन, स्कंदगुप्त, भट्टार्क, पुरूगुप्त, महादण्डनायक, कुमार गुप्त

स्त्री पात्र - अनन्त देवकी, देवसेना, विजया

(2) चंद्रगुप्त (1931)

पुरूष पात्र - चंद्रगुप्त, चाणक्य, शकटार सिंहरण, राक्षस, सेल्यूकस, आम्भीक

स्त्री पात्र - कार्नेलिया, एलिस, कल्याणी, अलका, मालविका, सुवासिनी

(3) ध्रुवस्वामिनी (1933)
पुरूष पात्र - रामगुप्त, चंद्रगुप्त, शकराज
स्त्री पात्र - ध्रुवस्वामिनी, मन्दाकिनी, कोमा

प्रसाद के नाटकों से संबंधित प्रमुख तथ्य :-

- गीतिनाट्य लेखन का प्रवर्तक जयशंकर प्रसाद को माना जाता हैं।
- .'करूणालय' को हिन्दी का प्रथम गीतिनाट्य माना जाता है।
- . प्रसाद के नाटकों पर बंग्ला नाटककार द्विजेन्द्रलाल तथा अंग्रेजी के नाटककार विलियम शेक्सपियर का सर्वाधिक प्रभाव पडा। .
- 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक पर इब्सन और बर्नार्ड शॉ का प्रभाव देखा जा सकता है। ध्रुवस्वामिनी एक समस्या नाटक है।

प्रसादयुगीन अन्य महत्त्वपूर्ण नाटककार एवं नाटक -

नाटककार
नाटक

विश्वंभर नाथ शर्मा
भीष्म (1918 ई.) अत्याचार का परिणाम

'कौशिक
(1921) हिन्दु विधवा नाटक (1935)

बद्रीनाथभट्ट
चुंगी की उम्मीदवारी (1919) चंद्रगुप्त (1915)
दुर्गावती (1925) तुलसीदास

सुदर्शन
(1) दयानन्द नाटक (1917) (2) अंजना (1923) (3) भाग्यचक्र (1937) ऑनरेरी मजिस्ट्रेट (1926)

प्रेमचन्द
(1) संग्राम (1923 ई.) (2) कर्बला (1924 ई.) (3) प्रेम की वेदी (1933)

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' (1) महात्मा ईसा (1922) (2) चुम्बन (1937) (3) डिक्टेटर (1937) गंगा का बेटा (1940) चार बेचारे, उजबक

हरिऔध

(1) प्रद्युम्न विजय व्यायोग (1936) (2) रुक्मिणी परिणय (1937)

गोविन्द बल्लभ पंत
(1) वरमाला (1925) (2) राजमुकुट (1935) (3) अंगूर की बेटी (1937) ययाति (1935) कंजूस की खोपडी (1923) अंत:पुर का छिद्र (1940) तुलसीदास (1974)

सुमित्रानंदन पंत
(1) रजत शिखर (1952) (2) शिल्पी (1952)

विष्णु प्रभाकर
(1) डॉक्टर (1958) (2) युगे युगे क्रांति (1969)

रामनरेश त्रिपाठी (1) सुभद्रा (1942) (2) जयंत (1934)

रामवृक्ष बेनीपुरी
(1) आम्बपाली

जी.पी. श्रीवास्तव
(1) उलटफेर (1918 ई.) (2) दुमदार आदमी (1919) (3) मरदानी औरत (1920) (4) विवाह विज्ञापन (1927) भूलचूक (1928) (5) मिस अमेरिकन (1929) साहित्य का सपूत (1934) (6) स्वामी चौखटानन्द (1936)

बदरीनाथ भट्ट
(1) चुंगी की उम्मीदवारी (1919) (2) लबङघोंघा (1926) राधेश्याम कथावाचक (1) कौसिल की मेम्बरी रामदास गौड (1) ईश्वरीय न्याय (1924)

प्रसादोत्तर नाटक -

उदयशंकर भट्ट :
विक्रमादित्य (1929), चंद्रगुप्त मौर्य (1931), दाहर या सिंध पतन (1934 ई.), कमला (1935), मुक्तिपथ (1944 ई.), शकविजय (1949 ई.), विद्रोहिणी अंबा (1935), सागर विजय (1933), मत्स्यगंधा (1937), विश्वामित्र (1938), राधा (1941), अशोक वनवंदिनी (1959), गुरू द्रोण का अंतर्निरीक्षण (1959), अश्वत्थामा (1959), असुर सुन्दरी (1972)

हरिकृष्ण प्रेमी :

स्वर्ण विहान (1930), रक्षाबंधन (1934), पाताल विजय (1936), प्रतिरोध (1937), शिव साधना (1937) स्वप्न भंग (1940), आहुति (1940), छाया (1941), बंधन (1941), उद्धार (1949), प्रकाश स्तम्भ (1954), कीर्ति स्तंभ (1955), शतरंज के खिलाडी (1955), संरक्षक (1958), सापों की सृष्टि (1959), रक्तदान (1962), आन का मान (1962), अमर बलिदान (1968), अमृत पुत्री (1970)

लक्ष्मी नारायण मिश्र :-
अशोक (1926), सन्यासी (1930), राक्षस का मंदिर (1931), मुक्ति का रहस्य (1932), राजयोग (1933), सिन्दुर की होली (1934), आधी रात (1934), चित्रकूट गरूडध्वज (1945), नारद की वीणा (1946), वत्सराज (1950), दशाश्वमेघ (1950), वितस्तता की लहरें (1953), धरती का हृदय, काल विजय, गंगाद्वार (1974)।

वृन्दावन लाल वर्मा :-
धीरे-धीरे (1939), राखी की लाज (1943), सगुन (1946), फूलों की बोली (1947), झाँसी की रानी (1948), मंगलसूत्र (1949), कश्मीर का काँटा (1948), खिलौने की खोज (1950), पूर्व की ओर (1950), बीरबल (1950), नीलकण्ठ (1951), केवट (1951), पीले हाथ (1952), जहोंदरशाह (1952), ललित विक्रम (1953), देखो-देखी (1956)।

सेठ गोविन्द दास :-
हर्ष (1935), प्रकाश (1935), कर्त्तव्य (1936), शेरशाह शशिगुप्त (1942), कर्ण (1946), प्रकाश (1935), विकास (1941), संतोष कहाँ (1945), सेवापथ (1940), महत्त्व किसे (1947), गरीबी और अमीरी (1947), ग्रहण और त्याग

चंद्रगुप्त विद्यालंकार :-
अशोक (1935), रेवा (1935)

रामकुमार वर्मा :
कौमुदी महोत्सव (1954), विजयपर्व (1954), कला और कृपाण (1955), नाना फडनवीस (1956), महाराणा प्रताप (1960), शिवाजी (1965), अशोक का शोक (1967), जौहर की ज्योति (1967), अग्निशिखा (1970), जयादित्य (1971), संत तुलसीदास (1974), जयवर्धमान (1975), भगवान बुद्ध (1975), समुद्रगुप्त परा क्रमांक (1978), सम्राट कनिष्क (1978), स्वयंवरा (1980), वत्सराज उदयन, महामेघवाहन खारवेल, जहीरूद्दीन मुहम्मद बावर।

रांगेय राघव :
स्वर्गभूमि का यात्री (1951)

उपेन्द्रनाथ अश्क :

लक्ष्मी का स्वागत (1935), जय पराजय (1937), स्वर्ग की झलक (1938), छठा बेटा (1940), देवताओं की छाया (1940), अलग-अलग रास्ते (1954), अंजो दीदी (1955), भंवर (1961), बड़े खिलाड़ी (1967), लौटता हुआ दिन (1972), कैद उड़ान (1943-1945)।

समकालीन आधुनिक भाव बोध के नाटक -

- हिन्दी में भुवनेश्वर के लघुनाटक 'ऊसर' (1938 हंस में प्रकाशित) से आधुनिक भाव का आरंभ माना जाता है।
- डॉ. गिरीश रस्तोगी एवं डॉ. मदान ने 'भुवनेश्वर' के नाटक 'तांबे के कीडे' (1946 ई.) से हिन्दी में विसंगति नाटकों का आरंभ माना है।
- भुवनेश्वर का एकमात्र नाट्य संकलन 'कारवाँ (1936) है। इसमें श्यामा - एक वैवाहिक विंडबना (1933), प्रतिभा का विवाह (1933), शैतान (1934), और रहस्य रोमांस नाटक संकलित है।

आधुनिक भाव बोध के प्रमुख नाटक एवं नाटककार -

नाटककार

नाटक

मोहन राकेश

आषाढ़ का एक दिन (1958), लहरों के राजहंस (1963), आधे अधूरे (1969), पैरों तले जमीन (अधूरा)

- 'आषाढ़ का एक दिन महाकवि कालिदास के परिवेश, प्रेरणास्रोत, रचना-प्रक्रिया आदि से संबंधित है।
- मोहन राकेश कृत 'लहरों के राजहंस' नाटक का कथानक अश्वघोष के महाकाव्य "सौरानन्द" पर आधारित है।
- हिन्दी नाटकों में 'आधे-आधूरे' नाटक का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आधे अधूरे नाटक में आधुनिक जीवन में मध्यवर्गीय परिवार के वैवाहिक जीवन की आर्थिक और मनोवैज्ञानिक दोनों प्रकार की विडम्बनाओं का सफल चित्रण किया है।

विष्णु प्रभाकर

डॉक्टर (1958), युगे युगे क्रान्ति (1969), टूटते परिवेश (1974), कुहासा और किरण (1975), डरे हुए लोग (1978), वंदिनी (1979), अब और नहीं (1981), सत्ता के आर पार (1981), श्वेतकमल (1984)

भगवतीचरण वर्मा वसीयत (1978), तारा (गीतिनाट्य)

अमृतलाल नागर

चंदनवन (1976), चक्करदार सीढ़ियाँ और अंधेरा (दोनों रेडियों नाटक)

लक्ष्मीकान्त वर्मा

तिंदुवुलम (1958), सीमांत के बादल (1963), अपना अपना जूता (1964), रोशनी एक नदी (1974), ठहरी हुई जिन्दगी (1980), आदमी का जहर

भीष्म साहनी

हानूश (1977), कबीरा खडा बाजार में (1981), माधवी (1985), मुआवजे (1993), रंग दे बसंती चोला (1998), आलमगीर (1999)।

- 'हानूश' नाटक चेकोस्लोवाकिया में प्रचलित लोक कहानी पर आधारित है। इसमें श्रमशील कलाकार की अदम्य सृजनेच्छा, सत्ता की क्रूरता का चित्रण हुआ है।
- 'कबीरा खडा बाजार में' कबीर के युग-प्रवर्तक व्यक्तित्व व तत्कालीन परिस्थितियों का चित्रण किया गया है।
- 'माधवी' में गालव (विश्वामित्र के शिष्य) और माधवी की पौराणिक कथा का आधुनिक संदर्भ में चित्रण किया गया है।

भोर का तारा (1946) ओ मेरे सपने (1950)

जगदीशचंद्र माथुर

कोणार्क (1951) शारदीया (1959) पहला राजा (1969) दस तस्वीरें (1962) जिन्होंने जीना जाना (1972) दशरथ नंदन (1974) रघुकुल रीति (1985)

विनोद रस्तोगी

आजादी के बाद नये हाथ बर्फ की मीनार जनतंत्र जिंदाबाद गोपा का दान देश के दुश्मन फिसलन और पॉव भगीरथ के बेटे सराय के अंदर

लक्ष्मीनारायण लाल

अंधा कुआँ (1955) मादा कैक्टस (1959) तीन आंखों वाली मछली (1960) सूखा सरोवर (1960) नाटक बहुरंगी (1961) नाटक तोता मैना (1962) रातरानी (1962) दर्पन (1962) रक्तमाल (1963) सूर्यमुख (1968) कलंकी (1969) मिस्टर अभिमन्यु (1971) कपy (1972) दूसरा दरवाजा (1972) अब्दुल्ला दीवाना (1973) नरसिंह कथा (1975) व्यक्तिगत (1975) गुरु (1976) यक्ष प्रश्न (1976) एक सत्य हरिश्चंद्र (1976) गंगामाटी (1977) सगुन पंछी (1977) सब रंग मोहभंग (1977) पंच पुरुष (1978) राम की लड़ाई (1979) बलराम की तीर्थयात्रा (1983) कंजरीवन (1980) सुन्दररस, काफी हाउस में इन्तजार, हाथी घोडा चूहा

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना बकरी (1974), लडाई (1979), अब गरीबी हटाओ (1981), कल भारत आयेगा हवालात

शंभूनाथ सिंह

दीवार की वापसी अकेला शहर

अमृतराय
चिन्दियों की एक झालर (1969), शताब्दी (1972), हमलोग आज अभी (1973)
ज्ञानदेव अग्निहोत्री
नेफा की एक शाम (1962), माटी जागीर (1964), वतन की आबरू (1966), अनुष्ठान चिराग जल उठा (1968), शुतुरमुर्ग (1968)

रेवती शरण शर्मा
चिराग की लौ (1962), अपनी धरती (1963), अंधेरे का बेटा (1969), न धरम न इमान (1970), दीपशिखा (1973)

राजेन्द्र कुमार शर्मा
रेत की दीवार (1963), अपनी कमाई (1969), नीलामघर (1977)

सुरेन्द्र वर्मा
द्रोपदी (1972), सेतुबंध (1972), नायक खलनायक विदुषक (1972), सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक (1975), आठवाँ सर्ग (1976), छोटे सैयद बड़े सैयद (1982), एक दूनी एक (1987), शकुन्तला की अंगूठी (1990), कैद ए हयात (1993) ।

रमेश बक्षी
देवयानी का कहना (1972), तीसरा हाथी (1975), वामाचार (1977), यादों के पार (1979), कसे हुए तारा (1979)

हमीदुल्ला
उलझी आकृतियाँ (1973), दरिन्दे (1975), उत्तर उर्वशी (1979), हरबार (1986)

काशीनाथ सिंह
घोआस (1967)

विपिन कुमार अग्रवाल
तीन अपाहिज (1960), लोटन (1974), खोए हुए की तलाश

सुशील कुमार सिंह
सिंहासन खाली है (1974) बापू की हत्या हजारवीं बार, अंधेरे के राही, नागपाश, चार यारों के यार

मणि मधुकर
रस गंधर्व (1975), बुलबुल की सराय (1978), दुलारी बाई (1978), खेला पोलमपुर (1979), इकतारे की आँख (1980)

शंकर शेष
फंदी घरौंदा (1978), एक और द्रोणाचार्य (1977), अरे मायावी सरोवर (1980), रक्तबीज, बंधन अपने अपने, चेहरे, कोमल गांधार, पोस्टर, खजुराहो का शिल्पी, बिन बाती के दीप, आधी रात के बाद

दयाप्रकाश सिन्हा
पंचतंत्र (1960), मन के भँवर (1968), दुश्मन (1969), अपने-अपने दाँव (1972) इतिहास चक्र और ओह अमेरिका साँझ सवेरा (1974), मेरे भाई मेरे दोस्त (1974), सारद आपका (1980), कथा एक कंस की (1976), सीढ़ियाँ (1990)

मुद्राराक्षस
तिलचट्टा (1972), योर्स फेथफुली (1974), मरजीवा तेन्दुआ आला अफसर (1979), गुफाएँ (1979), संतोला (1980), प्रथम प्रस्तुति डाकू

गिरिराज किशोर
नरमेघ (1979), बादशाह गुलाम बेगम (1979), प्रजा ही रहने दो (1977), घोडा और घास (1980), चेहरे चेहरे किसके चेहरे (1983), केवल मेरा नाम लो (1984), जुर्म आयद (1987), काठ की तोप (2001)

दूधनाथ सिंह
यमगाथा (1990)

बृजमोहन शाह
त्रिशंकु (1973), युद्धमन (1975), शह पे मात (1976)

रामेश्वर प्रेम
चारपाई राजा नंगा है काल पात्र अज्ञातघर अंतरंग कैम्प शस्त्र संतान (1997), लोमडवेश (1980)

नरेन्द्र मोहन
कहै कबीर सुनो भाई साधो (1987), सींगधारी (1988), नो मैन्स लैण्ड (1994), अभंग गाथा (2000), मिस्टर जिन्ना (2005)

शरद जोशी

एक था गधा (1980), अंधों की हाथी (1980), बैंगन की नाव

आचार्य नंदकिशोर
देहान्तर (1987), पागलघर (1988), हस्तिनापुर (1994), जिल्ले सुभानी जूते (1944), गुलाम बादशाह (1992), किमिम यक्षम् (1993)

हबीब तनवीर
आगरा बाजरा (1954), शतरंज के मोहरे (1954), लाल शोहरत राय (1954), मिट्टी की गाडी (1958), मोर नांव दामाद (1973), चरणदास चोर (1975), उत्तर रामचरित्र (1978), बहादुर कलारिन (1984), पोंगा पंडित (1992), कामदेव का अपना बसंत ऋतु का सपना (1993), द ब्रोकन ब्रिज (1995), जहरीली हवा (2002), राजरक्त (2006)

कृष्ण बलदेव वैद्य
भूख आग है (1998), हमारी बुढ़िया (2000), सवाल और स्वप्न (2001)

सुदर्शन मजीठिया
चौराहा (1986), देश के लिए (1990)

नागबोडस
खूबसूरत बहु (1998), वसीयत (1998), दलित (1998), तोतो झूठ नहीं बोलता (1998), पढ़ो फारसी बेचो तेल (2002)

स्वदेश दीपक
नाटक बाल भगवान (1989), कोर्ट मार्शल (1991), जलता हुआ रथ (1998), सबसे उदास कविता (1998), काल कोठारी (1999)

राजेश जैन
वायरस (1994), विषवंश (1999)

अन्य प्रमुख नाटककार और उनके नाटक -

नाटक
नाटककार

शिवमूरत सिंह
पूर्वार्द्ध

डॉ. विनय
एक प्रश्न मृत्यु

नरेश मेहता
खंडित यात्राएं

नरेन्द्र कोहली
शंबुक की हत्या, हत्यारे, निर्णय रूका हुआ, गारे की दीवार

रमेश चन्द शाह
मारा जाई खुसरो

अजीत कुमार
घोडा घास नहीं खाता

सुदर्शन चोपडा
काला पहाड (1978)

शिव प्रसाद सिंह
घांटियाँ गूजती है

कमलेश्वर
अधूरी आवाज

रमेश उपाध्याय
पेपरवेट

गोविन्द चातक
काला मुँह

राजेश जोशी
जादू जंगल (1981), अच्छे आदमी, टकारा का गाना

रामकुमार भ्रमर
तमाशा, भस्मासुर (1980)

जयशंकर त्रिपाठी

कुरुक्षेत्र का सवेरा

प्रताप सहगल
अन्वेषक (1992), नहीं कोई अंत (1999 ई.)

सत्यव्रत सिन्हा
अमृत नाहता

दिनेश ठाकुर
दीवार (1976)

अभिमन्यु अनत
अमृत पुत्र (1974) किस्सा कुर्सी का (1977) गूंगा इतिहास (1995) चेहरों के जंगल (1980) रावण तेरे कितने रूप (1986) बैंक यू बाबा लोचनदास खेल जारी खेल जारी (1985)
आलोक शर्मा
श्याम मोहन आस्थान
बी.एम. शाह
राधा कृष्ण सहाय

अज्ञेय
उत्तर प्रियदर्शी

संतोष नारायण नौटियाल चाय पार्टियाँ (1963)

सुरेन्द्र चन्द्र शुक्ल
आकश झुक गया (1977), कुत्ते (1979), भस्मांकुर अभी जिंदा है (1980)

महिला नाटककार

नाटककार
नाटक

मन्नू भण्डारी
बिना दीवारों के घर (1965), महाभोज (1982), (महाभोज उपन्यास का नाट्य रूपांतर)

मृदुला गर्ग

एक और अजनबी (1978), जादू का कालीन (1993), कितनी कैदे (1969), दुलहिन एक पहाङ की (1969), दूसरा संस्करण (1969), तीन कैंदे (1996)

मृणाल पाण्डेय

जो राम रचि राखा (1981), मौजूदा हालत को देखते हुए (1981), आदमी जो मछुआरा नहीं था (1983)

कुसुम कुमार

संस्कार को नमस्कार (1982), ओम क्रांति क्रांति (1978), सुनो शैफाली (1979), दिल्ली ऊँचा सुनती है (1982), रावण लीला (1983), मादा मिट्टी पवन चतुर्वेदी की डायरी (1986), सलामी मंच लश्कर चौक प्रश्नकाल (2008)

गिरीश रस्तोगी

रंगनाथ की वापसी (राग दरबारी का नाट्य रूपांतर) बाणभट्ट की आत्मकथा का नाट्य रूपांतर, असुरक्षित मुझे मत मारो

प्रतिभा अग्रवाल

प्रेमचंद के 'गोदान' और अमृतलाल नागर के उपन्यास 'सुहाग के नूपुर' का नाट्य रूपांतर

शांति मेहरोत्रा

(1) एक और दिन (2) ठहरा हुआ पानी (1975)

शोभना भूटानी

(1) शायद हाँ

मीराकांत

(1) इहामृग (2003) (2) नेपथ्य राग (2004) (3) भुवनेश्वर दर भुवनेश्वर (2008), (4) कन्धे पर बैठा था शाप (5) हुमा को उङ जाने दो (6) अन्त हाजिर हो (2012)।

हिन्दी के प्रमुख नाटककारों का जन्म के आधार पर कालक्रम -

तोताराम वर्मा 1847-1902

डॉ. शंभुनाथ सिंह 1917-1991 ई.

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 1850-1885

अमृतराय 1921-1996 श्री

निवासदास 1857-1887 ई.
लक्ष्मीकान्त वर्मा 1922-2002 ई.

बदरीनारायण चौधरी 1855-1923
रागेय राघव 1923-1962

प्रतापनारायण मिश्र 1856-1904
विनोद रस्तोगी 1923

अंबिकादत्त व्यास 1858-1900
मोहन राकेश 1925-1972

रामकृष्ण वर्मा 1859-1906 ई.
कृष्ण बलदेव वैद 1927 ई.
श्री देवकीनन्दन खत्री 1861
डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल-1927-1987

राधाकृष्ण दास 1865-1907 ई.
सर्वेश्वर दयाल सक्सेना 1927-1983

मन्नू भण्डारी 1931
किशोरीलाल गोस्वामी 1865-1931

मैथिलीशरण गुप्त 1886-1964
शरद जोशी 1931-1991 ई.

माखनलाल चतुर्वेदी 1889-1968
विपिन कुमार अग्रवाल 1931

जयशंकर प्रसाद 1889-1937
सुदर्शन मजीठिया 1931-2000 ई.

वृन्दावनलाल वर्मा 1889-1969
शंकर शेष 1933-1981

विश्वंभर नाथ शर्मा कौशिक 1891-1945
मुद्राराक्षस 1933-2016

चतुरसेन शास्त्री 1891-1960
महेन्द्र भल्ला 1933-2015

सुदर्शन 1895-1967
नरेन्द्र मोहन 1935 ई..

सेठ गोविन्ददास 1896
गिरीश रस्तोगी 1935-2014 ई

उदयशंकर भट्ट 1898-1966
दूधनाथ सिंह 1936 ई.

गोविन्द वल्लभ पंत 1898-1996
काशीनाथ सिंह 1936 ई.

भगवती प्रसाद वाजपेयी 1899-1973
रमेश बक्षी 1936-1988 ई.

बेचन शर्मा 'उग्र' 1900-1967
गिरिराज किशोर 1937 ई.

रमेश बक्षी 158-50 ई.
साद वाजपेयी 16-103

लक्ष्मीनारायण मिश्र 1903-1987 ई.
मृदुला गर्ग 1938

भगवती चरण वर्मा 1903-1981 ई.

नागाबोडस 1939-2003

रामकुमार वर्मा 1905-1990
कुसुम कुमार (1939 ई.)
चंद्रगुप्त विद्यालंकार 1906-1982
सुरेन्द्र वर्मा 1941 ई.

हरिकृष्ण प्रेमी 1908-1974 ई.
स्वदेश दीपक 1942 ई.

उपेन्द्रनाथ अश्क 1911-1996
नंदकिशोर आचार्य 1945 ई.

विष्णु प्रभाकर 1912-2009 ई.
असगर वजाहत-1946

भीष्म सहानी 1915-2003 ई.
मृणाल पाण्डेय (1946 ई.)

अमृतलाल नागर 1916-1990 ई.
मीराकांत (1958) ई.

जगदीशचन्द्र माथुर 1917-1978

हिन्दी के प्रमुख नाटकों के पात्र -

नाटक	पुरूष पात्र	स्त्री पात्र
नीलदेवी	सूर्य देव, सोमदेव,	नीलदेवी
	बसंत, पं. विष्णु शर्मा,	
	अब्दुश्शरीफ खाँ	
स्कंदगुप्त, विजया	पृथ्वीसेन, स्कंदगुप्त,	अंतदेवकी, देवसेना,

	भट्टार्क, महादण्डनायक,	
	पुरूगुप्त, कुमार गुप्त,	
	मातृगुप्त, चक्रपालित	
चंद्रगुप्त	चंद्रगुप्त, चाणक्य, शकटार,	अल्का, कार्नेलिया, कल्याणी
	सिंहरण, आम्भीक, राक्षस,	
	पर्वतक, सिल्युकस	
ध्रुवस्वामिनी कोमा ।	चंद्रगुप्त, रामगुप्त, शकराज	ध्रुवस्वामिनी, मन्दाकिनी
	शिखर स्वामी, मिहिरदेव	
आषाढ़ का एक दिन रंगिणी, संगिणी	कालिदास, विलोम, मातुल दंतुल	अंबिका, मल्लिका, प्रिय-मंजरी,
लहरों के राजहंस	नंद, श्यामांग, आनंद	सुन्दरी, अल्का, किन्नी
सावित्री, बिन्नी, किन्नी	आधु अधूरे	महेन्द्रनाथ, अशोक, जुनेजा।
	सिंधानिया, जगमोहन	
डाक्टर मधुलक्ष्मी	सतीश चंद्र	डॉ. अनीला,
हानूश	हानूष, पादरी, एमिल, जेकब	कात्या, पान्या
अंजो दीदी (अंजली)	श्रीषत्	अंजो दीदी
कोणार्क	विशु, नरसिंह देव, धर्मपाल	-
पहला राजा	पृथु, शुक्राचार्य	-
मादा कैक्टस	मनमोहन	सुजाता, आनंदा
एक और द्रोणाचार्य	अरविन्द, विमलेन्दु पुरूष	ललिता, यदु, अनु
	पात्र कैप्टन कपूर, रामचन्दर	
जलता हुआ स्थ	बाबा	-

सबसे उदास कविता	शिवदयो सिंह,	अपूर्वा
द्रोपदी	मनमोहन	सुरेखा
बिना दीवरों का घर	जयंत, अजित	शोभा
जगमोहन, इंदर		
		एकांकी

- एकांकी का निर्माण रूपक के भेद से किया जाता है - अंक
- एकांकी के समकक्ष रूपक के अन्य भेद माने जाते हैं - भाण, व्यायोग, वीथी, अंक प्रहसन
- एकांकी का विकास 'एक अंक वाला' का अभिप्राय है - अंग्रेजी के 'वन एक्ट प्ले'
- एक अंकीय भास की रचनाओं का प्रेरक एकांकी विकसित है - मध्यम व्यायोग, दूत वाक्य, कर्णभार, उरुभंग : दूत-घटोत्कच।
- संस्कृत में एकांकी का सार्थक शब्द माना जाता है - गोष्ठी
- एकांकी का अन्य नाम है - छोटा नाटक, लघु नाटक, नाटिका
- प्रथम एकांकी के रचनाकार - भारतेन्दु - बसंतपूजा (1872), जयशंकर प्रसाद-एक घुट (1928) रामकुमार वर्मा-बादल की मृत्यु (1930) भुवनेश्वर प्रसाद - कारवाँ (1935)
- 2010 में 'एकांकी सप्तक' का प्रकाशन किया है - राजकुमार उपाध्याय 'मणि',
- रामकुमार वर्मा

बादल की मृत्यु (1930), पृथ्वीराज की आँखें (1937), रेशमी टाई (1949), चारुमित्र (1943), विभूति (1943), सप्तकिरण (1947), रूपरंग (1948). कौमुदी महोत्सव (1949), ध्रुर्वतारिका (1950), ऋतुराज (1951), रजतरश्मि (1952), दीपदान (1954), कामकन्दला (1955), कपूर (1956), इन्द्रधनुष (1957), रिमझिम (1957), औरंगजेब की आखिरी रात, दस मिनट, मयूरपंख, बापू, विजयपर्व, कडा और कृपाण, नाना फडनवीस, महाराणा प्रताप, शिवाजी, अशोक का शोक, जौहर की ज्योति, अग्निशिखा, जयादित्य, संत तुलसीदास, जय वर्द्धमान, भगवान बुद्ध, समुद्रगुप्त, पराक्रमांक, सम्राट कनिष्क, स्वयंवरा, वत्सराज उदयन महामेघवाहन खारवेल, जहीरुद्दीन मुहम्मद बाबर ।

भुवनेश्वर

कारवाँ (1935), श्यामा (1938), एक साम्यहीन साम्यवादी (1934), सवा आठ बजे (1938), आदमखोर (1938), शैतान, प्रतिभा का विवाह (1936), स्ट्राइक, रहस्य रोमांच, मृत्यु (1936), लॉटरी (1935), सीकों की गाडी (1950), चंगेजखाँ, ऊसर, पतिता (1944), ताँबे के कीड़े (1946), अकबर (1950), इतिहास की केंचुल (1948), फोटोग्राफ के सामने (1945), रोशनी और आग (1941), सिकन्दर (1950), आजादी की नींद (1948)

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

देवताओं की छाया में, चरवाहे, तूफान से पहले, मोहब्बत, कासवर्ड पहेली, आपस का समझौता, विवाह के दिन, जोंक, चिलम, खिड़की, जीवनसाथी, चुम्बक, मैमना, चमत्कार, अंधीगली, आदिमार्ग, अंजो दीदी, कैसा साब-कैसी आया, बतसिया, समाना मालिक, कैद और उड़ान, अधिकार का रक्षक, स्वर्ग की झलक, साहब को जुकाम है, जोंक, पर्दा उठाओं : पर्दा गिराओ, सूखी डाली, भँवर, लक्ष्मी का स्वागत, पापी (1937)

उदयशंकर भट्ट

एक ही कब्र में (1936), आदिम युग, दुर्गा, नेता, नकली और असली, बड़े आदमी की मृत्यु, विष की पुडिया, मुंशी अनोखेलाल, प्रथम विवाह, मनु और मानव, कुमार संभव, गिरती दीवारें, पिशाचों का नाच, बीमार का इलाज, आत्म प्रदान, जीवन, वापसी, मंदिर के द्वार पर दो अतिथि, अघटित, अंधकार, नये मेहमान, नया नाटक, विस्फोट, बाबूजी, धूम्रशिखा, महस्वतंत्रता का युग, मायोपिया, अपनी-अपनी खाट पर, वार्गेन, गृहदशा, गांधीजी का रामराज्य, धर्म परम्परा, एकला चलो रे, अमर अर्चना, मालती-माधव, वन महोत्सव, मदन-दहन, विश्वमित्र, मत्स्यगंधा समस्या का अन्त, आज का आदमी, वर निर्वाचन, स्त्री का हृदय, पर्दे के पीछे, दस हजार, सेठ भालचन्द

सेठ गोविन्ददास

स्पर्धा (1935), बुद्ध की एक शिष्या, नानक की नमाज, तेगबहादुर की भविष्यवाणी, परमहंस का पत्नीप्रेम, कृषियज्ञ, बुद्ध के सच्चे सनेही कोन?, मानवमन मैत्री, ईद और nहोली, हंगर-स्ट्राइक, सच्चा कांग्रेसी कौन? बन्द नोट, जाति उत्थान, वह मरा क्यों ?

जगदीश चन्द्र माथुर

मेरी बाँसुरी (1936), भोर का तारा, घोंसले, भाषण, बंदी, शारदीया, कलिंग विजय, रीढ़ की हड्डी, मकडी का जाला, खण्डहर, कबूतर-खाना, ओ मेरे सपने, खिड़की की राह

लक्ष्मीनारायण लाल

मड़वे का भोर, अन्धा कुआँ, ताजमहल के आँसू, पर्वत के पीछे, नाटक बहुरंगी औरदूसरा दरवाजा

विष्णु प्रभाकर

स्वाधीनता संग्राम, लिपस्टिक की मुस्कान, दृष्टि खोज, प्रकाश और परछाईं, ऊँचा पर्वत, ये रेखाएँ ये दायरे, अशोक, मैं मानव हूँ, मैं तुम्हें क्षमा करूँगा, बीमार, गहरा सागर, तीसरा आदमी, डरे हुए लोग, अभया

वृन्दावन लाल वर्मा

लो भाई पंचो लो, कश्मीर का काँटा

भगवती चरण वर्मा
चौपाल, सबसे बडा आदमी

नरेश मेहता
सुबह के घण्टे

जैनेन्द्र कुमार
टकराहट

विनोद रस्तोगी
मातृ मन्दिर, राष्ट्रमन्दिर, न्यायमन्दिर, वाणी मन्दिर

हरिकृष्ण 'प्रेमी'
पुरुष का पाप, पत्नी का परित्याग, साम्राज्य और सुहागरात, सौंदर्य का प्रायश्चित, आज मेरा विवाह है, दो चाँद, प्यास और प्यास, काला दाग, कसम कुरान की, सोना और मिट्टी, रथके पाहिए, पैसा, जनसेवा और लडकी, मुन्ना मर गया, मंगल मानव और मशीन

प्रभाकर माचवे
गली की मोड पर, पागलखाने में, पंचकन्या, पर्वतश्री, रामगिरि, संकट पर संकट, वधू चाहिए, गाँधी की राह पर

धर्मवीर भारती
नदी प्यासी थी

मोहन राकेश
अण्डे के छिलके
मार्कण्डेय
पत्थर और परछाइयाँ

राजपूत मलिक
आँधी की दिया, मिट्टी परछाइयाँ, जमीन आसमाँ, चार राज की बात, हाथी के दाँत, भूखी आँखें, शीशे का घर, कविता का भूत, घरौंदा, धुंए के बादल, बरगद का पेड, डायन, पहली रात, दिन की दीवाली, रजनीगंधा, धरोहर, कनिप्रिया, दोहरा व्यक्तित्व, टूटती कडी, संशय,

गणेश प्रसाद द्विवेदी
सम्मोहन सोहाग बन्दी, वह फिर आई थी, परदे का अपर पार्श्व, शर्माजी, दूसरा उपाय ही क्या है?, सर्वस्व समर्पण, कामरेड, गोष्ठी, परीक्षा, रपट, रिहर्सल, धरतीमाता ।

गोविन्द बल्लभ पंत
अंगूर की बेटी, विषकन्या, व्यथित हृदय

कमलाकान्त वर्मा
उस पार, प्राणदान, पुष्पफल

जयनाथ नलिन
देश की मिट्टी, लाल दिन, फिलासफर, मेहमान, कन्वेसिंग, सागर तट पर, फिल्मी कहानी, डेमोक्रेसी, नरुवी सनक, चित्त भी मेरी-पट्ट भी मेरी, संवेदना सदन, बाबू उधारचंद, शर्बत-सम्मेलन, बड़े आदमी, वर निर्वाचन, नेता मेल-मिलाप, और लस्सी का गिलास।

निबंध विद्या का विकास पार्ट: 1

- 'निबंध' शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ - "निबंध' शब्द "नि' उपसर्ग व 'बंध' धातु के योग से बना है, जिसके अनेक अर्थ ग्रहण किये जाते हैं। यथा - लेख, अभिलेख, संदर्भ, रचना, प्रस्ताव इत्यादि।
- रामचन्द्र वर्मा द्वारा संपादित 'संक्षिप्त हिंदी शब्द सागर' में निबंध का अर्थ है - "मुख्यतः गद्य में लिखित साहित्यिक प्रबंध और रोचक गुंफन, लेख।" अर्थात् अपने विचारों को बाँधना या गुंफित करना ही "निबंध' है।
- निबंध के लिए लैटिन में 'एग्जीजियर', फ्रेंच में 'ऐसाई' तथा अंग्रेजी में 'ऐसे' शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

'निबंध' की परिभाषाएँ -

1. आधुनिक बिंध के जन्मदाता 'मौंटेन' के अनुसार - "निबंध विचारों, कथाओं और उद्धरणों का मिश्रण है।
2. 'जॉनसन' महोदय के अनुसार - "निबंध मन का आकस्मिक और उच्छृखल आवेग, असंबंध और चिंतनहीन बुद्धि विलास मात्र है।"
3. 'डॉ. भगीरथ मिश्र के अनुसार - "निबंध वह गद्य रचना है, जिसमें लेखक किसी भी विषय पर स्वच्छन्दतापूर्वक परन्तु एक विशेष सौष्ठव, संहिति, सजीवता और वैयक्तिकता के साथ अपने भावों, विचारों और अनुभवों को व्यक्त करता है।

4. 'डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त' के अनुसार - "जब किसी भी विषय या विचार का प्रतिपादन कल्पना एवं अनुभूति के सहयोग से आकर्षक शैली में किया जाता है तो उसे साहित्यिक निबंधों में स्थान दिया जाता है।"
   - सारांश - उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि "जब कोई लेखक अपने अनुभवों एवं कल्पना का सम्मिश्रण करके आकर्षक शैली में अपने विचारों को प्रस्तुत करता है तो उसे निबंध कहा जाता है।

> 'निबंध' के भेद - निबन्धों के मुख्यतः चार भेद माने जाते हैं

1. वर्णनात्मक निबंध
2. कथात्मक या विवरणात्मक निबंध
3. विचारात्मक निबंध
4. भावात्मक निबंध

1. वर्णनात्मक निबंध - इसमें किसी वस्तु, दृश्य या स्थल का व्यवस्थित, क्रमबद्ध और सजीव वर्णन होता है। यह व्यास शैली में लिखा जाता है। इसी का एक रूप 'रिपोर्ताज' है।
2. कथात्मक या विवरणात्मक निबंध - इसमें विचारों को प्रस्तुत करने का ढंग सूचनात्मक होता है। इसमें लेखक किसी दृश्य, यात्रा, मेला, सभा आदि का पूरा विवरण देता है। इसमें वर्ण्य विषय स्थिर रूप में नहीं अपितु गतिशील रूप में रहता है। यह भी व्यास शैली में लिखा जाता है।
3. विचारात्मक निबंध - इसमें हृदय के स्थान पर बुद्धि की प्रधानता रहती है। लेखक अपनी वैचारिक अनुभूतियों को पाठकों के समक्ष रखता है। इनमें अध्ययन की व्यापकता, गंभीरता एवं भाषा की सामासिकता अपेक्षित होती है। यह समास शैली में लिखा जाता है। इस श्रेणी में आलोचनात्मक, दार्शनिक तथा मनोवैज्ञानिक निबंधों को शामिल किया जाता है।
   आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. नगेन्द्र, नन्द दुलारे वाजपेयी, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी आदि इस श्रेणी के श्रेष्ठ निबंधकार माने जाते हैं।
4. भावात्मक निबंध - इसमें संवेदना तथा रागात्मिकता की प्रधानता रहती है। इसमें लेखक का उद्देश्य अपनी अनुभूतियों को सरल ढंग से पाठकों के हृदय तक पहुँचाना होता है। 'ललित निबंध' एवं 'व्यंग्य निबंध' ये दो इसके मुख्य भेद होते है। ये धारा शैली, विक्षेप या तरंग शैली और प्रलाप शैली में लिखे जाते हैं।

राधाकृष्णदास, वियोगी हरि, रघुवीर सिंह, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, बालकृष्ण भट्ट आदि इसी प्रकार के श्रेष्ठ निबंधकार
हैं।

- एक अच्छे निबंध के लिए आवश्यक तीन बातें - एक अच्छे निबंध में निम्न तीन बातों का होना अत्यावश्यक माना जाता है -

1. वैचारिक अनुभूतियों में समन्वित विचारों का प्रतिपादन

2. पाठक के मस्तिष्क व हृदय को गुदगुदाने की क्षमता
3. साहित्यिक गुणों में समन्वित शैली

- निबंध लेखन की प्रमुख शैलियाँ - भाषा की दृष्टि से एक सफल लेखक अपनी निजी शैली विकसित करता है। यह शैली ही उसके व्यक्तित्व की अलग पहचान बनाती है। फिर भी सामान्यतः निबंध की भाषा में निम्न सात शैलियाँ प्रयुक्त होती हैं -

1. समास
2. व्यास
3. धारा
4. तरंग
5. विक्षेप
6. प्रलाप
7. व्यंग्य

1. समास शैली - 'समास' का शाब्दिक अर्थ 'संक्षिप्तीकरण' होता हैं। अर्थात्-इस शैली में लेखक कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक अपनी बात प्रस्तुत करता है। इस शैली का प्रयोग विचारात्मक निबंधों में किया जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंध इस शैली के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।
2. व्यास शैली - 'व्यास' का शाब्दिक अर्थ विस्तार या फैलाव होता है अर्थात् इस शैली में लेखक अपने विचारों को बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत करता है। इस शैली का प्रयोग वर्णनात्मक तथा विवरणात्मक निबंधों में किया जाता है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी एवं बाबू श्यामसुंदर दास के निबंध इस शैली के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।
3. धारा शैली - अपने विचारों एवं भावों के प्रवाह को तेज गति से अभिव्यक्त करना धारा शैली कहलाती है। इस शैली का प्रयोग भावात्मक निबन्धों में अधिक किया जाता है। अध्यापक पूर्ण सिंह के निबंध इस शैली के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।
4. तरंग शैली - तरंग शैली से तात्पर्य संगीतमय या चित्त की उमंग है। इसमें वाक्य छोटे, सरल तथा कभी-कभी क्रियाहीन हो जाते हैं। इस शैली के भाव लहराते हुए से प्रतीत होते हैं। इस शैली का प्रयोग भी भावात्मक निबंधों में किया जाता है।
5. विक्षेप शैली - विक्षेप शैली से तात्पर्य मन को इधर-उधर भटकाना या संयम न रखना होता है। इसमें भावों की धारा उखडी-उखड़ी सी रहती है। डॉ. रघुवीर सिंह द्वारा रचित 'शेष स्मृतियाँ' रचना इस शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है।
6. प्रलाप शैली - प्रलाप शैली से तात्पर्य अंट-संट (अडबङ) या अनाप-सनाप बात कहना है अर्थात् जब किसी लेख में भावों की उच्छृखलता आ जाती है तब वह 'प्रलाप' का रूप धारण कर लेती है। इसमें भाषा खंडित तथा तीखी रहती है। दुःख की चरमावस्था एवं विरह के प्रसंगों में इस शैली का अधिक प्रयोग किया जाता है।

7. व्यंग्य शैली - इस शैली में लेखक साधारण बोलचाल की भाषा का प्रयोग नहीं करके लक्षणा एवं व्यंजना का सहारा लेता है। व्यंग्य वक्रता ही इनके निबंधों की प्रमुख विशेषता होती है। हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवीन्द्र नाथ त्यागी आदि के निबंध इस शैली के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

विशिष्ट तथ्यात्मक जानकारियाँ -

- हिन्दी के पहले निबंध के रूप में राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद द्वारा लिखित 'राजा भोज का सपना- 1853 ई.' को स्वीकार किया जाता है, जिसमें स्वप्न की एक कथा के माध्यम से नैतिक सिद्धान्त एवं उपदेशात्मक विचार का प्रतिपादन किया गया है।
- » राजा शिवप्रसाद के द्वारा हिन्दी निबंध की कोई सुव्यवस्थित परम्परा स्थापित नहीं की जा सकी। यह कार्य कुछ वर्षों बाद भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा उनके सहयोगी लेखक मण्डल द्वारा सम्पन्न हुआ। अर्थात् हिन्दी निबंध का व्यवस्थित इतिहास भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय से ही प्रारंभ होता है।
- » निबंध गद्य साहित्य की महत्त्वपूर्ण विधा है। इसे गद्य की कसौटी माना जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, "यदि गद्य कवियों की कसौटी है तो निबंध गद्य की कसौटी है। भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास निबंध में ही अधिक संभव होता है।"
- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को 'हिन्दी निबंध का वास्तविक जनक' माना जाता है।
- आचार्य रामचंद्र शुक्ल को भाषा और शैली की दृष्टि से 'कलात्मक निबंध का जन्मदाता' माना जाता है। इनको "निबंध सम्राट्' भी कहा जाता है।
- आचार्य शुक्ल के बाद निबंध के क्षेत्र में प्रसिद्धि प्राप्त करने वाले दूसरे विद्वान हजारी प्रसाद द्विवेदी माने जाते हैं।
- पं. बालकृष्ण भट्ट भारतेन्दु युग के सर्वोत्कृष्ट निबंधकार माने जाते है। इनको "हिन्दी का मौंटेन' भी कहा जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इनको 'हिन्दी का स्टील' कहा है।
- >मुद्रणालयों की स्थापना के बाद आधुनिक काल की गद्य विधाओं में सबसे पहले 'निबंध' जनता के सामने आया।
- हिन्दी निबंधों को 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' कहा जा सकता है, क्योंकि उपन्यास कहानी बंगला से प्रभावित थे, कविता-नाटक की परम्परा काफी लंबी थी। पर निबंध तो इस माटी की नयी उपज थे। इनमें हिन्दी भाषा-भाषी लोगों की माटी की गंध, स्वच्छंदता और यथार्थ के दर्शन होते हैं।
- फ्रांसीसी रचनाकार 'मौंटेन' को निबंध का जन्मदाता माना जाता है। निबंध के लिए 'Essay' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम इन्होंने ही किया था, जिसका अर्थ होता है - 'प्रयास' ।
- डॉ. रमेश कुंतल मेघ ने 'निबंध' और 'लेख' दोनों की विशेषताओं से मिश्रित रचना को 'निलेख' नाम प्रदान किया था।
- मतवाला मंडल- शिवपूजन सहाय, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' एवं 'निराला' ये तीनों मतवाला मंडल के लेखक माने जाते हैं।
- हिन्दी निबंध इतिहास का काल-विभाजन - हिन्दी निबंध के सम्पूर्ण को मुख्यतः चार भागों में विभाजित किया जाता है -

1. भारतेन्दु युग - 1857 ई से 1900 ई. तक
2. द्विवेदी युग - 1900 ई. से 1920 ई. तक
3. शुक्ल युग- 1920 ई. से 1940 ई. तक
4. शुक्लोतर युग - 1940 ई. से अब तक

साहित्य विधा के लिए इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग फ्रांसीसी विद्वान मांतेन (1533-1592 ई.) ने किया। यूरोप में निबंध-साहित्य का जनक साहित्यकार मांतेन को माना जाता है।

अंग्रेजी साहित्य के प्रथम निबंधकार लार्ड बेकन (1561-1626 ई.) ने निबंध को 'डिस्पर्ल्ड मेडिटेंशन' (बिखरावयुक्त चिंतन) कहा है।

डॉ. जानसन (1709-1784 ई.) ने निबंधों को 'मस्तिष्क की ढीली-ढाली उद्भावना' के रूप में निरूपित किया। हिन्दी साहित्य में निबंध लेखन भारतेन्दु युग से ही प्रारंभ हुआ। गद्य का विकास होने के कारण तथा मुद्रण-यंत्र एवं समाचार-पत्रों के प्रचलन ने हिन्दी निबंध साहित्य के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

विभिन्न विद्वानों के मतानुसार हिन्दी के प्रथम निबंधकार

विद्वान	निबंधकार
आचार्य रामचंद्र शुक्ल	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
गणपति चन्द्रगुप्त	राजा शिवप्रसाद "सितारे हिन्द'
लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	बालकृष्ण भट्ट

भारतेन्दुयुगीन हिन्दी निबंध

विषय की दृष्टि से इस युग में प्रधानतः दो प्रकार के निबंध दृष्टिगत होते है-(क) ऐसे निबंध जिनका सीधा संबंध सामाजिक संबंधों से है और जिनमें धर्म, राजनीति, आचार-व्यवहार, प्राचीन गौरव, वर्तमान सामाजिक पतन आदि अनेक विषयों की चर्चा की गई। (ख) ऐसे निबंध जिनमें विज्ञान, इतिहास, मनोभाव आदि पर विचार व्यक्त किये गये है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (1850-1885 ई.)

- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के निबन्धों में समाज-सुधार की समस्या ही अधिकता सामने आयी है।
- भारतेन्दु के प्रमुख निबंध :

कश्मीर-कुसुम, बादशाह दर्पण, उदयपुरोदय, लेवी प्राण लेवी, कंकड स्त्रोत, स्वर्ग में विचार, सभा का अधिवेशन, जाति विवेचिनी सभा, पाँचवे पैगम्बर, अंग्रेज स्त्रोत, कालचक्र, तदीय सर्वस्व, जातीय संगीत, नाटकों का इतिहास, वैद्यनाथ की यात्रा, वैष्णवता और भारतवर्ष, हिन्दी भाषा, सूर्योदय, एक अद्भूत अपूर्व स्वप्न, भ्रूण हत्या, रामायण का समय, काशी, मणिकर्णिका, अंग्रेजो से हिन्दुस्तानियों का जी क्यों नहीं मिलता, नाटक, संगीतसार, ईश्वर बडा विलक्षण है, भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो? आदि।

प्रतापनारायण मिश्र (1856-1894 ई.)

- प्रतापनारायण मिश्र मूलतः आत्मव्यंजक निबंधकार है।
- प्रतापनारायण मिश्र को आचार्य शुक्ल ने हिन्दी का एडीसन कहा है।
- मिश्र जी के प्रमुख निबंध -

आप, बात, भौं, नारी, धोखा, वृद्ध, खुशामद, दाँत, बालक, पेट, मुच्छ, नाक, दान, जुआ, ह, द, समझदार की मौत है, होली है अथवा होरी है, अपव्यय, नास्तिक, ईश्वर की मूर्ति, शिवमूर्ति, सोने का डण्डा, मनोयोग, धूरे का लत्ता बिनै, कनातन क डौल बाँधे, टेढ जान शंका सब काहू आदि ।

बालकृष्ण भट्ट (1844-1904 ई.)

- बालकृष्ण भट्ट वस्तुव्यंजक निबंधकार माने जाते है।
- आचार्य शुक्ल ने भट्ट जी को हिन्दी का स्टील कहा है।
- भट्ट जी ने साहित्यिक, राजनीतिक, सामाजिक विषयों पर निबंध लिखें जो उनके द्वारा संपादित 'हिन्दी प्रदीप' पत्रिका में प्रकाशित होते थे।

भट्ट जी के प्रमुख निबंध -

मेला ठेला, वकील, सहानुभूति, खटका, इंगलिश पढ़े जो बाबू होय, रोटी तो किसी भाँति कमा खाय मुछन्दर, आत्मनिर्भरता, माधुर्य, आत्मगौरव, शब्द की आकर्षण शक्ति, कल्पना, रूचि, भिक्षावृत्ति, माता का स्नेह, आँसू, कालचक्र का चक्कर, चन्द्रोदय, संसार महानाटकशाला, देश-सेवा, साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है, साहित्य और सभ्यता से घनिष्ठ संबंध है, ईश्वर भी क्या ठठोला है, स्त्रियाँ और उनकी शिक्षा, एक अनोखा स्वप्न, हमारे नये सुशिक्षितों में परिवर्तन आदि।

बद्रीनाथ चौधरी 'प्रेमघन' (1855-1923 ई.)

- 'प्रेमघन' भारतेन्दु युग के प्रमुख सामाजिक निबंधकार माने जाते है।
- इनके निबंध प्रायः इनके द्वारा संपादित दो पत्रिकाओं 'आनंद कादंबिनी' (मासिक) और नागरी नीरद (साप्ताहिक) में प्रकाशित होते थे।
- आचार्य शुक्ल जी ने इनके संबंध में लिखा है :

- "ये गद्य रचना को एक कला के रूप में ग्रहण करने वाले कलम की कारीगरी समझने वाले लेखक थे।"
- प्रमुख निबंध -
- बनारस का बुढवा मंगल, दिल्ली दरबार में मित्र मंडलियों के यार, नेशनल कांग्रेस की दुर्दशा, भारतीय प्रजा के दुख की दुलाई और ढिठाई पर गवर्नमेंट की कडाई आदि

भारतेन्दु-युग के अन्य महत्त्वपूर्ण निबंधकार एवं निबंध -

निबंधकार

निबंध

लाला श्रीनिवासदास

1. भारत खण्ड की समृद्धि 2. सदाचरण

राधाचरण गोस्वामी

1. यमलोक की यात्रा

मोहनलाल विष्णुलाल पांड्या

1. हम लोगों की वृद्धि किस रीति से होगी 2. बन्धुत्व किसे कहते है 3. खुशामद

अंबिकादत्त व्यास

१. धैर्य 2. छाया 3. ग्रामवास 4. नगरवास

भारतेन्दु युग के निबंधकारों से संबद्ध पत्र-पत्रिकाएँ

निबंधकार

पत्र-पत्रिका

हरिश्चन्द्र मैग्जीन

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

प्रताप नारायण मिश्र

ब्राह्मण

लाला निवासदास
सदादर्श (1874)

अंबिकादत्त व्यास
पीयूष प्रवाह

बालकृष्ण भट्ट
हिन्दी प्रदीप

बद्रीनाथ चौधरी 'प्रेमघन'
आनंद कादंबिनी, नागरी नीरद

राधाचरण गोस्वामी
भारतेन्दु

मोहनलाल विष्णुलाल
हरिश्चन्द्र चंद्रिका

पांड्या
मोहन चंद्रिका

द्विवेदी युग

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी (1864-1938 ई.)

- आचार्य द्विवेदी हिन्दी गद्य के व्यवस्थापक आचार्य थे।
- निबंधकार द्विवेदी जी के आदर्श 'बेकन' थे। द्विवेदी जी ने बेकन के निबंधों का अनुवाद 'बेकन विचार-रत्नावली's के रूप में किया।
- आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने साहित्य को 'ज्ञानराशि का संचित कोश' माना है।
- आचार्य शुक्ल ने द्विवेदी जी के निबंधों को 'बातों का संग्रह' कहा है।
- आचार्य द्विवेदी जी ने सबसे बडा कार्य युग की मानसिकता के परिवर्तन का किया। 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से उन्होंने पाठकों को नवजागरण का संदेश दिया।
- द्विवेदी जी के प्रमुख निबंध -
- कवि और कविता, सम्पत्तिशास्त्र, रसज्ञ रंजन, नाट्यशास्त्र, प्रतिभा, कविता, साहित्य की महत्ता, लेखांजलि, उपन्यास रहस्य, क्रोध, लोभ, भाषा और व्याकरण, आगरे की शाही इमारतें, कालिदास के

समय का भारत, कवि बनने के सापेक्ष साधन, म्युनिसिपैलिटी के कारनामे, सुतापराधे जनकस्य दण्ड, आत्मनिवेदन, वैदिक देवता, जयपुर, नेपाल आदि।

बालमुकुन्द गुप्त (1865-1907 ई.)

- बालमुकुन्द गुप्त जी ने "शिवशम्भू' के उपनाम से अनेक निबंध लिखे जो 'शिवशंभू के चिढे' और 'खत और चिठे' संकलित है।
- 'शिवशंभू के चिढे' में लार्ड कर्जन के भारत-विरोधी कारनामों पर ओजपूर्ण तीखी एवं व्यंग्यात्मक शैली में प्रहार किया गया है।
- बालमुकुन्द गुप्त के निबंध 'गुप्त निबंधावली' शीर्षक से प्रकाशित है।

प्रमुख कृतियाँ -

शिवशंभू का चिट्ठा, हिन्दी भाषा, चिट्ठे और खत, खिलौना, खेल तथा तमाशा, सर्पाघात चिकित्सा आदि।

- गुप्त जी ने बंगवासी, भारत-मित्र, कोहेनूर, अखबारे चुनार, भारत प्रताप आदि पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया।
- आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है -

"अच्छी हिन्दी बस एक व्यक्ति लिखता था-बालमुकुन्द गुप्त।"

अध्यापक पूर्ण सिंह (1881-1939)

- अध्यापक पूर्णसिंह मानवतावादी निबंधकार थे। उनके मूल प्रेरणास्रोत स्वामी रामतीर्थ थे। -
- -अध्यापक पूर्णसिंह ने अपने निबंधों में मनुष्यता के मूल तत्त्वों-आचरण, श्रम, प्रेम आदि पर विशेष बल दिया।

प्रमुख निबंध :

सच्ची वीरता, कन्यादान, आचरण की सभ्यता, मजदूरी और प्रेम, पवित्रता, अमरीका का मस्त कवि वाल्ट हिटमैन चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' (1883-1920 ई.)

प्रमुख निबंध :

1. कछुआ धर्म
2. मारेसि मोहि कुठाँव
3. काशी
4. जय जमना मैयाजी

द्विवेदी युग के अन्य प्रमुख निबंधकार एवं निबंध

निबंधकार

निबंध

रूपनारायण पाण्डेय

1. विद्युत की चालक शक्ति 2. चित्तौर का सर्वनाश 3. वैशेषिक दर्शन

पं. कृष्ण बिहारी मिश्र

1. प्रचण्ड पुल्टावा पराजय 2. अमेरिका का अभ्युदय

श्यामसुन्दर दास

1. हिन्दी भाषा और साहित्य 2. रूपक रहस्य 3. समाज और साहित्य 4. कर्तव्य और सभ्यता

गोविन्द नारायण मिश्र

1. प्राकृत विचार 2. विभक्ति विचार 3. कवि और चित्रकार

मिश्र बंधु

1. पुष्पांजलि 2. सुमनांजलि 3. आत्मशिक्षा

जगन्नाथ चतुर्वेदी

1. गल्पमाला (1909) 2 निबंध निचय 3. ब की बहार 4. पिक्चर की पूजा 5. अनुप्रास का

पद्म सिंह शर्मा

1. मुझे मेरे मित्रों से बचाओ 2. दयानंद सरस्वती मर गए 3. हिन्दी के प्राचीन साहित्य का उद्धार

शुक्ल युगः

आचार्य रामचंद्र शुक्ल

- आचार्य शुक्ल ने 'निबंध को व्यवस्थित एवं मर्यादित विचार-प्रधान गद्य रचना माना है, जिसमें शैली की विशिष्टताऔर लेखक के निजी चिंतन और अनुभव की विशेषता के कारण व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा भी रहती है।
- आचार्य शुक्ल ने लिखा है -

"यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है तो निबंध गद्य की कसौटी है। भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास निबंधों में ही सबसे अधिक संभव है।"

- आचार्य शुक्ल के निबंधों को दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है - (1) मनोविकार संबंधी निबंध (2) आलोचनात्मक

निबंध

→ चिंतामणि भाग-1 के 'निवेदन' में शुक्ल जी ने लिखा है -

"इस पुस्तक में मेरी अन्तर्यात्रा में पडने वाले कुछ प्रदेश है। यात्रा के लिए निकलती रही है बुद्धि, पर हृदय को भी साथ लेकर अपना रास्ता निकालती रही है।"

आचार्य शुक्ल का निबंध संग्रह चिंतामणि चार भागों में प्रकाशित हुआ है।

चिंतामणि के चारों भागों के संपादक निम्नलिखित है -

(1) चिंतामणि भाग-1

1939 ई.

संपादक : रामचंद्र शुक्ल संपादक : विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

(2) चिंतामणि भाग-2

1945 ई.

(3) चिंतामणि भाग-3

1983 ई.

संपादक : नामवर सिंह संपादक : कुसुम चतुर्वेदी

(4) चिंतामणि भाग-4

1902 से

ओम प्रकाश सिंह

1939 तक के निबंध

चिंतामणि भाग-1 में संकलित निबंध

(1) भाव या मनोविकार

(1) क्रोध

(3) कविता क्या है?

(4) उत्साह

(5) श्रद्धा और भक्ति

(6) मानस की धर्म भूमि

(7) करूणा

(8) तुलसी का भक्ति मार्ग

(9) लज्जा और ग्लानि

(10) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

(11) लोभ और प्रीति
(12) काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था
(13) घृणा
(14) साधारणीकरण और व्यक्तिवैचित्र्यवाद
(15) रसात्मक बोध के विविध रूप
(16) ईर्ष्या

→ चिन्तामणि भाग-2 में संकलित निबंध
(1) काव्य में प्रकृति-दृश्य
(2) काव्य में रहस्यवाद
(3) काव्य में अभिव्यंजनावाद

- आचार्य शुक्ल का चिंतामणि (भाग-1) सर्वप्रथम "विचार वीथी' नाम से सन् 1930 ई. में प्रकाशित हुआ था।
- 'कविता क्या है?' निबंध 'सरस्वती' पत्रिका में सन् 1909 ई. में प्रकाशित हुआ था।
- आचार्य शुक्ल ने मनोविकारों को अपने निबंधों का विषय बनाया। इन निबंधों पर 'गैंड' के "फाउन्डेशन और कैरेक्टर" का प्रभाव है।

शुक्ल युग के अन्य महत्त्वपूर्ण निबंधकार एवं निबंध

निबंधकार
निबंध

बाबू गुलाबराय
(1) ठलुआ क्लब (2) फिर निराश क्यों? (3) मेरी असफलताएँ (4) मन की बातें (5) कुछ उथले कुछ गहरे (6) मेरे मकान (7) मेरे नापिताचार्य (8) मेरी दैनिकी का एक पृष्ठ (9) प्रीतिभोज (10) अध्ययन और आस्वाद (11) प्रबन्ध प्रभाकर (1954) (12) मेरे निबंध (1955)

चतुरसेन शास्त्री
(1) अन्तस्तल (1921 ई.) (2) तरलाग्नि (1936 ई.) (3) मरी खाल की हाय (1939 ई.)

पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी
(1) पंचपात्र (2) विश्व साहित्य (3) मकरन्द बिन्दु (4) प्रबंध पारिजात (5) पद्मवन (6) त्रिवेणी (7) कुछ और कुछ (8) यात्री (9) अतीत स्मृति (10) श्रद्धांजलि के दो फूल (11) रामलाल पंडित (12) एक पुरानी कथा

शिवपूजन सहाय
(1) कुछ

सियाराम शरण गुप्त
(1) झूठ-सच (1939 ई.)

पद्मसिंह शर्मा
(1) पद्म पराग (2) प्रबंध मंजरी

माखनलाल चतुर्वेदी
(1) अमीर इरादे गरीब इरादे (1960) (2) साहित्य देवता

शांतिप्रिय द्विवेदी
(1) कवि और काव्य (1936) (2) साहित्यिकी (1938) (3) संचारिणी (1939) (4) जीवन यात्रा (1941) (5) युग और साहित्य (1941) (6) धरातल (1948) (7) सामयिकी (1955) (8) साकल्य (1955) (9) प्रतिष्ठान (10) आधान (1957) (11) वृंत और विकास (1959) (12) समवेत (1960) (13) परिक्रमा (1962)

वियोगी हरि
(1) तरंगिणी (2) अन्तर्नाद (3) पगली (4) भावना (5) ठंडे छींटे (6) मेरी हिमाकत (7) यों भी तो देखिए (1958)

राहुल सांकृत्यायन
(1) साहित्य निबंधावली

पीतांबर बड़थ्वाल
(1) ज्ञ का उच्चारण (2) मकरंद

डॉ. हरिशंकर शर्मा
(1) पिंजरा पोल (2) चिड़ियाघर (3) मिस पालसी की आत्मकहानी (4) देवियों का दबदबा (5) बेकार विद्यालय (6) सम्पादक जन्तु

छायावादी कवि (निबंधकार) एवं निबंध

जयशंकर प्रसाद

(1) काव्य और कला तथा अन्य निबंध (1939) (2) रहस्यवाद (3) यथार्थवाद और छायावाद (4) रस

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला'

(1) प्रबंध पद्म (1934) (2) प्रबंध प्रतिमा (1940) प्रबंध परिचय (3) प्रबंध प्रतीक्षा (4) प्रबंध पूर्णिमा (5) चयन

महादेवी वर्मा

(1) श्रृंखला की कड़ियाँ (1942) (2) क्षणदा (1957) (3) साहित्यकार की आस्था (1964) संकल्पिता (1968) (4) संभाषण (1975) (5) भारतीय संस्कृति के स्वर (1984) (6) विवेचनात्मक पद्य

सुमित्रानंदन पंत

(1) साठ वर्ष : एक रेखांकन (1960) (2) साठ वर्ष और अन्य निबंध (3) प्रकृति का अंचल (1907-1918) (4) विकास सूत्र

और अंतः संघर्ष (1919-1935) (5) नवमानवता का स्वप्न : मेरे जीवन के प्रेरक ग्रंथ (6) मेरी साहित्यिक मान्यताएँ

शुक्लोत्तर हिन्दी निबंध

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय

(1) साहित्य और कला (2) सांस्कृतिक निबंध (3) इतिहास साक्षी है (1960) (4) इतिहास के पृष्ठों पर (5) खून के धब्बे

डॉ. संपूर्णानन्द

(1) स्फुट विचार (1953) (2) भाषा की शक्ति तथा अन्य निबंध (3) चिद् विलास (4) जीवन और दर्शन (5) पृथ्वी (6) ज्योतिर्विनोद (7) शिक्षा का उद्देश्य (8) समाजवाद (9) आर्यों का देश (10) विचारधारा (1953)

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'

(1) बुढ़ापा (2) गाली

वासुदेव शरण अग्रवाल

(1) पृथ्वीपुत्र (1949) (2) माताभूमि (3) कला और संस्कृति (1958 ई.) (4) वेद विद्या (1959 ई.) (5) वाग्धारा (1966 ई.)

हरिवंश राय बच्चन

(1) नये पुराने झरोखे (1962) (2) टूटी-छूटी कड़ियाँ (1973)

पं. परशुराम चतुर्वेदी

(1) मध्यकालीन प्रेम-साधना (1952) (2) मध्यकालीन शृंगारिक प्रवृत्तियाँ (1955) (3) साहित्य पथ (1961 ई.) (4) भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक रेखाएँ (1962 ई.) (5) नव निबंध

सद्गुरूशरण अवस्थी

(1) बुद्धितरंग (2) विचारतरंग (3) साहित्य तरंग (1956) (4) हृदय ध्वनि (5) विचार विमर्श (6) भ्रमित पथिक

इलाचन्द्र जोशी

(1) साहित्य सर्जना (1938 ई.) 2) विवेचना (1943) (3) विश्लेषण (1953) (4) साहित्य चिन्तन (1934) (5) देखा-परखा (1957)

यशपाल

(1) न्याय का संघर्ष (1940 ई.) (2) बात बात में बात (1950) (3) देखा सोचा समझा (1951 ई.) (4) चक्कर क्लब (5) गाँधीवाद की शव परीक्षा (6) राज्य की कथा

जैनेन्द्र

(1) प्रस्तुत प्रश्न (1936) (2) जङ की बात (1945) (3) पूर्वोदय (1951) (4) साहित्य का श्रेय और प्रेय (1953) (5) मंथन (1953) (6) सोच विचार (1953) (7) काम, प्रेम और परिवार (1953) (8) इतस्ततः (1963) (9) समय और हम (1964) (10) परिप्रेक्ष (1977) (11) साहित्य और संस्कृति (1979 ई.) (12) ये और वे

भदन्त आनंद कौसल्यायन

(1) जो न भूल सका (1945 ई.) (2) रेल का टिकट > डॉ. विनयमोहन शर्मा (1) दृष्टिकोण (1950) (2) साहित्यावलोकन (1953 ई.) (3) साहित्य शोध समीक्षा (1958 ई.) (4) साहित्य नया और पुराना (1972)

पं. नंददुलारे वाजपेयी

(1) हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी (1942) (2) आधुनिक साहित्य (1950) (3) नया साहित्य नये प्रश्न (1955) (4) राष्ट्रभाषा की कुछ समस्याएँ (1961) (5) राष्ट्रीय साहित्य (1965) (6) नयी कविता (1976) (7) रस सिद्धांत (1977) (8) हिन्दी साहित्य का आधुनिक युग (1978) (9) आधुनिक साहित्य : सृजन और समीक्षा (1978) (10) रीति और शैली (1979
ई.)

विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

(1) हिन्दी का सामयिक साहित्य (1951)

इन्द्रनाथ मदान

(1) आलोचना और काव्य (2) निबंध और निबंध (3) कुछ उथले कुछ गहरे (1974) (4) विदा अलविदा (1982 ई.)

देवेन्द्र सत्यार्थी

(1) धरती गाती है (2) एक युग : एक प्रतीक (3) रेखाएँ बोल उठी

कन्हैयालाल प्रभाकर 'मिश्र'

(1) नई पीढ़ी नये विचार (1950 ई.) (2) जिन्दगी मुसकराई (1954 ई.) (8) बाजे पायलिया के धुंघरू (1957) (4) माटी हो गई सोना (1957) (5) महके आँगन चहके द्वार (1962 ई.) (6) क्षण बोले कण मुसकाए (1963) (7) जियें तो ऐसे जियें। (1975 ई.) (8) अनुशासन की राह में (1977 ई.) (9) कारवाँ आगे बढ़े (1984 ई.) (10) जिन्दगी लहलहाई (1984 ई.) (11) सतह से तह में (1986 ई.)

ललित निबंध

पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी

हिन्दी के प्रमुख ललित निबंधकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी निबंध को 'व्यक्ति की स्वाधीन चिन्ता की उपज' मानते
है।

प्रमुख निबंध-संग्रह :

(1) अशोक के फूल (1948 ई.) (2) कल्पलता (1951) (3) मध्यकालीन धर्म साधना (1952) (4) विचार और वितर्क (1957) (5) विचार प्रवाह (1959) (6) कुटज (1964 ई.) (7) साहित्य सहचर (1965) (8) आलोक पर्व (1972 ई.)

प्रमुख निबंध :

(1) अशोक के फूल (2) नाखून क्यों बढ़ते है? (3) देवदारू (4) कुटज (5) बसंत आ गया है (6) वर्षा धनपति से धनश्याम तक (7) मेरी जन्म-भूमि (8) घर जोडने की माया (9) एक कुत्ता और एक मैना (10) दिमाग खाली है (11) शिरीष का फूल (12) जीवेम शरदः शतम् (13) साहित्य से हिमालय (14) आत्मदान का संदेशवाहक बसंत (15) गुरू नानक देव

- द्विवेदी जी के चिन्तन का केन्द्रीय विषय 'मनुष्य' है। संस्कृति, धर्म-दर्शन, विज्ञान तथा समस्त कला-साधनाएँ मनुष्य

रामवृक्ष बेनीपुरी

प्रमुख निबंध-संग्रह :
(1) गेहूँ और गुलाब (1950) (2) वन्दे वीणा विनायकौ (1954 ई.)

> गेहूँ और गुलाब में गेहूँ भूख का तथा गुलाब कला और संस्कृति का प्रतीक है।

ठाकुर रामअधार सिंह

(1) माटी का फूल (1953 ई.) (2) लहरपंथी (1957 ई.)

विद्यानिवास मिश्र

(1) छितवन की छाँव (1953 ई.) (2) हल्की दूब (1955 ई.) (3) कदम की फूली डाल (1956) (4) तुम चन्दन हम पानी (1957) (5) आँगन का पंछी और मन बंजारा (1963) (6) मैंने सिल पहुँचाई (1966) (7) बसंत आ गया पर कोई उत्कण्ठा नहीं (1972) (8) मेरे राम का मुकुट भीग रहा है (1974) (9) परंपरा बंधन नहीं (1976) (10) कंटीले तारों के आर पार । (1976) (11) कौन फूलवा बीन निहारी (1980) (12) निज मुख मुकुर (1981) (13) भ्रमरानंद के पत्र (1981) (14) तमाल के झरोखे से (1981) (15) अस्मिता के लिए (1981) (16) संचारिणी (1982) (17) अंगद की नियति (1984 ई.) (18) लागो रंग हरी (1985) (19) गाँव का मन (1985) (20) नैरन्तर्य और चुनौती (1988 ई.) (21) शेफाली झर रही है (1989 ई.) (22) भाव पुरुष श्री कृष्ण (1990 ई.) (23) सोऽहम (1991 ई.) (24) जीवन अलभ्य है जीवन सौभाग्य है (1991) (25) देश, धर्म और साहित्य (1992 ई.) (26) नदी, नारी और संस्कृति (1993 ई.) (27) फागुन दुई रे दिना (1994 ई.) (28) बूंद मिले सागर में (1994 ई.) (29) पीपल के बहाने (1994 ई.) (30) शिरीष की याद आई (1995 ई.) (31) भारतीय चिन्तनधारा (1995 ई.) (32) साहित्य का खुला आकाश (1996 ई.) (33) लोक और लोक का स्वर (2000 ई.) (34) रथयात्रा (2002 ई) (35) गिर रहा है आज पानी (2001 ई.) (36) स्वरूव विमर्श (2001 ई.) (37) गाँधी का करूण रस (2002) (38) थोडी सी जगह दे (2004 ई.) (39) कितने मोरचे (2007 ई.) (40) साहित्य के सरोकार (2007 ई.)

मिश्र जी निबंध-संग्रह 'भारतीयता की पहचान' (1989) के सभी निबंधों में भारतीय संस्कृति को नये संदर्भ में प्रस्तुत
करने की चेष्टा की गई है।
शिवप्रसाद सिंह
शिवप्रसाद सिंह आत्मव्यंजक ललित निबंधकार है।

प्रमुख निबंध-संग्रह

(1) शिखरों के सेतु (1962 ई.) (2) कस्तूरी मृग (1972 ई.) (3) चतुर्दिक (1972) (4) मानसी गंगा (1986 ई.) (5) किस किस को नमन करूँ (1987) (6) क्या कहूँ कुछ कहा न जाए (1995) (7) खालिस मौज में (1998 ई.)

कुबेरनाथ राय

कुबेरनाथ राय भारतीय संस्कृति के उदात्त स्वरों को आधुनिक जीवन-संदर्भ में व्याख्यायित करने वाले रसधर्मा ललित निबंधकार है।
आरंभ में राय जी के वैचारिक निबंध 'माधुरी' और 'विशाल भारत' पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते थे।

प्रमुख निबंध-संग्रह :

(1) प्रिया नीलकण्ठी (1968 ई.) (2) रस आखेटक (1970) (3) गंधमादन (1972) (4) विषाद योग (1973) (5) निषाद बाँसुरी (1974) (6) पर्व मुकुट (1978 ई.) (7) महाकवि की तर्जनी (1979) (8) कामधेनु (1980) (9) पत्र मणिमुतुल के नाम (1980) (10) मन पवन की नौका (1982) (11) किरात नदी में चंद्र मधु (1983) (12) दृष्टि अभिसार (1984) (13) त्रेता का वृहद मास (1986) (14) मराल (1993 ई.) (15) उत्तर कुरू (1994 ई.) (16) वाणी का क्षीर सागर (1998) (17) अंधकार में अग्नि शिखा (1998 ई.) (18) आगम की नाव (2002 ई.)

ठाकुर प्रसाद सिंह (1924-1993 ई.)

(1) पुराना घर नये लोग (1960 ई.) (2) मोर पंख (2001 ई.)

ग्रामीण चेतना के निबंध

रामदरश मिश्र

(1) कितने बजे है (1982 ई.) (2) बबूल और कैक्टस (1998 ई.) (3) घर परिवेश (2003 ई) (4) छोटे-छोटे सुख (2006

- मिश्र जी के दूसरे निबंध संग्रह 'बबूल और कैक्टस' में 'बबूल' ठेठ ग्रामीण चेतना का प्रतीक है और 'कैक्टस' आधुनिक यांत्रिक सभ्यता का।

विवेकी राय

- विवेकी राय स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उत्तर भारत के बदलते हुए गांवों की संक्रांति चेतना के शिल्पी है।

प्रमुख निबंध-संग्रह

(1) किसानों का देश (1956 ई.) (2) गाँवों की दुनिया (1957) (3) त्रिधारा (1958) (4) फिर बैतलवा डाल पर (1962 ई.) (5) जुलूस रूका है (1977 ई.) (6) गँवई गंध गुलाब (1980) (7) नया गाँव नाम (1984)

(8) आम रास्ता नहीं है (1988) (9) आस्था और चिन्तन (1991) (10) जगत तपोवन सो कियो (1995) (11) वन तुलसी की गंध (2002 ई.) (12) जीवन अज्ञात गणित है (2004) (13) उठ जाग मुसाफिर (2012 ई.)

डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र

मिश्र जी ठेठ ग्रामीण चेतना के संवेदनशील रचनाकार है।

प्रमुख निबंध-संग्रह :

(1) किसानों का देश (1956 ई.) (2) गाँवों की दुनिया (1957) (3) त्रिधारा (1958) (4) फिर बैतलवा डाल पर (1962 ई.) (5) जुलूस रूका है (1977 ई.) (6) गँवई गंध गुलाब (1980) (7) नया गाँव नाम (1984) (8) आम रास्ता नहीं है (1988) (9) आस्था और चिन्तन (1991) (10) जगत तपोवन सो कियो (1995) (11) वन तुलसी की गंध (2002 ई.) (12) जीवन अज्ञात गणित है (2004) (13) उठ जाग मुसाफिर (2012 ई.)

डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र

मिश्र जी ठेठ ग्रामीण चेतना के संवदेनशील रचनाकार है।

प्रमुख निबंध-संग्रह -

(1) बेहया का जंगल (1981 ई.) (2) मकान उठ रहे है (1990 ई.) (3) सम्बुद्धि (1977 ई.) (4) आँगन की तलाश (1999)

श्री राम परिहार

(1) आँच अलाव की (1989 ई.) (2) अंधेरे की उम्मीद (1994) (3) धूप का अवसाद (1998) (4) बजे तो वंशी, गूंजे तो शंख (1999 ई.) 5) ठिठके पंख पांखुरी पर (2002 ई.) (6) रसवंती बोलो तो (2002 ई.) (7) झरते फूल हरसिंगार के (2006) (8) हंसा कहो पुरातन बात (2006 ई.) (9) संस्कृत सलीला नर्मदा (2006 ई.) (10) भय के बीच भरोसा (2011 ई.) (11) परम्परा का पुनराख्यान (2012 ई.)

डायरी (दैनन्दिनी)

- 'डायरी' हिन्दी में अंग्रेजी साहित्य की नकल है।
- अंग्रेजी का 'डायरी' शब्द लैटिन भाषा 'डायस' से निर्मित है इसे संस्कृत में दिवस कहते है।
- -अंग्रेजी की 'डायरी' के लिए हिन्दी में अनेक शब्द है - दैनिकी, दैनन्दिनी, दिनचर्या, रोजनामचा । - 1930 ई. में नरदेव शास्त्री की मौलिक डायरी - 'नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ की जेल डायरी' इस विधा की प्रथम रचना
- गोलमेज सम्मेलन का साहित्यिक शैली में लिखित डायरी है - 'डायरी के कुछ पन्ने' - घनश्यामदास बिड़ला

- -आलोचना के अंक 78 में डायरी प्रकाशित है - श्रीकान्त वर्मा
- जैनेन्द्र का कौन सा उपन्यास डायरी शैली में लिखा गया है ? - 'जयवर्द्धन'
- श्रीलाल शुक्ल का कौन सा उपन्यास डायरी शैली में लिखा गया है ? - 'मकान'
- -'आलोचना' पत्रिका के अंक '67' में किसकी डायरी प्रकाशित हुई? - शिवपूजन
- डायरी विधा की प्रमुख कृतियाँ -

डायरी

लेखक

डायरी के कुछ पन्ने (1931)
घनश्यामदास बिड़ला
मेरी कालिज डायरी
धीरेन्द्र वर्मा

दैनिकी
सियाराम शरण गुप्त

बुकसेलर की डायरी
रावी

गाँधी जी की कारावास कथा
सुशीला नायर

मेरी डायरी के नीरस पन्ने
इलाचन्द्र जोशी

अजय की डायरी
देवराज

दैनन्दिनी
सुन्दरलाल त्रिपाठी

प्रवास की डायरी
हरिवंशराय बच्चन

दिनकर की डायरी
रामधारी सिंह दिनकर

दिल्ली मेरा परदेश
रघुवीर सहाय

सैलानी की डायरी
राजेन्द्र अवस्थी

एक साहित्यिक की डायरी
मुक्तिबोध

अंकित होने दो
अजित कुमार

मोहन राकेश की डायरी
मोहन राकेश

एक मुख्यमंत्री की डायरी मेरी जेल डायरी
शांता कुमार

मेरी जेल डायरी
जयप्रकाश नारायण

मनबोध मास्टर की डायरी
विवेकीराय

स्मृतियों की जन्मपत्री
रवीन्द्र कालिया

रिपोर्ताज

"रिपोर्ताज' फ्रेंच भाषा का शब्द है। फ्रेंच भाषा के 'रिपोर्ताज' शब्द को हिन्दी में प्रचलित कर दिया गया। द्वितीय महायुद्ध के अवसर पर यूरोपीय साहित्य में इस विधा का विशेष विकास हुआ। हिन्दी में "रिपोर्ताज' 1940 ई. के आस-पास लिखे जाने लगे। घटना का यथातथ्य वर्णन 'रिपोर्ताज' का प्रमुख लक्षण है परन्तु 'रिपोर्ट' के कलात्मक और साहित्यिक रूप को ही रिपोर्ताज' कहते हैं।

बाबू गुलाबराय ने इसे 'लेखक का उत्साह' कहा है। रिपोर्ताज के विषय में वे लिखते है :

"रिपोर्ट की भाँति यह घटना या घटनाओं का वर्णन तो अवश्य होता है किन्तु उसमें लेखक के हृदय का निजी उत्साह रहता है जो वस्तुगत सत्य पर बिना किसी प्रकार का आवरण डाले उसको प्रभावमय बना देता है।" प्रमुख रिपोर्ताज एवं उनके लेखक -

लेखक

रिपोर्ताज

शिवदान सिंह चौहान

(1) लक्ष्मीपुरा (2) मौत के खिलाफ जिन्दगी की लड़ाई

रांगेय राघव

(1) तूफानों के बीच (1941 ई.)

प्रकाश चन्द गुप्त

(1) स्वराज भवन (2) अल्मोड़ा का बाजार (3) बंगाल का अकाल

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

(1) पहाडों में प्रेममय संगीत

रामनारायण उपाध्याय

(1) गरीब और अमीर पुस्तकें (1958) (2) नववर्षांक समारोह में

भदन्त आनन्द कौशल्यायन

(1) देश की मिट्टी बुलाती है

शिवसागर मिश्र

(1) वे लड़ेंगे हजार साल (1966 ई.)

धर्मवीर भारती

(1) युद्ध यात्रा (1972 ई.)

कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर
(1) क्षण बोले कण मुस्काए

शमशेर बहादुर सिंह
(1) प्लाट का मोर्चा (1952 ई.)

फणीश्वर नाथ रेणु
(1) ऋणजल धनजल (1977 ई.) (2) नेपाली क्रांति कथा (1978 ई.) (3) श्रुत-अश्रुत पूर्व (1984) (4) एकलव्य के नोट्स

विवेकी राय
(1) जुलूस रूका है (1977 ई.) (2) बाढ़! बाढ़! बाढ़!!

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय
(1) खून के छींटे

रामकुमार वर्मा
(1) पेरिस के नोट्स

निर्मल वर्मा
(1) प्रागः एक स्वप्न

श्रीकांत वर्मा
(1) मुक्ति फौज

कमलेश्वर
(1) क्रांति करते हुए आदमी को देखना

चंडी प्रसाद सिंह
(1) युवराज की यात्रा (1897 ई.)

जगदीश चंद्र जैन

(1) पेंकिंग की डायरी

प्रभाकर माचवे

(1) जब प्रभाकर पाताल गए

बलराम

(1) औरत की पीठ पर

मैत्रेयी पुष्पा

(1) फाइटर की डायरी

हिन्दी आत्मकथा का विकास

आत्मकथा के लिए अंग्रेजी में 'आटोबायोग्राफी' शब्द प्रचलित है। जब लेखक स्वयं अपने जीवन का क्रमिक ब्यौरा पेश करता है तो उसे 'आत्मकथा' कहते है।

हिन्दी में 'आत्मकथा' अपेक्षाकृत आधुनिक विधा है। हिन्दी की प्रथम आत्मकथा बनारसीदास जैन कृत 'अर्द्धकथानक' (1641 ई.) मानी जाती है। यह आत्मकथा ब्रजभाषा पद्य में लिखी गयी है। इसके संबंध में इसके संपादक नाथूराम प्रेमी का दावा है कि "कदाचित् समस्त आधुनिक आर्यभाषा साहित्य में इससे पूर्व की कोई आत्मकथा नहीं है।" इसके अतिरिक्त पूरे मध्यकाल में किसी अन्य आत्मकथा का उल्लेख नहीं मिलता। आधुनिक युग में स्वयं भारतेन्दु ने 'कुछ आप बीती, कुछ जगबीती' नाम से आत्मकथा लिखना प्रारंभ किया।

हिन्दी के प्रमुख आत्मकथाकार एवं आत्मकथा

लेखक	आत्मकथा	प्रकाशन वर्ष
बनारसीदास जैन	अर्द्धकथानक	
1641 ई.		
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	कुछ आप बीती, कुछ जगबीती	1876 ई.
अंबिकादत्त व्यास	निज वृत्तान्त	1901 ई.
स्वामी दयानन्द	जीवन चरित्र	
सत्यानन्द अग्निहोत्री	मुझमें देव जीवन का विकास	1910 ई.
भाई परमानन्	आपबीती	1921
ई.		

स्वामी श्रद्धानन्द 1924 ई.		कल्याण मार्ग का पथिक
रामविलास शुक्ल	मैं क्रांतिकारी कैसे बना	1933 ई.
भवानीदयाल सन्यासी	प्रवासी की कहानी	1939 ई
डॉ. श्यामसुन्दर दास		
राहुल सांकृत्यायन	मेरी जीवन यात्रा	1946 ई.
डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ई.	आत्म कथा	1947
वियोगी हरि ई.	मेरा जीवन-प्रवाह	1948
यशपाल ई.	सिंहावलोकन, भाग-1	1951
. ई	सिंहावलोकन, भाग-2	1952
ई.	सिंहावलोकन, भाग-3	1953
सत्यदेव परिव्राजक 1951 ई.		स्वतंत्रता की खोज में
शान्तिप्रिय द्विवेदी 1952 ई.		परिव्राजक की प्रजा
देवेन्द्र	सत्यार्थी चाँद सूरज के बीरन, भाग-1	1954 ई.
ई.	नीलयाक्षिणी भाग-2	1985
	नाच मेरी बुलबुल, भाग-3	1999 ई.
गंगाप्रसाद उपाध्याय	जीवन चक्र	1954 ई.
आचार्य चतुरसेन शास्त्री	यादों की परछाइयाँ, भाग-1	1956 ई.
	मेरी आत्मकहानी, भाग-2	1963 ई.

सेठ गोविन्द दास	आत्मनिरीक्षण	1958 ई.
देवराज उपाध्याय	बचपन के दो दिन, भाग-1	1958 ई.
	यौवन के द्वार पर, भाग-2	1970 ई.
पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी	मेरी अपनी कथा	
पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'	अपनी खबर	
हरिवंश राय बच	क्या भूलूँ क्या याद करूँ, भाग-1	1969 ई.
	नीड़ का निर्माण फिर, भाग-2	1970 ई
	बसेरे से दूर, भाग-3	1978 ई.
	दश द्वार से सोपान तक, भाग-4	1985 ई.
वृन्दावन लाल वर्	अपनी कहानी	1970 ई.
बलराज साहनी	मेरी फिल्मी आत्मकथा	1947 ई.
रामविलास शर्मा	घर की बात	1983 ई.
शिवपूजन सहाय	मेरा जीवन	1985 ई.
हंसराज रहबर	मेरे सात जनम (तीन खण्ड)	1986 ई.
रामदरश मिश्र	जहाँ मैं खड़ा हूँ, भाग-1	1984 ई.
	रोशनी की पगडंडिया, भाग-2	
	टूटते-बनते दिन, भाग-3	
	उत्तर पथ, भाग-4	
	सहचर है समय	1991 ई.
	फुरसत के दिन	2000 ई.
अमृतलाल नागर	टुकड़े-टुकड़े दास्तान	1986 ई.
यशपाल जैन	मेरी जीवन धारा	1987 ई.
फणीश्वरनाथ रेणु	आत्म परिचय	1988 ई.
डॉ. नगेन्द्र	अर्धकथा	1988 ई.
गोपाल प्रसाद व्यास	कहो व्यास कैसी कटी	1989 ई.

रामविलास शर्मा	मुँडेर पर सूरज, भाग-1	
	देर सबेर, भाग-2	
	आपस की बातें, भाग-3	
	अपनी धरती अपने लोग	1996 ई
कमलेश्वर	जो मैंने जिया, भाग-1	
	यादों का चिराग, भाग-2	1997 ई.
	जलती हुई नदी, भाग-3	1999 ई.
रवीन्द्र	कालिया गालिब छूटी शराब	2000 ई.
भगवती चरण शर्मा	कहि न जाए का कहिए	2001 ई.
राजेन्द्र यादव	मुड़-मुड़ कर देखता हूँ	2001 ई.
	देहरी भई विदेस	2005 ई.
कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	तपती पगडंडियों पर पदयात्रा	1989 ई.
अखिलेश	वह जो यथार्थ था	2001 ई.
भीष्म सहानी	आज के अतीत	2003 ई.
अशोक वाजपेयी	पावभर जीरे में ब्रह्मभोज	2003 ई.
स्वदेश दीपक	मैंने मांडू नहीं देखा	2003 ई.
विष्णु प्रभाकर	पंखहीन, भाग-1	2004 ई.
	मुक्त गगन में, भाग-2	2004 ई.
	पंछी उड़ गया, भाग-3	2004 ई.
रवीन्द्रनाथ त्यागी	बसंत से पतझर तक	2005 ई.
रामकमल राय	एक अंतहीन तलाश, भाग-1	2007 ई.
देवेश ठाकुर	यों ही जिया	2007 ई.
एकांत श्रीवास्तव	मेरे दिन मेरे वर्ष	2009 ई.
कृष्ण बलदेव वैद्य	शम अ हर रंग	
सुमित्रानंदन पंत	साठ वर्ष : एक रेखांकन	

जाबिर हुसैन	रेत पर खेमा	
मिथिलेश्वर	पानी बीच मछली प्यासी	2010 ई.
	और कहाँ तक कहें युगों की बात	2011 ई.
	जग चेत कुछ करौ उपाई	2015 ई.
लक्ष्मी	मैं हिजड़ा..... मैं लक्ष्मी	2015 ई.
डॉ. नरेन्द्र	मोहनकमबख्त निन्दर	2013 ई.
	क्या हाल सुनावा	2015 ई.
दीनानाथ मल्होत्रा	भूली नहीं जो यादें	2007 ई.
कृष्ण बिहारी	सागर के इस पार उस पार तक	2008 ई.
द्वारिका प्रसाद सक्सेना	मेरी आत्मकथा : कालजयी संघर्षगाथा	2007 ई.
कन्हैया लाल नंदन	गुजरा कहाँ-कहाँ से	2007 ई.
	कहना जरूरी था	2009 ई.
	मैं था और मेरा आकाश	2011 ई.
हृदयेश	जोखिम	2009 ई.
ज्ञानेश्वर मूले	माटी पंख और आकाश	2012 ई.
मधुरेश	लोचक का आकाश	2012 ई.
महीप सिंह	कितनी बार कितनी धूप में	2013 ई.
रमेश उपाध्याय	मेरा मुझमें कुछ नहीं	2013 ई.
नरेन्द्र कोहली	आत्म स्वीकृति	2014 ई.
हरदर्शन सहगल	डगर डगर पर मगर	2014 ई.
विश्वनाथ प्रसाद	तिवारी अस्ति और भवति	2014 ई.
लाल बहादुर	वर्माजीवन प्रवाह में बहते हुए	2015 ई.

हिन्दी की प्रमुख महिला आत्मकथा लेखिका एवं आत्मकथा लेखिका

आत्मकथा प्रकाशन वर्ष

जानकी देवी बजाज
मेरी जीवन यात्रा 1956 ई.

प्रतिभा अग्रवाल
दस्तक जिन्दगी की, भाग-1 1990 ई.
मोड़ जिन्दगी का, भाग -2 1996 ई.

कुसुम अंसल
जो कहा नहीं गया 1996 ई.

कृष्णा अग्निहोत्री
लगता नहीं है दिल मेरा 1997 ई.
और औ रऔरत 2010 ई.

पद्मा सचदेवा
बूंद बावड़ी

शीला झुनझुनवाला
कुछ कही कुछ अनकही

मैत्रेयी पुष्पा
कस्तूरी कुण्डल बसे, भाग-1 2002 ई.

गुड़िया भीतर गुड़िया, भाग-2 2008 ई.

रमणिका गुप्ता
हादसे 2015 ई.
आप हुदरी

प्रभा खेतान
अन्या से अनन्या 2007 ई.

चन्द्रकिरण सौनेरक्सा

पिंजरे में मैना 2008 ई.

अनीता राकेश
संतरे और संतरे

ममता कालिया
कितने शहरों में कितनी बार 2011 ई.

चंद्रकांता
हासिये की इबारतें 2012 ई.

सुषमा बेदी
आरोह-अवरोह 2015 ई.

निर्मला जैन
जमाने में हम 2015 ई.

दलित आत्मकथाकार एवं आत्मकथा

हिन्दी की पहली दलित आत्मकथा मोहनदास नैमिशराय कृत "अपने-अपने पिंजरे" (1995 ई.) है।

लेखक
आत्मकथा प्रकाशन

मोहनदास नैमिशराय
अपने-अपने पिंजरे (दो भाग) 1995 ई.

ओमप्रकाश वाल्मीकि
जूठन 1997 ई.

कौशल्या बैसंती
दोहरा अभिशाप 1999 ई.

माता प्रसाद
झोपड़ी से राजभवन 2002 ई.

सूरजपाल चौहान
तिरस्कृत 2002 ई.
संतप्त 2002 ई.

रमाशंकर आर्य
घुटन 2005 ई.

श्यौराज सिंह 'बेचैन'
बेवक्त गुजर गया माली 2006 ई.
मेरा बचपन मेरे कंधे पर 2009 ई.

तुलसीराम
मुर्दहिया, भाग-1 2010 ई.
मणिकर्णिका, भाग-2 2014 ई.

डी.आर. जाटव
मेरा सफर मेरी मंजिल 2000 ई.

किशोर शांताबाई काले
छोरा कोल्हाटी

रूपनारायण सोनकर
नागफनी 2007 ई.
मेरे जीवन की बाइबिल 2007 ई.

डॉ. धर्मवीर
मेरी पत्नी और भेड़िया 2009 ई.

लक्ष्मण गायकवाड़
उचक्का 2011 ई.

सुशीला टाकभौरे
शिंकजे का दर्द 2012 ई.

हिन्दी जीवनी का विकास

जीवनी को अंग्रेजी में 'बायोग्राफी' कहते है। जीवनी के विषय में "हिन्दी साहित्य कोश' में कहा गया है-"किसी व्यक्ति विशेष के जीवन वृतांत को जीवनी कहते है।" अर्थात् जीवनी में व्यक्ति विशेष के जीवन को उसकी संपूर्णता एवं व्यापकता के साथ प्रस्तुत किया जाता है। जीवनी का यह ब्यौरा स्व-रचित न होकर किसी अन्य द्वारा तटस्थ तथा निष्पक्ष दृष्टिकोण के आधार पर रचा जाता है। इस दृष्टि से यह आत्मकथा के विपरीत 'परकथा' है कुल मिलाकर, जीवनी व्यक्ति विशेष के जीवन का ऐसा चित्र है जहाँ उसके जीवनगत तथ्यों और चरित्र की विशेषताओं को ऐसी कलात्मकता के साथ विन्यस्त किया जाता है कि वह शब्द चित्र सजीव हो उठता हैं।

हिन्दी की प्रमुख जीवनियाँ एवं लेखक

लेखक

जीवनी

नाभादास

भक्तमाल (1585 ई.)

गोकुलनाथ

चौरासी वैष्णवन की वार्ता

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता ।

गोपाल शर्मा शास्त्री

दयानन्द दिग्विजय (1881 ई.)

बाबू राधाकृष्णदास

नागरीदास जी का जीवन चरित्र (1894) (2) कविवर बिहारी लाल (1895) (3) सूरदास (1900) (4) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जीवन चरित्र (1904 ई.)

शिवनन्दन

(1) हरिश्चन्द (1905 ई.)

आचार्य रामचंद्र शुक्ल

(1) बाबू राधाकृष्ण दास (1913 ई.)

घनश्याम बिङला

(1) बापू (1940 ई.) (2) मेरे जीवन में गाँधी जी (1975)

स्वामी सत्यानन्द

(1) दयानन्द प्रकाश (1919 ई.)

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

(1) चंपारन में महात्मा गांधी (1919 ई.) (2) बापू के कदमों में (1950 ई.)

ब्रजरनदास

(1) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (1948 ई.)

महावीर प्रसाद द्विवेदी

(1) प्राचीन पंडित और कवि (1918 ई.) (2) सुकवि संकीर्तन (1924 ई.) (3) चरितचर्चा (1929 ई.)

बाबू श्याम सुन्दरदास

(1) हिन्दी कोविद् रत्नमाला (प्रथम भाग-1909, द्वितीय-1914 ई.)

शिवरानी देवी

(1) प्रेमचंद घर में (1944 ई.)

सुशीला नायर

(1) बापू के कारावास की कहानी (1949 ई.)

रामवृक्ष बेनीपुरी

(1) जयप्रकाश नारायण (1951 ई.)

राहुल सांकृत्यायन

(1) स्तालिन (1954) (2) कार्ल मार्क्स (1954) (3) लेनिन (1954) (4) माओत्सेतुंग (1954

अमृतराय

(1) कमल का सिपाही (1962 ई.)

मदन गोपाल

(1) कमल का मजदूर (1964 ई.)

जैनेन्द्र कुमार
(1) अकाल पुरुष गाँधी (1968 ई.)

डॉ. रामविलास शर्मा
(1) निराला की साहित्य साधना (भाग-1, 1969 ई.) (2) मार्क्स, त्रोत्स्की और एशियाई समाज (1986 ई.)

शांति जोशी
(1) सुमित्रानंदन पंत : जीवनी और साहित्य (1970 ई. द्वितीय भाग-1977 ई.)

जगदीश चन्द्र माथुर
(1) जिन्होंने जीना जाना (1971 ई.)

शिव प्रसाद सिंह
(1) उत्तर योगी : श्री अरविन्द (1972 ई.)

विष्णु प्रभाकर
(1) आवारा मसीहा (1974 ई.)

विष्णु चन्द्र शर्मा
(1) अग्निसेतु (1976 ई.) (2) समय साम्यवादी (1997 ई.)

शिवसागर मिश्र
(1) दिनकर एक सहज तक (1981 ई.)

रामकमल राय
(1) शिखर से सागर तक (1986 ई.)

शोभाकांत
(1) बाबूजी (1991 ई.)

तेजबहादुर चौधरी

(1) मेरे बड़े भाई शमशेर जी (1995 ई.)

कमला सांकृत्यायन
(1) महामानव महापंडित (1995 ई.)

प्रतिभा अग्रवाल
(1) प्यारे हरिश्चंद्रजू (1997 ई.)

सुलोचना रांगेय
(1) रागये राघव का एक अंतरंग परिचय (1997 ई.)

मदन मोहन ठाकौर
(1) राजेन्द्र यादव (1999 ई.)

बिन्दु अग्रवाल
(1) स्मृति के झरोखे से (1999 ई.) (भारत भूषण अग्रवाल की जीवनी)

ज्ञानचन्द्र जैन
(1) कथा शेष (1999 ई.) (2) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : एक व्यक्तित्व चित्र (2004 ई.)

महिमा मेहता
(1) उत्सव पुरुष नरेश मेहता (2003 ई.)

गायत्री कमलेश्वर
(1) कमलेश्वर : मेरे हमसफर (2005 ई.)

कृष्ण बिहारी मिश्र
(1) कल्पतरू की उत्सव लीला (2005 ई.) (रामकृष्ण परमहंस की जीवनी)

कुमुद नागर
(1) वटवृक्ष की छाया में (2006 ई.) (अमृतलाल नागर की जीवनी)

विजय बहादुर मिश्र
(1) आलोचक का स्वदेश (2008 ई.)

अखिलेश

(1) मकबूल (2011 ई.)

डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी

(1) व्योमकेश दरवेश (2011 ई.)

नरेन्द्र मोहन

(1) मंटो जिंदा है (2012 ई.)

पुरुषोत्तम अग्रवाल

(1) कोलाज : अशोक वाजपेयी (2012 ई.)

डॉ. रामशंकर मिश्र

(1) दर्पण देखे माँच के (2014 ई.)

उर्मिला शिरीष

(1) बयावां में बहार (2014 ई.)

हिन्दी जीवनी के संबंधित महत्वपूर्ण तथ्य -

- आवारा मसीहा (विष्णु प्रभाकर) में शरतचंद्र की प्रतिमा का पुनर्सर्जन हुआ है, जो मानवीय संवेदना के स्तर पर आज भी प्रासंगिक है।
- -शिवसागर मिश्र ने "दिनकर एक सहज पुरुष' (1981) में "दिनकर' के मानवीय पक्ष को उभारने का प्रयत्न किया है। यह जीवनी आत्मीय शैली में लिखी गई है।
- शोभाकांत ने 'बाबू जी' में नागार्जुन के जीवन के कुछ अछूते प्रसंगों को उभारने का प्रयत्न किया है।
- -'अग्निसेतु' (1976 ई.) में विष्णुचंद्र शर्मा ने बंग्ला के विद्रोही कवि नजरूल इस्लाम के प्रामाणिक जीवन को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।
- 'जिन्होंने जीना जाना' (1971) में जगदीशचन्द्र माथुर ने 12 प्रतिभाशाली व्यक्तित्व का चरित-लेख प्रस्तुत किया है।

हिन्दी रेखाचित्र

अंग्रेजी में 'स्केच का हिन्दी पर्याय 'रेखाचित्र' है। 'स्केच' की ही तरह 'रेखाचित्र' में भी कम से कम शब्दों में कलात्मक ढंग से किसी वस्तु, व्यक्ति या दृश्य का अंकन किया जाता है। इसमें साधन शब्द होते है, रेखाएँ नहीं। इसीलिए इसे 'शब्दचित्र' भी कहते हैं।

'रेखाचित्र' यद्यपि एक नवीन साहित्यिक विधा के रूप में हिन्दी साहित्य में प्रतिष्ठित हो चुकी है। एकात्मकता, सरस और मार्मिक शैली, संस्मरणात्मक चित्र, हृदय की संवदेनशीलता, कल्पना का सौन्दर्य, सूक्ष्मपर्यवक्षेण शक्ति, संक्षिप्तता, विवरण की न्यूनता आदि रेखाचित्र की प्रमुख विशेषताएँ मानी जाती है।

हिन्दी के रेखाचित्र और लेखक निम्नलिखित है -

लेखक

रेखाचित्र

महादेवी वर्मा

(1) अतीत के चलचित्र (1941 ई.) (2) स्मृति की रेखाएँ (1943 ई.) (3) स्मारिका (1971 ई.) (4) मेरा परिवार (1972 ई.)

श्री राम शर्मा

(1) बोलती प्रतिमा (1937 ई.)

प्रकाशचन्द्र गुप्त

(1) रेखाचित्र (1940 ई.) (2) मिट्टी के पुतले (3) पुरानी स्मृतियाँ नये स्केच

रामवृक्ष बेनीपुरी

(1) लाल तारा (1938 ई.) (2) माटी की मूरतें (1946 ई.) (8) गेहूँ और गुलाब (1950 ई.) (4) मील के पत्थर

देवेन्द्र सत्यार्थी

(1) रेखाएँ बोल उठी (1949 ई.)

बनारसीदास चतुर्वेदी

(1) रेखाचित्र (1952 ई.) (2) सेतुबन्ध (1952 ई.)

कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर

(1) माटी हो गई सोना (2) दीप जले शंख बजे (1959 ई.)

विनय मोहन शर्मा

(1) रेखा और रंग (1955 ई.)

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'
(1) रेखाएँ और चित्र (1955 ई.)

प्रेमनारायण टंडन
(1) रेखाचित्र (1959 ई.)

माखनलाल चतुर्वेदी
(1) समय के पाँव (1962 ई.)

जगदीशचन्द्र माथुर
(1) दस तस्वीरें (1963 ई.)

विष्णु प्रभाकर
(1) कुछ शब्द : कुछ रेखाएँ (1965 ई.)

सेठ गोविन्ददास
(1) चेहरे जाने पहचाने (1966 ई.)

डॉ. नगेन्द्र
(1) चेतना के बिम्ब (1967 ई.)

कृष्णा सोबती
(1) हम हशमत (1977, भाग-1)

भीमसेन त्यागी
(1) आदमी से आदमी तक (1982 ई.)

हिन्दी संस्मरण का विकास

संस्मरण हिन्दी गद्य की एक नवीन किन्तु महत्त्वपूर्ण विद्या है। संस्मरण का मूल अर्थ है -'सम्यक् स्मृति' । एक ऐसी स्मृति जो वर्तमान को अधिक समृद्ध और संवदेनशील बनाती है।

"संस्मरण किसी स्मार्यमाण की स्मृति का शब्दांकन है। स्मार्यमाण के जीवन के वे पहलू, वे संदर्भ और वे चारित्रिक वैशिष्टय जो स्मृतिकर्ता को स्मृत रह जाते हैं, उन्हें वह शब्दांकित करता है। स्मार्यमाण को अंकित करते हुए लेखक स्वयं भी अंकित होता चला जाता है।

संस्मरण के मूल तत्व हैं - स्मृति, संबंधभाव, आत्मानुभव और स्वयं को खोजने-पहचानने की ईमानदार कोशिश ।
हिन्दी में संस्मरण लेखक का सिलसिला बीसवीं सदी के तीसरे दशक में शुरू हो चुका था, लेकिन विधा के रूप में स्वतंत्र पहचान पांचवें दशक में ही बन सकी। हिन्दी के आरंभिक संस्मरणकारों में पद्यसिंह शर्मा का नाम महत्त्वपूर्ण है। सन् 1929 ई. में उनकी संस्मरणात्मक पुस्तक 'पद्य पराग' का प्रकाशन हुआ जिसमें सत्यनारायण कविरत्न भीमसेन शर्मा आदि पर मार्मिक संस्मरण है।

हिन्दी के प्रमुख संस्मरणकार एवं संस्मरण

लेखक

संस्मरण

पद्यसिंह शर्मा
(1) पद्य पराग (1929 ई.) (2) प्रबंध मंजरी

मन्मथनाथ गुप्त
(1) क्रांतियुग के संस्मरण (1937 ई.)

राधिकारमण प्रसाद सिंह
(1) टूटा तारा (1940 ई.)

रामनरेश त्रिपाठी
(1) तीस दिन मालवीयजी के साथ (1942 ई.)

शिवपूजन सहाय
(1) वे दिन वे लोग (1946 ई.)

बनारसीदास चतुर्वेदी
(1) हमारे आराध्य (1952 ई.) (2) संस्मरण (1952 ई.)
महादेवी वर्मा
(1) पथ के साथी (1956 ई.)

जैनेन्द्र कुमार
(1) ये और वे

रामवृक्ष बेनीपुरी
(1) जंजीरे और दीवारें

राहुल सांकृत्यायन
(1) बचपन की स्मृतियाँ (1955) (2) जिनका मैं कृतज्ञ (1957 ई.)

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'
(1) मण्टो मेरा दुश्मन (1956 ई.) (2) ज्यादा अपनी कम परायी (1959 ई.)

सेठ गोविन्ददास
(1) स्मृतिकण (1959 ई.)

इन्द्र विद्यावाचस्पति
(1) मैं इनका ऋणी हूँ (1959 ई.)

हरिवंश राय बच्चन
(1) नये पुराने झरोखे (1962 ई.)

माखनलाल चतुर्वेदी
(1) समय के पाँव (1962 ई.)

संपूर्णानन्द
(1) कुछ स्मृतियाँ और स्फुट विचार (1962 ई.)

विष्णु प्रभाकर
(1) जाने अनजाने (1962) (2) यादों की तीर्थयात्रा (1981 ई.) (3) मेरे अग्रज मेरे मीत (4) समान्तर रेखाएँ (5) हम इनके ऋणी है (6) एक दिशाहीन सफर (7) साहित्य के स्वप्न पुरुष (8) राह के चलते-चलते (9) हमारे पथ प्रदर्शक (10) हम सफर मिलते है (11) सृजन के सेतु (12) आकाश एक है (13) यादों की छाँव में

फणीश्वरनाथ रेणु

(1) वन तुलसी की गंध (2) समय की शिला पर

धर्मवीर भारती
(1) ठेले पर हिमालय

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'
(1) भूले हुए चेहरे (2) जिन्दगी मुस्काई (1953 ई.)

प्रकाश चन्द्र गुप्त
(1) पुरानी स्मृतियाँ (1947 ई.)

काका कालेलकर
(1) गाँधी : संस्मरण और विचार (1968 ई.)

रामधारी सिंह 'दिनकर'
(1) संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ (1969 ई.),

लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु
(1) व्यक्तित्व की झांकियाँ (1970 ई.)

पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी
(1) अंतिम अध्याय (1972 ई.)

लक्ष्मीशंकर व्यास
(1) स्मृति की त्रिवेणिका (1974 ई.)

कमलेश्वर
(1) मेरे हमदम मेरे दोस्त (1975 ई.)

रामनाथ सुमन
(1) मैंने स्मृति के दीप जलाएँ (1976 ई.)

परिपूर्णानन्द
(1) बीती यादें (1976 ई.)

विष्णुकांत शास्त्री
(1) स्मरण को पाथेय बनने दो (1978) (2) सुधियाँ उस चंदन के वन की (1992) (3) पर साथ-साथ चल रही याद (2004 ई.)

अनीता राकेश
(1) चंद संतरे और (1975 ई.)

शंकरदयाल सिंह
(1) कुछ ख्वाबों कुछ ख्यालों में (1978 ई.)

भगवतीचरण वर्मा
(1) अतीत के गर्त से (1979 ई.) (2) हम खण्डहर के वासी

मैथिलीशरण गुप्त
(1) श्रद्धांजलि स्मरण (1979 ई.)

सुलोचना रागेय राघव
(1) पुनः (1979 ई.)

कुँवर सुरेश सिंह
(1) यादों के झरोखे (1980 ई.)

राजेन्द्र यादव
(1) औरों के बहाने (1981 ई.) (2) वे देवता नहीं है (2002 ई.)

अमृतलाल नागर
(1) जिनके साथ जिया (1981 ई.)

प्रतिभा अग्रवाल
(1) सृजन का सुख दुःख (1981 ई.)

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'
(1) युग पुरुष (1983 ई.)

पद्मा सचदेवा
(1) दीवानखाना (1984 ई.) (2) मितवाघर (1995 ई.) (3) अमराई (1999 ई.) (4) लता मंगेशकर : ऐसा कहाँ से लाऊँ (2012)

अज्ञेय
(1) स्मृति लेखा (1986 ई.)

काशीनाथ सिंह
(1) याद हो के न याद हो (1992 ई.) (2) आछे दिन पाछे भये (2004) (3) घर का जोगी जोगडा (2006 ई.)

गिरिराज किशोर
(1) सप्तपर्णी (1994 ई.)

दूधनाथ सिंह
(1) लौट आओ धार (1995 ई.) (2) एक शमशेर भी है (2012 ई.)

रामदरश मिश्र
(1) स्मृतियों का छंद (1995 ई.) (2) अपने-अपने रास्ते (2001 ई.) (3) एक दुनिया अपनी (2007)

रवीन्द्र कालिया
(1) सृजन के सहयात्री (1996 ई.) (2) मेरे हमकलम (2015 ई.)

विष्णुचन्द्र शर्मा
(1) अभिन्न (1996 ई.)

कृष्णा सोबती
(1) हम हशमत-तीन भागों में (2012) (2) शब्दों के आलोक में (3) सोबती एक सोहबत

रामनाथ अवस्थी
(1) याद बातें है (2000 ई.)

देवेन्द्र सत्यार्थी

(1) यादों के काफिले (2000 ई.)

विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
(1) एक नाव के यात्री (2001 ई.)

विद्यानिवास मिश्र
(1) चिडिया रैन बसेरा (2002 ई.)

मनोहर श्याम जोशी
(1) लखनऊ मेरा लखनऊ (2002) (2) रघुवीर सहाय : रचनाओं के बहाने एक संस्मरण (2003 ई.) (3) बातों बातों में

रामकमल राय
(1) स्मृतियों का शुक्ल पक्ष (2002 ई.)

विवेकी राय
(1) आँगन के वंदनवार (2003 ई.) (2) मेरे सुहृदय श्रद्धेय (2005 ई.)

लक्ष्मीधर मालवीय
(1) लाई हयात आए (2004 ई.)

विश्वनाथ त्रिपाठी
(1) नंगा तलाई का गाँव (2004 ई.) (2) व्योमकेश दरवेश (2010 ई.) (3) गंगा स्नान करने चलोगे (2012) (4) गुरू जी की खेती-बाडी (2015 ई.)

अमरकान्त
(1) कुछ यादें : कुछ बातें (2008 ई.)

विष्णु प्रभाकर
(1) सृजन के सेतु (1990 ई.) (2) साहित्य के स्वप्न पुरुष (2000 ई.)

अमृतराय
(1) जिनकी याद हमेशा रहेगी (1992 ई.)

बिन्दु अग्रवाल
(1) यादें और बातें (1998 ई.)

नरेश मेहता
(1) प्रदक्षिणा अपने समय की (2001 ई.)

मधुरेश
(1) ये जो आइना है (2006 ई.) (2) मैं और वे (2016 ई.)

डॉ. निर्मला जैन
(1) दिल्ली शहर दर शहर (2009 ई.)

मुद्राराक्षस
(1) कालातीत

ममता कालिया
(1) हाशिये की इबारतें (2009) (2) मेरे भोजपत्र (2009 ई.)

चन्द्रकान्ता
(1) कितनी शहरों में कितनी बार (2010 ई.) (2) कल परसों के बरसों (2011 ई.)

अजीत कुमार
(1) कविवर बच्चन के साथ (2009) (2) अंधेरे में जुगनू (2010 ई.) (3) जिनके संग जिया (2015 ई.)

अचला नागर
(1) अमृतलाल नागर की बाबू जी बेटाजी एण्ड कंपनी (2009 ई.)

सं. डॉ. सुमन केशरी
(1) जे.एन.यू. में नामवर सिंह (2010 ई.)

नासिरा शर्मा
(1) यादों के गलियारे (2010 ई.)

शेखर जोशी
(1) स्मृति में रहेंगे वे (2011 ई.)

नन्द चतुर्वेदी
(1) अतीत राग 2011 ई)

सुधीर विद्यार्थी
(1) मेरे हिस्से का शहर (2011 ई)

नरेन्द्र कोहली
(1) स्मृतियों के गलियारों से (2012 ई.)

बलराम
(1) माफ करना यार (2012 ई.) (2) धीमी-धीमी आँच (2013)

सं. ओम थानवी
(1) अपने-अपने अज्ञेय (2012 ई.)

प्रकाश मनु
(1) यादों का सफर (2012 ई.)

डॉ. कमला प्रसाद
(1) नेह के नाते (2012 ई.)

नीलाभ
(1) ज्ञानरंजन के बहाने (2012 ई.)

राजी सेठ
(1) जहाँ से उजास (2013 ई.)

मृदुला गर्ग
(1) कृति और कृतिकार (2013 ई.)

शेखर जोशी
(1) एक पेङ की याद (2013 ई.)

हृदयेश
(1) स्मृतियों का साक्ष्य (2014 ई.)

विमलचन्द पाण्डेय
(1) इलाहाबाद है भइया (2013 ई.)

मालचन्द तिवारी
(1) बोरूंदा डायरी (2015 ई.)

पुष्पा भारती
(1) यादें यादें और यादें (2016 ई.)

यात्रा वृत्तान्त

यात्रा वृतांत, 'यात्रा-वृत्त' हिन्दी गद्य की एक रोचक विधा है। जीवन दृष्टि और भाषा पर अधिकार यात्रा वृतांत लेखक के दो महत्त्वपूर्ण गुण है। राहुल सांकृत्यायन ने धुमक्कडी को धर्म का दर्जा दिया है। वे लिखते है - "मेरी समझ में दुनिया की सर्वश्रेष्ठ वस्तु है धुमक्कडी । धुमक्कङ से बढ़कर व्यक्ति और समाज के लिए कोई हितकारी नहीं हो सकता। मनुष्य स्थावर वृक्ष नहीं है, वह जंगम प्राणी है। चलना मनुष्य का धर्म है, जिसने इसे छोङा, वह मनुष्य होने का अधिकारी नहीं है।'

हिन्दी साहित्य में भाषा-वृतान्त लिखने की परम्परा का सूत्रपात भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से माना जाता है। भारतेन्दु ने । सरयूपार की यात्रा, मेहदावल की यात्रा, लखनऊ की यात्रा आदि शीर्षकों में यात्रा का बङा ही रोचक और सजीव वर्णन किया है।

हिन्दी के प्रमुख यात्रा वृत्तांत एवं लेखक

लेखक

यात्रा-वृत्तान्त

पं. दामोदर शास्त्री
मेरी पूर्व दिग्यात्रा (1885 ई.)

देवी प्रसाद खत्री

(1) रामेश्वर यात्रा (1893 ई.) (2) बदरिकाश्रम यात्रा (1902)

शिवप्रसाद गुप्त
(1) पृथिवी प्रदक्षिणा (1914 ई.)

सत्यदेव परिव्राजक
(1) मेरी कैलाश यात्रा (1915 ई.)
(2) मेरी जर्मन यात्रा (1926)

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'
(1) हमारी जापान यात्रा (1931 ई.)

रामनारायण मिश्र
(1) यूरोप यात्रा में छः मास (1932 ई.)

राहुल सांकृत्यायन
(1) मेरी तिब्बत यात्रा (1937 ई.),
(2) मेरी लद्दाख यात्रा (1939 ई.),
(3) किन्नर देश में (1948 ई.).
(4) धुम्मकङ शास्त्र (1948 ई.),
(5) राहुल यात्रावली (1949 ई.),
(6) यात्रा के पन्ने (1952 ई.),
(7) एशिया के दुर्गम खण्ड (1956 ई.)
(8) चीन में कम्यून (1959 ई.),
(9) चीन में क्या देखा (1960 ई.),
(10) रूस में 25 मास (1952 ई.)

रामवृक्ष बेनीपुरी
(1) पैरों में पंख बाँधकर (1952 ई.)
(2) उङते चलो उङते चलो (1954 ई.)

भगवत शरण उपाध्याय
(1) वह दुनिया में (1952 ई.),
(2) कलकत्ता से पेकिंग (1955 ई.)

सत्यनारायण

(1) आवारे की यूरोप यात्रा (1940 ई.)

(2) यूरोप के झरोखे में

(3) युद्धयात्रा (1940 ई.)

सेठ गोविन्ददास

(1) सुदूर दक्षिण पूर्व (1951 ई.),

(2) पृथ्वी परिक्रमा (1954 ई.)

यशपाल

(1) लोहे की दीवार के दोनों ओर (1953 ई.),

(2) राह बीती (1956 ई.)

काका कालेलकर

(1) हिमालय की यात्रा (1948 ई.),

(2) सूर्योदय का देश (1955 ई.) ।

अज्ञेय

(1) अरे यायावर रहेगा याद (1953 ई.).

(2) एक बूंद सहसा उछली (1960 ई.)

मोहन राकेश

(1) आखिरी चट्टान तक (1953 ई.)

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय

(1) कलकत्ता से पेकिंग (1955 ई.),

(2) सागर की लहरों पर (1959 ई.)

विमला कपूर

(1) अनजाने देश में (1955 ई.)

रामधारी सिंह 'दिनकर'

(1) देश-विदेश (1957 ई.).

(2) मेरी यात्राएँ (1970 ई.)

ब्रजकिशोर नारायण.)
(1) नन्दन से लंदन (1957 ई

प्रभाकर द्विवेदी
(1) पार उतरि कहँ जइहौं (1958 ई.)

भुवनेश्वर प्रसाद 'भुवन'
(1) आँखों देखा यूरोप (1958 ई.)

यशपाल जैन
(1) रूस के छियालीस दिन (1960 ई.)

गोपाल प्रसाद व्यास
(1) अरबों के देश में (1960 ई.)

प्रभाकर माचवे
(1) गोरी नजरों में हम (1964 ई.)

डॉ. रघुवंश
(1) हरी घाटी (1963 ई.)

धर्मवीर भारती
(1) यादें यूरोप की
(2) यात्रा चक्र (1995 ई.),
(3) ठेले पर हिमालय

निर्मल वर्मा
(1) चीडों पर चाँदनी (1964 ई.)

विष्णु प्रभाकर
(1) हँसते निर्झर : दहकती भट्टी (1966 ई.)
(2) ज्योतिपुंज हिमालय (1952 ई.)

(3) हमसफर मिलते रहें (1996 ई.)

डॉ. नगेन्द्र

(1) तंत्रालोक से यंत्रालोक तक (1968 ई.)

(2) अप्रवासी की यात्राएँ (1972 ई.)

बलराज सहानी

(1) रूसी सफरनामा (1971 ई.)

शंकरदयाल सिंह

(1) गाँधी के देश से लेनिन के देश में (1973 ई.)

श्रीकान्त वर्मा

(1) अपोलो का रथ (1975 ई.)

राजेन्द्र अवस्थी

(1) सैलानी की डायरी (1977 ई)

(2) हवा में तैरते हुए (1986 ई.)

कमलेश्वर

(1) खण्डित यात्राएँ (1975 ई.),

(2) कश्मीर रात के बाद (1997 ई.)

(3) आँखों देखा पाकिस्तान (2006 ई.)

गोविन्द मिश्र

(1) धुंध भरी सुर्थी (1979 ई.)

(2) दरख्तों के पार शाम (1980 ई.)

(3) झूलती जडे (1990 ई.)

(4) परतों के बीच (1997 ई.)

(5) यात्राएँ (2005 ई.)

शिवानी

(1) यात्रिक (1980 ई.)

कन्हैया लाल नंदन
(1) धरती लाल गुलाबी चेहरे (1982 ई.)

कृष्णनाथ
(1) स्फीतियों में बारिश (1982 ई.)
(2) किन्नर धर्मलोक (1983 ई.)
(3) लद्दाख में राग विराग (1983 ई.)

अजित कुमार
(1) सफरी झोले में (1985 ई.)
(2) यहाँ से कहीं भी (1997 ई.)
(3) सफरी झोले में कुछ और (2011 ई.)

इन्दु जैन
(1) पत्रों की तरह चुप (1987 ई.)

अमृतलाल बेगड
(1) सौन्दर्य की नदी नर्मदा (1992 ई.)
(2) अमृतस्य नर्मदा (2000 ई.)

रामदरश मिश्र
(1) तना हुआ इन्द्रधनुष (1990 ई.)
(2) भोर का सपना (1993 ई.)
(3) पडौस की खुशबू (1999 ई.)
(4) घर से घर तक (2008 ई.)

शिव प्रसाद सिंह
(1) साब्जा पत्र कथा कहे (1996 ई.)
कर्णसिंह चौहान
(1) यूरोप में अन्तर्यात्रायें (1996 ई.)

मंगलेश डबराल
(1) एक बार आयोवा 1996 (ई.)

सीतेश आलोक

(1) लिबर्टी के देश में (1997 ई.)

वल्लभ डोभाल

(1) आधी रात का सफर (1998 ई.)

हिमांशु जोशी

(1) यातना शिविर में (1998 ई.)

विश्वनाथप्रसाद तिवारी

(1) आत्मा की धरती (1909 ई.)

(2) अंतहीन आकाश (2005 ई.)

(3) अमेरिका और यूरोप में एक भारतीय मन (2012 ई.)

(4) एक नाव के यात्री

रमेशचंद शाह

(1) एक लम्बी छाँह (2000 ई.)

प्रयाग शुक्ल

(1) समय पर सूर्यास्त (2002 ई.)

डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल

(1) जापान में कुछ दिन (2003 ई.)

नरेश मेहता

(1) कितना अकेला आकाश (2003 ई.)

नासिरा शर्मा

(1) जहाँ फव्वारे लहू रोते हैं (2003 ई.)

महेश कटारे

(1) पहिये पर रात-दिन (2005 ई.)

मनोहर श्याम जोशी

(1) क्या हाल है चीन के (2006 ई.)
(2) पश्चिमी जर्मनी पर उड़ती नजर (2006 ई.)

विनोदिनी श्रीवास्तव
(1) जीवन एक यात्रा (2007 ई.)

मृदुला गर्ग
(1) कुछ अटके कुछ भटके (2007 ई.)

ललित सुरजन
(1) शरणार्थी शिविर में विवाह गीत (2007 ई.)
(2) दक्षिण के आकाश पर ध्रुवतारा (2010 ई.)
(3) नील नदी की सावित्री (2011 ई.)

आलोक मेहता
(1) सफर सुहाना दुनिया का (2007 ई.)
रमणिका गुप्ता
(1) लहरों की लय (2008 ई.)

असगर वजाहत
(1) चलते तो अच्छा था (2008 ई.)
(2) रास्ते की तलाश में (2012 ई.)
(3) पाकिस्तान का मतलब क्या (2012 ई.)

डॉ. पूरन चन्द जोशी
(1) यादों में रची यात्रा (2009 ई.)

महेश दर्पण
(1) पुश्किन के देश में (2010 ई.)

रामशरण जोशी
(1) अपनों से पास अपनों से दूर (2010 ई.)

ओम थानवी

(1) मुअनजोदडो (2011 ई.)

अशोक अग्रवाल

(1) किसी वक्त किसी जगह (2011 ई.)

आलोक सेठी

(1) दुनिया रंग-बिरंगी (2011 ई.)

राजेन्द्र उपाध्याय

(1) वहाँ मलय सागर तक (2011 ई.)

पंकज विष्ट

(1) खरामा-खरामा (2012 ई.)

अनिल यादव

(1) वह भी कोई देश है महाराज (2012 ई.)

कुसुम खेमानी

(1) कहानी सुनाती यात्राएँ (2012 ई.)

शिवेन्द्र कुमार सिंह

(1) ये जो पाकिस्तान (2012 ई.)

मृदुला झा

(1) अनुभूतियों का इन्द्रधनुष (2012 ई.)

अमृतलाल मदान

(1) एक भारत से दूसरे भारत की ओर (2012 ई.)

गगन गिल

(1) अवाक् : कैलाश मानसरोवर एक अंतर्यात्रा (2012 ई.)

सत्यकाम

(1) वितुशा की छाँव में (2012 ई.)

सोमेश शेखर

(1) कुदरत का अद्‌भुत करिश्मा अमरीका के कैनियन (2013 ई.)

(2) स्वर्ग जहाँ आदमी बसता है (2013 ई.)

कर्मेन्दु शिशिर

(1) लो, हम भी घूम आये (2013 ई.)

पुरुषोत्तम अग्रवाल

(1) हिन्दी सराय : अस्त्राखान वाया मेरेवाल (2013 ई.)

प्रताप सहगल

(1) हर बार मुसाफिर होता है (2013 ई.)

सूर्यबाला

(1) अलविदा अन्ना (2013 ई.)

कमलेश भट्‌ट

(1) देवदार के साये में (2013 ई.)

कृष्ण सोबती

(1) लो, हम भी घूम आए (2013 ई.)

(2) बुद्‌ध का मण्डल : लद्‌दाख (2014 ई.)

राजेश जैन

(1) पैर पहिये और पंख (2014 ई.) .

राकेश तिवारी

(1) सफर एक डोगी में डगमग (2014 ई.)

मधु कांकरिया

(1) बादलों में बारूद (2014 ई.)

एकांत श्रीवास्तव

(1) चल हंसा वा देश (2014 ई.)

रश्मि झां

(१) चीन के दिन (2014 ई.)

मीरा सीकरी

(1) एक रंग होता है नीला (2015 ई.)

अखिलेश झा

(1) कटाम राज : एक भूली-बिसरी दास्तान (2015 ई.)

संतोष श्रीवास्तव

(1) नीले पानी की शायराना हरारत (2015 ई.)

अनुराधा बेनीवाल

(1) आजादी मेरा ब्राण्ड (2016 ई.)

ओम शर्मा

(1) अन्तः यात्राएँ वाया वियना (2016 ई.)

ज्ञानरंजन

कबाड़खाना

भाग 4

अस्तित्ववाद

अस्तित्ववाद

प्रथम महायुद्ध के पूर्व ही कीर्केगार्ड और नीत्शे अस्तित्ववाद की भूमिका तैयार करे रहे थे। किन्तु दर्शन का अपना विकसित एवं वास्तविक स्वरूप मिला हेडेगर, यास्पर्स, सात्र, मार्सेल, युनामुनो आर्तेगा। इ गासे, और पांल टिलिश द्वारा ही। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में फांस में ईश्वर पर आधारित नीति-शिक्षा का परित्याग कर दिया गया । भौतिक नीतिमत्ता के समर्थकों ने ईश्वरेच्छा के स्थान पर तर्क या विवेक (reason) को अधिक उपयोगी माना और उसी का प्रतिपादन किया। अस्तित्वाद दुराग्रही बुद्धिवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया का फल था। अस्तित्वादी मानव को तन-मन का समुच्चय या अभेद्य संघात मात्र नहीं मानता। वह तो मानव और जगत् का अगांगीभाव से संलेषण मानता है तथा कहता है कि विज्ञान द्वारा उपलब्ध सारे बाद और भावात्मक अमूर्त वस्तुओं की अभिज्ञाताएँ मानवीय जगत् की आधारभूमि के बिना निरर्थक ही रह जाती हैं।

अस्तित्वाद वह दर्शन है जो अस्तित्व (existence) को सार-तत्व या सत्त्व (essence) से अधिक महत्व देता है। पर सार-तत्व क्या है ? सार-तत्व वस्तु या व्यक्ति के वे गुण विशेष हैं जो उसका निर्माण करते हैं। मैं मानव हूँ। तो मानवता मेरा सार-तत्व है।

सार-तत्व दो प्रकार का हो सकता है- समष्टिगत (Universal) तथा व्यष्टिगत (Individual) |
समष्टि -तत्व एक जाति के सभी पदाथों में पाये जाते हैं, इस समष्टि-तत्व के अतिरिक्त जो तत्व किसी एक विशिष्ट पदार्थ में ही पाए जाएँ, वे उसके व्यष्टि-तत्व होंगे। उदाहरण के लिए, मानव के समष्टि-तत्व वे हैं जा उसे मानव की संज्ञा प्रदान करते हैं और जिनके अभाव मे मानव मानव नहीं रह जाता, जैसे चिन्तन-शक्ति या विवेक। इसके विपरीत व्यष्टि-तत्व हमें वह मनुष्य बनाता है जिसके कारण अमुक कायर है, तो अमुक वीर, अमुक 'ईमानदार है तो अमुक बेईमान ।'

सार-तत्व एवं व्यक्ति में कुछ न कुछ भेद तो रहता ही है
" Man may be good, but he is not goodness; however beautiful he many be, he is not beauty itself. "

देवशास्त्रियों (Theologians) की दृष्टि में कोई वस्तु अस्तित्व में बाद में आती है, उसका आदर्श रूप पहले परिकल्पित होता है। यदि हम ईश्वर की सृष्टि मे विश्वास करते हैं, तो हमें यह मानना होगा कि यह जगत ईश्वर ने अपनी किसी पूर्वयोजना के अनुसार बनाया होगा। इसी विचार-क्रम का अनुसरण करते हुए इन लोगों ने कहा कि मनुष्य अपनी प्रकृति के निम्न धरातल पर अस्तित्वों के जगत में रहता हैं, और उच्च धरातल पर वह सार-जगत में उठ जाता है। इस सार-जगत को विभिन्न नाम दिये हैं- प्लेटो ने उसे 'Region of ideas ' कहा है, अरस्तू ने उसे 'Region of eidos' कहा है और स्कूलनैंन उसे 'Region of essentia ' कहते थे। सारांश यह है कि दवेशास्त्री (Theologians) अस्तित्व में अधिक महत्व सार-तत्व (essence) को देते थे। अस्तित्ववादियों ने यह क्रम उलट दिया; वे अस्तित्व को अधिक महत्व देते हैं

" Existentialism maintains, on the contray, that with man-and with man alone-existence precedes essence"

अस्तित्वादी सार, संभावनाओं या adstractconcepts को अधिक महत्व नहीं देता, उसकी रूचि तो उन पदार्थों में है, जिनका अस्तित्व है। पर अस्तित्व से क्या अभिप्राय है ? प्राचीन धारणा के अनुसार जो सत्य है, (केवल संभाव्य नहीं है) उसी का अस्तित्व है। जो सार से अस्तित्व की और प्रयाण करता है, चाहे वह पत्थर हो या मनुष्य हम कह सकते है कि

उसका अस्तित्व है। परन्तु अस्तित्ववादियों के अनुसार होने और अस्तित्ववान् होने में अंतर होने में अंतर है। पत्थर हैं तो, पर वे 'अस्तित्ववान्' तभी बनते हैं, जब हम उनके सम्बन्ध में सोचें। उनके लिए अस्तित्व स्थिति (state) नहीं, कार्य (act) है, संभावना मे वास्तविकता में रूपान्तरित हो जाना है और उसके लिए स्वतंत्रता आवश्यक है। आदमी का होना एक बात है और उसका अस्तित्ववान् होना दूसरी बात है। अस्तित्व में आने का अर्थ है वह बनना जो यह चाहता है और इसके लिए उसे अपने को ढलने की स्वतंत्रता चाहिए। यह स्वतंत्रता केवल मनुष्य को ही प्राप्त हो सकती है पशु को नहीं। पर इसका यह अभिप्राय नही कि सभी मनुष्य इस विशेषाधिकार का उपभोग करते हैं- बहुत से भेड-चाल के जाल में फँसकर अपनी स्वतंत्रता की रूचि खो बैठते हैं। ऐसे व्यक्तियों के सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता कि उनका सच्चा अस्तित्व है। सार्च, हेडेगार, जैस्पर्स की दृष्टि में सच्चा अस्तित्ववान् व्यक्ति तो केवल वह है जो अपने को बनने में स्वतंत्र है, जो अपना निर्माता स्वयं है, जो स्वावलम्बी एवं स्वयं-समर्थ है।

अस्तित्ववान् बनने के लिए हमें यह निर्णय करना पड़ेगा कि हम क्या बनना चाहते हैं और यह निर्णय जीवन में केवल एक बार नहीं लिया जाता । व्यक्ति अस्तित्व के एक रूप (one type of existence) की कारा में आबद्ध नहीं हो जाता, जो ऐसा करता है, वह अस्तित्व खो बैठता है। अतः अस्तित्ववान् बने रहने के लिए आवश्यक है कि हम निरन्तर निर्णय करते रहें कि हम क्या होना चाहते हैं। अस्तित्व का अर्थ है अपनी इच्छानुसार निरन्तर ऊपर उठते रहना।

पहले हमारा अस्तित्व होता है, बाद में हम निर्णय करते हैं कि हमें कैसा बनना है, किस आदर्श को प्राप्त करना है। यह विशेषाधिकार वनस्पति या पशुओं को प्राप्त नहीं, क्योंकि उनमें निर्णय-शक्ति, चुनने का विवेक और अवसर ही नहीं होता। वृक्ष का भावी विकास उसके बीज में होता है और यह यांत्रिक होता है। इसके विपरित समान परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न विकास-मार्ग चुन सकते है। जो उसने चुनाव किया है, अस्तित्ववादी उसी को उसका सार-तत्व (essence) कहते हैं। अस्तित्वादी व्यक्ति के अस्तित्व पर वातावरण और परिस्थितियों के प्रभाव को एकदम अस्वीकार नहीं करते, फिर भी उन्हें नगण्य मानते हैं।

किसी व्यक्ति का सुन्दर या कुरूप होना, सम्पन्न या गरीब परिवार में जन्म लेना उसके वश की बात नहीं है, और वह उसे बादल भी नहीं सकता, पर उसके प्रति जो रूख वह अपनाता है, उसमें वह स्वतंत्र है। वह

नियति के हाथों कठपुतली नहीं पुरुषार्थी भी है- " मैं इनके प्रति वर्ग की भावना या लज्जा का भाव अपनाने और तदनुसार कार्य करने के लिए स्वतंत्र हूँ। सारांश यह कि मैं इन परिस्थितियों का चुनाव करने में तो स्वतंत्र नहीं हूँ, पर परिस्थिति-विशेष के प्रति रूख अपनाने में स्वतंत्र हूँ।" यह सत्य है कि कोई युवक अपने विद्यार्थी जीवन में आलसी, निकम्मा, विलासी और उद्दण्ड रहा हो, पर वह आगे चलकर अपना भविष्य सुधार सकता है या अपने अतीत के प्रति धारणा बदल सकते है। इस भौतिक जगत को तो हम नहीं बदल सकते, पर उसके प्रति हमारी दृष्टि (attitude) बदल सकती है। यह हमारे ऊपर निर्भर है कि हम उसे कैसा समझते हैं और उसमें कैसे रहते हैं। सारांश यह है कि अस्तित्वपूर्ण व्यक्ति वही सब है जो कुछ वह करता है। इसी स्वातंत्र्य में उसका अस्तित्व निहित है।

अस्तित्वादी के लिए आदर्श (norm) पूर्वनिर्धारित नहीं होते, वह अपने लिए उनका निर्माण स्वयं करता है। मानव-जीवन को हम किसी एक व्यवस्था या पद्धति में नहीं बाँध सकते । व्यवस्था में परिवर्तन नहीं होता, स्थिरता होती है, और उसके जन्मते ही प्रयत्न मर जाता है। उसे क्या होना चाहिए, यह नहीं लिखा रहता, वह स्वयं इनका निश्चय करता है

" The essence of the human being is in suspense in his liberty"

हम सार्वभौम सार-तत्व (Universai essence) का निर्माण तो नहीं कर सकते जिनके फलस्वरूप हम मनाव कहलाते हैं, परन्तु वैयक्तिक सार-तत्व (Individual essence) के लिए जो हमें एक विशिष्ट मानव बनाता है, हम स्वयं उत्तरादायी हैं। इसमें भी बहुत-सी सीमाएँ है- बीमार आदमी पहलवान नहीं हो सकता। चालीस वर्ष तक अशिक्षित रहने वाला व्यक्ति विद्वान नहीं बन सकता। सार्च तो यहाँ तक कह कहता है कि व्यक्ति की जाति, वेतन, कार्य का स्वरूप, उसके विचार और भाव भी उसके निर्माण के हेतु होते हैं, तथापि चुनाव के लिए बहुत गुंजाइश रहती है। उदाहरण के लिए, सर्वहारा (Proletarian) पर अपने वर्ग का बहुत -कुछ प्रभाव पडता हैं, तथापि यह निर्णय वह स्वयं ही करता है कि उसे सहिष्णु बनकर सब कुछ सहना है, अथवा विद्रोही बनाना हैं - जो कुछ आज मैं हूँ उसके प्रति मेरा रूख ही। मेरा भविष्य बनाता है, अतः मैं अपने भविष्य का निर्माता स्वयं हूँ। अपने शुद्ध रूप में अस्तित्वादी दृष्टि प्रगतिशीलता और आशावादित से संयुक्त है, क्योंकि अस्तित्व का अर्थ है- विकास करना, आत्मसाक्षात्कार या आत्मोपलब्धि करना, महान् बनना।

मानव अपने चुनाव में , चुनाव के मानदण्डों एवं उद्देश्यों में पूर्ण स्वतंत्र है। उसके अपने भावावेग (emotions and passions) भी स्वतंत्र है। उसके लिए स्वतंत्र कार्य का अर्थ है वह कार्य जो बिना किसी उद्देश्य (motive) के किया जाए और उसके लिए तर्कसम्मत (rational) होना भी आवश्यक नहीं है।

सार्च की भाषा में 'चुनाव और स्वतंत्रता' का सामान्य अर्थ नहीं है। उसके लिए 'चुनाव' का अर्थ है जीना; और प्रत्येक कार्य, जो अनिवार्य परिणाम नहीं है, उस सबका जो में हूँ, 'स्वतंत्रता' कहा जा सकता है। उसके अनुसार चूंकि मैंने 1940 ई. की पराजय झेली है, अतः मैनें उसे चुना है, उसके लिए मैं उत्तदायी हूँ। सार्च मनुष्य की

ईश्वर, समाज, आदर्श आदि के प्रति उत्तरदायी की भावना को स्वीकार नहीं करता। व्यक्ति की यह स्वतंत्रता उसे उच्छृखल एवं उत्तदायित्वहीन बना सकती है, क्योंकि सार्त्र के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपना सत्य, अपनी नीतिमयता, अपने आदर्श चुनने की स्वतंत्रता है। इससे समाज में अराजकता भी पैदा हो सकती है। उसका यह दृष्टिकोण विनाशवाद (nihilism) कहा गया है। इस विनाशवाद को हम और अधिक स्पष्ट रूप से समझ सकेंगे, यदि हम उसके जगत, मानव और ईश्वर सम्बन्धी विचारों को देखें।

जगत- सबके लिए जगत एकसा नहीं है। व्यक्ति, जाति और समय के साथ-साथ वह बदलता है, सारांश यह है कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह जगत् उसकी रूचि, उद्देश्य आदि के कारण भिन्न-भिन्न रूप धारण कर लेता है। हम जगत पर निर्भर नहीं रहते, जगत हम पर निर्भर है। व्यक्ति के लिए उसी जगत का अस्तित्व है , जो उसकी चेतना (consciousness) का परिणाम है।

प्रथम दृष्टि में तो ऐसा लगता है कि व्यक्ति के लिए अन्य व्यक्तियों का वही महत्व एवं स्थान है, जो उसके लिए जङ पदार्थों मेज, कुर्सी आदि का अर्थात् उनका अस्तित्व तभी तक है जब तक वे उसके लिए उपयोगी हों, उसके विषय में उसकी चेतना सजग हो। पर यह भी स्मरण रखना चाहिए कि उनमें भी चेतना है, उनका भी अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व है, उनके भी अपने लक्ष्य हैं, संसार को देखने का अलग-अलग दृष्टिकोण है और संसार के सब पदार्थ साधन हैं। हममें से प्रत्येक व्यक्ति अपना अस्तित्व बनाए रखना चाहता है, अर्थात् अपना लक्ष्य प्राप्त करना चाहता है। हर व्यक्ति दूसरे को अपना साधन बनाना चाहता है, उस पर शासन करना चाहता है। इसका परिणाम यह होगा कि समाज सहयोग पर आधारित न होकर प्रतिद्वन्द्वितापूर्ण बन जाएगा। अस्तित्ववादियों के लिए यह जगत संघर्षमय है।

अस्तित्वाद और मृत्यु- अस्तित्ववाद के अनुसार मानवीय स्थिति की अनिवार्य सीमाएँ हैं- मृत्यु, दुःख, संघर्ष और गलती। मृत्यु को जब तक हम भूले रहते हैं या इससे दूर भागने की कोशिश में लगे रहते हैं तब तक अस्तित्वपूर्ण जगत में वह केवल संयोगात्मक तथ्य के रूप में ही प्रतीत होती है। वह हमारे जीवन का अविभाज्य अंग नहीं बन जाती, मृत्यु से वैयक्तिक अस्तित्व की संभावनाएँ 'बुझ' जाती हैं, खत्म नहीं हो जातीं। मृत्यु हमारे जीवन की दुर्घटना नहीं, अपितु आरंभ से ही एक ऐसी संभावना है जिसे हम अपने अन्दर- अन्दर पालते-पोसते हैं। मृत्यु को हमें स्वीकार तो करना ही पडेगा, परन्तु इस स्वीकृति का यह अर्थ नहीं कि जगत को अस्वीकार कर दें और उसके कार्यों में कोई भाग न लें। उसका यथार्थ आशय तो यह हैं कि संसार की वस्तुओं से धोखा न खाएँ, अपने कार्यों में ही भूले-भटके न रहें- उन्हें उतनी ही मान्यता दें जितनी की वे पात्र हैं। इस निरासक्ति से ही शक्ति, मानवीय महत्व और अपने प्रामाणिक अस्तित्व की सहिष्णुता की भावनाएँ उदित होती है। उसके लिए मृत्यु एक दुर्घटना है और इसलिए बिल्कुल बेमानी है। वह जीवन को कोई भी सार्थकता देने के स्थान पर उसे संदेह और कौतहूल का विषय बना देती है, सारी संभावनाओं और योजनाओं का अंत कर देती है। साथ ही, सार्च यह भी मानता है कि मृत्यु समग्र विनाश नहीं है। मरने के बाद भी हम अपने पीछे कुछ ऐसे मूल्य और सूत्र छोङ जाते हैं, जिन्हें दूसरे बदल लेते हैं। अतः मृत्यु जन्म के ही समान एक तथ्य मात्र है। मृत्यु की यह बन्दिश हमारी स्वतंत्रता की बेडी नहीं बन सकती।

मानव- अस्तित्ववादी मानव-शरीर को महत्वहीन नहीं मानते, शरीर को आत्मा का सांयोगिक अवयव (contingent addition) न मानकर अस्तित्व का अनिवार्य तथा स्थायी हेतु स्वीकार करते हैं, क्योंकि चेतना (consciousness) के लिए शरीर आवश्यक है।

सार्च सूक्ष्म आत्मा को स्वीकार नहीं करते, केवल चेतना को मानते है जिसके कारण मानव अन्य पदार्थों से भिन्न है और जिसकी सहायता से हम घड़ी की आवाज सुन सकते हैं या बता सकते हैं कि घने बादलों से वर्षा होगी। इसी चेतना के ऊर्ध्व-संचरण द्वारा मनुष्य परमात्मा बन सकता है। दुर्भाग्यवश साञ मानता है कि मानव इस स्थिति को कभी प्राप्त नहीं कर सकेगा, वह सदा मारा-मारा फिरता रहेगा। उसकी स्वतंत्रता व्यर्थ है, उसका अस्तित्व व्यर्थ हैं; मानव दुर्बल, असहाय नियति के क्रूर खेल का शिकार है।

ईश्वर- साञ ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं करता। अतः उसकी दृष्टि में इस विश्व के निर्माण के पीछे न कोई कारण हैं, न कोई उद्देश्य और न इसको बनाने की कोई आवश्यकता ही थी।

सार्च के प्रमुख सिद्धांतों को हम इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं
(1) निरुद्देश्यता ही जीवन की सार्थकता है।
(2) सामाजिक सम्बन्धों के बीच व्यक्ति का अध्ययन नहीं हो सकता, अतः उसका विश्लेषण उसे वातावरण से अलग करके ही होना चाहिए।
(3) मूल्य-निर्धारण की स्वतंत्रता हर व्यक्ति को हैं।
(4) अनिश्चता सृष्टि का मूल लक्षण हैं। किसी भी जीवन या समाज सम्बन्धी निश्चय की स्थापना नहीं हो सकती। ऐसी सामाजिक व्यवस्था नहीं हो सकती, जिसमें मानव की वैयक्तिक अनुभूति को खुलकर स्वतंत्रता मिल सके । अस्तित्वादी सम्प्रदाय सामाजिक या राजनैतिक संगठन को आत्मविवेक का शत्रु समझता है। (5) भौतिक सुख मानव का चरम लक्ष्य है।
(6) यह दर्शन वैयक्तिकता की स्थापना करता है।
(7) यह केवल वर्तमान की पूजा करता है, पर वर्तमान का अर्थ है: समग्र अप्रतीत को समझकर वर्तमान की सार्थकता भविष्य में खोजना। उसके लिए भविष्य खुला हुआ है, जिसमें वह वर्तमान की स्थितियों को बदल सकता है। अनागत की ओर उन्मुख होकर वह वर्तमान को व्यवस्थित कर लेता है और उसे अतीत से भी विच्छिन्न नहीं होने देता।

अस्तिवादी कलाकारों ने उक्त सिद्धांत और विचार अपनी कलाकृतियों में उतारे हैं। अस्तित्वादी साहित्य में हमें व्यक्ति का चित्रण मिलता है। वह साधारण की बजाय विशेष पर बल देता है, इसी से कभी- कभी वह अस्पष्ट एवं अद्भुत् प्रतीत होता है, उसकी स्थितियाँ वास्तविकता के अतिरेक के कारण अवातिविक लगने लगती हैं। उसके पात्र स्वतंत्रता की खोज में मारे-मारे फिरते हैं, अतः वे सर्वदा एकाकी, निष्क्रिय और उदास चित्रित किये जाते हैं, वे नहीं जानते कि वे क्या हैं ? सार्च का मैथ्यू नामक पात्र शतरंज का मोहरा प्रतीत

होता है- दुर्बल, असहाय प्राणी की भाँति जीवन भर भटकता रहता है। अस्तित्ववादी कलाकारों ने जीवन और मानव-प्रकृति को हीनतम पाशविक रूप में चित्रित किया है। उनकी कलात्मक अभिव्यक्ति प्रकृतिवादी कलाकारों के समान है।

अस्तित्वाद मतवाद के रूप में कहने को तो आत्मगत विवेक पर बल देता है, पर उत्तरदायित्वहीनता के कारण वह केवल उच्छंखलता को जन्म देता है। निरपेक्ष दायित्व का सिद्धान्त या स्वयं- आरोपित निरपेक्ष दायित्व की बात मिथ्या बकवास ही है, क्योंकि अस्तित्व कभी निरपेक्ष नहीं होता, सदा सापेक्ष ही होता है।

अस्तित्ववादियों का काल्पनिक मानवतावाद वस्तुतः व्यक्तिवाद ही है, जिसे आकर्षक लेबिल प्रदान किया गया है। यह वाद पलायनधर्मी हैं और कुछ लोगों की दृष्टि में पूँजीपतियों की चाल है, जो प्रपीडित सर्वहारा को बहकाने के लिए अपनाया गया है। इसके द्वारा उन्होंने द्वन्द्वात्मक भौतिवाद और दिवालिए आदर्शवाद के बीच रास्ता खोला है।

इस वाद का आधार है विच्श्रृंखला, विच्छिन्नता, एकान्तिकता, असामाजिकता, अमान्यता, समस्त सामाजिक संदर्भो से । अलग कर मानव को देखने की प्रवृत्ति, वह विवेकहीनता, यंत्र, शतरंज का मोहरा मानता है। यह मतवाद न समाज के लिए और न व्यक्ति के लिए कल्याणकारी है। इसके अनुगामी कलाकारों का साहित्य भी स्फूर्तिदायक नहीं है। यही कारण है कि इस विचारधारा पर अनेक दिशाओं से अनेक आक्षेप हुए है।

पर अस्तित्ववाद अपने शुद्ध रूप में एक महत्त्वपूर्ण दर्शन है, क्योंकि वह व्यक्ति को स्वयं अपना निर्माण करने, अपने लिए आदर्श निर्धारित करने का स्वातंत्र्य प्रदान करता है, दूसरों की नकल करना ठीक नहीं समझता। अतः यह कहना सरासर गलत है कि अस्तित्वाद विशुद्ध दर्शन के रूप में क्षणगत नैराश्य, विनाशवाद (nihilism) एवं अनियंत्रित तथा सनकी जीवन की ओर ले जाने वाला है।

यह ठीक है कि अस्तित्ववादी बुराई को जीवन में अप्रतिहार्य मानते हैं और तीव्र संवेदनात्मक दुःख को अनिवार्य कहते हैं किन्तु साथ ही वे कर्म और प्रगतिपूर्ण मानवीयता का भी समर्थन करते हैं। वे मानते हैं कि बुराई या पाप का चक्कर तोडा जा सकता है और मानव अपने आपको 'प्रतिष्ठित' कर सकता है। इस दर्शन की नैतिकता मानवीय प्रतिष्ठा में है। उसकी पहली और असली शर्त यह है कि व्यक्ति अपने आपमें स्वतंत्रता की आवश्यकता का अनुभव करता है। वह न हमें अतीत में लौटने की सलाह देता है और न भविष्य की उद्भट कल्पनाओं में भरमाता है। वह मानव की वर्तमान स्थिति की वास्तविकता के परिज्ञान पर ही बल देता है। उसके अनुसार समाज के नियमों एवं कानूनों के वैज्ञानिक बोध-मात्र में भुक्ति नहीं है, वह व्यक्ति की इस चेतना में है कि 'मैं अपना साक्षी स्वयं हूँ।'

मार्क्सवादी विचारधारा

मार्क्स तथा एंगेल्स का मत है कि साहित्य अथवा सौंदर्यबोधी चेतना की उत्पत्ति या उसमें कालानुसार हो रहे परिवर्तनों का कारण मनुष्य के सामाजिक अस्तित्व में ढूँढ़ा जाना चाहिए | चूँकि सामाजिक अस्तित्व की

दशाओं में परिवर्तन होता रहता है, वर्गों में बँटे समाज की अनेक प्रक्रियाओं का प्रभाव मनुष्य के सामाजिक अस्तित्व पर पडता है।

.अतः कला के अभिप्राय, भाव, सन्देश, शिल्प में भी बदलाव होता रहता है। कला और मनुष्य के सामाजिक अस्तित्व के बीच यह प्रक्रिया अन्योनाश्रित रूप में चलती रहती है, हमेशा सापेक्ष सम्बन्धों में गतिमान रहती है।

साहित्य तथा कला में यथार्थ का सबसे सटीक चित्रण होना चाहिए। मार्क्सवादी इतिहास दृष्टि ने यथार्थवाद की अवधारणा रखी, जो साहित्य और कला को देखने-परखने का एक बडा मापदण्ड है।

साहित्य चिन्तन में मार्क्सवादी विचारकों-लेखकों ने दो तरह से योगदान दिया। पहले में विचारकों ने मार्क्सवादी विचारधारा के सन्दर्भ में साहित्य के आधारभूत प्रश्नों पर विचार किया। आलोचना का एक मानदण्ड तय किया। मार्क्सवादी सिद्धान्त को साहित्य को देखने-परखने के लायक बनाया। दूसरा महत्त्वपूर्ण काम मार्क्सवाद या मार्क्सवाद से प्रभावित लेखकों-रचनाकारों ने किया। उन्होंने यह दिखाया कि मार्क्सवादी विचारधारा को अपनाते हुए उच्च कोटि की साहित्यिक रचनाएँ की जा सकती हैं।

इस तरह कार्ल मार्क्स के इतिहास के बारे में मानते हैं कि -

. साहित्य एवं कलाएँ विचारधारा का ही एक रूप है।
. वे मूलतः समाज के आर्थिक-भौतिक जीवन से उत्पन्न एवं उसी पर स्थित और आधारित है।
. आर्थिक-भौतिक धरातल पर परिवर्तन होने के साथ ही साहित्य, कला अथवा विचारधारा के अन्य रूपों में भी कमोबश उसी तेजी के साथ परिवर्तन हो जाता है।
. ऐसे परिवर्तनों पर विचार करते समय उत्पादन की आर्थिक परिस्थितियों - जिन्हें पदार्थ विज्ञान की भाँति ठीक से आँका जा सकता है, एवं विचारधारा के रूपों- जिनमें मनुष्य इस संघर्ष के प्रति सचेत रहता है, के बीच भेद किया जाना चाहिए।

हालाँकि मार्क्स साहित्य पर आर्थिक और भौतिक जीवन का निर्णायक प्रभाव मानते हैं तब वे उसकी स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार करते है। हालाँकि मार्क्सवादी आलोचकों में इस विषय पर पर्याप्त मत भिन्नता है।

मार्क्सवादी विचारधारा को साहित्य से जोडने और उसकी व्याख्या करनेवालों में कई मार्क्सवादी विचारकों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। इन विचारकों में जी.वी. प्लेखानोव, लूनाचारस्की, गोर्की, कॉडवेल, राल्फ फॉक्स, जार्ज लुकाच, अर्स्ट फिशर, रेमण्ड विलियम्स, वाल्टर बेंजामिन, फ्रेडरिक जेमसन, टेरी ईगलटन आदि का नाम लिया जा सकता है। इनके अलावा भी स्थानीय स्तर पर प्रत्येक देश में मार्क्सवादी साहित्येतिहासकार एवम् आलोचक सक्रिय रहे हैं।

प्लेखानोव ने अपनी पुस्तक कला और सामाजिक जीवन में मार्क्सवादी विचारधारा के समाजशास्त्र और सौंदर्यशास्त्र को समझाने का प्रयास किया हैं। उन्होंने कला और सामाजिक जीवन की अभिन्नता को स्वीकार किया और व्यक्तिवादी प्रवृत्ति का जोरदार विरोध किया।

उन्होंने तोल्सतॉय के कला सम्बन्धी विचारों से असहमति दिखाई। तोल्सतॉय का मानना था कि कला मानव के बीच सम्पर्क का एक माध्यम है। अतः मात्र शब्दों के माध्यम से स्थापित किए जाने वाले सम्पर्क से इस कारण विशिष्ट है कि जहाँ शब्दों के माध्यम से मानव दूसरे मानव तक अपने विचारों को पहुंचाता है, वहाँ कला के माध्यम से वह दूसरे मनुष्यों तक अपने भावों का सम्प्रेषण नहीं, भावों का सम्प्रेषण भी होता है। इसका उदाहरण कविता है, जहाँ वस्तुतः शब्द ही माध्यम का काम करते हैं। प्लेखानोव ने डार्बिन की सौन्दर्य निष्पत्तियों पर भी विचार किया है।

इसी तरह लूनाचारस्की ने भी मार्क्सवादी आलोचना पद्धति के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। मार्क्सवादी समीक्षा की समस्याएँ उनका बहुत ही चर्चित निबन्ध है। लूनाचारस्की की मूल स्थापना है कि किसी साहित्यिक कृति तथा किसी वर्ग अथवा दूसरे वर्ग के मनोविज्ञान या सामाजिक प्रकृति वाले विस्तृत समुदायों के पारस्परिक सम्बन्धों का निश्चय मुख्यतः साहित्य के वस्तु तत्त्व के आधार पर होता है।

लूनाचारस्की के बाद गोर्की महत्त्वपूर्ण मार्क्सवादी रचनाकार और आलोचक हैं। उन्होंने सन् 1934 में सर्वप्रथम समाजवादी यथार्थवाद की रूपरेखा प्रस्तुत की थी। यह अवधारणा भी आगे चलकर बहुत विवादस्पद रही। उनका मानना था कि लेखकों को अपने साहित्य के इतिहास में भलिभाँति परिचित होना आवश्यक है। इसके साथ ही लेखक को मानवीय श्रम तथा सर्जना के इतिहास से भी परिचित होना चाहिए।

इसी तरह कॉडवेल ने कविता को आधार बनाकर अपनी बात रखने की कोशिश की। कॉडवेल का मानना है कि कविता का अध्ययन विशुद्ध रूप से सौंदर्यशास्त्र की सीमा में रहकर नहीं किया जा सकता। सौंदर्यशास्त्र की सीमा में ही बन्धे रहने वाले या तो रचनाकार हो सकते हैं, या भावक, लेकिन कविता की समीक्षा के लिए उससे बाहर निकलना जरूरी है। कॉडवेल ने कविता की परिभाषा देते हुए कहा कि 'कविता साधारण वाणी का सुथरा अथवा उदात्त रूप' होती है। साधारण वाणी को यह सुथरापन या उदात्तता छन्द, तुक, लय, तान, अनुप्रास, समान अक्षरवाली पंक्तियों या समान भाव वाले स्वरों आदि से प्राप्त होता है।

राल्फ फॉक्स ने मुख्यतः उपन्यास के सन्दर्भ में अपनी मान्यताएँ प्रस्तुत की। उनकी पुस्तक उपन्यास और लोकजीवन सारे संसार में प्रसिद्ध है। हिन्दी में भी इस पुस्तक का अनुवाद हो चुका है। इन विद्वानों के अलावा कई और भी नाम है जिन्होंने मार्क्सवादी साहित्य सिद्धान्त को बनाने में अपना अहम योगदान दिया है। हिन्दी आलोचना में भी मार्क्सवादी साहित्येतिहास चिन्तन की परम्परा मिलती है। इनमें शिवदान सिंह चौहान, रांगेय राघव, प्रकाश चन्द्र गुप्त, रामविलास शर्मा, नामवर सिंह, मैनेजर पाण्डेय आदि मुख्य है। इन्होंने

मार्क्सवादी इतिहास दृष्टि के अनुरूप हिन्दी साहित्य पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। हालाँकि मार्क्सवाद के अन्य क्षेत्रों की तरह हिन्दी के इन विचारकों के बीच भी गम्भीर मतभेद हैं।

मार्क्सवादी सिद्धान्त का वर्गीकरण - मार्क्सवाद को प्रमुखतः दो वर्गों में बाँटा गया है -

1. चिर सम्मत मार्क्सवाद
2. समकालीन मार्क्सवाद

(अ) चिर सम्मत मार्क्सवाद - मार्क्सवाद की जो मान्यताएँ स्वयं मार्क्स एवं एंजेल्स के विचारों पर आधारित है, उन्हें चिरसम्मत मार्क्सवाद कहा जाता है।

> चिरसम्मत मार्क्सवाद के सिद्धान्तों को भी पुनः चार भागों में विभाजित किया गया है, यथा -
(i) द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (ii) ऐतिहासिक भौतिकवाद
(iii) वर्ग-संघर्ष का सिद्धान्त (iv) अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त

(ब) समकालीन मार्क्सवाद - मानवीय पक्ष पर आधारित मार्क्सवाद समकालीन मार्क्सवाद कहलाता है। इसका उद्देश्य उत्पादन प्रणाली में पूँजीवादी की जगह समाजवाद लाना नहीं है अपितु बेबस मनुष्यों को उनकी सच्ची स्वतंत्रता दिलाना भी है।

» साहित्यिक मार्क्सवाद - डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल ने मार्क्सवादी मान्यताओं को कला और साहित्य के संदर्भ में विश्लेषित करते हुए इसे निम्नानुसार प्रस्तुत किया है
1. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद ही मार्क्सवादी चिन्तकों, आलोचकों की कला और साहित्य संबंधी मान्यताओं का मूल केन्द्र है।
2. कला के लिए दृष्टि का विरोध करते हुए जन कल्याण अथवा लोक मंगल ही इनकी दृष्टि से काव्य का अभिप्रेत प्रयोजन है।
3. समाज/शोषितों का यथार्थवाद चित्रण ही इनके विचार से कला तथा साहित्य का इष्ट है।
4. सामाजिक वैषम्य की समाप्ति तथा वर्ग-विहीन समाज की स्थापना ही इनका लक्ष्य हैं
5. क्लासिक काव्य परम्परा को आदर देते हुए इन्होंने अपनी दृष्टि का विस्तार किया है।
6. कला में इनकी दृष्टि से बाह्य का ही नहीं, अन्तर्मन का भी चित्रण होता है।
7. पूर्णतः भौतिकवाद पर आधारित होने के कारण इनका धर्म, ईश्वर, आत्मा तथा दर्शन में विश्वास नहीं है।
8. कला तथा साहित्य अभिव्यक्ति का एक साधन मात्र है। 9. साहित्य साहित्यकार की वैयक्तिक चेतना न होकर समाज की सामूहिक चेतना है। .
10. समानाधिकार, स्वतंत्रता, स्वायत्तता, मानवीय गरिमा, जिस साहित्य से उत्पन्न हो सकते हैं, वही क्रान्ति और विद्रोह का जीवन दर्शन इन्हें मान्य है।

महत्त्वपूर्ण तथ्य -

-हिन्दी का प्रथम मार्क्सवादी आलोचक - शिवदान सिंह चौहान है।

-शिवदान सिंह चौहान द्वारा लिखा गया - "भारत में प्रगतिशील साहित्य की आवश्यकता" (1937) शीर्षक निबन्ध जिसे प्रथम मार्क्सवादी समीक्षा स्वीकार किया जाता है।

- हिन्दी साहित्य की जनवादी परम्परा (1953) - प्रकाश चन्द गुप्त । दोआब - (1948) शमशेर सिंह बहादुर

-प्रेमचन्द और उनका युग - (1952)

-भाषा और समाज (1961)

निराला की साहित्य साधना (1979-72-76), तीन भाग

कामायनी एक पुर्नविचार (1961), नये साहित्य का सौंदर्य शास्त्र (1971),

मुक्तिबोध

- हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष - शिवदान सिंह चौहान

-दूसरी परम्परा की खोज (1982) - नामवर सिंह

-अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर सर्वप्रथम 'हेनरी बारबूज' के प्रयासों से 1935 ई. में फ्रांस की राजधानी पेरिस में संसार के प्रगतिशील लेखकों को संगठित करने का प्रयास शुरू हुआ। ।

-इन प्रयासों से सर्वप्रथम 1935 ई. में ही पेरिस में अंग्रेजी साहित्य के प्रसिद्ध कथाकार एवं विचारक 'ई.एम. फोर्टर' की अध्यक्षता में "प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन" नामक अतरराष्ट्रीय संस्था का प्रथम अधिवेशन आयोजित हुआ। ।

-अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना 1935 ई. में लंदन में हुई। इसके प्रणेता सज्जाद जहीर व मुल्कराज आनंद थे।

-इस संस्था का प्रथम अधिवेशन 1936 ई. में मुंशी प्रेमचन्द की अध्यक्षता में 'लखनऊ' में आयोजित हुआ।

-इसमें मुंशी प्रेमचन्द ने सभापति पद से दिये गये भाषण में घोषित किया कि "साहित्य केवल मनोरंजन की वस्तु नहीं है, उसका लक्ष्य समाज हित होना चाहिए।"

-रामविलास शर्मा को हिन्दी साहित्य के प्रगतिवाद (मार्क्सवाद) का पितामाह कहा जाता है।

-मार्क्सवाद का प्रतिपादन 19 वीं शताब्दी के मध्य में 'कार्ल हेनरिच मार्क्स' (1818-1883 ई.) एवं 'फ्रेडरिक एंजेल्स' (1820-1895 ई.) के द्वारा किया गया था।

खडी बोली का गद्य

> खडी बोली गद्य का सबसे प्रारम्भिक एवं प्राचीनतम रूप 'दक्षिणी साहित्य' में प्राप्त होता है।

> दक्षिणी साहित्य में खड़ी बोली के प्रारम्भिक रूप को 'हिन्दी, हिन्दवी, दक्खिनी, देहलवी, जबान-ए-हिन्दीख जबान-हिन्दुस्तानी' इत्यादि अनेक नामों से पुकारा जाता था।

> खडी बोली में रचित दक्षिणी साहित्य की गद्य लेखकों का विवरण निम्नानुसार प्राप्त होता है -

1. ख्वाजा बंदे नवाज नेसूदराज

> जन्मकाल - 1346 ई.
> मृत्युकाल - 1423 ई.
> जन्मस्थान - दिल्ली
> जीवनयापन - दौलताबाद एवं गुलबर्गा
> प्रमुख रचनाएँ -
1. मीराजुल आशकीन
2. हिदायतनामा
3. रिसाला सेहवारा या बारहमासा

> विशेष तथ्य -
1. ये तीनों रचनाएँ 'दक्खिनी भाषा' में रचित हैं।
2. 'मीराजुल आशकीन' दक्खिनी की पहली रचना मानी जाती है। यह 19 पृष्ठों की एक छोटी सी रचना है, जिसमें सूफी धर्म के उपदेश लिखे गये हैं।

2. शाह मीराँजी
» मृत्युकाल - 1497 ई.
> जन्मस्थान - बीजापुर
> मुख्य रचना - 1. शरहमगूब उलमलूब
नोट :- इस पुस्तक में दस अध्याय हैं, जिनमें धार्मिक (सूफी) विचार प्रस्तुत किये गये हैं।

3. शाह बुरहानुद्दीन जानम
> जन्मकाल - 1454 ई.
> मृत्युकाल - 1583 ई.
→ प्रमुख रचनाएँ -
1. इरशादनामा
2. मारफतूल कलूब
3. हश्तमसायल
4. कलमबुहकायक

> विशेष तथ्य -
1. ये शाह मीराँजी के पुत्र थे। इनकी रचनाओं में भी सूफी धर्म के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है।

4. मुल्ला वजही
> जन्मकाल - 1605 ई.

> मृत्युकाल - 1660 ई.
> मुख्य गद्य रचना - 1. सबरस (1635 ई.) 2. कुतुब मुश्तरी
नोट :- 1. 'सबरस' की रचना फारसी की एक गद्य 'हुस्नोदिल' के आधार पर ही हुई मानी जाती है।
2. इसमें अक्ल, इश्क, दिल, हुस्न, नजर, हिम्मत आदि को पात्र बनाया गया है।
3. यह एक सूफी प्रेमाख्यान रचना है, जिसमें प्रतीकात्मक कथा के माध्यम से सूफी-सिद्धान्तों के प्रतिपादन का प्रयास किया गया है।

उत्तरी भारत में खडी बोली गद्य का विकास

> उत्तरी भारत में खडी बोली गद्य परम्परा की शुरुआत सत्रहवीं या अठारहवाँ शताब्दी से मानी जाती है।
> उत्तरी भारत में खडी बोली की प्राचीनतम गद्य रचना सम्राट अकबर के दरबारी कवि गंग भाट द्वारा रचित 'चंद छंद
बरनन की महिमा' (सत्रहवीं शताब्दी) मानी जाती है।
> गंग कवि के बाद आचार्य रामचंद्र शुक्ल के मतानुसार शुद्ध एवं परिमार्जित खड़ी बोली की सर्वप्रथम गद्य रचना
रामप्रसाद निरंजनी द्वारा रचित "भाषा योग वासिष्ठ" (1741 ई. में अनूदित रचना) मानी जाती है।
> शुद्ध एवं परिमार्जित खडी बोली की दूसरी गद्य रचना पं. दौलतराम द्वारा रचित 'पद्मपुराण' (1761 ई.) मानी जाती है। यह भी एक अनूदित रचना है। इसमें हरिषेण आचार्य द्वारा रचित 'जैन पद्म पुराण' का खडी बोली में अनुवाद किया गया है।

उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भिक चार गद्य लेखक

1. मुंशी सदासुखलाल 'नियाज'
> जन्मकाल - 1746 ई.
> मृत्युकाल - 1824 ई.
> निवास स्थान - दिल्ली

→ प्रमुख रचनाएँ -
1. सुखसागर 2. ज्ञानोपदेश 3. मुंतखबुत्तवारीख (1818 ई.)

4. सुरासुर निर्णय (निबंध)

→ विशेष तथ्य -
1. 'सुखसागर' विष्णु पुराण पर आधारित खडी बोली की गद्य रचना है।
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इनकी भाषा को हिन्दुओं के 'पंडिताईपन की भाषा' कहा है।
3. ये 'उर्दू' में 'निसार' उपनाम से रचनाकार्य करते थे।

प्रसिद्ध कथन - "रस्मौ-रिवाज भाखा का दुनिया से उठ गया।"

4. डॉ. बच्चन सिंह के अनुसार 'सुखसागर' इनकी रचना नहीं होकर केवल इनका 'उपनाम' था। यह डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का फैलाया हुआ भ्रम मात्र था।

5. 'सुरासुर निर्णय' निबंध 'लाला भगवानदीन' और 'रामदास गौड' द्वारा सम्पादित "हिन्दी भाषा सार" ग्रंथ में संगृहीत है।

2. सैयद इंशा अल्ला खाँ

> जन्मकाल - 1756 ई.

> मृत्युकाल - 1817 ई.

> जन्मस्थान - मुर्शिदाबाद

> निवास स्थान - लखनऊ

> प्रमुख रचनाएँ - 1. रानी केतकी की कहानी या उदयभान चरित (रचनाकाल - 1803 ई.)

> विशेष तथ्य - 1. इन्होंने अपनी रचनाओं में शुद्ध 'हिन्दवी' का प्रयोग करने का प्रयास किया।

2. इन्होंने अपनी भाषा की निम्न तीन प्रकार के शब्दों से मुक्त रखने की प्रतिज्ञा की थी - -बाहर की बोली - अरबी, फारसी, तुर्की

-गँवारी - ब्रज भाषा, अवधी आदि

-भाखापन - संस्कृत के शब्दों का मेल

3. लल्लूलाल

> जन्मकाल - 1763 ई.

> मृत्युकाल - 1825 ई.

» निवासस्थान - आगरा, (गुजराती ब्राह्मण)

» प्रमुख रचनाएँ -

1. सिंहासन बतीसी - 1801 ई.
2. बैताल पचीसी - 1801 ई.
3. शकुन्तला नाटक - 1801 ई.
4. माधोनल - 1801 ई.
5. राजनीति - 1802 ई.
6. प्रेमसागर - 1810 ई.
7. लतायफ-इ-हिन्दी - 1810 ई.

8. ब्रजभाषा व्याकरण - 1811 ई.
11. लाल चन्द्रिका - 1818 ई. (बिहारी सतसई की टीका)

विशेष तथ्य - 1. इन्होंने 1802 ई. से लेकर 1823 ई. तक फोर्ट विलियम कॉलेज, कोलकता में हिन्दी अध्यापन का
कार्य किया था।
2. इनका एकमात्र मौलिक ग्रंथ 'ब्रजभाषा व्याकरण' माना जाता है।
3. इनके द्वारा रचित 'राजनीति', 'माधव विलास' तथा 'लालचन्द्रिका' रचनाओं में ब्रजभाषा का तथा अन्य रचनाओं में खडी बोली का प्रयोग हुआ है।
4. खडी बोली की रचनाओं में से 'प्रेमसागर' ही शुद्ध खडी बोली की रचना है। शेष रचनावली पर उर्दू-फारसी का प्रभाव पाया जाता है। यह ग्रंथ 'जॉन गिलक्राइस्ट' की प्रेरणा से रचा गया था। इसमें 'श्रीमद्भागवत' के दशम स्कन्ध की कथा वर्णित है।
5. लल्लूलाल ने उर्दू, खडी बोली हिन्दी और ब्रजभाषा तीनों में गद्य की पुस्तकें लिखी थीं।
6. आचार्य शुक्ल के अनुसार इनको संस्कृत का ज्ञान नहीं था।
7. 'राजनीति' रचना में हितोपदेश की कहानियाँ ब्रजभाषा गद्य में रची गयी है। 8. इन्होंने आगरा में 'संस्कृत प्रेस' नामक अपना प्रेम खोला था।

4. सदल मिश्र

> जन्मकाल - 1768 ई.
> मृत्युकाल - 1848 ई.
> निवासस्थान - बिहार
→ प्रमुख रचनाएँ -
1. नासिकेतोपाख्यान - 1803 ई.
2. रामचरित्र - 1805 ई.
> विशेष तथ्य -
1. 'नासिकेतोपाख्यान' इनकी एक लघु रचना है। यह संस्कृत की 'नाचिकेत कथा' पर आधारित है। इसमें 'नासिकेत' की उत्पत्ति से लेकर यमलोक-यात्रा तक की विवरण प्रस्तुत किया गया है। अंत में आत्मज्ञान की चर्चा है।
2. 'रामचरित' रचना संस्कृत की 'अध्यात्म रामायण' रचना पर आधारित है। लगभग 320 पृष्ठों में रचित यह रचना सात काण्डों में विभक्त है। इसकी रचना 'जॉन गिलक्राइस्ट' की प्रेरणा से की हुई मानी जाती है।
3. इनकी भाषा पर प्रान्तीय भाषाओं विशेषतः 'बिहारी' भाषा का गहरा प्रभाव पाया जाता है।

फोर्ट विलियम कॉलेज, कोलकता

> स्थापना वर्ष - 1800 ई.
> स्थापना कर्ता - ईस्ट इण्डिया कम्पनी के तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड मार्विस वेलेजली
> स्थापना का उद्देश्य - लॉर्ड वेलेजली इसे भारतीय एवं पाश्चात्य भाषाओं, साहित्य, कानून व ज्ञान-विज्ञान के अध्ययन का केन्द्र बनाना चाहते थे, किन्तु ईस्ट इण्डिया कम्पनी के इंग्लैण्ड स्थित अधिकारियों ने इसे केवल प्रमुख भारतीय भाषाओं के सामान्य अध्ययन केन्द्र के रूप में चलाने की अनुमति प्रदान की।
> कब तक चला - 1800 ई. से 1854 ई. तक।
> कॉलेज में हिन्दुस्तानी के सबसे पहले प्रोफेसर - डॉ. जॉन गिलक्राइस्ट
> कार्यकाल - 1800 ई. से 1804 ई. तक
> हिन्दुस्तानी के अन्य प्रोफेसर -
1. कैप्टेन जेम्स मोअट - जनवरी 1806 से फरवरी 1808 ई. तक
2. कैप्टेन विलियम टेलर - फरवरी 1808 से मई 1823 ई. तक
3. मेजर विलियम पाइस - मई 1823 से दिसम्बर 1831 ई. तक

नोट - विलियम प्राइस के बाद किसी अन्य प्रोफेसर की नियुक्ति नहीं हुई। केवल मुंशी और पंडित ही हिन्दुस्तानी का अध्यापन करते रहे।

> कॉलेज में 'हिन्दुस्तानी' के प्रमुख मुंशी -

1. लल्लूलाल
2. सदल मिश्र
3. इश्द्रेश्वर
4. गंगा प्रसाद शुक्ल
5. ख्यालीराम
6. ब्रह्म सच्चिदानंद
7. मधुसूदन तर्कालंकार
8. शेष शास्त्री

1. डॉ. जॉन गिलक्राइस्ट

> प्रमुख रचनाएँ -
1. ए डिक्शनरी, इंगलिश एण्ड हिन्दुस्तानी - दो भाग (1790 ई.)
2. ए ग्रामर ऑव् द हिन्दुस्तानी लैंग्वेज विद अ सप्लीमेंट (1798 ई.)
3. दि ऑरिएंटल लिंग्विस्ट (1798 ई.)
4. द हिन्दी स्टोरी टैलर (1802 ई.)
5. द हिन्दी डाइरेक्टरी (1802 ई.)

6. द हिन्दी मैनुअल (1802 ई.)
स्थापित संस्था - 1. ऑरिएंटल सेमिनरी
का पैनल

2. मेजर विलियम प्राइस
> डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय द्वारा रचित "आधुनिक साहित्य की भूमिका' पुस्तक के अनुसार कॉलेज के पत्रों में 'हिन्दुस्तानी' के स्थान पर आधुनिक अर्थ में 'हिन्दी' नाम को प्रचलित करने का श्रेय 'मेजर विलियम प्राइस' की ही
दिया जाता है। उनसे पूर्व कॉलेज के जिस भाग को 'हिन्दुस्तानी विभाग' कहा जाता था, उनके प्रयास से वह 'हिन्दी विभाग' कहलाने लगा।
> खडी बोली गद्य के विकास में ब्रह्म समाज का योगदान - ब्रह्म समाज के संस्थापक 'राजा राम मोहन राय' ने 1815 ई. में खडी बोली में वेदान्त सूत्रों का अनुवाद प्रकाशित करवाया तथा 1829 ई. 'बंगदूत' नामक पत्रिका हिन्दी में प्रकाशित की।

अम्बेडकर दर्शन

परिचय- डॉ. भीमराव अम्बेडकर का जन्म 14 अप्रैल 1891 को इंदौर के महू छावनी नामक स्थान पर हुआ था। इनके पिता जी का नाम रामजी सकपाल तथा माता जी का नाम भीमाबाई था। वे अपनी माता-पिता की चौदहवीं संतान थे। अम्बेडकर एक विधिवेत्ता अर्थशास्त्री, राजनीतिज्ञ तथा समाजसुधारक थे। इन्हें आधुनिक मनु भी कहा जाता है, उन्हे नौ भाषाओं का ज्ञान था। उन्होंने अपने समकालीन राजनेताओं की तुलना में सर्वाधिक लेखन कार्य किया। उनके डि. एस. सी. प्रबंध द प्राब्लम ऑफ द रूसीः इट्स ओरिजिन ऍन्ड इट्स सोल्युशन से भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना हुई है।

इन्होंने पांच मराठी पत्रिकाओं का संपादन किया।
1. मूकनायक (1920)
2. बहिष्कृत भारत (1927)
3. समता (1928)
4. जनता (1930)
5. प्रबुद्ध भारत (1956)

1956 में उन्होंने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था। इनकी मृत्यु 6 दिसंबर 1956 को नयी दिल्ली में हुई थी तथा समाधि स्थल चैत्यभूमि मुंबई में है। 1990 में मरणोपरांत उन्हें भारत का सर्वोच्च नागरिक सम्मान 'भारतरत्न' दिया गया।

1951 में संसद में अपने हिन्दू कोड बिल मसौदे को रोके जाने के बाद उन्होंने मंत्रीमण्डल पद से इस्तीफा दिया था। उन्होंने संविधान निर्माण के वक्त प्रारूप सीमित के अध्यक्ष की भूमिका में उन्होंने देश के संविधान निर्माता के रूप में कार्य किया।

अम्बेडकर की विचारधारा तथा दर्शन अर्थात अम्बेडकरवाद के प्रमुख सिद्धान्त स्वतंत्रता, समानता, भाईचारा, बौद्धधर्म, मानवतावाद, विज्ञानवाद, सत्य तथा अंहिसा आदि हैं। अम्बेडकर के प्रमुख उद्देश्य छुआछूत को नष्ट करना, दलितों का सामाजिक सुधार, भारत में बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार था।

अम्बेडकर जी ने अपना सम्पूर्ण जीवन समाज सुधार हेतु समर्पित किया। उन्होंने समाज के शोषित वर्ग को अत्याचार, शोषण, अन्याय के विरुद्ध संघर्ष की प्रेरणा दी।

नेहरू के अनुसार- डॉ. अम्बेडकर हिन्दू समाज की दमनकारी प्रवृतियों के विरूद्ध किए गए विद्रोह का प्रतीक थे।

उन्होंने विभिन्न भारतीय ग्रंथों का अध्ययन किया उन्होंने बताया कि भारतीय समाज में अस्पृश्यता, जाति तथा वर्ण व्यवस्था कालान्तर में आई विकृतियों के कारण उत्पन्न हुई।

उन्होंने वर्ण व्यवस्था, जातिप्रथा तथा अस्पृश्यता का विरोध किया तथा हिन्दू समाज की मान्यताओं में परिवर्तन पर बल दिया। उन्होंने दलितों की शिक्षा तथा संगठन पर विशेष बल दिया तथा व्यवस्थापिका में दलित वर्ग के पर्याप्त प्रतिनिधित्व का समर्थन किया। साथ ही अन्तर्जातीय विवाह को समर्थन तथा प्रोत्साहन प्रदान किया।

अम्बेडकर गांधीवाद के लगभग सभी विचारों से असहमत थे। उन्होंने गांधीवादी नीति के स्थान पर समाजवादी नीति का प्रश्रय लिया। अम्बेडकर के अनुसार गांधी दर्शन में प्रगतिवादी तत्वों का पूर्ण अभाव है। अम्बेडकर ने मार्क्सवाद के कुछ ही विचारों का समर्थन किया। परन्तु उनके अनुसार भारत की समस्याओं का एकमात्र समाधान मार्क्सवाद नहीं है, भारतीय समाजव्यवस्था पर विचार किये बिना ही मार्क्सवादी साम्यवादी समाज की स्थापना करना चाहते है जो उनकी विचार प्रणाली का गम्भीर दोष है।

डॉ. अम्बेडकर की दृष्टि में धर्म की नैतिकता है और नैतिकता ही धर्म है। डॉ. अम्बेडकर नैतिकता को पवित्र तथा व्यापक बनाने हेतु तीन बातों को महत्वपूर्ण मानते है।

1. समाज में जो श्रेष्ठ है, सामाजिक हित की दृष्टि से उसे सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिए।
2. वर्ग नैतिकता समाप्त होनी चाहिए।
3. नैतिक दर्शन का आधार सामाजिक हो समाज से पृथक नैतिकता का कोई मूल्य नहीं उनके अनुसार आदर्श समाज वह होगा जो स्वतंत्रता तथा भ्रातृभाव पर आधारित हो।

अम्बेडकर जी के विचार सूत्र

- धर्म का अर्थ है जीवन के सभी क्षेत्रों में मानव-मानव के बीच शुभ सम्बन्ध ।
-प्रत्येक व्यक्ति का मूल्यांकन उसके गुण के आधार पर होना चाहिए न कि जन्म के आधार पर ।
- एक आदर्श समाज वह होगा जो स्वतंत्रता, समता तथा भ्रातृभाव पर आधारित हो।

- हमें अपनी दासता स्वयं मिटानी होगी। शिक्षा, संगठन तथा संघर्ष इसके लिए मूल मंत्र है।
-यदि हम अपनी एक सामान्य संस्कृति को सुरक्षित रखना चाहते है तो हमारा कर्तव्य है कि हिन्दी को अपने राष्ट्र की एक राज्यभाषा मानें। प्रत्येक नागरिक अपने को सर्वप्रथम और अन्त में भी भारतीय समझे ताकि राष्ट्रीय एकता कायम रहे।

-डॉ. अम्बेडकर द्वारा लिखित मौलिक ग्रंथ, आलेख तथा भाषण एवं प्रसिद्ध पुस्तकें तथा मौलिक ____
ग्रन्थः1. एनिहिलेशन ऑफ कॉस्ट, 1937
2. रानाडे गांधी एण्ड जिन्ना, 1943
3. मित्र गांधी एण्ड द इमेन्सीपेशन ऑफ द अण्टचेविल्स, 1943
4. पाकिस्तान ऑर द पार्टीशन ऑफ इण्डिया, 1946
5. हॉट कांग्रेस एण्ड गांधी हैव डन टू द अण्टचेविल्स, 1946
6. स्टेट्स एण्ड मायनॉर्टीज, 1947
7. हू वर द शूद्राज ?, 1946
8. द अण्टचेविल्स, 1948
9. हिस्ट्री ऑफ इण्डियन करेंसी एण्ड बैंकिंग, 1946
10. द इव्योल्युशन ऑफ प्रॉविनसियल फाइनेन्स इन ब्रिटिश इण्डिया, 1923
11. थॉट्स ऑन लिंग्विस्टिक स्टेट, 1955
12. महाराष्ट्र एज ए लिंग्विस्टिक स्टेट, 1948 13. द बुद्धा एण्ड हिज धम्म, 1957 14. फेडरेशन वर्सेज फ्रीडम, 1970 15. कम्यूनल डेडलॉक एण्ड टू सॉल्व

आदिवासी साहित्य एवं आलोचना

मनुष्य की अभिव्यक्ति को साहित्यिक रूप देने में आदिवासी समाज को लम्बे समय तक इंतजार करना पडा। मुख्यधारा का साहित्य उन्हें उपदेश देता रहा तथा साहित्य की चारदीवारी में उन्हें घुसने नहीं दिया गया। जंगलों में भटकते, विस्थापित प्रकृति मित्रों का अभिजात साहित्य अनदेखा करता रहा। सुर, ताल, लय के धनी उनके मानवतावादी स्वर की पहचान नहीं हो पाई।

आदिवासी परम्परा, संस्कृति तथा इतिहास की गौरवगाथा उनके लोकगीतों, लोककथाओं, किवंदतियों तथा मिथकों में जिंदा रही। लोक के इस स्वर को पहचान कर आदिवासी साहित्यकारों ने इसे अपने साहित्य में प्रकट करना शुरु किया। आदिवासी साहित्य में आदिवासियों की भाषा, संस्कृति, संवेदना आदि समग्रता में अभिव्यक्त होकर विमर्श का रूप ग्रहण कर रहे है। जंगल तथा पर्यावरण के प्रति चिंता ने आदिवासी समाज को मुख्यधारा में स्थापित करने का काम किया है। बहुत देर में ही सही पर आदिवासी साहित्य समाज की बदौलत आदिवासियों को इंसान के रूप में देखा जाने लगा है। आदिवासी साहित्य में उनका जीवन सजीव रूप में सामने आ रहा है। जीवन के अनेक पहलुओं को खोलता आदिवासी साहित्य उल्लास तथा संघर्ष का साहित्य है। ऊंच-नीच, भेदभाव तथा छल-कपट से रहित उनका साहित्य न्याय का पक्षधर है। रमणिका गुप्ता आदिवासी साहित्य को अन्याय का विरोधी तथा न्याय का पक्षधर मानते हुए कहती है, " आदिवासी साहित्य

का महत्त्व इसलिए भी है कि निरा कल्पना का साहित्य न होकर जीवन का साहित्य हैं। वह अन्याय का विरोधी और सामाजिक न्याय का पक्षधर हैं।"

आदिवासी साहित्य की शुरुआत पत्रिकाओं से हुई मानी जा सकती हैं। 'अरावली उद्घोष', 'युद्धरत आम आदमी' जैसी पत्रिकाएं आदिवासी जीवन को स्वर देती हुई उनके जीवन, संघर्ष तथा संस्कृति को केंद्र में रखकर चलती हैं। इनके अलावा आदिवासी जीवन पर विशेषांक निकालने वाली पत्रिकाएं 'दस्तक', 'सममकालीन जनमत', 'दोआबा' आदि हैं।

आदिवासी साहित्य के प्रारम्भित साहित्यकार के रूप में आदिवासी कविता बाबा नागार्जुन का नाम लिया जा सकता है। जिन्होंने आदिवासी जीवन की समस्याओं और चनौतियों को समझते हुए उनकी विडम्बनाओं पर कविताएं लिखी।

साहित्यकारों में देवेंद्र सत्यार्थी का 'रथ के पहिये', वृंदावनलाल वर्मा का 'कचनार', फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आंचल', रांगेव राघव का 'कब तक पुकारुं', नागार्जुन का 'वरुण के बेटे', योगेंद्रनाथ सिन्हा का 'हो', राजेन्द्र अवस्थी का 'जंगल के फूल', वीरेन्द्र जैन का 'पार' प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष जीवन पर लिखे गए उपन्यास है।

आदिवासी विमर्श : रचनाकार और रचनाएँ	
रचनाकार	रचनाएँ
रमणिका गुप्ता	आदिवासी शौर्य एवं विद्रोह, आदिवासी : विकास से विस्थापन, आदिवासी : साहित्य यात्रा, आदिवासी कौन, आदिवासी अस्मिता का संकट, आदिवासी लेखन : एक उभरती चेतना (2013 ई.)
सुश्री शरद सिंह	आदिवासियों का संसार आदिवासी परंपरा आदिवासी लोक नृत्य-गीत आदिवासियों के देवी-देवता भारत के आदिवासी क्षेत्रों की लोककथाएँ (2009 ई.)
हरिहर वैष्णव	बस्तर की आदिवासी एवं लोक हस्तशिल्प परंपरा
देवेन्द्र गोलदार नेगी	आदिवासिक संस्कृति के आर्थिक आधार

हरिराम मीणा	आदिवासी दुनिया (2013 ई.), डांग (2019 ई.)
गंगा सहाय मीणा	आदिवासी साहित्य विमर्श

आदिवासी विमर्श के उभरने के साथ ही आदिवासी जीवन पर तेजी से लेखन होने लगा। आदिवासियों की जीवनशैली, संस्कृति तथा संघर्ष को आधार बनाकर रचना करने करने वाले समकालीन आदिवासी रचनाकारों में निर्मला पुतुल, ग्रेस कुजूर, अनुज लुगुन, भुजंग मेश्राम, शंकरलाल मीणा, हरीराम मीणा, डॉ. बाहरु सोरवणे, महादेव टोप्पो, रामदयाल मुंडा, सरिता सिंह बडाइक, सहदेव सोरी, संजीव, तेजिंदर, प्रकाश मिश्र, रणेन्द्र, मनमोहन पाठक, रोज केरकेट्ठा आदि के नाम लिए जा सकते हैं।

पी. शंकर (तेलुगु) की हिन्दी में अनुदित पुस्तक 'यह जंगल हमारा है' तथा सतनाम (पंजाबी) की पुस्तक 'जंगलनामा' आदिवासियों के जीवन पर आधारित के जीवन पर आधारित प्रमुख पुस्तकें हैं। हरिराम मीणा की पुस्तक 'धूणी तपे तीर' राजस्थान के भीलों के जीवन पर आधारित महत्वपूर्ण पुस्तक है। पुन्नी सिंह का उपन्यास 'सहराना' मध्यप्रदेश तथा राजस्थान के पिछड़े हुए आदिवासियों के जीवन पर आधारित रचना हैं। राजस्थान की ही आदिवासी जाति 'गाडिया लुहार' की कला, संघर्ष तथा संस्कृति के रंग में रंगा मणि मधुकर का उपन्यास 'पिंजरे में पन्ना' है।

आधुनिकता से दूर आदिवासियों के जीवन पर आधारित राकेश वत्स का 'जंगल के आस-पास' उपन्यास है। इस उपन्यास में पूंजीपतियों, पुलिस तथा नेताओं से आतंकित इलाके दमकडी की कहानी है। आदिवासियों के जीवन में धार्मिक अंधविश्वास, आडम्बरों आदि पर केन्द्रित 'महनर ठाकुरों का गांव' बटरोही का एक सशक्त उपन्यास है। आदिवासियों के जीवन की अभावग्रस्तता को व्यक्त करता 'बनतरी' सुरेशचंद्र श्रीवास्तव का चरित्र प्रधान उपन्यास है।

श्री प्रकाश मिश्र का उपन्यास 'जहां बांस फूलते है' लुशेइया आदिवासियों के जीवन यथार्थ को तथ्यपरकता से पेश करता है। भगवनादास मोरवाल का 'काला पहाड राजनीतिक स्वार्थों के शिकार मेव आदिवासियों के दर्द को बयां करता है। 'अल्मा कबूतरी' मैत्रेयी पुष्पा का बुंदलेखंड की कबूतरा नामक आदिवासी जाति का उपन्यास है।

आदिवासी जीवन पर हबीब कैफी का 'गमना' आदिवासियों के गरसिया समुदाय पर लिखित एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। पिछड़ेपन के शिकार गरसिया के लोगों के सामाजिक तथा मानवीय मूल्यों को उपन्यास उभारता है। इस उपन्यास में आदिवासी और गैरआदिवासी समुदाय का संपर्क और उसमें आदिवासियों के शोषण को स्पष्टता से व्यक्त किया गया है।

रणेन्द्र का आदिवासी जीवन पर आधारित उपन्यास 'ग्लोबल गांव के देवता' कमजोर आदिवासियों की आवाज बुलंद करता है। हमेशा से दबाव गए आदिवासी समाज की पीडा एवं त्रास को रणेन्द्र ने बखूबी समझा है तथा भूमण्डलीकरण के दौर में उन पर बढ़ते हमलों के बारे में चिंता व्यक्त की है। उपन्यास के केन्द्र में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के साथ चल रहा आदिवासियों का संघर्ष है। भूमण्डलीकरण का यह देवता बहुत ताकतवर है और संस्थाएं इसके साथ है। आदिवासी समाज इसके सामने कमजोर पड रहा है।

'खुले गगन के लाल सितारे' मधु कांकरिया का आदिवासियों- नक्सलवादियों के जीवन पर लिखा गया उपन्यास हैं। उपन्यास में अंतर कथाओं के माध्यम से धार्मिक रूढ़ियों को उजागर किया गया है। उपन्यास में खुले विचारों के साथ व्यवस्था से लडने वाले युवाओं को सितारों के रूप में चित्रित किया गया है। पीटल पॉल एका द्वारा रचित उपन्यास 'जंगल के गीत' में आदिवासियों की विवशता तथा नई- पुरानी संस्कृति में तालमेल न बैठा पाने लेकिन बदलने की मजबूरी को व्यक्त करती कहानियां हैं। वाल्टर भेंगरा की कहानी 'खखरा का जतरु' आदिवासियों के निश्चल प्रेम तथा जीवन-मूल्यों की कहानी है। जतरु 'पढ़ने-लिखने के बाद भी अपनी जमीन और समाज को नही भूलता और अपनी बचपन की प्रेमिका अनपढ़ एतबा से शादी कर, अपने विकास के सब प्रलोभन छोडकर गांव और समाज के विकास के लिए गांव लौट आता है।"

पीटर पॉल एका की 'राजकुमारों के देश में ' विस्थापित आदिवासियों में दर्द को व्यक्त करती कहानी है। कृष्णचंद टुड्डू की 'एक वित्ता जमीन' रोज केरकट्ठा की 'भंवर' में आदिवासी लडकियों के अधिकार प्राप्ति के लिए किए गए विद्रोह की कहानियां है। आदिवासी जीवन पर लिखने वाले अन्य कहानीकारों में विपिन बिहारी, परदेशीराम वर्मा, भावसिंह हिरमानी, कैलाशचंद आदि उभरते हुए कहानीकार हैं।

हिंदी कविता ने आदिवासी साहित्य को पैनी धार दी है। कविता की बदौलत आदिवासियों को इन्सान की नजर से देखने की कोशिश हुई हैं। वाहरु सोनवणे अपनी कविता में कहते हैं, "हम स्टेज पर गए ही नहीं/ और हमें बुलाया भी नहीं/ उंगली के इशारे से/ हमारी जगह हमें दिखाई गई।" आदिवासी कसमसाहट इस कविता में व्यक्त हुई है। आदिवासी महिला 'सिनगी दई' को प्रेरणास्त्रोत मानकर ग्रेस कुजूर लिखती हैं, "और अगर अब भी तुम्हारे हाथों की / अंगुलियां थरथराई तो जान लो/ मैं बनूंगी एक बार और/ सिनगी दई, बांधूगी फेटा/ और कसेगी फिर से/ बेतरा की गांठ ।' बिरसा, सिद्धू-कान्हू, मकी, गोविन्द गिरी से प्रेरणा लेकर शोषण को पहचान कर उसका विरोध कर रहा हैं जिसकी अभिव्यक्ति अनुज लुगुन की कविता में हुई है, "इसी जंग के बीच स्वत्व के लिए/ लहरा ठी थी- सर.....

..... ||।/ सिद्ध-कान्हू और तिलका की तनी धनुष से टूटा तीर/ इनकी मूर्तियों तले चौहारे पर उठती है।" विनोद कुमार शुक्ल की कविता, "जो प्रकृति के सबसे निकट है/ जंगल उनका है/ आदिवासी जंगल में सबसे निकट है। इसलिए जंगल उन्हीं का है/ अब उनके बेदखल होने का समय है।"

साहित्य की प्रचूरता के बावजूद आदिवासी आलोचना मुख्य रूप से पत्रिकाओं में लेखों के रूप में लिखी जा रही हैं। इधर कुछ संपादित तथा मौलिक शोधपरक पुस्तकें आदिवासी साहित्य की आलोचना की कमी पूरी कर रही हैं।

रमेशचंद मीणा 'आदिवासी दस्तकः विचार, परम्परा और दस्तक' पुस्तक में आदिवासियों पर मौलिक शोध के साथ उनकी समस्याओं तथा मुद्दों को उठाते हैं। दलित तथा आदिवासी विमर्श का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए लेखक ने इनके मुद्दों को अलगाया है। आदिवासियों पर भूमण्डलीकरण की मार से उनकी बिगड़ती स्थिति तथा इससे को लेखक को लेखक ने बखूबी समझा है। आदिवासियों के जीवन तथा उनके संघर्ष पर आधारित साहित्य की पडताल इस पुस्तक में की गई है, " बिरसामुंडा को चर्चित, प्रचारित और प्रसारित करने में महाश्वेता देवी के 'जंगल के दावेदार' उपन्यास ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।" आदिवासी चिंतक महाश्वेता देवी का जिक्र लेखक ने किया है।

रमेश सम्भाजी कुरे के सम्पादन में 'आदिवासी साहित्यः विविध आयाम' पुस्तक में आदिवासी जीवन पर केन्द्रित रचनाओं के उद्भव, विकास एवं उनकी समकालीन स्थिति का जायजा लिया गया है। इस पुस्तक में आदिवासी उपन्यासों की रचना के संबंध में लेखक कहता है, "हिंदी के आदिवासी उपन्यास का उद्देश्य है स्थिर स्थान पर गतिमान समय में जीते हुए आदिवासियों के समग्र पहलुओं को उद्घाटित करना।' पुस्तक में उपन्यास के अलावा आदिवासी कहानी, कविता, नाटक तथा आदिवासी साहित्यकारों की समीक्षा भी है।

ब्रह्मदेवन शर्मा की पुस्तक 'आदिवासी विकासः एक सैद्धांतिक परिचय में पिछड़े हुए आदिवासी समाज की समस्याओं को उठाया गया है। लेखक ने असमान विकास पर आधारित अर्थव्यवस्था पर प्रश्नचिन्ह लगाएं है। पुस्तक में विकास के नाम पर हुए आधुनिकीकरण से तालमेल न बैठा पाने वाले आदिवासियों की छटपटाहठ को रेखांकित किया गया हैं। उत्तर-पश्चिम क्षेत्र की बहुपत्नी प्रथा पर लेखक ने विस्तार से चर्चा की है। आदिवासियों की समस्याओं को पर्यावरण तथा उनकी संस्कृति से जोड़कर देखा है।

रमणिका गुप्ता की पुस्तक 'आदिवासी कौन ', तथा उन्हीं द्वारा संपादित 'आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी' आदिवासी जीवन पर केन्द्रित महत्त्वपूर्ण पुस्तकें हैं। पहली पुस्तक में जहां आदिवासी जीवन की जटिलताएं तथा उनका जुझारु रूप चित्रित हुआ है वही दूसरी पुस्तक में आदिवासी जीवन की साहित्य में अभिव्यक्ति पर गौर किया है। 'आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी' पुस्तक में लेखिका ने आदिवासी जीवन पर केन्द्रित साहित्य की विभिन्न विधाओं कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि का संकलन तथा समीक्षा की है।

दीपक कुमार, देवेन्द्र चौबे द्वारा सम्पादित पुस्तक 'हाशिये का वृतांत' हाशिए पर धकेले गए समुदायों की स्थिति पर केन्द्रित पुस्तक है। हाशिए के इन समुदायों में एक समुदाय आदिवासियों का है जो अपने जल, जंगल तथा जमीन के लिए संघर्षरत है। आदिवासी समुदाय की दशा तथा दिशा लेखकों ने समझी है।

आदिवासी साहित्य एवं आलोचना के प्रमुख मुद्दे

दलित तथा स्त्री विमर्श की तरह पितृसत्ता तथा लैंगिक समानता या सामाजिक समानता आदिवासियों का मुद्दा नहीं है, ना ही वे अपनी पहचान को बचाए रखने के लिए लङ रहे। उनका संघर्ष अपने प्राकृतिक संसाधनों को बचाने के लिए है। आज मीडिया तथा सरकारी तंत्र का तामझाम आदिवासी संस्कृति पर ही केन्द्रित होकर चर्चा कर रहा है। आदिवासियों की सांस्कृतिक पहचान पर ही पूरा जोर लगाया जा रहा है, लेकिन सोचने की बात है कि उनके जल, जंगल और जमीन को नष्ट करके क्या उनके जीवन तथा संस्कृति को बचाया जा सकता है।

लम्बे समय तक अंधेरे में रहने वाले आदिवासी समाज में सामाजिक कार्यकर्ताओं तथा रचनाकारों के प्रवेश से चेतना जगी है। उनका परिचय नई-नई विचारधाराओं से होने लगा है। जिनके परिप्रेक्ष्य में वे अपने इतिहास तथा परिस्थितियों को समझने लगे हैं। आदिवासियों में अन्याय तथा भेदभाव के खिलाफ अपने हकों को पाने का विद्रोह जगा है, वे अस्तित्व की लङाई लङने लगे हैं। आदिवासी समाज अपने जल, जंगल और जमीन को बचाने की लङाई लङ रहा है। जल, जंगल और जमीन उनके जीवन का आधार है, इन्हीं से उनका जीवन चलता है। जंगल के बचे रहने पर ही आदिवासियों का अस्तित्व बचा रह सकता है। आदिवासियों के पूर्वजों ने जंगल को सींचा है और जंगल ने उनको जीवन दिया है।

आज के दौर में विकास के नाम पर प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करके आदिवासियों के जीवन को तबाह किया जा रहा है। बड़े-बड़े बांध बनाकर उनके गांव के गांव उजाड़े जा रहे हैं। जंगलों, पहाङो को नष्ट करके उनका आजीविका के साधन छीने जा रहे हैं। पूंजीवादी व्यवस्था में मुनाफे के आगे आदिवासियों के जीवन का सवाल गौण हो चुका है। उनकी स्थिति की तरफ किसी का ध्यान नहीं है। इसी की चिंता में रमेशचंद मीणा कहते हैं, "बस्तर में कच्चे लोहे का दोहन 1954 में होने लगता है। पिछली आधी सदी गुजर जाने पर भी इन लोह दोहन क्षेत्रों में जाकर यह देखने का प्रयास नहीं किया गया कि वहां स्थिति हुई है ?

व्यावसायिक हितों के लिए विकास के नाम पर आदिवासियों की जमीन छीनकर उन्हें बेदखल किया जा रहा हैं। रमणिका गुप्ता इस बारे में चिंतित हैं, "आजादी के बाद देश के विकास का यह कार्यक्रम आदिवासी की कीमत पर हुआ है। विकास की कीमत वह अपने विस्थापन से अदा करता है। उसके खेत खदानों में बदल गए और जंगल लकडी की टालों में समा गए या कुर्सियों, मेंजों और फर्नीचर में बदल गए | गाछ खूटे और बल्ले बन गए और बन गई रेल की पटरियां।"

पूंजीवादी भूमण्डलीकरण के इस दौर में आदिवासियों का विस्थापन उनकी जीवनशैली को पूर्णतः बदल रहा है। व्यवस्था द्वारा सुनहरे सपनें दिखाकर आदिवासियों की जमीन उनसे छीनी जा रही है। विकास के पहाङ के नीचे आदिवासी का अस्तित्व दब रहा है। उनकी जमीन, उनकी संस्कृति सब चीजों से उन्हें विस्थापित होना पङ रहा है, "आदिवासियों के लिए बङा मुद्दा विस्थापन का रहा है। देश के विकास का रास्ता आदिवासी की जमीन से होकर ही गुजरता है। बांध, चतुरभुज कॉरिडोर और औद्योगिक परियोजनाओं को मूर्त रूप देना हो तो उजङना आदिवासी को ही पङता है, अपनी जमीन से विस्थापित आदिवासी ही होता है।" यह तथाकथित विकास आदिवासी के लिए विनाश का पर्याय बन रहा है, "एक अध्ययन के अनुसार पिछले दस सालों में उडीसा, झारखण्ड, आंध्रप्रदेश और छत्तीसगढ़ सरकार ने एक करोङ एकङ से अधिक जमीन अधिग्रहीत

की जिससे सोलह लाख लोग विकास के नाम पर विस्थापित हुए।" आज के दिन आदिवासी अपने जीवन को बचाने के लिए जद्दोजहद कर रहा है।

आदिवासी समाज में स्त्रियां पूरी तरह से स्वतंत्र है। उन पर किसी तरह की रोक-टोक या जोर-जबरदस्ती नहीं है। न वहां दहेज का लालच है और न ही पर्दे की घुटना। उन्हें अपना जीवनसाथी चुनने तथा पुनर्विवाह करने की पूरी आजादी है। लेकिन आदिवासी जंगलों और जमीन को लूटने वाले महाजन तथा ठेकेदारों से आदिवासी महिलाएं भी बच नहीं पाती। तथाकथित शिक्षित समाज शिक्षा, धर्म, धन आदि के बल पर आदिवासी समाज को छलता है। आदिवासी लड़कियों को तरह-तरह के प्रलोभनों में फंसाकर उनकी अस्मिता के साथ खेला जाता है। भोग की वस्तु समझकर परोसी गई प्रताडित आदिवासी स्त्रियों की पीड़ा को निर्मला पुतुल ने अपनी रचनाओं में व्यक्त किया है, " आदिवासी औरत को लेकर कथित सभ्य समाज पूर्वाग्रह से ग्रस्त रहा है। उनकी रचनाओं में आदिवासी महिला कभी भी यथार्थ रूप में चित्रित ही नहीं हो सकी है। जब निर्मला पुतुल अपनी कविता में आदिवासी महिला के चित्र खड़े करती है तब सभ्य समाज सिर्फ चौंकता है।"

आदिवासियों की संस्कृति पर्यावरण केन्द्रित संस्कृति है। उनकी संस्कृति की विशिष्टता उसका प्रकृति केन्द्रित होना ही है, "उनका सारा जीवन, संस्कृति, विश्वास एवं रीति-रिवाज पर्यावरण से इस तरह जुड़े होते हैं कि उन्हें अलग से देखा समझा ही नहीं जा सकता। उनका धर्म पर्यावरण केन्द्रित है, संस्कृति विशिष्ट है, विश्वास एवं आस्थाएं पर्यावरण के इर्द-गिर्द घूमती हैं।"

रहन-सहन को लेकर आदिवासी मैदानी इलाकों की तुलना में पूर्णतः भिन्न हैं। कपड़े न पहनना या कम पहनना आदिवासियों की संस्कृति और रहन-सहन में शामिल है। "वहां पर यदि किसी बालिका को अपने वक्षस्थल ढंकने के लिए वस्त्र पहनने के लिए कहा जाए तो वह शरमाती है और उसे अटपटा लगता है। उसके परिजन परिहास में कहने लगते हैं कि ये तो खालपटी (मैदानी इलाका) की हो गई।"

रीति-रिवाजों तथा सामाजिक मान्यताओं के संदर्भ में आदिवासी बहुत रूढ़ नहीं है। विवाह आदि के मामले में वे बहुत जनतांत्रिक हैं, "आदिवासी समाज में यदि कोई लड़का और लड़की परस्पर वचन के आधार पर पति-पत्नी के रूप में साथ रहना शुरू कर दें तो सामाजिक दृष्टि से उनका विवाह की रस्में बाद में सुविधा के अनुसार कभी भी पूरी की जा सकती हैं। इस संबंध में कोई सामाजिक ग्रंथियां नहीं है।" आदिवासी क्षेत्र में जब से खनिजों के दोहन का विरोध तथा जंगल को बचाने का विद्रोह शुरू हुआ है तब से उनकी संस्कृति की तरफ ध्यान जाने लगा है। कला तथा संस्कृति की आवाज को दबाकर उसे मनोरंजन तथा सजावट के साधन के रूप में पेश किया जा रहा है।

कहा जा सकता है कि 1980 के बाद उभरे स्त्री, दलित एवं आदिवासी विमर्शों की जड़ में जाकर इनके सरोकारों को आलोचना ने गहराई से समझा है। पितसत्ता तथा ब्राहमणवादी व्यवस्था पर चोट करते हुए आदिवासी संस्कृति के पक्ष में आलोचना ने एक हथियार का काम किया है। आलोचना ने जहां स्त्री एवं दलित के लिए समान अधिकारों और अलग भाषा की मांग की वहीं आदिवासियों के संघर्ष से प्रेरणा लेकर देशी-विदेशी पूंजीपतियों का विरोध किया है।

उत्तर आधुनिकता एक ऐसी सोच है जिसमें जीवन के यथार्थ पक्ष पर अधिक तथा साहित्य पर कम विचार किया गया है। आधुनिकता पर विचार करने वाले पाश्चात्य विद्वानों ने फिर से विचार करने की आवश्यकता अनुभव की, इसी कारण इसे आधुनिकता की नई सोच या आधुनिकता का अगला चरण कहा गया।
डॉ. तारकनाथ बाली के अनुसार, "मैं उत्तर आधुनिकता को मूलतः आधुनिकता के गंभीर पुनरीक्षण के रूप में देखता हूँ, जिसमें मानव को केंद्र में रखकर द्रुतगति से बढ़ती आधुनिकता को नए यंत्र, टेक्नोलॉजी, जन-विचार के दृश्य-श्रव्य माध्यमों का तेजी से विकास-विस्तार आदि के प्रभावों पर विचार किया गया है। उत्तर आधुनिकता के इस पुनरीक्षण के प्रयास में आज 21 वीं शती या नई सहस्त्राब्दि में मानव के प्रवेश एवं विकास की चिताएं भी शामिल हो गई हैं।"

डार्विन के विकासवाद तथा पूंजीवाद के उदय ने भौतिक एवं वैचारिक स्तर पर एक भाव-क्रांति को जन्म दिया, उत्तर आधुनिकता का मूल इसी में निहित है। इस क्रांति के माध्यम से यह सोच सामने आई कि औद्योगीकिरण के माध्यम से ही मानव की समस्त समस्याओं को सुलझाया जा सकता हैं। इस चिंतन ने काव्य की उपयोगिता पर प्रश्न चिह्न लगा दिया और कवि की तुलना केकड़े से करते हुए यह भी कहा गया कि कवि केकड़े की भांति उल्टा (पीछे की ओर) चलता है। इसकी प्रतिक्रिया 'इन डिफेंस ऑफ पोएजी' (शैले) में सामने आई।

जैसे-जैसे विज्ञान का प्रभाव बढ़ा तो यह सोचा-समझा जाने लगा कि यह हितकारी और अहितकारी दोनों ही हैं। यह भी विचार होने लगा कि इसके द्वारा मूल्यों का हास ही हुआ है, फलतः सांस्कृतिक अराजकता पनप रही है। ऐसी स्थिति में मात्र साहित्य ही धर्म तथा संस्कृति की रक्षा में समर्थ होकर, मूल्यों को फिर से स्थापित करने में सहायक होकर, मानव-कल्याण में सहायक हो सकता है। मानव का वास्तविक हित उसकी मानवीयता सुरक्षित रखने में ही है।

जब विकासवाद की बेतुकी व्याख्या (नीत्जे द्वारा) की गई कि ईश्वर की मृत्यु हो गई है, धर्माश्रित नैतिकता (सत्य, अहिंसा, सेवा, परोपकार आदि) मर चुकी है। उन्होंने कह डाला कि सत्य, अहिंसा आदि दासों की नैतिकता है तथा युद्ध, हिंसा आदि सत्यधारियों की नैतिकता है। हिटलर भी इसी मत के पोषक थे। परिणाम सामने आया साम्राज्यवादी प्रवृत्ति बढ़ी, उपनिवेशवाद, शोषण युद्ध सामने आए। जिनके मूल में विज्ञान को भी देखा गया जो भारी विनाश का कारण बना। इन विकृतियों के प्रति अकुलाहट तो जन्मी, पर कोई समाधान नहीं ,खोजा जा सका। मानवीयता का हास होता गया।

इसी चिंतन में (मानव हित और आधुनिकता के) इतिहास पर भी विचार हुआ और कई चिंतन भी सामने आए-प्रजातंत्र की अवधारणा, समाजवाद, सर्वोदय, साम्यवाद, अस्तित्ववाद आदि । पर कालांतर में सब अप्रभावी बनकर रह गए और विकृत चिंतन (डार्विन नीत्जे), औद्योगीकरण पूंजीवादी प्रभाव तथा विज्ञान के प्रभाव से जन्मी विकृतियां, मूल्यहीनता और अनैतिकता को ही बढ़ाती रहीं। फिर चारों ओर कुलबुलाहट होने लगी, आखिर मानवीयता का भावी रूप क्या होगा ? और मानव (आम आदमी) की मूलभूत आवश्यकताओं (रोटी, कपडा और मकान) की पूर्ति किस प्रकार संभव हो सकेगी।

विचार, विचार ही रहा और कोई निष्कर्ष या व्यवहारिक समाधान वह नहीं खोज सका और समाज की यथार्थ स्थिति बद् से बद्तर होती चली गई। मध्यवर्ग फैशन में डूबता गया, अव्यवहारिक बनता गया, रोजी-रोटी में उलझता गया, निम्न मध्यवर्ग का जीवन त्रासक हो उठा। निम्न वर्ग शोषण का शिकार बनकर पराधीन और भुखमरी की ओर बढ़ने लगा। विज्ञान तो अभिशाप ही बन गया। नागासाकी, हिरोशिमा के विध्वंस ने मानवीयता को थर्रा दिया। असमर्थता पराभूत मनोवृत्ति, मूक-सहनशक्ति ने नए-नए प्रश्न उभार दिए। डॉ. तारकनाथ बाली के अनुसार, "विज्ञान और प्रौद्योगिकी की इस प्रखर आंतरिक गत्यात्मकता के सामने मानव अपने आपको बेबस महसूस कर रहा है। जनसंचार के माध्यमों ने जहां हमारी जानकारी को विस्तृत किया है, वहीं उन्हीं माध्यमों को उपयोग करने वाली सत्ता, जनसाधारण की मानसिकता को, उसकी जीवन-शैली को, नियंत्रित करते हुए अपनी अनुकूल दिशा की ओर बढ़ा रही है। स्वाधीनता का मुखौटा पहनकर सत्ता मानव को अमानवीकृत कर रही हैं इसीलिए कुछ विचारकों ने इतिहास के अंत की घोषणा कर दी-यानि अब आगे किसी प्रकार की नई क्रांति की कोई संभावना नहीं रही। जो होना था हो चुका । अब इस अंधी सुरंग में चलते रहना ही मनुष्य की नियति है।"

नवीन संस्कृति का जन्म - एक ऐसी नवीन संस्कृति जन्मी जिसे लोकप्रिय संस्कृति का नाम दिया गया, जिसके आते ही लोक संस्कृति, शिक्षित-संस्कृति, मूल्याधारित संस्कृति पीछे छूट गईं। आज इस लोकप्रिय संस्कृति का नग्न रूप, दूरदर्शन-चलचित्र में देखा जा सकता है। इस लोकप्रिय संस्कृति को बल मिला औद्योगिक विकास से जुड़े विज्ञापनों द्वारा । पत्र-पत्रिकार्थ, विज्ञापन, रोमांस व राजनीति में अर्थ केंद्रित हो गए। यहां फिर यह प्रश्न उठा कि साहित्य संगीत, कला (चलचित्र की नहीं) के अभाव में क्या कोई अन्य माध्यम भी है, जो इस विकृति से बचा सके? हमारी तो यही धारणा है कि -साहित्य संगीत और कलाविहीन मनुष्य बिना पूंछ, सींग का पशु है। अतः जब तक काव्य, दर्शन, संस्कृति, कला आदि का महत्त्व फिर से प्रस्थापित नहीं हो जाता, मानव की दुर्गति के आख्यान गाए जाते रहेंगे।

इतिहास पर चोट- इतिहास की ओर देखने की अब दृष्टि ही बदल गई। उत्तर-आधुनिकतावादियों ने इतिहास के अंत की घोषणा कर डाली। इसका क्या अर्थ है- यह जानने के लिए 'इतिहास' के अब तक के विकसित रूप से समझना जरूरी हैं। यद्यपि इतिहास की विचारवादी तथा भौतिकवादी व्याख्याओं के विरोध के बावजूद भी उसकी सत्ता का निषेध नहीं किया गया था लेकिन आज उसके होने से ही इंकार किया जा रहा हैं - इतिहास व्यक्ति और समाज के निरंतर विकास का संस्थागत या शास्त्रगत रूप है, मगर अब जब विकास की संभावना ही खत्म होती जा रही है तो इतिहास की मूल भित्ति विकास का भी निषेध किया जा रहा है। विकास की इस भित्ति को दो रूपों में समझा जा सकता है-एक तो क्रांति की भित्ति है, जब इंसान ने खेत करना सीखा या मशीन से उत्पादन करना सीखा और दूसरा जब कोई नया यांत्रिक उपकरण निर्मित हुआ, जैसे- हवाई जहाज या अणु बम | पहले प्रकार की क्रांति की तो अब कोई संभावना ही नहीं नजर आती और दूसरी तरह के नए बुनियादी आविष्कारों की संभावना भी नहीं के बराबर हैं। अतः ऐसी स्थिति में मानव-समाज के विकास की संभावना क्या हो सकती है? इसके उल्टा तो हो सकता है अर्थात् आगामी स्थितियां विकासोन्मुख होकर

विनाशोन्मुख तो हो ही सकती हैं- ओजोन फट जाए, एड्स भयानक रूप धारण कर ले, कहीं जैविक हथियारों का प्रयोग हो उठे। क्या इसे रोक पाना संभव है? यह प्रश्न भी विचारणीय है।

मानवता का प्रश्न- आज की स्थितियों से यह स्पष्ट हो गया है कि प्राचीनकाल से चली आ रही मानवता की दो श्रेणियां अब भी वर्तमान हैं। ये दो श्रेणियां हैं- देवत्व और दानवत्व । दानवी चिंतन का रूप अमानवीय, शोषक, परपीडक, विध्वंसकारी रहा है, फिर चाहे वह रावण हो, कंस हो, जरासंध हो, यह पशुता, बल, शक्ति, छल, प्रपंच आदि में पनपती रही हैं। देवत्व धारण करने वाली शक्तियां मूल्याधारित रही हैं, नैतिक दृष्टि संपन्न रही है।

जब विज्ञान और मानव एक हो गए तो अनैतिकता पनप उठी, क्योंकि विज्ञान का प्रभाव ही ऐसा था। मानव ही पशु बना, उसे विज्ञान ने पशु बनने की प्रेरणा मात्र दी थी, शेष कर्म को तो मानव ने ही पूरा किया। वह उसका प्रयोग मानव कल्याणार्थ ही करता रहता तो पशुत्व की सीमा में जाने से बच सकता था। दूसरी ओर समाज इतना जर्जर होता चला गया है कि इंसानियत का पनपना ही कठिन-सा प्रतीत होने लगा है। निरक्षरता, दकियानूसी, रूढिवादिता, पिछडापन, भुखमरी, गरीबी, रोगों की बाढ, शोषण, लूटपाट, अराजकता, भ्रष्टाचार ऐसे त्रासक शत्रु बन गए है, जो समाज को छीलते, कुतरते चले जा रहे हैं। फिर आज किसको इसकी चिंता हैं। यदि चिंता है तो इस बात की कि अंतरिक्ष पर विजय किस प्रकार पाई जाए, चरम शक्ति संपन्न शास्त्रास्त्र कैसे बनाए जाएं, अविकसित देशों को पीछे धकेलकर अपनी वर्चस्व कैसे स्थापित किया जाए।

विज्ञान और धर्म- ये दोनो ही अपने दो पहलू रखते हैं- निर्माण और विनाश | यह बात अलग है कि विज्ञान का आधार भौतिक है, वही धर्म का नैतिक भी, पर क्या धर्म का दुरुपयोग नहीं हुआ? उसके नाम पर हिंसा, बर्बादी, अराजकता और युद्ध नहीं हुए, क्या धर्म के नाम पर खूनी संघर्ष नहीं हो रहे हैं? मध्ययुगीन इतिहास से लेकर आज तक की स्थितियों पर यदि नजर डाली जाए तो धर्म का विध्वंस रूप ही सामने आता है।

सत्ता पक्ष भी इसका लाभ उठा रहा है। इंसान को मसला जा रहा हैं। उत्तर आधुनिकता इस बात पर भी विचार करती है कि विज्ञान और धर्म की भूमिका को कल्याणकारी किस प्रकार बनाया जाए।

विज्ञान और धर्म का समन्वय- आज सबसे बडी आवश्यकता है- विज्ञान और धर्म का समन्वय । इसी से मानव-कल्याण संभव है। गांधी ने मशीन और मानव का तालमेल स्थापित करने का प्रयास किया, उन्होने औद्योगीकरण का विरोध अवश्य किया पर विज्ञान का नहीं। विज्ञान को वे उस सीमा तक स्वीकार करते हैं, जहां तक वह मानव-हितकारी हैं। साथ ही गांधी का 'सर्वोदय' औद्योगीकरण और सत्ता के केंद्रीयकरण की प्रतिक्रिया ही थी। पर मार्क्स का साम्यपद और गांधी का सर्वोदय दोनों ही वैचारिक क्रांति बनकर रह गए, उनका व्यवहारिक उपयोग अपेक्षित मात्रा में न हो सका। यह प्रश्न भी उत्तर आधुनिकता के सामने अहम् है।

साहित्य-कला- उत्तर आधुनिकता के क्षेत्र में साहित्य पर भी विपुल विचार हुआ हैं। डॉ. तारकनाथ बाली के अनुसार, " उत्तर आधुनिकता के चलते साहित्य के चलते साहित्य पर विचार करने की एक नई दृष्टि देने की कोशिश की गई, जिसमें पाठ तथा उपपाठों की चर्चा की जाती है। जहां तक नयी समीक्षा का प्रश्न है, जो काव्य को भाविक भाषिक संरचना मानती है, वह लघु काव्य- रूपों के लिए तो कुछ सीमा तक प्रासंगित है, मगर बड़े काव्य-रूपों के विश्लेषण में उसकी सीमाएं स्पष्ट हैं। उपन्यास, महाकाव्य या नाटक में उसकी सार्थकता स्पष्ट रूप से संदिग्ध है।" इसी से यह मूल्यांकन पद्धति मात्र संरचना के आधार पर कोई सार्थक प्रयास नहीं हैं। क्योंकि उसमें समग्र मूल्यांकन का विधान नहीं हैं।

राष्ट्रवाद- विश्व में कई राष्ट्र हैं, जिनका जीवन, जीवनादर्श, जीवन-दर्शन अलग-अलग हैं। उनकी अपनी समस्याएँ भी अलग-अलग हैं। पश्चिम के सर्व-संपन्न विकसित राष्ट्र जो विश्व पर अपना आधिपत्य जमाना चाहते हैं, दूसरी ओर अविकसित राष्ट्र हैं, जो विकास के लिए संघर्षशील हैं, जहां आधुनिकता उत्तर आधुनिकता, मध्यकालीन सोच का विचित्र संगम है। यहाँ उत्तर आधुनिकता मानव को छल रही है, मानव के अस्तित्व को मिटा रही है। अतः आज सबसे बड़ी चुनौती यही बन गई है कि मानव को उसकी सामान्य प्रतिष्ठित भूमि पर खडा किया जाए, कुछ ऐसी अवधारणाओं को पनपाया जाए, जिनसे मानव की वर्तमान सोच में अंतर आ सके और वह अपना चतुर्दिक विकास करने में सक्षम होकर अपनी मानवीयता की पुनर्प्रतिष्ठा कर सके।

भौतिकवाद - उत्तर आधुनिकता का ही यह प्रभाव है कि आज भौतिकता, जीवन, समाज राष्ट्र का सर्वोपरि लक्ष्य बन गई है। अतः इसके विरुद्ध एक क्रांति की आवश्यकता है। आज भौतिकता और नैतिकता के बीच जो खाई बढ़ती जा रही है, विषमता बढ़ती जा रही है, मानवीय, अमानवीय प्रवृत्तियों में जो विरोध पनपता जा रहा है, सत्ता मोह, बर्बरता, लोलुपता के प्रभाव में जो स्थितियाँ पनप रही है, जिनसे मानवीय अस्मिता के लिए खतरा पैदा हो गया है, उनसे मानव को बचाने का सक्रिय प्रयास अपेक्षित है। डॉ. तारकनाथ बाली के अनुसार, "उत्तर आधुनिकता एक चुनौती है समाधान नहीं, जीवन के संतुलन का क्षरण है कोई निदान नहीं तथा मानव की यात्रा में आने वाला एक ऐसा दौर है जो अप्रत्याशित खतरों से आक्रांत है। यह आने वाले कल की आज की चिंता है-एक ऐसा कल जिसका आना निश्चित भी नहीं है। मनुष्य इस अनिश्चय का सामना करने से डर रहा है, इसलिए भावी के बारे में ऊलजलूल कल्पनाएँ कर रहा है, जिनके मूल में उसकी जिजीविषा है।"

स्थिति विचित्र हो रही है, दानवी शक्तियाँ विलक्षण रूप धारण कर रही हैं, आम आदमी मर रहा है, सत्ता भ्रष्ट होती जा रही है, अमानवीय होती जा रही है, न जाने क्या-क्या स्थितियाँ पनप रही हैं, मगर उन पर नियंत्रण करने की शक्ति किसी में नहीं है। डॉ. तारकनाथ बाली के अनुसार, "आज विश्व के अनेक चिंतक, उत्तर आधुनिकतावादी चिंतक भी मानने को बाध्य हो रहे हैं कि महात्मा गांधी को इन खतरों का एहसास था और उन्होंने जीवन का एक विकल्प प्रस्तुत करने का प्रयास किया था। लेकिन आज वैकल्पिक जीवन शैली की बात करना खोखला लगता है, निरर्थक और अप्रासंगिक लगता है। व्यापक हिंसा का आतंकपूर्ण वातावरण बन रहा है, छोटे-छोटे गृहयुद्ध हो रहे हैं और शस्त्रों के बनाने वाली बहुराष्ट्रीय कंपनियों के इशारों पर चलने वाले सत्तालोलुप अधिकारी इस हिंसा को हिंसा से खत्म करते हुए शांति का आह्वान कर रहे हैं।"

चुनौती - आज मानव के सामने एक चुनौती यही है कि नैतिक आदर्शों की रक्षा कैसे की जाए, फिर वे आदर्श चाहे ईसा के हों या गांधी के। दूसरी चुनौती यह है कि आज का इंसान नपुंसक होता जा रहा है, उसकी चेतना मर चुकी है, उसमें न सोचने का माद्दा है, न ही बोलने का सामर्थ्य | तीसरी और सबसे बड़ी चुनौती है - सत्य कहने का साहस न होना। बड़े से बड़े विद्वान, चिंतक, मनीषी, पत्रकार और राजनेता ऐसी भाषा बोलते हैं, जिससे यथार्थ टपकता तो दिखाई देता है, पर वे वास्तविक यथार्थ से कोसों दूर होते हैं। उत्तर आधुनिकता ने इन घिनौनी सच्चाइयों को उघाडने में पहल तो की है पर वह भी इस चुनौती का कोई समाधान नहीं खोज पा रही है और स्थितियाँ अपने में ही उलझती जा रही हैं।

गांधीवाद दर्शन

. गांधीवाद भारतीय राजनीतिक व्यवस्था पर असर डालने वाली सबसे महत्वपूर्ण विचारधारा है। महात्मा गांधी, विनोबा भावे तथा जयप्रकाश नारायण आदि के विचार इसमें शामिल किये जाते है।
. गांधीजी ने 'हिंद-स्वराज' में अपने विचारों का व्यवस्थित प्रस्तुतीकरण किया है, बाकी स्थानों पर उनका लेखन कुछ बिखरा हुआ-सा है। उनके विचारों पर ईसा मसीह, जैन-दर्शन, जॉन रस्किन आदि का पर्याप्त प्रभाव है और इसे उन्होंने खुलकर स्वीकार भी किया है। गांधीवादी विचारधारा की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित है

पश्चिमी विचारधाराओं का विरोध

. गांधीजी पश्चिमी सभ्यता तथा पश्चिमी विचारधाराओं को प्रायः अस्वीकार करते है। उनके समय में सोवियत संघ में समाजवादी प्रणाली चल रही थी किंतु उन्होंने उसे इसलिए खारिज कर दिया कि एक तो वह हिंसा पर आधारित थी और दूसरे तानाशाही के कारण उसने राज्य को इतनी शक्ति प्रदान कर दी थी कि व्यक्ति की स्वतंत्रता खतरे में पड गई थी।
. उन्होंने अमेरिका और पश्चिमी यूरोप में प्रचलित पूंजीवादी व्यवस्था को भी अनुचित बताया क्योंकि वह मनुष्य की आवश्यकताओं को कम करने की बजाय उन्हें ज्यादा-से-ज्यादा बढ़ती है जिससे समाज में अशांति फैलती है और प्रकृति का शोषण होता है। उनका स्पष्ट मानना था कि हमें प्रकृति का उतना ही दोहन करना चाहिए जिससे हमारी न्यूनतम आवश्यकताएं पूरी हो जाएं, उससे अधिक नहीं। उनका प्रसिद्ध कथन है कि 'प्रकृति सभी मनुष्यों की सभी आवश्यकताओं को पूरा कर सकती है पर लालच को नहीं।'
. वे औद्योगिक प्रणाली का भी समर्थन नहीं करते थे क्योंकि भारत जैसे देशों में उससे बेरोजगारी को बढ़ावा मिलता है तथा वह केंद्रीकरण की प्रवृत्ति को बढ़ाती है।
. उन्होंने तकनीक को ज्यादा महत्व दिये जान का भी विरोध किया, हालाँकि अपने अंतिम समय में वे तकनीक के उतने विरोधी नहीं रहें। वे मानने लगे थे कि जो तकनीकें बेरोजगारी को नहीं बढ़ाती है, उन्हें स्वीकार करने में कोई समस्या नहीं है।

राजनीति विचार

. राजनीतिक व्यवस्था के स्तर पर महात्मा गांधी सोवियत संघ की तानाशाही के भी विरोधी थे और जर्मनी व इटली में नाजीवाद व फासीवाद के नाम पर चल रहे अधिनायकवादी या तानाशाहीमूलक शासनतंत्र के भी खिलाफ थे क्योंकि ये सभी व्यवस्थाएँ व्यक्ति की स्वतंत्रता को चोट पहुँचाती है।

. इंग्लैंड और अमेरिका में प्रचलित उदार लोकतंत्र भी उन्हें अस्वीकार था क्योंकि उसमें 51 प्रतिशत लोगों के समर्थन के आधार पर 49 प्रतिशत की आवाज के दबने की संभावना बनी रहती है।

. गांधीजी ऐसा व्यवस्था चाहते थे जिसमें समाज के सबसे कमजोर व्यक्ति की भी चिंता की जाए, उसे सिर्फ इसलिए न छोड़ दिया जाए कि वह बहुमत में नहीं है। उदार-लोकतंत्र के प्रति उनके विरोध की दूसरी वजह यह भी थी कि इसमें सभी दल सिर्फ अपने हितों को महत्व देते हुए सौदेबाजी करते है, इस बात से उन्हें सरोकार नहीं रहता कि पूरे समाज के लिए क्या उचित है? इसलिए उन्होंने ब्रिटिश संसद को व्यंग्य की भाषा में 'मछली बाजार' भी कहा था।

. गांधीजी ऐसी राजनीतिक व्यवस्था चाहते थे जिसमें राज्य की शक्ति कम-से-कम हो। वे जानते थे कि हर व्यक्ति का स्वधर्म अलग होता है और उसे आत्मिक उन्नति के लिए स्वतंत्रता की जरूरत होती है। जब राज्य की शक्तियाँ बढ़ती है तो राज्य ऐसे नियम थोपने का प्रयास करता है जिनसे सभी व्यक्तियों को कुछ यांत्रिक नियमों के अनुसार एक जैसा या समरूप जीवन जीने के लिए बाध्य होना पड़ता है, उन्हें अपने स्वधर्म के उनकी दृष्टि में सबसे बेहतर अवस्था वह होगी जब राज्य या राजनीतिक ढांचे की जरूरत खत्म हो जाए और सभी लोग आपसी समझदारी से ही काम चला लें।

. इस विचारधारा को 'अराजकतावाद' कहा जाता है और इस बिंदु पर महात्मा गांधी और कार्ल मार्क्स परस्पर सहमत है।

. महात्मा गांधी जानते थे कि राज्य का निषेध करना बहुत आसान या व्यावहारिक नहीं है। इसलिए, व्यावहारिक तौर पर उन्होंने ऐसे राज्य की वकालत की जो कम-से-कम शासन करता हो। उनका यह विचार अमेरिकी चिंतक 'हेनरी डेविड थूरो' से प्रभावित था।

. गांधीजी एक ऐसी राजनीतिक संरचना चाहते थे जो अधिक-से-अधिक विकेंद्रीकृत हो। स्थानीय स्वशासन उनकी दृष्टि में इसका सर्वश्रेष्ठ तरीका था। वे चाहते थे कि ग्रामीण पंचायतों को अधिक-से-अधिक शक्तियाँ मिलनी चाहिए तथा ऊपर की शक्ति संरचना नीचे से निर्धारित होनी चाहिए। आगे चलकर, जयप्रकाश नारायण तथा राममनोहर लोहिया ने उनके इसी विचार को विस्तृत रूप प्रदान किया। भारतीय संविधान के नीति-निदेशक तत्वों में भी उनके इस विचार को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया।

आर्थिक विचार

. अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में गांधीजी के विचार अपने समय के अधिकांश विचारकों से अलग थे। ये विचार भारतीय आध्यात्मिक परंपरा और समाजवादी मूल्यों के समन्वय से बने है। उदाहरण के लिए, वे मानते थे कि व्यक्ति को तब तक भोजन करने का अधिकार नहीं मिलता, जब तक वह पर्याप्त श्रम न करे।

. वे औद्योगिक उत्पादन प्रणाली के स्थान पर ग्रामीण स्वावलंबी अर्थव्यवस्था को उचित मानते थे जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपना श्रम करेगा, ग्रामीण समाज कुल उत्पादन में से उसकी जरूरतों के अनुसार संसाधन उसे देगा तथा प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताएँ बहुत कम होगी। गांधीजी ने मार्क्सवादियों की तरह निजी संपति

का विरोध नहीं किया और न ही उतपादन के साधनों पर राज्य के स्वामित्व की वकालत की क्योंकि इन प्रक्रियाओं में न सिर्फ अत्यधिक हिंसा शामिल होती है, बल्कि राज्य की शक्तियाँ भी बहुत अधिक बढ़ जाती है।

. उनका विश्वास हृदय परिवर्तन के सिद्धांत में था और उसी के अनुरूप उन्होंने न्यासिता का सिद्धांत प्रस्तुत किया। इस सिद्धांत के मुताबिक पूंजीपतियों को उनकी संपत्ति से वंचित तो नहीं किया जाएगा, किंतु पूंजीपतियों का अपना दायित्व बनता है कि वे खुद को अपनी संपदा का मालिक नहीं, सिर्फ न्यासी समझें और अपनी जरूरत-भर का उपभोग कर लेने के बाद शेष सारा धन समाज के वंचित वर्गों के कल्याण में लगाएँ।

सामाजिक विचार

- गांधीजी के समाज संबंधी विचार भी भारतीय राजनीति में काफी चर्चित रहे है। वे धर्म को अत्यधिक महत्व देते थे और धर्मनिरपेक्षता के विचार से ही असहमत थे। उनका माननना था कि धर्म तो संपूर्ण नैतिकता का आधार है। यदि हम उससे निरपेक्ष हो जाएंगे तो नैकिता कैसे बचेगी ? इसलिए उन्होंने कहा कि "धर्म-विहीन राजनीति तथा धर्म-विहीन अर्थव्यवस्था मृत देह के समान है जिन्हें जला दिया जाना चाहिए।" वे मानते थे कि भारत के लिए धर्म-निरपेक्षता नहीं, सर्वधर्म समभाव धर्म नहीं, सांप्रदायिकता है।

. गांधीजी वर्णव्यवस्था के समर्थक थे और वे उसे प्राकृतिक मानते थे। उनका मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति का । अपने वर्ग के अनुसार ही कार्य करना चाहिए क्योंकि वर्ण व्यवस्था श्रम विभाजन की एक आदर्श प्रणाली है। डॉ. अम्बेडकर के मन में उनके इस विचार के प्रति जबर्दस्त विरोध था। ध्यातव्य है कि गांधीजी वर्णव्यवस्था के समर्थक होकर भी अस्पृश्यता तथा जातिगत भेद-भाव के विरोधी थे। वे विभिन्न जातियों के सामूहिक भोजों तथा अंतर्जातीय विवाहों का समर्थन करते थे ताकि जाति व्यवस्था हिंदू समाज से खत्म हो जाए।

. गांधीजी परिवार व्यवस्था के समर्थक थे और शिक्षा के क्षेत्र में बुनियादी शिक्षा उनके विचारों का सारतत्व थी।

उनका मानना था कि बच्चों को कोरी सैद्धातिक शिक्षा देने के स्थान पर उनमें उचित मूल्यों तथा दक्षताओं के विकास पर बल दिया जाना चाहिए। शिक्षा राष्ट्रभाषा में ही होनी चाहिए, विदेशी भाषा में नहीं।

दलित विमर्श

दलित आत्मकथा	
. **लेखक**	**आत्मकथा**
. भगवान दास	मैं भंगी हूँ (1981)

. मोहनदास नैमिषराय अपने-अपने पिंजरे (दो भाग में) 1995
. ओमप्रकाश वाल्मीकि जूठन 1997 ई.
. कोशल्या बैसंती दोहरा अभिशाप 1999 ई
. माता प्रसाद झोपडी से राजभवन 2002 ई
. सूरजपाल सिंह चौहान तिरस्कृत 2002, संतप्त 2006 ई.
. श्यौराज सिंह बेवक्त गुजर गया माली 2006 ई.
. रमाशंकर आर्य घुटन 2005 ई.
. तुलसी राम मुर्दहिया 2010 ई.
. डी0 आर0 जाटव मेरा सफर मेरी मंजिल 2000 ई.
. रूप नारायण सोनकर नागफनी 2009 ई.
. सुशीला टाकभौर शिकंजे का दर्द 2011 ई.
. दया पवार अछूत 2011 ई.

. नवेन्द महर्षि	मेरा बचपन मेरा संघर्ष 2012 ई.
. तुलसी राम	मणिकार्णिका 2014 ई. (मुर्दहिया का दूसरा भाग)

- दलित कविता संग्रह

कविता - संग्रह	संपादक कवि
. अछूतों का पैगम्बर 1946 ई.	बिहारी लाल हरित
. सर्वहारा 1970 ई.	मंगलदेव विशारद
. नई चेतना नये राग 1971 ई.	कुवल भारती
. चिन्तन-चिंगारी 1973 ई.	सत्यापाल सितम
. शंबकू ऋषि बारहमासी 1980 ई.	ए. आर. अकेला
. एकलव्य खण्ड काव्य 1981 ई.	माता प्रसाद
. उत्थान के स्वर 1983 ई.	डॉ. कुसुम वियोगी
. अंधा समाज और बहरे लोग 1984 ई.	डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर
. आल्हा रूपम 1985 ई.	मिशन सिंह बौद्ध -
. यातना की आँखे 1986 ई.	दयानंद बटोही
. दर्द की बाँसरी 1987 ई.	रानार्जुन राना
. हीरामन 1987 ई.	डॉ० धर्मवीर
. द्वार पर दस्तक 1988 ई.	डॉ0 पुरूषोत्तम सत्यप्रेमी
. नई फसल 1989 ई.	श्यौराज सिंह बेचैन
. सफदर : एक बयान 1989 ई.	मोहनदास नैमिश्राय
. सवालों के सूरज 1990 ई.	पुरूषोत्तम सत्यप्रेमी
. ख्वाबों की परछाइयाँ 1992 ई.	आर. पी. मेघवाल

. नैतिकता पूछती है 1993 ई.	सोहनलाल सुबुद्ध
. हिन्दी काव्य में दलित धारा 1993 ई.	माता प्रसाद
. प्रयास 1994 ई.	सूरजपाल चौहान
. क्रान्ति शेष है 1995 ई.	लाल चंद्र राही
. सुनो ब्राह्मण 1996 ई.	मलखान सिंह
. जंगल की आग 1996 ई.	नीरा परमार
. गूंगा नहीं था मैं 1997 ई.	जयशंकर कर्दम
. दिग्विजयी रावण 1998 ई.	माता प्रसाद
. चेतना के स्वर 1998 ई.	डॉ० एन० सिंह
. धूप दिखाए 2000 ई.	शिवमंगल सिंह मानव
. समय की शिला पर उकेरी 2002 ई.	आचार्य गुरूप्रसाद
. भूकंप में बच्चे 2003 ई.	ओम सिंह अशफाक
. संसद तो सवर्ण है 2003 ई.	नेवन्दु महर्षि
. चेतना का स्वर 2003 ई.	चतर सिंह 'लुप्त' पारसौली
. अस्मिता का दर्पण 2003 ई.	पुरूषोत्तम सत्यप्रेमी
. कहीं कुछ दरक रहा है 2004 ई.	मूलचंद सोनकर
. तिनका-तिनका आग 2004 ई.	जयप्रकाश कर्दम
. क्यों विश्वास करूँ 2004 ई.	सूरजपाल चौहान
. मेरा गाँव 2004 ई.	सूरजपाल चौहान
. जंग जारी है 2008 ई.	चौहान चैन सिंह परिहार
. कागज एक पेङ है 2010 ई.	मुकेश मानस
.हाशिए के लोग 2010 ई.	डॉ० रामगोपाल भारतीय
. भीडी गलियाँ तंग मकान 2010 ई.	डॉ0 राजेन्द्र बडगूजर
. दरवाजों के बाहर 2010 ई.	जयपाल
. भाटी के पूत 2010 ई.	जसराम हरनोटिया

. अग्निध्वजा 2011 ई.	युवराज सोनटक्के
. चमार की चाय	श्योराज सिंह बेचैन
- दलित उपन्यास साहित्य	
. मानव की परख 1954 ई.	देवी दयाल सेन
. करूणा 1986 ई.	जय प्रकाश कर्दम
. क्या मुझे खरीदोगे 1990 ई.	मोहनदास नैमिशराय
. जस तस भई सबेर 1999 ई.	सत्यप्रकाश
. मुक्ति पर्व 1999 ई.	मोहन दास नैमिशराय
. वीरांगना झलकारी बाई 2003 ई.	मोहनदास नैमिशराय
. आज बाजार बंद है 2004 ई.	मोहनदास नैमिशराय
. सूअरदान 2010 ई.	रूपनारायण सोनकर
. जख्म हमारे 2011 ई.	मोहनदास नैमिशराय
. एक कस्बे के नोट्स 2012 ई.	नीलेश रघुवंशी
दलित नाटक	
. अछूतो का इंसाफ 1943 ई.	नंदलाल जयसवार वियोगी
. अछूत का बेटा 1973 ई.	माता प्रसाद
. हीरे की पहचान 1983 ई.	आर. बी. त्रिशरण
. अपने-अपने पिंजरे 1995 ई.	मोहनदास नैमिशराय
. तिरस्कार 1999 ई.	के. नाथ
. विषधर 1999 ई.	रूपनारायण सोनकर
. छू नहीं सकता 2001 ई.	सूरजपाल चौहान
. धर्म परिवर्तन 2001 ई.	माता प्रसाद

मनोविश्लेषणवाद

'मनोविश्लेषणवाद' को 'मनोवैज्ञानिक कला-साहित्य चिंतन' नाम से भी जाना जाता है। नयी-नयी मनोवैज्ञानिक खोजों तथा उनके आधार पर प्रचलित नए-नए मनोविश्लेषण-सिद्धांतों का प्रभाव भी साहित्य पर पड़े बिना नहीं रह सकता। साहित्य का सीधा संबंध मानव-मन से है। जिन पात्रों व घटनाओं को साहित्य में उठाया जाता है, उनके समस्त व्यवहार आदि में मनोविज्ञान ही झलकता दिखाई देता है। भले ही कलाकार मनोविज्ञान का ज्ञाता न हो, तथापि मानव-मन की नाना स्थितियों की नवीन-नवीन दशाएं उसके चित्रण से उभर ही आती हैं। यह स्थिति समस्त सर्जनात्मक कला में रहती है, यथा-चित्रकला, मूर्तिकला व साहित्य आदि ।

मानव-मन की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं शक्तिशाली प्रवृत्तियां 'काम' और 'अहम' ही मानी जाती हैं। इनके दो रूप होते हैं- सहज स्वाभाविक रूप तथा विकृत रूप । मानव-जीवन के सारे क्रिया-कलाप व संघर्ष इन्हीं से जुड़े रहते हैं। इसी कारण साहित्य में भी ये दो प्रवृतियां सर्वोपरि बनी रहती हैं। इसी आधार पर 'शृंगार' को रसराज माना गया है। इसी आधार पर 'काम' का चित्रण भी अति प्राचीन काल से चला आ रहा है, पर उसमें मनोवैज्ञानिकता का समावेश आधुनिक काल की देन है। डॉ. भागीरथ मिश्र के अनुसार, " उन्होंने (आधुनिक चितंको ने) जहां एक ओर जीवन के विभिन्न संघर्षों, द्वंद्वों और टकराव के विश्लेषण द्वारा अपने सिद्धांतों का निरूपण किया, वहीं साहित्य और कलाओं की सृजन -प्रेरणा-प्रक्रिया और सृजन के स्वरूप में भी मनोवैज्ञानिक नियमों को ढूढ़ने का प्रयत्न किया।"

'मनोविश्लेषणवाद' मानव-मन का विश्लेषण (Psycho-analysis) करने की एक मनोवैज्ञानिक पद्धति है, जिसका जनक 'सिगमंड फ्रायड' से माना जाता है। उसके साथ ही अल्फ्रेड एडलर (alfred adler) तथा कार्ल गुस्ताव जुंग (carl gustav jung) का नाम भी उल्लेखनीय है। वस्तुतः यह मानसिक एवं स्नायपिक रोगियों के उपचार की एक विशिष्ट पद्धति के रूप में विकसित हुआ, जिसका आधार सम्मोहन अवस्था (Hypnotized state) में खोजा गया। यह कहा गया कि इस पद्धति से अंतरमन की उन बातों को भी जाना जा सकता है जिन्हें वह बोध के समय बताने में असमर्थ रहता है। यह भी माना गया कि सम्मोहन के क्षणों में मानसिक रोगी के चेतन मन के माध्यम से अचेतन मन में भी झांका जा सकता है।

प्रमुख मनोविश्लेषणवादी

1. सिगमंड फ्रायड (Sigmund freud) - इनका जन्म सन् 1856 ई. में आस्ट्रिया के मुराविया नगर के एक यहूदी परिवार में हुआ था, पर इनका पालन-पोषण व शिक्षा-दीक्षा वियना में हुई। सन् 1881 ई. इन्होनें चिकित्सा शास्त्र में एम. डी. की डिग्री प्राप्त की और विभिन्न चिकित्सा- क्षेत्रों में कार्य करते हुए सन् 1902 में न्यूरोलॉजी के असाधारण के प्रोफेसर (Professor Extraordinary) बन गए । सन् 1939 में द्वितीय महायुद्ध छिड जाने के लगभग तीन महीने बाद इनका देहान्त हो गया। इनका कार्यक्षेत्र मुख्य रूप से मनोविश्लेषण (Psycho-analysis) था। फ्रायड के गंथों से चिकित्सकों को मनोविश्लेषण का सुदृढ़ आधार प्राप्त हो गया। इन्होंने कई ग्रंथों की रचना की, पर मनोविश्लेषण से संबंधित उनकी पुस्तकें हैं- 'इस्टडीन इवर हिस्टरी' ,जिसके अंग्रेजी अनुवाद का नाम है- 'Studies in Hysteria' ;

'डाई ट्राउमाड उदंग', जिसके अंग्रेजी अनुवाद का नाम है- 'The Interpretation of dream ' इनकी मनोविश्लेषणवाद पर सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पुस्तक है- 'एन आउटलाइन आफ सायको- अनैलिसिस' (An outline of Psycho-analysis)

2. कार्ल गुस्ताव जुंग (Carl gustav jung) - इनका जन्म 26 जुलाई, 1857 को स्विट्जरलैंड के केसविल नगर में हुआ। इनके पिता भाषिपिद् एवं गोपालक थे। इन्होंने अपनी माता, पिता और शिक्षकों के व्यवहार का सूक्ष्मता से अध्ययन किया। कुछ समय तक दर्शन का अध्ययन करने के बाद इनका झुकाव चिकित्सा शास्त्र और मनोरोग- शास्त्र की ओर हुआ। सन् 1902 में इन्होंने ज्यूरिच विश्वविद्यालय से एम. डी. की डिग्री प्राप्त की और आगे चलकर आठ साल (1933-1941) तक वही प्रोफेसर रहे। ये फ्रायड के समकालीन होने के साथ-साथ उनके सहयोगी भी थे। सन् 1907 से 1912 तक इन्होंने फ्रायड के साथ काम किया, पर बाद में उनके 'काम-सिद्धांत' को लेकर इनका फ्रायड से मतभेद हो गया। इनका देहावसान ज्यूरीच सरोवर के समीप सरलता से जीवन व्यतीत करते हुए 6 जून, 1961 को हुआ। ये मौलिक चिंतक थे और इन्हें विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान (Anlytic Psycho-analysis) का विकासकर्ता माना जाता है। इन्होंने दर्शन, चिकित्सा शास्त्र और मनोरोग-शास्त्र का सघन अध्ययन किया। इनकी मान्यातएं कुछ क्षेत्रों में फ्रायड से भिन्न थीं।

3. अल्फ्रेड एडलर (alfred adler) - फ्रायड के बाद एडलर (1870 -1937) का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन्हें वैयक्तिक मनोविज्ञान का प्रवर्तक माना जाता है। इनका विचार है कि जीवन का एक निश्चित लक्ष्य होता है और प्रत्येक मनुष्य में अपने को स्थापित करने के अभाव में उभर आती है, जिससे हीनता-ग्रंथि (Inferiority complex) का निर्माण होता है। इनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं- 1. The Practice and Theory of Individual psychology, 2. problems of neurosis or 3. Social Interes

सिगमंड फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद की प्रमुख विशेषताएं

फ्रायड ने इस सिद्धांत में जीव-विज्ञान और मनोविज्ञान-दोनों का आधार लिया है। फ्रायड के मनोविश्लेषण की प्रमुख विशेषताएं हैं

अचेतन की अवधारणा - फ्रायड की मान्यता है कि मानव-मन जल में तैरते हुए एक हिमखंड) के समान है, जिसका कुछ ही भाग दीखता है, शेष सब जल में होता है। ऐसी ही स्थिति मानव-मन की भी होती है। उसके तीन भाग होते हैं- 1. चेतन (Iceberg) 2. अवचेतन अथवा अर्द्धचेतन (Preconscious) तथा 3. अचेतन (Unconscious), पर अचेतन और अर्द्धचेतन, चेतन के ही रूप हैं। चेतन मन से ही व्यक्ति देखता और अनुभव करता है। अचेतन मन दमित इच्छाओं, आकांक्षाओं और सुप्त वासनाओं का एक शक्तिशाली पुंज है। यह भाग हमारे लिए) अज्ञात, अभेद्य एवं रहस्यमय रहता है। इन दोनों के बीच अर्द्धचेतन या अवचेतन वह खंड है, जिस पर अवचेतन की । परछाई पडती रहती है। इसको स्पष्ट करते हुए कहा जा सकता है कि निद्रा की स्थिति में जब चेतन मन निष्क्रिय हो जाता है, तब अचेतन मन की इच्छाएं और वासनाए अवचेतन पर स्वप्न के रूप में प्रतिबिंबित होती हैं। यह भी माना जाता है कि हृदय के अधिकांश सूक्ष्म अंग अचेतन मन पर ही घनीभूत होते हैं, अर्थात् व्यक्ति की अधिकांश भावनाएं एवं मनोविकार अचेतन मन में ही निवास करते

है। यही जीवन के सभी अनुभवों, अभुक्त वासनाओं को समेटे रखता है। फलतः अचेतन मन को ही मनुष्य के सभी क्रिया-कलापों को प्रकट करने वाला केंद्र माना जाता है।
फ्रायड की मान्यता है कि चेतन-अचेतन में द्वंद्व की स्थिति बनी रहती है, क्योंकि चेतन मन विभिन्न मर्यादाओं, नैतिक वर्जनाओं व संस्कारों से युक्त होता है। जब अचेतन की वासनाएं, लालसाएं अथवा आकांक्षाएं उभरकर चेतन के धरातल पर आने लगती हैं तब चतन में वर्तमान संस्कार उनके विरोधी बनकर खड़े हो जाते हैं, उनके दमन के लिए प्रतिश्रुत हो उठते हैं। यह दमन की स्थिति मनोग्रंथियों को जन्म देती हैं, जो मानसिक विकृतियों की जनक होती हैं।
परंतु कभी-कभी अचेतन की इच्छाएं और वासनाएं चेतन मन के द्वारा परिष्कृत एवं उदात्त रूप में अभिव्यक्त की जाती हैं- यही अभिव्यक्ति कला और साहित्य का रूप धारण कर लेते हैं।

मानव-मन के प्रमुख तत्त्व - फ्रायड ने मानव-मन में तीन तत्त्वों को स्वीकार किया है

1. इदम् या इद (Id)- यह अचेतन मन का साथी है। यह एक ऐसी शक्ति है, जिसका उपयोग मानव की प्रतिवर्ती क्रियाओं (Reflex Actions) एवं विभ्रमों (Hallucinations) के परितोष में किया जा सकता है। यह सुख सिद्धांत (Pleasure principle) भी माना गया, क्योंकि यह तनाव-मुक्ति में भी सहायक बनता है।
2. अहम् (Ego)- यह चेतन और अचेतन मन से संबंधित है। यह वृत्ति बौद्धिक विकास और पारिवारिक संस्कारों के माध्यम से पनपती है। यह इदम् की सहज वृत्तियों को व्यवस्थित रखकर, उनके परितोष का मार्ग प्रशस्त करती है। 'चेतन' भी इसी का गुण माना जाता है। फ्रायड ने इसे वास्तविक सिद्धान्त (Reality Principle) का नाम दिया है।
3. अत्यहम् (Super Ego)- इसका निर्माण दो उप तंत्रों (Sud systems) के अधीन होता है- अहं आदर्श (Ego Ideal) तथा विवेक अथवा अंतःकरण (Conscience) उसे आदर्शवादी या पूर्णतावादी सिद्धांत (Perfect Principle) स्वीकार किया जाता है, क्योंकि यह आदर्श, नैतिकता और मूल्यों का समर्थक माना जाता है।

'इद' के प्रतिरूप (अभुक्त वासनाएं व दमित इच्छाएं) जब बाहर फूटने का मार्ग खोजते हैं तो मन की तीन स्थितियां निर्मित होती हैं- वस्तुनिष्ठ (Objective), स्नायविक (Neurolic) और नैतिक (Moral) बाहरी भय से वस्तुनिष्ठ चिंताएं, अहम् के उल्लंघन के भय से स्नायविक चिंताएं तथा अत्यहम् के अतिक्रमण के भय से नैतिक चिंताएं उभर आती हैं। ये सारी चिंताएं 'अहम्' को ही प्रभावित करती हैं, जिससे 'अहम्' सक्रिय होकर दमन का सहारा लेता है। एक ओ वासनाएं फूटती रहती हैं, दूसरी ओर उनका दमन भी होता रहता है। अत: 'भय' को ही फ्रायड दमन का मूल कारण मानता है। भय के तीन रूप माने गए हैं- बाह्य भय, सामाजिक भय एवं नैतिक भय । दमित एवं अतृप्त वासनाएं निरंतर अभिव्यक्ति मार्ग खोजती रहती है। कभी ये वासनाएं 'अहम्' और 'अत्यहम्' (जो इन्हे रोकने का प्रयास करता है) का अतिक्रमण कर अत्यंत विरूप, असामाजिक एवं भद्दे ढंग में अभिव्यक्ति पाने में सफल होकर दुराचार एवं पापकर्मों को जन्म देती हैं और कभी मनुष्य की मानसिक विक्षिप्तता का कारण बनती हैं। पर जब ये ही उदात्त रूप धारण कर अभिव्यक्त होती हैं तभी साहित्य और कला का जन्म होता है।

लिबिडो अथवा काम -वृत्ति - फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद का मूलाधार 'काम' ही है, क्योंकि वह मनुष्य की सभी क्रियाओं के मूल में समाया हैं वही धर्म, अर्थ, साहित्य तथा संस्कृति की मूल प्रेरणा है। मार्क्स काम-वृत्ति को लिबिडो (Libido) संज्ञा प्रदान करता है। फ्रायड यह भी मानता है कि काम- वृत्ति का 'अहम्' और 'अत्यहम्' द्वारा दमन भी होता रहता है, अतः कला और साहित्य-सृजन एक प्रकार से काम-प्रतीकों का पुनर्निमाण ही है।

फ्रायड की मान्यता है कि अचेतन में घनीभूत अतृप्त वासनाएं, कुंठाएं अपने को व्यक्त करने का निरंतर प्रयास करती रहती हैं, पर व्यक्ति के 'अहम्' (सामाजिक प्रतिरोध व मूल्य-मान्यताओं के बंधन) के प्रभाव के कारण सहज रूप में प्रकट नही हो पातीं। ये दमित कामेच्छाएं छद्म रूप में कपटपूर्वक प्रकट होने लगती है। अतृप्त वासनाओं के ये छद्म रूप ही स्वप्न और जाग्रत जीवन की भूलें बन जाते हैं। वासनाएं जब अधिक घनीभूत एवं प्रबल हो उठती हैं तो नाना प्रकार की विकृतियां जन्म लेती है; हिस्टीरिया, खंडित व्यक्तित्व, अपराध-भावना आदि इसी के प्रतिफल हैं। इन्हीं से स्नायविक रोगों का जन्म होता है। फ्रायड ने स्पष्ट किया है कि मनुष्य के प्रत्येक क्रिया-कलाप के मूल में अचेतन मन में समायी अतृप्त वासनाएं ही होती हैं, जिनके मूल में 'काम' ही सक्रिय होता है। अपने निबंध ' The Relation of the poet to day dream ' में फ्रायड ने स्पष्ट किया है कि कला अथवा साहित्य दमित वासनाओं, कुंठाओं अथवा यौन-वर्जनाओं का उदात्तीकरण रूप ही है। वह (कवि) अपनी यौन-वर्जनाओं व भोग-लिप्सिाओं को समाज के भय के कारण (अथवा अहम् और अत्यहम् के भय के कारण) परिष्कृत करके अन्याय प्रतीकों, रूपकों, उपमानों और विचित्र कल्पनाओं में अभिव्यक्त करता है। इस प्रकार फ्रायड समस्त रचनात्मक साहित्य को दमित वासनाओं का उदात्त रूप ही मानता है।

विभिन्न वृत्तियां- फ्रायड की मान्यता है कि प्रत्येक नैसर्गिक वृत्ति (Instinct) का एक उद्गम (Source), एक लक्ष्य (Aim), लक्ष्य प्राप्ति का एक साधन (Object) और एक प्रेरक करने वाला संवेग (Impetus) होता है। उसके अनुसार शारीरिक उत्तेजना (Bodily Excitation) ही वृत्ति का उद्गम स्त्रोत (source) है। शारीरिक उत्तेजना से मुक्ति पाना ही वृत्ति का लक्ष्य होता है और लक्ष्य की प्राप्ति जिस माध्यम से होगी वही साधन कहलाता है। वृत्ति को उत्तेजित करने वाली शक्ति ही उसका संवेग अथवा प्रेरक बल कहलाती है। अतः यह कहा जा सकता है कि मानव की प्रत्येक सहज वृत्ति (Instinct) शारीरिक उत्तेजना का ही परिणाम है, अर्थात् वह उसी के कारण जाग्रत होती है। उद्गम के पश्चात् वृत्ति उद्देश्य-पूर्ति के लिए निश्चित माध्यम के सहारे प्रयत्नशील होती है, पर उसकी पूर्ति हर समय संभव नहीं हो सकती, क्योंकि अहम् एवं अत्यहम् उसमें बाधा उपस्थित करते हैं।

फ्रायड अपनी बात को एक उदाहरण से स्पष्ट करता है- मान लो किसी युवक के मन में किसी अत्यधिक रूपसी तरुणी को देखकर उत्तेजना पनप उठती है, यह उस युवती को प्राप्त करने की काम-वृत्ति का उद्गम स्रोत कहलाएगी। जब उसके मन में प्राप्ति की उद्दाम लालसा पनपेगी तो उससे उत्पन्न मानसिक उत्तेजना से मुक्ति पाने का संकल्प ही उस काम-वृत्ति का उद्देश्य माना जायेगा। काम-वृत्ति अपेन उद्देश्य की पूर्ति के साधन भी खोजेगी, यही की स्थिति होगी। इस सारे व्यापार (Process) में काम-वृत्ति का इम्पेटस (Impetus) अथवा प्रोत्तेजक बल होगा। पर उस काम-वृत्ति तोष हो सके, यह आवश्यक तो नहीं है, क्योंकि वर्जनाएं (आदर्श, मूल्य, सदाचार व मान्यताएं) अनेक प्रकार की बाधाएं उपस्थित करेंगी। फ्रायड की धारणा है

कि अहम् और अत्यहम् प्रोत्तेजक बल का प्रयोग वृत्यात्मक उद्देश्य-पूर्ति में भी लग सकता है और उद्देश्य-पूर्ति के मार्ग में अवरोध भी खडा कर सकता है। फ्रायड ने मनोविश्लेषण को एक गत्यात्मक विधि के रूप में प्रस्तुत किया है, जिसमें कि मनुष्य का मानसिक जीवन प्रेरक एवं नियंत्रक शक्तियों की पारस्परिक अन्योन्य क्रिया (Interplay) के रूप से गतिमान रहता है। फ्रायड कहता है- " Psycho-analysis is a dynamic conception which reduces mental life to the interplay of reciprocally urging and checking forces "

अल्फ्रेड एडलर के मनोविश्लेषणवाद की प्रमुख विशेषताएं

जहां फ्रायड मानव विकास में जैविक शक्तियों को महत्त्व देता है, वही एडलर सामाजिक शक्तियों को व्यक्ति के विकास में महत्त्वपूर्ण मानता है। उसके विषय में दुआ का मत है
"Adler like freud, recognised the importance of the early formative years of childhood, but adler's focus was on social and not "

चेतन मन की महत्ता और श्रेष्ठत्व- एडलर चेतना मन को महत्त्वपूर्ण मानता है, जबकि फ्रायड अचेतन को। जहां फ्रायड मानवीय क्रियाओं के मूल में लिबिडो अथवा काम-वृत्ति को ही मानता है, वहीं एडलर श्रेष्ठत्व (superiority) को महत्त्व देता है। मानव अपने जीवन का चरम उद्देश्य श्रेष्टत्व-प्राप्ति को ही मानता है, अतः उसकी समस्त क्रियाएं इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु ही होती है। एडलर के अनुसार यह श्रेष्ठत्व भावना एक ऐसी भावना है जिसके पीछे व्यक्ति के चहुंमुखी समग्र विकास की भावना, नाना उपलब्धियों की प्राप्ति की बलवती लालसा और अहम् की तुष्टि या अहम्-स्थापन का भाव भी रहता है।

क्षतिपूर्ति सिद्धांत- एडलर के अनुसार मानव का विकास, मानव जाति की उन्नति का आधार भी श्रेष्ठत्व की भावना ही है। संपूर्ण मानवीय इतिहास, युद्धादि इसी की कहानी सुनाते है । यही बालक के शारीरिक विकास और मानव के समस्त विकास (सामाजिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक आदि) का मूलाधार है।
व्यक्तित्व विकास के मूल में एडलर हीनता-भाव को ही प्रमुख मानता हैं। इस हीनता- भाव से मानव मुक्ति पाना चाहता है और इसके लिए वह जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में श्रेष्ठत्व का का प्रदर्शन करता है। एडलर इसको 'क्षतिपूर्ति सिद्धांत' कहता है।
अर्थात्-हीनत्व -भाव का विकास तब और हो जाता है जब कोई व्यक्ति स्वयं को दूसरों की अपेक्षा अपूर्ण अनुभव करता है। उसके मन में मूलतः श्रेष्ठत्व-प्राप्ति की प्रतिस्पर्धा अथवा आग्रह घर कर लेता है, जो कि व्यक्ति को हीनता-भाव के साथ क्षतिपूर्ति के लिए, अन्वेषण के लिए प्रोत्साहित करता है।

जीवन-पद्धति- हीन भावना से मुक्ति पाने हेतु ही व्यक्ति श्रेष्ठत्व प्राप्त करना चाहता है या उस भावना का दमन करता है। इस प्रत्यन्न में मानव-भावना नाना प्रकार की जीवन पद्धतियों (Styles of Life) में होती

है। यह भी माना जा सकता है कि व्यक्ति अपने जीवन में जिन जीवन पद्धतियों को चुनता है, उनके मूल में श्रेष्ठत्व प्राप्ति की लालसा की होती है।

कार्ल गुस्ताव जुंग के मनोविश्लेषणवाद की प्रमुख विशेषताएं

जुंग की मान्यताएं फ्रायड और एडलर से काफी कुछ भिन्न थी। जुंग ने फ्रायड के समान ही अचेतन का महत्त्व स्वीकार किया, पर उसे दो स्तरों पर रखा -वैयक्तिक अचेतन तथा जातीय या सामुदायिक अचेतन। जहां फ्रायड अचेतन को दमित इच्छाओं और वासनाओं का रहस्यमय भंडार मानता है, वहीं जुंग उसे 'वैयक्तिक' अचेतन का स्तर है। यह एक प्रकार से ऐतिहासिक एवं परंपरागत संस्कार-भूमि है। जुंग के अनुसार सामूहिक अचेतन में 'एनिमस' और 'एनिमा' विद्यमान रहते हैं, जिनमें से पहला नारी-सुलभ गुणों का समूह है और दूसरा पुरुष-सुलभ गुणों का।

जुग मनोविश्लेषण मनोविज्ञान (Anlytic Psychology) के प्रवक्ता माने जाते हैं। फलतः उन्होंने 'जीवन-शक्ति' को ही मानवीय जीवन की प्रेरक शक्ति के रूप में स्वीकार किया है। यही वह शक्ति है जो विकास और समस्त क्रियाओं की प्रेरणा है।

व्यक्तित्व- जुंग व्यक्तित्व की दो कोटियां मानता है- बहिर्मुखी (Extrovert) और अंतर्मुखी (Introvert)। इनमें से प्रत्येक की चार मानसिक शक्तियां भी होती है- 1. विचार (Thinking), 2. भाव (Feeling), 3. संवेदन (Sensation) और 4. सहज ज्ञान अथवा अंतर्दृष्टि, सत्य या वास्तविकता की वह दृष्टि या अनुभूति है जिसकी जानकारी चेतन मन को नहीं होती।

जुंग द्वारा किया गया व्यक्तित्व का यह विभाजन पर्याप्त महत्त्वपूर्ण माना जाता है। बहिर्मुखी व्यक्तित्व संपन्न व्यक्ति की ऊर्जा बाहरी कार्यों में लगती है। समाजोन्मुख दृष्टि ऐसे ही व्यक्तियों में पायी जाती है। ऐसे व्यक्तित्व उदार, व्यवहारकुशल, आत्मविश्वासी, समाजोत्थान के प्रति सजग और राष्ट्रभक्त होते है। अंतर्मुखी व्यक्तित्व वाले व्यक्ति आत्मकेंद्रित होते हैं, उनकी ऊर्जा 'स्वहित साधन' में लगी रहती है। अतः उनमें भावुकता, चिंतनशीलता, कल्पनाशीलता जैसी वृत्तियां पाई जाती है। जुंग यह भी मानता है कि यह दोनों प्रवृत्तियां थोड़ी-बहुत मात्रा में सभी व्यक्तियों में पायी जाती हैं।

जुंग ने मन के लिए 'साइकि' (Psyche) शब्द का प्रयोग किया है। सत्यदेव मिश्र के अनुसार उन्होंने मन के तीन स्तर माने हैं- 1. चेतन (Conscious), 2. व्यक्तिगत अचेतन (Individual Conscious) और 3. सामूहिक अथवा संस्कारगत अचेतन (Collective Conscious)| चेतन मन के केंद्रस्थनल में अहम् (Ego) बसता है। यह स्तर व्यक्ति की स्व-संबंधी धारणाओं, स्मृतियों और अनुभव आदि से संबंधित रहता है।

उनकी धारणा है कि अचेतन के दो रूपों में से व्यक्तिगत अचेतन के स्तर पर व्यक्ति- विशेष की इच्छाएं, संवेग, धुंधली स्मृतियां तथा अन्याय के अनुभव जमा रहते हैं, जो या तो दमित होते हैं या पूर्व-विस्मृत । जुंग की यह भी धारणा है कि व्यक्तिगत अचेतन से मनुष्य बहुत-सी घटनाओं को मन से स्मृति के सहारे प्रतिष्ठित कर सकता है।

साहित्य व मनोविज्ञान - जहां फ्रायड काव्य को स्वप्न के समतुल्य अचेतन का प्रकाशन मानता है, वहीं जुंग काव्य को हृदय की गहराई से संपन्न चेतन-क्रिया मानता है, मन का व्यापार नही; क्योंकि काव्य उद्देश्यमूलक

है और उसका रूप-विधान बडी सजगता के साथ किया जाता है। इसके अतिरिक्त जुंग कविता के मनोवैज्ञानिक अध्ययन को कवि के मनोवैज्ञानिक अध्ययन से भिन्न वस्तु मानता है। वह मनोवैज्ञानिक साहित्य की सृजन-प्रक्रिया को दो भिन्न प्रकारों के रूप मानता है। जहां मनोवैज्ञानिक साहित्य की सामग्री मानवानुभूति के विस्तृत क्षेत्र से ली जाती है और वह जीवन-धरातल पर स्थापित रहती है, वहीं कल्पनात्मक साहित्य विचित्र, अस्वाभाविक, विस्मय उत्पन्न करने वाली कुतूहपूर्ण सामग्री को प्रस्तुत करता है, जिसमें हमारी अनुभूति स्वप्निल और रहस्यमय होती है।

जुंग यह भी मानता है कि मनोविज्ञान, कला की मूल प्रकृति का अध्ययन नही कर सकता, उसके द्वारा उसके रूपविधान की विवेचना की जा सकती है। साहित्य का अध्ययन सौंदर्यात्मक या कलात्मक दृष्टिकोण से ही संभव हो सकता है। जुंग ने आत्मा के अंतर्गत एक 'स्वायत्त ग्रंथि' की चर्चा की है। इसमें वह शक्ति होती है जो कलाकार को अनुशासित और निर्देशित करती रहती है। वास्तव में कला सौंदर्य है और उसी की रचना में उसका उद्देश्य निहित है। कला से अर्थ का संबंध जुंग ने स्वीकार नहीं किया। कलाकृति में प्रयुक्त बिंबों, प्रतीकों और अवधारणाओं से हम उसका अर्थ जानने का प्रयत्न करते हैं, और यहीं पर मनोविज्ञान हमारी सहायता कर सकता है।

लोहिया दर्शन

डॉ. राममनोहर लोहिया विश्व की उन विभूतियों में से एक थे, जिन्होंने अपना समग्र जीवन मानव सेवा में लगा दिया। भारत में समाजता विचारधारा के एक सशक्त प्रचारक होने के साथ-साथ वे एक महान राजनीतिक यौद्धा, देशभक्त, स्वंतत्र चिन्तक तथा एक निडर नेता भी थे। उन्होंने न केवल भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया वरन् नेपाल और गोवा के स्वतंत्रता संग्राम में भी रुचि दिखाई जो, उनकी मानव मात्र की स्वतंत्रता में आस्था का परिचायक है। वे अपने जीवन काल में 18 बार जेल गये तथा सामाजिक न्याय के लिए सदैव प्रयत्नशील रहे। डॉ. लोहिया जी के जीवन पर निम्न चीजों से प्रभाव पडा -

. परिवारिक प्रभाव : राममनोहर लोहिया के पिता श्री हीरालाल स्वतंत्रता संग्राम से सम्बद्ध थे। यह उनके पिता का ही प्रभाव था कि लोहिया के दिल में किशोरावस्था से ही स्वतंत्रता के लिए ललक उत्पन्न हो गई। - बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय का प्रभाव : इस विद्यालय के सांस्कृतिक वातावरण से लोहिया अत्याधिक प्रभावित हुये। यहां उनका विकास प्रतिभाशाली विद्वान और कुशल वक्ता के रूप में हुआ एवं उनके नेतृत्व के गुण भी विकसित हुये। डॉ. लोहिया को पक्का राष्ट्रवादी तथा राजनेता बनाने में भी इस विश्वविद्यालय का योगदान रहा।

. मार्क्स और एन्जिल का प्रभाव : डॉ. राममनोहर लोहिया पर कार्ल मार्क्स और फ्रेडिक एन्जिल के विचारों का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। बर्लिन में उन्होंने जर्मन भाषा में कार्ल मार्क्स का साहित्य पढ़ा। वे आजीवन मार्क्स से प्रभावित रहे। उन्होंने मार्क्सवाद को भारतीय परिस्थितियों और संस्कृति के अनुरूप ग्रहण करने का प्रयास किया।

. गांधी जी का प्रभाव : गांधी जी की अहिंसा, सत्याग्रह जैसी नीतियों से लोहिया अत्यधिक प्रभावित थे। भाषा, धर्म तथा जाति संबंधी प्रश्नों पर भी दोनों के विचारो में समानता थी। गांधी जी के प्रति अपार श्रद्धा का भाव रखने तथा अनेक मुद्दों पर विचारों की समानता होने के बावजूद लोहिया ने गांधी को पूर्ण नहीं माना। उन्होंने यह विचार व्यक्त किया है गांधी और मार्क्स की सबसे बडी कमी यह है कि यह समस्या के एक पक्ष को

मानता है और दूसरा समस्या के दूसरे पक्ष को मानता है, तथा अपने दृष्टिकोण के अनुसार सुझाव प्रस्तुत करते हैं। लोहिया ने मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म नामक पुस्तक में मार्क्स और गांधी दोनों के सिद्धांतों में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया जिससे दोनों विचारकों के सिद्धांतों को सही दिशा प्रदान की जा सके।

लोहिया की प्रमुख रचनायें -

1. रेस्पेक्ट्स ऑफ सोशलिस्ट पॉलिसी
2. गिल्टीमैन ऑफ इंडियन पार्टीशन
3. मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म
4. मिनिस्ट्री ऑफ स्टाफर्ड क्रिप्स
5. इंडिया, चायना एण्ड नर्दन फ्रंटियर्स
6. दि कास्ट सिस्टम
7. नया समाज नया मन
8. सात क्रांतियां
9. समलक्ष्य समबोध
10. धर्म पर एक दृष्टि

डॉ. राममनोहर लोहिया और समाजवाद

इनकी दृष्टि में भारत को सुधारने और उसे प्रगति की राह पर लाने का एकमात्र रास्ता समाजवाद था। उनके समाजवाद संबंधी विचारों का उल्लेख उनकी पुस्तकों भारत में समाजवाद, समाजवाद की राजनीति, समाजवाद की अर्थनीति, समाजवाद के आर्थिक आधार, समाजवादी सम्मेलन हुआ जिसकी अध्यक्षता डॉ. राममनोहर लोहिया ने की। 1955 में उनकी अध्यक्षता में समाजवादी पार्टी का गठन हुआ। अपनी सक्रिय राजनीति के सम्पूर्ण काल में वे समाजवाद की विचारधारा को सुदृढ़ आधार प्रदान करने हेतु प्रत्यनशील रहे।

लोहिया के समाजवाद की विशेषताएँ -

डॉ. लोहिया अपने समाजवादी चिन्तन में मॉर्क्स और गांधी दोनों से प्रभावित दिखाई देते हैं। उनके समाजवाद चिंतन की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं -

- डॉ. लोहिया का समाजवादी दर्शन उस व्यक्ति पर आधारित है जो सामाजिक पद-सोपान क्रम में सबसे नीचे आता है। जाति, धर्म, शास्त्र, व्यवस्था ने जिसे चारों ओर से जकड रखा है।
- डॉ. लोहिया के समाजवाद का उद्देश्य वर्गहीन समाज की स्थापना करना है जिसमें शासन व्यवस्था विकेन्द्रीकृत हो।

- राममनोहर लोहिया समाजवाद के माध्यम से ने केवल वर्गों की समाप्ति चाहते थे बल्कि उनकी समाजवादी धारणा में जाति उन्मूलन भी एक आवश्यक तत्व था क्योंकि उनके अनुसार जहां जाति प्रथा के कारण शूद्रों को ठोकर मारने की स्थिति हो, वहां समाजवाद की कल्पना नहीं की जा सकती है।
- अपनी विचारधारा में डॉ. लोहिया ने वर्ग की अवधारणा को स्थान देते हुए वर्ग उत्पत्ति का कारण मात्र आर्थिक ही नहीं माना बल्कि सामाजिक भी माना है। लोहिया इस संदर्भ में मार्क्स से प्रभावित होते हुए भी उनसे भिन्न हैं क्योंकि मार्क्स वर्ग उत्पत्ति का आधार मात्रा आर्थिक तत्व को ही मानते हैं। वर्ग की धारणा का भारत के संदर्भ में विश्लेषण करते हुए डॉ. लोहिया मानते हैं कि भारत में वर्ग मुख्य रूप से तीन विशेषाधिकारों के कारण उत्पन्न हुए हैं - 1. जाति, 2. सम्पत्ति, 3. भाषा।
- डॉ. लोहिया ने समाजवादी समाज की स्थापना के लिए हिंसात्मक क्रांति का विरोध किया, उनके अनुसार हिंसात्मक क्रांति अनुचित होने के साथ-साथ असंभव है। लोहिया ने मार्क्स के क्रांति संबंधी विचारों का सविनय अवज्ञा के साथ समन्वय किया है। उन्होंने हिंसात्मक क्रांति के स्थान पर सविनय अवज्ञा का पक्ष लिया। उनके अनुसार सविनय अवज्ञा के रूप में अहिंसात्मक क्रांति जनता में शक्ति का संचार करेगी तथा इसके द्वारा जनता का नैतिक उत्थान भी होगां

लोहिया के आर्थिक विचार

लोहिया का आर्थिक दृष्टिकोण उनकी पुस्तक सोशलिस्ट इकोनॉमी में दिया गया है। लोहिया के अनुसार समाजवादी अर्थव्यवस्था का अर्थ है कि उत्पादन के साधन राष्ट्र की सम्पत्ति होंगे। वे पूंजी को कुछ लोगों तक सीमित रखने के विरोधी थे। वे उनका समाजीकरण चाहते थे जिससे अधिक से अधिक लोगों का कल्याण हो सके। लोहिया का मत था कि जहां तक संभव हो लघु ईकाईयों और छोटे यंत्रों का उपयोग करना चाहिए। लघु स्तर पर उत्पादन का अर्थ या आर्थिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण जिससे अधिक लोगों को अधिक से अधिक रोजगार के अवसर प्राप्त हो।

- लोहिया ने बड़े उद्योगों में बिजली, लोहा और इस्पात आदि को सम्मिलित किया। वे इन उद्योगों में बडी मशीनों के इस्तेमाल के पक्षधर थे।

- इनका निजी क्षेत्र में विश्वास नहीं था क्योंकि उनके अनुसार निजी क्षेत्र द्वारा शोषण को बढ़ावा मिलता है।

- लोहिया ने आय विषमता कम करने पर बल दिया क्योंकि आय में अत्यधिक अन्तर समाजवाद की सम्भावना को क्षीण बना देता है।

- लोहिया ग्रामीण अर्थव्यवस्था के सुदृढ़ीकरण के पक्षधर थे। वे देश की उन्नति के लिये कृषि के उत्थान को आवश्यक मानते थे। कृषि पर आधारित अर्थव्यवस्था ग्राम्य जीवन के लिए आवश्यक है। भारत के 80 प्रतिशत लोग कृषि पर निर्भर हैं अतः कृषि का विकास भारत की महत्त्वपूर्ण आवश्यक है।

लोहिया के सामाजिक विचार

समाजवाद न तो सम्पत्ति का सिद्धांत है और न राज्य का बल्कि इन सब से ऊपर यह एक जीवन दर्शन है, अतः इस दृष्टि से इसका संबंध जीवन के प्रत्येक पहल से है - सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक । इस

संबंध में जैसा राममनोहर लोहिया ने कहा है "अगर समाजवाद का एक अंग लिया जाता है तो समाजवाद खण्डित रहे जाता है....." अतः एक सच्चे समाजवादी होने के नाते राममनोहर लोहिया ने समाजवाद के हर पहलू पर विचार किया है, इसमें समाजवाद का सामाजिक पहलू भी सम्मिलित है। डॉ. राममनोहर लोहिया ने समाज से संबंधित जिन व्यवस्थाओं पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं उन्हें बिंदुओं के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है

- जाति प्रथा का विरोध : डॉ. लोहिया जाति प्रथा के विरोधी थे, उनके अनुसार जाति प्रथा समाजवाद के मार्ग का मुख्य अवरोधक है। जाति समाज में असमानता उत्पन्न करती है। डॉ. राममनोहर लोहिया ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है "जीवन के बड़े-बड़े तथ्य जन्म, मृत्यु, शादी, भोज ब्याह, और सभी रस्में, जाति के चौखट में होती है। ऐसे मौकों पर दूसरी जाति के लोग किनारे पर रहते हैं, जैसे वे तमाशबीन हों" जाति प्रथा के कारण निम्न वर्ग शोषण का शिकार बनते हैं, जाति उन्हें उन्नति के अवसरों से अलग रहती है। लोहया के अनुसार इन सब का सम्मिलित परिणाम होता है - राष्ट्रीय विकास में कमी।

- अस्पृश्यता का विरोध : अम्बेडकर, नेहरू, जयप्रकाश नारायण की भांति डॉ. लोहिया ने भी अस्पृश्यता को जाति व्यवस्था का परिणाम माना और उसका विरोध किया। हरिजनों के मंदिर प्रवेश की समस्या के निराकरण के लिये उन्होंने हरिजन मंदिर प्रवेश आंदोलन चलाया। डॉ. लोहिया ने अस्पृश्यता की भावना के कुपरिणामों का उल्लेख करते हुये कहा कि अस्पृश्यता के कारण केवल राष्ट्रीय विघटन और अवनति हुई है वरन् इसके परिणामस्वरूप भारत को अंतर्राष्ट्रीय अपमान तथा उपेक्षा भी सहन करनी पड़ी है। यदि हमें अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपनी पहचान बनानी है तो हमें अस्पृश्यता निवारण के लिये प्रभावात्मक कदम उठाने होंगे। इस समस्या के निवारण हेतु सुझाव इस प्रकार थे

- हरिजनों में स्वाभिमान व निर्भयता की भावना विकसित करना।
- हरिजनों में शिक्षा का प्रसार |
- हरिजनों को समान आध्यात्मिक अधिकार प्रदान करना ।
- हरिजनों के साथ मानवोचित व्यवहार ।

- हिन्दू मुस्लिम एकता पर बल - राममनोहर लोहिया ने सदैव हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल दिया, वे कहा करते थे कि सरकारें चाहे लडती रहें मगर हिन्दुओं और मुसलमानों को एक हो जाना चाहिए। डॉ. लोहिया ने न्याय उदारता और दृढ़ता से हिन्दू-मुसलमानों के वैमनस्य के कारणों को ढूंढने तथा उनका समाधान करने की प्रेरणा दी।

- स्त्री पुरुष समानता पर बल - लोहिया स्त्री-पुरुष समानता के प्रबल समर्थकों में से एक थे। उनकी मान्यता यह थी कि वास्तविक समाजवाद तभी कायम होगा जब उसमें नारी सहभागिता हो। डॉ. लोहिया प्रत्येक दृष्टिकोण से स्त्री को सक्रिय देखना चाहते थे अतः उन्होंने भारतीय समाज में जहां स्त्रियों का कार्यक्षेत्र केवल रसोई तक सीमित समझा जाता है, कि आलोचना की। लोहिया ने दहेज प्रथा का कटाक्ष करते हुए कहा, "उनकी शादियों का वैभव आत्मा के मिलन में नहीं है बल्कि 20 लाख की कण्ठियों और 50 हजार से भी ज्यादा साड़ियों में है। "विवाह और प्रेम संबंध में भी राममनोहर स्त्री-पुरुष की समानता के पक्षधर थे। डॉ. लोहिया ने बहुपत्नि प्रथा का विरोध किया। वे पर्दा प्रथा के भी विरोधी थे उन्होंने पर्दा प्रथा को प्रगति के विरूद्ध माना । उक्त सब बातों से अतिरिक्त लोहिया स्त्री का समान कार्य के लिये समान वेतन, अवसर और कानून संबंधी

समानता दिलवाने के हिमायमी थे। डॉ. लोहिया के सामाजिक विचारों से स्पष्ट है कि सामाजिक दृष्टि क्षेत्र में उनके विचार अत्यन्त प्रगतिशील तथा अपने समय से बहुत आगे थे।

डॉ. राममनोहर लोहिया के प्रमुख राजनीतिक विचारों का विवेचन निम्न बिन्दुओं के आधार पर किया जा सकता है -

- राजनीतिक विकेन्द्रीकरण के पक्षधर : डॉ. लोहिया ने समाजवाद की स्थापना हेतु राजनीतिक विकेन्द्रीकरण का पक्ष लिया। राजनीतिक विकेन्द्रीकरण के संदर्भ से उसकी चौखंभा योजना का विशेष महत्व है। वे इस योजना के माध्यम से सत्ता के ढांचे का विकेन्द्रीकरण करना चाहते थे। चौखंभा योजना के चार स्तम्भ इस प्रकार थे - 1. गांव 2. जिला 3. प्रांत और 4. केन्द्र । लोहिया का चौखंभा योजना का अर्थ था, निचले स्तर से ऊपरी स्तर तक जनता की शासन कार्य में भागीदारी । चौखंभा योजना में राज्य की सेना केन्द्र के अधीन, सशस्त्र पुलिस प्रान्त के अधीन तथा अन्य पुलिस मण्डल के अधीन रहेगी। लोहे और इस्पात के उद्योग केन्द्र के नियंत्रण में, छोटी मशीनों वाले उद्योग ग्रामों और जिलों के अधीन रहेंगे। मूल्यों पर नियंत्रण केन्द्रीय शासन के अधीन रहेगा जबकि कृषि का ढांचा ग्राम और जिले की इच्छा पर निर्भर करेगा। करों के रूप में केन्द्रीय शासन के पास जो रूपया एकत्र होगा, लोहिया के अनुसार उसका एक भाग गांव को दूसरा भाग जिले को, तीसरा भाग प्रांत को एंव चौथा भाग केन्द्र को प्राप्त होना चाहिए क्योंकि जनतांत्रिक संस्थायें पैसे के अभाव में अपना कार्य सुचारू रूप से नहीं चला सकती। प्रशासकीय विकेन्द्रीकरण

- प्रशासकीय विकेन्द्रीकरण का पक्ष लेते हुये डॉ. लोहिया ने कहा था कि जिलाधीश का पद समाप्त होना चाहिए तथा पुलिस एवं अन्य सेवा विभाग ग्राम एवं जिलों के अधीन होने
चाहिए।

- धर्म निरपेक्ष राज्य के पक्षधर - डॉ. लोहिया राज्य के धर्मनिरपेक्ष स्वरूप को स्वीकृति प्रदान करते थे। यही कारण था कि उन्होंने भारत विभाजन को मान्यता नहीं दी।

डॉ. लोहिया के अन्तर्राष्ट्रीय संबंध विचार

विश्व नागरिकता इन चार सूत्रों के अलावा डॉ. लोहिया ने राष्ट्रों में समानता की स्थापना हेतु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जमींदारी तथा जाति प्रथा की समाप्ति का सुझाव भी रखा। डॉ. लोहिया ने विश्व सरकार, विश्व विकास समिति तथा संयुक्त राष्ट्र के पुनः संगठन से संबंधित धारणाओं का भी प्रतिपादित किया । डॉ. लोहिया के अन्तर्राष्ट्रीयता के संबंधित विचार यह स्पष्ट करते हैं कि उनका दर्शन विश्व बन्धुत्व तथा मान्यता की भावना से ओतप्रोत था।

मूल्यांकन

डॉ. राममनोहर लोहिया के उपर्युक्त वर्णित विचार यह स्पष्ट करते हैं कि भारत में समाजवादी विचारधारा को आधार प्रदान करने में डॉ. राममनोहर लोहिया का योगदान अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। लोहिया ने एशियाई समाजवाद का मार्ग प्रशस्त किया। उन्होंने मार्क्स का अन्धानुकरण न करके समाजवाद के सन्दर्भ में व्यवहारिक

नीति अपनाई तथा भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल समाजवाद को ढालने का प्रत्यत्न किया। लोहिया मूलतः एक मानवतावादी थे जिनका मनुष्य की गरिमा में विश्वास था। डॉ. लोहिया ने जो आंदोलन को ढालने का प्रत्यत्न किया। लोहिया मूलतः एक मानवतावादी थे जिनका मनुष्य की गरिमा में विश्वास था। डॉ. लोहिया ने जो आंदोलन किये उनसे समाजवाद मानव समानता तथा मानव में उनके दृढ़ विश्वास का पता चलता है। डॉ. लोहिया की विचारधारा संघटित थी वे भारत में जाति प्रथा और विश्व में रंगभेद समाप्त करना चाहते थे। वे राष्ट्रों के बीच असमानता और आर्थिक शोषण मिटाना चाहते थे। वे जीवन भर साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद के विरूद्ध संघर्ष करते रहे। वे शांति प्रेमी थे। दूसरे शब्दों में वे एक सच्चे समाजवादी थे। अंत में कहा जा सकता है कि डॉ. राममनोहर लोहिया को एक ऐसे सच्चे देशभक्त, मानवतावादी, मौलिक विचारक तथा अद्‌वितीय नेता के रूप में सदैव याद किया जाता रहेगा जिसने आधुनिक भारत के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया।

स्त्री विमर्श

विमर्श का अर्थ है - जीवंत बहस, विचार विवेचना आदि। स्त्री विमर्श का अर्थ है - नारी तथा उसके अस्तित्व से जुड़े विभिन्न पहलुओं पर विचार तथा उसके जीवन संघर्ष, अस्तित्व तथा विभिन्न समस्याओं पर मंथन।

समकालीन साहित्य में यदि स्त्री विमर्श की बात की जाए तो स्त्री लेखन तथा स्त्री वादी लेखन दोनों ही समान रूप से महत्वपूर्ण है। स्त्री लेखन अर्थात स्त्री द्‌वारा किया गया लेखन । स्त्रीवादी साहित्य अर्थात जो साहित्य स्त्री के अस्तित्व, अस्मिता तथा उसके हितों के लिए प्रतिबद्‌ध हो। स्त्री लेखन स्वंय के भोगे हुए की अभिव्यक्ति के कारण यथार्थ के अधिक निकट है।

महादेवी वर्मा के अनुसार -" पुरूष के लिए नारी कल्पना है, परन्तु नारी के लिए अनुभव । अपने जीवन जैसा चित्र वह हमें दे सकेगी वैसा पुरूष बहुत साधना के बाद भी शायद ही दे सके" ।।

भारतीय साहित्य में जब भारतेन्दु युग में विभिन्न नवीन विचारधारायें उदित हो रही थी। उनमें स्त्री चेतना का भी स्थान था। भारतेन्दु युग के साहित्यकारों ने रीतिकाल के स्त्री प्रतिमानों को ध्वस्त किया, जहाँ स्त्री मात्र भोग की वस्तु थी। साथ ही स्त्री के प्रति सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाया। भारतेन्दु जी ने स्त्री शिक्षा हेतु 'बालबोधनी' पत्रिका प्रारम्भ की। प्रतापनरायण मिश्र जी ने स्त्री शिक्षा का समर्थन करते हुए कहा - “स्त्रीगण को विद्‌या देवै, करि पतिव्रत या लेवै।।

<u>बालबोधनी पत्रिका में भारतेन्दु जी</u> ने स्त्री व पुरूष को समान बताया,

वीर प्रसविनी बुध वधू होई दीनता खोय।
नारी नर अरधग की साचेहि स्वामिनी होय।

द्‌विवेदी युग में आचार्य महावीर प्रसाद द्‌विवेदी, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', रामनरेश त्रिपाठी, श्रीधरपाठक आदि साहित्यकारों ने नारी की महानता का गान किया।

छायावादी युग में स्त्री के विभिन्न रूपों का वर्णन करते हुए उसे प्रेरणा शक्ति, परमशक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया। छायावदोत्तर काल में साहित्यकारों ने नारी के विभिन्न समस्याओं को उजागर करते हुए नारी का उदात्त रूप प्रस्तुत किया। नयी कविता के कवियों ने कही तो नारी के रूमानी तथा कही यथार्थवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।

प्राचीन काल से आज तक समाज तथा साहित्य में स्त्री के लिए विभिन्न धाराएँ प्रचलित रही। कही उसे पूजा योग्य, तो कही पाप की खान और नरक का द्वार तक कहा गया।

स्त्री उपन्यासकार

उषा प्रियवंदा

पचपन खम्भे लाल दीवारें 1961 ई., रूकोगी नहीं राधिका 1967 ई.,
शेषयात्रा 1984 ई., अन्तर्वशी 2008 ई., भए कबीर उदास 2007 ई., नदी 2013 ई.

शिवानी

चौदह फेरे 1965 ई., कृष्णकली 1968 ई., भैरवी 1969 ई., विषकन्या 1970 ई., करिए छिमा 1971 ई., शमशान चम्पा 1972 ई., स्वयंसिद्धा 1972 ई., माणिक 1977 ई., रतिविलाप 1972 ई.. रथ्या 1977 ई., किशननुली 1979 ई., विवर्त 1984 ई.,

कृष्णा सोबती

मित्रो मरजानी 1967 ई., सूरजमुखी अंधेरे के 1972 ई., जिन्दगीनामा 1979 ई., दिलोदानिश 1993 ई., समय सरगम 2000 ई.,

राजी सेठ

तत्सम 1983 ई. निष्कवच 1995 ई.,

मन्नू भण्डारी

आपका बंटी 1971 ई., महाभोज 1979 ई., एक इंच मुस्कान (राजेन्द्र याद के साथ)

मंजुल भगत

अनारो 1977 ई., बेगाने घर में 1978 ई., खातुल 1983 ई., तिरछी बौछार 1984 ई., गंजी 1995 ई.,

ममता कालिया

बेघर 1971 ई., नरक दर के नरक 1975 ई., प्रेम कहानी 1980 ई., एक पत्नी के नोट्स 1997 ई., दौङ 2000 ई., दुक्खम- सुक्खम 2009 ई., अँधेरे का ताला 2009 ई.,

मेहरूनिसा परवेज

आँखों की दहलीज 1969 ई., उसका घर 1972 ई., कोरजा 1977 ई.,

अकेला पलाश 1981 ई., समरांगण 2002 ई., पासंग 2005 ई.,

नासिरा शर्मा
सात नदियों एक समुन्दर 1984 ई., शाल्मली 1987 ई., ठीकरे की मँगनी 1989 ई., जिन्दा मुहावरे 1993 ई., अक्षयवट 2003 ई.,
कुइयाँजान 2005 ई., जीरो रोड 2008 ई., परिजात 2010 ई.,
अजनबी जरीरा 2012 ई..
प्रभा खेतान
आओ पेपे घर चले 1990 ई., तालाबंदी 1991 ई., छिन्नामस्ता 1993 ई., अपने -अपने चेहरे 1994 ई., पीली आँधी 1996 ई.,
मैत्रेयी पुष्पा
स्मृति दंश 1990 ई., बेतवा बहती रही 1993 ई., इदन्नम 1994 ई., चाक 1997 ई., झूलानट 1999 ई., आत्मा कबूतरी 2000 ई., कहे ईसुरी फाग 2004 ई., अगन पाखी 2001 ई., विजन 2002 ई., त्रियाहठ 2005 ई., गुनाह बेगुनाह 2011 ई.. .

चित्रा मुद्गल
एक जमीन अपनी 1990 ई., आवाँइ1999 ई.. गिलिगडु 2000 ई.,
मृदुला गर्ग
उसके हिस्से की धूप 1975 ई., वंशज 1976 ई., अनित्य 1980 ई., मैं और मैं 1984 ई., कठगुलाब 1996 ई., मिलजुल मन 2009 ई.,
क्षितिज शर्मा
उकाव 1992 ई.,
क्षमा शर्मा
मोबाइल

स्त्री कहानीकार

राजेन्द्रबाला घोष (बंग महिला)
नारी हृदय, कौमुदी 1937 ई.,
सुभद्राकुमारी चौहान
बिखरे मोती 1932 ई., उन्मादिनी 1934 ई., सीधे सादे चित्र
सीमा वोरा
धरती की बेटी
मन्नू भण्डारी
मै हार गई 1957 ई., यही सच है 1966 ई., एक प्लेट सैलाब 1968 ई., तीन निगाहों की एक तस्वीर 1968 ई., त्रिशंकु 1978 ई.,
चंद्रकिरण सौनरेक्सा

आदमखोर 1945 ई..

उषा प्रियवंदा

जिन्दगी और गुलाब के फूल 1961 ई., फिर वसन्त आया 1961 ई., एक कोई दूसरा 1966 ई., कितना बडा झूठ 1972 ई.,

शिवानी

लाल हवेली 1965 ई., पुष्पहार 1969 ई., अपराधिनी 1972 ई., रथ्या 1976 ई., स्वयं सिद्धा 1977 ई., रति विलाप 1977 ई.

सुधा अरोडा

बगैर तराशे हुए 1968 ई., युद्ध विराम 1977 ई., महानगर की मैथिली 1987 ई., काला शुक्रवार 2004 ई.

ममता कालिया

छुटकारा 1969 ई., सीट नं. 6 1978 ई., एक अदद औरत 1979 ई., प्रतिदिन 1983 ई., उसका यौवन 1985 ई., बोलने वाली औरत 2000 ई., मुखौटा 2002 ई., पाँच बेहतरीन कहानियाँ 2013 ई., खुदकिस्मत 2010 ई., मेरी प्रिय कहानियाँ 2017 ई.

चित्रा मुद्गल

जहर ठहरा हुआ 1980 ई., लाक्षागृह 1982 ई., अपनी वापसी 1983 ई., इस हमाम में एवं ग्यारह लम्बी कहानियाँ 1987 ई., जगदम्बा बाबू गाँव आ रहे है 1992 ई., भूख 2001 ई., लपटें 2002 ई.

मेहरून्निसा परवेज

आदम और हव्वा 1972 ई., टहनियों पर धूप 1977 ई., फाल्गुनी 1978 ई., गलत पुरुष 1978 ई., अन्तिम चढ़ाई 1982 ई., अम्मा 1997 ई., समर 1999 ई. , लाल गुलाब 2006 ई.

कृष्णा अग्निहोत्री

टीन के घेरे 1970 ई., याही बनारसी रंग बा 1983 ई., जिन्दा आदमी 1986 ई. , जै सिया राम 1993 ई., सर्पदंश 1997 ई., अपने-अपने कुरूक्षेत्र 2001 ई., यह क्या जगह है दोस्तों 2007 ई.

मृणाल पाण्डे

दरम्यान 1977 ई., शब्दवेधी 1980 ई., एक नीच ट्रेजडी 1981 ई., एक स्त्री का विदागीत 1983 ई.

राजी सेठ

अन्धे मोड से आगे 1979 ई., तीसरी हथेली 1981 ई., यात्रा मुक्त 1987 ई., दूसरे देश काल में 1992 ई., यह कहानी नही 1998 ई., गमे हयात ने मारा -2006 ई.

कुसुम चतुर्वेदी

तीसरी यात्रा 1997 ई., आँगन में उगी पौध 2000 ई.

मैत्रेयी पुष्पा

चिन्हार 1991 ई., ललमनियाँ 1996 ई., गोमा हँसती है 1998

नासिरा शर्मा

संगसार 1993 ई., इब्ने मरियम 1994 ई., सबीना के चालीस चोर 1997 ई., खुदा की वापसी 1998 ई., इंसानी नस्ल 2001 ई., दूसरा ताजमहल 2002 ई.

अलका सरावगी
कहानी की तलाश में 1995 ई., दूसरी कहानी 2002 ई.

स्त्री विमर्श (आलोचना)

प्रभा खेतान
उपनिवेश में स्त्री 2003 ई., अल्बेयर कामू वह पहला आदमी, स्त्री विमर्श इतिहास में अपनी जगह, बाजार के बीचः बाजार के खिलाफ
अनामिका
स्त्रीत्व का मानचित्र, उत्तर गाथा, मौसम बदलने की आहट मन मांझने की जरूरत स्त्री विमर्श का लोक पक्ष स्त्री मुक्तिः सांझा चूल्हा, कहती है औरत, बीजाक्षर, त्रिया चरित्रः उत्तरकांड 2012 ई.
मृगाल पाण्डेय
परिधि पर स्त्री, स्त्री : लम्बा सफर 2012 स्त्रीः देश की राजनीति से देह की राजनीति तक, ओ उब्बरी, जहाँ औरत गढ़ी जाती है, बंद गलियों के विरुद्ध
क्षमा शर्मा
स्त्री का समय, स्त्रीत्ववादी विमर्शः समाज और साहित्य
नासिरा शर्मा
औरत के लिए औरत
मैत्रेयी पुष्पा
खुली खिडकियाँ 2005 ई., सुनो मालिक 2006 ई., चर्चा हमारा 2011 ई., तबदील निगाहें 2012 ई., आवाज 2012 ई.
रमणिका गुप्ता
स्त्री-मुक्ति संघर्ष और इतिहास
ममता कालिया
खाटी घरेलू औरत (संपादित)

नीरज माधव
हिन्दी साहित्य का ओझल नारी-इतिहास 1857-1947 ई. अकेला पलाश

महिला आत्मकथा साहित्य

जानकी देवी बजाज
मेरी जीवन यात्रा 1956 ई.
प्रतिभा अग्रवाल
दस्तक जिन्दगी की भाग 1 1990 ई., दस्तक जिन्दगी की भाग 2 1996 ई.
कुसुम अंसल
जो कहा नहीं गया 1996 ई.

महिला नाटककार

मन्नू भण्डारी
बिना दिवारों के घर 1965 ई., महाभोज 1982 ई.
मृदुला गर्ग
एक और अजनबी 1978 ई., जादू का कालीन 1993 ई., तीन कैदें 1969 ई., दुलहिन एक पहाङ की 1969 ई.
मृणाल पाण्डेय
जो राम रचि राखा 1981 ई., मौजूदा हालात को देखते हुए 1979 ई., आदमी जो मछुआरा नहीं था 1983 ई.
कुसुम कुमार
दिल्ली ऊँचा सुनती है, रावणलीला, संस्कार को नमस्कार, ओम क्रांति, सुनो शेफाली, मादा मिट्टी, पवन चतुर्वेदी की डायरी, सलामी पंच।
गिरीश गोस्वामी
रंगनाथ की वापसी (रागदरबारी का नाट्य रूपांतर) इन्होंने हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की भी नाट्य रूपांतर किया, असुरक्षित, मुझे मत मारो-अन्य 2 मौलिक नाटक
प्रतिभा जायसवाल
प्रेमचंद के 'गोदान' और अमृतलाल नागर के सुहाग के नुपुर का नाट्य रूपान्तरण

नवजागरण

जागरण :

जागरण का अर्थ है जागृत होना, नींद से जागना, सुषुप्त जनमानस में नवचेतना, स्वतन्त्र चिंतन, ऐसी चेतना जो पहले कभी न आई हो। यहाँ जागरण का अर्थ नींद से शारीरिक रूप से जागना नहीं, अपितु मानसिक रूप से जागना । है। "पारिभाषिक रूप से जागरण शब्द संस्कृत भाषा के नव उपसर्ग 'जागृ' धातु के ल्युट प्रत्यय के योग से व्युत्पन्न है।" इसका अभिप्राय है जागृत अवस्था या जागते रहने की चेतना। "लाक्षणिक अर्थ में 'जागरण' वह अवस्था है जिसमे किसी जाति, देश, समाज आदि को अपनी वास्तविक परिस्थितियों और उनके कारणों का ज्ञान हो जाता है और वह उन्नति और रक्षा के लिए सचेष्ट हो जाता है।"

जागरण की कोई समय सीमा या कालखंड निर्धारित नहीं की जा सकती। जागरण किसी भी समय, किसी भी परिस्थितियों में हो सकता है। जब तत्कालीन समाज, युग और परिस्थितियों में जकड़ी हुई मानसिक रूढ़ियों से होकर आत्मविवेक से निर्णय लेता है, तो उस अवस्था को जागरण कहा जाता हैं।

परिभाषा:

नवजात के लिए प्रायः कई पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया जाता है, जैसे- पुनर्जागरण, पुनरूत्थान, नवजीवन, नवजागृति, नवोत्थान आदि । परन्तु यदि आधुनिक संदर्भ में देखें तो अंग्रेजी शब्द रिनेसाँ का पर्यायवाची ही नवजागरण को माना जाता है। भिन्न-भिन्न देशों में नवजागरण की अवधारणा का विकास, विभिन्न ऐतिहासिक परिस्थितियों, कालों और विभिन्न रूपों में हुआ है। नवजागरण एक अवधारणा है। नवजागरण की कल्पना के प्रचार का श्रेय स्विस विचारक बर्कहार्ट को है। " जैकब बुर्कहार्ट की कृति 'सिविलिजेशन ऑफ दि रिनेसाँ इन इटली' (इटली की पुनर्जागरण कालीन सभ्यता) के प्रकाशन 1860 के साथ यह मान्यता अपने चरम शिखर पर पहुँच गई।"

यद्यपि ऐसा माना जाता है कि रिनेसाँ शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम फ्रांसिसी इतिहासकार 'मिशेसेट' ने 19 वीं सदी के पूर्वार्द्ध किया। लेकिन डॉ. मीरा रानी बल के अनुसार ऐसा माना जाता है कि " आधुनिक संदर्भ और अर्थ में 'रेनेसाँ' शब्द का प्रयोग संभवतः पहली बार बाल्जाक ने 1829 ई. में अपनी नाट्य कृति "Blade Sceaux" में किया था।"

नवजागरणः स्वरूप

रिनेसाँ प्रायः पश्चिमी यूरोप जिसमें इटली, फ्रांस, ब्रिटेन, स्पेन, जर्मनी जैसे देश आते हैं इनकी सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रगति का काल माना जाता है। इस काल में कला, संगीत, साहित्य ओर विज्ञान के क्षेत्र में परिवर्तन हुआ। सर्वप्रथम पुनर्जागरण का आरम्भ इटली से माना जाता है। इसी संदर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा कहते हैं कि- "सोलहवीं सदी में इटली के लोगों ने नए युग को ला रिनास्विता (पुनर्जन्म) कहना शुरू किया। अठारहवीं सदी में फ्रांस के विद्वानों ने उसे रेनेसान्स कहा। वहाँ से यह शब्द अंग्रेजी में आया। इटली के लोगों ने संस्कृति के पुनर्जन्म की बात इसलिए सोची थी कि तीसरी, चौथी, पाँचवी सदियों में जर्मन हमलावरों ने उनकी प्राचीन रोमन सभ्यता का नाश कर दिया था। अब वह सभ्यता मानो नए सिरे से जन्म ले रही थी। इसलिए पुनर्जन्म की बात उनके मन में आई।" और इटली की भाँति अन्य देशों ने भी नई सभ्यता के युग को पुनर्जन्म कहा।

यूरोपीय सन्दर्भ में यदि देखें तो यूरोप में नवजागरण की जगह पुनर्जागरण अधिक तर्कसंगत मालूम पडता है। यूरोप के रिनेसाँ को पुनर्जागरण अथवा पुनर्जन्म कहने का मुख्य कारण यह है कि यूरोप ने लम्बे अँधकार युग और सामंती मध्यकाल से छुटकारा पाया था। पुनर्जागरण की परिभाषा यूरोपीय संदर्भ में हिन्दी विश्वकोष (नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी) ने दी है- "पुनर्जागरण का अर्थ पुनर्जन्म होता है। मुख्यतः यह यूनान और रोम के प्राचीन शास्त्रीय ज्ञान की पुनः प्रतिष्ठा का भाव प्रकट करता है। यूरोप में

मध्य युग की समाप्ति और आधुनिक युग का प्रारंभ इसी समय से माना जाता है।" 14 वीं सदी के आरम्भ तक यूरोप में प्राचीन रोमन साम्राज्य के विनाश से उत्पन्न अव्यवस्था और गडबडी में शांति आ चुकी थी। यूरोपीय संस्कृति में एक नए जीवन का संचार हो रहा था। धर्म, दर्शन, कला, विज्ञान, चित्रकला, मूर्तिकला, संगीत आदि के नए-नए अन्वेषण हुए। नई सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक चेतना का संचार होने लगा था। जिसका प्रथम उन्मेष इटली में दिखाई पड़ता है। "इस प्रकार यूरोप का एक प्रकार से नया जन्म हुआ और इसी कारण उस युग का नवजन्म या पुनर्जन्म के पर्यायभक्त नवजागरण या पुनर्जागरण का अभिधान प्रदान किया गया है।

यूरोप में पुनर्जागरण के कारणों का उल्लेख करते हुए पार्थ सारथि गुप्ता ने कहा है, " सामान्यतः तुर्कों के हाथों कुस्तुनतुनिया की पराजय की तिथि (सन् 1453) से यूरोप में पुनर्जागरण का आरंभ माना जाता है। जिसके बाद यूनान के विद्वान शरणार्थी के रूप में इटली चले गये और जाते समय अपने साथ बहुमूल्य यूनानी साहित्य भी लेते गए, जो यूरोप के लिए दीर्घकाल से लुप्त हो चुका था।"

इसी बात को डॉ. रामविलास शर्मा ने इस ढंग से कहा है, "पाँचवी ईस्वी सदी के उत्तरार्ध में रोमन साम्राज्य ध्वस्त हो गया, यूरोप का प्राचीन काल समाप्त हुआ और मध्यकाल आरंभ हुआ। पंद्रहवी सदी के पूर्वार्द्ध तक लगभग एक हजार साल तक, यह मध्यकाल बना रहता है। फिर पुनर्जागरण काल आता है और यूरोप के इतिहास का आधुनिक काल शुरू होता है। यूरोप में सभी देशों का आर्थिक विकास न तो प्राचीन काल में एक सा था, न मध्यकाल में। प्राचीन काल में इटली नगर सभ्यता का केन्द्र था, जर्मनी और ब्रिटेन जैसे देशों के लोग अभी गण समाजों वाला जीवन बिता रहे थे।'

14 वीं सदी के अंतिम दशक से ही ग्रीक साहित्य लोकप्रिय होने लगा। देशी भाषाओं मे ग्रथों का संग्रह होने लगा। व्यक्ति-स्वातंत्र्य की प्रतिष्ठा हुई। चर्च का प्रभाव घटने लगा। मनुष्य में ईश्वर के स्थान पर व्यक्ति को समझने की जिज्ञासा पैदा हुई। धर्म की अपेक्षा विज्ञान का महत्त्व बढ़ा। संन्यासियों के स्थान पर बुद्धिजीवियों का महत्त्व बढ़ा। भावना का स्थान तर्क ने लिया। धर्म और सांमती रूढ़ियों में जकडी जनता के भीतर वैज्ञानिक चेतना का प्रसार होता है। समाज-सुधार के माध्यम से जनता के भीतर वैज्ञानिकता का समावेश होता है। समस्त यूरोप में नई क्रांति आती है। "संक्षेप में सामंतवाद और धार्मिक सत्ता के कठोर नियंत्रण से मुक्ति, व्यक्तिवाद, भौतिकवाद, वैज्ञानिक जिज्ञासा, सचेत रूप से समाज सुधार के प्रयास, बुद्धिवाद, प्रशासनिक, न्यायिक सुधार, नवीन जीवन शैली, नयी संस्कृति और नयी दुनिया की ओर प्रयास आदि नवजागरण की सामान्य विशेषताएँ है।"

पुनर्जागरण का यूरोप के अन्य देशों पर भी प्रभाव पडा। जिसके कारण यूरोप मे औद्योगिक क्रांति की शुरुआत हुई। इसी कारण से धर्म, दर्शन, कला, साहित्य, विज्ञान एक नए युग में प्रवेश कर सके। यूरोपीय रिनेसाँ एक विशिष्ट काल 1300 ई. से 1600 ई. के मध्य घटित हुआ। यह एक बौद्धिक-सांस्कृतिक आंदोलन है। यह आंदोलन कुछ ऐतिहासिक, आर्थिक और सांस्कृतिक प्रक्रियाओं का विकास मात्र है, जो 9 वीं, 10 वीं अथवा 12 वीं शताब्दियों में घटित हो चुकी थी। उदाहरण के लिए 'करोलिजयाई पुनर्जागरण (9 वीं सदी) जिसके बाद लैटिन का पठन-पाठन आरम्भ हुआ। जो कि पाँचवी और छठीं सदी के बाद से समाप्त हो चुका था। 12 वीं सदी का मानवतावादी विचारों के विकास का आंदोलन जिसमें पेरिस, बोलिन और ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय स्थापित हुए। पुनर्जागरण को हम संक्रांति काल कह सकते है जिसमें कुछ मध्यकालीन

ऐतिहासिक तो थी ही साथ- साथ आधुनिकता ही अपरिमित संभावनाएँ भी बाकी थीं। इसी सन्दर्भ में 'पार्थ सारथि गुप्ता' कहते हैं- " यूरोप में पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दियाँ नवोत्थान के अलावा जिसे हम पुनर्जागरण कहते हैं, इसी दौर में यूरोपीय राज्य प्रणाली का उदय हुआ था।"

इस काल मे यूरोप ने अनेक रुझानों का जन्म दिया और कुछ अन्य विचारों को मान्यता दी जो कि पहले से ही व्याप्त थे। चर्च की सत्ता को नकार कर मानवतावाद का विकास, कला की अभिव्यक्ति माना गया। सामंती समाज का विघटन और पूंजीवाद का आरम्भ पुनर्जागरण की विशेषताएँ रही है।

विश्व की महान शक्तियों चर्च, धर्म ईसा राज्य का चुनौती दी गई, धर्म सुधार आन्दोलन हुए और बाईबल जैसे ग्रंथों की आलोचना की जाने लगी। धर्म गिरिजाघर से निकल कर आम आदमी तक पहुँचने लगा। यूरोपीय पुनर्जागरण के संदभ्र में डॉ. मीरा रानी बल का कहना है कि- " यूरोप का मध्ययुगीन धर्म, रोमन कैथोलिक धर्म, समूचे ईसाई संसार सांस्कृतिक एकता का सूत्र था, लेकिन यह सामंतशाही का पोषक था। सामंती राज्य व्यवस्था को समर्थन प्रदान कर रोमन चर्च राष्ट्रीय राज्यों की स्थापना में अड़चने खड़ी कर रहा था- इसलिए यूरोप के देशों में जनता के राष्ट्रीय जागरण ने सामंती धर्म-तन्त्र के विरुद्ध धार्मिक संघर्ष का रूप लिया।"

पुनर्जागरण काल में सम्पूर्ण यूरोप मे एक नई क्रांति आ गई थी। इटली के साथ-साथ अन्य देशों में जैसेइंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, स्पेन आदि में भी परिवर्तन दिखाई देने लगा। इटली में जहाँ दान्ते, पैट्रार्के, बुकाचियों आदि ने नवजागरण का बीज बोया, वहीं इंग्लैंड में शेक्सपीयर, मिल्टन, जर्मनी में मार्टिन लूथर जैसे सुधारवादी नेता फ्रांस में रोबर्ट गागिन जैसे मानवतावादी विचारकों और स्पेन में इरासमस ने नवजागरण की मशाल को जलाए रखा।

नवजागरण काल में साहित्य के क्षेत्र में भी परिवर्तन आए । धार्मिक लेखन के अतिरिक्त गैर धार्मिक लेखन आरम्भ आरम्भ हो चुका था। मूर्तिकला, चित्रकला चर्च की दीवारों से बाहर निकलकर स्वच्छंद वातावरण में उड़ान भरने लगी थी। कलाकाल मात्र ईश्वर के आदेश की पूर्ति करने वाला है, इस धारणा का अंत हुआ। देशी भाषाओं में उन्नति आरम्भ
हुई।

प्रसे का उदय भी पुनर्जागरण का महत्वपूर्ण कारक तत्व था। आरम्भ में धार्मिक तथा बाद में गैर धार्मिक पुस्तकों की छपाई से पुस्तकों की संख्या में वृद्धि हुई। पहला प्रेस लगभग 1470 ई. में फ्रांस के सारबेना में शराब भंडारे के तहखाने में आरम्भ हुआ थां जर्मनी के गुटेनबर्ग ने 1477 ई. में लकड़ी के टाइपों के स्थान पर सचल टाइपों का आविष्कार कर क्रांतिकारी भूमिका निभाई। इसके बाद यूरोप के प्रमुख नगरों में छापखाना खुल गए थे।

भारतीय नवजागरण से यूरोपीय पुनर्जागरण की भिन्नता:

भारतीय नवजागरण:

प्रत्येक राष्ट्र की परिस्थितियों में उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। 19 वीं सदी के जागरण काल मे भी पराधीन भारतीय समाज में एक नवीन चेतना आई थी। यह चेतना नवीन नहीं थी, यह परिष्कृत रूप था उस चेतना का जो पहले से चली आ रही थी। प्राचीन काल से ही भारत मे विभिन्न धर्म और संस्कृतियाँ आती-जाती रही है। विभिन्न संस्कृतियों के समन्वय से नवचेतना आती रही है। श्री रामधारी सिंह दिनकर ने 'संस्कृति के चार अध्याय' में लिखा है कि"भारतीय संस्कृति में चार बडी क्रान्तियाँ हुई हैं और हमारी संस्कृति का इतिहास उन्हीं चार क्रांतियों का इतिहास है। पहली क्रान्ति तब हुई जब आर्य भारत वर्ष में आए। उनका आर्योत्तर जातियों से सम्पर्क हुआ।..... दूसरी क्रांति तब हुई, जब महावीर और गौतम बुद्ध ने इस स्थापित धर्म का संस्कृति के विरुद्ध विद्रोह किया तथा उपनिषदों की चिंतन धारा को खींचकर वे अपनी मनोवांछित दिशा की ओर ले गये। तीसरी क्रान्ति उस समय हुई जब इस्लाम विजेताओं के धर्म के रूप मे भारत पहुँचा और इस देश में हिन्दुत्व के साथ उसका सम्पर्क हुआ और चौथी क्रान्ति हमारे अपने समय में हुई। जब भारत में यूरोप का आगमन हुआ तथा उसके सम्पर्क में आकर हिन्दुत्व एवं इस्लाम दानों ने नवजीवन का अनुभव किया।"

परन्तु भारतीय नवजागरण को लेकर अलग-अलग विद्वानों की अलग-अलग राय है। डॉ. अमरनाथ के अनुसार भी नवजागरण को लेकर भारतीय विचारकों में मतभेद है। "भारत में नवजागरण को लेकर अलग-अलग अवधारणाएँ है। कुछ लोग मानते है कि पहला नवजागरण गौतम बुद्ध के आविर्भाव के साथ आया। बुद्ध ने पुरानी जङ अवधारणाओं को तोङकर मनुष्य-मनुष्य के भीतर के भेद को मिटाया जिसका प्रभाव मध्य एशिया तक फैल गया। दूसरा नवजागरण भक्ति काल में दिखायी पड़ता है। तीसरा नवजागरण अंग्रेजी सभ्यता के सम्पर्क में आने के बाद खासतौर पर 1857 के प्रथम स्वाधीनता आंदोलन के बाद शुरू हुआ जिसका केन्द्र खास तौथ पर बंगाल था। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, थियोसाफिकल सोसाइटी जैसे विविध आंदोलन तथा विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गांधी, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, महर्षि अरविन्द आदि विचाकर इसके प्रमुख सूत्रधार थे। गुप्त युग को भी कुछ लोगों ने नवजागरण युग कहा है।"

19 वीं सदी के नवजागरण में भारतीय जीवन दर्शन निवृतिवाद दृष्टि से प्रवृतिवाद दृष्टि में परिवर्तित होने लगा था। प्राचीन धर्म, ज्ञान, विज्ञान, सामाजिक रीति-रिवाजों पर आँख मूंद कर भरोसा करने की बजाय तर्क के निष्कर्ष पर कसकर उसका सूक्ष्म वैज्ञानिक आंकलन किया जाने लगा। इसी परिस्थिति मे उस नवीन विचारधारा का जन्म हुआ जिसे 'राष्ट्रीयता' का नाम दिया गया। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी का कहना है, "यूरोप में जन्मी हुई विचारधारा में धीरे-धीरे भारत के विचारशील लोगों को भी प्रभावित करना शुरू किया। राष्ट्रीयता भारतवर्ष के लिए नवीन विश्वास थी, इसके पहले इस देश मे यह बात अपरिचित थी। राष्ट्रीयता का अर्थ यह है कि प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्र का अंश है और इस राष्ट्र की सेवा के लिए, इसको धन-धान्य से समृद्ध बनाने के लिए, इसके प्रत्येक नागरिक को सुखी और सम्पन्न बनाने के लिए, प्रत्येक व्यक्ति को सब प्रकार से त्याग और कष्ट स्वीकार करने चाहिए।"

नवजागरण पूर्व जागरण था। जीवन के सभी क्षेत्रों में परिवर्तन की ललक दिखाई देने लगी थी। पुरानी बेड़ियों से मुक्ति की छटपटाहट, नयी चेतना का स्पंदन, नया जोश और नयी उमंग दिखाई पड़ती है। एक ओर ऊँच-नीच, ब्राह्मण- अब्राह्मण और छुआछुत जैसी व्यवस्था को बदलने का साहस दिखाई पड़ता है

तो दूसरी तरफ कुरीतियों तथ प्रथाओं के खिलाफ नवजागरण का बिगुल बजाया जाता है। सामाजिक और साहित्यिक दोनों स्तर पर परिवर्तन दिखाई देता है।

भारतीय नवजागरण और यूरोपीय पुनर्जागरण में मुख्य अंतर यह है कि जहाँ यूरोप में एक सभ्यता का पुर्नजन्म था वहीं भारत में पुनर्जन्म न होकर जागरण की नयी चेतना थी। भारतीय नवजागरण की अवधारणा यूरोप से इस बात में भी भिन्न थी कि यूरोप के देश किसी विदेशी सत्ता के अधीन नहीं थे, जबकि भारत अंग्रेजों के अधीन था। यहाँ के नवजागरण में स्वदेशी राज्य, एक देशीय संस्कृति और एक जातीयता का भाव मिलता है। शम्भुनाथ का कहना है, " भारतीय नवजागरण के अनेक दुर्भाग्यों में से एक यह भी है कि इसे सौ वर्ष से ज्यादा न मिल सके, जबकि पश्चिमी देशों को तीन-तीन, चार-चार सौ वर्ष मिले। वहाँ विज्ञान, प्रौद्योगिक, सुधारवाद, अनुभववाद, आदर्शवाद, अन्तर्राष्ट्रीयतावाद आदि को पनपने का पूरा अवसर मिला। नवजागरण वहाँ विकसित राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग के नेतृत्व में आया तथा स्वतंत्र राजनीतिक वातावरण में आया ।'

यूरोप में संगठित चर्च, कैथोलिक धर्म, ईसाई संसार से मुक्ति पाने की तीव्र आकांक्षा थी, वहीं भारत में यूरोपीय साम्राज्यवाद और सभ्यता का चुनौती देने का साहस था। यूरोप में जहाँ मानव को केन्द्र में रखकर मानवीय उत्स, ज्ञान, विवेक, विकास, स्वतंत्र चिंतन, तर्कशीलता को महत्व दिया गया वहीं भारत में राष्ट्र को धुरी मानकर नवजागरण की परिधि तैयार की गई। भारत में राष्ट्रीयता हितों को सर्वोपरि रखा गया। इन्हीं तर्कों के आधार पर डॉ. मीरा रानी बल कहती हैं- " वह राष्ट्रीय पहले है, मानवतावादी बाद में | यहाँ व्यक्ति में 'भारतीयता' तथा 'राष्ट्रीयता' की गौरव गरिमा और राष्ट्रीय महत्त्वाकांक्षाओं को ही जागृत कर उनका प्रतिरोपण करने का प्रयास किया गयां"

यूरोप में जहाँ प्राचीन ग्रीक-लेटिन सभ्यता, ज्ञान एवं कला से प्रेरणा ग्रहण की गई थी वहीं भारत में अतीत ज्ञान, वैभव, उपलब्धियों को आधार बनाकर उनको युगानुसार पुनर्व्याख्यातित करने का प्रयास किया गया। यूरोप में विज्ञान और धर्म आमने-सामने खड़े थे। जबकि भारत में परिस्थितियाँ बिल्कुल विपरीत थीं। यहाँ धर्म और विज्ञान का समन्वय दिखाई पडता है। प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृतियाँ मिली-जुली दिखाई पड़ती हैं। यूरोप में जहाँ धर्म की सत्ता थी और सामंतवाद था, वहीं भारत धर्म और सामंतवाद के साथ-साथ साम्राज्यवाद के अधीन था। 17 वीं- 18 वीं शताब्दी में यूरोपीय विद्वानों की चिंतन परम्परा, वेदों- उपनिषदों के साथ जुड़ी थी। उपनिषदों के अन्य भाषाओं में अनुवाद हुए थे। जर्मन दार्शनिक 'शोपेन हावर' ने यह अनुवाद पढ़ा और प्रतिक्रिया दी थी परन्तु इन सबके बावजूद यूरोपीय पुनर्जागरण एक बहुत बडी कमी लिये हुए था।

डॉ. रामविलास शर्मा का कहना है, " यूरोप का पुनर्जागरण, यूनानी संस्कृति की नई प्रेरणा, धार्मिक सुधार आन्दोलन, औद्योगिक क्रान्ति, नवीन वैज्ञानिक चिंतन-इन सबके बावजूद धार्मिक अन्धविश्वास लोकमानस में दृढ़ता से जमे हुये थे। वेदान्त ने शोपेन हावर के इन्हीं विश्वासों को उच्छिन्न कर दिया था। इन विश्वासों का सम्बन्ध सामन्ती व्यवस्था से था। वेदान्त ने उन्हें उच्छिन्न कर दिया, अतः मानना चाहिए, वेदान्त की यह भूमिका सामन्त विरोधी थी। यूरोप का देखते संयुक्त राज्य अमरीका सामंती अवशेषों से मुक्त था, परन्तु वे अंधविश्वास वहाँ भी जड़ जमाए हुए थे। 20 वीं सदी में विवेकानन्द का अमरीका में , रवीन्द्रनाथ ठाकुर को ब्रिटेन तथा समूचे पश्चिमी जगत में जो लोकप्रियता मिली, उसका मूल कारण उपनिषदों की वहीं चिंतनधारा थी जो धार्मिक रूढ़ियों से लोकमानस को मुक्त करने में सहायक थी।"

यूरोप के सामंती समाज में जहाँ लोगों को जिंदा जलाने, प्राणदंड देन, स्त्रियों को डायन का दर्जा देने जैसे अंधविश्वास प्रचलित थे, वहीं भारतीय मध्यकाल में ऐसा कुछ नहीं थां यूरोप में पुनर्जागरण अथवा रिनेसाँ कहने का मुख्य कारण यही था कि यूरोप ने एक लम्बे अंधकार युग और सामंती मध्यकाल से छुटकारा पाया था। परन्तु भारत में इसे नवजागरण की संज्ञा दी गई क्योंकि यहाँ पर ऐसा अंधकार युग कभी नहीं था। यहाँ विकास के अवशेष पहले से ही विद्यमान थे, बस उसकी गति तीव्र हुई थी। डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार- " भारत में यह तथाकथित 'मध्यकाल' (लगभग तीसरी से सोलहवीं शताब्दी) का दौर ज्ञान-विज्ञान और विदेश व्यापार सहित उद्योग व्यापार की भारी उन्नति का युग था। यूरोप इस लंबे अंधकार युग से तब बाहर निकलता है जब इटली मे प्राचीन यूनानी और रोमन ज्ञान-विज्ञान और साहित्य कलाओं का पुनरुद्धार होता है।

डॉ. रामविलास शर्मा जिन तर्कों के आधार पर भारत में नवजागरण को स्वीकार करते हैं अथवा नवजगारण की परिभाषा देते है वे बिल्कुल तर्क संगत है। क्योंकि भारत में यूरोपीय मध्यकाल जैसी स्थितियाँ कभी नहीं रहीं। यूरोपीय इतिहास दृष्टि से देखने पर निश्चित समय सीमा को मान लेने भर से कोई कालखण्ड मध्यकाल नहीं हो जाता है। क्या भारतीय मध्यकाल की प्रवृतियाँ यूरोपीय प्रवृतियों से मेल खाती है ? विश्लेषणों से पता चलता है कि भारत में ज्ञान की सतत् प्रक्रिया रही है। बौद्ध, जैन, नाथ, सिद्ध और उसके बाद का सशक्त भारतीय भाषाओं का सांस्कृतिक आंदोलन भी है, जिसे हम भक्ति आंदोलन के नाम से जानते है। ज्ञान और चिंतन की परम्परा का विस्तार भक्ति आंदोलन में दिखाई पडता है, जिसे डॉ. शर्मा ने लोकजागरण कहा था। इस समय संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला, साहित्य, दर्शन, तर्कशास्त्र और मीमांसा की महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का प्रकाशन हो गया था। यूरोपीय पुनर्जागरण और भारतीय नवजागरण में मुख्य अंतर बताते हुए डॉ. प्रदीप सक्सेना कहते हैं, " एक ओर यूरोपीय पुनर्जागरण मे विश्व बाजार में विभिन्न रास्तों को जगह बनाते देखते हैं। डच, पुर्तगाली, फांसीसी और अंग्रेज! दूसरी ओर भारत विश्व बाजार में अपनी जगह इस तरह नहीं बनाता। यहाँ पुनर्जागरण अनुभव किया जाता है– भाषा और साहित्य में।"

यही वह दौर था जब इस्लाम और भारतीय संस्कृति का मेल होता है। भाषाओं में प्रयोग को लेकर रचनाकार सजग होते हैं। अमीर खुसरो एक बहुत बड़े उदाहरण के रूप में मौजूद हैं। इसी काल में उर्दू नामक भाषा का विकास होता है। इसलिए भारतीय नवजागरण एक नयी स्फूर्ति थी न कि सोई हुई जनता का जागृत होना। इसी संदर्भ में डॉ. नामवर सिंह का कथन है- "यूरोप के पास सिर्फ एक रिनेसांस है तो भारत में जवजागरणों की एक लम्बी श्रृंखला है।"

लोकजागरण की नवजागरण में भिन्नता:

15 वीं सदी के जनजागरण को लोकजागरण की संज्ञा दी जाती है। भक्ति काल को लोकजागरण के अन्तर्गत लिया जाता है। यह लोकजागरण नवजागरण से भिन्न है। मूलभूत अन्तर इनकी ऐतिहासिक अन्तर्वस्तु में हैं 19 वीं सदी का नवजागरण जहाँ उपनिवेशवादी दौर की उपज था, वहीं 15 वीं सदी का लोकजागरण सामान्य लोक से संबंधित था। नवजागरण, लोकजागरण से इस बात में भी भिन्न था कि इसके

विचारक शिक्षित मध्यवर्ग से थे, जिन्हें बंगला में भद्रलोक कहा जाता है। यह भद्रलोक सामान्य भक्त कवियों की तरह घुलने मिलने वाला नहीं था।

डॉ. रामविलास शर्मा ने भक्तिकाल को लोकजागरण कहा है। डॉ. शर्मा ने समाज में चार प्रकार के नवजागरणों की चर्चा की है। "ऋग्वेद से पहले का नवजागरण, उपनिषदों से दूसरा नवजागरण, भक्ति आंदोलन से तीसरा नवजागरण और 19 वीं सदी से सम्बन्धित चौथा नवजागरण ।" 'भारतीय साहित्य की भूमिका' (1996) नामक पुस्तक में इन्होंने लोकजागरण की चर्चा की है। जब देश भाषाओं में साहित्य रचा जाने लगता है तो वह आम जनता तक पहुँचता है। इसी विशेषता को बताते हुए डॉ. रामविलास शर्मा कहते है कि- " भारतेन्दु युग उत्तर भारत में जनजागरण का पहला या प्रारम्भिक दौर नहीं है। वह जनजागरण की पुरानी परम्परा का खास दौर है। जनजागरण की शुरुआत तब होती है जब बोल-चाल की भाषाओं में साहित्य रचा जाने लगता है।"

भारतीय नवजागरण को लोकजागरण को विकास माना जाता है। भक्ति आंदोलन में शूद्र, स्त्री, किसान, कारीगर, मुसलमान बड़े पैमाने पर भाग लेते हैं। इसलिए इस आंदोलन ने व्यापक लोकजागरण का रूप लिया। सामाजिक भेदभाव और सामाजिक वैषम्य को दूर करने में भक्ति आंदोलन ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। भक्ति साहित्य लोकजागरण की नींव है। सिद्ध, बौद्ध, नाथ, जैन से लेकर अमीर खुसरो विद्यापति से लेकर घनानंद, पद्याकर तक कवियों में लोकजागरण की प्रवृत्तियाँ पाई जाती है। भक्ति साहित्य में शूद्रों और स्त्रियों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। कबीर, नामदेव, नानक, रैदास से लेकर तमिलनाडु की आण्डाल, कर्नाटक की अकमा देवी, कश्मीर की लाल देवी (लल्लश्वेरी) और हिंदी प्रदेश की मीराबाई का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

डॉ. प्रदीप सक्सेना का कहना है, "माना जा रहा है कि भारतीय पुनर्जागरण का अत्यंत सशक्त दौर भक्तिकाल है। यह पहला आधुनिक पुनर्जागरण है जिसका स्वाभाविक विकास विदेशी व्यापारी रोक देते हैं। इसे लोकजागरण कहना अधिक संगत है, क्योंकि यहाँ भी 'पुनर' के तत्व कम हैं। इस दौर की दार्शनिक उपलब्धियाँ कम महान नहीं है। विशेषकर निगुर्णपंथ की।" 15 वीं सदी में जहाँ इटली में रिनेसां हो रहा था वही भारत में लोकजागरण घटित हो रहा था। आधुनिक भारतीय भाषाएँ 10 वीं- 11 वीं शताब्दी से जन्म लेने लगी थी। प्राकृत तो पहले से ही अस्तित्व में थी। कला के क्षेत्र में नया वास्तुशास्त्र और वास्तुशिल्प पैदा होने लगा था। इमारतों में गुम्बद बनाने की परम्परा आरम्भ हुई। कलात्मक रूप से दरवाजों और मंदिरों का निर्माण होने लगा था। मूर्तिकला नए ढंग से विकसित हुई सूफी संतों द्वारा नया दर्शन 'इश्क' आरम्भ हुआ जो श्रृंगार रस से भिन्न था। यह परिवर्तन जिन लोगों ने किया वे राजा या नवाब न होकर निम्न वर्गों के लोग थे।

इसी बात को रेखांकित करते हुए आलोचक डॉ. नामवर सिंह का कहना है कि- " यह साधारण लोगों का जागरण इटली के जागरण से ही अधिक महान था। ये धनी और शक्तिशाली लोगों द्वारा नहीं चलाया गया बल्कि मजदूर वर्ग के लोगों ने यह अनोखा कार्य किया।" डॉ. नामवर सिंह ने अपने तर्कों द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि यह आम लोगों का जागरण था। जो भी सामाजिक एवं लोकहित कार्य हुए वे विशेष लोगों के लिए नहीं हुए थे।

जैसे-जैसे साहित्य में जन- भाषाओं की दखल बढ़ती जाती है वैसे-वैसे साहित्य में विशिष्टता बढ़ती जाती है। कवि विद्यापति ने लोकसभा, जनभाषा के मधुर होने की बात कही है। तुलसीदास को संस्कृत, अवधी और ब्रज भाषाएँ आती थीं, परन्तु उन्होंने जनभाषा अवधी में अपना साहित्य लिखा । कबीर वाणी जनवाणी में है। अन्य भक्तिकालीन कवियों का साहित्य भी जनवाणी में है। तभी तो इतने वर्षों के बाद भी भक्ति साहित्य आम जन को कंठस्थ है। इसी कारण से डॉ. रामविलास शर्मा ने जनभाषाओं के विकास को लोकजागरण से जोडा है। डॉ. शर्मा ने जनजागरण की शुरुआत तब से मानी है- 1. जब बोल-चाल की भाषाओं में साहित्य रचा जाने लगता है। 2. उस क्षेत्र में आधुनिक जातियों का गठन होता है। हिन्दी की जातीय भाषाओं का विकास (भक्तिकाल) 12 वीं सदी में होता है हिन्दी का विकास 19 वीं सदी यानि नवजागरण काल में।

जिस प्रकार यूरोप में आधुनिकता के दो दौरों का जिक्र किया जाता है जैसे- 15वीं-16 वीं सदी के पुनर्जागरण का और उसके बाद 18 वीं सदी के एनलाइटमेंट (ज्ञानोदय) काल का। उसी प्रकार डॉ. रामविलास शर्मा भी हिंदी साहित्य के संदर्भ में दो चरणों का जिक्र करते है। जैसे 12 वीं सदी के लोकजागरण का और 19 वीं सदी के नवजागरण का। डॉ. मैनेजर पाण्डेय ने इसी बात का समर्थन करते हुए लिखा है- "भक्तिकालीन लोकजागरण जातीय निर्माण को व्यक्त करने वाला सांस्कृतिक आंदोलन है। जिसका मुख्य स्वर सामंतवाद विरोध तथा मानवतावादी है। जबकि नवजागरण राष्ट्रीय स्वाधीनता का सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक आंदोलन है। जिसका मुख्य स्वर साम्राज्यवाद विरोधी सामंतविरोधी हैं।"

भक्तिकाल में भक्त कवि मूलतः भक्त थे, साधु थे। ये लोग समाज के हाशिए पर थे। इनमें से अधिकतर निम्न जाति थे और अत्यंत गरीब थे। इनमें बदलाव की कामना थी और ये कार्य उन्होंने भक्ति के माध्यम से किया। इसी संदर्भ में शंभुनाथ का कहना है, "अतीत में जन-उभारों तथा आंदोलनो के साथ साधारण जन की संस्कृति में भी उभार आया। रूढ़ियाँ टूटीं। खासकर भक्ति आन्दोलन और नवजागरण ने भारतीय लोकसंस्कृति के बुनियादी गुणों को उसके विभिन्न कला रूपों समेत एक बार फिर रोशनी में ला दिया । भक्ति आन्दोलन विश्वास और नवजागरण तर्क बुद्धि पर आधारित था। दोनों ने औजारों की भिन्नता के बावजूद अपनी सीमाओं में सत्ता की संस्कृति को जबरदस्त चुनौती दी।" इस काल के रचनाकार हाशिए के नहीं थे, अपितु वे तो समाज को नेतृत्व करते थे। इनके साथ राजनीतिक और सामाजिक आंदोलन भी खड़े थे, जिन्हें इन्होंने व्यवहारिक रूप से लागू भी करवाया। इसलिए भक्ति आंदोलन उतना सफल नहीं हो सका, जितना की नवजागरण ।

भक्ति द्रविडो की देन है। उत्तर भारत से पहले दक्षिण भारत में भक्ति आंदोलन होता है। तमिल भाषा दक्षिण में सबसे पुरानी (दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व) है। जिन शूद्रों को निम्न और दलित कहा जाता है उन्होंने दक्षिण भारत में भक्ति आंदोलन चलाया। कबीर से पहले रामानन्द ने बहुत बडी क्रान्ति की । भक्ति आंदोलन के दो मुख्य सूत्रधार रहे हैंकिसान और कारीगर | भक्ति साहित्य की यही विशेषता है कि इसमें कश्मीर से लेकर तमिल तक और गुजरात से लेकर बंगाल तक के किसान और कारीगरों का साहित्य है। यूरोप में जहाँ 18 वी सदी में ज्ञान-विज्ञान का आंदोलन (एनलाइटमेंट) चला, वहीं भारत में अकबर के शासन काल में ज्ञान का प्रचार हुआ, जो यूरोप से तुलना करने पर एक शताब्दी पूर्व घटित होता है। यूरोप में जो व्यापारिक पूंजीवाद का दौर था वह जातीय निर्माण को दर्शाता है। जिसे भारत में सांस्कृतिक लोकजागरण कहा जाता है। भक्ति आंदोलन के संदर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा का कहना है कि"तमिलनाडु (छठीं सदी ई.) और महाराष्ट्र

(12 वीं सदी ई.) से होते हुए यह प्रक्रिया मुगल काल में अपने उत्कर्ष पर दिखाई देती है। यहाँ भक्ति आंदोलन में यूरोप की तरह रिनेसाँ और रिफॉर्मेशन के बीच अनिवार्य टक्कर के विपरीत ये दोनों धाराएँ आपस में घुली-मिली हुई और एक-दूसरे की पूरक नजर आती है।"

भक्ति आंदोलन का मुख्य स्वर सामंत विरोधी और मानवतावादी है। भक्ति काल के प्रतिनिधि कवि तुलसीदास और उसी प्रकार लोकजागरण का प्रतिनिधि करते हैं जिस प्रकार इटली के 'दाँते', इसलिए इसे लोकजागरण कहा जाता है।

नवजागरण के प्रेरक तत्व:

भारतीय नवजागरण के प्रेरक तत्वों पर विचार करने से पूर्व भारतीय नवजागरा की सामाजिक राजनीतिक पृष्ठभूमि को जानना आवश्यक है। किन परिस्थितियों में नवजागरण का विकास तीव्र हुआ। यह तो स्पष्ट हो चुका है कि भारतीय नवजागरण का विकास तीव्र हुआ। यह तो स्पष्ट हो चुका है कि भारतीय नवजागरण, पुनर्जागरण न होकर एक क्रमिक विकास की प्रक्रिया है, जो आर्यों के आगमन से आरम्भ हो जाती है। बुद्ध, महावीर से चलेते हुए यह प्रक्रिया भक्ति सागर को पार करते हुए 1857 की क्रान्ति से गुजरते हुए आधुनिक युग में प्रवेश करती है। परन्तु इस सतत् निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया के पीछे कुछ सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक कारण रहे हैं। वीर भारत तलवार का कहना है, "भारतीय नवजागरण की खासियत यूरोपीय सम्पर्क से हासिल आधुनिक ज्ञान-विज्ञान को आत्मसात करके भारतीय सभ्यता और संस्कृति के मुआफिक एक आधुनिक समाज बनाने की आत्मनिर्भर कोशिशों में थी।"

अंग्रेजी का आगमन इन कारणों में से एक था। प्रायः ऐसा माना जाता है कि नवजागरण अंग्रेजों की देन है। अंग्रेजो की देन है। अंग्रेजी ने ही आधुनिकता शुरुआत की। यह धारणा बहुत से भारतीय और पाश्चात्य विचारकों की है।

परन्तु सत्य यह है कि अंग्रेजी की पराधीनता का छात्रछाया में भारत की राष्ट्रीयता विकसित हुई। यह उनकी मजबूरी थी कि उन्होंने अपने निजी स्वार्थों के चलते भारत में आधुनिकता का आवष्किार किया। परन्तु इसके बदले में उन्होंने जो शोषण, आतंक, लूट और अमानवीय अत्याचार भारतीय जनता के साथ किए उसका इतिहास गवाह रहा है।

अंग्रेजों का आगमन:

अंग्रेजो का भारत आगमन एक व्यापारकि संघ 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' के माध्यम से हुआ। अंग्रेजी से पूर्व अन्य विदेशी व्यापारी भी डच, फ्रांसिसी, पुर्तगाली भी कपड़ों एवं मसालों के व्यापार के लिए भारत आए थे। ये लोग यहाँ से बुलियन (सोना-चाँदी) के बदले सूती-रेशमी कपड़े, मसाले ले जाते थे। ये इनके लिए बड़े लाभ का सौदा था। डॉ. रामविलास शर्मा का कहना है, ' अंग्रेज यहाँ व्यापारी बनकर आए, मुख्यतः अपने देश का माल बेचने वाले व्यापारी नहीं, हमारे यहाँ का माल ले जाकर अपने देश में बेचने वाले व्यापारी

बनकर आए । यरूप के देशों में इस बात को लेकर प्रतिद्वन्दिता थी, भारत से व्यापार करने का इजारा किसके पास रहता है। इस समय भारत माल का निर्यात करने वाला प्रमुख औद्योगिक देश था, बाहर का माल वह बहुत कम खरीदता था।" अंग्रेजों ने आर्थिक कारणों से भारत को अपना उपनिवेश बनाया, जो फिर साम्राज्यवाद में तब्दील हो गया। "अंग्रेजों द्वारा भारत पर राजनीतिक आधिपत्य करने का मुख्य आकर्षण यही था कि वह ब्रिटिश साम्राज्य का औपनिवेशिक उपांग बनकर इंग्लैंड की अर्थव्यवस्था और उद्योगों की समृद्धि के लिए आवश्यक खाद्य तथा कच्चे माल की संपूर्ति और ब्रिटिश उत्पादित वस्तुओं का विदेशी बाजार बन जाएँ।"

भारत के धन-वैभव से आकृष्ट होकर हरी 17वीं-18वीं शताब्दी में विदेशी व्यापारियों ने व्यापार का ठिकाना भारत को बनाया। कच्चे माल का प्रमुख केंद्र होन के साथ-साथ ब्रिटेन ने अपने तैयार माल का बाजार भी भारत को बनाया । भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था को नष्ट करके पूंजीवादी व्यवस्था कायम की। पुरानी सामंतवादी व्यवस्था जिसमें जमीन का मालिक किसान होता था और जिसे उपज का छठा भाग राजा को कर या लगान के रूप में देना होता था, उसे समाप्त करके नया सामंतवाद स्थापित कियां इस व्यवस्था ने किसानों को मजदूर बना दिया। डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है, "भारत में अंग्रेजों ने यहाँ के व्यापार का नाश करके औद्योगिकीकरण की जङ की काट दी। पहले यहाँ का माल खरीदकर अपने यहाँ बेचते थे, फिर खुली होङ के बदले, कानून के सहारे यहाँ के व्यापार का गला घोंटने लगे।

अंग्रेजी मशीने हिन्दुस्तानी दस्तकारी का मुकाबला न कर पाई थी। इसीलिए इंग्लैंड के औद्योगिकीकरण को बढ़ावा देने के लिए हिन्दुस्तानी माल पर कर लगाया गया था। राजकीय दबाव के जरिए न कि खुली होङ के जरिए- जब अंग्रेजों ने यहाँ के व्यापार और उद्योग धंधों का नाश कर दिया, तब स्वछन्द व्यापार नीति लेकर आए।"

जनता से मालगुजारी वसूल करने और नियंत्रण के लिए छोटे-छोटे जमींदारों को सामंत बना दिया। ये जमींदार अंग्रेजों के उसी प्रकार अधीन थे, जिस प्रकार उनके अधीन किसान । अंग्रेज जमीदारों का शोषण करते और जमींदार , किसानों का। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से पहले की भूमि व्यवस्था पर एक अंग्रेज से एक किसान ने सीधे शब्दों में कहा था- " साहब जंगल, नदियाँ, पेङ, तालाब, सभी गाँव, तीर्थस्थान अब सरकार के हो गए हैं, उसने सब कुछ ले लिया है, हर चीज ले ली है।"

भारत पर राजनीतिक प्रभुत्व कायम करने के लिए अंग्रेजों ने यहाँ के घरेलू ग्रामीण उद्योगों को तहस-नहस करके यहाँ की ग्रामीण अर्थव्यवस्था का समूल ढाँचा नष्ट कर दिया। इंग्लैंड के कच्चे माल की आपूर्ति के लिए भारत को साधन बनाया, चाहे इसके लिए उन्होंने फिर रेल मार्गों का निर्माण करवाया या फिर सङक मार्गों का या फिर नहरों का निर्माण करवाया। बहुत से विद्वानों का मानना है कि भारत के बौद्धिक विकास और सामाजिक स्तर को ऊँचा उठाने के लिए आत्मलिर्भर ग्रामों का विनाश आवश्यक था, जो अंग्रेजों ने किया। इसलिए ये लोग भारत में प्रगतिशील भूमिका का श्रेय अंग्रेजों को देते हैं। परन्तु भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था प्राचीन काल से ही मजबूत, सुदृढ़ और अक्षुण्ण थी। जो कि अन्तर्देशीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का माध्यम थी।

अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारत में विश्व मे अपनी पहचान थीं भारत के अन्य राष्ट्रों से व्यापारिक संबंध थे। अंग्रेजों द्वारा भारत पर अधिकार करने के बाद भी भारत का व्यापार अन्य राष्ट्रों से हो रहा था।

डॉ. रामविलास शर्मा कहते हैं- "पुनर्जागरण काल के यूरोप से उसी समय के भारत की हालत अच्छी थी। यहाँ खेती और कारीगरी का अलगाँव बहुत पहले से चला आ रहा था। यहाँ व्यापार की बड़ी-बड़ी मंडियाँ आबाद थी। उनमें देशी खपत के लिए औश्र विदेश में बिक्री के लिए भी माल इकट्ठा किया जाता था।"

1853 में भारत की उपज ईरान और तुर्की होते हुए भी यूरोप पहुँच रही थी। इंग्लैंड में औद्योगिक क्रान्ति हो चुकी थी, परन्तु फिर भारत के सूती माल की खपत अमेरिक और अन्य देशों में ज्यादा थी। औद्योगिक क्रांति के पहले समय में भी भारत की स्थिति अन्य यूरोपीय राष्ट्रों से अच्छी थी। यहाँ व्यापार की बडी बडी मंडियाँ जैसे- आगरा, बनारस, मदुरई, लखनऊ आदि पहले से ही आबाद थी। ढ़ाका की मलमल अपनी खूबसूरती के लिए विश्व भरत में प्रसिद्ध थी, परन्तु अंग्रेजों ने भारतीय उद्योगों का समूल नाश करके मशीनों से व्यापार आरम्भ किया। जिससे लाखों बुनकर और कारीगर तबाह हुए। डॉ. रामविलास शर्मा कहते हैं कि- "जोर जबरदस्ती से, धोखेबाजी से, सामंतो की मदद से गरीब किसानों को फौज मे भरती करके, उन्हें अपने ही देशवासियों से लडाकर, अंग्रेजो ने भारत पर अधिकार किया। यहाँ के उद्योग और व्यापार का नाश किया।"

ईसाई मिश्नरियों का आगमन:

भारत में आपसी फूट, वैमनस्य और द्वेष भाव इतना अधिक था कि उसका फायदा अंग्रेजों ने उठाया । भारत पर राजनीतिक प्रभुत्व प्राप्त करने के लिए अंग्रेजों को भारत के ऐतिहासिक, सामाजिक परिस्थितियों को समझने की आवश्यकता पड़ी। जिसके लिए उन्हें भारतीय ग्रंथों का अंग्रेजी अनुवारद करवाना पडा। इस कार्य के लिए उन्हें अंग्रेजी शिक्षा के लिए स्कूल और कॉलेज खोलने पड़े । ईसाई मिशनरियों ने अपने धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए अंग्रेजी ग्रंथों का अनुवाद भारतीय भाषाओं में करवाया। अपनी धार्मिक पुस्तकों को छापने के लिए प्रेस की स्थापना की। प्रेस ने आगे चलकर नवजागरण में सराहनीय भूमिका अदा की।

ईसाई मिश्नरियों द्वारा अपने धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए हिन्दू धर्म की निन्दा की जाने लगी। हिन्दू धर्म में प्रचलित रूढ़ियों , असमानता और भेदभाव को मुद्दा बनाकर लोगों को ईसाई धर्म की तरफ आकृष्ट करना आरम्भ कर दिया। श्री रामधारी सिंह दिनकर का मत है कि- "मनुष्य सामान्यतः यह बर्दाश्त नहीं कर सकता कि उसका कोई भी धर्मबन्धु अपने धर्म को छोडकर किसी अन्य धर्म को स्वीकार करे। इस दृष्टि से ईसाईयत का प्रचार भारत मे भी लोकप्रिय नहीं हुआ है। किन्तु ईसाई धर्म प्रचारकों ने भारत की नई भाषाओं की जो सेवा की वह भूलने की चीज नहीं है। आवश्यकता तो उनकी अपनी थी कि यहाँ की भाषाओं को सीखकर लोगों को अपनी बात समझाएं। किन्तु यह कार्य उन्होंने बड़े मनोयोग से किया।"

पाश्चात्य विद्वानों द्वारा अनुवाद कार्य:

19वीं शताब्दी से पहले ही पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय ज्ञान-विज्ञान, वेद, दर्शन, उपनिषद पर कार्य कर भारतीय ज्ञान के प्रति अपनी जिज्ञासा बढ़ाई | 1774 में सर विलियम जोन्स ने 'एशियाटिक सोसाइटी' की स्थापना कर संस्कृत के महत्त्वपूर्ण ग्रंथ जैसे- अभिज्ञान शाकुन्तलम्, मनुस्मृति ऋतुसंहार आदि का अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया। अन्य विद्वानों जैसे- सारनाथ के स्तूप की खोज, विजयनगर साम्रज्य की

खोज, कल्हण की राजतंरगिणी की सूचनाएँ, सिक्कों के माध्यम से इतिहास की जानकारी दी। पाश्चात्य विद्वानों के इन सब कार्यों से भारतीयों में भी अपने ज्ञान-दर्शन को जानने की इच्छा जागी। बुद्धिजीवियों का जो वर्ग भारतीय संस्कृति को हेय और गवारू दृष्टि से देखता था, उनमें नया आत्मविश्वास आया और भारतीय भी समझने लगे कि हमने भी विश्व सभ्यता में योगदान दिया है।

सुधारवादी आंदोलन:

तत्कालीन समाज में विभिन्न प्रकार की कुप्रथाएँ, सामाजिक कुरीतियाँ, अंधविश्वास, धार्मिक रूढ़ियाँ प्रचलित थीं। सती प्रथा, बाल-विवाह, बहु-विवाह जैसी रूढ़ियाँ व्याप्त थीं। पुरुष कई विवाह कर सकता था, परन्तु विधवा को पुनर्विवाह की अनुमति प्राप्त नहीं थीं समाज में निम्न, दलित, शूद्र और स्त्रियों की हालत दयनीय थी। स्त्री शिक्षा निषेध
थी। निम्न वर्ग के लोग हर प्रकार के शोषण सहने के लिए अभिशप्त थे। 19 वीं सदी के समाज सुधारकों और चिंतकों ने पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान के सम्पर्क में आकर इन सामाजिक रूढ़ियों एवं प्रचलित बुराईयों की तरफ अपना ध्यान खींचा।

नवजागरण पूर्ण जागरण काल था। भारत में इसका आरम्भ बंगाल से माना जाता है, परन्तु यह सम्पूर्ण भारत में हुआ। कहीं पर पहले तो कहीं पर बाद में। राजाराम मोहन राय के ब्रह्म समाज, केशवचन्द्र सेन की प्रार्थना सभा, स्वामी विवेकानन्द सरस्वती के आर्य समाज, एनी बेसेंट की थिसॉफिकल सोसाइटी, रामकृष्ण परमहंस के रामकृष्ण मिशन, महाराष्ट्र में ज्योतिबा फुले, केशवसुत के द्वारा आया। दक्षिण भारत में तेलुगु भाषा कंडुकुरी वीरेशलिंगम पंतलु ने हितकारिणी समाज की स्थापना करके विधवा विवाह और स्त्री शिक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किया। केरल में नारायण गुरु ने नवजागरण की ज्योति जलाई। दलित और शोषित के उत्थान के लिए इन्होंने विशेष रूप से कार्य किया। तमिल कवि सुब्रह्मण्यम भारती ने प्राचीन रूढ़ियों , अंधविश्वासों तथा सामाजिक नियमों के खिलाफ विद्रोह किया। वीर भारत तलवार के अनुसार, " आधुनिक शिक्षा और ज्ञान-विज्ञान का भारतीय सुधारकों पर महत्त्वपूर्ण असर परम्परा की जगह विवेक को प्रमाण मानने के रूप में सामने आया।"

भारतीय नवोत्थान के आरम्भिक प्रयासों में संस्कृति, समाज, धर्म-दर्शन, जीवन-जगत से मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा से संबंधित है। इन सुधारवादी आंदोलनों ने भारतीय नवयुवकों की दिशा बदल डाली। पाश्चात्य शिक्षा और ज्ञान-विज्ञान के सम्पर्क में आने से नई जागृति आई। जीवन के विविध क्षेत्रों में दूरगामी परिवर्तन हुए। कए नई सोच विकसित हुई जो कि तर्क और वैज्ञानिकता से युक्त थी। अंग्रेजी ज्ञान-विज्ञान के सम्पर्क में आने से भारतीय साहित्य में नई विचारधारा आई। राजा और नवाबों के लिए लिखा जाने वाला रीतिकाव्य आम लोगों के लिए लिखा जाने लगा। महाकाव्य के स्थान उपन्यास, नाटक, निबंध लिखे जाने लगे।

अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त भारतीयों में भी दो वर्ग थे- एक जो पाश्चात्य संस्कृति का समर्थक था और दूसरा आलोचक । परन्तु राजाराम मोहन राय , ईश्वर विद्यासागर, रवीन्द्रनाथ टैगोर, स्वामी विवेकानन्द जैसे नेताओं ने पश्चात्य और स्वदेशी संस्कृति का समन्वय करना सिखाया। पाश्चात्य संस्कृति के प्रगतिशीन

विचारों को अपनाकर अपने देश के धर्म-दर्शन, रीति-रिवाजों, ज्ञान-विज्ञानों को तर्क की कसौटी पर कसना सीखा। दूसरे पाश्चात्य संस्कृति के समर्थकों की भी आँखे खुल गई। भारतीय चिंतकों रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, महषि अरविंद ने भारतीय संस्कृति पर गर्व करने की भावना को जन्म दिया। विवेकानन्द ने विश्व पटल पर भारतीय संस्कृति का महत्त्व स्थापित किया।

वीर भारत तलवार के अनुसार, " यह समझना भ्रामक होगा कि भारतीय नवजागरण सिर्फ पश्चिमी विचारों के सम्पर्क की सीधी-सरल देन था। वास्तव में यह दो विचार दृष्टियों की तकरार से पैदा हुई बैचेनी का नतीजा था। नई शिक्षा में विकसित होने वाले हर युवा भारतीयों को नए पश्चिमी ज्ञान और परम्परा के जैसा तीखा द्वन्द्व होता था, वैसा पहले किसी भी दौर में नहीं हुआ। कई सुधारकों ने शिक्षा से अपने जीवन में मचने वाली खलबली और उसके क्रांतिकारी प्रभावों की चर्चा की है।"

भारतीय संस्कृति के साथ पाश्चात्य संस्कृति के मेल से आधुनिक राष्ट्रवाद और राष्ट्रीय चेतना का जन्म हो रहा था। परन्तु मुख्य आधार भारतीय संस्कृति ही थी। वह संस्कृति जिससे राजाराम मोहन राय ने उपनिषदों को आधार बनाया, तो विवेकानन्द ने वेदांत का, स्वामी दयानन्द ने वेदों को आधार बनाया तो तिलक और गांधी सरीखे नेताओं ने गीता का आधार बनाया। अंग्रेजी साम्राज्यवाद और उननिवेशवाद की समस्याओं ने उनके विचारों को नयी दिशा देने का कार्य किया। हिंदी साहित्य में भारतेंदु और उनके मंडल ने यह कार्य किया। शंभुनाथ का मानना है कि भारतके अलग-अलग भागों में नवजागरण को देखने की अलग-अलग प्रवृत्ति रही है। बंगाल वाले सबसे पहले नवजागरण का उद्भव अपने प्रान्त में स्वीकार करते है। हिंदी नवजागरण को हिंदी पट्टी के बाहर वाले लोग स्वीकार नहीं करते। इसी प्रकार महाराष्ट्र नवजागरण या तमिल नवजागरण का भी अपने-अपने जातीय विवाद रहे है। इसी बीच शंभूनाथ स्वीकारते हैं कि बांग्ला नवजागरण का केंद्रीय सारतत्व बुद्धिवाद है (राजाराम मोहन राय), जबकि हिंदी नवजागरण का केंद्रीय सारतत्व दलित चेतना (ज्योतिबा फुले) और सुधारवाद रानाडे है। तमिल नवजागरण का केंद्रीय सारतत्व ब्राह्मणवाद विरोध और द्रविङ चेतना (नायकर-पेरियार) है। इसी तरह केरल नवजागरण का केंद्रीय सारतत्व दलित चेतना (नारायण गुरु) है।"

1857 का विद्रोह:

डॉ. रामविलास शर्मा का कहना है, "पलासी के युद्ध के 100 साल बाद अठारह सौ सतावन की लडाई शुरू हुई और दो साल तक चली। अंग्रेजों के भारत से निकलने के लिए इस संग्राम में बादशाह, नवाबों , सामन्तों, जमींदारों, किसानों, बुद्धिजीवियों- जनता के प्रायः सभी वर्गों के लोगों ने भाग लिया।" आधुनिक भारतीय नवजागरण 1857 के विद्रोह से आरम्भ होता है। इस विद्रोह के कारण जिस राष्ट्रीय चेतना का विकास होता है वह ब्रिटिश सरकार के खिलाफ चलने वाले संघर्षों का मूल आधार बनती हैं, जैसे- नील विद्रोह (1859-60), जयंतिया विद्रोह (1860-63), कूका विद्रोह (1869-72), महाराष्ट्र के किसानों का मोर्चा (1875), रंगा विद्रोह (1879-80) आदि ऐसे ही विद्रोह थे। 1857 से पहले भी विद्रोहों की एक लम्बी परम्परा दिखाई पड़ती हैं, परन्तु उनका राष्ट्रीय स्वरूप न होने के कारण वे अंग्रेजों द्वारा दबा दिए गए, जैसे संन्यासी विद्रोह, आदिवासी विद्रोह, संथाल विद्रोह, भील विद्रोह, गूजरों का विद्रोह, वहाबी आंदोलन आदि । परन्तु 1857

का मुक्ति संग्राम धर्म, जाति, वर्ण को भूलाकर पूरे देश में लडा गया था। हिन्दू-मुस्लिम दोनों ने बहादूरशाह जफर को भारत का एकमात्र बादशाह मान लिया। सभी राजा, सामंत और नवाब एक झंडे के नीचे एकत्रित हो गए थे। डॉ. नगेन्द्र का कथन है- "इन सिपाहियों में उच्च, निम्न वर्ण के हिन्दू एवं मुसलमान दोनों शामिल हो गए थे, इसलिए यह असाप्रदायिक राष्ट्रीय, सांस्कृतिक स्वाधीनता का युद्ध था। देश भर में रचित साहित्य, लोकगीतों का सार भी यही निकलता है कि, यह प्रथम मुक्ति संग्राम ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा प्रेरित सम्प्रदायवाद, धर्मवाद तथा जातिवाद की करारी हार थी।'

सन् 1857 के विद्रोह को कुचलने के लिए अंग्रेजों ने हर अनैतिक तरीके अपनाए। हिंदू-मुस्लिम दंगे करवाने के लिए हर अनैतिक प्रयास किए, परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। जिस 'फूट डालो राज करो' की नीति से ब्रिटिश साम्राज्य शासन कर रहा था उसकी यह करारी हार थी। डॉ. नगेन्द्र का कथन है कि- " इस स्वाधीनता संग्राम का नेतृत्व फौजी वर्दी में किसान- मजदूरों ने किया और देशी राजाओं- नवाबों ने इसमें जनता की सहायता की और इस स्वाधीनता संग्राम में ऊँची जातियों का साथ भी निचली जातियों ने दिया था। अपनी मूल भावना में यह युद्ध धर्म, कर्म, जाति, संप्रदाय, प्रदेश आदि की भावना से मुक्त एक राष्ट्रीय चरित्र का संपूर्णता में वाहक था।"

डॉ. प्रदीप सक्सेना का मानना है कि 1857 का विद्रोह सभी क्षेत्रों से प्रेरणा प्राप्त करता है। अपनी इसी बात का समर्थन करते हुए उन्होंने लिखा है, "1857 की महान चेतना केवल हिन्दी प्रदेशों की वस्तु नहीं रह गई, उसे बंगाल ने अपनाया और पंजाब ने भी। यदि खोज की जाएगी तो साम्राज्यवाद विरोधी जनमानस को बल देन वाला, समूचे राष्ट्र को लपेटने वाला यही संघर्ष उभर आएगा।"

यह सामंत विरोधी जनजागरण था। उपनिवेशवादी ताकतों से सीधी टक्कर थी। इस विद्रोह ने भी उन भारतीयों ने भी उन भारतीयों की आँखें खोल दी जो अंग्रेजो का गुणगान करते नहीं थकते थे और यह समझते थे कि अंग्रेज सिर्फ व्यापार करने आए हैं। पूरे विश्व में अंग्रेजों की नीतियों का पर्दा फाश हो गया। यद्यपि इस विद्रोह को कुचल दिया गया परन्तु आगे के लिए मार्ग प्रशस्त हो गया। के लिए मा मुस्लिम

मुस्लिम नवजागरण:

19वीं सदी के पूर्वार्ध तक मुस्लिम समुदाय यह अनुभव नहीं करता था कि उनका विकास हिन्दुस्तान से अलग है। परन्तु अंग्रेजों ने 'फूट डालो और राज करो' की नीति से सांप्रदायिक ढंग से हिन्दू-मुस्लिम की विभाजक प्रवृत्तियों का पोषण किया। 1857 के विद्रोह में हिन्दु-मुस्लिमों ने एक जुट होकर अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह किया था। "पुनरुत्थानवाद को बढ़ावा देने वाले आंदोलनो में वहाबी आंदोलन, बंगाल का फर्जिया और उत्तरप्रदेश में देववंद स्कूल का दारुल उलूम आदि के प्रभावशाली नेताओं सईद अहमद, मोहम्मद कासिम ननौतवी गंगोही आदि ने अंग्रेज शिक्षा, भाषा, शासन के विरुद्ध, घृणा भाव जगाकर अभियान चलाया था तथा भारत को 'दारुल हरूब' बताकर शुद्ध धर्म के पुनरुत्थान का उपदेश दिया।" वहाबी आंदोलन, हाजी शरीय तुल्लाह के नेतृत्व में किसान आंदोलन पहले से ही हो चुके
थे।

1863 में 'मोहम्मडन लिटरेरी सोसाइटी' की स्थापना नवाब अब्दुल लतीफ तथा 'सेंट्रल नेशनल मोहम्मडन एसोसिएशन' की स्थापना 'सैयद अमीर अली' के प्रयासों से की गई। मुसलमानों के उत्थान के लिए सर सैयद अहमद ने 'साइंटिफिक सोसाइटी' (1864) तथा 'अलीगढ़ एंग्लो मुहम्मद ओरियन्टल कॉलेज' (1875) की स्थापना की। इंग्लैंड से लौटने पर सर सैयद ने अनुभव किया कि मुसलमान हर जगह पिछड़े हुए हैं। मुस्लिम समाज में नई चेतना लाने के लिए शैक्षिक सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक जागृति के लिए प्रयास आरम्भ किए।

भारतीय नवजागरण : (1857 के संदर्भ में)

भारतीय नवजागरण का आरंभ बंगाल से माना जाता है। यह नवजागरण ब्रिटिश शासन के प्रभाव से पूरे देश में फैला। इस नवजागरण में ही सुधारवाद, राष्ट्रवाद, आधुनिकीकरण जैसे सिद्धान्त प्रचलित हुए। शंभुनाथ का कहना है कि- "विवेक कहीं जब धार्मिक रूढ़ियों से टकराता है तो राष्ट्रवाद का, प्राचीनतम से टकराता है तो आधुनिकीकरण का और आर्थिक विषमता से टकराता है तो समाजवादी सिद्धान्तों का उदय और विकास होता है। भारत में नवजागरण की एक अन्तर्धारा सुधारवाद तथा आधुनिकीकरण के लक्ष्य को लेकर चल रही थी, नेतृत्व में थे राजा राममोहन राय भारत में नवजागरण की एक दूसरी धारा राष्ट्रवादी मुक्ति का लक्ष्य लेकर चल रही थी। संन्यासी, संथाल, भील, पोलिगार तथा कोल विद्रोह के भीतर से जिसकी अन्तिम परिणित हुई 1857 के राष्ट्रीय विद्रोह में |

भारतीय नवजागरण का प्रमुख साम्राज्यवाद तथा सामंतवाद से छुटकारा पाने के साथ राष्ट्रवाद भी बन गया था। यह परिवर्तन बंगाल, महाराष्ट्र, तमिलनाडु और हिन्दी प्रदेश में हुआ। बंगाल, महाराष्ट्र में मुख्य परिवर्तन सुधारवाद के रूप में, हिंदी प्रदेश में राष्ट्रवाद के रूप में हुआ।

हिंदी पट्टी की यदि बात करें तो नवजागरण यहाँ साहित्य में दिखाई पड़ता है, सुधारवाद में कम । परन्तु अपने साहित्य के माध्यम हिंदी नवजागरध ने जो प्रभाव छोडा है, वह अद्‌वितीय है। इसी संदर्भ में डॉ. नामवर सिंह कहते है"जिस प्रकार अन्य देशों के, अन्यत्र के नवजागरण एक बृहत्तर मानववाद या मानवतावाद के अग्रदूत रहे हैं, उसी प्रकार यह हिन्दी नवजागरण भी उस मानवतावाद का अग्रदूत रहा है।" इसी नवजागरण के परिणामस्वरूप भारतेंदु और उसके सहयोगी स्त्री शिक्षा, सर्व धर्म समभाव अंतर्जातीयता, सदाचरण का प्रचार कर रहे थे और साम्राज्यवाद के विरुद्‌ध जाकर 'स्वत्व निज भारत गहै' का प्रसार फैला रहे थे। निःसंदेह ये 1857 के विद्रोह के परिणाम स्वरूप ही था।

1857 का विद्रोह यद्‌यपि असफल हो गया था, परन्तु इसकी अंतर्वस्तु इतनी मजबूत थी, जिससे अंग्रेजी शासन की नींव हिल गई थी। इन विद्रोहियों में बंगालियों सी प्रखर बुद्‌धि और विवेक ना सही, परन्तु साम्राज्यवादी ताकतों के खिलाफ लड़ने का साहस अवश्य था। विद्रोह के साये में हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख किसानों ने एकजुट होकर उपनिवेश के विरूद्‌ध 'राष्ट्र' की धारणा खडी की। जिसके परिणामस्वरूप भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी की जगह महारानी विक्टोरिया का शासन आ गया।

जिप पक्षों में हिन्दी नवजागरण, बंगला के नवजागरण से भिन्न था वह पक्ष थे- 1. स्वभाषा 2. स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग और 3. भारतीय जातियों की एकता। 1882 में बंकिमचन्द्र चटर्जी 'वंदे मातरम्'

लिख रहे थे तो भारतेन्दु ने 'अंग्रेज स्त्रोत' लिखा। इकबाल ने 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा' 20 वीं सदी के प्रारम्भ में लिखा, परन्तु 'अजीमूल्ला खाँ' ने 'हम है इसके मालिक, हिन्दुस्तान हमारा' 19 वीं सदी के उत्तरार्ध में लिख दिया था। सामयिक समस्याओं पर भी तत्कालीन लेखकों ने जमकर लिखा। 1870 में भारतेन्दु द्वारा 'कविता वृद्धिनी' सभा की स्थापना की गई, जिसमें विभिन्न नाटक खेले जाते थे। काशीनाथ खत्री का 'बाल विवाह' और अम्बिका दत्त व्यास का 'गौ-संकट' इसी सभा द्वारा खेले गए।

प्राचीन काल से ही देश में सांस्कृतिक एकता रही है परन्तु आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक एकता के अभाव में राष्ट्रीय चेतना 1857 के विद्रोह से पहले निर्मित नहीं हो पाई थी। राजाराम मोहन राय और भारतेंदु सरीखे नेताओं ने अपने अध्ययन और यात्राओं के जरिए नए अनुभव प्राप्त किये और उनके देशप्रेम मे राष्ट्रवाद भी सम्मिलित हो गया। इस राष्ट्रवाद का उद्देश्य सुधारवाद था, साम्राज्यवाद से विरोध था, स्वदेशी उत्थान था और राष्ट्रीय एकीकरण था। कर्मेन्दुnशिशर का कहना है, "नवजागरण का ताप देश की किसी एक भाषा, एक जाति, एक समाज या विद्या में था- ऐसी बात नहीं। वह जगदीश चन्द्र बसु से भगत सिंह तक फैला हुआ था। वह तत्कालीन भारतीय भाषाओं के अलावा 'भारतीय अंग्रेजी' में था और भोजपुरी जैसी तमाम बोलियों तक अभिव्यक्त हुआ था।"

हिन्दी नवजागरण का परिप्रेक्ष्य:

हिन्दी नवजागरण की सामाजिक, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

हिन्द नवजागरण हिन्दी की जातीय गद्य परम्परा से जुड़ा है। हिन्दी का नवजागरण 1857 से प्रेरणा प्राप्त करता है, इसलिए इसका स्वर राष्ट्रीय है। सन् 1857 के विद्रोह में साम्प्रदायिकता का स्वरूप दिखाई नहीं पड़ता। यही इसकी मुख्य विशेषता रही। भारतेन्दु युगीन साहित्य यथा राधाचरण गोस्वामी कृत, 'यमलोक की यात्रा' प्रतापनारायण मिश्र के 'कानपुर महात्मय' राधाकृष्णदास के 'निस्सहाय हिन्दु' में 1857 विद्रोह का अप्रत्यक्ष रूप से हवाला दिया गया है। भारतेन्दु युग के प्रत्येक लेखक की अपनी विशिष्टता रही और हिन्दी नवजागरण में विशिष्ट योगदान । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राधाकृष्ण दास, बालमुकुन्द गुप्त आदि लेखकों ने न सिर्फ हिन्दी के विकास में अपना योगदान दिया बल्कि नवजागरण की मुख्य धारा को शक्ति दी। सामाजिक रूढ़ियों तथा अंधविश्वासों के खिलाफ अंत तक संघर्ष किया। डॉ. रामविलास शर्मा का कथन है कि- " ये लेखक गद्य न लिख रहे थे, न भाषा सुधार के लिए भाषा सुधार रहे थे। भाषा उनके लिए एक साधन थी, साध्य नहीं। वह हिन्दी गद्य के रूप में सामाजिक उत्थान का एक ऐसा प्रबल शस्त्र गढ़ रहे थे, जो बिखरे हुए हिन्दी भाषियों को एक करे और उन्हें स्वाधीनता, शिक्षा और अपने जनवादी अधिकारों के लिए लडना सिखाए।"

भारतेन्दु ने जिस जातीय गद्य की शुरूआत की उसका पहला स्वर था, ब्रिटिश साम्राज्वाद का पूर्ण विरोध और राष्ट्रीय चेतना का विकास । यद्यपि इस विरोध के साथ-साथ राजभक्ति के स्वर भी दिखाई पड़ते है। परन्तु ये उस युग की परिस्थितियों की देन थी। डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है, "भारतेंदु की असंगतियाँ उनके युग की सीमाओं से पैदा नहीं हुई। वे उनके वर्ग की असंगतियाँ है, उस काजल की कोठरी की स्याही है जिसमें भारतेंदु का जन्म हुआ था।" कवि चयन सुधा के संपादकीय में भारतेन्दु स्वदेशी वस्तुओं

के अपनाने की वकालत करते हैं । 'तदीय समाज' की स्थापना करके उन्होंने स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने पर जोर दियां महात्मा गांधी से 50 वर्ष पहले उन्होंने यह बात कही थीं 'राष्ट्रीय चेतना के विकास में प्राचीन सांस्कृतिक विरासत की याद दिलाते हुए अशिक्षा, पिछड़ेपन, रूढ़ियों और कुरीतियों पर तीखा प्रहार कियां' भारतेन्दु युग की जातीयता का दूसरा पहलू है- जनता से उनका जुडाव और सांस्कृतिक एकता। भारतेन्दु ने लोगों को लोकभाषा में लिखने को प्रेरित किया। लोकप्रचलित कथाओं को अपने नाटकों का विषय बनाया। "भारतेन्दु युग में हिन्दी गद्य का अभूतपूर्व विकास हुआ। इस गद्य की भाषा अपवाद रूप में संस्कृत गर्भित है , समकालीन बंगला गद्य की भाषा से यह काफी भिन्न है। भक्ति साहित्य की भाषा लोकमुखी है, अधिकांश रीति साहित्य भी सरल, सहज भाषा में लिखा गया है। भारतेंदु युग के लेखकों की निगाह शहरी मध्य वर्ग के अलावा गांव के लोगों की ओर भी है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकिशन भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त के जीवांत गद्य की परम्परा निराला और शिवपूजन सहाय के गद्य में है।"

भारतेन्दु युग के लेखक सिर्फ रचनाकार ही नहीं थे, वे समर्पित पत्रकार, हिंदी उन्नायक, स्वदेशी उत्थान के समर्थक, अंधविश्वासों-रूढ़ियों के खिलाफ लडने वाले, प्रगतिशील विचारधारा के समर्थक थे। सभी लेखकों ने कोई न कोई संगठन बना रखे थे। भारतेन्दु तो बनारस में ही थे, प्रतापनारायण मिश्र ने कानपुर में, प्रेमघन ने मिर्जापुर में , राधामोहन गोकुल ने पटना में संगठन बना रखे थे। इन संगठनों के माध्यम से जनहित के कार्य होते थे। इन लेखकों की विचारधारा एक-दूसरे से प्रभावित थी। भारतेन्दु इनके प्रेरणा स्त्रोत थे। इनका निजी हित एक ही था- राष्ट्रीय चेतना का विकास।

भारतेन्दु युग के लेखन में जातीयता का स्वर दिखाई पड़ता है। भारतेन्दु ने तो भारत दुर्दशा, भारत जननी, सत्यवादी हरिश्चन्द्र, अन्धेर नगरी जैसी महत्त्वपूर्ण रचनाएँ तत्कालीन परिस्थितियों का उल्लेख करके राष्ट्रीय चेतना के प्रचार में लिखी। परन्तु अन्य लेखकों का गद्य भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है जैसे राधाचरण गोस्वामी की 'यमलोक की यात्रा' 'तन-मन-धन' 'बूढ़े मुँह-मुहाँसे' 'कांग्रेस की जय' बालमुकुन्द गुप्त के 'शिवशंभु के चिट्टे' प्रेमघन के 'हिन्द, हिन्दू और हिन्दी', 'विधवा विपत्ति वर्ष' आदि ने नवजागरण कालीन चेतना को आगे बढ़ाया। भारतीय किसानों की दुर्दशा का चित्रण 'प्रेमचन्द' से बहुत पहले 'प्रेमघन' ने कर दिया था।

ये लेखक राजनीतिक रूप से भी सक्रिय थे। राधाचरण गोस्वामी, राधामोहन गोकुल और बालकुष्ण भट्ट कांग्रेस से जुड़े हुए थे। विधवाओं की स्थिति सुधारने के लिए इन्होंने जी-जान लगा दी। प्रेस की आजादी के समर्थकों ने विपरीत परिस्थितियों में पत्र-पत्रिकाओं का तन-मन -धन से सपांदन किया। बांकीपुर पटना की 'खडगविलास प्रेस' ने नवजागरण में अविस्मरणीय कार्य किया। अनेक पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों के साथ-साथ 'भारतेन्दु ग्रंथावली' भी यहीं से छापी थी। इन्हीं पत्र-पत्रिकाओं ने नवजागरण की ज्योति को गहन निराशा युग में भी जलाए रखा।

प्रायः ऐसा माना जाता है कि हिंदी नवजागरण की कोई अवधारणा ही नहीं है। भारतीय नवजागरण भी रिनेसाँ से उद्धृत माना जाता है। परन्तु डॉ. रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण' में नवजागरण की सैद्धान्तिकी दी है। उनकी इस पुस्तक की प्रथम पंक्ति 'हिंदी प्रदेश में नवजागरण की सैद्धान्तिकी दी है। उनकी इस पुस्तक की प्रथम पंक्ति 'हिंदी प्रदेश में नवजागरण 1857 में स्वाधीनता संग्राम से शुरू होता है।" हिन्दी नवजागरण का स्वरूप प्रस्तुत करती है। हिन्दी प्रदेश का समर्थन

1857 के विद्रोह से था। इसी बात को 'इरफान हबीब'इस तरह से कहते हैं, "अगर कहा जाए कि सिपाही विद्रोह 1857 के महाविद्रोह का मुख्याधार था तो उतने ही निश्चयपूर्वक यह भी कहा जा सकता है कि इसका रूप इतना बडा नहीं हो पाता अगर हरियाणा से लेकर बिहार तक के आम नागरिकों की हार्दिक सहानुभूति न मिली होती। इन्हीं क्षेत्रों के गांवो से इन सिपाहियों की भर्ती की गई थीं इस विशाल क्षेत्र में इस विद्रोह की रंगत अख्तियार कर ली थी। इससे पहले बंगाल के नवजागरण की चर्चा होती थी, परन्तु डॉ. रामविलास शर्मा ने हिंदी नवजागरण को एक विशेष सैद्धान्तिकी प्रदान की। उन्होंने कहा है, "इस तरह जो नवजागरण 1857 के स्वाधीनता संग्राम से आरंभ हुआ, वह भारतेंदु युग में और भी पुष्ट हुई। फिर निराला के साहित्य में कलात्मक स्तर पर तथा इनकी विचारधारा में ये प्रवृत्तियाँ क्रान्तिकारी रूप से प्रकट हुई।"

डॉ. रामविलास शर्मा ने हिंदी जाति से जोडा है। नवजागरण से पहले उन्होंने हिन्दी जाति की चर्चा की है। इससे पहले हिंदी जाति जैसे पदबन्ध का प्रचलन नहीं था। सर्वप्रथम हिंदी भाषा और जातीयता की पहचान भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य शुक्ल और हजारी प्रसाद द्विवेदी के लेखन में मिलती है। भारतेन्दु युग का नवजागरण पुराने नवजागरण का ही दूसरा पडाव है। यह नवजागरण लोक जागरण (भक्ति काल) का ही विकसित रूप है। हिंदी जातीयता की पहचान हिंदी नवजागरण से है। हिंदी जाति के अन्तर्गत हिंदू और मुसलमान दानों ही आते हैं।

_डॉ. रामविलास शर्मा ने 1857 के विद्रोह को नवजागरण की पहली मंजिल मानते हुए इसका संबंध हिंदी जाति से जोडा है। इस संग्राम की विशेषताएँ इस प्रकार से थीं :

1. "पूरे देश की एकता और एक सूत्रता की चिंता।
2. सामंत हित की चिंता के बजाय जनहित में राज्यसत्ता की मूल समस्या का निराकरण |
3. अंग्रेजों द्वारा जमींदारों, साहूकारों के प्रभुत्व को बढ़ावा देने की धारणा के प्रतिपक्ष में सामंत विरोधी धारणा को पुष्ट करने का ध्येय।
4. फौज में सिपाहियों, सूबेदारों के रूप में कार्यरत सर्वधर्म सकल वर्ग किसानों की अगुवाई में संग्राम |
5. सांप्रदायिक धारणाओं से मुक्त, कर्मनिष्ठ सैन्यदल का गठन ।
6. हिंदी पट्टी में इस संग्राम की क्रियाशीलता।"

1857 के गदर को डॉ. शर्मा ने गौरवशाली गदर कहा है, क्योंकि इस गदर में सभी ने छोटे-बड़े, हिन्दू-मुसलमान, अमीर-गरीब, सवर्ण-दलित सभी ने एकजुट होकर साम्राज्यवादी ताकतों के खिलाफ लडाई लडी थी। इसी बात का समर्थन करते हुए कर्मेन्दु शिशिर कहते हैं-" पहली बार 1857 के स्वाधीनता संग्राम में हमारे समाज का पौरुष पूरे वैभव के साथ प्रभावशाली रूप से आया और सशस्त्र विद्रोह का सिलसिला लगातार दो वर्षों तक चलता रहा। डॉ. शर्मा ने भारतेन्दु युग को नवजागरण की दूसरी मंजिल माना है। जो कार्य भारतेन्दु और उसके साथियों ने किया वह अविस्मरणीय है। इन्होंने हिन्दी गद्य को हिन्दी जाति से जोडा और उसे व्यापक पहचान दिखाई। यद्यपि इनके विचारों में अन्तर्विरोध मिल सकते हैं परन्तु इनका ध्यये एक ही था। इस युग के लेखक चार-पाँच भाषाएँ जानते थे।

इनके व्यंग्य की मार तिलमिला देने वाली थी। गद्य की नवीनता इस युग की विशेषता थी। डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है, " भारतेंदु ने जिस संस्कृति का निर्माण किया वह जनवादी थी। उन्होंने धर्म, संस्कृति, साहित्य, शिष्टाचार पर पुरोहितों-मौलवियों का इजारा तोडने के उपाय बताए। विधवा-विवाह का समर्थन

किया, बाल-विवाह का विरोध किया। कुलीनता, जाति-प्रथा, छुआछुत आदि का जोरदार खंडन किया, लोगों के धार्मिक अंधविश्वासों की कड़ी आलोचना की और स्त्रीशिक्षा पर खास तौर पर जोर दिया। भारतेन्दु ने जिस जातीय संस्कृति की नींव डाली वह सारे देश के लिए थी लेकिन वह हिन्दी भाषी जनता के लिए विशेष थी।"

प्रगतिशील विचारधारा में गद्य का रूप स्वाभाविक बोलचाल के नजदीक पाया जाता है। यही रूप भारतेन्दु युग की विशेषता है। "भारतेन्दु और इस युग के लेखकों ने इस संघर्ष में तटस्थ न रहकर प्रगतिशीन विचारधारा को अपनाया। यह विचारधारा राष्ट्रीय स्वाधीनता, जातीय एकता और जनवादी संस्कृति के उत्थान दिलाने वाली विचारधारा थी।"

भारतेन्दु युग के सहित्य की मौलिकता इसी बात में थी कि वह सामन्तों, राजाओं के लिए नहीं अपितु आम जनता के लिए रचा जा रहा था। भारतेन्दु इस युग के अकेले लेखक नहीं थे। उनके समकालीन इस नई विचारधारा में उनसे भी आगे बढ़े हुए थे। द्विवेदी जी के योगदान को हिन्दी नवजागरण में अंकित करते हुए डॉ. शर्मा ने लिखा है, "द्विवेदी जी ने हिन्दी भाषा के विकास के अनेक पक्षों पर ध्यान दिया। भारत में अंग्रेजी की स्थिति, भारतीय भाषाओं की समस्या, हिन्दी-उर्दू की समस्या और आपसी भेद, हिन्दी और जनपदीय उप-भाषाओं के संबंध आदि पर उन्होंने बहुत गहराई से विचार किया। भाषा परिष्कार का काम उनके व्यापक कार्यक्रम का एक अंश मात्र है और वह उसका सबसे महत्त्वपूर्ण अंश नहीं है।"

नवजागरण के तीसरे दौर के रूप में डॉ. रामविलास शर्मा ने महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनके सहयोगियों के कार्यकाल का वर्णन किया है। सरस्वती पत्रिका का हिंदी नवजागरण में विशेष योगदान रहा है। सरस्वती पत्रिका में हिंदी प्रदेश के अतिरिक्त एशिया और यूरोप के नवजागरण की भी चर्चा की जाती थी।

जापान, चीन, तिब्बत, फिलीपन, श्रीलंका आदि एशियाई देशों के साथ-साथ यूरोपीय देशों के नवजागरण की भी चर्चा द्विवेदी जी ने की। आचार्य द्विवेदी ने जापान का उदाहरण भारत के समक्ष प्रस्तुत किया कि कैसे अंग्रेजों का उपनिवेश हुए बिना भी कोई राष्ट्र तरक्की कर सकता है। जापानियों ने सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक एकता कायम करने के लिए आपसी भेदभाव, जाति-पाति, ऊँच-नीच को भुला दिया, वैसा भारत भी कर सकता है। इसी प्रकार चीन के नवजागरण से संबंधित लेख चीन के अखबार, चीन की जागृति, चीन के सामाचार पत्र आदि प्रकाशित हुए, जिसमें चीनी युवकों से प्रेरणा लेने को कहा गया। भारतीय नवजागरण और हिंदी नवजागरण का संबंध जोडते हुए हिंदी नवजागरण को भी इसी क्रम में रेखांकित किया है। इसलिए डॉ. रामविलास शर्मा ने नवजागरण के तीसरे चरण के रूप में महावीर प्रसाद द्विवेदी की पत्रिका सरस्वती के महत्व को रेखांकित किया है। डॉ. शर्मा ने नवजागरण के तीनों चरणों का महत्त्व रेखांकित किया है तो इनकी कुछ अपनी-अपनी विशेषताएँ है। 1857 के संग्राम ने नागरिक मन में उत्साह का संचार किया तो भारतेन्दु मंडल और उसके साथियों ने राष्ट्रीय और सांस्कृतिक एकता को कायम किया तो द्विवेदी और उनके साथियों ने बौद्धिक और प्रगतिशील विचारों में क्रियाशीलता बढ़ाई।

भाग 5

भारतेन्दु युग

भारतेन्दु युग (1850-1900 ई.)

आधुनिक हिंदी कविता का प्रारंभ उन्नीसवीं सदी में भारतेंदु हरिश्चन्द्र से माना जाता है। इसके कई कारण है। भारतेंदु युग से पूर्व हिंदी की जिस कविता से हमारा परिचय होता है, उसे रीतिकाव्य के नाम से जाना जाता है। वह अपने स्वरूप और संरचना दोनों दृष्टियों से रूढिबद्ध, शृंगारपरक और सांमत वर्ग का अनुरंजन करने वाला काव्य था। दरबारों में, राजाओं और मनसबदारों की चाटुकारिता में, स्तुति में, उन्हें प्रसन्न करने, हँसाने, चमत्कृत करने और उनकी रंगरलियों को और मधुर बनाने के लिए काव्य के परंपरागत लक्षणों के आधार पर कविता का सृजन होता रहा। समाज के व्यापक भावबोध से कटी हुई इस कविता का ऐतिहासिक महत्व तो है किंतु उसमें सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक चिंताओं के ऐसे कोई संदर्भ नहीं है, जिनसे उस कविता का कोई महत्व स्थापित हो सके। हालाँकि इस दौर में भी भक्ति, वीर, नीति काव्य की रचनाएँ होती रहीं, लेकिन मुख्य धारा रीतिबद्ध कविता की ही रही। तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक स्थिति भी कोई ऐसी नहीं रही, जिसमें कलाओं के उत्थान की गुंजाइश हो। यही वह समय भी है जब अंग्रेज मिशनरियाँ यहाँ आ कर अपने पाँव जमा रही थीं और ईस्ट इंडिया कम्पनी व्यापारिक मकसद लिए धीरे-धीरे अपना राज स्थापित कर रही थी। राजाओं और नवाबों को आपस में लड़वाकर तथा जनता को हर प्रकार से लूटकर वे भारत की धन-संपदा को यहाँ से ले जा रहे थे। देश को पूरी तरह असहाय और निर्धन बनाने की अंग्रेजों की साजिश के दबाव का ही विस्फोट सन् 1857 के स्वाधीनता संग्राम के रूप में सामने आता हैं। सुनियोजित न होने के कारण यह विद्रोह हालाँकि सफल नहीं हुआ लेकिन, इसमें सभी वर्गों, सम्प्रदायों, भाषा-भाषियों के एक साथ भाग लिया था। इस के बाद देश की बागडोर ईस्ट इंडिया कम्पनी के हाथ से निकल कर ब्रिटिश संसद के हाथ में आ गई, जिसकी प्रधान महारानी विक्टोरिया थी।

रीतिकालीन कविता के विपरीत इस आधुनिक युग में हिंदी कविता विषय, रूप, भाव, भाषा के स्तर पर पुरानी केंचुल उतार कर नया रूप धारण करने का प्रयास करती है। कविता दरबारों से निकल कर सीधे जनता के साथ संबंध स्थापित करती है। इन सब प्रयासों में भारतेंदु हरिश्चंद्र एक अग्रवी साहित्यिक नेता की भूमिका निभाते है। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने नाटक, निबंध, कविता आदि कई साहित्यिक विधाओं को अपनी रचनात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम बनाते हुए और पत्रकारिता द्वारा साहित्य और समाज के संबंधों को नये ढंग से समझने-समझाने का प्रयास किया। एक कवि के रूप में उनका व्यक्तित्व कितना वैविध्यमय, बहुआयामी और विकासशील रहा है

भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने लगभग 70 के करीब काव्यग्रंथों की रचना की है, जिनमें एक ओर अपनी पंरपरा का सम्मान करते हुए सूरदास, घनानंद, बिहारी की पंरपरा के अनुपालन में भक्ति, प्रेम, सौन्दर्य, शृंगार आदि की रचनाएँ है तो दूसरी ओर नयी परंपरा का निर्माण करते हुए अपने समय और युग के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण वाली कविताएँ भी है। पारंपरिक कविताओं में भी परंपरा का अंधानुकरण नहीं है अपितु उसे भी समयानुसार बदलने की प्रवृत्ति दिखायी देती है। भारतेंदु के समय गद्य और पद्य की भाषा अलग-अलग थी। गद्य जहाँ खड़ी बोली में लिखा जाने लगा था वहाँ पद्य की भाषा अधिकांशतः ब्रज ही थी।

भारतेन्दु का जन्म 1850 ई. में हुआ। भारतेन्दु ने 21 काव्यग्रंथ, 48 प्रबन्धकाव्य तथा कई मुक्तक रचनायें कीं। इसके अतिरिक्त उन्होंने नाटक, निबन्ध, रंगमंच आदि विधाओं पर भी अपनी लेखनी चलाई। पत्रकारिता

के क्षेत्र में भारतेन्दु ने 'कवि वचन सुधा', 'हरिशचंद्र मैगजीन' आदि पत्र चलाकर प्रथम हिन्दी समाचार पत्र 'उदंत मार्तण्ड' की परम्परा को कायम रखा। भारतेन्दु ने गद्य में भी विविध विधाओं की शुरुआत की। उन्होंने उन सभी आवश्यक विषयों पर लिखा जिनसे नवजागरण का आधार तैयार हुआ। भारतेन्दु का प्रभाव उस युग के सभी साहित्यकारों पर ही नहीं बल्कि बाद के साहित्यकारों पर भी पड़ा।

भारतेन्दु युग के नामकरण का आधार

किसी युग का नामकरण दो आधारों पर किया जा सकता है। पहला आधार तो यह हो सकता है कि उस युग की प्रमुख प्रवृत्ति पर युग का नामरकरण किया जाए जैसे भक्तिकाल या रीतिकाल। दूसरा आधार यह हो सकता है कि उस युग का नाम किसी ऐसे व्यक्तित्व के नाम पर रखा जाये जिसने उस युग के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हो। भारतेन्दु युग के नामकरण का यही दूसरा आधार है।

भारतेन्दुयुगीन परिस्थितियाँ एवं आधुनिकता का उदय

1857 ई. के बाद महारानी विक्टोरिया का भारत पर अधिकार हो गया और 1900 ई. तक आते-आते ब्रिटिश सरकार ने कई सुधार कार्य किये लेकिन वे बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं थे। कई लोगों को सरकार द्वारा कल्याणकारी कदम उठाये जाने की उम्मीद थी लेकिन ऐसा नहीं हुआ। 1885 ई. में कांग्रेस की स्थापना के बाद भारतीय जनता को अंग्रेजी राज्य के औपनिवेशिक हितों के विषय में पता चला। इस तरह 1857 ई. से 1885 ई. तक ब्रिटिश सरकार के स्पष्ट स्वरूप के विषय में एक द्वंद्व की स्थिति रही। इसीलिये इस युग की कविता में जहाँ राष्ट्रभक्ति के स्वर मिलते हैं, वहीं राजभक्ति की भावनाएँ भी मिलती हैं।

पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान के परिचय से 19वीं शताब्दी में भारत में नवजागरण की लहर आई जिससे भारत में प्रत्येक क्षेत्र में बुद्धिवाद, मानवतावाद, विवेक, सहिष्णुता, न्यायप्रियता एवं व्यक्तिवाद को महत्त्व दिया जाने लगा। इस युग में न तो रीतिकालीन राज्याश्रय था और न ही रीतिवादी मानसिकता। अतः इस काल में जो कविता लिखी गई उसमें देश, समाज की चिंता प्रमुख थी।

भारतेन्दु युग से हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का उदय होता है। आधुनिकता एक वैचारिक दृष्टिकोण है जो ईश्वर की जगह मानव को तथा आस्था की जगह तर्क को केन्द्र में रखती है। आधुनिकता वैज्ञानिक दृष्टिकोण में विश्वास रखती है एवं कोरी भावुकता का निषेध करती है। इसीलिए आधुनिकता के दौर में जो साहित्य लिखा गया, वह लौकिक जीवन की चिंता करता है। इस युग में ईश्वर की धारणा व्यक्तिगत आस्था के रूप में स्वीकृत होती है, साहित्य या कलाओं में उसका चित्रण प्रासंगिक नहीं रह जाता।

आधुनिकता नवजागरण का परिणाम थी। नवजागरण दो जातीय संस्कृतियों की टकराहट से उत्पन्न रचनात्मक ऊर्जा थी जो मनुष्य के संपूर्ण एवं संश्लिष्ट रूप की खोज व उसका परिष्कार करना चाहती थी। संपूर्ण मनुष्य की यह परिकल्पना भारतीय नवजागरण का केन्द्र बनी।

भारतेन्दु युग की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ/विशेषताएँ

(क) भावगत विशेषताएँ

(1) अन्तर्विरोधों का साहित्य - भारतेन्दु काल की कविता अन्तर्विरोधी मूल्यों की कविता है और यह अन्तर्विरोध समाज की संरचना के भीतर से आया है। उस समय अंग्रेजी संस्कृति और भारतीय संस्कृति के दो विरोधी मूल्यों का मिलन हो रहा था जिसने तनाव की स्थिति पैदा हुई। यह तनाव कविता में भी कई स्तरों पर व्यक्त होता है जैसे राजभक्ति बनाम राजविरोध, राजभक्ति बनाम राष्ट्रभक्ति, भक्ति-शृंगार बनाम जन सामान्य की समस्याएँ, ब्रज भाषा बनाम खड़ी बोली इत्यादि।

(2) राजभक्ति एवं राष्ट्रभक्ति - भारतेन्दु युग के प्रारंभ के कवियों में ब्रिटिश सरकार के प्रति राजभक्ति के भाव थे। इसका कारण यह था कि प्रारंभ में वे साम्राज्यवादी सरकार स्वार्थ को स्पष्ट रूप से समझ नहीं सके । यद्यपि ब्रिटिश सरकार के स्वार्थ को स्पष्ट रूप से समझ नहीं सके। यद्यपि ब्रिटिश सरकार ने कुछ सुधार अवश्य किये परंतु ऐसा करने के पीछे उनकी सदिच्छा नहीं थी। इस आरम्भिक दौर में ब्रिटिश सरकार का सही रूप स्पष्ट न हो सका। इसलिए इस युग में जहाँ महारानी विक्टोरिया की प्रशंसा के भाव मिलते हैं, वहीं राष्ट्र प्रेम भी मिलता है

"पूरी अमी की कटोरिया सी, चिरजीओ सदा विक्टोरिया रानी।"

(अम्बिका दत्त व्यास)

"अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी।"

(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

समस्याओं पर आधुनिक चिंतन करने वाले कवियों के पास तत्कालीन तनावपूर्ण स्थितियों से उबरने का कोई साधन नहीं है । इसलिए वे भारत की दुर्दशा पर आँसू बहाने को विवश हैं

"रोवहु सब मिलिकै आवहु भारत भाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।"

(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

***(3)* शृगारिकता की चेतना** - इस काल में आधुनिकता की चेतना के बावजूद रीतिकालीन प्रभाव पूरी तरह छोड़ा नहीं जा सका। अतः कहीं-कहीं शुद्ध शृंगार के दर्शन भारतेन्दु युग की कविता में होते हैं जैसे

"पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना।
अखियाँ दुखियाँ नहिं मानती हैं।"

कहीं-कहीं पर यह शृंगार भक्ति के साथ जुड़ कर भी आया है अर्थात् भक्ति व शृंगार का समन्वय हुआ है

"जय जय हरि राधा रस केलि ।

तरनि तनूजा तट इकन्त पै बाहु-बाहु पै मेलि।"

(4) भक्ति भावना - यहाँ भक्ति के निर्गुण व सगुण दोनों रूप उपलब्ध होते हैं। यहाँ भक्ति का एक और व्यापक रूप उपलब्ध होता है जिसे 'स्वदेशानुराग समन्वित भक्ति' कहते हैं अर्थात् ईश्वर की भक्ति का उद्देश्य देश की समस्याओं को सुलझाना हो गया है

"हम आरत भारत वासिन पै।।
अब दीन दयाल दया करिए।"

(प्रताप नारायण मिश्र)

"प्रभु हो पुनि भूतल अवतरियो
अपने या प्यारे भारत के पुनि दुख दरिद्र हरिये।"

(राधा कृष्ण दास)

(5) समस्यापूर्ति - इस युग में 'कविता वर्द्धिनी सभा' तथा 'रसिक समाज' जैसी संस्थाओं की स्थापना की गई थी जहाँ कवियों की गोष्ठियाँ होती थीं तथा नए कवियों को प्रोत्साहन दिया जाता था। इस परम्परा में एक विषय तय किया जाता था और उसकी अन्तिम पंक्ति तय होती थी। इसे ही समस्यापूर्ति कहा गया जा इस समय की प्रमुख प्रवृति रही।

(6) सामाजिक समस्याओं का चित्रण - इस युग का काव्य जन जीवन से जुड़ा है अतः इसमें नारी शिक्षा, विधवा समस्या, बाल-विवाह, धार्मिक संकीर्णता जैसे विषयों की ओर कवियों की दृष्टि गई। इन कवियों ने समाज में फैली विकृतियों पर चोट करके समाज में नई चेतना पैदा की है। "कौन करेजो नहिं कसकत, सुनि बिपति बाल बिधवन की।" (प्रताप नारायण मिश्र)

(ख) शिल्पगत विशेषताएँ

(1) काव्यरूप - इस युग में मूल रूप से मुक्तक काव्य की रचना हुई। कुछ प्रबंध काव्य भी मिलते हैं जैसे प्रेमघन कृत 'जीर्ण जनपद' । इसके अतिरिक्त प्रगीत मुक्तक, लोकगीत तथा मुकरियाँ भी मिलती हैं। मुकरी का उदाहरण

"सब गुरुजन को बुरा बतावै, अपनी खिचड़ी आप पकावै। भीतर तत्व न झूठी तेजी, क्यों सखि, साजन! नहीं अंग्रेजी!!"

(2) भाषा - भारतेन्दु युग के कवियों की अधिकतर रचनाएँ ब्रज भाषा में कोमलकान्त पदावली होने के कारण इस काल के कवि उसका मोह छोड़ नहीं सके। इस समय के गद्य साहित्य में खड़ी बोली का सफल प्रयोग हुआ किन्तु काव्य में उसे विशेष सफलता नहीं मिली। भाषा के संदर्भ में भारतेन्दु का मत था

'अंग्रेजी पढ़ि के यद्यपि, सब गुण होत प्रवीन ।
पै निज भाषा ज्ञान बिन रहत हीन के हीन।'

(3) छन्द - भारतेन्दु युग की कविता में दोहा, चौपाई, हरिगीतिका, कवित्त आदि परम्परागत छन्दों के अतिरिक्त लावनी, कजली व होली छन्दों का प्रयोग हुआ है।

(4) अलंकार - यह कविता जन सामान्य की समस्याओं से सीधे जुड़ती है इसलिए अलंकरों की सजावट पर ध्यान नहीं देती किंतु अर्थालंकारों का जहाँ भी प्रयोग हुआ है, वह सफल है।

आधुनिक काल

> हिन्दी साहित्य इतिहास का चतुर्थ चरण ही आधुनिक काल के नाम से जाना जाता है।

> आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने आधुनिक काल का समय 1843 ई. 1927 ई. तक माना है।

> आधुनिक काल की प्रारम्भिक सीमा के संबंध में मुख्यतः निम्न तीन मत प्रचलित माने जाते हैं -

1. 1850 ई. से प्रारम्भ - आधुनिक काल के अग्रदूत भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म वर्ष होने के कारण स्वीकार किया जाता है।

2. 1857 ई. से प्रारम्भ - इस वर्ष भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम हुआ था, जिसके कारण कवियों व लेखकों को लेखन के लिए एक नयी विचारधारा प्राप्त हुई। अत: डॉ. नगेन्द्र जैसे इतिहासकार इसी वर्ष से आधुनिक काल का प्रारम्भ मानते है।

3. 1868 ई. से प्रारम्भ - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपनी सर्वप्रथम पत्रिका (कविवचनसुधा) '1868' ई. में निकाली थी। इसी पत्रिका के माध्यम से हिन्दी के एक नये युग की शुरुआत हुई। अतः आचार्य रामचंद्र शुक्ल जैसे इतिहासकार इसी वर्ष से आधुनिक काल का प्रारंभ मानते हैं।

4. संक्रान्ति काल - आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रीतिकाल का समाप्ति काल 1843 ई. (1900 वि.) एवं आधुनिक काल का प्रारम्भिक समय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की पत्रिका 'कविवचनसुधा' के प्रकाशन वर्ष 1868 ई. को माना है। अतः1843 ई. से 1868 ई. के बीच के इन 25 वर्षों में हिन्दी साहित्य संघर्षशील अवस्था में रहा, इसी अवधि को 'हिन्दी साहित्य का संक्रान्ति काल' कहा जाता है।

> डॉ. नगेन्द्र के अनुसार 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में 'आधुनिकता' शब्द से अभिप्राय है - "मध्यकाल से भिन्नता और नवीन इहलौकिक दृष्टिकोण।"

> आधुनिक काल को 'हिन्दी साहित्य इतिहास का दूसरा स्वर्ण काल' भी कहा जाता है, क्योंकि जन चेतना एवं जागरूकता का जितना सशक्त स्वर आधुनिक युग के साहित्य में मुखरित हुआ है, उतना पहले कभी नहीं हुआ था।

> आधुनिक काल का नामकरण - विविधि इतिहासकारों ने हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के लिए निम्न संज्ञाओं का प्रयोग किया है -

क्र.सं.	इतिहासकार का नाम	नामकरण
1	आचार्य रामचंद्र शुक्ल	गद्यकाल
2		मिश्रबन्धु
वर्तमान		
3	डॉ. रामकुमार वर्मा	आधुनिक काल
4	डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त	आधुनिक काल
5	डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी	आधुनिक काल

आधुनिक काल का उप-विभाजन - डॉ. नगेन्द्र एवं अन्य इतिहासकारों द्वारा आधुनिक काल को निम्नानुसार उप-विभाजित किया गया है

1. पुनर्जागरण काल (भारतेन्दु युग) - 1850 ई. से 1900 ई. तक
2. जागरण सुधार काल (द्विवेदी युग) - 1900 ई. से 1920 ई. तक
3. छायावादी काल (प्रसाद-पंत-निराला युग) - 1920 ई. से 1936 ई. तक
4. प्रगतिवाद काल (साम्यवादी युग) - 1936 ई. से 1943 ई. तक
5. प्रयोगवाद काल (तारसप्तक/अज्ञेय युग) - 1943 ई. से 1953 ई. तक
6. नवलेखन काल (नयी कविता युग) - 1953 ई. से अब तक

> डॉ. बच्चन सिंह ने आधुनिक काल का उप-विभाजन निम्न तीन भागों में किया है -

1. नव जागरण-युग - 1857-1920 ई. **ट्रिक: बेच नसउ**
2. स्वच्छन्ता-युग - 1920-1938 ई.
3. उत्तर-स्वच्छंदतावाद युग-1938 अब तक

1. भारतेन्दु युग (1850 ई. से 1900 ई. तक)

- भारतेन्दु युग का प्रारम्भ हरिश्चंद्र के जन्मकाल 1850 ई. से एवं अवसान (समाप्ति) काल 'सरस्वती' पत्रिका के आविर्भाव काल 1900 ई. तक माना जाता है।
- इस युग का नामकरण हिन्दी नव जागरण के अग्रदूत भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाम पर किया गया है।
- » रीतिकाल में जो हिन्दी साहित्य केवल दरबारी संस्कृति का काव्य बनकर रह गया था, भारतेन्दु युग में वह पुनः जन काव्य (आम व्यक्ति का काव्य) बनने लगा था, अतः डॉ. नगेन्द्र ने इसे हिन्दी साहित्य का 'पुनर्जागरण काल' कहकर पुकारा है।
- इस युग में पद्य काव्य रचना के लिए ब्रज भाषा का एवं गद्य काव्य रचना के लिए खडी बोली हिन्दी का प्रयोग किया जाता था।
- भारतेन्दुयुगीन काव्य में प्राचीन व नवीन काव्य प्रवृत्तियों का मिश्रण मिलता है अर्थात् इस काव्य में पहेलियाँ, मुकरियाँ, भक्ति, रीति, श्रृंगार व नीतिपरक सभी प्रकार की काव्य विधाओं का प्रयोग किया गया था।

खडी बोली से संबंधित विविध तथ्य -

1. खडी बोली हिन्दी के प्रथम प्रतिष्ठित कवि - अमीर खुसरो
2. उत्तर भारत में खडी बोली को अपने साहित्य का माध्यम बनाने वाले प्रथम साहित्यकार - कवि गंग (17 वीं सदी) रचना - चंद छंद बरनन की महिमा (गद्य काव्य)
3. दक्षिण भारत में खडी बोली में साहित्य सृजन करने वाले साहित्यकार - मुल्ला वजही रचना - (i) सबरस- (1635 ई.) (ii) कुतुब मुश्तरी

4. आचार्य शुक्ल के अनुसार शुद्ध एवं परिमार्जित खड़ी बोली के प्रथम लेखक -रामप्रसाद निरंजनी (रचना-भाषा योग वरिष्ठ) रचनाकाल - 1741 ई. (1798 वि.)
5. नोट :- ये पटियाला दरबार में रहते थे और वहाँ की महारानी को कथा बाँचकर सुनाया करते थे।
6. आचार्य शुक्ल के अनुसार शुद्ध एवं परिमार्जित खड़ी बोली का प्रयोग करने वाले द्वितीय लेखक- दौलतराम (रचना-पद्मपुराण-1771 ई.)
7. नोट :- इन्होंने हरिषेणाचार्य द्वारा रचित "जैन पद्म पुराण" का खड़ी बोली में अनुवाद किया था।
8. खड़ी बोली हिन्दी का एक अन्य नाम - कौरवी
9. खड़ी बोली (गद्य रचना) के प्रवर्तन व विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान देने वाली संस्था-फोर्ट विलियम कॉलेज, कलकत्ता (स्थापना वर्ष -1800 ई.)
10. 19 वीं शताब्दी में खड़ी बोली गद्य का प्रवर्तन करने वाले चार प्रमुख लेखक - **ट्रिक: सदा लाल मिर्च खाओ**

(i) फोर्ट विलियम कॉलेज से संबंधित -

(क) सदल मिश्र (नासिकेतापाख्यान) - अन्य नाम - **चन्द्रावती**

(ख) लल्लू लाल (प्रेमसागर)

(ii) अन्य दो लेखक -

(क) मुंशी सदासुखलाल 'नियाज' (सुखसागर)

(ख) सैयद इंशा अल्ला खाँ (रानी केतकी की कहानी)

नोट :- इस कहानी को 'उदयभानचरित' नाम से भी जाना जाता है।

विशेष - 1. इन चारों लेखकों में मुंशी सदासुखलाल 'नियाज' का गद्य अधिक व्यवस्थित एवं व्यवहारोपयोगी माना जाता है।

2. इनकी भाषा अन्य तीनों लेखकों की तुलना में 'मानक हिन्दी' के अधिक निकट मानी जाती है।

9. हिन्दी के लिए 'खड़ी बोली' नामकरण सर्वप्रथम मुंशी लल्लूलाल द्वारा 'प्रेमसागर' ग्रंथ की भूमिका में किया गया था।

10. गिलक्राइस्ट ने खड़ी बोली को 'टकसाली भाषा' कहा था। **ट्रिक: गिलहरी टक-टक करती रहती है।**

11. कविता में 'ब्रजभाषा' के स्थान पर 'खड़ी बोली' को प्रतिष्ठित करने का सशक्त आन्दोलन सर्वप्रथम 'अयोध्या प्रसाद खत्री' द्वारा चलाया गया था। इन्होंने सन् 1887 ई. में 'खड़ी बोली का पद्य' शीर्षक से एक पुस्तक प्रकाशित की थी, जिसके द्वारा इस आन्दोलन का प्रवर्तन हुआ। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इस आन्दोलन में अपूर्व सहयोग प्रदान किया।

12. जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' ने खड़ी बोली के समर्थकों को 'हठी एवं मूर्ख' कहकर पुकारा है।

भारतेन्दु युग की प्रमुख प्रवृत्तियाँ -

1. राष्ट्रीय जागरण 2. नवजागरण 3. सामाजिक चेतना
4. भक्ति भावना 5. प्रकृति-वर्णन 6. समस्या-पूर्ति
7. हास्य-व्यंग्य 8. शृंगारिकता

> डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त ने भारतेन्दु युग के काव्य को 'आदर्शवादी मुक्तक गीति परम्परा काव्य' कहकर पुकारा है।

भारतेन्दु युग के प्रमुख कवि

1. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

> जन्मकाल - 1850 ई. (1907 वि.)

> जन्मस्थान - काशी (एक सम्पन्न वैश्य परिवार में)

> मृत्युकाल - 1885 ई. (1942 वि.)

नोट :- मात्र 35 वर्ष की अल्पायु में इनका देहावसान हो गया था।

→ पिता का नाम - बाबू गोपालचन्द्र गिरिधरदास (ये इतिहास प्रसिद्ध सेठ अमीचंद की वंश परम्परा में उत्पन्न हुए माने जाते हैं।)

> मूल नाम - हरिश्चन्द्र

> उपाधि - भारतेन्दु

नोट :- डॉ. नगेन्द्र के अनुसार उस समय के पत्रकारों एवं साहित्यकारों ने 1880 ई. में इन्हें 'भारतेंदु' की उपाधि से सम्मानित किया था। (भारतेन्दु - भारत + इन्दु अर्थात् भारत का चन्द्रमा)

> मुख्य व्यवसाय - पत्रकारिता

» सम्पादन कार्य - इनके द्वारा निम्नलिखित तीन पत्रिकाओं का सम्पादन कार्य किया गया था -

1. कवि-वचन सुधा - 1868 ई. (मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक)
2. हरिश्चन्द्र चन्द्रिका - 1873 ई. (मासिक)

नोट :- शुरुआती आठ अंकों तक यह पत्रिका 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' नाम से प्रकाशित हुई थी। नवें अंक में इसका नाम 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' रखा गया था। हिन्दी गद्य का ठीक परिष्कृत रूप सर्वप्रथम इसी 'चन्द्रिका' में प्रकट हुआ।

3. बाल-बोधिनी - 1874 ई. (मासिक) नोट :- ये तीनों पत्रिकाएँ 'काशी/बनारस' से प्रकाशित होती थी।

→ प्रमुख रचनाएँ - अपने पैंतीस वर्ष के अल्पकालिक जीवन में भी भारतेन्दु जी के द्वारा हिन्दी साहित्य की लगभग प्रत्येक विधा पर अपनी लेखनी चलायी गयी है, जिसके लिए हिन्दी साहित्य जगत् सदैव उनका ऋणी (आभारी) रहेगा। यथा-इनकी समस्त रचनाओं की संख्या 175 के लगभग है।

1. नाट्य रचनाएँ - भारतेंदु जी के द्वारा अनूदित एवं मौलिक सब मिलाकर कुल 17 (सत्रह) नाटक लिखे गये थे। जिनमें से आठ अनूदित एवं नौ मौलिक नाटक माने जाते हैं।

अनूदित नाटकों की ट्रिक्सः विद्या रत्न है पाखण्ड धन

कपूर है, पर दुर्लभ है भारतजन में मुद्रा |

(क) अनूदित नाटक - आठ .

I. विद्यासुंदर - 1868 ई. - यह संस्कृत नाटक "चौर पंचाशिका" के बंगला संस्करण का हिन्दी अनुवाद है।

II. रत्नावली - 1868 ई. - यह संस्कृत नाटिका 'रत्नावली' का हिन्दी अनुवाद है। (iii) पाखंड-विखंडन - 1872 ई.- यह संस्कृत में 'कृष्णमिश्र' द्वारा रचित 'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक के तीसरे अंक का अनुवाद है।

III. धनंजय विजय - 1873 ई.- यह संस्कृत के 'कांचन' कवि द्वारा रचित 'धनंजय विजय' नाटक का हिन्दी अनुवाद है।

IV. कर्पूरमंजरी - 1875 ई. - यह 'सट्टक' श्रेणी का नाटक संस्कृत के 'कांचन' कवि द्वारा रचित नाटक का अनुवाद

V. भारत जननी - 1877 ई. - यह इनका गीतिनाट्य है जो संस्कृत से हिन्दी में अनूदित है।

VI. मुद्राराक्षस - 1878 ई. - यह विशाखदत्त के संस्कृत नाटक का हिन्दी अनुवाद है।

VII. दुर्लभबंधु - 1880 ई. - यह अंग्रेजी नाटककार 'शेक्सपियर' के मर्चेट ऑव् वेनिस' का हिन्दी अनुवाद है।

VIII. (ख) मौलिक नाटक - (नौ)

(i) वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति - 1873 ई. - प्रहसन - इसमें पशुबलि प्रथा का विरोध किया गया है।

(ii) सत्य हरिश्चन्द्र - 1875 ई. - इसमें असत्य पर सत्य की विजय का वर्णन किया गया है।

(iii) श्री चन्द्रावली नाटिका - 1876 ई. - इसमें प्रेम भक्ति का आदर्श प्रस्तुत किया गया है।

(iv) विषस्य विषमौषधर्म - 1876 ई. -भाण

- यह देशी राजाओं की कुचक्रपूर्ण परिस्थिति दिखाने के लिए रचा गया था।

(v) भारतदुर्दशा - 1880 ई. -नाट्यरासक

- इसमें अंग्रेजी राज्य में भारत की दशा का चित्रण किया गया है। यह नाटक 'प्रबोध-चन्द्रोदय' की प्रतीकात्मक शैली से प्रभावित है।

(vi) नीलदेवी - 1881 ई. - गीतिरूपक

- यह पंजाब के एक हिन्दू राजा पर मुसलमानों की चढ़ाई का ऐतिहासिक वृत्त लेकर लिखा गया है। इसमें भारतीय नारी के आदर्शों की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है।

(vii) अंधेर नगरी - 1881 ई.

- प्रहसन (छह दृश्य) इसमें भ्रष्ट शासन तंत्र पर व्यंग्य किया गया है।

(viii) प्रेम जोगिनी - 1875 ई. - नाटिका

- इसमें तीर्थस्थानों पर होने वाले कुकृत्यों का चित्रण किया गया है।

(ix) सती प्रताप - 1883 ई. - गीतिरूपक

- यह इनका 'अधूरा नाटक' माना जाता है। इस नाटक को बाद में 'राधाकृष्णदास द्वारा पूरा किया गया था।

> काव्यात्मक रचनाएँ -इनके द्वारा रचित काव्य रचनाओं की कुल संख्या 70 मानी जाती हैं, जिनमें से कुछ प्रसिद्ध रचनाएँ निम्नानुसार हैं -

1. प्रेम प्रलाप
2. बकरी विलाप
3. प्रबोधिनी
4. दैन्य प्रलाप
5. विजय-वल्लरी-1881
6. विजयिनी विजय वैजयंती-1882
7. दशरथ विलाप
8. प्रातःसमीरन
9. वैशाख माहात्म्य
10. रिपनाष्टक
11. वर्षा-विनोद-1880
12. फूलों का गुच्छा-18821
13. भक्त सर्वस्व
14. उर्दू का स्यापा
15. बन्दरसभा

नोट :- 1. इनकी 'प्रबोधिनी' रचना विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की प्रत्यक्ष प्रेरणा देने वाली रचना है।
2. 'दशरथ विलाप' एवं 'फूलों का गुच्छा' रचनाओं में 'ब्रज' के स्थान पर 'खडी बोली हिन्दी' का प्रयोग हुआ है।
3. इनकी सभी काव्य रचनाओं को 'भारतेंदु ग्रंथावली' के प्रथम भाग में संकलित किया गया है।
4. 'भक्त सर्वस्व', 'कार्तिक-स्नान', 'वैशाख माहात्म्य' एवं 'उत्तरार्द्ध भक्त माल' आदिग्रंथ इनके विशुद्ध भक्ति भाव से ओत प्रोत ग्रंथ माने जाते हैं।
5. 'देवी छद्म लीला', 'तन्मय लीला' आदि में कृष्ण के विभिन्न रूपों को प्रस्तुत किया गया है।

> उपन्यास -

1. हमीर हठ
2. सुलोचना
3. रामलीला
4. सीलवती
5. सावित्री चरित्र

> निबन्ध -

1. कुछ आप बीती कुछ जग बीती
2. सबै जाति गोपाल की

3. मित्रता
4. सूर्योदय
5. जयदेव
6. बंग भाषा की कविता

> इतिहास ग्रन्थ -

1. कश्मीर कुसुम
2. बादशाह

> विशेष तथ्य -

1. ये हिन्दी गद्य साहित्य के जन्मदाता माने जाते हैं।
2. इनके द्वारा हिन्दी लेखकों की समस्याओं का समाधान करने के लिए (समस्या पूर्ति के लिए) 'कविता वर्धिनी सभा' की स्थापना की गई थी।
3. इनके द्वारा 1873 ई. में 'तदीय समाज' की स्थापना भी की गयी थी।
4. इन्होंने हिन्दी साहित्य के सर्वप्रथम अभिनीत नाटक 'जानकी मंगल' (लेखक-शीतला प्रसाद त्रिपाठी) में 'लक्ष्मण' पात्र की भूमिका निभायी थी।
5. ये 'रसा' उपनाम से भी लेखनकार्य करते थे।
6. इन्होंने वल्लभाचार्य द्वारा प्रवर्तित 'पुष्टिमार्ग' में दीक्षा ग्रहण की थी।
7. इन्होंने मातृभाषा (राष्ट्रभाषा) की प्रशंसा करते हुए लिखा है -

"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल ।।"

8. ये ग्यारह वर्ष की अल्पायु में ही कविताएँ लिखने लग गये थे।
9. पन्द्रह वर्ष की अवस्था में वे अपने परिवार के साथ जगन्नाथजी गये थे, उसी यात्रा में उनका परिचय बंगला साहित्य की नवीन प्रवृत्तियों से हुआ।
10. अपनी अति उदारता के कारण ही वे अपने पूर्वजों की संपत्ति लुटाकर दरिद्र हो गये। जीवन के अन्तिम दिनों तक वे साहित्यकारों, कवियों व दीन-दुःखियों की सहायता करते रहे।

भारतेन्दु काल के अन्य कवि

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'	
('अब्र' उपनाम)	जीर्ण जनपद, आनंद अरूणोदय, हार्दिक हर्षादर्श,
	मयंक महिमा (खडी बोली में),
	वर्षा-बिन्दु, अलौकिक

	लीला, लालित्य लहरी, पितर विलाप, बृजचंदपंचक,
	प्रेमपीयूष वर्षा ।
प्रताप नारायण मिश्र	प्रेमपुष्पावली, मन की लहर, लोकोक्ति शतक,
	तृप्यन्ताम, शृंगार विलास, संगीत
	शकुन्तला (अनुदित) दीवाने बरहमन (उर्दू
	कविता संग्रह) रसखान शतक
ठाकुर जगमोहन सिंह	प्रेम सम्पत्तिलता, श्यामलता, श्यामसरोजनी, देवयानी
अम्बिकादत्त व्यास(सुकवि उपाधि)	पावस पचासा, सुकवि सतसई (श्री कृष्ण की बाल
	लीला का वर्णन) हो हो होरी,बिहारी विहार
	(कवि बिहारी के दोहों का कुंडलिया छंद में
	अनुवाद), कंस वध (खडी बोली में रचित अपूर्ण
	प्रबंध काव्य)
राधाकृष्ण दास	भारत बारहमासा, देशदशा।

रहीम के दोहों का कुंडलिया छंद में अनुवाद ।

भारतेन्दु युगीन कवियों से संबंधित महत्वपूर्ण तथ्य -

- भारतेन्दु ने 1873 ई. में 'कालचक्र की भूमिका में लिखा-'हिन्दी नए चाल में ढली।'
- भारतेन्दु ने नारद भक्ति-सूत्र का 'तदीय सर्वस्व' तथा शांडिल्य भक्ति-सूत्र का 'भक्ति सूत्र वैजयंती' शीर्षक से अनुवाद किया।
- भारतेन्दु युग में समस्यापूर्तियाँ बहुत लोकप्रिय हुई। अंबिकादत्त प्यास की समस्यापूर्तियाँ, 'समस्यापूर्ति सर्वस्व' में संग्रहित है।

» भारतेन्दु युग के प्रमुख साहित्यिक मंच -

कवितावर्धिनी सभा - काशी

रसिक समाज- कानपुर

कवि समाज - निजामाबाद (आजमगढ़)

> खड़ी बोली के विकास में योगदान देते हुए अयोध्या प्रसाद खत्री ने खडी बोली आन्दोलन (1888 ई.) खडी बोली का पद्य (1889 ई.) दो कृतियों की रचना की।

भारतेन्दुयुगीन कवियों की महत्त्वपूर्ण काव्य पंक्तियाँ -

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र -

- निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति कै मूल |
बिन निज भाषा ज्ञान कै मिटै न हिय कै सूल ।।
कहाँ करूणानिधि केशव सोए?
जागत नाहिं अनेक जतन करि भारतवासी रोए।
- पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना आँखिया दुखियाँ नहि मानती है।
- मुँह जब लागै, तब नहिं छूटे, जाति मान धन सब कुछ लूटे।
- भीतर भीतर सब रस चूसे, हँस-हँस कै तन मन धन मूसै।
- श्री राधा माधव युगल चरण रस का अपने को मस्त बना।

बदरीनाथ चौधरी 'प्रेमघन' -

- निरधन दिन दिन होत है, भारत भुव सब भाँति।
- धन्यभूमि भारत सब रतनानि की उपजावनि
- अचरज होत तुमहुँ सम गोरे बाजत कारे
- बगियान बसन्त बसेरो कियो, बसिए तेहि त्यागि तपाइए ना

प्रताप नारायण मिश्र

- नोन तेल लकरी घासहु पर टिक्स लगे जहं।
चना चिरौंजी मोल मिलैं जहं दीन प्रजा कहं ।।
- पढ़ि कमाय कीन्हों कहा, हरे देश कलेस।
जैसे कंता घर रहे, तैसे रहे विदेश।।
- चह हु साँचहु निज कल्यान, तौ सब मिलि भारत संतान
जपो निरंतर एक जबान, हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान
- विधवा विलापै नित धेनू कटें कोउ लागत हाय गोहार नहीं ।।
- कौन करे जो नहिं कसकत सुनि विपति बाल बिधवन की ।

ठाकुर जगमोहन सिंह

- पहार अपार कैलास से कोटिन ऊँची शिखा लगि अम्बर चूम
- अब यों उर आवत है सजनी, मिलि जाउं गरे लगि कै छतियाँ
- कुलकानि तजी गुरु लोगन में बसिकै सब बैन कुबैन सहा।

महत्वपुर्ण तथ्यः

- बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' उर्दू में 'अब्र' नाम से कविताएँ लिखते थे।

- प्रेमघन की समस्त काव्य कृतियों का संकलन 'प्रेमघन-सर्वस्व' शीर्षक से किया गया है।
- प्रेमघन ने विलायत में दादा भाई नौरोजी को 'काला' कहे जाने पर क्षोभपूर्ण कविताएँ लिखी थी।
- प्रेमघन की कविताओं में यति भंग प्रायः मिलता है। इन्होंने 'मयंक महिमा' की रचना खडी बोली में की। .
- प्रतापनारायण मिश्र ने 'हरगंगा', 'तृत्यंताम्', 'बुढ़ापा', 'हिन्दी की हिमायत' शीर्षक से महत्त्वपूर्ण कविताएँ लिखीं।
- प्रतापनारायण मिश्र ने प्रतिनिधि कविताओं को 'प्रताप-लहरी' शीर्षक से संकलित किया गया है।

ठाकुर जगमोहन सिंह ने शृंगार और प्रकृति-सौन्दर्यपरक कविताओं की रचना की। इन्होंने विंध्य क्षेत्र की प्रकृति का वैविध्यपूर्ण वर्णन किया है।

- जगमोहन सिंह ने कालिदास कृत 'ऋतु संहार' और 'मेघदूत' का ब्रज भाषा में अनुवाद किया।
- अम्बिकादत्त व्यास ने अपने कवि जीवन का आरम्भ कवितावर्द्धिनी सभा में 'पूरी अमी की कटोरिया-सी, चिरंजीवी रही विक्टोरिया रानी' समस्या की पूर्ति करके किया और इस पर उन्हें 'सुकवि' की उपाधि प्राप्त हुई थी। अम्बिकादत्त व्यास ने खडी बोली में 'कंस वध' (अपूर्ण) शीर्षक प्रबन्ध-काव्य की रचना की। साथ ही फारसी छंद में 'दशरथ विलाप' नामक कविता खडी बोली में लिखी।
- राधाकृष्णदास भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के फुफेरे भाई थे। इन्होंने रहीम के दोहों पर कुण्डलियों की रचना की।

• भारतेन्दु काल के अन्य कवि अग्रांकित हैं -

कवि	**रचनाएँ**
नवनीत चतुर्वेदी	कुब्जा पच्चीसी
गोविन्द गिल्लाभाई	शृङ्गार सरोजिनी, पावस पयोनिधि, राधामुख
	षोडसी, षऋतु, नीति विनोद
दिवाकर भट्ट	नख शिख (1884 ई.), नवोढ़ा रत्न (1888 ई.)
रामकृष्ण वर्मा 'बलवीर'	बलवीर पचासा
राजेश्वरीप्रसाद सिंह 'प्यारे'	प्यारे प्रमोद
रावकृष्णदेव शरण सिंह 'गोप' प्रेम	सन्देसा
दुर्गादत्त व्यास	अधमोद्धार शतक (1872 ई.)
राधाचरण गोस्वामी	नवभक्तमाल
गुलाब सिंह	प्रेम सतसई

• भारतेन्दुयुगीन प्रमुख समस्यापूर्ति संग्रह और कवि निम्नलिखित हैं -

समस्यापूर्ति संग्रह	
दुर्गादत्त व्यास	समस्यापूर्ति-प्रकाश

अम्बिकादत्त व्यास	समस्यापूर्ति-सर्वस्व
गोविन्द गिल्लाभाई	समस्यापूर्ति-प्रदीप
गंगाधर 'द्विजगंग'	समस्या-प्रकाश
नर्मदेश्वर प्रसाद सिंह	पंचरत्न

द्विवेदी युग (1900 से 1918 ई.)

(क) द्विवेदी एवं उनका योगदान

द्विवेदी जी का पूरा नाम महावीर प्रसाद द्विवेदी था। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 1900 में 'सरस्वती' नामक पत्रिका निकाली। जिसने खडी बोली में साहित्य रचना के लिए प्रेरित करते हुए साहित्य को गति प्रदान करने में विशिष्ट भूमिका निभाई। अपने प्रारंभिक जीवन में उन्होंने कवितायें लिखीं लेकिन वे गद्य की ओर ज्यादा उन्मुख रहे। ललित साहित्यकारों को उन्होंने खूब प्रोत्साहन दिया। सरस्वती पत्रिका द्वारा खडी बोली को एक व्याकरण सम्मत रूप भी उन्होंने प्रदान किया। अंग्रेजी, संस्कृत, मराठी, बंगला से हिन्दी अनुवाद कर योगदान दिया साथ ही हिन्दी पाठकों की अभिरूचि को परिष्कृत करने का श्रेय भी उन्हें है।

भारतेन्दु युग में खडी बोली में गद्य का विकास हुआ परन्तु काव्य में कुछ विशेष नहीं किया जा सका। महावीर प्रसाद के निर्देशन में खड़ी बोली में कविता लिखने में तेजी आई। खडी बोली का पहला महाकाव्य "प्रिय प्रवास' इसी युग में लिखा गया।

(ख) नामकरण का आधार

1900 से 1920 ई. तक की कविता को द्विवेदी युगीन काव्य कहा जाता है। इस युग की साहित्यिक चेतना को नयी दृष्टि व दिशा देने में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने मुख्य भूमिका निभाई। उनके अविस्मरणीय योगदान के कारण इस युग को द्विवेदी युग कहा गया।

द्विवेदी युगीन परिस्थितियाँ -

1857 की क्रांति के बाद भारत में अंग्रेजों की राजनैतिक व्यवस्था दृढ़ हो गई। 1885 ई. में कांग्रेस की स्थापना के बाद भारतीय राष्ट्रीयता स्वतंत्रता आंदोलन में तेजी आई। 1900 शताब्दी में हुये सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलनों के कारण भारत में वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्पन्न हुआ और भारतीयों ने एक नये ढंग से सोचना आरंभ किया और अंग्रेजों द्वारा लाई गई पाश्चात्य संस्कृति की प्रतिक्रिया में भारतीयों में भारतीय संस्कृति के प्रति गौरव की भावना उत्पन्न हुई साथ ही पाश्चात्य ज्ञान के आलोक में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की व्याख्या की आवश्यकता भी महसूस की गई। इस तरह पुनर्जागरण से बुद्धिवाद, वैज्ञानिकता, समानता, सहिष्णुता, न्यायप्रियता, मानवतावादी दृष्टिकोण जैसे मूल्यों की स्थापना से एक लोकोन्मुखी दृष्टि पनपी। 1900 से 1920 के बीच स्वदेशी आंदोलन एवं असहयोग आंदोलन से पूरे देश में स्वाधीनता की चेतना की एक लहर आई। स्वदेशी आंदोलन ने भारतीयता पर बल दिया और अपने अतीत को फिर से पहचानने के लिये विवश किया। भारतीय जनमानस ने ये महसूस किया कि पश्चिम के विचार व संस्कृति में जो तत्व आत्मसात करने के लायक हैं वे भारतीय संस्कृति में सदा से रहे हैं। इससे सांस्कृतिक पुनरुत्थान

की प्रक्रिया को बल मिला। कांग्रेस के शुरुआत के नेताओं ने प्रेरणा के लिये राम, कृष्ण और शिवाजी जैसे भारतीय नायकों को प्रस्तुत किया ताकि आम जनता में जागरण लाये जा सके। अतः इस काल की कविता में राष्ट्रीयता, देशभक्ति और स्वाधीनता के स्वर सुनाई पड़ते हैं। भारतेन्दुकालीन द्वंद्व अब नहीं थे ब्रिटिश सरकार के स्वार्थ जनता के समक्ष स्पष्ट हो चुके थे। अतः ये कविता देश की मुक्ति के लिये जनचेतना जगाने का प्रयास करती है।

द्विवेदी युगीन प्रवृत्तियाँ/विशेषताएँ

द्विवेदी युग में दो काव्य धाराएँ प्रवाहित हुई - 1. स्वच्छन्दतावादी धारा जिसमें श्रीधर पाठक, मुकुटधरपांडेय तथा रामनरेश त्रिपाठी आदि प्रमुख कवि हैं तथा 2. अनुशासनबद्ध धारा जिसके प्रणेता स्वयं द्विवेदी हैं। उनके अतिरिक्त अयोध्या सिंह हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, नाथूराम शर्मा शंकर आदि रचनाकार हैं।
स्वच्छन्दतावादी धारा के कवि जगत की सच्चाई पर बल देते हैं।
'जगत है सच्चा तनिक न कच्चा
समझो बच्चा इसका भेद ।' (श्रीधर पाठक)

ये कवि प्रेम के स्वछन्द रूप को स्वीकार करते हैं। प्रेम मानवीय संस्कृति का वह पहलू है जहाँ कोई बन्धन नहीं ठहरता।
'प्रेम स्वर्ग है, स्वर्ग प्रेम है, प्रेम अशंक अशोक ।
ईश्वर का प्रतिबिम्ब प्रेम है, प्रेम सदय आलोक ।।'

(रामनरेश त्रिपाठी)

ये कवि प्रकृति के महत्त्व को मानते हैं उनका कहना है कि प्रकृति से दूरी साहित्य से दूरी है। इनके काव्य में स्वाधीनता का स्वर प्रबल होने के कारण आत्मनिष्ठता एवं वैयक्तिकता की प्रधानता है।
"लिखो, न लेखनी करो बंद
श्री धर सम सब कवि स्वच्छन्द।" (श्रीधर पाठक)
द्विवेदी युग की दूसरी धारा अनुशासनबद्ध है। स्वच्छन्दतावाद में परम्पराओं को तोडने का प्रयास है, जबकि अनुशासनबद्ध धारा में नए प्रतिमान बनाने की बात है। भारतेन्दु युग की मूल चिंता राजनैतिक थी और द्विवेदी युग की इस मूल धारा की चिंता सांस्कृतिक हो गई थी। यहाँ गंभीर आत्मंथन हुआ है और तात्कालीन समस्याओं पर आधुनिक चिंतन करने का प्रयास किया गया है।

(क) भावगत विशेषताएँ

(1) समाज के नए प्रतिमानों की स्थापना : द्विवेदी युग विवेकशील चिंतन का युग है। अपनी संस्कृति को परखने की कोशिश की गई है। नये के प्रति जोश और अन्धापन नहीं है, यह विवेक के साथ तय करता है कि आधुनिक समय में क्या प्रासंगिक है। यह युग संस्कृति में समयानुसार बदलाव को स्वीकार करता है -

"प्राचीन बातें ही भली हैं, यह विचार अलीक है।
जैसी अवस्था हो जहाँ, वैसी व्यवस्था ठीक है।"

(2) साहित्य के उद्देश्य पर बल : इस युग में पहली बार साहित्योद्देश्य पर बल दिया गया। कविता के स्तर पर पहली बार यह तय हुआ कि कविता का उद्देश्य मनोरंजन मात्र नहीं है।

"केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।"

(मैथिलीशरण गुप्त)

(3) राष्ट्रीयता की नवीन धारणा : भारतेन्दु युग की राष्ट्रीयता का स्वरूप तय नहीं था। द्विवेदी युग में यह स्वरूप तय हो गया अर्थात् राष्ट्रीयता की सांस्कृतिक व्याख्या हुई। 'भारत-भारती' इसका प्रामाणिक दस्तावेज है।

"देश भक्त वीरों मरने से नेक नहीं डरना होगा।
प्राणों का बलिदान देश की वेदी पर करना होगा।"

(नाथू राम शर्मा शंकर)

(4) विषयों का वैविध्य : द्विवेदी युग में विषयों का अत्यधिक विस्तार हुआ। महावीर प्रसाद द्विवेदी का मत था कि "चींटी से लेकर हाथी पर्यन्त पशु, भिक्षुक से लेकर राजा पर्यन्त मनुष्य, बिंदु से लेकर समुद्र पर्यन्त जल, अनंत आकाश, अनंत पृथ्वी, अनंत पर्वत सभी पर कविता हो सकती है।" इसलिए यह कविता कृषक, राजा, मजदूर, साधु, बालक आदि विषयों को समेटती हैं। पहली बार प्रकृति भी स्वतंत्र विषय बनकर आई। "प्रिय प्रवास' खडी बोली का पहला महाकाव्य है जिसकी शुरूआत प्रकृति-चित्रण से होती है -

"दिवस का अवसान समीप था,
गगन था कुछ लोहित हो चला।
तरू शिखा पर थी अब राजती,
कमलिनी कुल वल्लभ की प्रभा।"

(हरिऔध)

(5) आधुनिकता का बोध : पहली बार ईश्वर को मानव के रूप में प्रतिष्ठित किया गया। "प्रिय प्रवास' में कृष्ण ब्रह्म नहीं है और न ही राधा वियोगिनी। वरन् कृष्ण महापुरुष है और राधा समाज सेवा का व्रत धारण करती है।

ये कवि अपनी संस्कृति का गहन मंथन करते हैं। अपनी गलतियाँ ढूंढ़ कर उनका परिष्कार करने का प्रयास करते हैं।

'हम कौन थे, क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी।
आओ मिलकर आज विचारें ये समस्याएँ सभी।

ये कवि आधुनिक हैं इसलिए इहलोक की चिंता करते हैं -

"संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया।
मैं भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।" (गुप्त-साकेत)

ये वस्तुनिष्ठ प्रतिमानों की स्थापना करते हैं और सार्वभौमिक नियमों को स्वीकार करते हैं। आधुनिक बोध की वस्तुनिष्ठता यहाँ स्पष्ट दिखती है -

'न्याय अपने बन्धु को भी दण्ड देना धर्म है।'

(गुप्त-जयद्रथ वध)

ये आधुनिक नवजागरण से प्रेरित कवि हैं इसलिए नारी के प्रति प्रगतिशील दृष्टि रखते हैं ये नारी की स्थिति पर द्रवित भी होते हैं

"अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।"

साथ ही ये कवि नारी के प्रति सम्मान भाव भी प्रकट करते है -

"नर जाति की जननी तथा सुख शांति की स्रोतस्वति।
हा दैव! नारी जाति की कैसी यहाँ है दुर्गति।।"

(भारत-भारती)

इतिहास ने जिन नारी पात्रों के त्याग को उपेक्षित कर दिया था, द्विवेदी युग के कवियों ने उन्हें अपने काव्यों में नायिका को स्थान देकर अन्धेरे से बाहर निकाला। महात्मा बुद्ध की पत्नी यशोधरा-से कवि कहलवाता है -

"सिद्धि हेतु स्वामी गए, यह गौरव की बात,
पर चोरी-चोरी गए, यही बडा व्याघात,
सखि वे मुझसे कहकर जाते,
कह, तो क्या वे मुझको अपनी पथबाधा ही पाते।"

(ख) शिल्पगत विशेषताएँ

(1) भाषा - इस समय तक भाषा का द्वैत समाप्त हो गया था। द्विवेदी युग में गद्य व पद्य दोनों की भाषा खडी बोली हो गई। पण्डित गौरी दत्त, बाबू श्याम सुन्दर दास, अयोध्या प्रसाद खत्री इस आन्दोलन में प्रमुख रहे। 'प्रिय-प्रवास' खडी बोली का पहला महाकाव्य है। अयोध्या सिंह हरिऔध 'प्रिय प्रवास' की भूमिका में लिखते हैं कि "यदि खडी बोली में कान्तता और मधुरता नहीं आई है तो यह मेरी बुद्धि, विद्या तथा प्रतिभा का दोष है, खडी बोली का नहीं।"

(2) छंद - यहाँ मध्यकालीन छन्दों के स्थान पर संस्कृत के वर्णिक छन्दों का प्रयोग हुआ। यहाँ दोहे भी लिखे गए। मैथिलीशरण गुप्त का प्रिय छन्द हरिगीतिका है। तुकान्तता पर बल दिया गया है।

(3) काव्यरूप - प्रायः प्रबन्ध काव्य लिखे गए हैं। मुक्तक कम लिखे गए हैं।

(4) इतिवृत्तात्मकता - यह काव्य अभिधात्मक है। बातों को सीधे-सीधे कहा गया है, इस कारण इस काव्य पर इतिवृत्तात्मक होने का दोष लगाया जाता है। इस पर उथलेपन का आरोप भी है। इस कविता का सांस्कृतिक महत्त्व है। इसमें काव्य सौन्दर्य को पुष्ट करने पर ध्यान नहीं दिया गया। भारतेन्दु युग में आधुनिकता के जिस चिंतन का आरंभ हुआ था उसे कुल मिला कर द्विवेदी युग में तार्किकता व गंभीरता मिलती है।

नागरी प्रचारिणी सभा

> इसकी स्थापना 1893 ई. में काशी में निम्न तीन विद्वानों के प्रयासों से हुई थी -

1.रामनारायण मिश्र

2. डॉ. श्यामसुन्दर दास

3. शिवकुमार सिंह

सूत्र - 'राम-श्याम-शिव'

। वास्तविक गठन तिथि -16 जुलाई, 1893 ई. ।

प्रथम अध्यक्ष - राधाकृष्णदास

> इस सभा द्वारा मूल्यवान हिन्दी ग्रंथों का प्रकाशन किया जाता था।

> इस सभा द्वारा हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों की खोज का कार्य किया गया था, जिसके अध्यक्ष निम्नानुसार रहे थे -

1. बाबू श्यामसुंदर दास -1900 ई. से 1908 ई. तक

2. श्याम बिहारी मिश्र व शुकदेव बिहारी मिश्र-1908 ई. से 1916 ई. तक

> इस सभा द्वारा 1896 ई. में काशी से 'नागरी प्रचारिणी' नामक एक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन भी शुरू किया गया था, जिसमें अनेक शोधपरक लेख छपा करते थे।

> इस सभा द्वारा हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए 1910 ई. में 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग' की स्थापना भी की गई

थी।

वाराणसी में इसकी स्थापना में 'मदनमोहन मालवीय' व पुरुषोत्तमदास टंडन का अपूर्व योगदान रहा था।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन,प्रयाग के प्रथम अध्यक्ष मदनमोहन मालवीय

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्राण- पुरुषोत्तमदास टंडन

> इसके बाद हिन्दी साहित्य की समृद्धि का काम सभा ने अपने हाथ में रखा एवं प्रचार-प्रसार का काम इस सम्मेलन

को सौंप दिया गया।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

जन्म - 1864

मृत्यु - 1938

स्थान - बरेली

पिता - श्री रामसहाय द्विवेदी

संपादन - सरस्वती पत्रिका (1903-1920 ई.)

हिन्दी साहित्य में महत्त्वपूर्ण योगदान -

खड़ी बोली की पूर्ण प्रतिष्ठा, गद्य-शैली का परिमार्जन, जनोपयोगी साहित्य का सृजन, भाषा का परिष्करण

महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रमुख काव्य-संग्रह -

(i) देवी स्तुति शतक
(ii) काव्य मंजूषा
(iii) काव्य कुब्ज-अबला विलाप
(iv) कान्यकुब्जावली व्रतम् ।
(v) सुमन (1923)
(vi) नागरी
(vii) समाचार सम्पादस्तव

महावीर प्रसाद द्विवेदी जी द्वारा अनुदित काव्य-संग्रह -

(i) विनय शतक भर्तृहरि (ii) विहार वाटिका
(iii) स्नेहमाला (iv) गंगालहरी
(v) ऋतुतरंगिणी

द्विवेदी जी की प्रसिद्ध कविताओं के शीर्षक -

(i) सरगौ नरक ठेकाना नाहिं (ii) विधि विडम्बना
(iii) हे कवित्ते (iv) नागरी तेरी यह दशा
(v) अयोध्या का विलाप आदि।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है - 'कविता का विषय मनोरंजन एवं उपदेशात्मक होना चाहिए। यमुना के किनारे केलि कौतूहल का अद्भूत वर्णन बहुत हो चुका, न परकीयाओं पर प्रबंध लिखने की अब कोई आवश्यकता है और न स्वकीयाओं के 'गतागत' की पहेली बुझाने की। चीटी से लेकर हाथी पर्यन्त, भिक्षुक से लेकर राजा पर्यन्त, मनुष्य, बिन्दु से लेकर समुद्र पर्यन्त जल, अनन्त आकाश, अनन्त पृथ्वी, अनन्त पर्वत-सभी पर कविता हो सकती है।'

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त

जन्म - 1886
मृत्यु - 1964 ई. स्थान - झाँसी में
पिता - सेठ रामशरण दास
गुरु - महावीर प्रसाद द्विवेदी
प्रथम कविता - 'हेमन्त' 1905 में सरस्वती में प्रकाशित
प्रथम काव्यसंग्रह - रंग में भंग (1909 ई.)

अंतिम काव्यसंग्रह - विष्णु प्रिया (1957 ई.)

मैथिलीशरण गुप्त की प्रमुख रचनाएँ -

रंग में भंग (1909) जयद्रथ वध (1910) भारत-भारती (1912) किसान (1917) पंचवटी (1925) हिन्दु (1927) विकट भट (1929) गुरुकुल (1929) साकेत (1931) झंकार (1929) यशोधरा (1932) द्वापर (1936) सिद्धराज (1936) पृथ्वीपुत्र (1950) प्रदक्षिणा (1950) जयभारत (1952) विष्णु प्रिया (1957 ई.)

गुप्त जी से संबंधित महत्त्वपूर्ण तथ्य -

- मैथिलीशरण गुप्त जी को 'आधुनिक युग का तुलसी' स्वीकार किया जाता है।
- -हिन्दी साहित्य में 'रामचरितमानस' के बाद रामकाव्य का दूसरा स्तम्भ गुप्त जी कृत 'साकेत' है।
- -साकेत का आरंभ 1914 में होता है तथा 1931 ई. में पूर्ण हुआ। इसमें बारह सर्ग है। गुप्त जी को साकेत रचना की मूल प्रेरणा, महावीर प्रसाद द्विवेदी के एक लेख 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' से मिली जो जुलाई 1908 ई. में सरस्वती पत्रिका में 'भुजंग भूषण भट्टाचार्य' छद्म नाम से छपा था। डॉ. नगेन्द्र ने साकेत को 'जीवनदायी काव्य' कहा है।
- -गुप्त जी की आरम्भिक रचनाएँ कलकत्ता से निकलने वाली 'वैश्वोपकारक' पत्रिका में छपती थी।
- गुप्त जी ने माइकेल मधुसूदन दत्त के मधुसूदन वध का विरहिणी ब्रजांगना और वीरांगना शीर्षक से अनुवाद किया
- एवं 'मधुप' उपनाम का प्रयोग करते हुए 'मेघनाथ वध' में अतुकान्त शैली अपनाई।
- चन्द्रहास, तिलोत्तमा, अनध, गीतिनाट्य तथा यशोधरा इनका चंपूकाव्य है। - गुप्त जी ने मार्क्स की पुत्री 'जैनी' पर 'जयिनी' नामक कृति लिखी।
- चर्चित काव्यकृति भारत-भारती को लिखने की प्रेरणा गुप्त जी को मुसद्दसे हाली और कैफी के भारत दर्पण से मिली।
- गुप्त जी को भारत-भारती लिखने पर महात्मा गांधी ने 'राष्ट्रकवि' की उपाधि दी। - आचार्य शुक्ल ने गुप्त जी को सामंजस्यवादी कवि कहा है।
- गुप्त जी के अन्य उल्लेखनीय काव्य झंकार, किसान, त्रिपथगा, विश्ववेदना, शकुन्तला, पत्रावली, स्वदेश, विकटभट, गुरुकुल, हिडिम्बा, पृथ्वीपुत्र, द्वापर, प्लासी का युद्ध, काबा और कर्बला, अंजलि और आराध्य आदि।

जगन्नाथदास रत्नाकर

जन्म - 1866

मृत्यु - 1932

पिता - पुरुषोत्तम

उपनाम - रत्नाकर उर्दू में 'जकी' उपनाम।

अनुवाद - अंग्रेजी विद्वान पोप के एस्से ऑन क्रिटिलिज्म का।

जगन्नाथदास 'रत्नाकर' की प्रमुख रचनाएँ- (1) हिंडोला (1894), (2) गंगावतरण (1927), (3) उद्धवशतक (1929), (4) हरिश्चन्द्र, (5) श्रृंगार लहरी, (6) कलकाशी, (7) वीराष्टक ।
अंग्रेजी विद्वान पोप के 'एस्से ऑन क्रिटिसिज्म' का रोला छंद में 'समालोचनादर्श' शीर्षक से अनुवाद किया।

द्विवेदी युगीन प्रमुख कवि एवं रचनाएँ -

कवि	रचनाएँ
श्रीधर पाठक (1859-1928 ई.)	मनोविनोद (1882), जगत सचाई सार, कश्मीर सुषमा(ब्रजभाषा-1904)आराध्य शोकांजलि,
	जार्ज वंदना, भक्ति विभा, गोखले प्रशस्ति,
	देहरादून (1915), भारत गीत (1928), धन
	विजय, गुनवन्त हेमन्त (1900), गोपिका
	गीत, स्वर्गीय वीणा।

अंग्रेजी	कृति शीर्षक	भाषा	वर्ष
हरमिट	एकान्त योगी	खडीबोली	1886
ट्रैवलर	श्रांत पथिक	खडी बोली	1902
डेजर्ट विलेज	उजड ग्राम	ब्रजभाषा	1889

- ग्रे की शैफर्ड एण्ड फिलासफर पुस्तक का 'गडरिये और दार्शनिक' नाम से अनुवाद किया।
- कालिदास के ऋतुसंहार के प्रथम तीन सर्ग का अनुवाद ब्रजभाषा में किया।
- हिन्दी साहित्य में श्रीधर पाठक स्वच्छन्द काव्यधारा के प्रवर्तक माने जाते हैं।

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (1865 - 1947) :

कृष्णशतक (1882) रसिक रहस्य (1899) प्रेमाम्बु वारिधि (1900) प्रेम प्रपंच (1900) प्रेमाम्बु प्रश्रवण (1901) प्रेमाम्बु प्रवाह (1901) पद्म प्रसून (1925) रस कलश (1931) चौखे चौपदे (1932) चुभते चौपदे (1924) फूल पत्ते (1935), कल्पलता (1937), ग्राम गीत (1938), हरिऔध सतसई (1940), मर्म स्पर्श (1956)।

प्रमुख प्रबंध काव्य -

(i) प्रियप्रवास (1914) को खडी का प्रथम महाकाव्य माना जाता है। इसमें सत्रह सर्गों में राधा एवं कृष्ण की कथा वर्णित है। इसमें कृष्ण-राधा को समाज सेवक-सेविका के रूप में दर्शाया गया है।

(ii) पारिजात (1937) : आध्यात्मिक एवं धार्मिक विषयों का वर्णन है। (iii) वैदेही वनवास (1940) : इसमें सीता के निर्वासन की कथा है। 'हरिऔध' जी साहित्य में 'कवि सम्राट' की उपाधि से विभूषित किए गए हैं। रसकलश (1931 ई.) ब्रजभाषा में रचित रीतिग्रंथ है।

अन्य महत्त्वपूर्ण कवि एवं उनकी रचनाएँ -

कवि

रचनाएँ

लोचनप्रसाद पाण्डेय (1886-1959)

प्रवासी, महानदी, पद्यपुष्पांजलि, मेवाङगाथा, मृगी दुखमोचन (प्रबंधकाव्य)

रामचरित उपाध्याय(1872-1938)

विजयी बसन्त, श्रावण शृंगार, सुधाशतक का बारवा (ब्रजभाषा में) राष्ट्र भारती, देवसभा,विचित्र विवाह, सूक्ति मुक्तावली, देवदूत, भारतभक्ति, रामचरित चंद्रिका, राम चिन्तामणि (प्रबन्ध काव्य) (1920

नाथूराम शर्मा 'शंकर' (1859-1932)

(i) अनुरागरत्न (ii) शंकर सरोज (iii) शंकर सर्वस्व(1951)(iv) गर्भरंडा रहस्य

लाला भगवान दीन (1866-1930)

(i) वीर क्षत्राणि (ii) वीर बालक (iii) वीर पंचरत्न (iv) नवीन बीन

रामदेवी प्रसाद 'पूर्ण' (1868-1915)

(i) धाराधर धावन (1902) (ii) स्वदेशी कुण्डल (1910) (iii) मृत्युंजय (1904) (iv) राम-रावण विरोध (1906) (v) वसंत वियोग (1912)

गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' (1883-1977)

(1) कृषक क्रंदन (ii) प्रेम पचीसी (iii) राष्ट्रीय वीणा (iv) त्रिशूल तरंग

(v) करूणा कादम्बिनी

सियाराम गुप्त

(i) मौर्य विजय (प्रबंध काव्य), अनाथ, दूर्वादल, निषाद, आर्द्रा, आत्मोसर्ग (प्रबंधकाव्य), पाथेय, मृण्यमयी, बापू, दैनिकी, उन्मुक्त, नकुल (प्रबंध काव्य) नोआखली, जयहिंद, गीता संवाद आदि।

सत्यनारायण 'कविरत्न' (1880-1918)

'हृदय तरंग' की दो कविताओं प्रेमकली और भ्रमरदूत के कारण प्रसिद्धि मिली।

-मैकाले की प्रसिद्ध रचना होरेशस का हिन्दी अनुवाद किया।

रामनरेश त्रिपाठी (1889-1962)

(i) मिलन (1917) (ii) पथिक (1920) (iii) मानसी (1927) (iv) स्वप्न

(1929) (v) कविता कौमुदी

मुकुटधर पाण्डेय (1895-1984)

(i) आँसू (ii) उद्‌गार (iii) पूजाफूल (iv) कानन कुसुम ।

आचार्य शुक्ल ने इन्हें छायावाद का प्रवर्तक माना है।

उपर्युक्त कवियों से संबंधित विविध तथ्य -

- लोचन प्रसाद पाण्डेय को 'काव्य-विनोद' एवं 'साहित्य-वाचस्पति' की उपाधियाँ प्राप्त थी।
- नाथूराम शर्मा कविता - कामिनी कान्त, भारतेन्दु प्रज्ञेन्दु, साहित्य सुधाकर आदि उपाधियों से विभूषित किए गए।
- नाथूराम शर्मा ने एक विशाल प्रबंध काव्य 'गर्भरंडा रहस्य' की रचना की, जिसमें विधवाओं की दुर्दशा एवं देव मंदिरों में होने वाले दुराचारों पर प्रकाश डाला है।
- -रामचरित उपाध्याय द्विवेदी युग के प्रमुख सुक्तिकार माने जाते हैं।
- -गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' उपनाम से ब्रजभाषा एवं त्रिशूल उपनाम से समसामयिक विषयों पर कविताएँ लिखते थे।
- सियारामशरण 'गुप्त' ने मौर्य विजय (1914) अनाथ (1917) आत्मोसर्ग (1931) नकुल (1986) प्रबंध काव्य की रचना की।
- -मौर्य विजय सेल्यूकस एवं चन्द्रगुप्त मौर्य के ऐतिहासिक द्वन्द्व को राष्ट्रीय भावों से ओत-प्रोत करके प्रस्तुत किया गया है।
- -रामनरेश त्रिपाठी ने मिलन, पथिक, स्वप्न नामक तीन प्रबंधात्मक काव्यों की रचना की, जिसमें लौकिक प्रेम का उदात्तीकरण देश-प्रेम के रूप में किया गया है।
- मुकुटधर पाण्डेय द्विवेदीयुग के प्रमुख प्रगीत मुक्तकार माने जाते हैं, शुक्ल जी ने इन्हें छायावाद का प्रवर्तक माना है।

छायावादी युग (1920 ई. से 1936 ई. तक)

छायावाद हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग की वह काव्यधारा है जो लगभग 1918 ई. से 1936 ई. तक की प्रमुख युगवाणी रही, जिसमें प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी आदि प्रमुख कवि हुए और स्वच्छंदता जिसकी मूल प्रवृत्ति है।

→ 1918 ई. से 1938 ई. तक-डॉ. नगेन्द्र ।

→ कालावधि - इस युग की प्रारम्भिक सीमा के संबंध में निम्न दो मत प्रचलित हैं 1. 1918 ई. से प्रारम्भ :- छायावादी गुणों (प्रवृत्तियों) से युक्त सर्वप्रथम रचना 'झरना' (लेखक -जयशंकर प्रसाद) का प्रकाशन 1918 ई. में हुआ था, अतएव डॉ. नगेन्द्र जैसे इतिहासकारों ने 'छायावाद' का समय 1918 ई. से 1938 ई. तक निर्धारित किया है।

2. 1920 ई. से प्रारम्भ -

- इस युग का नामकरण श्री मुकुटधर पाण्डेय द्वारा रचित निबंध 'हिन्दी छायावाद' के आधार पर रखा हुआ माना जाता है।

- यह निबंध सर्वप्रथम जबलपुर से प्रकाशित होने वाली 'श्री शारदा' पत्रिका में 1920 ई. में प्रकाशित हुआ था, अतएव हिन्दी छायावाद का प्रारंभ भी 1920 ई. से माना जा सकता है।
- श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादक 1903 ई. से 1920 ई. तक रहे थे, जिसके आधार पर द्विवेदी युग का समय 1920 ई. तक निर्धारित करके 'छायावाद' का समय 1920 ई. से आरंभ माना जा सकता है।
    - नोट :- "हिन्दी में छायावाद' शीर्षक से सुशील कुमार द्वारा लिखित एक अन्य निबंध 1921 ई. में 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित हुआ था, जिसमें उन्होंने 'छायावाद' को 'अस्पष्टतावाद' के अर्थ में ग्रहण किया था।
    - 'मुकुटधर पाण्डेय का कथन'- "मेरी समझ में नयी शैली में भाव नहीं, भावों की छाया पायी जाती थी, जिन्हें पकड़कर हृदयंगम करने में पाठकों को कठिनाई होती थी। इस छायावादिता से ही मैंने 'छायावाद' शब्द बनाया था।"

> 'छायावाद' की परिभाषाएँ -

1. डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार - "जब आत्मा की छाया परमात्मा में और परमात्मा की छाया आत्मा में पड़ने लगती है, तब छायावाद की सृष्टि होती है।"

2. डॉ. नगेन्द्र के अनुसार - "छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है।" "छायावाद एक विशेष प्रकार की भाव पद्धति है, जीवन के प्रति एक विशेष भावात्मक दृष्टिकोण है।"

3. जयशंकर प्रसाद के अनुसार - "जब वेदना के आधार पर स्वानुभूति अभिव्यक्त होने लगी, तब हिन्दी में उसे छायावाद के नाम से अभिहित किया गया।"

4. महादेवी वर्मा के अनुसार - "छायावाद तत्त्वतः प्रकृति के बीच जीवन का उद्गीथ है, उसका मूल सर्वात्मवाद है।"

5. रामचंद्र शुक्ल के अनुसार - "छायावाद का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए-एक तो 'रहस्यवाद' के अर्थ में और दूसरा काव्य शैली या पद्धति विशेष के व्यापक अर्थ में।"

6. श्री गंगा प्रसाद पाण्डेय के अनुसार - इन्होंने भावलोक की प्रगति के तीन चरण माने हैं- 1. वस्तुवाद 2. छायावाद 3. रहस्यवाद, अतः उनके शब्दों में "छायावाद वस्तुवाद व रहस्यवाद के बीच की कड़ी है।"

7. डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार - 'छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह नहीं रहा है, वरन् थोथी नैतिकता, रूढ़िवाद और सामन्ती साम्राज्यवादी बंधनों के प्रति विद्रोह रहा है। परन्तु यह विद्रोह मध्यवर्ग के तत्वाधान से हुआ था, इसलिए उसके साथ मध्यवर्गीय असंगति, पराजय और पलायन की भावना भी जुड़ी हुई है।

8. डॉ. नामवर सिंह के अनुसार - 'छायावाद उस राष्ट्रीय जागरण की अभिव्यक्ति है, जो एक ओर पुरानी रूढ़ियों से मुक्ति चाहता था और दूसरी ओर विदेशी पराधीनता से।'

9. डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी - 'वह (छायावाद) मूलतः शक्ति काव्य है, पुनर्जागरण चेतना का व्यापक और सूक्ष्म रूप है और अपनी अर्थ-प्रक्रिया में मानव व्यक्तित्व को गहरे स्तरों पर समृद्ध करता है।'

10. डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त के अनुसार - डॉ. गुप्त ने 'छायावाद' को 'स्वच्छंदतावाद' कहते हुए कहा है"स्वच्छंदतावाद एक विशेष प्रकार की मानसिक चेतना है, जिसमें व्यक्ति अन्तर्मुखी होकर बाह्य जगत् की अपेक्षा अन्तर्जगत् को, बौद्धिकता की अपेक्षा भावात्मकता को, यथार्थ की अपेक्षा कल्पना को, सत्य की अपेक्षा सौन्दर्य को, परम्परा की अपेक्षा नूतनता को एवं संघर्ष की अपेक्षा प्रेम को अधिक महत्त्व देने लगता है। जिस काव्य में इस प्रकार की अन्तर्मुखी चेतना की अभिव्यक्ति होती है, उसे सामान्यतः स्वच्छंतावाद का नाम दिया जाता है।"

सारांश - सारांशतः यह कहा जा सकता है कि जब किसी के भावों की छाया कहीं अन्यत्र जाकर पडती है तो उसे छायावादी कविता कहते हैं। जैसे -

"कहो कौन तुम दमयंती सी इस तरु के नीचे सोयी।
अहा तुम्हें भी त्याग गया क्या अलि नल सा निष्ठुर कोई ।।" ।
अलि नल सा निक्षुर कोई।" /

सुमित्रानंदन पंत की इन पंक्तियों में कहा तो गया है 'छाँह' के बारे में, परन्तु इसका अर्थ निकल रहा है- 'नारी स्वातंत्र्य' के बारे में, अतएव यह छायावादी कविता मानी जा सकती है।

» छायावाद के विविध अर्थ - विविध विद्वानों के द्वारा 'छायावाद' के विविध अर्थ ग्रहण किये गये हैं। यथा -	
विद्वान का नाम	**छायावाद का अर्थ**
महावीर प्रसाद द्विवेदी	अन्योक्ति पद्धति
मुकुटधर पाण्डेय	रहस्यवाद
आचार्य रामचंद्र शुक्ल	शैली वैचित्र्य मधुचर्या चित्र भाषा शैली

नोट :- आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने छायावाद का संबंध ईसाई संतों के 'फैंटेसमाटा' (छायाभास) शब्द से जोड़ा है। उन्होंने इसे "चित्र भाषा शैली' कहा है। वे इसे रवीन्द्रनाथ टैगोर की कविताओं के प्रभाव से आया हुआ मानते है।

अन्य विद्वानों के अनुसार छायावाद को निम्न रूपों में संज्ञा दी गयी -

नन्द दुलारे	वक्त सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया का भान
डॉ. नगेन्द्र	स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह
हजारी प्रसाद द्विवेदी	व्यंग्यार्थ प्रधान शैली
सुशील कुमार	अस्पष्टतावाद
जयशंकर प्रसाद	कान्ति
सुमित्रानंदन पंत	सौन्दर्य की छाया
डॉ. बच्चन सिंह	स्वच्छंतावाद

नोट :- डॉ. बच्चन सिंह ने छायावाद को तत्कालीन काव्य की सम्पूर्ण विशेषताओं की व्यंजना में असमर्थ समझकर उसके स्थान पर 'स्वच्छंदतावाद' शब्द का प्रयोग अधिक सार्थक माना है।

शान्तिप्रिय द्विवेदी

प्रकृति में ही समान आत्मा का दर्शन करने की प्रवृत्ति गंगा प्रसाद पाण्डेय

वस्तुवाद व रहस्यवाद के बीच की कड़ी

छायावाद की प्रमुख विशेषताएँ -

1. 'छायावाद' व 'रहस्यवाद' एक ही है, अर्थात् इनमें कोई तात्विक भेद नहीं है।
2. 'छायावाद' में अभिव्यक्ति की सूक्ष्मता और 'रहस्यवाद' में अज्ञात के प्रति जिज्ञासा है।
3. 'छायावाद' प्रकृति में मानव जीवन का प्रतिबिंब देखता है।
4. 'छायावाद' दार्शनिक अनुभूति है।
5. 'छायावाद' एक भावात्मक दृष्टिकोण है।
6. 'छायावाद' में प्रेम का चित्रण भी होता है।
7. 'छायावाद' प्रकृति में आध्यात्मिक सौन्दर्य का दर्शन करता है।
8. 'छायावाद' में गीति तत्त्व की प्रमुखता होती है।
9. 'छायावाद' स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है।

> वस्तुतः छायावाद पूर्ववर्ती युग के विरोधस्वरूप प्रतिक्रियाजन्य हिन्दी कविता के एक विशिष्ट युग में प्रस्फुटित एक । विशेष दार्शनिक अनुभूति एवं एक विशेष शैली है, जिसमें लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक एवं अलौकिक प्रेम के माध्यम से लौकिक अनुभूतियों का चित्रण होता है। इसमें प्रकृति का मानव रूप प्रस्तुत करते हुए गीति तत्त्व की प्रमुखता का भी ध्यान रखा जाता है।

छायावादी काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ -

(क) भावगत या विषयगत प्रवृत्तियाँ -

1. आत्माभिव्यक्ति की प्रधानता
2. मानवीय सौन्दर्य बोध
3. रहस्य भावना
4. शृंगार भावना/प्रेम भावना
5. कमनीय कल्पना
6. प्रकृति के रम्य रूपों की रचना (प्रकृति से साहचर्य)
7. कलापक्ष की प्रधानता
8. वेदना की विवृत्ति
9. दार्शनिकता
10. राष्ट्रीयता की भव्य भावना

11. मानवतावाद की स्थापना
12. नारी का भव्य स्वरूप
13. भावातिरेक व नैराश्य
14. वैयक्तिकता
15. स्वच्छंदता की मनोवृत्ति

(ख) विचारगत प्रवृत्तियाँ -
1. सांस्कृतिक व सामाजिक चेतना (मानवतावाद)
2. समन्वय का संदेश
3. पीडित विश्व की सेवा का संदेश

(ग) शिल्पगत प्रवृत्तियाँ -
1. आत्माभिव्यक्ति अर्थात् 'मैं' (उत्तम पुरुष) शैली का प्रयोग
2. ललित कोमलकांत पदावली का प्रयोग
3. मुक्त छंद शैली का प्रयोग
4. मुक्त अलंकारों का प्रयोग
5. प्रतीकों का भरपूर का प्रयोग

> 'डॉ. कृष्णदेव झारी' के अनुसार 'छायावाद' के चार आधार स्तम्भः (चार प्रमुख कवि)
1. जयशंकर प्रसाद ब्रह्मा
2. सुमित्रानंदन पंत - विष्णु
3. सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला' - महेश (रुद्र)
4. महादेवी वर्मा - शक्ति (दुर्गा)

> 'आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी' के अनुसार 'छायावाद' की बृहत्त्रयी : (तीन बड़े कवि)
1. जयशंकर प्रसाद - 'मानवीय भूमि' की प्रधानता
2. सुमित्रानंदन पंत - 'कल्पना की प्रधानता
3. सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला' - 'बुद्धि तत्त्व' की प्रधानता

नोट :- आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी द्वारा 1931 ई. में प्रसाद, पंत और निराला पर अलग-अलग निबंध लिखकर उन्होंने छायावाद की बृहत्यत्री की घोषणा की थी।

> 'छायावाद' की लघुत्रयी (तीन छोटे कवि) -
1. महादेवी वर्मा
2. डॉ. रामकुमार वर्मा

3. भगवती चरण वर्मा नोट :- 'छायावाद की लघुत्रयी' में कुछ इतिहासकार 'भगवती चरण वर्मा' के स्थान पर 'माखन लाल चतुर्वेदी' को भी स्थान देते हैं।

> "छायावाद' के चार प्रमुख कवियों के दार्शनिक मत -

1. जयशंकर प्रसाद - प्रत्यभिज्ञा दर्शन/आनंदवाद/समरसतावाद
2. सुमित्रानंदन पंत - अरविंद दर्शन
3. सूर्यकांत त्रिपाठी - अद्वैत वेदांत दर्शन
4. महादेवी वर्मा - बौद्ध दर्शन

> विविध इतिहासकारों (आलोचकों) के मतानुसार छायावाद के प्रवर्तक -

1. 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल' के अनुसार - मैथिलीशरण गुप्त व मुकुटधर पाण्डेय
2. प्रभाकर माचवे व विनयमोहन शर्मा - माखनलाल चतुर्वेदी
3. नन्द दुलारे वाजपेयी के अनुसार - सुमित्रानंदन पंत
4. इलाचन्द्र जोशी व गणपति चन्द्र गुप्त - जयशंकर प्रसाद

> सर्वाधिक, सर्वमान्य एवं वास्तविक प्रवर्तक - जयशंकर प्रसाद

> छायावाद विशेषः

1. छायावाद कल्पना प्रधान काव्य कहलाता है।
2. छायावादी काव्य में अनुभूति की गहराई देखने को मिलती है।
3. छायावादी युग को 'खड़ी बोली हिन्दी का स्वर्णयुग' भी कहा जाता है।
4. 'मानवतावाद' छायावाद का सर्वाधिक उज्जवल पक्ष माना जाता है।
5. प्रेमचंद द्वारा संपादित 'जागरण' पत्र को छायावाद का घोर समर्थक पत्र माना जाता है।
6. छायावादी कवियों को पलायनवादी कवि भी कहा जाता है, क्योंकि वे यथार्थ जीवन की कटुता से मुँह मोड़कर कल्पनालोक में विचरण करते नजर आते हैं।
7. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने छायावाद को 'अभिव्यंजनावाद का विलायती संस्करण' कहा है।
8. आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी ने छायावाद के समर्थन में कई लेख लिखे थे, जो 'भारत' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुए थे।
9. जयशंकर प्रसाद की 'झरना' (1918 ई.) कविता को 'छायावाद की प्रयोगशाला का प्रथम आविष्कार' माना गया है।
10. जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित 'कामायनी' (1935 ई.) को इस काव्यधारा की चरम परिणति के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।
11. छायावाद के कवियों पर अंग्रेजी के 'रोमांटिसिज्म' का गहरा प्रभाव परिलक्षित होता है। नोट :- 'रोमांटिसिज्म' या 'स्वच्छन्तावाद' का प्रवर्तन अंग्रेजी में वर्ड्सवर्थ एवं कोलरिज के काव्य संग्रह 'लिरीकल बैलेड्स के प्रकाशन वर्ष 1798 ई. से माना जाता है।

12. छायावाद के प्रवर्तक निस्सन्देह 'जयशंकर प्रसाद' ही माने जाते हैं।

जयशंकर प्रसाद

जन्म - 1889 ई.

स्थान - वाराणसी

मृत्यु - 1937 ई.

पिता - देवीप्रसाद

बचपन का नाम - झारखण्डी

उपनाम - कलाधर

दर्शन - शैव दर्शन

प्रमुख कृतियाँ - उर्वशी (1909 ई.) वन मिलन (1909) प्रेम राज्य (1909) अयोध्या का उद्धार (1910) शोकोच्छ्वास (1910) वभ्रुवाहन (1911) कानन-कुसुम (1913) प्रेम पथिक (1914) महाराणा का महत्त्व (1914) चित्राधार (1918) झरना (1918) आँसू (1925) लहर (1933) कामायनी (1935 ई.)

- 'प्रथम प्रभात' जयशंकर प्रसाद की पहली छायावादी कविता मानी जाती है, जो 'झरना' में संकलित है।
- प्रसाद ब्रजभाषा में 'कलाधर' उपनाम से कविता लिखते थे। इनकी ब्रजभाषा की कविताएँ 'चित्राधार' में संकलित हैं।
- प्रसाद का प्रथम खडी बोली का काव्य-संग्रह 'कानन-कुसुम' है। प्रसाद ने प्रेमपथिक (1909) की रचना पहले ब्रजभाषा में की थी, बाद में परिवर्तित एवं परिवर्धित रूप में खड़ी बोली में अनुवाद (1914) में किया।
- प्रसाद की कृति 'झरना' को छायावाद का प्रथम काव्य-संग्रह माना जाता है।
- झरना को 'छायावाद की प्रयोगशाला' माना जाता है।
- 'आँसू प्रसाद का विरह प्रधान स्मृति काव्य है।
- कामायनी प्रसाद की अंतिम कृति है। कामायनी में 15 सर्ग है, जो इस प्रकार है -
- चिन्ता (ii) आशा (111) श्रद्धा (iv) काम (v) वासना (vi) लज्जा (vii) कर्म (viii) ईर्ष्या (x i) इडा (x) स्वप्न (x i) संघर्ष (xji) निर्वेद (xiii) दर्शन (ixv) रहस्य (xv) आनन्द
- कामायनी में प्रसाद ने 'शैव दर्शन' के अंतर्गत आने वाले प्रत्याभिज्ञान दर्शन की मान्यताओं के अनुरूप समरसतावाद एवं आनंदवाद की स्थापना की है।

कामायनी के चार प्रमुख पात्रों की प्रतीकात्मकता-

मनु - मन

इडा - बुद्धि

श्रद्धा - हृदय

कुमार - मानव

- आचार्य शांतिप्रिय द्विवेदी ने 'कामायनी' को 'छायावाद का उपनिषद्' कहा है।

- कामायनी का मुख्य आधार शतपथ ब्राह्मण को स्वीकार किया जाता है।
- कामायनी का उद्देश्य आनंदवाद की स्थापना है।

महाप्राण सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला'

जन्म - 1899 ई.
स्थान - मेदिनीपुर के महिषादल में
मृत्यु - 1961
स्थान - इलाहाबाद
पिता - रामसहाय त्रिपाठी
पत्नी - मनोरमा देवी
पुत्री - सरोज
बचपन का नाम - सूर्य कुमार
दर्शन - अद्वैतवाद

निराला की महत्त्वपूर्ण रचनाएँ -
(1) अनामिका (1923) (2) परिमल (1930) (3) गीतिका (1936) (4) तुलसीदास (1938) (5) कुकुरमुत्ता (1942) (6) अणिमा (1943) (7) बेला (1946) (8) नये पत्ते (1946) (9) अर्चना (1950) (10) आराधना (1953) (11) गीतगुंज (1954) (12) सांध्य काकली (1969)
सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की खडी बोली की पहली कविता 'जुही की कली' (1916) हैं एवं अंतिम कविता 'पंत्रोकंठित जीवन का विष बुझा हुआ है।
निराला की प्रमुख कविताएँ है - अधिवास, पंचवटी प्रसंग, भिक्षुक, बादल राग, विधवा, शेफालिका, जागो फिर एक बार, महाराज शिवाजी, प्रेयसी, रेखा, तोडती पत्थर आदि ।
- निराला का प्रथम काव्य-संग्रह 'अनामिका' (1923) एवं अंतिम काव्य-संग्रह सांध्यकाकली (1969 ई.) है, जो इनके मरणोपंरात प्रकाशित हुआ।

निराला की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रचनाएँ -
-सरोज स्मृति (1935 ई.) - निराला की सर्वाधिक व्यक्तिपरक रचना है, जिसे निराला ने अपनी पुत्री सरोज के देहावसान पर लिखा था। इसे आधुनिक हिन्दी काव्य का 'प्रथम और उत्कृष्ट शोकगीत' कहा जाता है।
-राम की शक्ति पूजा (1936 ई.) - का कथानक बांग्ला के कृतिवास रामायण से लिया गया है। इसमें निराला ने राम के माध्यम से अपने जीवन संघर्ष को दिखाने का प्रयास किया है साथ ही अप्रत्यक्ष रूप से यह काव्य भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष से जुडती है।
-तुलसीदास (1938 ई.) - 101 छंदों में रचित एक खण्ड काव्य है। इसमें निराला ने सबसे कठिन छंद तथा तुक विधान का पालन किया है। इस रचना में 'तुलसीदास' के माध्यम से भारतीय जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा की गई है।

-'कुकुरमुत्ता' (1942 ई.) - निराला की प्रसिद्ध कृति है। इस रचना में उन्होंने प्रतीक रूप में पूँजीवादी और श्रमिक वर्ग के जीवन की विषमता का चित्रण किया है। पूँजीवादी वर्ग का प्रतीक 'गुलाब' है और श्रमिक वर्ग का प्रतीक 'कुकुरमुत्ता' है।

निराला से संबंधित महत्वपूर्ण तथ्य -

- निराला 'मुक्त छंद' के प्रवर्तक माने जाते हैं। कुछ आलोचकों ने 'मुक्त छंद' को रबर या केचुआ छंद भी कहा है।
- निराला 'परिमल' की भूमिका में लिखते हैं -
- 'मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छंद के शासन से अलग हो जाना
- ' निराला ने 'कवित्त' को 'हिन्दी का जातीय छंद' कहा है।
- निराला को 'ओज एवं औदात्य' का कवि माना जाता है। इनकी तुलना अमरीकी कवि वाल्ट व्हिटमैन से की जाती
- निराला को छायावादी का 'श्लाका पुरुष' भी कहा जाता है।
- आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने निराला को 'शताब्दी का कवि' कहा है।
- डॉ. नामवर सिंह ने निराला की कविता को 'शताब्दी का काव्य' कहा है।

सुमित्रानंदन पंत

>जन्मकाल - 1900 ई.

> जन्मस्थान - ग्राम-कोसानी, जिला-अल्मोड़ा (उत्तराखंड)

> मृत्युकाल - 1977 ई.

> प्रमुख रचनाएँ - पंतजी द्वारा रचित काव्यों को मुख्यतः निम्न चार श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है -

1. छायावादी रचनाएँ (1918-1934 ई.) (छायावादी युग)

1. उच्छ्वास-1920 ई. 2. ग्रंथि-1920 ई. 3. वीणा-1927 ई. 4. पल्लव-1928 ई. 5. गुंजन-1923 ई.

ट्रिक: उग्र वीणा पंगु

2. प्रगतिवादी रचनाएँ (1935-1945 ई.) (प्रगतिवादी युग)

1. युगान्त-1936 ई. 2. युगवाणी-1939 ई. 3. ग्राम्या-1940 ई.

3. अरविंद दर्शन से प्रभावित रचनाएँ (1946-1948 ई.) (अन्तश्चेतनावादी युग)

1. स्वर्णकिरण-1947 ई. 2. स्वर्णधूलि-1947 ई. 3. युगान्तर-1948 ई.

4. युगपथ-1948 ई.

4. मानवतावादी (आध्यात्मिक) रचनाएँ (1949 ई. के बाद) (नव मानवतावादी युग)

1. लोकायतन-1964 ई.
2. चिदम्बरा-1959 ई.
3. पतझर
4. अभिषेकिता
5. पौ फटने से पहले
6. अतिमा-1955 ई.
7. रजतशिखर-1951 ई.
8. समाधिता
9. शशी की तरी
10. कला और बूढ़ा चाँद-1959 ई.
11. वाप्पी-1957 ई.

- पंतजी की सर्वप्रथम कविता - गिरजे का घंटा (यह कविता 1916 ई. में प्रकाशित हुई थी)
- छायावाद का घोषणापत्र (मेनिफेस्टो) - पंत द्वारा रचित 'पल्लव' रचना की भूमिका को 'छायावाद का घोषणापत्र (मेनिफेस्टो) कहा जाता है।
- पंत की सर्वप्रथम छायावादी रचना-उच्छवास (1920 ई.)
-

> रचनाओं के संबंध में विशेष तथ्य -

1. उनकी प्रारम्भिक रचनाओं 'वीणा' और 'पल्लव' में 'प्रकृति प्रेम' एवं 'रहस्यवादिता' की प्रधानता है जबकि 'ग्रंथि और 'गुंजन' रचना में उनका नारी-प्रेम अभिव्यक्त हुआ है। 2. एक तरफ 'वीणा' का कवि है जो प्रकृति पर मुग्ध होकर बालाओं के सौन्दर्य की भी अवज्ञा कर बैठता है -

"छोड़ द्रुमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति की भी माया।
बाले तेरे बाल-जाल में, कैसे उलझा दूँ लोचन।।"

3. दूसरी तरफ 'गुंजन' का कवि है, जिसके लिए नारी सौन्दर्य प्रकृति सौन्दर्य से भी बढ़कर है। यथा -

"तुम्हारी मंजुल मूर्ति निहार, लग गई मधु के वन में ज्वाल।
खड़े किंशुक अनार कचनार, लालसा की लौ से उठ लाल ।।"

4. 'युगान्त' रचना पंतजी के छायावादी दृष्टिकोण की अन्तिम रचना मानी जाती है। यह छायावाद युग के अंत का घोषणा पत्र है साथ ही इसमें प्रगतिवाद का उदय भी मिलता है।

5. 'कला और बूढ़ा चाँद' रचना में कवि के द्वारा 1958 ई. में रचित कविताओं का संग्रह किया गया है।

6. स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, अतिमा, उत्तरा आदि में अतिमानस के स्वर्ण-प्रकाश की अभिव्यक्ति हुई है जो वास्तविक दुनिया से मेल नहीं खाती है।

7. 'युगवाणी' रचना में पंतजी ने प्रगतिवाद को 'युग की वीणा' बतलाया है।

8. इन्होंने हरिवंशराय बच्चन के सहयोग से 'खादी के फूल' शीर्षक से कविता लिखी थी।

> लोकायतन -

1. यह पंतजी द्वारा रचित सर्वश्रेष्ठ रचना है।
2. यह महात्मा गाँधी के जीवन पर लिखा गया लगभग सात सौ पृष्ठों का एक प्रबंधकाव्य (महाकाव्य) है।
3. इसको दो खण्डों एवं सात द्वारों (अध्यायों) में विभक्त किया गया है।
4. इसके प्रथम खण्ड को 'बाह्य परिवेश' एवं द्वितीय खण्ड को 'अंतश्चैतन्य' नाम प्रदान किया गया है।
5. यह इनकी अन्तिम काव्य रचना मानी जाती है।

> प्राप्त पुरस्कार -

1. 'चिदम्बरा' रचना के लिए इनको 1968 ई. में 'भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ था। यह हिन्दी साहित्य का प्रथम ज्ञानपीठ पुरस्कार माना जाता है।
2. 'लोकायतन' काव्य के लिए 'सोवियत भूमि (लैंड)' पुरस्कार प्राप्त हुआ था।
3. 'कला और बूढ़ा चाँद' रचना के लिए इनको 1960 ई. में साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ था।
4. भारत सरकार के द्वारा इनको 'पद्म विभूषण' से अलंकृत किया गया था।

→ प्रसिद्ध कथन - "हमें भाषा नहीं, राष्ट्रभाषा की आवश्यकता है, पुस्तकों की नहीं, मनुष्यों की भाषा, जिसमें हँसते-रोते, खेलते-कूदते, लड़ते, गले मिलते, साँस लेते और रहते हैं, जो हमारे देश की मानसिक दशा का मुख दिखलाने के लिए आदर्श हो सके।"

> अन्य तथ्य -

1. इनको छायावाद का 'विष्णु' कहा जाता है।
2. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी इनको छायावाद का प्रवर्तक मानते हैं।
3. आचार्य रामचंद्र शुक्ल इनको छायावाद का प्रतिनिधि कवि मानते हैं।
4. 'रोला' इनका सर्वप्रिय छंद माना जाता है।
5. प्रकृति के कोमल पक्ष का अत्यधिक वर्णन करने के कारण इनको 'प्रकृति का सुकुमार कवि' भी कहा जाता है।
6. महर्षि अरविंद द्वारा रचित "भागवत जीवन" से ये इतने प्रभावित हुए थे कि इनकी जीवन दिशा ही बदल गयी।
7. 'सुमित्रानंदन राम के छोटे भाई 'लक्ष्मण' को कहा जाता है, अतः कुछ लोग इन्हें 'रावणार्यनुज' भी कहते हैं।
8. इनका मूल नाम गोसाँई दत्त' था।
9. ये अपनी सूक्ष्म कोमल कल्पना के लिए अधिक प्रसिद्ध है। 'मूर्त' पदार्थों के लिए 'अमूर्त' उपमान देने की परम्परा पंतजी के द्वारा ही प्रारंभ की हुई मानी जाती है। 10. इनका काव्य क्षितिज 1916 ई. से 1977 ई. तक फैला।
11. पंतजी भाषा के प्रति बहुत सचेत थे। इनकी रचनाओं में प्रकृति की जादूगरी जिस भाषा में अभिव्यक्त हुई है, उसे स्वयं पंत "चित्र भाषा (बिंबात्मक भाषा)' की संज्ञा देते हैं।

महादेवी वर्मा

> जन्मकाल- 1907 ई.

> जन्मस्थान - फर्रुखाबाद (उ.प्र.)

» मृत्युकाल - 1987 ई.

> प्रमुख रचनाएँ- (क) काव्य संग्रह

1. नीहार-1930 ई. 2. रश्मि-1932 ई. 3. नीरजा-1935 ई. 4. सांध्यगीत-1936 ई. 5. दीपशिखा-1942 ई. 6. सप्तपर्णा-1960 ई.

प्रसिद्ध गद्य रचनाएँ -

1. स्मृति की रेखाएँ 2. पथ के साथी _3. शृंखला की कड़ियाँ 4. अतीत के चलचित्र

(ख) समेकित काव्य संग्रह 1. यामा-1940 ई. (इसमें नीहार, रश्मि, नीरजा और सांध्यगीत रचनाओं में संगृहीत सभी गीतों को समेकित रूप में एक जगह संकलित कर दिया गया है।)

पुरस्कार - 1. इस 'यामा' रचना के लिए इनको 1982 ई. में 'भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार' एवं 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' प्राप्त हुआ था।

2. 'नीरजा' रचना के लिए 'सेकसरिया पुरस्कार' मिला था।

» विशेष तथ्य -

1. ये आरंभ में ब्रज भाषा में कविता लिखती थीं, बाद में खड़ी बोली में लिखने लगीं एवं जल्दी ही इस क्षेत्र में प्रसिद्धि प्राप्त कर ली।
2. इन्होंने 'चाँद' नामक पत्रिका का संपादन कार्य किया था।
3. हिन्दी लेखकों की सहायतार्थ इन्होंने 'साहित्यकार संसद" नामक एक ट्रस्ट (संस्था) की स्थापना की थी।
4. इन्हें 'वेदना की कवयित्री' एवं 'आधुनिक युग की मीरां' के नाम से भी पुकारा जाता है।
5. ये प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्राचार्या रही है।
6. भारत सरकार द्वारा इनको 'पद्म भूषण' से अलंकृत किया गया था।
7. इनके काव्य में अलौकिक विरह की प्रधानता देखी जाती है।
8. इनका 'सप्तपर्णा' काव्य संग्रह वैदिक संस्कृत के विविध काव्यांशों पर आधारित माना जाता है।
9. महादेवी के भाव पक्ष के गम्भीर्य व विचार पक्ष के औदात्य की भाँति उनके काव्य का शैली पक्ष भी अत्यन्त प्रौढ़ व सशक्त है। शब्दों पर उनका अद्भूत अधिकार है।
10. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है -"छायावादी कहे जाने वाले कवियों में महादेवीजी ही रहस्यवाद के भीतर रही

हैं।"

11. इनके काव्य और जीवन दोनों की मूल टेक है -

"कीर का प्रिय आज पिंजर खोल दे।
हो उठी है चंचु छूकर, तीलियाँ भी वेणु सस्वर ।

वन्दिनी स्पंदित व्यथा से, सिहरता जङ मौन पिंजर।।"

12. इनके द्वारा रचित गीतों (कविताओं) की कुल संख्या 236 मानी जाती है।
13. इनको धार्मिक ग्रंथों का ज्ञान अपनी धर्मपरायणा माता 'हेमरानी देवी' से प्राप्त हुआ था।
14. ग्यारह वर्ष की अल्पायु में इनका विवाह डॉ. रूपनारायण वर्मा के साथ हुआ था।
15. इन्होंने अपनी पहली कविता मात्र सात वर्ष की अल्पायु में लिख डाली थी।
16. विरह की प्रांजल अनुभूति, परिष्कृत चिंतन, काव्योचित गंभीरता और सौन्दर्यशिल्प इनके काव्य की प्रमुख विशेषताएँ मानी जा सकती है।
17. इनको छायावादी साहित्य की 'शक्ति' (दुर्गा) भी कहा जाता है।

छायावाद के अन्य प्रमुख कवि एवं रचनाएँ

कवि

रचनाएँ

उदयशंकर भट्ट

राका, मानसी, विसर्जन, युगदीप, अमृत और विष, यथार्थ और कल्पना

मोहनलाल महतो "वियोगी'

निर्माल्य (1926), एकतारा, कल्पना (1935)

डॉ. रामकुमार वर्मा

रूपराशि (1931), निशीथ, चित्ररेखा (1935), आकाशगंगा, अनुभूति अंतर्ध्वनि, चंद्ररेखा,

चंद्रकिरण, अंजलि, अभिशाप। केदारनाथ मिश्र

चिरस्पर्श, सेतुबंध

आरसी प्रसाद सिंह

कलापी (1938), संचायिता (1942), जीवन और यौवन (1944), नई दिशा (1944), पाँचजन्य (1945), प्रेमगीत (1954)

ईश्वरी प्रसाद शर्मा

चना चबेना (1924), (हास्य रचना)

हरिशंकर शर्मा

पिंजरापोल, चिडियाघर (व्यंग्यरचना)

रामचंद्र शुक्ल

बुद्धचरित (लाइट ऑफ एशिया का ब्रजभाषा में अनुवाद) (1922)

वियोगी हरि

वीर सतसई (1927), चरखा स्रोत

छायावादोत्तर हिन्दी कविता

छायावाद की उत्तरार्द्ध बेला में दो स्वतंत्र काव्यधाराओं का विकास मिलता है। प्रथम काव्यधारा को व्यक्तिवादी काव्यधारा
(हालावाद) कहा गया है। दूसरी काव्यधारा को राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा के नाम से अभिहित् किया गया है। दोनों काव्यधाराओं में भावबोध की दृष्टि से अंतर है।

व्यक्तिवादी (प्रेम और मस्ती) काव्यधारा (हालावाद)

डॉ. नगेन्द्र ने छायावाद के बाद और प्रगतिवाद के पूर्व की इस काव्यधारा को 'वैयक्तिक कविता' की संज्ञा दी है। साहित्यिक दृष्टि से छायावाद की वेदना और घनीभूत होकर निराशा में परिणत हो 'हालावाद' का रूप धारण कर लेती है। यथार्थ की निराशा और तरुणाई की रौमेण्टिक इच्छाओं के संघर्ष में पड़े युवकों को मदिरालय में शरणस्थली मिली। बच्चन, भगवती चरण वर्मा, अंचल आदि अनेक कवियों ने इस मादकता और बेहोशी के गीत गाये । परिणाम और ख्याति की दृष्टि से इनमें बच्चन का सर्वश्रेष्ठ स्थान है।

"हालावाद' के प्रमुख कवि एवं उनकी रचनाएँ -

कवि

रचनाएँ

भगवती चरण वर्मा

मधुकण (**1932)** प्रेम संगीत (1937 ई.) मानव (1940 ई.) एक दिन

हरिवंशराय बच्चन

मधुशाला (1935 ई.), मधुबाला (1936), मधुकलश (1937) निशा निमंत्रण (1938), एकांत संगीत (1939), आकुल अंतर (1943), सतरंगिनी (1945), बंगाल का अकाल (1946), हलाहल (1946), सूत की माला (1940), खादी के फूल (1948), मिलन यामिनी (1950), प्रणय पत्रिका (1955),

नरेश शर्मा

धारा के इधर उधर (1957), आरती और अंगारे (1958), बुद्ध और नोचर (1958), त्रिभंगिमा (1961), चार खेमे चौसठ खेमे (1962), दो चट्टाने (1965)। शूलफूल (1934), कर्णफूल (1936), प्रभातफेरी (1938), प्रवासी के गीत (1938), पलाश वन (1939), मिट्टी और फूल (1942), कामिनी (1942), हंसमाला (1946), रक्तचंदन (1949), अग्निशस्य (1951), कदलीवन (1953), उत्तरजय (1965), द्रोपदी (1946, खंडकाव्य), कामिनी, सुवर्णा, प्यासा निर्झर, बहुत रात सोये।

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

मधुलिका (1938), अपराजिता (1939), किरण बेला (1941), करील (1942), लाल-चूनर (1944), वर्षान्त के बादल (1954), विराम चिह्न (1957)

जानकी वल्लभ शास्त्री

रूप अरूप (1940), तीर तरंग (1944), शिप्रा (1945), मेघगीत (1950), अवन्तिका (1953)।

- हरिवंश राय बच्चन पर उमर खैय्याम की रूबाईयों का अत्यधिक प्रभाव पडा।

-हरिवंश राय बच्चन को हिन्दी साहित्य में 'हालावाद' का प्रवर्तक माना जाता है।
-बच्चन जी को 'हिन्दी का बायरन' भी कहा जाता है।
-रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' को हिन्दी में मांसलवाद का प्रवर्तक माना जाात है।

राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा

इस युग के राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य में दो भावनाएँ पूरी शक्ति के साथ व्यक्त हुई। एक ओर तो कवियों ने भारत की आंतरिक विसंगतियों और विषमताओं को दूर करने के लिए देश का आह्वान किया तो दूसरी ओर जनता को विदेशी शासन से मुक्ति पाने के लिए स्वाधीनता संग्राम में कूद पड़ने की प्रेरणा दी। माखनलाल चतुर्वेदी, रामनरेश त्रिपाठी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और सुभद्रा कुमारी चौहान ने केवल राष्ट्रप्रेम को ही मुखरित नहीं किया, अपितु उन्होंने स्वयं देश की आजादी की लड़ाई में भाग भी लिया। फलस्वरूप उनकी देशप्रेम की कविताओं में अनुभूति की सच्चाई और आवेश दिखाई देता है।

प्रमुख कवि एवं उनकी रचनाएँ

कवि

रचनाएँ

माखनलाल चतुर्वेदी
हिमकिरीटनी (1943 ई.) हिमतरंगिनी (1949), वेणु लो गूंजे धरा, माता (1951), समर्पण (1956), युग चरण, मरण ज्वार, बीजुरी काजर आँच रही, धूमवलय
महत्त्वपूर्ण कविताएँ
कैदी और कोकिला, पुष्प की अभिलाषा आदि।
सियाराम शरण गुप्त
मौर्य विजय (1914), अनाथ (1917), दूर्वादल (1924), विषाद (1925), आर्द्रा (1927), आत्मोत्सर्ग (1931), पाथेय (1933), मृण्मयी (1936), बापू (1937), उन्मुक्त (1940), दैनिकी (1942), नकुल (1946), नोआखली, जयहिन्द ।
बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'
कुमकुम (1936), रश्मिरेखा (1951), अपलक (1951), क्वासी (1952), उर्मिला (खण्ड
काव्य-1957), हम विषपायी जन्म के (1964), विनोबा स्तवन (1955)
सोहन लाल द्विवेदी
भैरवी, युगारंभ, पूजागीत, वासवदत्ता, कुणाल, विषपान, सेवाग्राम, प्रभाती, बासंती, युगाधार आदि।

सुभद्राकुमारी चौहान
त्रिधारा, मुकुल (1931), बिखरे मोती।
प्रमुख कविताएँ
झाँझी की रानी, झण्डे की इज्जत, स्वदेश के प्रति, जलियाँवाला बाग।

रामधारी सिंह दिनकर

रेणुका (1935), हुंकार (1939), रसवंती (1940), द्वन्द्वगीत (1940), कुरूक्षेत्र (प्रबन्ध काव्य-1946), सामधेनी (1947), रश्मिरथी (खण्ड काव्य 1952), नील कुसुम (1954), दिल्ली (1954), उर्वशी (गीतिनाट्य 1961), परशुराम की प्रतीक्षा (1963), आत्मा की आंखें (1964), हारे के हरिनाम, धूप और धुआँ (1951), नीम के पत्ते, इतिहास के आँसू (1951)।

- माखनलाल चतुर्वेदी को 'एक भारतीय आत्मा' के नाम से भी जाना जाता है।
- दिनकर ने स्वयं को मैथिलीशरण गुप्त के सामने 'महज डिप्टी राष्ट्रकवि मानते हैं।
- 'उर्वशी' को दिनकर ने 'कामाध्याय' की उपाधि दी है।
- 'उर्वशी' महाकाव्यात्मक गीति नाट्य के लिए दिनकर को 1972 में भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रदान किया गया। दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना के साथ-साथ प्रगतिवादी चेतना भी विद्यमान है।

छायावादी कवियों की महत्त्वपूर्ण काव्य पंक्तियाँ -

जयशंकर प्रसाद

- बाँधा था विधु को किसने इन काली जंजीरों से।
मणि वाले फणियों का मुख क्यों भरा हुआ है हीरों से।।
-झंझा झकोर गर्जन है, बिजली है नीरद माला।
पाकर इस शून्य हृदय को, सबने आ डेरा डाला।।
-इस करुण कलित हृदय में अब विकल रागिनी बजती।
क्यों हाहाकार स्वरों में वेदना असीम गरजती?
-जल उठा स्नेह दीपक-सा, नवनीत हृदय था मेरा।
अब शेष धूम रेखा से, चित्रित कर रहा अंधेरा।।
-सबका निचोड़ लेकर तुम सुख से सूखे जीवन में।
बरसो प्रभात हिमकन-सा आँसू इस विश्व सदन में।। - आँसू से।
-तुम हो कौन और मैं क्या? इसमें क्या है धरा सुनो।
मानस जलधि रहे चिर चुंबित मेरे क्षितिज! उदार बनो।।
-ले चल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक! धीरे धीरे।
जिस निर्जन में सागर लहरी अंबर के कानों में गहरी ।।
-बीती विभावरी जाग री।
अंबर पनघट में डुबो रही, तारा घट उषा नागरी
-"खग कुल कुल सा बोल रहा
किसलय का अंचल डोल रहा।।
- मेरा अनुराग फैलने दो, नभ के अभिनव कलरव में
जाकर सूनेपन के तम में, बन किरण कभी आ जाता - लहर से
-ओ चिन्ता की पहली रेखा, अरी विश्व वन की व्याली।

ज्वालामुखी विस्फोट के भीषण प्रथम कंप-सी मतवाली।।
-"संवेदन का और हृदय का यह संघर्ष न हो सकता,
फिर अभाव असफलताओं की गाथा कौन कहाँ बकता।।"
- नील परिधान बीच सुकुमार खुल रहा मृदुल अधखुला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल मेघवन बीच गुलाबी रंग।।"
-नित्य-यौवन छवि से ही दीप्त विश्व की करुण कामना मूर्ति ।
स्पर्श के आकर्षण से पूर्ण प्रकट करती ज्यों जङ से स्फूर्ती ।।
-कुसुम कानन अंचल में मंद-पवन प्रेरित सौरभ साकार।
रचित-परमाणु-पराग-शरीर खडा हो, ले मधु का आधार ।।
-एक तुम, यह विस्तृत भू-खण्ड प्रकृति वैभव से भरा अमंद ।
कर्म का भोग, भोग का कर्म यही जङ का चेतन आनंद ।।
-कोमल किसलय के अंचल में नन्हीं कलिका ज्यों छिपती-सी।
गोधूली के धूमिल पट में दीपक के स्वर में दीपती-सी।।
-नारी! तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास-रजत-नग पग तल में।
पीयूष स्रोत सी बहा करो जीवन के सुन्दर समतल में।।
-तुम भूल गए पुरुषत्व मोह में, कुछ सत्ता है नारी की।
समरसता है संबंध बनी अधिकार और अधिकारी की।।
बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल
-वह विज्ञानमयी अभिलाषा, पंख लगाकर उडने की।
जीवन की असीम आशाएँ कभी न पीछे मुडने की।।
-प्रकृति शक्ति तुमने यंत्रों से सबकी छीनी। शोषण कर जीवनी बना दी जर्जन झीनी।। - कामायनी से

सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला'

- है अमा निशा उगलता गगन घन अंधकार
खो रहा दिशा का ज्ञान, स्तब्ध है पवन चार
- काँपते हुए किसलय-झरते पराग समुदय,
गाते खग नव जीवन-परिचय, तरू मलय वलय
-धिक् जीवन जो पाता ही आया विरोध
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध ।
-अन्याय जिधर है, उधर शक्ति । कहते छल-छल
हो गए नयन, कुछ बूंद पुनः ढलके दृगजल
-शक्ति की करो मौलिक कल्पना, करो पूजन।
छोड दो समर जब तक न सिद्धि हो, रघुनंदन।।'
-होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन।

कह महाशक्ति राम के वदन में हुई लीन।। - "राम की शक्ति पूजा
-अपशब्द अधरों का सुना भाष,
मैं कवि हूँ, पाया है प्रकाश
-धन्ये, मैं पिता निरर्थक था, कुछ भी तेरे हित न कर सका।
- यह हिन्दी का स्नेहोपहार, यह नहीं हार मेरी, भास्वर
यह रत्नहार-लोकोत्तर वर
- एक साथ जब शत धातघूर्ण, आते थे मुझ पर तुले तूर्ण
देखता रहा मैं खडा अपल, वह शर-क्षेप, वह रण कौशल ।
-देखा मैंने, वह मूर्ति-धीति मेरे बसंत की प्रथम गीति
शृंगार, रहा जो निराकार, रस कविता में उच्छ्वसित-धार
दुःख ही जीवन की कथा रही, क्या कहूँ आज जो नहीं कही। - सरोज स्मृति से संगृहीत
-भारत के नभ का प्रभापूर्ण
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
शासन करते हैं मुसलमान
है उर्मिल जल, निश्चलत्प्राण पर शतदल
-होगा फिर से दुर्धर्ष समर
जड से चेतन का निशि वासर

X x x x x

जय, इधर ईश, है उधर सबल माया कर
-जागो, जागो आया प्रभात, बीती वह बीती अंधरात
झरता भर ज्योतिर्मय प्रपात पूर्वांचल

- तुलसीदास से संगृहीत

-जागो फिर एक बार
शेरों की माँद में आया है आज स्यार
-विजन वन वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी
स्नेह स्वप्न मग्न अमल कोमल तनु तरूणी
जूही की कली
-यौवन के तीर पर प्रथम था आया जब
स्रोत सौन्दर्य का
वीचियों कलरव सुख चुंबित प्रणय का
था मधुर आकर्षणमय
- जीर्ण बाहु है शीर्ष शरीर
तुझे बुलाता कृषक अधीर

ए विप्लव के वीर
-मैंने मैं शैली अपनाई
देखा दुखी एक निज भाई
दुख की छाया पडी हृदय में मेरे
-मरा हुआ हूँ हजार मरण
पाई तब चरण-शरण

- बादल राग से

सुमित्रानंदन पंत

-छोड द्रुमों की मृदु छाया
तोड प्रकृति से भी माया
बाले तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूं लोचन
-प्रथम रश्मि का आना रंगिनी! तूने कैसे पहचाना ?
कहाँ कहाँ है बाल विहंगिनी! पाया तूने यह गाना ?
-अरुण अधरों की पल्लव प्रात
मोतियों सा हिलता हिम हास।
-इस धारा सा ही जग का क्रम
शाश्वत इस जीवन का उद्‌गम
शाश्वत है गति, शाश्वत संगम
- वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान
निकलकर आँखों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान
-द्रुत झरों जगत के जीर्ण पत्र, हे सस्त ध्वस्त हे शुष्क शीर्ण।
-हिम ताप पीत मधुवात भीत, तुम वीतराग जड पुराचीन ।।
-लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिह्न निरंतर |
छोड रहे हैं जग के विक्षत वक्षस्थल पर।।
-सुन्दर है विहग, सुमन सुन्दर
मानव तुम सबसे सुन्दरतम

महादेवी वर्मा

-मैं नीर भरी दुख की बदली
परिचय इतना इतिहास यही
उमडी कल थी, मिट आज चली
-पर शेष नहीं होगी यह मेरे प्राणों की क्रीड़ा।
तुमको पीडा में ढूँढ़ा तुममें ढूँढ़ती पीडा।।
-जो तुम आ जाते एक बार।

कितनी करुणा कितने संदेश, पथ में बिछ जाते बन पराग
-मधुर मधुर मेरे दीपक जल
युग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर
- मिलन का नाम मत लो मैं विरह में चिर हूँ
-बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।
दूर हूँ तुमसे अखण्ड सुहागिनी भी हूँ।।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

- ओ भिखमंगे, अरे पराजित, ओ मललूम, अरे चिरदोहित
तू अखण्ड भण्डार शक्ति, जाग अरे निद्रा सम्मोहित
-हे बलिवेदी, सखे प्रज्जवलित माँग रही ईंधन क्षण-क्षण।
आओ युवक, लगा दो तो तुम अपने यौवन का ईंधन ।
- हम अनिकेतन, हम अनिकेतन, हम तो रमते राम हमारा क्या घर कैसा वतन ? -
-हो जाने दो गर्क नशे में, मत पडने दो फर्क नशे में।।
- कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ।
जिससे उथल-पुथल मच जायें।।

माखनलाल चतुर्वेदी

-चाह नहीं, मैं सुरबाला के
गहनों में गूंथा जाऊँ
X x x x x
मुझे तोङ लेना वनमाली
उस पथ पर देना तुम फेंक!
मातृ भूमि पर शीश चढ़ाने,
जिस पथ पर जावें वीर अनेक।
-क्या गाती हो ? क्यों रह-रह जाती हो।
कोकिल बोलो तो?
-वेणु लो, गूंजे धरा मेरे सलोने श्याम
एशिया की गोपियों ने वेणि बाँधी है।

सुभद्रा कुमारी चौहान

-सिंहासन हिल उठे राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,

बूढ़े भारत में भी आई फिर से नयी जवानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।
-यह कदंब का पेङ अगर माँ हो यमुना तीरे
मैं भी उस पर बैठ कन्हैया बनता धीरे-धीरे।

रामधारी सिंह 'दिनकर'

- श्वानों का मिलता वस्त्र-दूध, भूखे बालक अकुलाते हैं।
माँ की हड्डी से ठिठुर चिपक, जाडों में रात बिताते हैं।
- हटो व्योम के मेघ, पंथ से, स्वर्ग लूटने हम आते हैं।
दूध-दूध ओ वत्स । तुम्हारा दूध खोजने हम आते हैं।।
- जब नाश मनुज पर छाता है,
पहले विवेक मर जाता है।
-यह देख, गगन मुझमें लय है, यह देख पवन मुझमें लय है
मुझमें विलीन झंकार सकल, मुझमें लय है संसार सकल। - रश्मिरथी से
-क्षमा शोभित उस भुजंग को, जिसके पास गरल हो,
उसकी क्या जो दंतहीन, विषहीन, विनीत, सरल हो - कुरुक्षेत्र से
-सदियों की ठंडी-बुझी राख सुगबुगा उठी
मिट्टी सोने का ताज पहन इठलाती है।
दो राह, समय के रथ का घर्घर-नाद सुनो
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।

- कुरुक्षेत्र से

प्रगतिवाद (1936-43 ई.)

प्रगतिवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ -

(क) संवेदना

(i) मार्क्सवाद में विश्वास : प्रगतिवादी चिन्तन मार्क्सवादी है। प्रगतिवादी कवि साम्यवाद के आदर्श में पूरा विश्वास रखते हैं। मार्क्स के अनुसार पूँजीवादी व्यवस्था हिंसक क्रांति के साथ समाप्त होगी जिसके परिणामस्वरूप पहले समाजवादी तथा अंततः साम्यवादी व्यवस्था आएगी जिसमें कोई शोषक और शोषित नहीं होगा। ये कवि सोवियत संघ में क्रांति का परचम फैलाने वाले मजदूर सेना को आदर के भाव से देखते हैं -

"लाल क्रान्ति की लडने वाली, मजदूर सेना आम,
उनको, उनके स्त्री पुरुषों को, मेरा लाल सलाम।"

(मुक्तिबोध)

(ii) समाजवादी यथार्थवाद : प्रगतिवादी कवि यथार्थवाद में विश्वास रखते हैं, 'आदर्शवाद' या 'अध्यात्मवाद' में नहीं। इनका यथार्थवाद 'समाजवादी' मान्यताओं पर आधारित है जिसके अनुसार मानव के यथार्थ को निर्धारित करने वाली सबसे ताकतवर शक्ति अर्थव्यवस्था या उत्पादन प्रणाली है। मार्क्स ने कहा भी है कि सारा चिंतन, सारी संस्कृति पेट भरने के बाद ही अस्तित्व में आती है। यही भाव इन कवियों का भी है -

"दाने आए घर के अंदर, कई दिनों के बाद,
चमक उठी घर भर की आँखें, कई दिनों के बाद।" /

(नागार्जुन)

(iii) पूँजीवादी व्यवस्था से घृणा : प्रगतिवादी साहित्य के आक्रोश का केन्द्र पूँजीवादी व्यवस्था एवं पूँजीपति वर्ग है। मार्क्स के अनुसार पूँजीपतियों द्वारा स्थापित उद्योगों में उत्पादन का कार्य मजदूर करते हैं किन्तु उससे पैदा होने वाले धन को पूँजीपति हड़प कर जाते हैं। इस अधिशेष मूल्य को हस्तगत करके वे मजदूर का शोषण करते हैं। इसलिए प्रगतिवादी कवि पूंजीवाद के प्रति विरोध का भाव रखते हैं। "तू है मरण, तू है रिक्त, तू है व्यर्थ, तेरा ध्वंस केवल एक तेरा अर्थ ।"

(मुक्तिबोध)

(iv) शोषितों के प्रति सहानुभूति और आस्था : प्रगतिवादी कविता में शोषण व अन्याय की चक्की में पिसते हुए मजदूर एवं किसान वर्गों के प्रति करुणा व आस्था का भाव है। कवियों को गहरा विश्वास है कि मजदूर व किसान वर्ग के वंचित लोग ही अंततः समाज की नियति बदलने की शक्ति रखते हैं -

"मैंने उसको जब जब देखा, लोहा देखा,
लोहा जैसे तपते देखा, गलते देख, ढलते देखा,
मैंने उसको गोली जैसे चलते देखा।'

(केदारनाथ अग्रवाल)

(v) सामाजिक व्यवस्था का परिवर्तन : प्रगतिवादी कवि सामाजिक संरचना में क्रांतिकारी परिवर्तन चाहता है। यह परिवर्तन हृदय परिवर्तन जैसी कल्पनाओं से नहीं, वरन् वर्ग-संघर्ष के माध्यम से होगा। यह परिवर्तन आमूलचूल होगा, 'व्यवस्था में नहीं, 'व्यवस्था का होगा

"सदियों की ठंडी बुझी राख सुगबुगा उठी,
मिट्टी सोने का ताज पहन इठलाती है।
दो राह, समय के रथ का घर्घर नाद सुनो,
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।"

(दिनकर)

प्रगतिवादियों की स्पष्ट धारणा है कि वर्ग-संघर्ष में बीच का कोई रास्ता नहीं होता। जो शोषित वर्ग के पक्ष में नहीं है, वह शोषक के पक्ष में है। 'तटस्थता' की चादर ओढ़ने वाले भी अंततः इतिहास में अपराधी ही माने जाएंगे -

"समर शेष है नहीं पाप का भागी केवल व्याध,
जो तटस्थ हैं समय लिखेगा उनका भी अपराध ।"

(vi) राष्ट्रीय चेतना : प्रगतिवादी कवि भी राष्ट्रीयता की चेतना से युक्त हैं पर उनके लिए 'राष्ट्रीयता' का अर्थ छायावादी कवियों से भिन्न है। ये कवि सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के समर्थक नहीं है, न ही इन्हें राष्ट्र के गौरवमयी अतीत या महान दर्शन के प्रति भावुक होना पसंद है। ये तो राष्ट्र का महत्त्व राष्ट्र के वंचित नागरिकों के आधार पर तय करते हैं - "जहाँ न भरता पेट, देश वह कैसा भी हो, महानरक है।"

(नागार्जुन)

"कागज की आजादी मिलती, ले लो दो-दो आने में।"

(नागार्जुन)

(vii) राजनीतिक चेतना : प्रगतिवादी कवि कई अन्य कवियों की तरह राजनीति से दूर नहीं भागते बल्कि राजनीति को यथार्थ की पहचान का प्रतीक और यथार्थ बदलने की सबसे महत्त्वपूर्ण शक्ति के रूप में देखते हैं। ये 'उदारवादी लोकतंत्र' किस प्रकार शोषक वर्ग के हितों की ही सुरक्षा व अभिवृद्धि करता है -

"खादी ने मलमल से चुपचुप साँठगाँठ कर डाली है,
बिङला-टाटा-डालमिया की तीसों दिन दीवाली है।"

(नागार्जुन)

(viii) ग्राम्य प्रकृति : प्रगतिवादी कवि प्रकृति को सैलानी की नहीं, किसान की आँखों से देखते हैं क्योंकि ये कवि 'न' के प्रतिनिधि है, अभिजात वर्ग के नहीं। इनके यहाँ 'गुलाब' के सौंदर्य का स्थान बने के सौंदर्य ने लिया है क्योंकि वह जनसामान्य के जीवन से जुड़ा है -

"एक बीते के बराबर
यह हरा ठिगना चना
बाँधे मुरेठा शीश पर
छोटे गुलाबी फूल का सजकर खङा हो।"

प्रगतिवादियों का प्रकृति-चित्रण वर्ग संघर्ष की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति भी है। छायावाद में जो प्रकृति कवि को अपनी गोद में आश्रय देती थी। वह प्रगतिवाद में आकर क्रान्ति का संकेत देने लगी हैं -

"तेज धार का कर्मठ पानी, चट्टानों के ऊपर चढ़ कर,
मार रहा है चूंसे कस कर, तोङ रहा है तट चट्टानी।"

(ix) प्रेम वर्णनः प्रेम साहित्य के प्रत्येक युग का एक महत्वपूर्ण विषय रहा है। प्रगतिवाद भी इससे अछूता नहीं है। यहाँ प्रेम साहचर्य एवं सहजीवन से उत्पन्न होता है। प्रेम के लिए इन कवियों को प्रकृति की गोद में जाने की आवश्यकता महसूस नहीं होती, वह तो श्रम करते समय भी महसूस किया जा सकता है। प्रेम साधारण जीवन का सहज अंग है, यह किसी विशेष परिस्थिति की मांग नहीं करता। प्रेम समाज से काटता भी नहीं है बल्कि यह तो व्यक्ति के सामाजिक होने की भावभूति है -

(i) "मिलकर वे दोनों प्राणी, दे रहे खते में पानी।" (त्रिलोचन)

(ii) "मुझे जगत जीवन का प्रेमी, बना रहा है प्रेम तुम्हारा" (त्रिलोचन)

(ख) शिल्प :

प्रगतिवादी आन्दोलन मूलतः कथ्य का आंदोलन था, शिल्प का नहीं। उसके अनुसार शिल्प कथ्य का उपोत्पाद होता है। प्रगतिवादी कविता सर्वहारा व श्रमिक की पक्षधर होने के नाते इस दायित्व बोध से युक्त है कि कविता शिल्प की चमक-दमक से लदी हुई नहीं बल्कि आम आदमी के लिए बोधगम्य होनी चाहिए। इन्हें कविता में उसी जन-प्रभाव की तलाश है जो पोस्टरों में दिखाई देती है। मुक्तिबोध ने कहा भी है कि - 'चंद्र है, सविता है/पोस्टर ही कविता है।"

(i) काव्यरूप : प्रगतिवादी काव्य में प्रबन्धात्मकता का अभाव है क्योंकि यह कविता संघर्ष की कविता है। ऐसी कविता में प्रबंध के अनुशासन की उपस्थिति संभव नहीं है।

(ii) भाषा : प्रगतिवादी कवि सहज भाषा का प्रयोग करते हैं जो जनसाधारण के जीवन की भाषा है। छायावाद ने जीवन की भाषा और काव्य की भाषा में जो अंतराल पैदा कर दिया था, उसे प्रगतिवाद ने समाप्त किया। मुक्तिबोध जैसे एकाध कवि को छोड़ दें तो सभी प्रगतिवादी कवि जनभाषा का ही सहज प्रयोग करते हैं।

(iii) लोकधुन : इस काव्य में लोक धुनों पर विशेष बल दिया गया है। प्रगतिवादी कविता जिस संघर्ष-चेतना का प्रसार करना चाहती है, उसकी सहज अभिव्यक्ति लोक-धुनों में ही संभव है। कहीं-कहीं इसमें लय व तुक के नियमों से मुक्ति भी दिखाई पड़ती है।

(iv) बिम्ब : बिम्ब प्रायः सामान्य जीवन से लिए गए है। छायावादी बिम्बों से भिन्न ये बिम्ब लोक जीवन के साधारण अनुभवों से सम्बन्धित है, जैसे 'गीत गाकर घर लौटते मजदूर', 'पसीने में भीगा किसान' आदि। एक उदाहरण दृष्टव्य है

(v) "धूप चमकती है चाँदी की साड़ी पहने,

(vi) मायके में आई बेटी की तरह मगन है।"

(vii) प्रतीक : प्रगतिवादी कवि बात को साफ-साफ कहने के पक्षधर है। इन्हें सामान्यतः प्रतीकों का मोह नहीं है क्योंकि प्रतीक बात को छिपाते हैं। कहीं-कहीं कुछ प्रतीकों के प्रयोग से इन्होंने वर्ग संघर्ष की चेतना को व्यक्त किया है, जैसे

(viii) "तेज धार का कर्मठ पानी, चट्टानों के ऊपर चढ़कर,

(ix) मार रहा है घूसे कसकर, तोड रहा है तट चट्टानी।"

(x) ये पंक्तियाँ वर्ग-संघर्ष को व्यक्त करती हैं। पानी वंचित वर्ग को व्यक्त करती हैं। पानी वंचित वर्ग को व्यक्त करता है जबकि चट्टान शोषक वर्ग की मजबूत स्थिति को व्यक्त करती है।

(xi) व्यंग्य : प्रगतिवादी कवियों में व्यंग्य क्षमता की अत्यंत प्रभावशील उपस्थिति है। समाज के मूल हितों के प्रति गहराई से प्रतिबद्ध होने के कारण ये कवि स्वार्थी व व्यक्तिवादी तत्वों को सहन नहीं कर पाते और तिलमिलाहट पैदा करने वाले तीखे व्यंग्यों का प्रयोग करते हैं। उदाहरण के लिए -

(xii) "दस हजार दस लाख मरें, पर झंडा ऊँचा रहे हमारा।"

प्रगतिवाद -विशेषः

छायावाद के गर्भ से 1930 के बाद नवीन सामाजिक चेतना से युक्त जिस साहित्यधारा का जन्म हुआ, उसे 1936 ई. में प्रगतिशील साहित्य अथवा प्रगतिवाद की संज्ञा दी गई। प्रगतिवाद ने मार्क्सवाद को वैचारिक आधार के रूप में स्वीकार किया और उसी के अनुरूप सामाजिक यथार्थ के रूप में किसान और मजदूर-जीवन के चित्रण को अनिवार्य माना।

मार्क्सवादी दर्शन का आधार द्वंद्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद है। इसके अनुसार सामाजिक विकास का इतिहास, वर्ग संघर्ष का इतिहास है।

समाज दो वर्गों में विभाजित है -शोधक और शोषित । शोषक वर्ग हमेशा संख्या से कम होता है लेकिन उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण होने के कारण राजसत्ता पर भी नियंत्रण रखता है। वह शोषित वर्ग के श्रम का शोषण करता है। इससे दोनों वर्गों में संघर्ष की स्थिति पैदा होती है। यही वर्ग संघर्ष है।

प्रगतिवाद आन्दोलन की शुरूआत 1936 ई. से मानी जाती है। 'प्रगतिशील लेखक संघ' का एक अंतर्राष्ट्रीय अधिवेशन हेनरी बाबूज के नेतृत्व में सन् 1935 ई. में पेरिस में हुआ। जिसके अध्यक्ष अंग्रेजी कथाकार फारेस्टर थे। इसी वर्ष सन् 1935 में आनन्द और सज्जाद जहीर ने लंदन में भारतीय प्रगतिशील संघ की स्थापना की। 1936 ई. में लखनऊ में प्रेमचंद की अध्यक्षता में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना की। इसी के साथ ही प्रगतिवाद का आरंभ हुआ। प्रगतिशील लेखक संघ का दूसरा सम्मेलन 1938 ई. में कलकत्ता में हुआ। इसके सभापति रवीन्द्रनाथ ठाकुर को बनाया गया। सुमित्रानंदन पंत का काव्य-संग्रह 'युगवाणी (1939 ई.) प्रगतिवाद का प्रथम काव्य-संग्रह माना जाता है। प्रगतिवाद शब्द का प्रथम प्रयोग 1942 में मुक्तिबोध ने अपने एक लेख 'प्रगतिवाद-एक दृष्टि में किया था।

प्रगतिवाद की प्रमुख विशेषताएँ/प्रवृत्तियाँ -

- यथार्थपरक दृष्टि प्रगतिवाद का केन्द्रीय तत्त्व है।
-प्रगतिवाद शोषण की अमानवीयता का चित्रण करता है।
- प्रगतिवादी कविता में पूंजीवादी व्यवस्था के प्रति तीव्र घृणा दिखाई देती है।
- प्रगतिवाद पूंजीवादी को शोषण का कारण मानता है।
-शोषितों के प्रति सहानुभूति एवं आस्था
-क्रांति की चेतना, राजनीतिक चेतना
-ग्राम्य प्रकृति का चित्रण
-सामान्य और सहज अभिव्यक्ति पर बल
-बिम्बों का चुनाव लोक जीवन से

1.नागार्जुन

जन्म - 1911ई.

मृत्यु - 1998

जन्म स्थान - तरउनी (दरभंगा)
उपनाम - यात्री (संस्कृत और मैथिली में) नागार्जुन (हिन्दी में)
खडी बोली प्रथम कविता - राम के प्रति

नागार्जुन की प्रमुख रचनाएँ -

- युगधारा (1953), सतरंगे पंखों वाली (1959), प्यासी पथराई आँखें (1962), भस्मांकुर (1971, खण्ड काव्य), तालाब की मछलियाँ (1975), खिचडी विप्लव देखा तुमने (1980), तुमने कहा था (1980), हजार-हजार बाहों वाली (1981), पुरानी जूतियों का कोरस (1983)।
- प्रमुख कविताएँ - बादल को घिरते देखा है, प्रेत का बयान, अकाल और उसके बाद, पाषाणी, सिंदूर तिलकित भाल, हरिजन गाथा आदि।
- नागार्जुन के मैथिली भाषा में रचित काव्य 'पत्रहीन नग्न गाछ' को 1962 में साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला।
- नागार्जुन कृत 'भस्मांकुर' एक खण्डकाव्य है, जो बरवै छंद में है।
- -नागार्जुन की खड़ी बोली में लिखी प्रथम कविता 'राम के प्रति' है, जो लाहौर से निकलने वाली पत्रिका "विश्वबन्धु' में 1935 में प्रकाशित हुई थी।
- डॉ. बच्चन सिंह ने नागार्जुन की कविताओं को 'नुक्कड कविता' की संज्ञा दी है।

प्रगतिवाद के प्रमुख कवि एवं रचनाएँ -

कवि

रचनाएँ

केदारनाथ अग्रवाल

युग की गंगा (1947), नींद के बादल (1947), लोक और आलोक (1957), फूल नहीं रंग बोलते (1911-2000) हैं (1965), आग का आईना (1970), गुलमेंहदी (1978), पंख और पतवार (1979), बंबई का रक्त स्नान (1981), हे मेरी तुम (1981), मार प्यार की थापें (1981), कहे केदार खरी खरी (1983), अपूर्वा (1984), जमुन जल तुम (1984), बोल बोल अबोल (1985), जो शिलाएँ तोडते हैं (1985), आत्मगंध (1988), अनहारी हरियाली (1990), खुली आँखें : खुले डैने (1993)। पुष्पदीप (1994), बसंत में हुई प्रसन्न पृथ्वी (1996), कुहक कोपल खड़े पेड की देह (1997)

शिवमंगल सिंह 'सुमन'

हिल्लोल (1939), जीवन के गान (1942), युग का मोल (1945), प्रलय सृजन (1950), विश्वास (1915-2002) बदलता ही गया (1948), विध्य हिमाचल (1960), मिट्टी की बारात (1972), वाणी की व्यथा (1980), पर आँखें नहीं भरी, कटे अँगूठों की बंदनवारें (1991)। प्रमुख कविताएँ - (1) हम पक्षी उन्मुक्त गगन के (2) गुनिया का यौवन (3) कलकत्ते का अकाल (4) चल रही कुदाली आदि।

वासुदेव सिंह "त्रिलोचन'

(1) धरती (1945), (2) गुलाब और बुलबुल (1956),दिगन्त (1957), ताप के लिए हुए दिन (1980) (1917-2007) शब्द (1980), उस जनपद का कवि हूँ (1981), अरधान (1984), तुम्हें सौंपता हूँ (1985), फूल नाम है एक (1985), अनकहनी भी कुछ कहनी है (1986)।

रांगेय राघव

अजेय पत्थर (आख्यानात्मक काव्य 1944), मेधावी (1947, आख्यानात्मक काव्य), पाँचाली (1923-1963) (आख्यानक काव्य 1955) झंकार, ललकार, हुंकार, पिघलते पत्थर (मुक्त काव्य), राह के दीपक

(मुक्तकाव्य)

कवियों से संबंधित विविध तथ्य -

- केदारनाथ अग्रवाल 'ब्रजभाषा' में 'बालेन्दु' उपनाम से लिखते थे।
- गजानन माधव मुक्तिबोध' ने त्रिलोचन को 'अवध का किसान' कहा है।
- 'अमोला' त्रिलोचन की अवधी भाषा की कृति है, जो बरवै छंद में लिखी गई है। - त्रिलोचन शास्त्री हिन्दी में 'सानेट' लिखने के लिए प्रसिद्ध है।

प्रगतिवादी कवियों की महत्त्वपूर्ण काव्य पंक्तियाँ -

केदार नाथ अग्रवाल

- एक बीते के बराबर, यह हरा ठिगना चना
बांधे मुरैठा शीश पर, छोटे गुलाबी फूल का
-मैंने उसको जब-जब देखा
लोहा जैसा तपते देखा, गलते देखा, ढलते देखा
मैंने उसको गोली जैसे चलते देखा।
-आज का लेखन, आग के अंगूठे की
क्रांतिकारी कतार का, बन्दूक मार लेखन है
कविता यों ही बन जाती है, बिना बनाए
क्योंकि हृदय में, तड़प रही है याद तुम्हारी।
-बाप बेटा बेचता है, भूख से बेहाल होकर
धर्म, धीरज, प्राण, खोकर
-कांग्रेस की राज में आयो नहीं बसंत
अपत कंटीली डाल के गावत है गुनवंत
-काटो काटो काटो करवी मारो मारो मारो हँसिया।
हिंसा और अहिंसा क्या है। जीवन में हिंसा क्या है।

नागार्जुन

- कवि हूँ पीछे, पहले तो मैं मानव ही हूँ
अतिमानव या लोकोत्तर किसको कहते हैं नहीं जानता।
-कई दिनों तक चूल्हा रोया चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उसके पास
-कालिदास सच-सच बतलाना
इन्दुमती के मृत्युशोक से
अज रोया या तुम रोये थे?
-जय जय हे महारानी दूध को करो पानी
आपकी चितवन है प्रभु की खुमारी
- प्रतिहिंसा ही स्थायी भाव हैं मेरे कवि का
जन जन में जो उर्जाभर दे मैं उद्‌गाता हूँ उस रवि का।
-पाँच पूत भारतमाता के दुश्मन था खूखार
गोली मारकर एक मर गया बाकी रह गए चार
- धून खाये शहतीरों पर बारह खडी विधाता बाँचे।
फटी भीत है, छत चूती है, आले पर बिसतुइया नाचे।

त्रिलोचन

मुझे जगत जीवन का प्रेमी बना रहा है प्यार तुम्हारा
-यों ही कुछ मुसकाकर तुमने
परिचय की वह गांठ लगा दी।

प्रयोगवाद (1943 ई. से 1953 ई. तक)

> "डॉ. नगेन्द्र के अनुसार - "हिन्दी साहित्य में 'प्रयोगवाद' नाम उन कविताओं के लिए रूढ़ हो गया है, जो कुछ नये भाव बोधों, संवेदनाओं तथा उन्हें प्रेषित करने वाले शिल्पगत चमत्कारों को लेकर शुरू-शुरू में 'तार-सप्तक' के माध्यम से सन् 1943 ई. में प्रकाशन जगत् में आयी और जो प्रगतिशील कविताओं के साथ विकसित होती गयीं तथा जिनका पर्यवसान (समापन) नयी कविता में हो गया।"

> 'डॉ. गणपति चन्द्रगुप्त के अनुसार - "सन् 1943 ई. में अज्ञेय के नेतृत्व में हिन्दी कविता के क्षेत्र में एक नये आन्दोलन का प्रवर्तन हुआ, जिसे अब तक विभिन्न संज्ञाएँ - 'प्रयोगवाद', 'प्रपद्‌यवाद', 'नयी कविता' आदि प्रदान की गयी हैं। ये संज्ञाएँ इसके विकास की विभिन्न अवस्थाओं एवं दिशाओं को सूचित करती हैं, यथा - प्रारम्भ में जबकि कवियों का दृष्टिकोण एवं लक्ष्य स्पष्ट नहीं था, नूतनता की खोज के लिए केवल प्रयोग की घोषणा की गयी थी तो इसे 'प्रयोगवाद' कहा गया।"

- इसी आन्दोलन की एक शाखा ने श्री नलिन विलोचन शर्मा के नेतृत्व में प्रयोग को अपना साध्य स्वीकार करते हुए अपनी कविताओं के लिए 'प्रपद्यवाद' का प्रयोग किया।
- डॉ. जगदीश गुप्त एवं लक्ष्मीकान्त वर्मा ने इसे अधिक व्यापक क्षेत्र प्रदान करते हुए 'नयी कविता' नाम से प्रचारित किया।

» सारांश - उपर्युक्त दोनों विद्वानों के कथनों के आधार पर सारांशतः यह कहा जा सकता है कि “सन् 1943 ई. में अज्ञेय द्वारा संपादित 'तार-सप्तक' के माध्यम से नये भावों, नये विचारों एवं नये प्रयोगों के साथ जो काव्य हिन्दी में रचा गया, उसे ही "प्रयोगवाद' के नाम से पुकारा जाता है।"

> विशेष तथ्य -

1. 'तार सप्तक' के कवियों ने इस काव्यधारा की कविताओं के लिए 'प्रयोगवाद' शब्द का प्रयोग नहीं करके 'प्रयोगशील' अथवा 'प्रयोग' शब्दों का ही प्रयोग किया था।

2. इस काव्यधारा की कविताओं को प्रयोगवाद' नाम सर्वप्रथम आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी ने अपने एक निबंध 'प्रयोगवादी रचनाएँ' में प्रदान किया था।

3. अज्ञेय (सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय) इस काव्यधारा के प्रवर्तक माने जाते हैं। उनके द्वारा संपादित 'प्रतीक' पत्रिका से इसकी शुरूआत हुई मानी जाती है। 4. लक्ष्मीकांत वर्मा के अनुसार "प्रयोगवाद ज्ञान से अज्ञान की ओर बढ़ने की बौद्धिक जागरुकता है।"

5. आगे चलकर 'प्रयोगवाद' का ही विकास 'नयी कविता' के नाम से हुआ था।

6. डॉ. बच्चन सिंह के अनुसार "प्रयोगवाद का मूलाधार वैयक्तिक्ता' या 'व्यक्तिवाद' (प्राइवेसी) है।"

7. 'प्रयोगवाद' को 'प्रगतिवाद की प्रतिक्रिया' भी कहा जाता है।

8. डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त ने 'प्रयोगवाद एवं नयी कविता' दोनों काव्य आन्दोलनों को संयुक्त रूप से "अतियथार्थवादी काव्य परम्परा" नाम प्रदान किया है।

9.हिन्दी का प्रयोगवादी आन्दोलन मूलतः पश्चिम (अंग्रेजी) के 'न्यू सिगनेचर' आन्दोलन से प्रभावित नजर आता है। न्यू सिगनेचर - सन् 1932 ई. में 'न्यू सिगनेचर' शीर्षक से एक काव्य संग्रह 'ब्रिटेन' में प्रकाशित हुआ था। इसमें स्टेफेन स्फेंडर, आडेन, लेहमान, एम्पसन आदि की रचनाएँ संगृहीत थीं।

10. अज्ञेय ने इस काव्यधारा के लिए 'प्रयोगवाद' नाम को स्वीकार नहीं किया था। इन्होंने 'दूसरा सप्तक' (1951 ई.) की भूमिका में इस नाम का घोर विरोध किया था तथा 'प्रतीक' पत्रिका के जून-1951 के अंक में इस काव्य के लिए 'नयी कविता' संज्ञा का प्रयोग किया था।

11. प्रयोगवाद को प्रतीकवाद भी कहा जाता है, क्योंकि 'प्रयोगवादी कविता' नवीन प्रतीक विधान से युक्त है।

12. अस्तित्ववाद ने प्रयोगवाद को सर्वाधिक प्रभावित किया है।

13. प्रयोगवादी कविताओं में मध्यमवर्गीय व्यक्ति की जीवन की पीड़ा के अनेक स्वर उभरे हैं, परन्तु इसमें दमित कामवासना की प्रधानता देखने को मिलती है।

14. 'लोक कल्याण की उपेक्षा' प्रयोगवाद का सबसे बड़ा दोष माना जाता है।

15. प्रयोगवादी कवि यथार्थवादी हैं। वे भावुकता के स्थान पर ठोस बौद्धिकता को स्वीकार करते हैं।

16. प्रयोगधर्मिता की प्रयोगवादी काव्य का इष्ट है। भाषा, शिल्प, छंद, अलंकार, प्रतीक, बिम्ब, उपमान आदि अजय (सच्चिदानंद त्रिका से इसकी शुरुज्ञान से अज्ञान की नाम से हुआ था। वाद' (प्राइवेसी) है। की दृष्टि से इन कवियों ने नये-नये प्रयोग किये हैं। 17. नन्द दुलारे वाजपेयी ने प्रयोगवाद को 'बैठे ठाले लोगों का धंधा' कहकर पुकारा है।

"तारसप्तक"

> अज्ञेय के अनुसार "एक ही प्रकार की भाव-चेतना के तार में पिरोए सात कवियों की रचनाओं का संकलन 'तारसप्तक' कहलाता है।"

> 'तार सप्तक' मूलतः 'प्रभाकर माचवे' के दिमाग की उपज मानी जाती है, परन्तु इसके प्रवर्तन का श्रेय अज्ञेय को
प्रदान किया जाता है।

> अज्ञेय ने 'तारसप्तक' के कवियों के बारे में लिखा है- "ये सातों कवि किसी एक स्कूल के नहीं हैं। वे राही नहीं, अपितु राहों के अन्वेषी' हैं।" ।

> हिन्दी साहित्य जगत् में अब तक चार 'तार-सप्तकों की स्थापना हो चुकी है।

> 1. तार-सप्तक-1943 ई.
2.दूसरा-सप्तक- 1951 ई.
3.तीसरा-सप्तक-1959 ई.
4.चौथा-सप्तक-1979 ई.

1. तार-सप्तक-1943 ई.

(1) अज्ञेय
(2) नेमिचंद्र जैन
(3) रामविलास शर्मा
(4) मुक्तिबोध
(5) भारत भूषण अग्रवाल
(6) प्रभाकर माचवे
(7) गिरिजा कुमार माथुर सूत्र :- 'अज्ञेय ने नेमि राम से मुक्ति पाने के लिए भारत प्रभाकर को गिरा दिया।'
नोट :- 1. 'तार-सप्तक' को ही प्रथम सप्तक' भी कहा जाता है।
2. हिन्दी साहित्य में 'आधुनिक संवदेना का सूत्रपात' 'तार सप्तक' (1943 ई.) के प्रकाशन से ही माना जाता है।

2. दूसरा-सप्तक- 1951 ई.

(1) हरिनारायण व्यास

(2) धर्मवीर भारती
(3) रघुवीर सहाय
(4) शकुन्तला माथुर
(5) नरेश मेहता
(6) शमशेर बहादुर सिंह
(7) भवानी प्रसाद मिश्र
सूत्र :- हरि धर्म के लिए रघुवीर ने शकुन्तला को नरेश सिंह के भवन से निकाल दिया।

3. तीसरा-सप्तक-1959 ई.

(1) कुँवर नारायण
(2) केदारनाथ सिंह
(3) सर्वेश्वर दयाल सक्सेना
(4) विजय देव नारायण साही
(5) कीर्ति चौधरी
(6) प्रयाग नारायण त्रिपाठी
(7) मदन वात्स्यायन
सूत्र :- कुँवर केदार के सर्व विजय की कीर्ति प्रयाग से लेकर मदनपुर तक फैल गयी।
(4) चौथा-सप्तक-1979 ई.
(1) अवधेश कुमार
(2) राजकुमार कुंभज
(3) श्रीराम वर्मा
(4) राजेन्द्र किशोर
(5) नन्दकिशोर आचार्य
(6) सुमन राजे
(7) स्वदेश भारती
सूत्र :- अवधेश के राजकुमार श्रीराम ने राजेन्द्र नन्दकिशोर को सुमन के साथ स्वदेश भेज दिया।

तार सप्तक विशेषः

- तार सप्तकों में प्रथम महिला- शकुन्तला माथुर (दुसरे तार सप्तक से)
- तार सप्तकों में कुल महिला- 3
- तार सप्तकों में राजस्थान से - नन्दकिशोर आचार्य
- तार सप्तकों में पति-पत्नि- गिरिजा कुमार माथुर,शकुन्तला माथुर

नकेनवाद या प्रपद्यवाद - 1956 ई.

- 'अज्ञेय' द्वारा संपादित 'तारसप्तक' व 'दूसरा-सप्तक' से प्रेरित होकर 'नलिन विलोचन शर्मा ने अपने दो साथियों 'केसरी कुमार' और 'नरेश कुमार' को मिलाकर 'नकेनवाद' (तीनों व्यक्तियों के नामों के प्रथम अक्षर के आधार पर) की स्थापना की थी। इसे ही 'प्रपद्यवाद' के नाम से भी पुकारा जाता है।
- 'नकेनवाद के प्रपद्यवाद' का प्रकाशन 1956 ई. में हुआ था।
- 'प्रपद्यवाद' का दावा था कि असली प्रयोगवाद नकेन ही हैं।
- डॉ. बच्चन सिंह के अनुसार 'प्रपद्यवाद' एक प्रकार का 'रूपवाद' या 'कलावाद' था।
- प्रपद्यवाद के विविध सूत्र - प्रपद्यवाद के प्रतिनिधि के रूप में 'केसरी कुमार ने इसके विविध सूत्रों की चर्चा की थी, जिसमें से कुछ निम्न प्रकार है
    1. प्रपद्यवाद भाव और व्यंजना का स्थापत्य है।
    2. प्रपद्यवाद के लिए किसी शास्त्र के द्वारा निर्धारित नियम अनुपयुक्त हैं।
    3. प्रपद्यवाद पूर्ववर्तियों की महान् परिपाटियों को निष्प्राण मानता है।
    4. प्रपद्यवाद प्रयोग की साधन ही नहीं, साध्य मानता है।
    5. प्रपद्यवाद दूसरों के अनुकरण की तरह अपना अनुकरण भी वर्जित मानता है।

वस्तुत : नकेनवादियों का यह प्रपद्यवाद 'अज्ञेय' के प्रयोगवाद की स्पर्धा में खड़ा किया गया आंदोलन था, जो कालान्तर में अज्ञेय से भी आगे बढ़ गया।

> प्रयोगवादी काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ (विशेषताएँ) -

1. अतियथार्थवादिता
2. बौद्धिकता की अतिशयता
3. घोर वैयक्तिकता
4. वाद व विचारधारा का विरोध
7. निराशावाद
5. नवीन उपमानों का प्रयोग
6. भाषा की स्वच्छंदता
8. साहस और जोखिम
9. वैचित्र्य प्रदर्शन (शिल्पगत वैशिष्ट्य)
10. व्यापक अनास्था की भावना
11. सामाजिक यथार्थवाद की भावना
12. क्षणवाद
13. कुण्ठा और निराशा का चित्रण
14. निरंतर प्रयोगशीलता
15. शृंगार का उन्मुक्त चित्रण
16. नग्नता (भदेस) का निरुपण

> प्रगतिवाद व प्रयोगवाद में मुख्य अन्तर -

1. 'प्रगतिवादी कविता में शोषित वर्ग/निम्न वर्ग को केन्द्र में रखा गया है, जबकि 'प्रयोगवादी कविता' में स्वयं के जीये हुए/भोगे हुए यथार्थ जीवन का चित्रण प्राप्त होता है।
2. प्रगतिवादी कविता 'विचारधारा को महत्व देती है, जबकि प्रयोगवादी कविता 'अनुभव को महत्व देती है।
3. प्रगतिवादी कविता में सामाजिक भावना की प्रधानता दिखायी देती है, जबकि प्रयोगवादी कविता में व्यक्तिगत भावना की प्रधानता दिखायी देती है।
4.प्रगतिवादी कविता में "विषयवस्तु को अधिक महत्व दिया गया है, जबकि प्रयोगवादी कविता में 'कलात्मकता को अधिक महत्व दिया गया है।

तारसप्तक के कवियों का वर्गीकरण

> 'तार सप्तक' और 'प्रतीक' पत्रिका को देखकर यह स्पष्ट होता है कि इनमें संगृहीत या प्रकाशित कवियों के अनुभव के क्षेत्र, दृष्टिकोण और कथानक एक जैसे नहीं हैं। डॉ. नगेन्द्र ने तार-सप्तक के कवियों को निम्नानुसार वर्गीकृत किया है

1. विचारों से समाजवादी एवं संस्कारों से व्यक्तिवादी - इस श्रेणी में 'शमशेर बहादुर सिंह', 'नरेश मेहता' और 'नेमिचंद्र जैन' को शामिल किया जाता है।
2. विचारों और क्रियाओं दोनों से समाजवादी - इस श्रेणी में 'राम विलास शर्मा' व 'गजानन माधव मुक्तिबोध' को शामिल किया जाता है।
3. प्रगतिवादी कविता के द्वारा व्यक्त होते हुए जीवन-मूल्यों और सामाजिक प्रश्नों को असत्य या सत्याभास मानकर अपने व्यक्तिगत जीवन में तड़पने वाली गहरी संवेदनाओं को ही रूपायित करने वाले अन्य सभी कवि लगभग इसी श्रेणी के हैं। प्रायः ये सभी कवि मध्यवर्ग से संबंधित हैं।

प्रयोगवादी काव्य धारा के प्रमुख कवि

1. सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'

> जन्मकाल - 1911 ई. (07 मार्च, 1911)
> मृत्युकाल - 1987 ई. (04 अप्रैल, 1987)
जन्मस्थल - ग्राम - कसिया, जिला - देवरिया

प्रमुख रचनाएँ -

(क) काव्यात्मक रचनाएँ -

1. भग्नदूत - 1933 ई.
2. चिन्ता - 1942 ई.
3. इत्यलम् - 1946 ई.
4. हरी घास पर क्षण भर - 1949
5. बावरा अहेरी - 1954 ई.

6. इन्द्रधनु रौंदे हुए - 1957 ई.
7. अरी ओ करुणा प्रभामय - 1959 ई.
8. आंगन के पार द्वार- 1961 ई.
9. कितनी नावों में कितनी बार
10. सागर मुद्रा
11. महावृक्ष के नीचे
12. नदी की बाँक पर छाया-1981
13. रूपाम्बरा
14. प्रिजन डेज एण्ड अदर पॉयम्स
15. क्योंकि मैं उसे जानता हूँ
16. सावन मेघ
17. अन्तर्गुहावासी (कविता)
18. ऐसा कोई घर आपने देखा है - 1986

(ख) कहानी संग्रह

1. परम्परा
2. त्रिपथगा
3. जयदोल
4. मेरी प्रिय कहानियाँ
5. कोठरी की बात
6. शरणार्थी

(ग) उपन्यास

1. शेखर एक जीवनी
2. नदी के द्वीप
3. अपने-अपने अजनबी

> विशेष तथ्य -

1. 'अज्ञेयजी' के द्वारा निम्नलिखित पत्र-पत्रिकाओं का संपादन कार्य किया गया था -

(1) विशाल भारत (कोलकता से प्रकाशित पत्र)
(2) सैनिक (आगरा से प्रकाशित पत्र)
(3) दिनमान (दिल्ली से प्रकाशित पत्र)
(4) प्रतीक (पत्रिका)
(5) नवभारत टाईम्स

काव्य संकलन -

(1)तार-सप्तक

(2) दूसरा-सप्तक

(3) तीसरा सप्तक

(4) चौथा सप्तक

(5) रूपाम्बरा

2. 'आंगन के पार द्वार' रचना के लिए इनको 1964 ई. में 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' प्राप्त हुआ था। इस काव्य रचना को निम्न तीन भागों में विभाजित किया गया है -

(1) सलिला

(2) चक्रांतशिला

(3) असाध्य वीणा

3. "कितनी नावों में कितनी बार' रचना के लिए इनको 1978 ई. में 'भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

4. आपने 1943 ई. से 1946 ई. तक सेना में नौकरी की थी, जहाँ आपने सेना के लिए बम बनाने का कार्य भी किया था।

5. इनका जीवन यायावारी एवं क्रान्तिकारी रहा, जिसके कारण ये किसी एक व्यवस्था से बँध कर नहीं रह सके।

6. इन्होंने 'गधे' जैसे जानवर को भी काव्य का विषय बनाया है।

यथा -

"मूत्र सिंचित मृतिका के वृत्त में, तीन टाँगों पर खड़ा; नतग्रीव धैर्य-धन गदहा।।"

7. इनके काव्य की मूल प्रवृत्ति आत्म-स्थान या अपने आपको थोपने की रही है। अर्थात् इन्होंने स्वयं का गुणगान करके दूसरों को तुच्छ सिद्ध करने का प्रयास किया है।

8. इनकी कविताओं में प्रकृति, नारी, काम वासना आदि विभिन्न विषयों का निरुपण हुआ है, किन्तु वहाँ भी ये अपने 'अहं' और 'दंभ' को छोड़ नहीं पाये है।

9. 'हरी घास पर क्षण भर' इनकी प्रौढ़ रचना मानी जाती है। इसमें बुलबुल, श्यामा, फुदकी, दहगल, कौआ जैसे विषयों को लेकर कवि ने अपनी अनुभूति का परिचय दिया है।

10. 'बावरा-अहेरी' इनके जीवन दर्शन को प्रतिबिम्बित करने वाली रचना है।

11. 'इन्द्रधनु रौंदे हुए' रचना में नये कवियों की भावनाओं को अभिव्यक्त किया गया है।

12. हिन्दी साहित्य में इनको ‘कठिन गद्य का प्रेत' भी कहा जाता है। नोट :- "केशवदास' को 'कठिन काव्य का प्रेत' कहते हैं।

13. इनकी 'असाध्य वीणा' कविता में मौन भी है, अद्‌वैत भी है, रचना प्रक्रिया भी है, रहस्य भी है। यदि नहीं है तो संवेदना। यह इनकी 'प्रतिनिधि कविता' भी मानी जाती है। यह कविता जैन बुद्‌धिज्म (ध्यान संप्रदाय या अ-शब्द सम्प्रदाय) पर आधारित मानी जाती है।
14. इनकी कविताओं में 'ओजमयी पदावली' देखने को मिलती है।
15. इनको 'व्यष्टि चेतना का कवि' भी कहा जाता है।

2.भवानी प्रसाद मिश्र

» जन्मकाल - 1914 ई.
मृत्युकाल - 1985 ई.
जन्मस्थान - ग्राम - टिमरणी, जिला - होशंगाबाद (म.प्र.)

- प्रमुख रचनाएँ -

1. गीत फरोश
2. सतपुड़ा के जंगल
3. टूटने का सुख
4. अँधेरी कविताएँ
5. त्रिकाल सध्या
6. परिवर्तन जिए
7. चकित है दुःख
8. कालजयी
9. फसलें और फूल
10. बुनी हुई रस्सी 11. अनाम तुम आते हो
12. सम्प्रति
13. इदं न मम
14. स्नेह शपथ (कविता)
15. वाणी की दीनता
16. कमल के फूल
17. असाधारण (कविता)
18. सन्नाटा
19. मानसरोवर दिन
20. नीली रेखा तक - 1984
21. वे मेरे कोहरे हैं - 1993

विशेष तथ्य -

1. इन्होंने 'कल्पना' एवं गाँधी-वाड्‌मय' नामक पत्र/पत्रिकाओं का संपादन कार्य किया था।

2. आपने अपने पिता एवं बड़े भाई की प्रेरणा से मात्र 10 वर्ष की अल्पायु में अपनी पहली कविता 'घोड़े' विषय पर लिख डाली थी।
3. इनकी सहज भाषा को देखकर गाँधीजी के चरखे की सहजता का सा आभास होता है, जिसके कारण इनको 'कविता का गाँधी' भी कहा जाता है।
4. मध्य प्रदेश सरकार द्वारा आपको 'शिखर सम्मान' प्रदान किया गया था।
5. 'बुनी हुई रस्सी' रचना के लिए इनको 1972 ई. में 'साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

3. गजानन माधव मुक्तिबोध'

» जन्मकाल - 1917 ई.
> मृत्युकाल - 1964 ई.
> जन्मस्थान - श्योपुर (ग्वालियर)
> प्रमुख रचनाएँ - (क) काव्य संग्रह -
1. चाँद का मुँह टेढ़ा है-1964 ई.
2. भूरी-भूरी खाक धूल-1980 ई. (इस काव्य संग्रह का प्रकाशन तो बाद में हुआ था, किन्तु इसमें संगृहीत कविताएँ कालक्रम की दृष्टि से प्रथम संग्रह से पहले की मानी जाती हैं।)

(ख) प्रसिद्ध रचनाएँ -

1. अंधेरे में
2. ब्रह्मराक्षस
3. पूँजीवाद समाज के प्रति
4. भूल गलती
5. दिमागी गुहान्धकार

(ग) गद्य रचना

1. भारत : इतिहास और संस्कृति (मध्यप्रदेश सरकार द्वारा 19 सितम्बर, 1962 ई. को इस पुस्तक पर प्रतिबंध लगा दिया गया था।)

विशेष तथ्य -

1. इनकी कविताओं को 'स्वाधीन भारत का इस्पाती ढाँचा' कहा जाता है।
2. इनको 'तीव्र इन्द्रिय बोध का कवि', 'भयानक खबरों का कवि' एवं फैंटेसी का कवि' भी कहा जाता है।
3. रामविलास शर्मा की तरह ये भी केवल अज्ञेय जी की कृपा से ही 'तारसप्तक' में स्थान पा सके थे। कवित्व कर्म में कोई विशेष उपलब्धि प्राप्त नहीं कर सके।
4. इन्होंने कला के निम्न तीन क्षण स्वीकार किये हैं -
(i) अनुभव का फैंटेसी में रूपान्तरण

(ii) फैंटेसी के शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया
(iii) जीवन का उत्कट तीव्र अनुभव क्षण

4. गिरिजा कुमार माधुर

> जन्मकाल - 1918 ई.
> मृत्युकाल - 1994 ई.
> जन्मस्थान - अशोकनगर (म.प्र.)

> प्रमुख रचनाएँ -

1. मंजीर
2. नाश और निर्माण
3. शिलापंख चमकीले
4. छाया मत छूना (मन)
5. साक्षी रहे वर्तमान
6. पृथ्वी कल्प
7. धूप के धान
8. भीतरी नदी की यात्रा
9. कल्पान्तर-1983 ई.
10. मैं वक्त के हूँ सामने-1990
11. मुझे और अभी कहना है-1991 ई.

> विशेष तथ्य -

1. ये 'रोमानी मिजाज के कवि' माने जाते हैं।
2. ये 'हम होंगे कामयाब, हम होंगे कामयाब-एक दिन' गीत के रचनाकार हैं। यह गीत अंग्रेजी के 'we shall overcome' का हिन्दी अनुवाद है।
3. आप मध्यप्रदेश आकाशवाणी एवं दूरदर्शन के 'उपमहानिदेशक' भी रहे थे।
4. आपने 'गगनांचल' नामक पत्रिका का संपादन कार्य भी किया था।
5. इनकी प्रारम्भिक कविताओं में रोमांस और सौंदर्यलिप्सा की अभिव्यक्ति हुई हैं तथा उन पर छायावादी शैली का भी पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।
6. डॉ. शिवकुमार मिश्र के अनुसार इनकी कविताओं पर निराशा, विषाद, असफलता और रुग्णता की छाप पायी जाती है।
7. अपनी कविताओं में इन्होंने कहीं-कहीं 'सवैया' छंद को तोडकर एक नया छंदरूप प्रदान किया है।
8. 'मैं वक्त के हूँ सामने' रचना के लिए इनको 1991 ई. में साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला।

5. धर्मवीर भारती

> जन्मकाल - 1926 ई.

> मृत्युकाल - 1997 ई.

» जन्मस्थान - इलाहाबाद

» प्रमुख रचनाएँ -

1. ठण्डा लोहा-1952 ई.
2. सात गीत वर्ष-1959 ई.
3. अंधा युग (गीतिनाट्य)
4. कनुप्रिया
5. सपना अभी भी-1993
6. आद्यन्त-1999

प्रसिद्ध कविताएँ -

1. प्रमथ्यु गाथा
2. सृष्टि आखिरी आदमी
3. देशान्तर
4. टूटा पहिया

→ विशेष तथ्य -

1. ये प्रारम्भ में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हिंदी के प्राध्यापक रहे।
2. ये 1987 ई. तक 'धर्मयुग' पत्रिका के संपादक रहे।
3. इनकी कविताएँ मूलतः गीतात्मक है। इनमें लोक-परिवेश की मस्ती और उल्लास के स्थान पर उदासी और सूनापन अधिक नजर आता है।

मान पर उदासी और सूनापन

4. इनकी कविताओं के प्रमुख विषय रूपासक्ति, उद्दाम कामवासना एवं स्वच्छंद विलास है। (डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त)
5. 'कनुप्रिया' रचना में राधा के परंपरागत चरित्र को नये रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। राधा-कृष्ण के वासनात्मक संबंधों का चित्रण इसमें पूर्ण रुचि एवं सजीवता के साथ किया गया है।
6. आपने 'धर्मयुग', 'निकष', एवं 'आलोचना' नामक तीन पत्रिकाओं का संपादन कार्य किया गया था।
7. साहित्यकारों की सहायतार्थ आपने 1943 में 'परिमल' नामक संस्था की स्थापना की थी।
8. आपने 'सिद्ध साहित्य' पर शोध-उपाधि प्राप्त की थी।
9. आपके द्वारा रचित 'सूरज का सातवाँ घोडा' रचना पर एक टी.वी. धारावाहिक (सात कड़ियों में) भी प्रसारित हुआ था।

10. 'पंख, पहिए और पटियाँ' का संबंध 'अंधा युग' काव्य से माना जाता है।

6. नरेश मेहता

» जन्मकाल - 1922 ई.

→ **प्रमुख रचनाएँ -**

1. वनपांखी सुनो
2. बोलने दो चीङ को
3. संशय की एक रात-1962 ई.
4. तुम मैरा मौन हो-1983 7. शबरी
5. प्रवाद पर्व
6. मेरा समर्पित एकांत उत्सव
7. महा प्रस्थान
8. उत्सवा
9. अरण्या-1985
10. प्रार्थना-पुरुष-1985
11. समय देवता (प्रसिद्ध कविता)
12. चैत्या-1993

→ **विशेष तथ्य -**

1. इनके द्वारा रचित 'संशय की एक रात' (1962 ई.) नाट्य शैली में लिखी गयी एक लम्बी कविता है। इसमें राम के मन के संशय को चित्रित किया गया है। समुद्र में पुल बंध जाने पर राम का मन संशय से भर जाता है। वे सोचते हैं कि एक सीता के लिए इतना बडा नरसंहार क्यों किया जाये? परन्तु सहयोगियों द्वारा यह कहे जाने पर कि यह युद्ध सीता के लिए नहीं अपितु प्रजा के लिए लडा जा रहा है तो वे युद्ध करने के लिए तैयार हो जाते हैं।
2. 'प्रार्थना-पुरुष' इनके द्वारा रचित खण्डकाव्य है, जिसमें गाँधीजी के जीवन-चरित्र का वर्णन किया गया है।
3. इन्हें 'अरण्या' रचना के लिए 1988 ई. में साहित्य अकादमी पुरस्कार व 1992 ई. में हिन्दी में सम्पूर्ण योगदान के लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला।
4. 'समय देवता' इनकी लम्बी एवं प्रसिद्ध कविता है, जो इनके 'मेरा समर्पित एकान्त उत्सव' में संकलित हैं।

7. शमशेर बहादुर सिंह

> जन्मकाल - 1911 ई.
» मृत्युकाल - 1993 ई.
> जन्मस्थान - देहरादून

> प्रमुख रचनाएँ -

1. अमन का राग
2. चुका भी नहीं हूँ मैं
3. इतने पास अपने
4. काल तुझसे होड़ मेरी
5. उदिता-1980 ई.
6. बात बोलेगी हम नहीं-1987
7. टूटी हुई बिखरी हुई-1990 ई.

> विशेष तथ्य -

1. ये विचारों से मार्क्सवादी, संस्कारों से व्यक्तिवादी एवं अनुभवों से रूमानी नजर आते हैं।
2. हिन्दी साहित्य जगत् में इनको 'कवियों का कवि' भी कहा जाता है।
3. इनकी कविताओं का मुख्य स्वर 'कुंठित प्रेम' है।
4. इन्होंने 'कहानी' एवं 'नया साहित्य' नामक पत्रिकाओं का संपादन कार्य किया था।
5. इनकी 'अमन का राग' रचना प्रगतिवादी सरोकारों से संबंधित एक लम्बी कविता है।
6. 'उदिता' रचना की भूमिकाओं में वे प्रगतिवादी काव्य आन्दोलन की आवश्यकता महसूस करते हैं, किन्तु अपने वर्ग संस्कारों के कारण इससे जुड़ न सके।

नोट :- 'उदिता' रचना में दो भूमिकाएँ हैं।

7. इन्हें उत्तर प्रदेश सरकार की ओर से 'मैथिलीशरण गुप्त' पुरस्कार तथा मध्य प्रदेश सरकार की ओर से 'कबीर सम्मान' प्रदान किया था।
8. 'चुका भी नहीं हूँ मैं' रचना के लिए इन्हें 1977 ई. में साहित्य पुरस्कार मिला।

8. रघुवीर सहाय

→ जन्मकाल - 1929 ई.

> मृत्युकाल - 1990 ई.

→ प्रमुख रचनाएँ -

1. सीढ़ियों पर धूप में (प्रथम काव्य संग्रह)
2. आत्महत्या के विरुद्ध - 1967 ई.
3. लोग भूल गये हैं -1982 ई.
4. मेरा प्रतिनिधि
5. हँसो हँसो, जल्दी हँसी
6. कुछ पत्ते-कुछ चिट्ठियाँ-1989 ई.

> विशेष तथ्य -

1. 'लोग भूल गये हैं' रचना के लिए इनको 1984 ई. में 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' प्राप्त हुआ।
2. 'सीढ़ियों पर धूप में' में एक अनाहत जिजीविषा, मध्यवर्गीय जीवन का दवाब, और लोकतंत्र की विडंबनाएँ चित्रित है।
3. "हँसो हँसो जल्दी हँसो' में आपातकाल से संबंधित कविताओं का संग्रह किया गया है। रघुवीर सहाय के हर काव्य संग्रह के प्रारंभ में 'भूमिका' लिखी गयी है, परन्तु इस काव्य के प्रारम्भ में कोई भूमिका नहीं है। इसके कवि मौन है, बोलने की मनाही है।

9. भारत भूषण अग्रवाल

> जन्मकाल - 1919 ई.

» प्रमुख रचनाएँ -

1. छवि के बंधन
2. जागते रहो
3. ओ अप्रस्तुत मन
4. कागज के फूल
5. उतना वह सूरज है
6. अग्नि लीक
7. मुक्ति मार्ग
8. एक उठा हुआ हाथ - 1970 ई.

» विशेष तथ्य -

1. इनकी 'छवि के बंधन' रचना में सौन्दर्य, प्रेम एवं विरह की अनुभूतियों के साथ-साथ निराशा, पीडा, पराजय तथा दर्द की भी अभिव्यक्ति हुई है।
2. इनके द्वारा रचित निम्न गीतों 'लालसेना का गीत', 'लाल जवानों का पानी', 'लाल निशान' आदि में मार्क्सवादी स्वर प्रस्फुटित हुआ है।
3. 'उतना वह सूरज है रचना के लिए इन्हें 1978 ई. में साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला था।

10. शकुंतला माथुर

> जन्मकाल - 1922 ई.

> प्रमुख रचनाएँ -

1. अभी और कुछ इनका

2. चाँदनी और चूनर
3. दोपहरी

नयी कविता (1953 ई.)

नयी कविता अनेक अर्थों में प्रयोगवाद का विकास मानी जाती है। उसने प्रयोग की अनेक उपलब्धियों को आत्मसात् किया है। ऐतिहासिक दृष्टि से नयी कविता 'दूसरा सप्तक' (1951) के बाद की कविता को कहा जाता है। जहाँ तक 'नयी कविता' के नामकरण का प्रश्न है तो 'नई कविता' नाम भी अज्ञेय द्वारा ही दिया गया है। सन् 1952 ई. में पटना रेडियो से उन्होंने इसकी घोषणा की थी।

लक्ष्मीकांत वर्मा के अनुसार नयी कविता मूलतः 1953 ई. में 'नये पत्ते' के प्रकाशन के साथ विकसित हुई और जगदीश गुप्त तथा रामस्वरूप चतुर्वेदी के संपादन में प्रकाशित होने वाले संकलन 'नई कविता' (1954 ई.) में सर्वप्रथम अपने समस्त संभावित प्रतिमानों के साथ प्रकाश में आयी।

1954 ई. में प्रयाग के 'साहित्य सहयोग' नामक सहकारी संस्थान ने नयी कविता का प्रकाशन किया। इसी नई काव्यधारा को उन प्रतिमानों को लेकर विकसित किया गया, जो तत्कालीन भाव-बोध को वहन करते हुए सर्वथा नयी दृष्टि के साथ अवतरित हो रहे थे। नयी कविता का मूल स्रोत उस युग-सत्य और युग यथार्थ में निहित है।

प्रयोगवाद के अनेक कवियों ने प्रयोग को ही कविता का साध्य मान लिया इसलिए 1950 ई. के बाद एक समय प्रयोगवादी कहे जाने वाले कवियों ने ही प्रयोगवाद को नयी कविता की उदार और सहज अन्तर्धारा में विलयित कर दिया। नयी कविता ने स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जीवन और व्यक्ति की संश्लिष्ट जीवन-परिस्थितियों का रचनात्मक साक्षात्कार किया।

नयी कविता की विशेषताएँ/ प्रवृतियाँ

- यथार्थ के प्रति उन्मुक्त दृष्टि
- अहं के प्रति सजगता और व्यक्तित्व की खोज
- नयी कविता लघुमानव की अवधारणा का सूत्रपात करती है।
- नयी कविता आधुनिक भावबोध की कविता है। निरर्थकता बोध आधुनिक भावबोध की एक स्थिति है। अभिव्यक्ति की स्वछंद प्रवृत्ति।
- आधुनिक यथार्थ से द्रवित व्यंग्यात्मक दृष्टि - क्षणवाद

नई कविता में चार तत्त्व प्रमुख हैं -

- वर्जना और कुंठा से मुक्ति
- क्षणवाद
- -अनुभूति की सच्चाई
- -बुद्धिमूलक यथार्थवादी दृष्टि

नई कविता की प्रमुख कवि एवं रचनाएँ

कवि
रचनाएँ
सच्चिदानंद हीरानंद
भग्नदूत (1933), चिन्ता (1942), इत्यलम् (1946),
वात्स्यायन 'अज्ञेय'
हरी घास पर क्षण भर (1949), बावन अहेरी (1954), इंद्रधनुष रौदे हुए थे (1957), अरी ओ करुणा प्रभामय (1959), आँगन के पार द्वार (1961), पूर्वा (1965), सुनहले शैवाल (1966), कितनी नावों में कितनी बार (1967), क्योंकि मैं उसे जानता हूँ (1969), सागर मुद्रा (1970), पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ (1973), महावृक्ष के नीचे (1977), नदी की बाँक छाया (1981), ऐसा कोई घर आपने देखा है (1986)।

प्रमुख कविताएँ -
(1) असाध्यवीणा,
(2) कलगी बाजरे की,
(3) साँप
(4) नदी के द्वीप
(5) यह दीप अकेला।
गजानन माघ
(1) चाँद का मुँह टेढ़ा है (1964), (2) भूरि-भूरि खाक
'मुक्तिबोध'
धूल (1980 ई.)
प्रमुख कविताएँ-अंधेरे में, ब्रह्मराक्षस, अंतःकरण का आयतन आदि।

गिरिजा कुमार माथ

(1) मंजीर (1941), (2) नाश और निर्माण (1946), (3) धूप के धान, (4) शिला पंख चमकीले (5) छाया मत छूना, (6) भीतरी नदी की यात्रा (1975), (7) अभी कुछ और (8) साक्षी रहे वर्तमान, (9) पृथ्वी कल्प

प्रभाकर माचवे

(1) मेपल (2) स्वप्नभंग, (3) अनुक्षण।

भारतभूषण अग्रवाल

(1) छवि के बंधन (2) जागते रहो (3) मुक्ति मार्ग (4) ओ अप्रस्तुत मन (5) अनुपस्थिति लोग (6) कागज के फूल (7) उतना वह सूरज है (8) अग्निलीक (1976)

शमशेर बहादुर सिंह

(1) कुछ कविताएँ (1959), (2) कुछ और कविताएँ (1961), (3) चुका भी हूँ मैं नहीं (1975), (4) इतने अपने आप (1980), (5) उदिता अभिव्यक्ति का संघर्ष (1980), (6) बातें बोलेगी (1981), (7) काल तुमसे होङ है मेरी (1988), (8) कहीं बहुत दूर से सुन रहा हूँ (1995), (9) सुकून की तलाश (1998)।

केदारनाथ सिंह

(1) अभी बिल्कुल अभी (1976), (2) जमीन पक रही है (1976), (3) अकाल में सारस (1976), (4) यहाँ से देखो (2005), (5) बाघ (2005), (6) उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ (2005), तालस्टाय और साईकिल (1995)।

कुँवर नारायण

(1) चक्रव्यूह (1956), (2) परिवेश हम-तुम (1961), (3) आमने-सामने (1979), (4) कोई दूसरा नहीं (1993), (5) आत्मजयी (प्रबन्धकाव्य, 1965), (6) वाजश्रवा के बहाने (प्रबंध काव्य 2008), (7) इन दिनों (2002)।

भवानी प्रसाद मिश्र

(1) गीत फरोश (1953), (2) चकित है दुःख (1968), (3) अंधेरी कविताएँ (1968), (4) गांधी पंचशती (1969), (5) बुनी हुई रस्सी (1971), (6) खुशबू के शिलालेख (1973), (7) व्यक्तिगत (1973), (8) अंतर्गत (1979), (9) अनाम तुम आते हो (1979), (10) परिवर्तन जिए (1976), (11) इनमम् (1977), (12) त्रिकाल संध्या (1978), (13) शरीर, कविता, फसलें और फूल (1980), (14) मानसरोवर दिन (1981), (15) सम्प्रति (1982), (16) नीली रेखा तक (1984), (17) तूस की आग (1985), (18) कालजयी (खण्ड काव्य-1980)

प्रमुख कविताएँ- (1) कमल के फूल (2) सतपूड़ा के जंगल (3) वाणी की दीनता, (4) गीत फरोश (5) टूटने का सुख ।

रामविलास शर्मा

(1) रूप तरंग (1956), (2) सदियों के सोए जाग उठे (1988), (3) बुद्ध वैराग्य तथा प्रारंभिक कविताएँ (1997) |

रघुवीर सहाय

(1) सीढ़ियों पर धूप में (1960), (2) आत्महत्या के विरुद्ध (1967), (3) हँसी हँसी जल्दी हँसो (1975), (4) लोग भूल गए हैं (1982), (5) कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ (1989), (6) एक समय था।

विजयदेव नारायण साही

(1) साखी (2) मछलीघर (3) संवाद तुमसे ।

हरिनारायण व्यास

(1) मृग और तृष्णा, (2) त्रिकोण पर सूर्योदय, (3) बरगद के चिकने पत्ते ।

नरेश मेहता

(1) वन पाखी सुनो (1957), (2) बोलने दो चीडों को (1961), (3) मेरा समर्पित एकांत (1963), (4) पिछले दिनों नंगे पैरों, (5) चैत्या, (6) उत्सवा (1979), (7) संशय की एक रात (प्रबंध काव्य-1962), (8) महाप्रस्थान (1964), (9) प्रवाद पर्व (1977), (10) शबरी (1977), (11) अरण्य, (12) आखिरी समुद्र से तात्पर्य, (13) प्रार्थना पुरुष (1985)।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

(1) काठ की खंटियाँ (1959), (2) बाँस का पुल (1963), (3) एक सूनी नाव (1966), (4) गर्म हवाएँ (1966), (5) कुआनी नदी (1973), (6) जंगल का दर्द (1976), (7) खूटियों पर टंगे लोग (1982), (8) क्या कहकर पुकारूँ (9) कोई मेरे साथ चले।

धर्मवीर भारती

(1) ठण्डा लोहा (1952), (2) अंधा युग (1955), (3) कनुप्रिया (1957), (4) सात गीत वर्ष (1957), (5) देशांतर।

उपर्युक्त कवियों से संबंधित महत्वपूर्ण तथ्य :

- अज्ञेय अस्तित्ववाद में आस्था रखने वाले कवि है।
- 'असाध्यवीणा' अज्ञेय की प्रमुख कृति है, इसका मूल भाव 'अहं का विसर्जन' 'समर्पण की भावना' है। इसका कथानक चीनी-जापानी कथा ओकाकुरा से प्रभावित है।
- नदी के द्वीप में व्यक्ति, संस्कृति और समाज तीनों के अस्तित्व की बात की गई है।
-

नदी के द्वीप के प्रतीक

- द्वीप - व्यक्ति/शिशु
- नदी - परंपरा/ माँ
- भूखण्ड - समाज/पिता

- मुक्तिबोध की 'अंधेरे में' कविता का प्रथम प्रकाशन 'कल्पना' पत्रिका में 1964 में 'आशंका के द्वीप' 'अंधेरे में' नाम से हुआ।
- मुक्तिबोध ने 'अंधेरे में कविता की रचना फैंटेसी में की है।

शमशेर बहादुर सिंह के अनुसार -

- "यह कविता देश के आधुनिक जन इतिहास का स्वतंत्रता पूर्व और पश्चात् का एक दहकता इस्पाती दस्तावेज है।"
- नामवर सिंह के अनुसार 'अंधेरे में कविता 'अस्मिता की खोज' है।
- रामविलास शर्मा ने 'अंधेरे में' कविता को 'आरक्षित जीवन की कविता' कहा है।
- रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है-'चाँद का मुँह टेढ़ा है' एक बड़े कलाकार की स्कैच-बुक लगता है।'
  - मुक्तिबोध पर टालस्टाय, बर्ग सॉ और मार्क्सवाद का स्पष्ट प्रभाव है।
- . शमशेर बहादुर को मलजय ने 'मूड्स का कवि' कहा है।
- .शमशेर बहादुर सिंह के अनुसार - 'टेक्नीक में एजरा पाउंड शायद मेरा सबसे बडा आदर्श बन गया था।'
- .रामचन्द्र तिवारी ने शमशेर बहादुर के गद्य को 'हिन्दी का जातीय गद्य' कहा है।
- .भवानी प्रसाद मिश्र को 'सहजता का कवि' कहा जाता है।
- . भवानी प्रसाद मिश्र को 'हिन्दी कविता का गांधी' कहा जाता है।

प्रयोगवादी/नई कविता के प्रमुख कवियों की महत्त्वपूर्ण काव्य पंक्तियाँ -

.यह दीप अकेला स्नेह भरा
है गर्व भरा मदमाता
पर इसको भी पंक्ति दे दो
.किन्तु हम हैं द्वीप।
हम धारा नहीं है,
स्थिर समर्पण है हमारा हम सदा से द्वीप है स्त्रोतास्विनी के ।
.साँप! तुम सभ्य तो हुए नहीं
नगर में बसना भी तुम्हें नहीं आया
तब कैसे सीखा डॅसना-विष कहाँ पाया
. मौन भी अभिव्यक्ति है
जितना तुम्हारा सच है
उतना ही कहो
. भोर का बाबरा अहेरी
पहले बिछाता है आलोक को
लाल-लाल कनिया

. वही परिचित दो आँखे ही
चिर माध्यम है
सब आँखों से सब दों से
मेरे लिए परिचय का
. ये उपनाम मैले हो गये हैं
देवता इन प्रतीकों से कर गए है कूच
. एक तीक्ष्ण अपांग से कविता उत्पन्न हो जाती है
एक चुंबन से प्रणय फलीभूत हो जाता है।
. 'मुझे स्मरण है
और चित्र/ प्रत्येक स्तब्ध, विजडित करता है मुझे
सुनता हूँ मैं
. आ, मुझे भुला
तू उतर बीन के तारों में अपने से गा
अपने को गा अपने खग कुल को मुखरित कर
. राजकुमुट सहसा हलका हो आया था
मानो हो फूल सिरिस का
ईर्ष्या, महत्त्वकांक्षा, द्वेष, चाटुता
सभी पुराने झङ गये
. हरी तलहटी में, छोटे की ओट, ताल पर
बंधे समय, वन-पशुओं की नानाविध
आतुर-तृप्त पुकारे
गर्जन, धुर्धर, चीख, मूंक, हुक्का
चिचिराहट है

मुक्तिबोध

- मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक वाणी में महाकाव्य-पीङा है।
- ओ मेरे आदर्शवादी मन
ओ मरे सिद्वान्तवादी मन
-बहुत-बहुत ज्यादा लिया
दिया बहुत-बहुत कम
मर गया देश, अरे, जीवित रह गए तुम
-अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे, उठाने होंगे
तोडने होगें मठ और गढ़ सभी
-कविता कहने की आदत नहीं, पर कह दूँ

वर्तमान समाज चल नहीं सकता
पूँजी से जुड़ा हुआ हृदय बदल नहीं सकता
-खोजता हूँ पठार, पर्वत, समुद्र
जहाँ मिल सके मुझे
मेरी वह खोई हुई
परम अभिव्यक्ति अनिवार
आत्म-संभवा।

शमशेर बहादुर सिंह
- एक पीली शाम
पतझर का जरा अटका हुआ पत्ता
-बात बोलेगी, हम नहीं
भेद खोलेगी, बात ही
-चूका भी हूँ मैं नहीं
कहाँ किया मैंने प्रेम अभी
-घिर आया समय का रथ कहीं
ललिता से मढ़ गया है राग।
- हाँ, तुम मुझसे प्रेम करो
जैबे मछलियाँ लहरों से करती है।
-दोपहर बाद की धूप-छाँह में खडी
इंतजार की ठेलेगाड़ियाँ
जैसे मेरी पसलियाँ
खाली बोरे सूजों से रफू किये जा रहे हैं।
-भूलकर जब राह-जब जब राह भटका मैं
तुम्हीं झलके हो महाकवि
सघन तम की आँख बन मेरे लिए।

भवानी प्रसाद मिश्र
- जी हाँ हुजूर, मैं गीत बेचता हूँ
मैं तरह-तरह के गीत बेचता हूँ
मैं किसिम किसिम के गीत बेचता हूँ।
-सतपुडा के घने जंगल
नींद में डूबे हुए से
उँघते अनमने जंगल।

-टुटने का सुख
बहुत सारे बन्धनों को आज झटका लग रहा है
टूट जायेंगे कि मुझको आज खटका लग रहा है।
-फूल लाया हूँ कमल के
क्या करूँ इनका
छोङ दूं
हो जाए जी हल्का

रघुवीर सहाय
- राष्ट्रगान में भला कौन वह भारत भाग्य विधाता है
फटा सुथन्ना पहले, जिसका गुन हरचरना गाता है
- मैं अपनी एक मूर्ति बनाता हूँ
और एक ढ़हाता हूँ
और आप कहते हैं कि कविता की है।
-कितना अच्छा था छायावाद
एक दुःख लेकर वह गान देता था
कितना कुशल था प्रगतिवादी
हर दुःख का कारण पहचान लेता था
-खबर हमको पता है हमारा आतंक है
हमने बनाई है
फिर वो लिखते हैं
खबर वातानुकूलित कक्ष में तय कर रही होगी
करेगा कौन रामू के तले की भूमि पर कब्जा
- लोग भूल जाते हैं
अत्याचारी का चेहरा मुस्काने पर
-भीङ में मैल खोरी गंध मिली
भीङ में आदिम मूर्खता की गंध मिली
भीङ में नहीं मिली मुझे मेरी गंध
-क्रांतिकारी लेखक को आशा है
कि औरों पर उसका अविश्वास
उसको तो उसके जीवन में
एक बङा आदमी बना देगा।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

- लोकतंत्र को जूते की तरह
लाठी में लटकाए
भागे जा रहे हैं सभी
सीना फुलाए
-मैं नया कवि हूँ
सत्य की चोट बहुत गहरी होती हे
-लीक पर चले जिनके
चरण दुर्बल और हारे हैं
हमें तो हमारी यात्रा से बने
ऐसे अनिर्मित पंथ प्यारे हैं

केदार नाथ सिंह
- मैंने जब भी सोचा
मुझे रामचन्द्र शुक्ल की मूंछे याद आई
- मैं पूरी ताकत के साथ
शब्दों को फेंकना चाहता हूँ।

साठोत्तरी कविता

सन् 1960 ई. के बाद लघु पत्रिकाओं की बाढ़ आ गई तथा प्रत्येक लघु पत्रिका की छत्रछाया में कोई-न-कोई नये वाद अथवा काव्यान्दोलन पनपने लगे। जो आन्दोलन अपेक्षाकृत अधिक स्थिर एवं सुदृढ़ हो पाए, वे निम्न हैं -

- निषेध मूलक
- संघर्ष मूलक
- आस्थामूलक

निषेधमूलक वर्ग में उन काव्यान्दोलनों को समाहित किया जाता है, जिन्होंने परंपरागत सामाजिक, नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों का निषेध करते हुए घोर व्यक्तिवाद, उच्शृंखल यौनवाद एवं नग्न भोगवाद को प्रश्रय दिया।

संघर्ष मूलक वर्ग के आन्दोलनों में सामाजिक, आर्थिक, एवं राजनीतिक परिस्थितियों के प्रति असंतोष तथा आक्रोश व्यक्त करते हुए उनके विरोध में संघर्ष का आह्वान किया गया।

आस्थामूलक वर्ग के आन्दोलनों में परंपरागत मूल्यों को स्वीकारते हुए उनकी पुनः प्रतिष्ठा पर जोर दिया गया।

प्रमुख काव्यांदोलन एवं प्रवर्तक	
काव्यांदोलन	**प्रवर्तक**

अकविता	श्याम परमार
बीट पीढ़ी	राजकमल चौधरी
अस्वीकृत कविता	श्रीराम शुक्ल
आज की कविता	हरीश मादानी
प्रतिबद्ध/ वाम कविता	डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव
सहज कविता	डॉ. रवीन्द्र भ्रमर
ताजी कविता	लक्ष्मीकांत वर्मा
समकालीन कविता	डॉ. विशम्भरनाथ उपाध्याय
कैप्सूल / सूत्र कविता	डॉ. ओंकारनाथ त्रिपाठी

समकालीन कविता

'समकालीन कविता' का प्रवर्तन डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय ने 1976 ई. में अपनी पुस्तक 'समकालीन कविता की भूमिका' से किया। समकालीन कविता समसामयिक संदर्भो से जुड़ी हुई है। साथ ही इसे युग विशेष के संदर्भो के अनुसार बदली हुई चेतना या मानसिकता का द्योतक माना जाता है।

'समकालीन कविता' में वर्तमान का सीधा खुलासा है। इसे पढ़कर वर्तमान काल का यथार्थबोध हो सकता है, क्योंकि इसमें जीते, संघर्ष करते, लडते, बौखलाते, तडपते-गरजते तथा ठोकर खाकर सोचते आदमी का परिदृश्य है।

समकालीन कवि एवं उनकी काव्य कृतियाँ -

कवि

काव्य-कृतियाँ

जगदीश गुप्त

(1) नाव के पाँव (2) शब्द-दंश (3) हिमबद्ध (4) युग्म (5) छंदशती (6) आदिम एकांत

गज़लकार दुष्यंत कुमार

(1) सूर्य का स्वागत (1957) (2) आवाजों के घेरे (1963), (3) जलते हुए वन का बसंत, (4) साये में धूप (1975)

श्रीकान्त वर्मा

(1) भटका मेघ (1957) (2) दिनारंभ (1967) (3) माया दर्पण (1967) जलसा घर (1973) (4) मगध (1984)

राजकमल चौधरी

(1) कंकावती (2) मुक्ति प्रसंग (3) स्वरगंधा

रामदरश मिश्र

(1) बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ, (2) पक गयी है धूप, (3) कंधे पर सूरज, 4) दिन एक नदी बन गई, (5) शब्द सेतु, (6) बारिश में भीगते हुए बच्चे, (7) हँसी ओंठ पर आँखें नम है, (8) बाजार में निकले हैं लोग।

सुदामा पाण्डेय 'धूमिल'

(1) संसद से सडक तक (1972) (2) कल सुनना मुझे (1976) (3) सुदामा पाण्डेय का प्रजातंत्र (1984)। (1) हड्डियों में छिपा ज्वर (1973) (2) दीवारों पर खून से (1975) लकडबग्धा हँस रहा है (1980) रोशनी के मैदान की तरफ (1982) (5) भूखण्ड तप रहा है (1982) (6) आग हर चीज में बताई गई थी (1887) (7) पत्थर की बेंच (1996) (8) इतनी पत्थर रोशनी (2002) (9) बदला बेहद मँहगा सौदा (1995) (10) उजाङ में संग्रहालय (2003) (11) जहाँ थोडा सा सूर्योदय होगा (2008) (12) पत्थर फेंक रहा हूँ (2010)।

चंद्रकांत देवताले

(1) लगभग जय हिन्द (1971) (2) वह आदमी चला गया नया गरम कोट पहिनकर विचार की तरह (1981) (3) सब कुछ होना बचा रहेगा (1992) (4) अतिरिक्त नहीं (2000) (5) कविता से लंबी कविता नहीं (2001) (6) आकाश धरती को खटखटाता है (2006) (7) कभी के बाद अभी (2012)

विनोद कुमार 'शुक्ल'

(1) अतुकान्त (2) तीसरा पक्ष (3) रूबरू (4) नए प्रतिमान (5) आदमी का जहर (6) सीमांत के बादल (7) धुएँ की लकीरें।

लीलाधर जगूडी

(1) शंखमुखी शिखरों पर (1964) (2) नाटक जारी है (1972) (3) इस यात्रा में (1974) (4) रात अब भी मौजूद है (1976) (5) बची हुई पृथ्वी (1977) (6) घबराए हुए शब्द (1981) (7) भय भी शक्ति देता है (8) अनुभव के आकाश में चाँद (9) महाकाव्य के बिना (10) ईश्वर की अध्यक्षता में (11) खबर का मुँह विज्ञापन से ढंका है।

अशोक वाजपेयी

(1) शहर अब भी संभावना है (1966) (2) एक पतंग अनंत में (1984) (3) इतने से (1986) (4) तत्पुरुष (1989) (5) कहीं नहीं वहीं (1991) (6) बहुरि अकेला (1992) (7) थोडी सी जगह (1994) (8) घास में दुबका आकाश (1994) (9) आविन्यों (1995) (10) जो नहीं है (1996) (11) अभी कुछ और (1998)

लीलाघर मंडलोई

(1) घर-घर घूमा (2) रात विरात (3) मगर एक आवाज (4) काला बाँका तिरछा (5) देखा अनदेखा (6) क्षमा याचना (7) उपस्थित है समुद्र (8) ये बदमस्ती तो होगी (9) मन बेपरवाह (10) लिक्खे में दुःख (11) एक बहुत कोमल तान।

मलयज

(1) जख्म पर धूल (2) अपने होने को अप्रकाशित करता हुआ (3) हँसते हुए मेरा अकेलापन।

कैलाश वाजपेयी

(1) संक्रांत (1964) (2) देहांत से हटकर (1968) (3) तीसरा अंधेरा (1972) (4) महास्वप्न के मध्यान्तर (1980) (5) सूफीनामा (1992) (6) हवा में हस्ताक्षर (2005) (7) भविष्य घट रहा है (1999) (8) शब्द संसार (2006) (9) अनहट (2007)

कुमार विमल

(1) एक छोटी सी लड़ाई (1980) (2) रंग खतरे में है (1987) (3) निरूपमा दत्त मैं बहुत उदास हूँ (1993) (4) सपने में एक औरत से बातचीत (1992) (5) यह मुखौटा किसका है (2002) (6) पानी का दुखड़ा (7) बेचैनी का सबब ।

वीरेन डंगवाल

(1) इसी दुनिया में (1990) (2) दुष्चक्र में सृष्टा (2000) (3) स्याही ताल ।

राजेश जोशी

(1) समरगाथा (2) एक दिन बोलेंगे पेड़ (3) मिट्टी का चेहरा (4) नेपथ्य में हँसी (5) दो पंक्तियों के बीच (6) चाँद की वर्तनी (7) धरती का कल्पतरू ।

मंगलेश डबराल

(1) पहाड़ पर लालटेन (1981) (2) घर का रास्ता (1988) (3) हम जो देखते हैं (1995) (4) आवाज भी एक जगह है (5) मुझे दिखा एक मनुष्य (6) नए युग में शत्रु (7) कवि ने कहा।

अरूण कमल

(1) अपनी केवल धार (1980) (2) सबूत (1989) (3) नये इलाके में (1996) (4) पुतली में संसार (2004) (5) मैं वो शंख महाशंख ।

मदन कश्यप

(1) गूलर के फूल नहीं खिलते (1990) (2) लेकिन उदास है पृथ्वी (1992) (3) नीम रोशनी में (2000) (4) कुरूज (2006) (5) दूर तक चुप्पी।

उदय प्रकाश

(1) सुनो कारीगर (1980) (2) अबूतर कबूतर (1984) (3) रात में हरमोनियम (4) क से कबूतर (5) एक भाषा हुआ करती है (6) कवि ने कहा।

बलदेव बंशी

(1) कछुए की पीठ पर (2) हरिश्चन्द्र आओ (3) नदी भागती आयी (4) प्यारे मुचकुंद को (5) देखते हैं शब्द भी अपना समय (6) जादू सपना (7) चाक पर समय (8) अकेला मेला (9) उकाब हुलार (10) चाक पर (11) अनागरिक।

हरिकृष्ण प्रेमी

(1) अंधेरे के बावजूद (2) बच्चे की दुनिया (3) कहीं कोई आवाज नहीं (4) उपनगर में वापसी (5) वाक गंगा (6) काला इतिहास (7) दर्शकदीर्घा (8) बगो की दुनिया (9) टूटता हुआ तार (10) एक दुनिया यह भी (11) इतिहास में आग (12) पत्थर तक जाग रहे है।

आलोक धन्वा

(1) रूप दर्शन (2) रूपरेखा (3) आँखों में (1930) (4) जादुगरनी (1932) (5) अनंत के पथ पर (1932) (6) अग्निगान (1940)

जगदीश चतुर्वेदी

(1) इतिहासहंता (2) डूबते इतिहास का गवाह (3) नए मसीहा का जन्म (4) सूर्यपुत्र (5) पूर्वराग

अदम गोङवी

(1) धरती की सतह पर (2) सतह से मुठभेङ

ज्ञानेद्रपति

(1) आँख हाथ बनते हुए (1970) शब्द लिखने के लिए ही यह कागज बना है (1981) गंगातट (2000) संशयात्मा (2004) भिनसार (2006)

स्वप्निल श्रीवास्तव

(1) ईश्वर एक लाठी है (1980) (2) ताख पर दिया सलाई (1998) (3) मुझे दूसरी पृथ्वी चाहिए (2004) (4) जिंदगी का मुकदमा ।

एकांत श्रीवास्तव

(1) मिट्टी से कहूँगा धन्यवाद (2) नागरिक व्यथा (3) अन्न है मेरे शब्द 4) बीज से फूल तक (5) धरती अधखिला फूल है (6) नागकेशर का देश यह।

श्रीराम वर्मा

(1) ग्रीनविच (2) शब्दों की शताब्दी (3) कालपात्र (4) आत्मकथा (5) बूंद की यात्रा (6) गली का परिवेश।

डॉ. देवराज

(1) इतिहास पुरुष (2) आत्महत्याएँ (3) इला और अमिताभ ।

नरेन्द्र मोहन

(1) सामना होने पर (2) एक अग्निकाण्ड जगह बदलता (3) इस हादसे में।

स्नेहमयी चौधरी

(1) पूरा गलत पाठ (2) अपने खिलाफ ।

विश्वम्भर नाथ उपाध्याय

(1) कबंध।

समकालीन प्रमुख कवयित्री एवं उनकी रचनाएँ

कवयित्री

रचनाएँ

प्रभा खेतान

(1) अपरिचित उजाले (2) सीढ़ियाँ चढ़ती हुई मैं (3) एक और आकाश में खोज (4) कृष्ण धर्मा मैं (5) हुस्न बानों और अन्य कविताएँ (6) अहत्या (7) सांकलों में कैद क्षितिज

कात्यायनी

(1) चेहरे पर आँच (2) सात भाइयो के बीच चंपा (3) इस पौरुष पूर्ण समय में (4) जादू नहीं कविता (5) राख अंधेरे की बारिश में (6) फुटपाथ पर कुर्सी।

अनामिका

(1) गलत पते की चिट्ठी (2) बीजाक्षर (3) अनुष्टुप (4) कविता में आँख (5) खुरदरी हथेलियाँ (6) दूब-धान (7) समय के शहर में।

इन्दू जैन
(1) आँख में भी छोटी चिडिया (2) हमसे पहले भी लोग यहाँ थे (3) हवा की मोहताज क्यूँ रहूँ ? (4) कौन तेरा कौन-सा (5) कुछ न कुछ टकराएगा जरूर

(1) लकीरें
मैत्रेयी पुष्पा

गगन गिल
(1) एक दिन लौटेगी लडकी (1989) (2) अंधेरे में बुद्ध (1996) (3) यह अकांक्षा समय नहीं (1998) (4) थपक-थपक दिल थपक-थपक (2003)

ममता कालिया
(1) खाँटी घरेलू औरत (2) कितने प्रश्न करूँ

पद्या सचदेवा
(1) मेरी कविता मेरे गीत (2) तवी ते झन्हाँ (3) न्हैरियां गलियाँ (4) पोटा पोटा निम्बल उत्तर बैहनी (5) सँघियाँ (6) रत्तियाँ।

चंद्रकांता
(1) यहीं कहीं आसपास

जया जादवानी
(1) मैं शब्द हूँ (2) अनंत संभावनाओं के बाद भी, (3) उठाता है कोई एक मुट्ठी ऐश्वर्य।

दलित कविता

- रैदास जन्मना दलित है, इसलिए उन्हें पहला दलित कवि कहना तर्क सम्मत इतिहास-सम्मत है।
- दलित लेखन की शुरूआत 1960 के आसपास मराठी भाषा से होती है।
- कुछ विद्वान 1914 में 'सरस्वती' पत्रिका में हीराडोम द्वारा लिखित 'अछूत की शिकायत को पहली दलित कविता मानते हैं।
- कुछ अन्य विद्वान अछूतानन्द को पहला दलित कवि कहते हैं, उनकी कविताएँ 1910 से 1927 तक लिखी गई। प्रमुख दलित कवि एवं रचनाएँ

कवि
रचनाएँ
हीरा डोम
अछूत की शिकायत (1914)

बिहारी लाल हरित
अछूतों का पैगम्बर (1946) चमार हूँ मैं (1975)

डॉ. धर्मवीर
हीरामन

ओम प्रकाश वाल्मिकी
(1) सदियों का संताप (1989) (2) बस्स बहुत हो चुका (1997) (3) अब और नहीं (2002) (4) अखाड़े की माटी (5) कभी सोचा है ? (6) ठाकुर का कुआँ

मंसाराम विद्रोही
(1) दलित पचासा (1989)

मलखान सिंह
(1) सुनो ब्राह्मण (1995)

जयप्रकाश कर्दम
(1) गूंगा नहीं था मैं (1997) (2) आज का रैदास

सुशीला टाकभौरे
(1) स्वाति बूंद और खारे मोती (1993) 2) तुमने उसे कब पहचाना (3) आज की खुद्दार औरत

श्यौराज सिंह बैचेन
(1) नई फसल (2) क्रौंचे हूँ मैं।

कुसुम वियोगी
(1) टुकड़े-टुकड़े दंश (2) व्यवस्था के विषधर

दयाशंकर बटोही
(1) यातना की आँखें

सी.बी. भारती
(1) आक्रोश (2) रूढियाँ (3) सियासत

सूरजपाल चौहान
(1) प्रयास (2) क्यों विश्वास करू (2004)

अदम गोडवी
(1) मैं चमारों की गली तक ले चलूँगा

दयानंद 'बटोही'
(1) अँधेरे के विरुद्ध

सुशीला टाकभौरे
(1) घर की चौखट से बाहर (2) उगते अंकुर की तरह जियो (3) पीड़ा की फसलें
कंवल भारती

(1) पिजड़े का द्वार खोल देना (2) मुक्ति संग्राम अभी बाकी है (3) तब तुम्हारी निष्ठा क्या होगी?

कोदूराम दलित
(1) सियानी गोठ (1967) (2) बहुजन हिताय बहुजन सुखाय (2000)

असंगघोष
(1) खामोश नहीं हूँ मैं (2001) (2) हम गवाही देंगे (2007) (3) मैं दूंगा माकूल जवाब (2012) (4) समय को इतिहास लिखने दो (2015)

नवगीत परंपरा

हिन्दी में नवगीत की विशुद्ध चर्चा पहली बार राजेन्द्र प्रसाद सिंह द्वारा संपादित गीतांगिनी (1950) में हुई। इन्हें ही 'नवगीत' की संज्ञा दी जानी चाहिए। गीतांगिनी के संपादकीय को नवगीत का घोषणा-पत्र माना जाना चाहिए। केदारनाथ अग्रवाल तथा ठाकुर प्रसाद सिंह को नवगीत के आरंभकर्ता का श्रेय दिया जाता है।

नवगीत के पाँच तत्त्व होते हैं - (1) आत्मनिष्ठा
(2) जीवन दर्शन
(3) व्यक्तिबोध
(4) प्रीति-तत्त्व
(5) परिसंचय

प्रमुख नवगीतकार एवं उनके संकलन नवगीतकार
कृतियाँ

शंभूनाथ सिंह
(1) दर्द जहाँ नीला है (1977)
(2) समय की शिला पर (1968) (3) कलापी (4) संचयिता (5) जीवन और यौवन (6) पाँचजन्य (7) माध्यम मैं (8) खंडित सेतु (७) प्रेमगीत (10) रूपरश्मि (11) छायालोक (12) उदयाँचल (1946) (13) मनवन्तर (14) दिवालोक (1951)

वीरेन्द्र जैन
(1) झुलसा है छायानट धूप में

(1) संघर्ष (2) अन्तर्ध्वनि (3) विभावरी (4) प्राण-गीत (5) दर्द दिया है (6) बादर बरस गयो (7) नीरज की पाती (8) नदी किनारे (9) दो गीत (10) आसावरी (11) लहर पुकारे (12) मुक्तकी (13) गीत भी अगीत भी।

रवीन्द्र भ्रमर
(1) रवीन्द्र भ्रमर के गीत (2) इतिहास दुबारा लिखो (3) सोन मछरी मन बसी
राजेन्द्र प्रसाद सिंह
(1) भूमिका (1950) (2) दिग्वधू (1956) (3) संजीवन कहाँ (1965) (4) आओ खुली बयार (5) भरी सड़क पर (6) गरज आधी रात का (7) रात आँख मूंद कर जगी

कुँवर बैचेन
(1) पिन बहुत सारे (1972) (2) भीतर साँकल बाहर साँकल (1978) (3) शामियाने काँच के (1983) (4) महावर इन्जारों का (1983)

वीरेन्द्र मिश्र

(1) वाणी के कलाकार (2) अविराम चल मधुमती (3) गीतम (4) लेखनी बेला (5) काले मेघा पानी दे (6) शांति गंधर्व।

ठाकुर प्रसाद सिंह

(1) वंशी और मदाल (1959) (2) महामानव (प्रबंध काव्य-1946) (3) हारी हुई लड़ाई लड़ते हुए (काव्य संग्रह-1988) (1) गीत पर्व आया है (1983) (2) पंख होते है समय के (1989) (3) बरगद जलते है (1998)

राजेन्द्र गौतम

गोरख पाण्डेय

(1) भोजपुरी के नौ गीत (1978) (2) जागते रहो सोने वालों (1983) (3) स्वर्ग से बिदाई (1989) (4) समय का पहिया (5) लोहा गरम हो गया है। अंतिम चारों काव्य-संग्रह हैं।

गोपाल सिंह 'नेपाली'

(1) उमंग (1933) (2) पंछी (1934) (3) रागिनी (1935) (4) पंचमी (1942) (5) नवीन (1944) (6) नीलिमा (1945) (7) हिमालय की पुकार (1963)

भाग 6

हिन्दी साहित्य का रीतिकाल

हिन्दी साहित्य का रीतिकाल

रीतिकाल

(1) आचार्य वामन के अनुसार
विशिष्ट पद रचना है
भाषा के विशेष प्रकार के प्रयोग से ये रीतियाँ निर्धारित होती है।
यह काव्य की एक शैली है जिससे विशिष्ट प्रकार की मधुरता उत्पन्न होती है।

(2) रीति का दूसरा अर्थ परम्परा है।
इसी परम्परा के अनुकरण से लक्षण ग्रंथ परम्परा चल पड़ी।
इसी लक्षण ग्रंथ को रीति परम्परा कहते हैं।
अतः इसका अर्थ है- अनुकरण की प्रवृति।

रीतिकाल के लिए नामकरण

(1) अलंकृत काल – मिश्र बंधु
(2) श्रृंगार काल – विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
(3) कला काल – रमा शंकर शुक्ल रसाल
(4) रीतिकाल – रामचन्द्र शुक्ल

रीतिकाल का आरम्भ

रीति निरूपण की प्रवृत्ति भक्तिकाल से ही प्रारम्भ हो गई थी। सूरदास की "साहित्य लहरी" नंददास की "रस मंजरी" एवं कृपाराम की "हित तरंगिनी" भक्तिकाल में लिखे गए रीति ग्रंथ है। -
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार हिन्दी में केशवदास को यह श्रेय है कि उन्होंने सभी काव्यांगों का निरूपण सर्वप्रथम शास्त्रीय पद्धति पर किया। । किन्तु केशव दास की कविप्रिया' के 50 वर्ष बाद तक कोई रीतिग्रंथ नहीं लिखा गया। इसकी अखण्ड परम्परा चिंतामणि त्रिपाठी से चली। अतः रीतिकाल का प्रारम्भ उन्हीं से मानना चाहिए। डॉ. नगेन्द्र ने चिंतामणि त्रिपाठी को रीतिकाल का प्रथम आचार्य माना है। चिंतामणि के ग्रन्थ 'काव्य विवेक', 'कविकुल', 'कल्पतरु', 'काव्य प्रकाश संवत् 1700 विक्रमी के आस-पास लिखे गए।

रीतिकाल की उत्पत्ति

1650 ई. के तुरंत बाद औरंगजेब का शासन । यह मजबूत शासन था।
1707 ई. में औरंगजेब की मृत्यु तथा मुगल शासन पर विलासी प्रवृत्ति हावी ।
इस तरह राजनीतिक परिस्थितियाँ बदलने से साहित्यिकक प्रवृत्तियाँ भी बदली। ।
इस समय छोटे-छोटे राजाओं के यहाँ दरबारी कवि थे, कुछ मुगल शासन के समर्थक एवं कुछ विरोधी। ।
अतः रीतिकाल का मुख्य रस श्रृंगार एवं वीर है। श्रृंगार अंगीरस है तथा वीर गौण क्योंकि अधिकांश राजा मुगल समर्थक थे।
अतः इस काल में विशेष रूचियाँ विकसित हुई। राजाओं की इच्छा हुई कि काव्य कला सीखी जाए। इसके लिए उनके पास दो विकल्प थे – या तो स्वयं शास्त्रों को पढ़कर ज्ञानार्जन किया जाए या दरबारी कवियों से सिखा जाए

उन्होंने दूसरा विकल्प अपनाया और यहीं से लक्षण ग्रन्थ परम्परा चल पड़ी। ।
इस परम्परा में कवि पहले किसी छंद के लक्षण (परिभाषा) बताता है फिर उसका उदाहरण देकर समझाता।
उदाहरण के लिए :लक्षण -
"जहाँ एक ही बात को उपमेयो उपमान।
तहाँ अन्वय कहत है कवि मतिराम सुजान।"
उदाहरण - "सुरजन कैसी सुरजन ही में साहिबी है
भोज कैसी भोज में अकड़ बड थाल में।"
(मतिराम – ललित ललाम)

रीतिकालीन साहित्य का वर्गीकरण

रीतिबद्ध	रीतिसिद्ध	रीतिमुक्
लक्षण ग्रन्थ परम्परा आचार्य कवि परम्परा केशव, पद्माकर, चिंतामणि, देव, मतिराम, भिखारी दास, आदि प्रमुख कवि इन कवियों ने ज्ञान को सरस तथा सरल बनाकर पेश किया अतः आचार्य कहलाए।	मानसिकता के स्तर पर रीतिकाव्य के समान ही है परन्तु काव्य शास्त्र के लक्षण या सिद्धान्त नहीं दिए केवल कविताएँ लिखी जो कि काव्य-शास्त्रीय लक्षणों को ध्यान में रखकर ही लिखी गई। बिहारी इस धारा के प्रतिनिधि कवि हैं	दायित्व मूलक प्रेम की कविता करने वाले कवि घनानंद आलम बोधा ठाकुर द्विजदेव

रीतिइतर

वीर काव्य	नीतिकाव्य	भक्ति काव्य
उदाहरण भूषण	उदाहरण	उदाहरण रहीम
	- कवि वृंद	
	- गिरिधर विराय	

रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ
रीति निरूपण
- सर्वांग निरूपण : केशव, पद्माकर, चिंतामणि

- विशिष्टांग निरूपण : देव, मतिराम
शृंगारिकता
राज प्रशस्ति
आलंकारिकता
- बहुज्ञाता एवं चमत्कार : ये कवि काव्य के अतिरिक्त ज्योतिष, गणित, चित्रकला, नीति, कामशास्त्र, पुराण, आयुर्वेद आदि के ज्ञाता भी थे। उदाहरण – बिहारी।
नारी को भोग्या वस्तु मानने की प्रवृत्ति।
ब्रजभाषा का प्रयोग

रीति मुक्त काव्य की प्रवृत्तियाँ

स्वच्छंद एवं अकृत्रिम प्रेम का चित्रण

- विरह वर्णन की प्रधानता ।
- स्वानुभूति का चित्रण ।
- लाक्षणिक भाषा का प्रयोग
- अधिकतर मुक्त शैली में काव्य सृजन

सामाजिक सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य

रीतिकाल की समय सीमा मोटे तौर पर शाहजहाँ के वैभवपूर्ण शासन की समाप्ति और औरंगजेब के पराभवपूर्ण शासन के आरम्भ से लेकर प्रथम स्वाधीनता संग्राम तक मानी जा सकती है।

राजनीतिक दृष्टि से यह काल मुगलों के शासन वैभव के चरमोत्कर्ष के साथ ही उत्तरोत्तर हास और पतन का काल है, शाहजहाँ के शासन में मुगल वैभव अपनी चरम सीमा पर था, ताजमहल और मयूर सिंहासन बन चुका था, देश में सामान्य रूप से शान्ति थी, शाहजहाँ के बाद सत्ता संघर्ष से अशान्ति का दौर शुरू हुआ, अंग्रेजों के जमने के बाद मुगल शासन का विलास और वैभवपूर्ण शासन का अन्त हो गया।

सामाजिक दृष्टि से रीतिकाल को घोर अधःपतन का युग कहा जाता है, सामन्तवादी प्रभाव चारों तरफ था, बादशाह, अमीर, उमराव और सामन्तों को खुश करने के लिए सेठ-साहूकार, व्यापारी, श्रमिक-किसान आदि का शोषण करते थे, अकाल, दुर्भिक्ष में भी आम जनता ही त्रस्त होती थी, चिकित्सा, शिक्षा से वंचित जनसाधारण भाग्यवादी हो चला था, रिश्वत का बोलबाला था, नारी के प्रति भोग-विलास की दृष्टि प्रधान थी, बहुविवाह प्रथा के बावजूद वेश्यागमन भी होता था, अवैध प्रेम सम्बन्धों में भी सभी वर्ग के लोग लिप्त थे, कुल मिलाकर समाज में भोग-विलास की प्रवृत्ति मुख्य थी।
सांस्कृतिक दृष्टि से यह युग पर्याप्त समृद्ध था, क्योंकि साहित्य और विविध कलाओं को राजाओं का संरक्षण प्राप्त था, साहित्यकार और कलाकारों को मुगल सम्राटों और देशी राजाओं से पर्याप्त सम्मान और धन भी मिलता था, सम्राट् और राजा स्वयं भी साहित्य कला प्रेमी थे, चित्रकला की कई शैलियों का विकास इसी युग में हुआ, संगीत में राजस्थान और ग्वालियर घरानों ने शास्त्रीय संगीत को नई ऊँचाइयाँ दीं, स्थापत्य

कला के उदाहरण के लिए ताजमहल और दीवाने खास ही पर्याप्त हैं, राजमहलों, छतरियों, मन्दिरों के निर्माण में स्थापत्य कला का विकास देखा जा सकता है।

संक्षेप में, देश में शान्तिपूर्ण वातावरण, सामंती परिवेश का वैभव और विलासपूर्ण परिवेश पाकर रीतिकाल में शृंगारी काव्य ही लिखा जा सकता था, जिसमें संस्कृत की समृद्ध काव्यशास्त्रीय परम्परा का भी योगदान कम नहीं था, अपने आचार्यत्व
का प्रदर्शन, रसिकों का मनोरंजन और राजदरबार से मान-सम्मान के साथ ही धन की लालसा में रीतिकालीन कवियों ने श्रृंगार और नायिका भेद की रचनाओं की रचना की।

डॉ. बच्चन सिंह ने रीतिकालीन कवियों को 'कविता का सौदागर' कहा है, जो अपने जीविकोपार्जन के लिए राजा, महाराजा, सामंत और जागीरदार के मनोनुकूल सचेत रूप से कविता लिख रहे थे, पद्माकर भी डंके की चोट पर कहते हैं-"आखर लगाय लेत लाखन की सामा हौं" बिहारी को प्रत्येक दोहे पर एक अशर्फी राजा जयसिंह से मिला करती थी, इस प्रकार रीतिकालीन कविता को भी कवियों की धनलिप्सा की कीमत चुकानी पड़ी है।

रीतिकाव्य के मूल स्रोत

हिन्दी रीतिकाव्य का मूल स्रोत पूर्णरूप से संस्कृत काव्य-शास्त्र है, प्रायः सभी रीतिकवियों ने अपने रीति निरूपण में संस्कृत काव्यशास्त्र के ग्रन्थों को आधार बनाया है, इनमें भरत का 'नाट्यशास्त्र', भामह का 'काव्यालंकार, दण्डी का 'काव्यादर्श', उद्भट का 'अलंकार सार संग्रह', केशव मिश्र का 'अलंकार शेखर', जयदेव का 'चन्द्रालोक', अप्पय दीक्षित का 'कुवलयानन्द', मम्मट का 'काव्य प्रकाश', आनन्दवर्धन का 'ध्वन्यालोक', भानुदत्त की 'रस तरंगिणी और 'रसमंजरी' तथा विश्वनाथ का 'साहित्य दर्पण' उल्लेखनीय हैं।

यही कारण है कि अनेक रीतिकवियों के रीति निरूपण लक्षण ग्रन्थ संस्कृत काव्यशास्त्र के ग्रन्थों के ब्रज भाषा अनुवाद से लगते हैं, इसके अलावा रीतिकाव्यों ने अपने पूर्ववर्ती आचार्य कवियों के लक्षण ग्रन्थों को भी अपने रीति निरूपण में आधार बनाया है, इस संदर्भ में कृपाराम की 'हित तरंगिणी', मोहनलाल मिश्र का 'शृंगार सागर', नन्ददास की 'रसमंजरी' तथा केशवदास की 'रसिक प्रिया' और 'कवि प्रिया' प्रमुख हैं।

रीतिबद्ध कवियों ने विशेषतः बिहारी ने सतसई रचना में गाथा सप्तशती, आर्यासप्तशती का प्रभाव ग्रहण किया है, रीतिमुक्त कविता की विषम प्रेमाभिव्यक्ति और निराशा-विषाद का स्रोत फारसी काव्य है, रीतिकाल में नाटकों की रचना का आधार भी संस्कृत नाटक है।

रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

रीतिकाल की दो प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं- 1) रीतिनिरूपण, (2) शृंगारिकता

(1) रीतिनिरूपण

सर्वांग निरूपण और विशिष्टांग निरूपण

इसके अन्तर्गत लक्षण ग्रन्थों की रचना हुई जिनका उद्देश्य काव्य रसिकों को कवि शिक्षा देने के साथ ही उनका मनोरंजन करना भी था, संस्कृत के काव्यशास्त्र ग्रन्थों को आधार बनाकर काव्यांगों के लक्षण दिए गए तथा सरल उदाहरण दिए गए, लक्षण ग्रन्थों के रचनाकार आचार्य कवि कहलाए, केशव, मतिराम, भिखारी दास, कृपाराम कुलपति, देव आदि आचार्य कवियों ने कवि शिक्षक के रूप में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

(2) शृंगारिकता

रीतिकालीन कविता का प्राण तत्व है – शृंगारिकता, इसमें नायक-नायिका भेद, नख-शिख वर्णन तथा नायक-नायिका हाव-भावों का विस्तार से वर्णन हुआ, घोर शृंगारिकता के कारण विलसितापूर्ण उन्मुक्त प्रेम का वर्णन हुआ जिसमें स्थूल और ऐन्द्रिक सौन्दर्य-दृष्टि प्रधान है, इससे रीतिकालीन कवियों के नारी के प्रति सामंतवादी दृष्टिकोण का भी पता चलता है, जहाँ नारी पुरुष के आकर्षण व भोग की वस्तु मात्र है, इसीलिए रीतिकाव्य को 'यौवन की रमणीयता का काव्य' की संज्ञा दी जाती है।

3. रीतिकाव्य की विशेषताएँ -

- काव्यत्व और आचार्यत्व का मिश्रण
- अलंकारिता के प्रति अत्यधिक-सजगता

प्रकृति-चित्रण

- प्रकृति सामान्यतः प्रेम–व्यापारों के प्रसंग में ही चित्रित की गई है।
- प्रकृति चित्रण उद्दीपन-विभाव के रूप में ही हुआ है।

भाव-सौन्दर्य के प्रसंगों की मार्मिक पहचान

- विरह, सौन्दर्य या मिलन के अनेक ऐसे प्रसंग हैं, जो यह सिद्ध करते है कि अभिव्यक्ति के चमत्कार के साथ-साथ अनुभूतिशीलता का भी प्रमाण कवि ने दिया।

प्रेमानुभूति की मांसलता

- सामंती दबाव के कारण प्रेम के नितांत दैहिक और उत्तेजक प्रसंगों एवं चित्रों को ही व्यक्त किया।

शृंगार और भक्ति का गठजोड़

- राधा-कृष्ण के बहाने अपनी भक्ति-भावना को भी स्थान दिया है।
- यहाँ भक्ति आवरण की तरह प्रयोग में लाई गई है।

वीरता और राज प्रशस्ति तथा नीति

- कुछ कवियों ने आश्रयदाताओं की वीरता का अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन किया।
- नीतिकाव्य की रचना भी हुई।

काव्य-संगठन

- शुद्ध कलात्मक कविता - दोहा, सवैया व कवित्त प्रधान छंद है।

रीतिकाल की अन्य प्रवृत्तियों में रीतिमुक्त कविता राजप्रशस्ति, भक्ति, नीति और ब्रज भाषा का प्रयोग उल्लेखनीय है, घनानन्द, आलम, बोधा जैसे कवियों ने रीति रूढ़ियों को त्यागकर रीतिमुक्त कविता लिखी जिसमें अन्तःस्फूर्ति की प्रेरणा थीं, रीतिमुक्त कविता ही रीतिकाल की शुद्ध कविता कही जा सकती है।

रीतिकाल के अधिकांश कवि किसी-न-किसी राजा के आश्रित थे, अतः उनके द्वारा अपनी कविता में राजप्रशस्ति करना स्वाभाविक था, यद्यपि भूषण इनमें विशिष्ट हैं, उनकी राजप्रशस्ति कोरी राजस्तुति नहीं बल्कि जातीय स्वाभिमान की प्रतीक है

रीतिकवियों की भक्ति भावना ग्रन्थ के मंगलाचरण, या उसकी समाप्ति पर आशीर्वचनों तक सीमित रह गई, लक्षण ग्रन्थों में भक्ति, शान्त रस, निर्वेद आदि संचारी भावों तथा अलंकार विवेचन में भी भक्ति के सरस उदाहरण दिए गए हैं, मूलतः भक्ति भावना गौण हो गई थी।

दरबारी जीवन से ऊबे हुए मन की शान्ति के लिए नीतिपरक काव्य रचनाएँ लिखी गईं, जो केवल उपदेशात्मक न थी बल्कि कवि के व्यक्तिगत अनुभवों का सार भी थीं।
ब्रज भाषा का पूर्ण उत्कर्ष रीतिकाल में हुआ, अतः रीतिकाल को ब्रज भाषा का स्वर्णयुग कहा जा सकता है, रीतिकालीन कवियों ने जनभाषा की ताजगी से पूर्ण टकसाली ब्रज भाषा का प्रयोग कर पूर्ण समर्थ काव्य भाषा के रूप में उसकी प्रतिष्ठा की।

रीतिकालीन कवियों का आचार्यत्व

रीतिकाल में दरबारी संस्कृति की पृष्ठभूमि और संस्कृत काव्यशास्त्र की समृद्ध परम्परा की प्रेरणा से रीतिनिरूपण की प्रवृत्ति व्यापक रूप से दिखाई पड़ती है, रीतिनिरूपण के अन्तर्गत काव्य के विभिन्न अंगों का विवेचन लक्षण ग्रन्थों में मिलता है, जिनके रचनाकार आचार्य कवि कहलाए, इन आचार्य कवियों ने अपनी प्रेरणा और अपने आचार्यत्व के प्रदर्शन के लिए अथवा अपने आश्रयदाता की इच्छा से लक्षण ग्रन्थों की रचना की।
रीतिकाल के लक्षण ग्रन्थों पर संस्कृत साहित्य के पाँच काव्य सम्प्रदायों (रस, अलंकार, ध्वनि, वक्रोक्ति और रीति) का प्रभाव किसी-न-किसी रूप में अवश्य पडा है, यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि रीतिकालीन आचार्य कवियों ने रस, अलंकार और ध्वनि सम्बन्धी लक्षण ग्रन्थ अधिक लिखे, रीति और वक्रोक्ति पर प्रायः नहीं लिखा गया।

रीतिकाल में आचार्य कवि की परम्परा का श्रीगणेश केशव द्वारा होता है, यद्यपि वे भक्ति काल की सीमा में आते हैं, किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि उनकी 'कविप्रिया' और 'रसिक प्रिया' ने रीतिकाल में रीतिनिरूपण की परम्परा का प्रवर्तन किया, केशव की रचनाओं में वस्तुतः हिन्दी काव्य शास्त्र की परम्परा का समग्र रूप दिखाई पड़ता है, रीतिशास्त्र पर प्राप्त सबसे पहला ग्रन्थ कृपाराम का "हिततरंगिणी' (1541ई.) माना गया है, जो भरत के नाट्यशास्त्र पर आधारित है, इसके बाद मोहनलाल मिश्र का 'शृंगार सागर' (1559 ई.) है, जिसमें

नायिका भेद विवेचन किया गया है, नन्ददास की 'रसमंजरी' भी इसी के आसपास की शास्त्रीय रचना है, आचार्यत्व की दृष्टि से केशव को छोडकर उपर्युक्त रचनाओं का विशेष महत्त्व नहीं है, अतः रीतिकालीन आचार्य कवि परम्परा के प्रवर्तक केशवदास ही सिद्ध होते हैं, जिनका अलंकार सम्प्रदाय से घनिष्ठ सम्बन्ध था।

अलंकारवादी आचार्य कवियों में जसवंत सिंह (भाषा भूषण), मतिराम (अलंकार पंचाशिका, ललित ललाम), भूषण (शिवपूजन भूषण) और पद्माकर विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, इसी प्रकार रसवादी आचार्य कवियों में तोष (सुधानिधि) और मतिराम (रसराज) ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया है, देव का रस विवेचन भावविलास', 'भवानी विलास' और 'काव्य रसायन' में दिखाई पड़ता है, देव ने रस के दो भेद लौकिक और अलौकिक दिखाकर रस विवेचन में अपनी मौलिकता प्रदर्शित करने का प्रयास किया है, अन्य कवियों में रसलीन (अगदर्पण, रस प्रबोध), रामसिंह (रस निवास), बेनी प्रवीन और ग्वाल का नाम भी लिया जा सकता है।

हिन्दी रीतिशास्त्र में ध्वनि के सर्वप्रथम आचार्य कुलपति मिश्र हैं, 'रस रहस्य' (1670 ई.) उनके प्रौढ़ और प्रामाणिक विचारों की रचना है, देव, सुरति मिश्र, कुमारमणि भट्ट, श्रीपति, सोमनाथ, भिखारीदास, प्रतापसाहि तथा रामदास के नाम उल्लेखनीय हैं, भिखारी दास का 'काव्य निर्णय' कवि की प्रौढ़ आचार्य प्रतिभा को प्रदर्शित करता है,
रीति निरूपण के अन्तर्गत लक्षण ग्रन्थों की परम्परा में रीतिकालीन आचार्य कवियों के आचार्यत्व पर विचार करें तो पाएंगे कि ये कवि काव्य आचार्य कम काव्य शिक्षक अधिक हैं, क्योंकि -

(1) इनमें मौलिकता का अंश बहुत कम है, इनके लक्षण ग्रन्थ संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों के अनुवाद है या उनकी छाया पर आधारित है।
(2) इन आचार्य कवियों का उद्देश्य सामान्य पाठकों को काव्यांगों का परिचय देना मात्र था, काव्यांगों का गहन विवेचन करना नहीं
(3) अपने आचार्यत्व का प्रदर्शन और सामान्य जनता और दरबारी सामन्तों के मनोरंजन के उद्देश्य के कारण भी इन आचार्य कवियों की रचनाओं का स्तर बहुत ऊँचा नहीं है।

इसके बावजूद यह मानना ही होगा कि संस्कृत की काव्यशास्त्र परम्परा को हिन्दी में लाने का श्रेय रीतिकालीन आचार्य कवियों को है, उनका आचार्यत्व संस्कृत के काव्याचार्यों के स्तर का भले ही न हो, सामान्य पाठकों के लिए वह उपयोगी, सरस और सुबोध है, वस्तुतः रीतिकाल के आचार्य कवि शास्त्रकार नहीं थे बल्कि रीतिकार थे, अतः उनका मूल्यांकन भी उसी आधार पर होना चाहिए।

हिन्दी के रीति आचार्यों का प्रमुख योगदान यही है कि उन्होंने भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा को ब्रज भाषा के माध्यम से सरस और सुबोध रूप में विकसित किया, निश्चय ही इससे हिन्दी काव्य को शास्त्र-चिन्तन की प्रौढ़ता प्राप्त हुई, दूसरा योगदान यह है कि इन आचार्य कवियों ने रस को ध्वनि के प्रभुत्व से मुक्त कर रसवाद की पूर्ण प्रतिष्ठा की फलतः पूरी दो शताब्दियों तक रसराज शृंगार की अविच्छिन्न धारा हिन्दी काव्य में प्रवाहित होती रही।

रीतिमुक्त काव्य धारा

साहित्येतिहास में मुख्य धारा के साथ कई अन्य धाराएं भी चलती हैं, जो अपनी प्राणवत्ता के कारण मुख्य धारा से भी अधिक महत्त्वपूर्ण बन जाती है, रीतिकाल में रीति मुक्त काव्य धारा के कवियों ने रीति-रूढ़ियों की उपेक्षा कर स्वछन्द मार्ग अपनाया जो अन्तःप्रेरणा से प्रेरित था, इसीलिए इन कवियों को रीतिमुक्त कहा गया, रीतिमुक्त काव्य धारा का स्वछन्द काव्य धारा भी कहा गया है।

घनानन्द, आलम, बोधा, ठाकुर, द्विजदेव आदि रीतिकाल की स्वछन्द काव्य धारा के उल्लेखनीय कवि हैं, इनमें घनानन्द का स्थान सर्वोच्च है, घनानन्द और ठाकुर दोनों ने रीतिबद्ध कविता को खेल कहते हुए व्यंग्य किया है -

लोग हैं लागि कवित्त बनावत
मोहि तो मेरो कवित्त बनावत ।
डेल सो बनाय मेलत सभा के बीच
लोगन कवित्त कीबो खेल करि जानो है।

रीतिमुक्त काव्य की पहली विशेषता यही है कि यह रीतिबद्ध न होकर आन्तरिक अनुभूतियों का काव्य है, जिसमें अन्तःस्फूर्ति भावों का स्वाभाविक प्रवाह है, दूसरी विशेषता है प्रेम का विशिष्ट वर्णन, यद्यपि शृंगार सम्पूर्ण रीतिकालीन काव्य की मुख्य विषय वस्तु है, किन्तु रीतिमुक्त में प्रेम वर्णन विशिष्ट है, वह रीतिबद्ध कवियों की तरह न तो स्थूल है न ऐन्द्रिक, बल्कि रीतिबद्ध कवियों का प्रेम कीड़ापरक है,तो रीतिमुक्त कवियों का प्रेम पीड़ापरक वे 'नेह की पीर' के कवि हैं, उनके यहाँ विषम-प्रेम की अनुभूतियाँ आत्माभिव्यक्ति शैली में व्यक्त हुई हैं, इसलिए घनानन्द जैसे कवि के प्रेम वर्णन में वैयक्तिकता प्रधान हो गई है।

दूसरी बात रीतिमुक्त कवियों ने प्रेम के उदात्त स्वरूप का वर्णन किया है, जहाँ वियोग में भी प्रेमी अपनी प्रेमिका के प्रति समर्पित है, इसी क्रम में प्रेमजनित सूक्ष्म अन्तर्दशाओं का भी अत्यन्त मार्मिक चित्रण हुआ है।

रीतिबद्ध कवियों की तरह रीतिमुक्त कवियों ने भी ब्रज भाषा का प्रयोग किया है, किन्तु रीतिमुक्त कवियों की भाषा में वक्रता का जो वैभव है, वह अन्यत्र दुर्लभ है, भावानुकूल चलने का पूर्ण कौशल व सामर्थ्य रीतिमुक्त कवियों की भाषा में दिखाई पड़ता है, दरबारी परिवेश के प्रभाव के कारण रीति कवियों पर फारसी भाषा और उसकी काव्य प्रवृत्तियों का भी स्पष्ट प्रभाव पड़ा है, विषम प्रेम की अभिव्यक्ति और वियोग की प्रधानता फारसी काव्य की ही देन है, घनानन्द की 'इश्कलता में फारसी शब्दों की भरमार है, उन्हीं की 'वियोग बेलि' फारसी छन्द में लिखी गई है, इसी प्रकार बोधा की कविता पर भी फारसी का स्पष्ट प्रभाव है, जिसके कारण उनकी भाषा बोझिल और शैली असंयत हो गयी है, इसके अतिरिक्त रीतिमुक्त कवियों ने लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग करते हुए ब्रज भाषा को जनभाषा की ताजगी से पूर्ण किया है।

दरबारी संस्कृति के परिवेश में और रीतिबद्ध कविता की मुख्य धारा के विपरीत रीतिमुक्त कवियों द्वारा स्वछन्द काव्य की रचना करना सचमुच एक अद्भुत घटना है, आलोचकों ने रीतिमुक्त काव्य को 'हिन्दी में शुद्ध कविता की पहली खोज' यदि कहा है, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

रीतिबद्ध कवि

रीतिकाल को तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है -

1. रीतिबद्ध काव्य
2. रीतिसिद्ध काव्य
3. रीतिमुक्त काव्य

- रीतिबद्ध एवं रीतिमुक्त काव्य धारा आचार्य शुक्ल द्वारा विभाजित की गई, तीसरा भेद रीतिसिद्ध काव्यधारा आचार्य विश्वनाथ द्वारा किया गया।
- जिन्होंने लक्षण ग्रंथों की परिपाटी पर काव्यांगों का लक्षण एवं उदाहरण देते हुए रीति ग्रंथों की रचना की, रीतिबद्ध कवि कहलाए।
- जिन्होंने कोई रीतिग्रंथ नहीं लिखा परन्तु रीति की जानकारी का उपयोग अपने काव्य ग्रंथों में किया, रीतिसिद्ध कवि कहलाए।
- रीतिकाल के वे कवि जो रीति के बन्धन से पूर्णतः मुक्त हैं। वे रीतिमुक्त कवि कहे जाते हैं।
- रीतिसम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य वामन ने 'विशिष्ट पद रचना रीति': कहा लेकिन हिन्दी में रीति ग्रंथ का तात्पर्य काव्यांग निरूपण करने वाले लक्षण ग्रंथों से लिया जाता है।

रीतिबद्ध कवि (आचार्य कवि)

- केशवदास (1555-1617 ई. संवत् 1612-1674) :
- आचार्य केशव 'रीतिकाल का प्रवर्तक' कहलाने के अधिकारी है।
- ये राजा रूद्रप्रताप के आश्रित सनाढ्य ब्राह्मण पं. कृष्णदत्त के पौत्र और राजा मधुकर शाह से सम्मानित पं. काशीनाथ के पुत्र थे तथा ओरछा नरेश इन्द्रजीत सिंह इन्हें गुरु मानते थे।
- शुक्ल ने इनका समयकाल संवत् 1612-1674 वि.सं. के आसपास माना है।
- इनके द्वारा रचित ग्रंथ हैं – रसिकप्रिया (1591), रामचन्द्रिका (1601), कविप्रिया (1601), रतनबावनी (1607 ई. के लगभग) वीरसिंहदेवचरित (1607), विज्ञानगीता (1610), जहाँगीर जसचन्द्रिका (1612), नखशिख और छन्दमाला।
- केशव अलंकारवादी आचार्य थे। इन्हें शुक्ल ने 'कठिन काव्य का प्रेत' कहा। इन्होंने ब्रज भाषा में रचना की। यद्यपि ये संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे तथापि उनकी भाषा संस्कृतनिष्ठ हिन्दी है जिसमें बुन्देली, अवधी और
- अरबी-फारसी शब्दों का समावेश है।
- अधिक छन्द प्रयोग के लिए 'रामचन्द्रिका' को छन्दों का अजायबघर कहा जाता है। (जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरस सरस सुवृत्त । भूषण बिनु न बिराजई, कविता बनिता मित्त ।।

(कविप्रिया)

कवि को देन न चहै विदाई। पूछे केशव की कविताई।।

- आचार्य शुक्ल - "केशव को कवि हृदय नहीं मिला था, उनमें वह सहृदयता और भावुकता न थी, जो एक कवि में होनी चाहिए।' यथा -
  कै स्रोनित कलित कपाल यह किल कपालिक काल को (उपमा का नीरस क्लिष्ट प्रयोग)।
  शुक्ल के अनुसार – 'केशव केवल उक्ति वैचित्र्य और शब्द क्रीडा के प्रेमी थे। जीवन के नाना गम्भीर और मार्मिक पक्षों पर उनकी दृष्टि नहीं थी। प्रबन्ध पटुता उनमें कुछ भी न थी।'
- डॉ. शम्भूनाथ सिंह – 'रामचन्द्रिका में न तो किसी महान् आदर्श की स्थापना हो सकी है और न ही उसमें ऐसी
- महत् प्रेरणा ही दिखाई देती है, जिससे अभिभूत होकर कवि ने उसकी रचना की हो।'
- केशव को 'रामचन्द्रिका' में सर्वाधिक सफलता संवाद-योजना में मिली है।
- शुक्ल –'इन संवादों में पात्रों के अनुकूल क्रोध, उत्साह आदि की व्यंजना भी सुन्दर है तथा वाक्पटुता और राजनीति
- के दावपेंच का आभास भी प्रभावपूर्ण है।' केशवदास की संवाद योजना के चयनित उदाहरण -
- कैसे बंधायो ?

जो सुन्दरि तेरी छुई दृग सोबत पातक लेख्यो

कौन को सुत? बालि के! वह कौन बालि! न जानिए!

कांख चापि तुम्हें जो सागर सात न्हात बखानिए।।

(व्यंजना सौन्दर्य)

- देहि अंगदराज तो को मारि वानरराज को (राजनीति) यह कौन को दल देखिए, यह राम को प्रभु पेखिए। यह कौन राम न जानिए, यह ताडका जिन मारिए ।।

(नाटकीयता)

मातु कहाँ नृप तात? गए सुरलोकहि
क्यों? सुत शोक लिए। (स्वाभाविकता)

- केशव की संवाद योजना में पात्रानुकूलता, व्यंजना, संक्षिप्तता, राजनीति, सरल भाषा, नाटकीयता, स्वाभाविकता थी।

- कहा जाता है कि केशवदास ने अपनी शिष्या 'रायप्रवीन' को काव्यशास्त्र का ज्ञान कराने के लिए कविप्रिया, रसिकप्रिया और छन्दमाला तीनों रीतिग्रन्थों का प्रणयन किया।

- रसिकप्रिया में सोलह प्रकाश (अध्याय) हैं जिसमें शृंगार रस के भेद, नायक-नायिका भेद, दर्शन प्रकार, मिलन स्थान, वियोग श्रृंगार, कामदशा, मान, मानमोचन उपाय, सखी भेद आदि हैं।
- कविप्रिया में सोलह 'प्रभाव' (अध्याय) हैं जिसमें गणेश वंदना, नृपवंश, स्वयं का वंश, काव्य दोष, अलंकार भेद, नखशिख वर्णन, चित्रकाव्य आदि वर्णित हैं।
- छन्दमाला के प्रथम भाग में 77 वर्णवृत्तों (छंदों) तथा द्वितीय भाग में 26 मात्रावृत्त के लक्षण उदाहरण सहित प्रस्तुत
- है।
- 'कविप्रिया' में कवि के आश्रयदाता इन्द्रजीतसिंह की प्रशस्ति सम्बन्धी अनेक छंद समाविष्ट है।
- डॉ. नगेन्द्र –'भक्तिकाव्य की वेगवती धारा को रीतिपथ पर मोड़ने के लिए एक प्रभावशाली व्यक्तित्व की आवश्यकता थी, प्रतिभा से पुष्ट यह व्यक्तित्व केशव का था।'

चिन्तामणि त्रिपाठी :

- एक जनश्रुति के अनुसार तिकवांपुर निवासी रत्नाकर त्रिपाठी के पुत्र तथा मतिराम, भूषण और जटाशंकर के भाई थे।
- डॉ. नगेन्द्र के अनुसार ये उत्तरप्रदेश के जिला फतेहपुर में स्थित कोडा जहानाबाद के रहने वाले और राजा हम्मीर के कहने पर भूषण और मतिराम के साथ तिकवांपुर आ बसे। ये शाहजी भोंसले, शाहजहा और दाराशिकोह के आश्रय में रहे।
- इनका जन्मकाल 1600 ई. के लगभग तथा मृत्युकाल 1680-85 के आसपास ठहरता है।
- इनके रचित नौ ग्रंथ बताए जाते हैं- रसविलास, छन्द विचार, शृंगारमंजरी, कविकुल कल्पतरू, कृष्णचरित। काव्यविवेक, काव्यप्रकाश, कवित्तविचार और रामायण | आज प्रथम पाँच ही उपलब्ध होते हैं।

आँखिन मुँदिवे के मिस आनि, अचानक पीठि उरोज लगावै।

कैहूँ कहूँ मुसकाय चितै, अगराय अनुपम अंग दिखावै।।

नाह छुई छल सो छतियाँ, हँसि भौहं चढाय अनंद बढ़ावै।

जोवन के मद मदमत्ततिया, हित सों पति को नित चित चुरावै ।।

- इनकी भाषा विशुद्ध ब्रजभाषा थी।
- . आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने चिंतामणि को रीतिकाल का प्रवर्तक माना है।
- कुलपति मिश्र :

- ये आगरा निवासी माथुर चौबे परशुराम के पुत्र थे तथा जयपुर के कूर्मवंशीय महाराज जयसिंह के पुत्र महाराज रामसिंह के आश्रय में रहते थे। प्रसिद्ध कवि बिहारी इनके मामा थे।
- इनका कविताकाल संवत् 1724 और 1743 के बीच ठहरता है।
- इनके 'रसरहस्य' का रचनाकाल कार्तिक कृष्ण 11 संवत् 1727 है, जो काव्य प्रकाश (मम्मट) का छायानुवाद है।
- संग्राम सार, दुर्गाभक्तिचन्द्रिका, मुक्तितरंगिणी (सं. 1743), नखशिख, द्रोणपर्व (स. 1737) इनके अन्य ग्रंथ कहे जाते हैं।

कुमारमणि :

- चिन्तामणि की परम्परा में कुलपति मिश्र एवं आगे कुमारमणि ध्वनिवादी आचार्य हुए।
- इनका जन्म 1665 ई. के आसपास ठहरता है। 'रसिकरंजन' और 'रसिकरसाल' (सं. 1803) इनके दो ग्रंथ मिलते हैं।

देव (देवदत्त) :

- इनका जन्म इटावा (उत्तरप्रदेश) के सनाढ्य ब्राह्मण परिवार में हुआ।
- 'भावविलास' के अनुसार इनका जन्म सं. 1730 निश्चित होता है।
- कवि देव रचित ग्रंथों की संख्या 52 कोई 72 बतलाते हैं किन्तु आज उनमें 15 ही उपलब्ध होते हैं- भावविलास, अष्टयाम, भवानीविलास, प्रेमतरंग, कुशलविलास, जातिविलास, देवचरित्र, रसविलास, प्रेमचन्द्रिका, सुजानविनोद, काव्यरसायन (शब्दरसायन) सुखसागर तरंग, रागरत्नाकर, देवशतक, देवमाया प्रपंच।
- अपने जीवनकाल में ये कई आश्रयदाताओं के पास रहे-आजमशाह, चर्खापति राजा सीताराम के भतीजे भवानीदत्त वैश्य, राजा कुशलसिंह, सेठ भोगीलाल, इटावा के निकटवर्ती डेयोडिया के राजा उद्योतसिंह, दिल्ली के रईस पातीराम के पुत्र सुजानमणि, पिहानी अधिपात अली अकबर खाँ।
- इनकी मृत्यु अनुमानतः 1767 ई. (संवत् 1824) के आसपास हुई।
- 'प्रेमचन्द्रिका' में विषय वासना के तिरस्कार, प्रेम के माहात्म्य और उसके विभिन्न रूपों का वर्णन किया गया है।
- 'रागरत्नाकर' संगीतविषयक, 'देवशतक' अध्यात्म संबंधित, तथा 'देवचरित्र' कृष्ण जीवन सम्बद्ध काव्य हैं।
- भावविलास (1689 ई.) के अन्तर्गत रस-सामग्री, रस भेद, 39 अलंकारों का वर्णन है।
- 'शब्दरसायन' में काव्य स्वरूप, शब्द शक्ति, नवरस, नायक-नायिका भेद, रीति, गुण, वृति, अलंकार और पिंगल का विवेचन है।

'अष्टयाम' में भोगविलास की दिनचर्या है।

अभिधा उत्तम काव्य है, मध्य लक्षणा लीन।
अधम व्यंजना रस बिरस, उलटी कहत नवीन ।।

झहरि झहरि झीनी बूंद हैं परति मानों,

घहरि घहरि घटा घेरी है गगन में।
आनि कह्यो स्याम मो सौ 'चलौ झूलिबो को आज'
फूली न समानी भई ऐसी हौं मगन मैं ।।
चाहत उठ्योई उठि गई सो निगोरी नींद,
सोय गए भाग मेरे जानि या जगन में।
आँख खोलि देखौं तौ न घन हैं, न घनश्याम,
वेई छाई बूंदे मेरे आँसु वै दृगन में।।

सोमनाथ :

- सोमनाथ अथवा शशिनाथ माथुर ब्राह्मण नीलकण्ठ के पुत्र थे तथा भरतपुर के महाराजा बदनसिंह के कनिष्ठ पुत्र महाराजा प्रतापसिंह के आश्रय में रहते थे। इनका कविताकाल 1725-1760 ई. में ठहरता है।
- 'रस पीयूषनिधि' (1737) में पिंगल, काव्य लक्षण, प्रयोजन, भेद, शब्दशक्ति, ध्वनि, भाव, रस, रीति, गुण, दोष निरूपित हैं।
- कृष्ण लीलावती पंचाध्यायी (स.1800), सुजानविलास (सिंहासन बत्तीसी, सं. 1807), माधवविनोद नाटक (सं. 1809) के अनुसार शुक्ल ने इनका कविताकाल सं. 1790 से 1810 तक ठहराया।
- 'शृंगारविलास', भी इनका नायिका भेद, रस वर्णित ग्रंथ है।

दास (भिखारी दास)

- ये प्रतापगढ़ (अवध) के पास ट्योंगा गाँव के रहने वाले श्रीवास्तव कायस्थ थे। इनके पिता कृपालदास पितामह वीरभानु थे, इनके पुत्र अवधेश लाल और पौत्र गौरीशंकर थे।
- ये प्रतापगढ़ के सोमवंशी राजा पृथ्वीसिंह के भाई बाबू हिन्दूपति सिंह के आश्रय में थे। शुक्ल ने इनका कविता काल संवत् 1785 से 1807 तक माना है। रससारांश (सं 1789), छन्दोर्णव पिंगल (1799), काव्यनिर्णय (1803), शृंगार निर्णय (1807), नामप्रकाश कोश (1795), विष्णुपुराण भाषा (दोहा-चौपाई में), छंद प्रकाश शतरंज शतिका, अमरप्रकाश (संस्कृत अमरकोष भाषा में) इनके द्वारा लिखित ग्रंथ हैं।
- काव्यांग निरूपण में दासजी को सर्वप्रधान स्थान दिया जाता है, श्रीपति से इन्होंने बहुत कुछ लिया है।
- इन्होंने ब्रजभाषा काव्य की प्रधान विशेषता 'तुक' को काव्यांग के रूप में ग्रहण कर, कई नवीन हिन्दी छन्दों का निरूपण किया।

वाही धरी ते न सान रहै, न गुमान रहै, न रहै सुधराई।

दास न लाज को साज रहै न रहै तनकौ घरकाज की घाई ।।

ह्याँ दिखसाध निवारे रहौ तब ही लौ भटू सब भाँति भलाई।

देखत कान्है न चेत रहै, नहिं चित्त रहै, न रहै चतुराई।।

रसिक गोविन्द (1743 ई.-1838) :

- इनका जन्म 1743 ई. के आसपास राजस्थान के जयपुर नगर के नाटाणी गोत्रीय खण्डेलवाल वैश्य परिवार में हुआ। इनके पिता का नाम शालिग्राम, माता का नाम गुमाना था।
- ये वृन्दावन आकर निम्बार्क सम्प्रदाय की हरिव्यासीय गद्दी की परम्परा के सर्वेश्वर शरण देवाचार्य के शिष्य बनकर रहे।
- 'रामायण सूचनिका' के 33 दोहों में अक्षरक्रम व रामायण कथा है।
- 'रसिक गोविन्दनंदघन' (1801) चार प्रबन्धों में विभक्त सात-आठ सौ पृष्ठों का वृहत् रीतिग्रंथ है।
- 'लछि मन चन्द्रिका', 'अष्टदेशभाषा', 'पिंगल', 'समयप्रबन्ध', 'कलियुग रासो', 'रसिक गोविन्द', 'युगलरस माधुरी' एवं 'पदावली' इनके अन्य ग्रंथ हैं।

उपमेय को जहाँ साधारण धर्मकवि कै।
अरू उपमान की सादृस्य कीजै सो उपमा।।
जाकी सादृश्यता दीजै, सो उपमान।
जाकौं सादृस्यता दीजै सो उपमेय ।।
दोऊ ओर की सादृस्यता दिखावै सो वाचक पद ।।
दोऊन की लक्ष्मी (लक्ष्य!) की जो सादृस्यता सो साधारण धर्म।।
ये चारयौं जहां होइ सोइ पूर्णोपमा।।
इनमें ते इक बिना, द्वै बिना, तीनबिना होइ सो लुप्तोपमा।।

(गोविन्दानंदघन)

प्रतापसाहि :

- ये बुन्देलखण्ड निवासी रतनेस बंदीजन के पुत्र थे तथा चरखारी नरेश महाराज विक्रमसिंह के आश्रय में रहते थे। ठा.
- शिवसिंह सेंगर के अनुसार ये पन्ना के महाराज छत्रसाल के आश्रय में रहते थे।
- व्यंग्यार्थ कौमुदी (सं 1882), काव्यविलास (सं 1866) ग्रन्थों के अतिरिक्त मतिराम के 'रसराज' की टीका (सं 1896), रत्नचन्द्रिका (बिहारी के 'सतसई' की टीका (सं 1896) बलभद्र के 'नखशिख' की टीका उपलब्ध है।

- जयसिंह प्रकाश (सं 1852), शृंगारमंजरी (सं 1889), शृंगारशिरोमणि (सं 1894), अलंकार चिंतामणि (सं 1894) काव्यविनोद (सं 1896), जुगल नखशिख इनके अन्य ग्रंथ है।

सीख सिखाई न मानति है बरहू बस संग सखीन के आवै।

खेलत खेल नये जल में बिन काम वृथा कत जाम बितावै।।

छोडि के साथ सहेलिन को रहिकै कहि कौन सवाद दिखावै।

कौन परी यह बानि अरी नित नीर भरी गगरी ढरकावै।।

अमीरदास :

- ये गुरु रामदास के शिष्य और उदासी सम्प्रदाय में दीक्षित होने वाले तथा निर्गुणधारा का प्रतिनिधित्व करने वाले आचार्य थे जिन्होंने रीति-निरूपण किया। बाद में इन्होंने अमृतसर के कटरा लोहगढ़ में अपनी गद्दी स्थापित की थी।
- इनका जन्म 1783 ई. के आसपास व मृत्यु 1868 ई. के लगभग हुई पटियाला के राजदरबार से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध था।
- इनके द्वारा रचित 12 ग्रंथ बताए जाते हैं जिनमें सभामण्डन (1827), वृतचन्द्रोदय (1830), ब्रज विलास सतसई (1832), श्रीकृष्ण साहित्यसिन्धु (1833), शेरसिंह प्रकाश (1840), वैद्यकल्प तरू (1850) तथा अश्वसंहिता प्रकाश (1862) ही आज उपलब्ध हैं। • फागपचीसी, ग्रीष्मविलास, भागवत रत्नाकर, दूषण उल्लास, अमीरप्रकाश ग्रन्थों का उल्लेख प्राप्त होता है।
- **'वैद्यकल्पतरू', और 'अश्वसंहिता प्रकाश में क्रमशः मानव व पशु चिकित्सा वर्णित है।**
- ब्रजविलास सतसई में श्रृंगार रस के विभिन्न अंगों के अतिरिक्त भक्ति, नीति के 701 दोहे हैं। शेष ग्रन्थों में काव्यशास्त्र निरूपण विषय वर्णित है।

ग्वाल कवि (सन् 1791-1868) :

- इनका जन्म 1791 ई. में सेवाराम ब्रह्मभट्ट (बंदीजन) के यहाँ वृन्दावन में हुआ तथा बाद में ये मथुरा आकर बस गए।
- आरम्भिक शिक्षा राधावल्लभीय गोस्वामी दयालाल से मिली, काव्यशास्त्र का अध्ययन काशी में (ननिहाल) कवि खुशहालराय से किया।
- अपने जीवन में ये लाहौर, नामा, पटियाला, टोंक, अमृतसर और रामपुर के राजा नवाबों के आश्रय में रहे, 1868 ई. में रामपुर में इनका स्वर्गवास हुआ।
- 'हम्मीरहठ' और 'विजयविनोद' लक्षण ग्रंथ हैं, जो वीररसात्मक प्रबन्ध रचनाएँ कही जा सकती है।
- 'रसिकानन्द', 'कविदर्पण', 'बलवीर विनोद', 'साहित्यानन्द', 'प्रस्तार-प्रकाश', 'नेह निर्वाह दंसीबीसा', ग्वाल कवि के काव्यांग लक्षण ग्रंथ है।

- 'भक्तभावन' (सन् 1860 से पूर्व ग्वाल की सभी भक्ति, शृंगार, शान्त, नीति संबंधी रचनाओं का संकलन) 'कुब्जाष्टक', _ 'गुरुपचास', 'निम्बार्कस्वाम्यष्टक' और 'कवि हृदयविनोद' मुक्तक रचनाएँ है।
- 'इश्कलहरदयराव' मीर हसन दलहवी की 'सिहर उल-बयान' नामक उर्दू-मसनयी का ब्रजभाषा में अनुवाद है।
- इस प्रकार इनका कविताकाल 1822-1861 ई. के बीच है।

दिया हैं खुदा ने खूब खूसी करो ग्वाल कवि,

खाव-पियो, देब लेब, यहीं कर रहा जाना है।

राजा राव उमराव केते बादशाह भये,

कहाँ ते कहाँ को गये, लग्यो न ठिकाना है

ऐसी जिंदगानी के भरोसे पै गुमान ऐसे,

देस देस घूमि घूमि मन बहलाना है।

आयै परवाना पर चलै ना बहाना, यहाँ नेकी कर जाना, फेर आना है न जाना है।।

तोष या तोषनिधि :

- ये शृंगवेरपुर (सिंगरोर, जिला-इलाहाबाद) के रहने वाले चतुर्भुज शुक्ल के पुत्र थे। • 'सुधानिधि (सं 1791) रसभेद और भावभेद का ग्रंथ है।
- खोज में विनयशतक और नखशिख दो पुस्तकें और मिली है।

रसलीन :

- इनका नाम सैयद गुलाम नबी तथा पिता का नाम सैयद मुहम्मद बाकर था। इनके मामा मीर अब्दुल जमील और गुरु मीर तुफैल अहमद अच्छे कवि थे।
- इनका जन्म सन् 1699 में उत्तरप्रदेश के जिला हरदोई के प्रसिद्ध साहित्य केन्द्र बिलग्राम में तथा मृत्यु 1750 ई. में रामचेतोन के युद्ध में हुई। ये रसवादी कवि थे। • अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'अंगदर्पण' (1737) में अंगों का उपमा, उत्प्रेक्षा से युक्त चमत्कारपूर्ण वर्णन है।

यथासंख्या अलंकार :

अमिय, हलाहल, मदभरे, सेत, स्याम, रतनार।
जियत, मरत, झुकि झुकि परत, जेहि चितवत इक बार।।

- रसबोध (सन् 1742) में रस, भाव, नायिका भेद, षट्ऋतु, बारहमासा आदि प्रसंग के 1955 दोहे हैं।
- कवित्त-सवैयों, कतिपय लोकगीतों के अतिरिक्त फारसी भाषा में भी इन्होंने रचनाएँ लिखी।

पद्माकर भट्ट (सं 1810-1890) :

- ये तैलंग ब्राह्मण थे। इनके पिता मोहनलाल भट्ट का जन्म बाँदा में हुआ तथा इनका जन्म सं 1810 में मध्यप्रदेश के सागर नामक स्थान पर हुआ।
- ये सागरनरेश रघुनाथराव अप्पा, महाराज जैतपुर, सुमरा निवासी नोने अर्जुनसिंह, दतिया नरेश महाराज पारीक्षित, शुजाउद्दौला के जागीरदार गोसाई अनूपगिरि (उपनाम हिम्मतबहादुर) सितारा नरेश रघुनाथ राव, जयपुर नरेश, प्रतापसिंह व उनके पुत्र जगतसिंह, उदयपुर नरेश भीमसिंह, ग्वालियर नरेश दौलतराव सिन्धिया के आश्रय में रहे।
- इन्होंने सं. 1890 में कानपुर गंगातट पर शरीर छोडा।
- मौलिक ग्रंथों में 'पद्माभरण' और 'जगद्विनोद रीतिग्रंथ है।
- इनकी 'हिम्मत बहादुर विरूदावली वीररस युक्त पुस्तक है।
- प्रबोध पचासा, गंगालहरी, प्रतापसिंह विरूदावली और कलिपच्चीसी ग्रंथों के अतिरिक्त अनेक स्फुट छंद मिलते हैं।
- वाल्मीकि रामायण, हितोपदेश आदि संस्कृत ग्रंथों के अनुवाद भी इन्होंने किए थे।
- 'पद्माभरण' में अलंकार, जगद्विनोद में नवरस विवेचन किया।

फागु की भीर, अभीरिन में गहि गोविन्द लै गई भीतर गौरी भाई करी मन की पद्माकर, ऊपर नाई अबीर की झौरी।

छीनि पितंबर कम्मर तें सु बिदा दई मीडि कपोलन रोरी।

नैन नचाय कही मुसुकाय, 'लला फिर आइयो खेलन होरी।।'

बेनी 'प्रवीन' :

- ये लखनऊ के वाजपेयी ब्राह्मण थे और लखनऊ के बादशाह गाजीउद्दीन हैदर के दीवान राजा दयाकृष्ण कायस्थ के पुत्र नवलकृष्ण उर्फ ललनजी के आश्रय में रहते थे, जिनकी आज्ञा से सं 1874 में इन्होंने 'नवरसतरंग' नामक ग्रंथ लिखा। केवल ये ही ग्रंथ आज उपलब्ध हैं।

'शृंगारभूषण' तथा 'नानारावप्रकाश' इनके अन्य ग्रंथ कहे जाते हैं।

- बेनी बंदीजन (भँडोवावाले) ने इन्हें 'प्रवीन' की उपाधि दी।

सुखदेव मिश्र :

- इनका कविताकाल सन् 1633-1703 है।
- वृत्त विचार, अध्यात्मप्रकाश, रसार्णव, रसरत्नाकर इनके ग्रंथ हैं।
- छन्दविचार, फाजिल अलिप्रकाश, शृंगारलता ग्रंथ अप्राप्य हैं।

याकूब खाँ :

"रसभूषण' के सिवाय न तो इनका कोई ग्रन्थ मिलता है और न ही इनके जीवन-वृत्त के विषय में सामग्री उपलब्ध है।

महाराज रामसिंह :

- ये नरवरगढ़ नरेश छत्रसिंह के पुत्र थे।
- 'जुगलविलास' (1779) देव के 'अष्टयाम' के समान नायक-नायिका की विलासपूर्ण दिनचर्या का वर्णन है।
- 'अलंकार दर्पण' (1778) में कुवलयानन्द के आधार पर अलंकार विवेचन है।
- 'रसशिरोमणि' (1773) रसमंजरी के आधार पर रचित है। ।
- 'रसनिवास' (1782) में रसमंजरी, साहित्यदर्पण, रसिकप्रिया आदि के आधार पर वर्णन है।

चन्द्रशेखर वाजपेयी (सन् 1798-1885) : /

- इनकी रचना पटियाला-नरेश महाराज नरेन्द्र सिंह के आश्रय में हुई।
- इनके ग्रंथों में हम्मीर हठ, नखशिख, वृन्दावनशतक, गुरूपंचाशिताजक, माधवी बसन्त, हरिमानस विलास है।
- 'रसिकविनोद' (1846) में नवरस का विवेचन किया गया है

मतिराम :

- इनका जन्म 1604 ई. के लगभग उत्तरप्रदेश के जिला फतेहपुर के बनपुर नामक स्थान पर हुआ। शुक्लानुसार ये चिंतामणि, भूषण के भाई तथा तिकवाँपुर में सं 1674 को पैदा हुए।
- इनके पिता का नाम विश्वनाथ त्रिपाठी था।
- 'फूलमंजरी' की रचना जहाँगीर की आज्ञा से सन् 1619 में की।
- 'ललितलाम' (1661-68) की रचना भावसिंह के आश्रय में की।
- 'सतसई (1681) की रचना भोगनाथ के आश्रय में की।
- 'अलंकारपंचाशिका (1690) की रचना ज्ञानचन्द के आश्रय में की।
- 'वृत्तकौमुदी' (1701 ई.) की रचना स्वरूपसिंह बुंदेला के आश्रय में की।
- "रसराज' (1633–43) में शृंगार रस और आलम्बन, नायक-नायिका भेद का विवेचन किया गया है। जिसमें भानुदत्त की 'रसमंजरी', रहीम के 'बरवै नायिका भेद' तथा 'साहित्यदर्पण' का आश्रय लिया गया।
- 'ललितललाम' में 100 अर्थाकारों के लक्षण-उदाहरण है।
- 'छन्दसारसंग्रह' अथवा 'वृत्तकौमुदी' छन्द विवेचन संबंधी ग्रंथ हैं। जिसके पाँच प्रकाशों और दण्डकों का सोदाहरण विवेचन किया गया है। उदाहरण आश्रयदाता की प्रशस्ति के हैं। कालिदास त्रिवेदी
- ये अन्तर्वेद के रहने वाले तथा सं. 1745 में गोलकुण्डे की लड़ाई में औरगजेब की सेना में किसी राजा के साथ गए थे।
- सं 1749 में जम्बूनगर के शासक जालिम जोगजीत के आश्रय में 'वर-वधू-विनोद' लिखा। यह नायिका भेद और नखशिख की पुस्तक है।

- 'जंजीराबंद' बत्तीस कवित्तों की छोटी-सी पुस्तक है।
- 'राधा माधव बुधमिलन-विनोद' कोई ग्रंथ खोज में मिला।
- 'कालिदास हजारा' इनका एक बड़ा प्रसिद्ध संग्रह है।

महाराज जसवन्तसिंह (सं 1683-1745) :

- ये महाराज गजसिंह के दूसरे पुत्र और उनकी मृत्यु सं 1695 को गद्दी पर बैठे। (मारवाड़ नरेश)
- शाहजहाँ और औरंगजेब के शासनकाल में राजनीतिक गतिविधियों में विशेष रूप से सक्रिय रहे। शिवाजी के हाथों शायस्ता खाँ की जो दुर्गति हुई उसमें उन्हीं का हाथ था।
- इनके स्वयं के आश्रय में भी कई कवि और पण्डित रहते थे। इन्होंने स्वयं भी 'भाषाभूषण' नामक अलंकार ग्रन्थ के अतिरिक्त अपरोक्ष सिद्धान्त, अनुभवप्रकाश, आनन्दविलास, सिद्धान्तबोध और सिद्धान्तसार नामक पाँच–अध्यात्मविषयक ग्रन्थों की रचना की।
- 'प्रबोध-चन्द्रोदय' नाटक का ब्रजभाषा में पद्यानुवाद किया।
- 'भाषाभूषण' चन्द्रालोक शैली में लिखा हुआ 212 दोहों का ग्रन्थ है जिसे 5 प्रकाशों में बांटा है। (प्राय : एक ही श्लोक के भीतर लक्षण और उदाहरण-चन्द्रालोक शैली)

भूषण (सं 1670-1772)

- ये कानपुर के समीपवर्ती तिकवांपुर नामक स्थान पर रत्नाकर त्रिपाठी के घर संवत् 1670 को जन्में। ये प्रसिद्ध कवि चिंतामणि और मतिराम के भाई कहे जाते हैं। इनका परलोकवास सं 1772 में माना जाता है।
- कहा जाता है कि चित्रकूट के राजा रूद्रसाह सोलंकी ने इन्हें 'भूषण' की उपाधि से सम्मानित किया। इनका वास्तविक नाम शोध का विषय बन गया है। (घनश्याम माना जाता है।)
- ये छत्रपति शिवाजी और उनके पौत्र शाहूजी, छत्रसाल बुन्देला आदि अनेक राजाओं के आश्रय में रहे।
- 'शिवराज भूषण (1673 ई), 'शिवाबावनी' शिवाजी के आश्रय में लिखे।
- 'छत्रशालदशक' की रचना 'छत्रशाल' की प्रशस्ति में की।
- भूषण उल्लास, दूषणउल्लास, भूषणहजारा इनकी रचनाएँ कही जाती हैं।
- 'शिवराज भूषण' में 105 अलंकारों में 99 अर्थालंकार, 4 शब्दालंकार, दो चित्र अलंकार, संकर नामक अलंकार विवेचन में चन्द्रालोक (जयदेव) व ललितललाम (मतिराम) का आश्रय लिया गया है।

वेद राखे विदित पुरान परसिद्ध राखे
राम नाम राख्यो अति रसना सुधर में।
हिन्दुन की चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की
कांधे में जनेऊ राख्यो माला राखी गर में।।

भूषण सिथिल अंग भूषण सिथिल अंग,
विजन डुलाती ते वै विजन डुलाती है।

ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहनवारी,
ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहती है।।

कंद मूल भोग करे, कंद मूल भोग करे,
तीन बैर खाती थी वे तीन बैर खाती हैं।
'भूषन' भनत सिवराज वीर तेर त्रास,
नगन जडाती ते वै नगन जडाती है।।

सचि चतुरंग सेन अंग को उमंग भरि,
सरजा शिवाजी जंग जीतन चलत है।

आपस की फूट ही ते सारे हिन्दुआन टूटे।
कट गई नाक सिगरेई दिल्ली दल की **-मुहावरा प्रयोग**

तेज तम अंश पर, कान्ह जिमि कंस पर
त्यो मलेच्छा वंश पर सेर शिवराज है **– मालोपमा**

- शुक्ल - "भूषण की भाषा में ओज की मात्रा तो पूरी है पर वह अधिकार अव्यवस्थित है। व्याकरण का उल्लंघन प्रायः है और वाक्य रचना भी कहीं-कहीं गडबड है।"
- शुक्ल के अनुसार "शिवाजी और छत्रशाल की वीरता के वर्णन को कोई कवि की झूठी खुशामद नहीं कर सकता। वे आश्रयदाताओं की प्रशंसा की प्रथा के अनुसरण मात्र नहीं है। इन दो वीरों का जिस उत्साह के साथ सारी हिन्दू जनता स्मरण करती है, उसी की व्यंजना भूषण ने की है। वे हिन्दू जाति के प्रतिनिधि कवि हैं।"

गोप :

- ओरछा नरेश महाराज पृथ्वीसिंह इनके आश्रयदाता थे। 'रामालंकार', 'रामचन्द्रभूषण', 'रामचन्द्राभरण' नामक तीन अलंकार निरूपण विषयक ग्रंथ इनके द्वारा रचित बताए जाते हैं। इनमें से आज केवल रामचन्द्राभरण ही उपलब्ध है।

दूलह :

- ये कालिदास त्रिवेदी के पौत्र और उदयनाथ कवीन्द्र के पुत्र थे। इनका कविताकाल सं 1800 से 1825 तक माना जा सकता है।
- इनकी रचनाओं में 'कविकुलकण्ठाभरण' नामक अलंकार ग्रंथ तथा कतिपय स्फुट छन्द ही उपलब्ध होते हैं।
- यह ग्रंथ चन्द्रालोक एवं कुवलयानंद का ऋणि है। इसमें लक्षण और उदाहरण एक ही पद (कवित्त, सवैया) में कहे गये हैं।

जो या कंठाभरण को, कंठ करे चित्त लाय।
सभा मध्य सोभा लहै, अलंकृती ठहराय ।।

रसरूप:

- इनका 'तुलसीभूषण' (1754 ई.) अलंकार निरूपक ग्रंथ में 111 अलंकारों के लक्षण व उदाहरण रामचरितमानस, गीतावली, बरवै रामायण के हैं।
- लक्षणों के मूल आधार ग्रंथ काव्यप्रकाश, चन्द्रालोक, कुवलयानन्द, कल्पलता और चन्द्रोदय हैं।

गिरिधरदास :

- 'भारतीभूषण' (1833) में 104 अलंकारों के निरूपण का आधार ग्रंथ 'कुवलयानन्द' और 'साहित्यदर्पण' है।

मुरधीधर 'भूषण'

- ये रीतिकाल के छन्द विवेचन करने वाले संभवतः पहले कवि हैं।
- इनके पिता का नाम रामेश्वर त्रिपाठी तथा चंदेरी के राजा देवी सिंह ने इन्हें 'कविभूषण' की उपाधि दी।
- 'छन्दोहृदयप्रकाश' (ई. 1648) नामक एक ग्रंथ और उपलब्ध होता है जिसमें काव्य दोष, अलंकार, शब्द-शक्ति विवेचित हैं।

सुखदेव मिश्र :

- इनका जन्म स्थान 'कपिला' था इनका कविताकाल संवत् 1720-1760 तक माना जा सकता है।
- इनके सात ग्रंथों का पता चला हैं-वृत्तविचार (सं 1728), छंदविचार, फाजिलअलीप्रकाश, रसार्णव, शृंगारलता, अध्यात्मप्रकाश (सं 1755), दशरथ राय। राजा
- राजसिंह गौड ने इन्हें 'कविराज' की उपाधि दी थी।
- इनका जीवनवृत्त महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका में लिखा था। '

रामसहाय :

- ये काशी के महाराज उदितनारायणसिंह के आश्रय में रहते थे।
- 'वृत्ततरंगिणी' (ई. 1816) चार तरंगों में छन्दोनिरूपण की महत्त्वपूर्ण रचना है।
- 'वाणीभूषण' में अलंकार विवेचन है एवं 'शृंगार सतसई' की रचना बिहारी सतसई के अनुकरण पर की।

रीतिसिद्ध काव्यधारा

- वे कवि जिन्होंने रीतिग्रन्थों की रचना न करके काव्य सिद्धान्तों या लक्षणों के अनुसार काव्य रचना की अथवा अलंकार, रस, नायिका- भेद, ध्वनि आदि उनके ध्यान में तो रहे परन्तु उनका प्रत्यक्ष निरूपण इन कवियों ने नहीं किया। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद जी ने इन्हें रीतिसिद्ध कवि कहा।

- डॉ. नगेन्द्र ने रीतिबद्ध कवियों को रीतिकार या आचार्य कवि कहा तथा रीतिसिद्ध कवियों को रीतिबद्ध कवि कहा।

रीतिकालीन रीतिसिद्ध कवियों का विवरण इस प्रकार है -

सेनापति :

'कवित्त रत्नाकर' के अनुसार इनके पितामह का नाम परशुराम दीक्षित तथा पिता का नाम गंगाधर दीक्षित था, ये गंगा के किनारे अनूप बस्ती में रहते थे। कुछ इतिहासकार इसका अर्थ अनूपशहर (उत्तरप्रदेश के बुलन्दशहर जिले
में) से लेते हैं।

- कुछ लेखक सेनापति को संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् भट्ट नागेश दीक्षित सिद्ध करने का प्रयास करते हैं।
- सेनापति के गुरु हीरामनि दीक्षित थे।
- अभी तक इनकी एक ही कृति 'कवित्त रत्नाकर' प्राप्त हुई है, जिसमें 5 तरंगों और 394 छंदों में अलंकार, श्रृंगार, षड्ऋतु, रामायण और रामरसायन का वर्णन किया है। सेनापति की अप्रतिम सफलता उनके उत्कृष्ट ऋतु (प्रकृति) वर्णन में मिली है -

दूरि जदुराई, सेनापति सुखदाई देखी,

आई रितु पाउस न पाई प्रेम पतियाँ ।

धीर जलधर की, सुनत धुनि धरकी हैं,

दरकी सुहागिन की छोह भरी छतियाँ।

आई सुधि वर की, हिये में आनि खरकी,

तू मेरी प्रानप्यारी यह पीतम की बतियाँ ।

बीती औधि आवन की, लाल मन भावन की

द्रग भई बावन की, सावन की रतियाँ।

- कुछ इतिहासकारों ने इनकी दूसरी कृति 'काव्यकल्पद्रुम' भी मानी है, पर वह उपलब्ध नहीं है, कुछ इसे 'कवित्त रत्नाकर' का ही अन्य नाम मानते हैं।

वृन्द : वृन्दावन ईस्वी 1643-1723) :

- इनके पिता शाकाद्वीपी भोजक ब्राह्मण थे जो बीकानेर से मेडता जोधपुर आकर बसे जहाँ वृन्द का जन्म हुआ इनकी विद्वत्ता के कारण महाराज जसवन्तसिंह ने इन्हें कुछ भूमि प्रदान की। ये औरंगजेब के दरबारी कवि रहे। सन् 1707 के लगभग किशनगढ़ के राजसिंह ने जागीर देकर इनको किशनगढ़ में बसाया।
- . बारहमासा (1668), भावपंचाशिका (1686), नयन पचीसी (1686), पवनपचीसी (1691), शृंगार शिक्षा (1691), यमक सतसई (1706), तथा वृंदसतसई (1704) इनकी रचनाएँ हैं।

भले बुरे सब एक सम जौ लौं बोलत नाहिं।
जान परत हैं काग-पिक, ऋतु बसंत के माहिं।। (वृंद सतसई)

नृपशम्भु :

- नृपशम्भु या शम्भुराज छत्रपति शिवाजी के घर सन् 1657 को पुरन्दर में जन्में, दो वर्ष की अवस्था में माँ की मृत्यु के कारण लालन-पालन जीजाबाई (दादी) ने किया। इनका विवाह 1665 में चेसुबाई नामक योग्य कन्या से हुआ।
- 8 वर्ष की अवस्था में औरंगजेब ने इन्हें पंचहजारी पद दिया। 9 वर्ष की अवस्था में शिवाजी के साथ छल द्वारा कैद कर लिए गए, चतुराई व कठिनता से दोनों बन्दीगृह से मुक्त हुए।
- शिवाजी की मृत्यु के बाद इन्होंने औरगजेब का मुकाबला किया अन्त में कैद हुए, आँखें निकाल दी तथा इनके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। नृपशम्भु ने संस्कृत में 'बुधभूषण' की रचना की।
- नृपशम्भु मराठी भाषी थे किन्तु 'नायिका भेद', 'नखशिख' एवं 'सात शतक' सुन्दर ब्रजभाषा की रचनाएँ हैं। प्रथम दो रचनाएँ रीति परम्परा पर आधारित और उत्कृष्ट कोटि की है।

नेवाज :

- ये अंतर्वेद के रहने वाले ब्राह्मण थे तथा पन्नानरेश महाराज छत्रसाल के यहाँ किसी भगवान् कवि के स्थान पर नियुक्त हुए थे।

भली आजु कलि करत हौ, छत्रसाल महाराज |
जहं भगवत् गीता पढ़ी, तहं कवि पढ़त नेवाज।।
इनका 'शकुतंला नाटक' (सं 1737) नामक ग्रंथ मिलता है।

कृष्ण कवि :

- जनश्रुति के अनुसार ये बिहारी के पुत्र एवं माथुर के चौबे थे।
- बिहारी के कोई संतान नहीं थी सम्भवतः कृष्ण कवि बिहारी के दत्तक पुत्र थे।
- ये जयपुर के जयसिंह के मंत्री राजा आयामल्ल के आश्रित थे। इनका समय 1777 के आसपास ठहरता है।

- इनके लिखित दो ही ग्रंथ प्राप्त हुए हैं –'बिहारी सतसई की टीका' और 'विदुर प्रजागर' ।

श्री हठी जी :

- ये हितहरिवंश जी की परम्परा के कृष्णभक्त कवि थे, इनका जन्म स्थान चरखारी माना जाता है।
- "राधासुधाशतक' (सं 1837) में 11 दोहे और 103 कवित्त सवैये हैं।
- इन्होंने कला पक्ष पर पूरा जोर दिया है, जिसमें अनुप्रास, यमक, उपमा, उत्प्रेक्षा का बाहुल्य है।

विक्रमादित्य :

- ये बुन्देलखण्ड चरखोरी के राजा थे। शासनकाल–1782–1829 ई. निश्चित है।
- हिन्दी के प्रसिद्ध आचार्य प्रतापसाहि इनके संरक्षण में रहे।
- बिहारी सतसई के समान इन्होंने "विक्रम सतसई' की रचना की, इसके अतिरिक्त इन्होंने 'श्रीमद्भागवत्' के दशम स्कन्ध का हिन्दी अनुवाद तथा 'ब्रजलीला' नामक ग्रंथ का प्रणयन किया।

रीतिकाल का प्रतिनिधि कवि : बिहारी (ई. 1595-1663 सं 1660-1720)

- डॉ. नगेन्द्र के मतानुसार रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि बिहारी का जन्म 1595 ई. (सं 1652) में ग्वालियर में हुआ। आचार्य शुक्ल इनका जन्मकाल सं 1660 ग्वालियर के पास बसुवा गोविन्दपुर गाँव में मानते हैं।
- इनके पिता का नाम केशवराय था जो निम्बार्क सम्प्रदाय के नरहरिदास के शिष्य थे। ये माथुर चौबे कहे जाते हैं।
- मथुरा के ब्राह्मण परिवार में इनका विवाह हुआ और वे मथुरा ही रहने लगे।
- फारसी काव्य अभ्यास के बाद ये शाहजहाँ के कृपापात्र बने। सन् 1645 के आसपास जब ये वृति लेने जयपुर के । राजा जयसिंह के यहाँ पहुँचे तब राजा अपनी नवविवाहिता रानी चौहानी के प्रेम में मुग्ध महलों में पड़े रहते थे तब बिहारी ने अन्योक्ति कथन में यह दोहा भेजा -

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल |

अली कली ही सो बँध्यो, आगे कौन हवाल।।

इसी दोहे पर राजा-रानी प्रसन्न हुए, बिहारी को काली पहाडी नामक ग्राम दिया तथा प्रति छन्द एक मुहर देने का संकल्प किया, तब से बिहारी आमेर दरबार के राजकवि के रूप में जयपुर में ही अपना जीवन सूखपूर्वक बिताने लगे।

- चौहानी रानी के पुत्र कुमार रामसिंह का विद्यारम्भ संस्कार करवाया तथा शिक्षा देने हेतु दोहों का संग्रह किया।
- बिहार के कोई सन्तति नहीं थी, कहते हैं कि निरंजन कृष्ण को इन्होंने गोद लिया था, बिहारी सतसई के प्रथम टीकाकार 'कृष्ण कवि' हो सकता है, कवि निरंजन कृष्ण कवि ही हों।

- बिहारी की ख्याति का मूल आधार एकमात्र कृति ब्रजभाषा में रचित 'सतसई' है जो 'गाथा सप्तशती' 'आर्या सप्तशती', 'अमरूक शतक' से प्रेरित है। बिहारी सतसई या 'सप्तशती' में 719 दोहे हैं जो बिहारी को रीतिसिद्ध घोषित करते हैं।
- हिन्दी साहित्य में बिहारी सतसई पर रामचरितमानस के पश्चात् सर्वाधिक टीकाएँ लिखी गई। इसकी पचासों टीकाएँ रची गयीं जिनमें कृष्ण कवि की टीका जो कवित्तों में है, हरिप्रकाश टीका, लल्लू लाल जी की लालचन्द्रिका, सरदार कवि की टीका, सूरति मिश्र की टीका बहुत प्रसिद्ध हैं।
- पठान सुलतान तथा भारतेंदु हरिश्चंद्र ने इनके दोहों पर कुंडलिया रची, पं. अंबिकादत्त व्यास ने सब दोहों के भावों पर रोला तथा पं. परमानन्द ने 'शृंगार सप्तशती के नाम से दोहों का संस्कृत अनुवाद किया। बुंदेलखण्ड के मुंशी देवीप्रसाद 'प्रीतम' ने दोहों पर उर्दू में 'शेर' के रूप में अनुवाद किया।
- बिहारी का सर्वोत्तम एवं प्रामाणिक संस्करण ब्रजभाषा के प्रधान कवि बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकार' ने निकाला। "बिहारी सतसई' का समाप्तिकाल सन् 1662 माना जाता है और बिहारी का देहावसान सन् 1663 में माना जाता है।
- "बिहारी सतसई' में संयोग व वियोग श्रृंगार के अतिरिक्त भक्ति, नीति के दोहे भरे पड़े हैं। प्रकृति चित्रण एवं बिहारी की बहुज्ञता को प्रदर्शित करने वाले अनगिनत दोहे हैं। ग्रंथ में दोहे अलंकार, रस, भाव, नायिका भेद, ध्वनि, वक्रोक्ति रीति, गुण आदि को ध्यान में रखकर रचे गए हैं।

आचार्य शुक्ल -

'यदि प्रबंधकाव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है। इसी से यह सभा-समाजों के लिए अधिक उपयुक्त होता है। अतः जिस कवि में कल्पना की समाहार शक्ति के साथ भाषा की समाहार शक्ति जितनी अधिक होगी उतनी ही वह मुक्तक की रचना में सफल होगा। यह क्षमता बिहारी में पूर्ण रूप से विद्यमान थी।'

डॉ. हरवंशलाल शर्मा -

'सभी प्रकार के नायक-नायिकाओं के उदाहरण "बिहारी सतसई' में मौजूद हैं। निःसन्देह उनका नायिका भेद अधिक व्यापक है जिसमें ऐसे उदाहरण भी व्यास हैं जो आचार्यों ने लक्षित नहीं किए हैं। रीति परम्परा का पूरा-पूरा प्रभाव उन पर था ऐसे ग्रंथों की उन्होंने छानबीन की थी। यदि उन्होंने कोई रीतिग्रंथ लिखा होता तो वे निश्चय ही हिन्दी काव्यशास्त्र के यशस्वी आचार्यों में अग्रगण्य होते।'

रामधारीसिंह दिनकर -

'बिहारी की कविताओं से आलोचना का यह सिद्धान्त आसानी से निकाला जा सकता है कि कविता की सफलता भाव या विचार की ऊँचाई से नहीं होती, प्रत्युत कारीगरी की निपुणता से होती है।'

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल -

'भावों का बहुत उत्कृष्ट और उदात स्वरूप बिहारी में नहीं मिलता। कविता उनकी शृंगारी है, पर प्रेम की उच्च भूमि पर नहीं पहुँचती, नीचे ही रह जाती है।'

बिहारी सतसई के टीकाकार निम्नांकित है -

टीकाकार	टीका	विशेषता
कृष्णलाल कवि	कृष्णलाल की टीका	प्रत्येक दोहे का सवैया में विवेचन।
सुरति मिश्र	अमर चंद्रिका	टीका का प्रणयन दोहों में हुआ है।
लल्लू	लाललालचंद्रिका	
प्रभुदयाल	पाण्डेय प्रभुदयाल पांडे की टीका (1896 ई.)	आधुनिक खडी बोली में लिखी गई है।
अम्बिकादत्त व्यास	बिहारी बिहार	दोहे के भावों का रोला छंद में पल्लवन
पद्मसिंह शर्मा	संजीवनी भाष्य	तुलनात्मक पद्धति में अर्थ निरूपण है।
आनन्दीलाल शर्मा	फिरंगे सतसई	फारसी भाषा में लिखी गई है।
जगन्नाथदास रत्नाकर	बिहारी रत्नाकर(1921 ई.)	हिन्दी खडी-बोली में सर्वश्रेष्ठ

उदाहरण स्वरूप बिहारी के भक्तिपरक दोहे -

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ,
जा तन की झाई परै, स्याम हरि दुति होइ।

(सतसई का आरंभिक दोहा)

जप माला छापा तिलक सरै न एकौ काम,
मन कांचे नाचे वृथा, सांचे रांचे राम।

(आडंबर विरोध)

या अनुरागी चित्त की गति समुझे नहिं कोइ,
ज्यौं ज्यौं बूडै स्याम रंग, त्यौं त्यौं उज्जवल होइ। (विरोधाभास)

सोहत ओढ़े पीत पट, स्याम सलोने गात,
मनहुँ नीलमनि सैल पर, आतप पर्यो प्रभात ।

(उत्प्रेक्षा)

अधर धरत हरि के परत, ओठ दीठि पर जोति,
हरित बाँस की बाँसुरी इन्द्र धनुष-सी होति।

(उपमा)

तो पर वारौ उरबसी, सुनु राधिके सुजान,
तू मोहन के उरबासी, है उरबासी समान।।

(यमक)

जयपुर के प्रसिद्ध गोविन्ददेवजी के मन्दिर में आज भी यह दोहा प्रातः सामूहिक रूप से गाया जाता है

मोर मुकुट कटि काछनी कर मुरली उरमाल,
यह बानक मो मन बसौ सदा बिहारीलाल ।

बिहारी के नीतिपरक दोहे -

कनक-कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय ।
इह खाय बौरात जग, उहिं पाये बौराय ।।

(यमक)

नर की अरू नलनीर की गति एकै करि जोय।
जैतो नीचो हवै चले, तेतो ऊँची होय।

(दृष्टान्त)

सतसइया के दोहरे, ज्यौं नाविक के तीर,
देखन में छोटे लगे, घाव करे गम्भीर। (महावीर प्रसाद द्विवेदी)

करत करत अभ्यास से जडमति होत सुजान।
रसरी आवत जात ते सील पर पड़े निसान।। (काव्य हेतु निरूषण)

दुसह दुराज प्रजानि को बढ़े क्यों न दुःख द्वंद्व,
अधिक अंधेरों जग करे, मिलि मावस रवि चंद्र ।। (ज्योतिष ज्ञान)

बिहारी के रस सिद्ध दोहे –

जो कोइ रस रीति को समुझो चाहे सार ।
पढ़े बिहारी सतसई, कविता को शृंगार।।
कहत नटत रीझत खिझत, मिलत खिलत लजियात।
भरे भौन में करत हैं, नैनन ही सौं बात।

(अन्त्यानुप्रास)

पत्रा ही तिथि पाइये, वा घर के चहुँ पास ।
नित प्रति पून्यौ ही रहत, आनन ओप उजास।।

(अतिशयोक्ति)

नाक चढ़े सी सी करै जितै छबीली छैल।
फिरि फिरि भूलि वहै गहै, प्यौ कंकरीली गैल।।

(हास्य रस)

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करे भौहनि हँसे, देन कहैं, नटि जाइ।।

(संयोग शृंगार)

मिलि चन्दन बैंदि रही, गोरे मुख न लखाइ।
ज्यौं-ज्यौं मदलाली चढ़े, त्यौं त्यौं उधरति जाइ।।
दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।
परति गांठि दुरजन हिये, दई नई यह रीति।।

(असंगति, विरोधाभास)

कागद पर लिखत न बनत, कहत संदेस लजात।
कहि हैं सबु तेरो हियो, मेरे हिय की बात।।

इत आवति चलि जात उत चली छ सातक हाथ ।
चढ़ी हिंडोरे सी रहै, लगी उसासन साथ।।।
रस सिंगार मजनु किये कंजनु भंजनु देन। (विरह वर्णन में ऊहात्मकता)
अंजनु रंजनु हूँ बिना, खंजनु गंजनु नैन।।

उदाहणस्वरूप अन्य दोहे -

कहत सबै बेंदी दिये, आक दस गुनो होत।
तिय लिलार बैंदी दिये, अगनित बढ़त उदोत।।

(गणित-ज्ञान)

मंगल बिंदु सुरंग, मुख, ससि केसर आड गुरु ।
इक नारी लहि सग, रसमय किये लोचन जगत
बिछुरे जिय संकोच यह, बोलत बनै न बेन।

(सोरठा)

दोऊ दोरि लगे हियै, किये निचोडे नैन ।।
छिप्यौ छबीली मुँह लसै, नीलै अंचर वीर।
मनौ कलानिधि झलमले, कालिन्दी के नीर।।

(उत्प्रेक्षा प्रयोग)

रामसहाय :

ये चौबेपुर, जिला बनारस के रहने वाले लाला भवानीदास सहाय के पुत्र थे और काशीनरेश महाराज उदितनारायण सिंह के आश्रय में रहते थे। रामसहाय का कविताकाल सं. 1760-1880 तक माना जाता है।

- अपनी कविताओं में इन्होंने स्वयं का 'भगत' उपनाम रखा है।

- बिहारी के अनुकरण पर इन्होने 'रामसतसई' की रचना की। 'वाणीभूषण' अलंकार का तथा 'वृततरंगिणी' (सं. 1873) पिंगल का ग्रंथ है, 'ककहरा', 'अखरावट' के ढंग का ग्रंथ है।

पजनेस :

- ये पन्ना के रहने वाले तथा सं 1900 के आसपास विद्यमान थे।
- शिवसिंह सेंगर के अनुसार इन्होंने 'नखशिख' और 'मधुरप्रिय' नामक दो ग्रंथ लिखे, जो उपलब्ध नहीं हैं।
- भारतजीवन प्रेस ने इनके फुटकल छन्दों का संग्रह (127 कवित्त सवैय-संग्रह) 'पजनेस प्रकाश' नाम से प्रकाशित करवाया जिसमें अनेक स्थानों पर फारसी शब्दों का स्वच्छन्द प्रयोग दिखता है।

बेनी वाजपेयी :

- बेनी वाजपेयी असनी के निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे, इनका समय सन् 1823 माना जाता है, इसका प्रमाण लीलाजी कृत 'अश्व चरित्र' में मिलता है।
- इनके रीति परम्परा से प्रभावित फुटकर छंद ही मिलते हैं।

रीतिमुक्त काव्यधारा

शास्त्रीय (क्लासिकल) तथा स्वच्छंद (रोमांटिक) दो काव्यधारा स्वीकार की गई हैं। प्रथम कला का एक रूप जो अभ्यास का परिणाम एवं द्वितीय में कला हृदय की भावनाओं को सहज तथा कृत्रिम रूप में अभिव्यक्त करती है।

स्वच्छन्द काव्यधारा को रीतिमुक्त काव्य माना गया है।

रीतिमुक्त काव्य की विशेषताएँ -

- आन्तरिक अनुभूतियों का काव्य, भावावेग का सहज प्रवाह इस काव्यधारा की प्रधान विशेषता है।
- आत्मप्रधान एवं व्यक्तिपरक, बाह्य जगत् की अनदेखी।
- रूढ़ियों से मुक्त, अभिनवत्व और अद्भुतता।
- सांकेतिक और व्यंजनाप्रधान शैली अतः रहस्यात्मकता का समावेश।
- कल्पना और असाधारणता का प्राचुर्य ।
- रूपप्रधान की अपेक्षा भावप्रधान अधिक।

हिन्दी के रीतिमुक्त काव्यधारा की अतिरिक्त प्रवृत्तियाँ इस प्रकार हैं -

- प्रेम के वेदना प्रधान रूप का वर्णन ।
- प्रचलित काव्य शैली का परित्याग।
- प्रणयानुभूति की आत्माभिव्यक्ति शैली।
- प्रेम की उदात्तता।

रीतिमुक्त काव्यधारा के कवि :

घनानन्द (सं 1746-1796) :

- घनानन्द रीतिमुक्त (स्वच्छन्द) काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि हैं, इस धारा के प्रायः सभी गुण इनकी काव्य रचना में मिल जाते हैं।
- इनका जन्म संवत् 1746 के लगभग कायस्थ परिवार में हुआ था। ये दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह रंगीला के मीर मुंशी थे।
- एक बार दरबार में बादशाह के आग्रह की भी अवहेलना करते हुए 'सुजान' नामक वेश्या के कहने पर सुजान की तरफ मुँह, बादशाह की ओर पीठ करके गीत गाने पर बेअदबी के लिए देश निकाला मिला। घनानन्द के कहने पर भी सुजान उनके साथ नहीं चली तो उन्हें वैराग हो गया तथा सुजान प्रेम कृष्ण प्रेम में बदल गया।
- संवत् 1796 में नादिरशाह की सेना के सिपाही मथुरा में घनानन्द को लूटने ज़र-ज़र-ज़र (धन) चिल्लाते हुए पहुंचे घनानन्द ने रज़-रज़-रज़ कहते हुए तीन मुट्ठी मिट्टी उनकी ओर उछाल दी। सैनिकों ने घनानन्द के हाथ काट कर मार डाला।
- इनके कुल 40 ग्रंथ माने जाते है। जिनमें सुजान सागर, विरहलीला, कोकसागर, रसकेलिवल्लि, कृपाकंद नामक ग्रंथों का पता लग पाया है।
- इनकी लौकिक शृंगार की रचनाएँ प्रायः कवित्त सवैयों में तथा भक्तिपरक रचनाएँ पदों एवं दोहे-चौपाइयों में हैं जो अधिकांश फुटकल संग्रह हैं।
- प्रेम में एकनिष्ठता, निष्ठुरता के प्रति उपालम्भ, प्रिय के प्रति मंगल भावन, निष्कपट एवं निर्भीक प्रेम, वेदना, प्रतीक्षा, विरह, आत्म निवेदन लौकिक प्रेम में व्यंजित होते हैं।
- भक्तिपरक रचनाओं में सुजान के प्रति प्रेम विरक्ति के कारण वियोगाधिक्य, निराशा, निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुयायी, ब्रज माहात्म्य वर्णन, साख्य-दास्य-कान्ता भाव परिलक्षित होते हैं।
- घनानन्द के गुरु श्री नारायण देव थे, घनानन्द ने किसी शेष नामक महन्त का वर्णन भी गुरु के रूप में काव्य में किया है।

घनानन्द के उदाहरण -

नेही, महा, ब्रजभाषाप्रवीन ओ सुन्दतानि के भेद को जानै।

जोग वियोग की रीति में कोविद, भावना भेद स्वरूप को ठानै ।

चाह के रंग में भीज्यो हियो, बिछुरे मिले प्रीतम सांति न मानै ।

भाषा प्रवीन सुछन्द सदा रहे, सो धन जू के कवित्त बखानै ।

(ब्रजभाषा एवं कवित्त स्वीकृति)

अति सूधो सनेह को मारग है, जहाँ नैकु सयानप बांक नहीं।
वहाँ सांचै चलै तजि आपुनपौ, झिझके कपटी जे निसाँक नहीं।
घनआनंद प्यारे सुजान सुनौ, यहाँ एक तें दूसरो आँक नहीं।

तुम कौन सी पाटी पढ़े हो लला, मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।।

(प्रेम की निष्कपटता)

घनानन्द जीवन मूल सुजान की कौंधन हूँ न कहूँ दरसै।
सु न जानियै धौं कित छाय रहे, दृग चातिग प्रान तपे तरसै।।

(विरह वर्णन)

भारे ते सांझ लौं कानन ओर निहारति बावरी नेकु न हारति ।
सांझ ते भोर लौं तारनि ताकियो तारनि सों इकतार न हारति।।

(विरह की नैसर्गिक अनुभूति)

वहै मुसक्यानि, वहै मृदु बतरानि,
वहै लडकी ली वानि आनि उर में अरति है।
वहै गति लैन, औ बजावनि ललित चैन,
वहै हसि दैन, हियरा तें न टरति है।

(स्मृतिजन्य विरह)

अंतर-आँच उससा तचै अति, अंग उसीजै उदेग की आवस।

ज्यौं कहाय मसोसनि ऊमस क्यौं हूँ कहूँ सु धरै नहिं थ्यावस ।।

खोय गई बुधि, सोय गई सुधि, रोय हँसे उनमाद जग्यौ है।

मौन गहे चाकि चकि रहे, चलि बात कहै तै न दाह दग्यौ है।

जानि पर नहीं जान, तुम्हें लखि ताहि कहा कछु आहि खग्यौ है।

सोचनि ही पचि यै घन आनंद, हेत पग्यो किंधौ प्रेत लग्यौ है।

कारी कूर कोकिला कहाँ का बैर काढति री,

कूक कूक अबहीं करेजो किन कोरिलै ।
पैंड परै पापी ये कलापी निसि द्यौस ज्यौ ही,
चातक रे घातक हवै तुहू कान फोरिलै ।।

(विरह वर्णन में प्रकृति)

पीरी परि देह, छीनी राजति सनेह भीनी,
कीनी है अनंग भंग अंग रंग बोरी सी।
लोग है लागि करित्त बनावत, मो तो मोहि कवित्त बनावत।

(विरह वर्णन में वैयक्तिता)

मोहि तुम एक तुम्हें मो सम अनेक आहि,
कहा कछु चन्द कौ चकोरन की कमी है।

(प्रेम में एकनिष्ठता)

बिन पाव तौं इन ध्यावस हो न सु क्यों करि ये अबसो परसै।

बदरा बरसै रितु में घिरि के नित ही अँखियाँ उधरी बरसै।

ए रे बीन पौन तेरो सबै ओर गौन बीरी

तोसो और कौन मनै ढरकौंही बानि दै।

झएँ अंखियाँ दुखियाँ झरना सी।

(उपमा)

काहू कलपाय है सो कैसे कल पाय है। (यमक)
तेरे आगे चन्द्रमा कलंक सो लगत है।

(व्यतिरेक)

- सुजानसार, विरह लीला, कोकसार, रसकेलिवल्लि, कृपाकंद के अतिरिक्त वियोग बेलि, प्रीति पावस, प्रेम पत्रिका, प्रेम
- पद्धति, इश्कलता, प्रेम पहेली, घनानन्द कवित्त रचनाएँ प्रमुख हैं।
- भाषा यद्यपि ब्रज है लेकिन फारसी छंदों का भी प्रयोग मिलता है।

घनानन्द के लिए समालोचकों के कथन -

- आचार्य शुक्ल – 'प्रेम की गूढ अन्तर्दशा का उद्घाटन जैसा इनमें है, वैसा हिन्दी के किसी अन्य श्रृंगारी कवि में नहीं।'
- दिनकरजी – 'वे अपने आँसुओं से रो रहे हैं, किराए के आँसुओं से नहीं।'
- आचार्य शुक्ल – "प्रेम की पीर' ही को लेकर इनकी वाणी का प्रादुर्भाव हुआ। प्रेममार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा जबादानी का ऐसा दावा रखने वाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ।"
- आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र – 'इन्होंने अलंकृत शैली का व्यवहार बराबर किया है पर पांडित्य प्रदर्शन के लिए कभी नहीं, हृदय की स्थिति का सच्चा आभास देने के लिए।'

आलम:

- ये जाति के ब्राह्मण थे जो शेख नामक रंगरेजिन से विवाह करके मुसलमान हो गये। इनके जहान नामक पुत्र हुआ।
- ये औरंगजेब के दूसरे बेटे मुअज्जम (बहादुरशाह) के आश्रय में रहते थे अतः आलम का कविताकाल सं. 1740-1760 तक माना जा सकता है।
- इनकी कविताओं का संग्रह 'आलमकेलि' नाम से प्रकाशित हुआ है।
- आलम यद्यपि स्वच्छन्द कवि थे परन्तु इनके काव्य में रीति परम्परा के गुण कुछ-कुछ मिल जाते हैं।
- ब्रज भाषा में कहीं कहीं अवधी या पूर्वी हिन्दी के प्रयोग एवं कहीं-कहीं फारसी शैली के रस–बाधक-भाव भी इनमें मिलते है।
- 'माधवानल कामकंदला', 'स्याम सनेही', 'सुदामाचरित' नामक प्रबन्ध काव्यों के रचनाकार भी 'आलम' नामक कवि हैं जो सम्भवतः इन मुक्तककार आलम से भिन्न है।

ठाकुर

- इस नाम के तीन कवि हुए हैं अतः तीनों की कविताएँ आपस में मिल गई हैं।
- असनी वाले प्राचीन ठाकुर संवत् 1700 के लगभग हुए, इनके मन की उमंग के अनुसार कवित्त-सवैये मिलते हैं।
- असनी के दूसरे ठाकुर भी ब्रह्मभट्ट थे। ये ऋषिनाथ कवि के पुत्र तथा सेवक कवि के पितामह थे। इनका कविताकाल सं. 1862 के इधर-उधर माना जाता है।
- दूसरे ठाकुर ने 1861 सं. में 'सतसई वरनार्थ' नाम की 'बिहारी सतसई' की एक टीका बनाई।
- तीसरे ठाकुरदास बुन्देलखण्ड के कायस्थ थे। इनका जन्म गुलाबराय के यहाँ सं 1823 में हुआ। ठाकुर की मृत्यु सं 1880 में हुई। ठाकुर का जन्म गुलाबराय के ससुराल ओरछा में हुआ तथा वे वहीं रहने लगे।
- ठाकुर जेतपुर राजा केसरी सिंह के पुत्र पारीछत की सभा के रत्न हुए, ये कवि के साथ रणकुशल योद्धा भी थे। ठाकुर के पुत्र दरियाव सिंह, पौत्र शंकरप्रसाद भी कवि थे।
- 'ठाकुर ठसक' नामक संग्रह लाला भगवानदास जी ने निकाला जिसमें दूसरे दो ठाकुरों की कविताएँ भी मिल गई है।
- स्वाभाविक ब्रजभाषा के अतिरिक्त लोकोक्तियाँ का मनोहर विधान इनकी कविताओं की विशिष्टता है।
- 'ठाकुर शतक' नामक संग्रह भी उपलब्ध होता है।
- इनके काव्य में श्रृंगार वर्णन के अतिरिक्त भक्ति भावना भी है।

बोधा :

- ये राजापुर (जिला बाँदा) के रहने वाले सरयूपारी ब्राह्मण थे।
- इनका नाम बुद्धिसेन था, पन्ना के महाराज इन्हें प्यार से 'बोधा' कहने लगे।

- शिवसिंह सरोज में इनका जन्म सं 1804 दिया, इनका कविता काल 1830-1860 तक माना जा सकता है।
- पन्ना के दरबार में सुभान (सुबहान) नामक वेश्या के प्रेम में इनको छः महीनों का देश निकाला मिला जहाँ 'विरहवारीश' नामक पुस्तक लिखी जो 'माधवानल-कामकदंला की प्रसिद्ध प्रेमकथा पर लिखित प्रबन्ध रचना हैं। दरबार में लोटने पर इनके पदों से प्रसन्न होकर महाराज ने सुभान को इन्हें दे दिया।
- 'इश्कनामा' नामक प्रसिद्ध पुस्तक के अतिरिक्त फुटकल कवित्त, सवैये इधर-उधर पाए जाते हैं।
- फारसी प्रभाव के कारण भाव कुछेक जगह खुले और बाजारू हो गए हैं। लेकिन ऐसा सर्वत्र नहीं है -

कबहूँ मिलिगो, कबहूँ मिलिबो वह धीरत ही मैं धरैबो करै।
उरतें कढ़ि आवै, गरे तें फिरै, मन की मन ही में सिरैबो करै ।।
कवि बोधान चाउँ सरी कबहूँ, नित ही हरवा सो हिरैबो करै।।
सहते ही बनै, कहतै न बनै, मन ही मन पीर पिरेबो करै।।

द्विजदेव (सन् 1820-1861) :

- ये अयोध्या के महाराज (मानसिंह) थे इनकी गणना रीतिबद्ध कवियों में भी की जाती है।
- 'शृंगार बत्तीसी' के अतिरिक्त 'शृंगारलतिका' नामक बहुत विशाल और सटीक संस्करण महारानी अयोध्या की ओर से हाल ही में प्रकाशित हुआ है।
- . जिस प्रकार लक्षण ग्रंथ कवियों में पद्माकर अंतिम प्रसिद्ध कवि है। उसी प्रकार रीतिकालीन शृंगार परम्परा के भावमयी फुटकल कविता द्विजदेव (मानसिंह) के पश्चात् फिर दुर्लभ हो गयी।

मंडन :

- ये जैतपुर (बुंदेलखण्ड) के रहने वाले और संवत् 1761 में राजा मंगलसिंह के दरबार में वर्तमान थे।
- खोज में इनके पाँच ग्रन्थों का पता चला हैं -रसरत्नावली, रसविलास, जनकपचीसी, जानकी जू को ब्याह, नैन पचासा पर कोई भी ग्रंथ अब तक प्रकाशित नहीं हुआ है।

रीतिकालीन अन्य कवि : -

सूरति मिश्र :

- ये 'आगरा के रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे।
- 'अलंकारखाना' सं 1766, बिहारी सतसई की टीका 'अमरचंद्रिका' (सं. 1794) में लिखीं।
- 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' की विस्तृत टीका के अतिरिक्त इन्होंने 'बैताल पंचविंशति' का ब्रजभाषा गद्य में अनुवाद किया
- 'अलंकारमाला', 'रसरत्नमाला', 'रससरस', 'रसग्राहकचन्द्रिका', 'नखसिख', 'काव्यसिद्धान्त', 'रसरत्नाकार' इनके रीतिग्रंथ हैं।

श्रीपति :

- ये कालपी के रहने वाले कन्यकुब्ज ब्राह्मण थे।
- इन्होंने सं. 1777 में 'काव्यसरोज' नामक रीतिग्रंथ लिखा।
- कविकल्पद्रुम, रससागर, अनुप्रासविनोद, विक्रमविलास, सरोज कलिका, अलंकार गंगा इनके अन्य ग्रंथ हैं।

भूपति (राजगुरुदत्त सिंह) :

- ये अमेठी के राजा थे, इन्होंने सं. 1791 में श्रृंगार के दोहों की एक सतसई की रचना की।
- इनके 'कंठाभूषण' और 'रसरत्नाकर ग्रंथ' अप्राप्य हैं।

गुरु गोविन्द सिंह जी :

- ये सिक्खों के महापराक्रमी दसवें गुरु थे। इनका जन्म सं. 1723 में और सत्यलोकवास 1765 में हुआ।
- सुनीतिप्रकाश, सर्वलोहप्रकाश, प्रेमसुमार्ग, बुद्धिसागर और चंडीचरित्र नामक ग्रंथों में प्रौढ़ साहित्यिक ब्रजभाषा है।

रसनिधि (पृथ्वीसिंह) :

- ये दतिया के एक जमींदार थे जो सं. 1717 तक विद्यमान थे।
- इन्होंने बिहारी सतसई के अनुकरण पर 'रतनहजारा' नामक दोहों में ग्रंथ बनाया। इसके अतिरिक्त फुटकल दोहे भी मिलते हैं जिनमें फारसी कविता के भाव भी भरे हैं।

महाराजा विश्वनाथ सिंह :

- ये रीवाँ के नरेश तथा महाराज रघुराजसिंह के पिता थे। ये संवत् 1778 से 1797 तक रीवां की गद्दी पर रहे।
- इनके द्वारा रचित 'आनन्द रघुनंदन' नामक नाटक को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी का प्रथम नाटक माना जिसकी भाषा ब्रज भाषा है।

सूदन :

- ये मथुरा के रहने वाले माथुर चौबे थे। इनके पिता का नाम बसंत था। सुदन भरतपुर के महाराज बदनसिंह के पुत्र सुजानसिंह (सूरजमल) के यहाँ रहते थे। _

- 'सुजानचरित्र' नामक प्रबन्ध काव्य में सूरजमल के वीरतापूर्ण चरित्र का वर्णन किया है। जिसमें सं. *1802* से *1810* तक की घटनाएँ हैं।

मधुसूदनदास :

- ये माथुर चौबे थे।
- इन्होंने गोविन्दसिंह नामक किसी व्यक्ति के अनुरोध से सं. 1839 में 'रामाश्वमेध' नामक बड़ा प्रबंधकाव्य बनाया जो तुलसी की रामचरितमानस शैली पर है।

रीतिकाल के प्रबन्धकाव्य	
चिंतामणि	रामायण,रामाश्वमेध,कृष्णचरित्र ।
मंडन	जानकी जू का ब्याह,पुरंदरमाया ।
कुलपति मिश्र	द्रोणपर्व(संग्रामसार)।
गोविन्द सिंह	चंडीचरित्र।
सुरति मिश्र	रामचरित,कृष्णचरित।
लालकवि	छत्रप्रकाश।
श्रीधर	जंगनामा।
ग्वाल कवि	हम्मीरहठ,विजयविनोद,गोपीपच्चीसी।
पद्माकर	हिम्मतबहादुर-विरुदावली।
रामसिंह	जुगलविलास।
सुदन	सुजान चरित।
गुमान मिश्र	नैषधचरित(काव्यकलानिधि)।
सोमनाथ	पंचाध्यायी,सुजानविलास।
रसिक गोविन्द	रामायण सूचनिका।

रीतिकाल के नाटक	
राम	हनुमान नाटका
जसवंतसिंह	प्रबोधचंद्रोदय नाटक।

सोमनाथ	माधवविनोद नाटक ।
ब्रजवासीदास	प्रबोधचंद्रोदय नाटक।
देव	देवमायाप्रपंच नाटक।
नेवाज	शकुंतला नाटक।

भाग 7

देवरानी जेठानी की कहानी -

पण्डित गौरीदत्त

1.देवरानी जेठानी की कहानी - पण्डित गौरीदत्त

देवरानी जेठानी की कहानी हिन्दी का उपन्यास है। इसके रचयिता हिन्दी व देवनागरी के महान सेवक पंडित गौरीदत्त हैं। न केवल अपने प्रकाशन वर्ष (1870) बल्कि अपनी निर्मिति के लिहाज से भी पं. गौरीदत्त की कृति देवरानी-जेठानी की कहानी को हिन्दी का पहला उपन्यास होने का श्रेय जाता है। किंचित लड़खड़ाहट के बावजूद हिन्दी उपन्यास-यात्रा का यह पहला कदम ही आश्वस्ति पैदा करता है। अन्तर्वस्तु इतनी सामाजिक कि तत्कालीन पूरा समाज ही ध्वनित होता है मसलन बाल विवाह विवाह में फिजूलखर्ची स्त्रियों की आभूषणप्रियता बंटवारा वृद्धों बहुओं की समस्या शिक्षा स्त्री-शिक्षा अपनी अनगढ़ ईमानदारी में उपन्यास कहीं भी चूकता नहीं। लोकस्वर संपृक्त भाषा इतनी जीवन्त है कि आज के साहित्यकारों को भी दिशा-निर्देशित करती है। दृष्टि का यह हाल है कि इस उपन्यास के माध्यम से हिन्दी पट्टी में नवजागरण की पहली आहट तक को सुना जा सकता है। कृति का उद्देश्य बारम्बार मुखर होकर आता है किन्तु वैशिष्टक यह कि यह कहीं भी आरोपित नहीं लगता। डेढ़ सौ साल पूर्व संक्रमणकालीन भारत की संस्कृति को जानने के लिए देवरानी जेठानी की कहानी उपन्यास से बेहतर कोई दूसरा साधन नहीं हो सकता।

- हिन्दी का पहला उपन्यास - (1870 ई.) है।
- डॉ. गोपालराय ने इसे पहला उपन्यास माना है।
- इसमें बताया है कि देश के बनिये जन्म-मरण विवाहादि में क्या-क्या करते हैं।
- पढ़ी-बेपढ़ औरतों में अन्तर, घर में स्त्री का समय किस-किस काम में व्यतीत होता है।
- बेपढ़ स्त्री कोई काम करती तो क्या हानि होती हैं। परन्तु जब पढ़ी उसी काम को करती है तो क्या लाभ है।
- बनियों के घर क्या होता है वह सब लिख दिया।
- मेरठ में सर्वसुख नाम का अग्रवाल बनिया का ।
- मंडी में आडत की दुकान।
- ब्याज-बट्टे और गिर्वी-पाते की भी आमदनी ।
- सब कुछ था, अपने पुरुषार्थ से। धन, धान्य, पुत्र आदि ।
- दो बेटी - पार्वती, सुखदेई
- दो लडके - दौलत राम, छोटे लाल - छोटे को अंग्रेजी पढ़ाया।
- छोटे की बहू पढ़ी लिखी थी। छोटे की बहू के लडका हुआ ।
- बड़े की बहू गवार व लडाकू तथा चुगलखोर थी। बड़े की बहू के लडकी हुई।
- "स्त्रियों को जानने वाली पुस्तकों से सबसे बेहतरीन है।"

2.परीक्षा गुरु उपन्यास - लाला श्रीनिवास दास

लाला श्रीनिवासदास व्यवसाय से एक व्यापारी थे और अपने जीवन अनुभव को उन्होंने बखूबी रूप से इस उपन्यास में ढाला हैं । परीक्षा-गुरु मदनमोहन नाम के एक रईस व्यापारी की कहानी हैं । वह दिल से अच्छा इन्सान है पर गलत संगत में आकर वह पतन को न्योता देता हैं । कर्जे में डूब जाने की वजह से उसे

कारावास भुगतना पड़ता है और उसका वकील दोस्त ब्रजकिशोर उसे मुक्ति दिलाता हैं जिसके बाद उसका ह्रदय-परिवर्तन होता हैं ।
इस उपन्यास को 41 सर्गो में बाँटा गया हैं । इस उपन्यास के कुछ सामान्य लक्षण निम्नलिखित हैं -
1.कर्म के सिद्धांत में अत्यंत श्रद्धा
2.धर्म का पुनर्वास
3.पाप कितने गहरे हैं उसके हिसाब से उसका फल मिलना
यह उपन्यास अंग्रेज़ उपनिवेश के दौरान लिखा गया था । उपन्यास को एक आधुनिक स्वरूप माना जाता है और जहा तक हिंदी उपन्यास की बात है तो हम कह सकते है कि हिंदी उपन्यास की गाथा परंपरा और आधुनिकता के बीच के वंद्व की गाथा है । परीक्षा-गुरु में भी यह द्वंद्व साफ़ दिखाई देता हैं ।

आधुनिकता की पहली निशानी हैं उपन्यास का समय जो की सिर्फ पाँच दिनों तक सीमित हैं । पुराने कथानकों की तरह पूरी जिंदगी की बात करने की जगह यहाँ मदनमोहन के जीवन के पाँच महत्वपूर्ण दिनों का चित्रण हैं । मध्कालीन रूमानी कथाओं की जगह वास्तविक चरित्रों ने ली हैं और भाषा-कर्म विविध रंगों से खिला हैं । उपन्यास की भाषा में भी परंपरा और आधुनिकता का वंद्व दिखाई दे पड़ता हैं । अंग्रेजी पात्रों की प्रस्तुति के कारण कुछ अंग्रेजी शब्दों का उपयोग हैं तो साथ ही प्रारंभिक हिंदी एवं संस्कृत और फ़ारसी का भी उपयोग हैं । श्रीनिवासदास भाषा-प्रयोजन के प्रति अति-जागरूक मालूम होते हैं और अलग अलग परिस्थितियों में वह उचित भाषा का प्रयोग करना जानते हैं । जैसे की नैतिक और उपदेशात्मक सर्गों में संस्कृत-फ़ारसी का ज़्यादा उपयोग हैं तो सामान्य बातचीत में बोल-चाल की हिंदी का उपयोग हैं ।
जहाँ तक चरित्रों की बात हैं तो प्रस्तुत उपन्यास पहली बार चरित्रों को उनके मनुष्य-स्वरूप में समझने की कोशिश करता हैं ।

मदनमोहन को अंग्रेजी जीवन-पद्धति अपनाते हुए दिखाया हैं जो उसके पतन का कारण बनती हैं जबकि ब्रजकिशोर के चरित्र का आदर्श चित्रण किया गया हैं । वह समझदार हैं और वह अंग्रेजी जीवन-पद्धति का अँधा अनुकरण करने में नहीं मानता बल्कि अंग्रेजों से जो चीज़े सीखने लायक हैं वही अपनाता हैं । ब्रजकिशोर कचेरी (कोर्ट) में काम करता हैं जो की एक आधुनिक और उपनिवेशी संस्था हैं मगर अपनी परंपरा को वह बिलकुल नहीं भूला । जहाँ तक स्त्रीपात्रों का सवाल हैं उपन्यास अपने स्त्री-चरित्रों को उतना उजागर नहीं कर पाया । मदनमोहन की पत्नी उसको कारावास होने पर उसे छोड़ कर चली जाती हैं पर जब मदनमोहन का ह्रदय-परिवर्तन होता हैं तब वह वापस भी आ जाती हैं । इसके सिवा उसके हिस्से में ज़्यादा कुछ नहीं हैं करने को ।

परीक्षा-गुरु का मुख्य उद्देश्य नैतिक मूल्यों का चित्रण एवं शिक्षण था । कलाकृति बनाने का मोह इसमे इतना नहीं मौजूद जितना उपदेश मौजूद हैं । यह मानसिकता आनेवाले युग में बदल जाएगी ।

श्रीनिवासदास अंग्रेजी उपन्यासकार ओलिवर गोल्डस्मिथ से प्रभावित थे और साथ ही संस्कृत साहित्य की नीति-कथाओ और जातक-कथाओं से भी उन्होंने उतना ही ग्रहण किया था । इससे भी साफ़ नज़र आता हैं कि परीक्षा-गुरु पर आधुनिकता व व परंपरा दोनों का प्रभाव था ।

महत्वपूर्ण तथ्य :

> यह उपन्यास अंग्रेज़ उपनिवेश के दौरान लिखा गया था -

>इस उपन्यास में नैतिक शिक्षा का उपदेश दिया गया है।

उपन्यास का प्रकाशन - 1882 ई.

> "यह मेरे लिए परीक्षा की घडी है, क्योंकि इस वक्त पाठको को तिलिस्म, अय्यारी और दूसरी तरह की कहानियों में रुचि है। हर कोई सपनों की दुनिया में जीना चाहता है। मैं ऐसे दौर में यथार्थ को लिखने की कोशिश कर रहा हूँ। जिस तरह दिन और रात शाश्वत हैं ठीक उसी तरह मेरी कहानी के लाला मदन मोहन एवं ब्रज किशोर, चुन्नी लाल एवं शम्भू दयाल भी शाश्वत हैं।" कथन है - लाला श्रीनिवास दास

> इस उपन्यास को शब्दों की त्रुटि का बेहद आरोपित उपन्यास माना जाता है। इसको इसीलिए आलोचकों ने प्रथम उपन्यास नहीं माना।

> लाला मदनमोहन एक अंग्रेजी सौदागर की दुकान में अस्वाब देख रहे हैं।

>लाला ब्रज किशोर, मुन्शी चुन्नी लाल, और मास्टर शम्भू दयाल लाला मदन मोहन के साथ है।

> दिल्ली के एक काल्पनिक रईस का चित्र उतारा है।

> "चतुर मनुष्य को जितने खर्च में अच्छी प्रतिष्ठा अथवा धन मिल सकता है, मूर्ख को उससे अधिक खर्च ने पर भी कुछ नहीं मिलता" |

> परीक्षा गुरु V 'धनी दरिद्री सकल जन हैं जग के अधीन
चाहत धनी विशेष कुछ तासों से अति दीन ।'

> परीक्षा गुरु - ब्रजभाषा में लिखा उपन्यास है। ।

>इसमें कुल 41 प्रकरण है।

उपन्यास नहीं मानान्दों की त्रुटि का बेहद आ

3.गोदान उपन्यास सारांश व प्रश्नोत्तर

अवध प्रांत में पांच मील के फासले पर दो गाँव हैं : सेमरी और बेलारी। होरी बेलारी में रहता है और राय साहब अमर पाल सिंह सेमरी में रहते हैं। खन्ना, मालती और डॉ.मेहता लखनऊ में रहते हैं।

गोदान का आरंभ ग्रामीण परिवेश से होता है। धनिया के मना करने पर भी होरी रायसाहब से मिलने बेलारी से सेमरी जाता है। उसे लगता है कि रायसाहब से मिलते रहने से कुछ सामाजिक मर्यादा बढ़ जाती है। वह कहता है, "यह इसी मिलते-जुलते रहने का परसाद है कि अब तब जान जान बची हुई है।" वह समझता है कि इनके पाँवों तले अपनी गर्दन दबी हुई है। इसलिए उन पाँवों के सहलाने में ही कुशल है।

रास्ते में उसे पडोस के गाँव का ग्वाला(भोला) मिलता है। उसकी गायों को देखकर होरी के मन में एक गाय रखने की लालसा उत्पन्न होती है। वह विधुर भोला के मन में फिर से सगाई करा देने का लालच देता है।

भोला उसे अस्सी रुपये की गाय उधार पर ले जाने का आग्रह करता है और अपने पास भूसे की कमी बात करता है। होरी अभाव में पड़े आदमी से गाय ले लेने को उचित न मानकर फिर ले लूंगा। कहकर गाय लेने से मना कर देता है, पर भूसा देने का वायदा कर सेमरी में पहुँचता है।

रायसाहब अपनी असुविधाओं को बता कर चाहते हैं कि टैक्स की वसूली में होरी उनकी सहायता करे। होरी उनकी बातों आ जाता है। इस समय एक आदमी आकर राय साहब को बताता है कि मजदूर बेगार करने से मना कर रहे है। यह सुनकर राय साहब आग बबूला हो जाते हैं और उन्हें हंटर से ठीक करने की कह उठकर चले जाते हैं।

घर पर पहुँचर होरी रायसाहब भी तारीफ करता है बेटा गोबर उन्हें 'रंगा सियार' कहकर उनसे अपनी नफरत जाहिर करता है। होरी बताता है कि उसने भोला को भूसा देने का वचन दिया है। यह सुनकर गोबर और धनिया उस पर बिगडते है। होरी जब बताता है कि भोला धनिया की प्रशंसा कर रहा था, तब धनिया कुछ नरम पड जाती है। भोला भूसा लेने आता है। धनिया तीन खोंचे भूसा भरवाकर पति और बेटे को उसके घर तक भूसा पहुँचाने को कहती है।

भोला के घर पर उसकी विधवा बेटी झुनिया है। उससे गोबर की मुलाकात होती है। दोनों परस्पर के प्रति आकर्षित हो जाते हैं। भोला होरी से दूसरे दिन गाय ले लेने को कहता है।

दूसरे दिन गोबर भोला के घर से गाय लाता है। झुनिया उसे छोडने बेलारी के निकट तक आती है। फिर मिलने का वायदा करके लौट जाती है।

गाय के आते ही होरी के घर में आनन्द की लहर उमडती है। गाय का भव्य स्वागत किया जाता है। गाय के लिए आँगन में नाँद गाडी जाती है। गाँववाले आकर गाय के लक्षण भी और होरी की खुशकिस्मती की तारीफ करते है। केवल अलग्योझा हो गए उसके दो भाई हीरा और शोभा नहीं आते। इससे होरा की निंदा कर रहा था। होरी धनिया को यह बताता है। धनिया यह सुनकर उससे झगडती है।

सेमरी में राय साहब के घर पर उत्सव है। उसमें धनुषयज्ञ नाटक में होरी जनक के माली का अभिनय करता है। उत्सव के लिए होरी को पांच रुपये नजराना देना है। राय साबह के मेहमानों में गाँव और शहर के लोग हैं। शहर के मेहमान हैं - बिजली पत्र के संपादक पं. ओंकारनाथ, वकील तथा दलाल मि. तंखा, दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर डॉ. मेहता, मिल मालिक मि. खन्ना, उनकी धर्मपत्नी कामिनी (गोविन्दी), डॉक्टर मिस मालती और मिर्जा खुशींद।

वहाँ बातचीत में रायसाहब जमींदारी प्रथा के शोषण की निंदा करते हैं। डॉ. मेहता और रायसाहब की कथनी और करनी के अंतर में प्रति व्यंग्य करते हैं। भोजन के समय मांस-मदिरा का स्थान छोडकर ओंकारनाथ को भुलावे में डालकर शराब पिलवा देती है और वायदे के मुताबिक एक हजार रुपये इनाम लेती है। उसी समय पठान के वेश में डॉ. मेहता आकर रुपये मांगते हैं और धमकी देते हैं कि रुपए न मिले तो वे गोली चला

देंगे। अंत में होरी वहाँ प्रवेश करके पठान को गिराकर उसकी मूंछे उखाङ लेता है। पठान के वेश में आए मेहता की नाटकबाजी वहीं खत्म हो जाती है।

उसी समय सब शिकार खेलने जाने का कार्यक्रम बनाते हैं। तीन टोलियाँ बनती हैं। पहली टोली में मेहता और मालती जाते हैं। मालती मेहता के प्रति आकर्षित है, पर मेहता को इस ओर कोई आकर्षण नहीं है। मेहता को शिकार की चिडिया पानी से लाकर एक जंगली लडकी देती है और दोनों को अपने घर तक ले जाकर मधुर व्यवहार से खुश कर देती है। इससे मालती ईर्ष्या करती है तो वह मेहता की नजर में गिर जाती है। दूसरी टोली के रायसाहब और खन्ना के बीच मिल के शेयर के बारे में बातचीत होती है। रायसाहब शेयर खरीदने की बात टाल देते हैं। तीसरी टोली में तंखा और मिर्जा हैं। मिर्जा एक हिरन का शिकार करते हैं। हिरन को एक ग्रामीण युवक को देते हैं। सब मिलकर उस युवक के गाँव में जाते हैं। खा-पीकर खुशी से सारा दिन वहाँ बताकर शाम को लौअ आते हैं।

होरी के घर पर गाय आ जाने से सब खुश थे। इतने में रायसाहब को कारिंदा कहता है कि नोखेराम बाकी लगान न चुकाने वाले खेत में हल नहीं जोत सकेंगे। होरी पैसे का इंतजाम करने के लिए साहूकार झींगुरीसिंह के पास पहुँचता है। झींगुरी सिंह की आँख गाय पर थी। उसने गाय ले लेने का चक्कर चलाया और कर्ज न लेकर लाचार होकर गाय बेचकर लगान चुकाने के लिए वह राजी हो जाता है और धनिया को भी राजी कर लेता है। रात को घर के भीतर उसम होने के कारण वह गाय को बाहर लाकर बांधता है और बीमार शोभा को देखकर लौटते समय गाय के पास हीरा को देखकर ठिठक जाता है। उसी रात को विष दिए जाने से गाय मर जाती है तो होरी धनिया को हीरा पर शक होने की बात बता देता है तो धनिया हीरा को गालियाँ देती है और सारे गाँव में कोहरराम मचा देती है। होरी भाई को बचाने के लिए सच को छिपाकर गोबर की झूठी कसम खा लेता है। जाँच पड़ताल करने दारोगा गाँव में आता है। गाँव के मुख्या लोग इस विपत्ति का फायदा उठाने के लिए हीरा पर जुर्माना लगाते हैं। कुर्की से बचने तथा परिवार की इज्जत बचाने होरी झिंगुरी सिंह से कर्ज लेकर रिश्वत के पैसे लाता है, पर धनिया के कारण वह दारोगा को मिल नहीं पाता। दारोगा मुखिया लोगों के घर की तलाशी लेने की धमकी देकर उनसे भी रिश्वत के पैसे वसूल करके चला जाता है। गोहत्या करके पाप के डर से हीरा घर से भाग जाता है। होरी हीरा की पत्नी पुनिया को खेत संभालता है। बीच में एक महीने तक बीमार भी पङ जाता है।

एक रात होरी कडकती सर्दी में खेत की रखवाली कर रहा था कि धनिया वहाँ पहुँच जाती है और बताती है कि पांच महीने का गर्भ लेकर झुनिया घर में आ गई है। होरी पहले उसे निकाल देने की बात तो करता है, बाद में धनिया के समझाने पर उसे अपने घर में रहने का आश्वासन देता है। अब फिर से पंचायत को होरी का गला दबाने का मौका मिल जाता है। झुनिया के एक लडका होता है। बिरादरी में ऐसे पाप के लिए गाँव की पंचायत होरी पर सौ रुपए नकद और तीस मन अनाज का डाँड लगाती है। धनिया पंचायत पर बहुत फुफकारती है। पर होरी झिंगुरी सिंह के पास मकान रेहन पर रखकर अस्सी रुपये लाता है और डाँड चुकाता है।

गोबर-झुनिया को चुपके से अपने घर में छोड़कर लोकलज्जा के भय से लखनऊ शहर भाग जाता है। वह मिर्जा खुर्शीद के यहाँ महीन के पंद्रह रुपये वेतन पर नौकरी करता है। उनकी दी हुई कोठरी में रहता है।

डाँड में सारा अनाज दे देने के बाद होरी के पास कुछ नहीं बचता। इसी समय पुनिया उसकी सहायता करती है। वर्षा के अभाव से उसकी ईख सूख जाती है। भोला गाय के रुपये लेना चाहता है। होरी रुपये दे नहीं पाता। भोला होरी के बैल खोलकर ले जाता है। गाँववाले इसका विरोध करते हैं, पर धर्म के भय से मर्यादावादी और ईमानदार होरी विवश होकर इसकी अनुमति दे देता है।

मालती राजनीतिक और सामाजिक कार्यों में व्यस्त रहने वाली महिला है। उसके प्रयत्न से मेहता वीमेन्स लीग में भाषण देने के दौरान महिलाओं को समान अधिकार की मांग छोड़कर त्याग, दया, क्षमा अपनाने सुझाव देते हैं, जो गृहस्थ जीवन के लिए निहायत जरूरी है।

मालती मेहता से सहमत होती है। वह मेहता को अपने घर पर खाने बुलाती है। उसी समय मेहता आरोप लगाते हैं कि उसी के कारण मि. खन्ना, मिसेज खन्ना से अच्छा बर्ताव नहीं करते। यह सुनकर मालती बिगाड़ जाती है और अपने घर चली जाती है।

रायसाहब को पता चल जाता है कि होरी से वसूल किए गए डाँड के सारे पैसे गाँव के मुखिया लोग खा गए। वे नोखेराम से रुपये देने को कहते हैं तो चारों महाजन 'बिजली' के संपादक ओंकारनाथ को सूचना दे देते हैं कि वे अपनी पत्रिका में ऐसी सनसनीखेज खबर छापने जा रहे हैं। रायसाहब सौ ग्राहकों का चंदा रिश्वत के रूप में भरकर किसी तरह इसे छापने से रोक लेते हैं।

जब गाँव में बुवाई शुरू हो जाती है तब होरी के पास बैल नहीं है। होरी की लाचारी का फायदा उठाकर दातादीन होरी से साझे में बुवाई करने का प्रस्ताव देकर होरी को मजदूर के स्तर तक ले जाता है।

उधर दातादीन का बेटा मातादीन झुनिया को प्रेम-पाश में फँसाने के लिए प्रयास करता है। लेकिन बीच में सोना पहुँच जाने से मामला गड़बड़ होने से बच जाता है।
होरी ईख बेचने जाता है तो मिल मालिक से मिलकर महाजन सारा रुपया कर्ज के लिए वसूल कर लेते हैं।

मि. खन्ना और उसकी पत्नी गोविंदी के स्वभाव में आकाश - पाताल का अंतर है। गोविंदी सादा जीवन पसन्द करती है तो मि. खन्ना विलासमय जीवन। एक बार पति-पत्नी में बेटे के इलाज के लिए भिन्न-भिन्न डॉक्टरों को बुलाने के मतांतर मेहता से होती है। मेहता उसकी प्रशंसा कर के उसे समझा बुझा कर घर लौटा लाते हैं। होरी दातादीन की मजूरी करने लगता है।

होरी दातादीन की मजदूरी करने लगता है। ईख काटते समय कड़ी मेहनत करने के कारण वह बेहोश हो जाता है। उधर गोबर अब नौकरी छोड़कर खोंचा लगाने के काम में लग जाता है। उसके पास दो पैसे हो

जाते हैं। वह एक दिन गाँव में पहुँचता है। वह सभी के लिए सामान लाता है। गाँव में गोबर महाजनों की बडी बेइज्जती करता है। होली के अवसर पर गाँव के मुखिया लोगों की नकल करके अभिनय किया जाता है। फलस्वरूप गोबर सभी महाजनों के क्रोध का शिकार बन जाता है। जंगी को शहर में नौकरी कराने का लोभ दिखाकर उसे प्रभावित कर देते हैं। वह भोला को मना कर नोखेराम को लगान वसूल करके रसीद न देने पर उसे अदालत की धमकी देता है। झुनिया को फुसलाकर शहर जाते समय माँ से झगड़ा हो जाता है। माँ के पांव में सिर न झुकाकर बिलकुल उदंड और स्वार्थी बनकर बाल-बच्चों को लेकर शहर चला जाता है।

राय साहब की कई समस्याएँ थीं। उनको कन्या का विवाह करना था, अदालत में एक मुकदमा करना था और सिर पर चुनाव भी थे। कुंवर दिग्विजय सिंह के साथ शादी तय हुई थी। राजा साहब के साथ चुनाव लडना था। पैसों की कमी थी इसीलिए वे तंखा के पास उधार मांगने के लिए जाते हैं। वे मना करते हैं तो वे खन्ना के पास जाते हैं। खन्ना पहले आनाकानी करके बाद में कमीशन लेकर पैसों का इंतजाम कर सकने की बात बताते हैं। बातचीत के दौरान मेहता महिलाओं की व्यायामशाला की नींव रखने के लिए मना करते हैं। रायसाहब पांच हजार लिख देते हैं। फिर मालती पहुँचती है तो खन्ना से एक हजार का चैक लिखवा लेती है।

मातादीन की रखैल सिलिया अनाज के ढेर से कोई सेर भर अनाज दुलारी सहुआइन को दे देती है तो मातादीन उसे धिक्कारता है। निकल जाने को कहता है। सिलिया दुःखी होती है। सिलिया के बाप हरखू के कहने पर उसके साथी मातादीन के मुँह पर हड्डी डालकर उसे जातिभ्रष्ट कर देते हैं। धनिया सिलिया को अपने घर पर रख लेती है। सिलिया मजदूरी करके गुजरबसर करती है। सोना सत्रह साल की हो गई थी। उसके विवाह के लिए पैसों की जरूरत थी। सोना को मालूम हुआ कि पिता विवाह के लिए दुलारी से दो सौ रुपये लाएँगे। सोना सिलिया को भावी पति मथुरा के पास भेजती है। ससुरालवाले बिना दहेज के बहू लेने को तैयार हो गए। लेकिन धनिया अपनी मर्यादा बचाने के लिए दहेज देना चाहती है।

भोला एक जवान विधवा नोहरी से विवाह करता है। नोहरी के साथ बहुओं से नहीं पटती। पुत्र कामना भोला को घर से भगा देती है। नोखेराम नोहरी की लालसा से भोला को नौकर रख लेता है। नोहरी गाँव की रानी की जाती का है। लाला पटेश्वरी साहूकार मंगरू शाह को मंगरू शाह को भडकाकर होरी की सारी नोहरी गाँव की रानी की जाती का है। लाला पटेश्वरी साहूकार मंगरू शाह को भडकाकर होरी की सारी ईख नीलाम कर देता है। इससे उगाही की उम्मीद न होने से दुलारी होरी को शादी के लिए दो सौ रुपये नहीं देती है। इतने में सहानुभूति दिखाकर नोहरी होरी को दो सौ रुपये देकर अपनी दयाशीलता का परिचय देती है।

शहर में परिवार लाकर गोबर देखता है कि जहाँ वह खोंचा लगाता था, वहीं दूसरा बैठने लगा है। उसको कारोबार में घाटा हुआ तो वह मिल में नौकरी कर लेता है। झुनिया को गोबर की कामुकता पसंद नहीं आती। गोबर को बेटा मर जाता है। झुनिया गर्भवती है। गोबर नशा करने लगा है। झुनिया को पीटता है, गालियाँ

देता है। चुहिया की सहायता से झुनिया एक बेटे को जन्म देती है। मिल में झगड़ा हो जाने से गोबर घायल हो जाता है। मिल गोबर की सेवा करने के दौरान पति पत्नी में फिर संबंध स्वाभाविक हो जाता है।

मातादीन नोहरी के प्रति फिर से आकर्षित होता है। वह सिलिया के लिए छोटी को दो रुपये देता है। रुपये पाकर सिलिया खुश होती है। यह समाचार देने सोना के ससुराल पहुँचती है। मथुरा नोहरी से प्रेम-निवेदन करता है। दोनों पास-पास आ जाते हैं तो सोना की आवाज से पीछे हट जाते हैं। सोना सिलिया को बहुत फटकारती है।

मिल में आग लग गई थी। मिल में नए मजदूर ठीक से काम नहीं कर पा रहे थे। इसलिए पुराने मजदूर ले लिए जाते हैं। खन्ना-गोविंदी का मनमुटाव मिट जाता है। मेहता से प्रेरित होकर मालती सेवा-व्रत में लगी रहती है। एक दिन मेहता और मालती होरी के गाँव में पहुँचकर लोगों से मिलते हैं। सहायता करते हैं। राय साहब की लङकी की शादी हो जाती है। मुकदमे और चुनाव में भी जीत होती है। वे लोग होम मेंबर भी बन जाते हैं। राजा साहब रायसाहब के पुत्र रुद्रप्रताप मालती की बहन सरोज से विवाह करके इंग्लैण्ड चला जाता है। फिर रायसाहब की बेटी और दामाद में विवाह विच्छेद हो जाता है। मालती देखती है कि दूसरों की सेवा करने के कारण ऊँची वेतन के बावजूद उन पर कर्ज है। कुर्की भी आई है। तब मालती मेहता को अपने घर पर ले आती है। उनकी सहायता करती है। मालती गोबर को माली रख लेती है। उसके बेटे की चिकित्सा और सेवा भी करती हैं। मालती मेहता से विवाह करना अस्वीकार करके मित्र बनकर रहने को पसंद करती है।

मातादीन सिलिया के बालक को प्यार करता है। वह निमोनिया में कर जाता है। मातादीन सिलिया के प्रति आकर्षित होता है। सारा जाति-बंधन तोङकर उसके साथ रहता है।

होरी की आर्थिक दशा दिनोंदिन गिरती जाती है। तीन साल तक लगान न चुकाने से नोखेराम बेदखली का दावा करता है। मातादीन होरी को सुझाव देता है कि अधेङ रामसेवक मेहता से रूपा की शादी करके बदले में कुछ रुपए ले लें और खेती करे। होरी यह सुनकर बङा दुःखी होता है। पर अंत में होरी और धनिया राजी हो जाते हैं। गोबर को शादी में आने की खबर दी जाती है। गोबर झुनिया को लेकर गाँव में पहुँचता है। रूपा की शादी होती है। मालती भी शादी में शरीक होती है। गोबर गाँव में झुनिया को छोङकर लखनऊ चला जाता है।

रूपा ससुराल में समृद्धि देखकर पिता की गाय की लालसा की बात सोचकर दुःखी होती है। मैक जाते समय वह एक गाय ले जाने की बात सोचती है। होरी पोते मंगल के लिए गाय लेना चाहता था। इसलिए वह कंकङ खोदने की मजदूरी करता है। रात को बैठकर धनिया के साथ सुतली कातता है। एक दिन हीरा आकर पहुँचता है और होरी से । माफी मांगता है। होरी खुश हो जाता है। होरी कंकङ खोदते समय दोपहर की छुट्टी के समय लेट जाता है। उसको कै (उल्टी) होती है। उसे लू लग जाती है। धनिया भाग कर आती है। सब इकट्ठे हो जाते हैं। शोभा और हीरा को घर पर ले गए। होरी की जबान बंद हो गई। धनिया घरेलू

उपचार करती है। सब बेकार जाता है। हीरा गो-दान करने को कहता है। दूसरे लोग भी यही कहते हैं। धनिया सुतली बेचकर रखे बीस आने पैसे पति के ठंडे हाथ में रखकर ब्राह्मण दातादीन से बोलती है - महाराज घर में न गाय है न बछिया, न पैसा। यही इनका गोदान है।

विशेष - 'गोदान' केवल वर्तमान का एक निष्पक्ष चित्र है। उसमें आगत भविष्य की सम्भावनाओं झाँकी नहीं कराई गयी है। इसमें तो एक चरित्र को लेकर उसे अनेक परिस्थितियों में डालकर तथा बहुत से पात्रों और चरित्रों को संसर्ग में लाकर समाज का एक जीवित चित्र निर्माण किया गया है। इसमें भी 'गबन' की भाँति कथावस्तु और चरित्र में भेद नहीं रह गया है। 'होरी' के चरित्र की थोड़ी सी विशेषता दिखलाकर और उसे एक विशेष वातावरण में रखकर लेखक तटस्थ होकर स्वयं द्रष्टा बन जाता है। होरी अपने जातिगत स्वभाव से ही नवीन परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है और फिर विवश होकर उनके अनुसार ही ढल जाता है। इस परिस्थितियों की तरंगों में डूबता-उतरता नियति के हाथों का खिलौना वह कृषक जीवन-यात्रा के अंतिम छोर तक चला जाता है, परन्तु नगर वाले कथानक में यह बात इतनी स्पष्ट नहीं है। वहाँ पर परिस्थितियों की प्रतिक्रिया व्यक्ति पर इतनी सरलता से नहीं होती। रायसाहब, मिर्जा खुर्शेद तथा मेहता आदि प्रायः सभी में वैयक्तिकता है, परन्तु यह वैयक्तिकता इतनी सबल भी नहीं है कि वह परिस्थितियों को तोड़-मरोड़ सके।

वास्तव में 'गोदान' में साहूकारों द्वारा किसान के शोषण की ही कहानी है। ये साहूकार कई प्रकार के है, जिनमें झिंगुरीसिंह, पंडित दातादीन, लाला पटेश्वरी, दुलारी सहुआइन आदि | साहूकार के अतिरिक्त जमींदार और सरकार के अत्याचार का भी गोदान में साधारण दिग्दर्शन कराया गया है, किन्तु साहूकार, जमींदार और सरकार सबसे बढकर । किसानों के सिर पर बिरादरी का भूत होता है। बिरादरी से अलग जीवन की वह कोई कल्पना ही नहीं कर सकता है। शादी-ब्याह, मुंडन-छेदन, जन्म-मरण सब कुछ बिरादरी के हाथ में है। आप बड़े से बड़े पाप कर्म करते जाए, किन्तु बिरादरी तब तक सिर न उठाएगी जब आप उसके द्वारा निर्धारित कृत्रिम मर्यादा का पालन करते जा रहे है। जो इन कृत्रिम सामाजिक बन्धनों के निर्वाह में चुका है उसके लिए वह ग्रामीण समाज कठोर से कठोर दण्ड-व्यवस्था अपनाता है। हमारे किसानों ने धर्म का एक बड़ा ही विकृत रूप अपनाया है, किन्तु धीरे-धीरे गाँवों में भी उष्ण रक्त इन कृत्रिमताओं का विरोध करने लगा है। 'गोदान' में गोबर, मातादीन, सिलिया, झुनिया आदि इसके उदाहरण हैं।

प्रेमचन्द का स्पष्ट कथन है कि 'मेरे उपन्यास का उद्देश्य है धन के आधार पर दुश्मनी' । प्रेमचन्द ने अपनी सहानुभूति का बहुत बड़ा भाग शोषित वर्ग को समर्पित किया है। उन्होंने जमींदारों, पूँजीपतियों, महाजनों, धार्मिक पाखण्डियों के दोषों पर तीखे प्रहार किए हैं। उन्होंने उपन्यास में प्रतिपादित किया है कि किसान को सबसे अधिक महाजनी सभ्यता से गुजरना पड़ता है। महाजनी सभ्यता क्रूरता तथा शोषण पर आधारित है।

पात्र-परिचयः

होरी-(मुख्य नायक)

धनिया होरी की पत्नी

होरी की संतान- गोबर, सोना, रूपा
झुनिया- गोबर की पत्नी (भोला की विधवा बेटी)
होरी के भाई- हीरा, शोभा
मालती
मेहता
साहूकार-झिंगुरी सिंह, पंडित दातादीन, लाला पटेश्वरी, दुलारी सहुआइन
- होरी की इच्छा पछाई गाय लेने की थी। ।
- होरी भोला (ग्वाला) से गाय लाया था।
- होरी के गाँव का नाम- बेलारी।
- "गाँव क्या था, पुरवा था, दस-बारह घरों का, जिसमें आधे खपरैल के थे, आधे फूस के।"-कोदई
- गाँव का वर्णन। - गोबर का वास्तविक नाम-गोवर्धन ।
- बाहर से तितली है और भीतरी से मधुमक्खी' यह कथन 'गोदान' उपन्यास में मालती के लिए।
- 'गोदान' उपन्यास यथार्थवाद उपन्यास है, न कि आदर्शवाद ।
- "पहना दो मेरे हाथ में हथकड़ियाँ, देख लिया तुम्हारा न्याय और अक्ल की दौड" कथन है धनिया का।
- उपन्यास में महाजनी सभ्यता का विरोध हुआ है।
- कृषक की आर्थिक समस्या का चित्रण हुआ है।
- यह उपन्यास समस्या प्रधान है। ।
-'गोदान में गाँधी और मार्क्स को प्रेमचन्द ने घुला- मिला दिया है।'- कथन है
बच्चन सिंह का।
- प्रेमचन्द का सबसे विख्यात और अंतिम उपन्यास-गोदान (1936 ई.)।
- गोदान की कथावस्तु-कृषक की समस्या। - होरी के पास पाँच बीघा जमीन थी।
- गाँव की कथा और शहर की कथा साथ-साथ चलती है फिर दोनों कथाओं में संबंद्धता और संतुलन पाया जाता है।
- गोदान एक राष्ट्रीय प्रतिनिधि उपन्यास है। ।
- उपन्यास में शोषण व अन्याय के विरूद्ध भरती हुई नई पीढी की विद्रोह और असंतोष का प्रतीक है गोबर।
- मालती व मेहता लखनऊ में रहते है।
- रायसाहब सेमरी गाँव में रहते है।
- प्रेमचन्द ने गोदान को संक्रमण की पीडा का दस्तावेज बताया है।
- पंडित दातादीन के पुत्र का नाम मातादीन था।
- अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने वाले वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है - गोबर
- गोदान के दो शहरी पात्रों के नाम - मिस मालती, प्रो. मेहता ।
- होरी ने रूपा का विवाह दो सौ रुपये उधार लेकर किया।
- 'मैं ब्राह्मण नहीं, चमार ही रहना चाहता हूँ, जो अपना धर्म पाले, वही ब्राह्मण है, जो धर्म से मुँह
- मोड़े, वही चमार है। यह कथन है - मातादीन का |

- हीरा पाँच साल तक पागलखाने में रहा।
- होरी का सबसे छोटा भाई शोभा था।
- गोदान उपन्यास में 36 अध्याय है।
- गोदान उपन्यास को स्वयं प्रेमचन्द ने ग्रामीण जीवन और कृषि संस्कृति का महाकाव्य कहा है। ।
- गोदान उपन्यास में प्रेमचन्द ने किस्सागोई की उस कला को प्रस्तुत करने में सफलता प्राप्त की, जो घटनाओं पर नहीं मनोवैज्ञानिक स्थितियों से दीप्त सहज सामान्य मानवीय व्यापारों पर जीती है।
- भोला झुनिया का पिता है।।
- होरी की बेटियों के नाम - रूपा, सोना।
- रायसाहब अमरपाल सिंह बेलारी व सेमरी गाँव के जमींदार है। दातादीन बेलारी गाँव का ब्राह्मण है।
- गोदान का केन्द्र-बिन्दु गाय की लालसा है।
- गोदान उपन्यास में दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक प्रोफेसर बी. मेहता है।
- गोदान उपन्यास में नवयुग की रमणियों से पनाह माँगने वाला बताया गया है - मिस्टर मेहता।
- धनुषयज्ञ में राजा जनक के माली का अभिनय होरी करता है।
- अफगान बने मिस्टर मेहता को होरी ने दबोचा।
- बेलारी गाँव का सबसे बडा महाजन झिंगुरी सिंह था।
- होरी की गाय का नाम सुंदरिया है।
- गाँव में पशु चिकित्सा का आचार्य दातादीन था।
- दातादीन का पुत्र मातादीन सिलिया से प्रेम करता है।
- उपन्यास में गाँव का नारद दातादीन को कहा गया है।
- पंचायत द्वारा होरी पर सौ रुपये नकद तथा तीस मन अनाज का जुर्माना लगाया जाता है।
- होरी ने अपना घर अस्सी रुपये में गिरवी रख दिया था।
- 'प्रेम जब आत्मसमर्पण का रूप ले लेता है, तभी ब्याह है; उसके पहले ऐयाशी है।' कथन है - मिस्टर मेहता का।
- मिर्जा खुर्शद ने गोबर को पन्द्रह रुपए महीने की नौकरी दी।
मालती की बहन सरोज है।
- 'मैं प्राणियों के विकास में स्त्री के पद को पुरुषों के पद से श्रेष्ठ समझता हूँ।' कथन है - मिस्टर मेहता का।
- गोविन्दी खन्ना की पत्नी है।
- गोबर एक वर्ष बाद लखनऊ शहर से अपने गाँव आता है।
- ईंट का जवाब चाहे पत्थर हो, लेकिन सन्तान का जवाब तो गाली नहीं।' कथन है - धनिया का।
- भोला की पत्नी नोहरी थी।
- होरी की मृत्यु लू लगने से होती है।

*4.*शेखर एक जीवनी भाग-*1* (अज्ञेय)

सारांश

"शेखरः एक जीवनी' (पहला भाग) में उपन्यासकार ने वाहियक दृष्टिकोण के बदले प्रस्तुत उपन्यास में पात्रों के आंतरिक क्रिया-प्रतिक्रियाओं को बखुबी अभिव्यक्त करने का प्रयास किया हैं। अस्थिरता, अकेलापन, अजनबीपन, पीडा आदि ने आज के युवापीढ़ियों को घेरे रखा हैं। उपन्यास के केंद्रीय पात्र "शेखर' आज के युवापीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता हैं। उपन्यासकार ने पात्र के उन मनः स्थितियों को नई संवेदना से संरचना कर अपनी कलात्मकता का परिचय दिया हैं। शेखर कोई बड़ा आदमी तो नहीं है, वह आधुनिक तथा हमारे बीच का ही एक आम इंसान हैं। शेखर में ऐसा कोई आदर्श या नायक होने के विशेष गुण भी नहीं है जिसके सहारे नई पीढ़ी के लोग उसे अनुसरण करने के लिए प्रेरित हो और वह ऐसे कोई महान कार्य किया भी नहीं जिसके कारण समय के प्रवाहमान गति में उसके दस्तखत को सदा सदा के लिए लोगों के स्मृति के पट पर विराजमान रहे। मेरे शोध पत्र का उद्देश्य वर्तमान के सन्दर्भ में शेखर : एक जीवनी (पहला भाग) उपन्यास की प्रासंगिकता को अभिव्यक्त करना हैं।

प्रस्तावना -

आज हम इक्कीसवीं शदी के आधुनिक मानव हैं। विज्ञान और प्रयुक्ति विद्या के अत्याधुनिक प्रयोगों ने मानव को ऊँचे शिखरों पर पहुंचा दिया हैं। भागदौड भरी जिंदगी ने मानव को मशीनी यंत्र के रूप में परिवर्तित कर दिया हैं। फिर भी क्या हम जिंदगी से संतुष्ट हैं ? क्या हमारी जिज्ञासाओं की पूर्णता हमें प्राप्त हुई हैं ? इतने व्यस्ततापूर्ण होने के बावजूद भी कहीं न कहीं आज भी हमारे बीच शेखर बैठा हुआ हैं। भीड में भी अकेलापन की अहसास ने हम सबको भीतर ही भीतर खोखला बना दिया हैं। सन् 1941 में रचित शेखर : एक जीवनी उपन्यास की यही एक खासियत हैं। आज इक्कीसवीं शदी में भी शेखर जैसे हजारों-करोडों शेखर हमारे बीच हैं। उपन्यासकार की गहन जीवनबोध और चिंतन परिपक्वता का यही आधार हैं जहाँ पाठक समुदाय पात्र के मूल संवेदना के साथ तादात्म्य स्थापित करने में सक्षम होते हैं। शेखर : एक जीवनी (पहला भाग) एक बाल मनोवैज्ञानिक उपन्यास हैं। जिसमें शेखर के शिशुकालीन अवस्था से लेकर यौवन अवस्था का वर्णन प्रस्तुत हैं। हर बालक की तरह उपन्यास के पात्र शेखर के मन में भी हर नई वस्तुओं के प्रति जिज्ञासाएँ हैं, कौतुहल हैं। वह उस सत्य की खोज करना चाहते हैं जिससे उसकी जिज्ञासाएँ शांत हो सके । जन्म, मृत्यु के भेद के रहस्य को जानने की प्रवल इच्छा शेखर में जागते हैं। बच्चे जन्म कैसे लेते हैं, कहाँ से आते हैं, बहन मांगा था भाई क्यों आया ? इत्यादि, इत्यादि..... | मन में आये तरह तरह के सवाल का सटिक उत्तर मिले तो कहाँ से मिले ? उपन्यास में उपन्यासकार ने शिशु मानस में आनेवाली तमाम भावनाओं को बड़ी ही दिलचप्स रूप से अभिव्यक्त क्या हैं, यथा

सरस्वती बोली - शेखर तुम्हारी एक और बहिन हो गयी हैं।
बहिन ? बहिनें भी होती हैं ? शेखर ने पूछा, तुम्हारे जैसी ?
दुर पागल ! अभी तो इतनी छोटी हैं - पिद्दी-सी ? जब बडी होगी -
शेखर ने बड़े गंभीर स्वर में कहा, 'सरस्वती' ।
सरस्वती विस्मित-सी होकर बोली, 'क्या हैं ? 'शेखर ने कभी उसे नाम लेकर नहीं बुलाया था।'
जो मैं पूछूगा बताओगी ? झूठ मत बताना, चाहे बताना मत। सरस्वती ने कुछ संदिग्ध स्वर मैं कहा, 'क्या?'

शेखर बड़े प्रयास से कह पाया - बच्चे कैसे आते हैं ?
सरस्वती ने सहसा कोई उत्तर नहीं दिया।
जन्म के जिज्ञासा के समान ही मृत्यु के रहस्य के प्रति भी शेखर में जिज्ञासा हैं, यथा -
शेखर ने सरस्वती से पूछा - मरते कैसे हैं ?
मर जाते हैं और क्या ?
मरकर क्या होता है ?
पागल! जान नहीं रहती, चल-फिर बोल नहीं सकते, तब ले जाकर जला देते हैं।
डूबने से ऐसे ही मर जाते हैं ?
हाँ।
क्यों मरते हैं ?
साँस बन्द हो जाती है, तब जान निकल जाती है।
जान क्या होती है ?
होती है बस।
उसने फिर आग्रह किया, 'क्या होती है ?'

मुझे नहीं मालूम, पिताजी से पूछो!
थोड़ी देर बाद शेखर ने फिर पूछा - जान आती कहाँ से है ?
ईश्वर से।
जाती कहाँ है ?
ईश्वर के पास।
ईश्वर ले लेता है ?
हाँ।

आज कल के बच्चे ज्यादा वास्तववादी हैं। उन्हें गुँहि फुसलाया जाना आसान नहीं होता। हर वस्तुओं को वे आँखों के सामने देखना पसंद करते हैं। अदृश्य वस्तुओं के प्रति जिज्ञासा तो हैं पर उनकी जिज्ञासाओं का अगर सटिक उत्तर न मिले तो उसके प्रति युक्तिसंगत तर्क देना देखा जाता है। शेखर एक ऐसा ही बालक है, उसे ईश्वर के बारे में जानना है। ईश्वर है तो कहाँ है ? वह सामने क्यों प्रकट नहीं होता ? उनकी हर जिज्ञासा में ईश्वर खडा होता है बाधक के रूप में। अतः बालक के मन में ईश्वर के प्रति प्रबल विद्रोह जाग उठता है, यथा -

"मैं ईश्वर को नहीं मानता ! मैं प्रार्थना भी नहीं मानता! भवानी झूठी है। ईश्वर झूठा है। ईश्वर नहीं है।"

दुनिया में ऐसा कौन सा बालक है जो उत्तरदायित्व की भावना से अपने आपको गर्व का अनुभव न किया हो। कम से कम उसी समय जब उम्र के हिसाब से कोई बडा काम उसे सौंपा जाता हो। शेखर के शिशु मन में भी अहं भावना का प्रस्फुटन तब होता है जब उसे बड़े भाई इलाज के लिए डॉक्टर को बुला लाने का

उत्तरदायित्व सौंपा जाता है। जीवन को परिचालित करनेवाली ये अहं भावना दराचलतः व्यक्ति की मूल संवेदना शक्ति है। उपन्यासकार ने बालक के उन मनःस्थितियों का मनोवैज्ञानिक ढंग से आंकलन किया है। काम मिलने की प्रसन्नता से बालक शेखर अपनी उत्तरदायित्व की भावना को भूलकर सडक पर स्थित लाल-लाल लेटरबॉक्स की ओर आकर्षित होकर स्वाभिमान भरे मन से उसी के ऊपर बैठकर स्वप्ने देखने लगे।

"वह संसार से एक लेटरबॉक्स की ऊँचाई भर ऊँचा है। अपने इस आसन से वह सारा संसार देखता है, उसकी क्षुद्रता पर हँसता है। तभी डाकिया-क्षद्र संसार का क्षुद्र डाकिया! आकर उसके स्वप्न को तोड देता है, उसे वहाँ से उतर जाने को कहता है, और उसके तत्काल न मानने पर झटक कर फिर कहता है..... तब हतवैभव शिशुसम्राट अपना बदला भी लेते हैं - कि उतरते समय डाकिये की उँगलियों पर ही गिरते हैं, उन्हें कुचल देते हैं, और भाग जाते हैं, घर पहुँचकर ही दम लेते हैं, और फूले हुए श्वास को शांत करते-करते अपने को विश्वास दिला देते हैं कि अब वे विजयी है।"

भय मनुष्य के जीवन की एक स्वाभाविक जन्मजात प्रवृत्ति हैं। चूँकि बालक के लिए भय की अनुभूमि और भी डरावना होता है। जब तक उसे सत्य का अनुभव स्वयं प्राप्त न कर ले। बालक शेखर भी एक बार अजाबघर में भीमकाय बाघ को देखकर पहले तो डर जाते हैं पर जब उसे असलियत का पता चलता है तो वह वैसे ही एक नकली बाघ को चीरकर उसके भीतर भरे हुए घास-फूल को बिखेर देता है, तभी जाकर उसके भय भावना का शमन होता है।

"शिशु शेखर ने जाना, डर डरने से होता है, संसार की सब भयानक वस्तुएँ हैं, केवल एक घास-फूल से भरा निर्जीव चाम, जिससे डरना मूर्खता है।"

सृष्टि के अपार रहस्य के आगे विज्ञान भी नतमस्तक है। मनुष्य ईश्वर के सृष्टि की एक अनमोल उपहार है। बढ़ती उम्र के साथ शारीरिक अवयवों में बदलाव आना स्वाभाविक है। फ्रायड के मनोवैज्ञानिक सूत्र के आधार पर मनुष्य जन्म से ही तीन सहजात प्रवृत्तियों के द्वारा परिचालित होते हैं। अगर मनुष्य सामाजिक व्यवहार या अन्य दबाव के कारण इन प्रवृत्तियों को दमन करते हैं तो मनुष्य के ऊपर उसका बुरा असर पडने के साथ साथ व्यक्ति के मानसिक संतुलन बिगडने की भी संभावना बनी रहती है। ये तीन प्रवृत्तियाँ हैं - अहं, भय और सेक्स।

इस संदर्भ में हम डॉ. सत्यपाल सिंह के मत का उल्लेख इस प्रकार कर सकते हैं -

'उसे लेटरबॉक्स पर बैठकर दूसरों के पाँव को कुचलते हुए मानो विजेता बनकर भाग खड़ा होना उसकी अहं ही व्यक्त करता हैं, अजायबघर के नकली बाघ से भागना भय की प्रेरणा को निदर्शित करता हैं और किसी अनुचित वर्जित दृश्य को देखकर वैसे ही भावना का अनुभव करना उसकी काम प्रेरणा को'
उपन्यासकार अज्ञेय ने शेखर : एक जीवनी उपन्यास के माध्यम से शिशु शेखर के मन में प्रस्फुटित यौन वासना को सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकित किया हैं। साधारणतः मध्यमवर्गीय परिवार में यौन भावना का खुले

रूप में चर्चा नहीं होती है। शेखर भी मध्यवर्गीय परिवार का सदस्य है, जिसके कारण शेखर के मन में यौन भावना के प्रति एक प्रकार तो जिज्ञासाएँ है दूसरी तरफ सामाजिक और पारिवारिक लोगों के दवाब के कारण खुले रूप से यौन भावना के प्रति एकप्रकार तो जिज्ञासाएँ है दूसरी तरफ सामाजिक और पारिवारिक लोगों के दवाब के कारण खुले रूप से यौन भावना को जानने का मौका नहीं मिल पाते हैं। सरस्वती शेखर की बड़ी बहन ही नहीं है, वह तो बचपन के साथी, शेखर के अकेलापन के संगी है। एक वही तो है जो शेखर को समझता है, उसके मन की बात को बिना किसी संकोच से सरस्वती से पूँछ सकता है। शेखर सरस्वती से बहुत कुछ जानकारी तो प्राप्त कर लेते हैं और बाकी सारी बातों को जानने के लिए वह पिता के अलमारी में बंद यौन गंधी किताबों के सहारे सेक्स सम्बन्धी सारी बातों की जानकारी प्राप्त कर लेते हैं। दुनिया शेखर के सामने खुल जाते हैं, तभी माता-पिता के एक दूसरे के प्रति व्यवहार की जानकारी भी उसे प्राप्त हो जाते हैं।

शेखर ने रोमाँ रोलाँ का यह वाक्य पढ़ा कि "सत्य उनके लिए है जिनमें उसे सह लेने की शक्ति है" उस दिन उसने सिर उठाकर देखा कि वह समुद्र पार कर आया है, कि वह सम्पूर्ण है, मुक्त है, और पुरुष है।

वर्तमान समय के भागदौङ भरी जिंदगी में माता-पिता और बच्चों के रिश्तों में काफी दूरिया आ गयी है। बच्चे बहुत तनावों में रहते है। अपनी मन की बातों को खुले रूप में प्रकट न कर पाने के कारण या दवाबों के कारण बच्चे असामाजिक कार्य में प्रवृत्त होते दिखाई देते हैं। अज्ञेय कृत शेखर: एक जीवनी उपन्यास में उपन्यासकार ने माता-पिता के व्यवहार का बच्चों के ऊपर कैसा असर पङ सकता है उसका भी जिक्र यहाँ किया है। उपन्यास के मुख्य पात्र शेखर कभी भी अपने माँ को अपना नहीं पाए | माँ का अपने बेटे के प्रति अविश्वास की भावना ने शेखर को माँ से कोसों दूर
ले गया बल्कि माँ की अंतिम विदाई के समय में शेखर उपस्थित होने की न्यूनतम कष्ट भी नहीं उठा पाए और सबसे बडी बात पात्र में उसके द्वारा किये गए कार्य के प्रति अपनी पूरी जिंदगी में कभी भी कोई पश्चाताव की भावना भी नहीं दिखाया गया है।
शेखर के शब्दों में -

"अविश्वसनीय होने से कुत्ता, चूहा, दुर्गन्धित कृमि-कीट होना अच्छा है।

" शेखर का माँ के प्रति प्रबल घृणा भावना एक ओर अन्य स्थल पर इस प्रकार अभिव्यक्त होता है -

"माँ का कोई काम नहीं करूँगा, कोई काम नहीं करूँगा, जिसमें कि उसे बाध्य होकर भी मेरा रत्ती भी विश्वास करना पड़े, उससे बोलूँगा ही नहीं, कभी कोई पूछेगा तो भी कहुँगा कि वह मेरी माँ ही नहीं है -"

युगीन वातावरण का प्रभाव हर रचना में देखने को मिलता है। शेखर अपने समय के एक प्रतिनिधि पात्र हैं। शेखर: एक जीवनी उपन्यास में गांधीवाद का गहरा प्रभाव परिलक्षित होता है। शेखर गांधीवाद से ही प्रभावित होकर 'स्वाधीन और बाधाहीन भारत' नाम से एक नाटक लिखे थे। उस समय गाँधी के आदर्श के प्रति आसक्त होना युग की मांग थी। विदेशी वस्तुओं के प्रति तीव्र घृणा की भावना, देशी वस्तुओं के प्रति लगाव,

गाँधी का नारा उस समय के सभी लोगों को विशेषकर युवापीढ़ियों को गहरे रूप से प्रभावित किया था। अज्ञेय के पात्र शेखर भी इससे अलग नहीं है। देश को विदेशी के हाथों से बचाने के लिए राष्ट्रीय स्वयं सेवक के कार्य कर्ता के रूप में शेखर नियुक्त हुए थे और जेल का जीवन भी व्यतीत करना पड़ा था। आज आधुनिक और तकनीकी के युग में निश्चित रूप से हम बहुत प्रगति कर रहें हैं लेकिन कोई भी अपनी युगीन वातावरण के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सकते । युग के राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक आदि वातावरण के प्रभाव हर एक प्राणी के ऊपर छाएँ हुए है। एक सफल उपन्यासकार की यह गहन जीवनबोध है कि उनके द्वारा अंकित किए गए पात्र हर युग के जीवंत पात्र के रूप में प्रतिविम्बित हो।।

द्वितीय विश्वयुद्ध के फलस्वरूप मध्यमवर्गीय भारतीय समाज में सामाजिक जीवन के परिप्रेक्ष में बहुत कुछ बदलाव आए। सहज-सरल जीवन शैली में जीनेवाले लोगों की विचारधारा के स्थान पर संकुचित विचारधाराएँ पनपने लगे थे। उपन्यासकार ने उन स्थितियों को नजदीकी से देखा ही नहीं स्वयं उसके द्वारा आक्रांत थे। उपन्यासकार का जीवन दर्शन वस्तुतः शेखर पात्र के माध्यम से प्रतिविम्बित करने का प्रयास है। शेखर पारम्परिक समाज व्यवस्था से असंतुष्ट है। उसके प्रति वह घोर विद्रोह करते हैं। एक ब्राह्मण परिवार के सदस्य होकर भी शेखर ब्राह्मणों के लिए संरक्षित होस्टल को छोडकर हरिजन सम्प्रदायों के लिए संरक्षित होस्टल में जाकर रहने के स्थिर सिद्धांत लेना उस समय के सामाजिक व्यवस्था के प्रति तीव्र आक्रोश को ही तो व्यक्त करता है। स्वाधीनता के इतने साल बीत जाने के बाद भी क्या हम सही सही अर्थ में समाज के वर्षों प्रचलित उन पुरानी मान्यताओं से मुक्त हो पाये हैं ? क्या समाज में आज भी कुरीतियाँ, वर्णवैषम्य, अंधविश्वास, रूढ़िवादिता, छुआछूत की भावनाओं ने लोगों को जकड कर नहीं रखा है ? उच्च-नीच की भावना एक सामाजिक व्याधि है, जिससे पारम्परिक सदभावना को आघात पहुँचता है। निसंदेह आज हम सभी आधुनिक शिक्षित नागरिक है। जमाने के साथ साथ कदम मिलाते चलते हैं, फिर भी भारतीय समाज में आज भी सामाजिक ढाँचा में पूर्ण रूप में बदलाव नहीं हो पाए। जब समाज के लोगों के मानसिकता में बदलाव आएंगे तब समाज में सही अर्थ में हम स्वाधीन, स्वतंत्त, आधुनिक नागरिक के रूप में तभी हम विश्व में अपना अस्तित्व स्थापित कर पाएंगे।

निष्कर्ष -

शेखर: एक जीवनी उपन्यास हिंदी उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में एक सफल आधुनिक शिशु मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। यह अपने युग के समय ही सही दस्तावेज है। शेखर के माध्यम से उपन्यासकार ने जीवन को दुबारा जीने का प्रयास किया है। जीवन मूल्य के विघटन ने आज आधुनिक जीवन को पूर्ण रूप से विशृंखलित बना दिया है। उपन्यासकार ने शेखर पात्र के माध्यम से उसी का अन्वेषण करता है। जीवन के अंतिम पडाव में पहुँचकर वह फिर से अपने विगत जीवन का अवलोकन करते हैं। जैसे-जैसे शेखर पात्र के साथ पाठक आगे बढ़ते हैं उसके साथ का सम्बन्ध गंभीर होता चला जाता है। पात्र के साथ सहृदयता बढ़ता जाता है। ऐसा नहीं लगता है कि शेखर कोई उपन्यास के पात्र है, उसके जीवनानुभव दराचलतः हर आम बालक के जीवनानुभव है। अज्ञेय कृत शेखर: एक जीवनी उपन्यास की यही एक खासियत हैं कि उपन्यासकार ने पाठक को अपनी दृष्टिकोण से पात्र को परखने की खुली आजादी भी दे देते हैं। एक जागरूक उपन्यासकार होने के नाते अज्ञेय ने उनके उपन्यास के पात्र के अंतर्द्वन्द्व, उलझन, दर्शन को इस

प्रकार अभिव्यक्त किया है कि पाठक समुदाय उसके भीतर के सत्य को खोजने के लिए एकप्रकार की तीव्र जिज्ञासा का अनुभव करते हैं।

शेखर : एक जीवनी उपन्यास युग सापेक्ष है। युगानुरूप परिदृश्य में शेखर की प्रासंगिकता को नकार नहीं सकते हैं। शेखरः एक जीवनी उपन्यास जिस समय लिखा गया था उस समय भी प्रासंगिक थे और आज के समय में भी शेखरः एक जीवनी प्रासंगिक है। शेखर एक जीवंत पात्र है, इसलिए शेखर: एक जीवनी उपन्यास हिंदी साहित्य जगत के एक कालजयी उपन्यास है। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि अज्ञेय के समग्र उपन्यास साहित्य में से शेखर: एक जीवनी एक अन्यतम कृति है। दूसरी ओर अज्ञेय हिंदी जगत में केवल एक व्यक्ति नहीं बल्कि एक अनुष्ठान है।

हत्वपूर्ण तथ्य -

- बाल मनोवैज्ञानिक उपन्यास ।
- "मैं ईश्वर को नहीं मानता! मैं प्रार्थना भी नहीं मानता! भवानी झूठी है! ईश्वर झूठा है! ईश्वर नहीं है! - कथन है - शेखर का।
- गाँधीवादी प्रभाव (उपन्यास पर)
- 1941 ई. (पहला भाग) - 1944 (दूसरा भाग)
- स्वतन्त्रता आन्दोलन के वक्त।
- शेखर को माँ बेरिस्टर बनाना चाहती थी और पिता शेखर को इंजीनियर बनाना चाहते थे।
- सरस्वती - शेखर की बडी बहन ।
- शारदा - छोटी उम्र की साथी
- शशी - रिश्ते में दूर की बहिन - भय, सेक्स, जिज्ञासा का चित्रण |
- फ्लेश बैक पद्धति पर आधारित उपन्यास ।
- रोमारोंला के ज्याँ क्रिस्ताफ का स्पष्ट प्रभाव
- शेखर की खोज अंततोगत्वा स्वतंत्रता की खोज है - अज्ञेय
- आलोचकों ने इस उपन्यास की आलोचना 'प्रकाशमान पुच्छलतारे' से की है।
- पहले भाग में चार अध्याय है -
  (1) उषा और ईश्वर
  (2) बीज और अंकुर
  (3) प्रकृति और पुरूष
  (4) पुरूष और परिस्थिति

ट्रिक -क्रम से

उषा में अंकुरित बीज प्राकृतिक रूप से पुरूष के लिए अच्छे है।

- शेखर माँ से घृणा करता है।

विषय - प्रेम या प्रणय भावना का चित्रण

विद्रोही चेतना का चरित्र चित्रण

क्रान्ति की भावना
बालविज्ञान का चित्रण
किशोरावस्था का चित्रण
- शेखर के 17 वर्ष की कहानी
- "शेखर में मेरा मन अधिक है, शेखर निःसन्देह एक व्यक्ति का अभिन्न दस्तावेज है, यद्यपि वह साथ ही उस व्यक्ति के युग संघर्ष का प्रतिबिम्ब भी है।' - अज्ञेय । - शेखर एक जीवंत पात्र है, इसलिए शेखरः एक जीवनी उपन्यास हिंदी साहित्य जगत के एक कालजयी उपन्यास है।

5. बाणभट्ट की आत्मकथा -आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

बाणभट्ट की आत्मकथा आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी रचित एक ऐतिहासिक हिन्दी उपन्यास है। इसमें तीन प्रमुख पात्र हैंबाणभट्ट, भट्टिनी तथा निपुणिका। इस पुस्तक का प्रथम प्रकाशन वर्ष 1946 में राजकमल प्रकाशन ने किया था। इसका नवीन प्रकाशन 1 सितम्बर 2010 को किया गया था। यह उपन्यास आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की विपुल रचना-सामर्थ्य का रहस्य उनके विशद शास्त्रीय ज्ञान में नहीं, बल्कि उस पारदर्शी जीवन-दृष्टि में निहित है, जो युग का नहीं युग-युग का सत्य देखती है। उनकी प्रतिभा ने इतिहास का उपयोग 'तीसरी आँख' के रूप में किया है और अतीतकालीन चेतना-प्रवाह को वर्तमान जीवनधारा से जोड़ पाने में वह आश्चर्यजनक रूप से सफल हुई है। बाणभट्ट की आत्मकथा अपनी समस्त औपन्यासिक संरचना और भंगिमा में कथा-कृति होते हुए भी महाकाव्यत्व की गरिमा से पूर्ण है। इस उपन्यास में द्विवेदी जी ने प्राचीन कवि बाणभट्ट के बिखरे जीवन-सूत्रों को बड़ी कलात्मकता से गूंथकर एक ऐसी कथाभूमि निर्मित की है जो जीवन-सत्यों से रसमय साक्षात्कार कराती है। इसका कथानायक कोरा भावुक कवि नहीं वरन कर्मनिरत और संघर्षशील जीवन-योद्धा है। उसके लिए 'शरीर केवल भार नहीं, मिट्टी का ढेला नहीं', बल्कि 'उससे बड़ा' है और उसके मन में आर्यावर्त के उद्धार का निमित्त बनने की तीव्र बेचैनी है। 'अपने को निःशेष भाव से दे देने' में जीवन की सार्थकता देखने वाली निउनिया और 'सबकुछ भूल जाने की साधना' में लीन महादेवी भट्टिनी के प्रति उसका प्रेम जब उच्चता का वरण कर लेता है तो यही गूंज अंत में रह जाती है- 'बाणभट्ट की आत्मकथा' हर्षकालीन सभ्यता एवं संस्कृति का जीवन्त दस्तावेज है। ऐतिहासिक उपन्यासकार को अतीत में भी प्रवेश करना पड़ता है। अतीत में प्रविष्ट हो कर ही इतिहास को वर्तमान संदर्भो के साथ जोड़ पाता है। इसी जुड़ाव के माध्यम से ऐतिहासिक उपन्यासकार अतीत को चित्रित करता है।

हर्षवर्धन के समय में कन्नौज और थानेश्वर की क्या सामाजिक, राजनैतिक स्थिति थी| यही नहीं उस काल के दर्शन और दृष्टि आज भी उपयुक्त है जैसे "आज सायंकाल तुम्हे यहाँ से चल देना होगा, भट्ट! राजनीति भुजंग से भी अधिक कुटिल है, असिधारा से भी अधिक दुर्गम है, विद्युत् शिखा से भी अधिक चंचल है |...तुम झूठ से शायद घृणा करते हो, मै भी करता हूँ; परन्तु जो समाज-व्यवस्था झूठ को प्रश्रय देने के लिए ही तैयार की गई है, उसे मानकर अगर कोई कल्याण कार्य करना चाहो, तो तुम्हे झूठ का ही प्रश्रय लेना पड़ेगा | सत्य इस समाज-व्यवस्था में प्रचछन्न होकर वास कर रहा है। तुम उसे पहचानने में भूल मत करना| इतिहास साक्षी है की देखि सुनी बात को ज्यों का त्यों कह देना या माँ लेना सत्य नहीं है | सत्य वह है जिससे लोक का आत्यंतिक कल्याण होता है। ऊपर से वह भी झूठ क्यों न दिखाई देता हो, वाही सत्य

है।" इसका सन्दर्भ महाभारत के शांति पर्व से लिया गया है | जब बाणभट्ट राजकुमारी देव पुत्र नंदिनी की रक्षा और उन्हें अपने पिता से मिलाने का बीड़ा उठाते है | यह प्रसंग और वाक्य इसलिए भी महत्वपूर्ण है की हम आज भी यह मानते है की आँखों से देखा हुआ ही सत्य है, हम उसके अन्दर के निहितार्थ और गूढ बातो को समझने का प्रयत्न भी नहीं करते| चाहे वो हमारा परिवार हो, राजनैतिक स्थिति हो, पत्रकारिता जगत हो या कर्म क्षेत्र, हर जगह "तथ्य" की बात होती है, उस घटना या भाव की मनोस्थिति पर चर्चा ना कोई करना चाहता है और ना कोई सुनना चाहता है। इसी क्रम में जब कुमार कृष्णवर्मा आगे बाणभट्ट से कहते है की "मै तुमसे आशा रखता हु की उचित अवसर पर न तो झूठ से झल्ला उठोगे और ना एसे झूठ बोलने में हिचकोगे ही, जिससे समग्र मनुष्य जाति उपकृत होती हो|"

प्रायः हम ये मानते है की अगर हम सत्य और ईमानदार है तो किसी से नहीं डरना चाहिए और जो मन में आये बोल देना चहिये परन्तु जब आगे पढ़ते है कि "सबसे बड़े सत्य को भी सर्वत्र बोलने का निषेध किया है। औषध के सामान अनुचित स्थान पर प्रयुक्त होने पर सत्य भी विष हो जाता है| हमारी समाज व्यवस्था ही एसी है की उसमें सत्य अधिकतर स्थानों में विष का काम करता है।"

पुस्तक जिस क्रम में आगे बढ़ती है वैसे वैसे वह एक इतिहास के टुकड़े को लेकर व्यापक सामाजिक अध्ययन में बदल जाती है| मानव संवेदनाओ के बीच बीच मध्यकाल के विभिन्न साम्राज्यों और अक्रान्ताओ के बीच उठने वाले सांस्कृतिक संघर्ष का भी विवरण मिलता है| "ज्योतिषी की बात पर विश्वास ना करना उसकी समझ में आने लायक बात नहीं थी| मैंने कुछ अधिक नहीं कहा| केवल आकाश की ओर देखकर एक दीर्घ निश्वाश लिया|" तथापि आगे पढ़ के ज्ञात होता है की ज्योतिष आदि विज्ञान बाहर के अक्रान्ताओ की विद्या थी जिसे भारतीय समाज ने पूर्णतः अपना आत्मसात कर लिया है जैसे "मैं जानता हूँ कि इधर हाल ही में यवन लोगों ने जिस प्रकार होरा-शास्त्र और प्रश्न-शास्त्र नामक ज्योतिष विद्या का प्रचार इस देश में किया है, वह यावनी पुराण-गाथा के आधार पर रचा हुआ एक अटकलपच्चु विधान है | भारतीय विद्या ने जिस कर्म-फल और पुनर्जन्म का सिद्धांत प्रतिपादित किया है, उसके साथ इसका कोई मेल ही नहीं है| यहाँ तक की हमारे पुराण-प्रथित गृह देवताओ की जाति, स्वभाव, और लिंग तक में अद्भुत विरोध स्वीकार कर लिए गए है, क्योकि यवन-गाथाओ में वीनस और दियना देवियाँ है और वे ही इन ग्रंथो की अधिष्ठात्री देवी मान ली गई है ।" युद्ध की स्थिति का विवरण करते हुए और उस अवस्था में सभी वर्गों की एकता की आवश्यकता पर बल देते हुए अष्टादश उच्छ्वास में भैरवी का उच्चारण "राजाओ का भरोसा करना प्रमाद है, राजपुत्रों की सेनाओं का मुह ताकना कायरता है | आत्म-रक्षा का भार किसी एक जाति पर छोड़ना मूर्खता है। जवानों, प्रत्यंत दस्यु आ रहे है !" इसी पाठ में आगे भारतीय समाज के विभिन्न ऊँच-नीच आदि की चर्चा किया गया है और यह सन्देश देने का प्रयास है की समाज में स्तरीकरण के कारण किस प्रकार राष्ट्र का अस्तित्व ही खतरे में पद जाता है। जैसा की अज भी भारत वर्ष में है, विभिन्न जाति, धर्म, समुदाय आदि के भेद देश को अन्दर से खोखला कर रहे है, और क्यों एक संगठित शक्ति की परम-आवश्यकता है |

"उन देव-पुत्रों की आशा छोड़ो जो सामान्य शोक के आघात से छुई-मुई की भांति मुरझा जाते है | जिस आधार पर खड़े होने जा रहे हो, वो दुर्बल है | संभल जाओ जवानों, ... मृत्यु का भय मिथ्या है, कर्तव्य में प्रमाद करना पाप है, संकोच और दुविधा अभिशाप है|जवानों, प्रत्यंत दस्यु आरहे है !"

राजसभा के वर्णन को यदि हम देखे तो चतुर्दश उच्छवास में लिखते है "राजसभा में असंयम और चापल्य का राज्य था| कोई सामंत पाशा खेलने के लिए कोठे खीच रहे थे, कोई धूतक्रीडा में उलझ चुके थे, कोई वीणा बजा रहे थे, कोई चित्रफलक पर राजा की प्रतिपूर्ति अंकित कर रहे थे और कोई-कोई अन्ताक्षरी, मानसी, प्रहेलिका, अक्षरचयुतक आदि काव्य विनोदो में व्याप्रत थे |...कुछ तो येसे भी ढीठ थे, जो भरी सभा में रमणियों के कपोल देश पर तिलक-रचना कर रहे थे...ज्यों ही महाराजाधिराज प्रधान अधिकरनिक और कुमार कृष्णवर्धन के साथ सभा मंडप में पधारे, त्यों ही सभा संयत और नियमानुसार शृंखलायुक्त हो गई।"

स्त्री-सौन्दर्य के वर्णन के असंख्य उदाहरण है जिसमे हर अवस्था और भाव भंगिमा को अलग अलग स्थितियों में विभिन्न तरीके से वर्णित है| चाहे वो निउनिया का वर्णन हो या त्रिपुरभैरवी का मंडल्मुख या भट्टिनी का सौन्दर्य और आभामंडल वर्णन | हर पात्र के लिए उपयुक्त और चुने हुए विशेषणों का प्रयोग नवीन है, जो कि कही कही सामान्य हिंदी जानने या समझने वाले के लिए कठिन है। जैसे षोडश उच्छ्वास में निपुणिका के सौन्दर्य का वर्णन कुछ इस प्रकार है "वे (केश) आपांडू-दुर्बल मुख के ऊपर इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे, मानो प्रभातकालीन चंद्रमंडल के पीछे सजल जलधर लटके हों | श्वेत साड़ी से आवेष्टित उसकी तन्वी अन्गलता प्रफुल्ल कामिनी-गुल्म के समान अभिराम दिखाई दे रही थी यद्यपि उसका मुख पीला पड़ गया था, तथापि उसकी खंजनचटुल आँखे बड़ी मनोहर लग रही थीं| आज उसके अधरों पर स्वाभाविक हसीं खेल रही थी|" इसके अलावा इस महिला-प्रधान उपन्यास में जो स्पष्ट जीवनदर्शन है वो प्रशंशा योग्य है जैसे "साधारणतः जिन स्त्रियों को चंचल और कुल-भ्रष्टा माना जाता है उनमें एक दैवी शक्ति भी होती है, यह बात लोग भूल जाते है | मै नहीं भूलता | मै स्त्री शरीर को देव-मंदिर के समान पवित्र मानता हूँ ।"

वैसे तो हिंदी भाषा साहित्य में रत्नों की कमी नहीं है और भारतेंदु हरिश्चंद्र, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, प्रेमचंद , आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी , निराला सैकड़ो अन्य नाम प्रसिद्द है, उनमें पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी का नाम भी प्रमुख है। इस पुस्तक की विशेषता यही है की यह मूल पाण्डुलिपि जो कि अपूर्ण थी उसका अनुवाद है | जहाँ कही भी कोई पृष्ठ अपूर्ण या तारतम्य नहीं मिल रहा था वहा पर उसी काल के अन्य काव्य वा उपन्यासों का उपयोग लिया गया है जैसे की रत्नावली, हर्षचरित, कादंबरी आदि जिससे एक सम्पूर्ण भाव मिल सके |

उपन्यास में बीच-बीच कुछ लघु वाक्य अपने में जीवन-दर्शन समेटे हुए है जैसे "सामान्य मनुष्य जिस कार्य हेतु लांछित होता है, उसी कार्य के लिए बड़े लोग सम्मानित होते है।" अथवा "सत्य के लिए किसी से नहीं डरना, गुरु से भी नहीं, मन्त्र से भी नहीं;लोक से भी नहीं, वेड से भी नहीं |" या उपन्यास के अंतिम कुछ

अध्यायों में युद्ध-प्रेरित समाज की मनोदशा और सन्यास लिए हुए ब्राह्मणों के परिवार की वेदना प्रकट की है

भाषा शैली आसान है और शब्द क्लिष्ट है और बीच-बीच में संस्कृत उन्मुख है परन्तु प्रष्ठभूमि के कारण उनका मतलब आसानी से निकल आता है |

- इसमें तीन प्रमुख पात्र हैं - बाणभट्ट, भट्टिनी तथा निपुणिका।
- बाणभट्ट की आत्मकथा अपनी समस्त औपन्यासिक संरचना और भंगिमा में कथा-कृति होते हुए भी महाकाव्यत्व की गरिमा से पूर्ण है।
- 'बाणभट्ट की आत्मकथा' हर्षकालीन सभ्यता एवं संस्कृति का जीवन्त दस्तावेज है।
- “मै तुमसे आशा रखता हु की उचित अवसर पर न तो झूठ से झल्ला उठोगे और ना एसे झूठ बोलने में हिचकोगे ही, - जिससे समग्र मनुष्य जाति उपकृत होती हो|”-कथन है - कृष्णवर्मा का बाणभट्ट से
- 4 उपन्यासों में प्रमुख हैं (बाणभट्ट की आत्मकथा)- हजारी प्रसाद की
- बाणभट्ट - हर्षवर्धन के दरबारी कवि थे : इन्होंने हर्षचरित रचना की जिसको उसके पुत्र ने पूरा किया।
- आजादी से ठीक पहले प्रकाशित हुआ था।
- कथानक में नये प्रयोग के लिए यह उपन्यास जाना गया।
- बाणभट्ट की आत्मकथा का कथानक अद्भूत है। बाणभट्ट की आत्मकथा हजारी ने लिखी पर (बाणभट्ट को लिखनी चाहिए) पर लिखी भी और ने।
- "मिस कैथराइन (आस्ट्रिया) श्रमण पर भारत में थी। शोण नदी के किनारे मिले एक पाण्डुलिपि को उन्होंने आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी को अनुवाद के लिए दी।"
- उस पाण्डुलिपि पर शीर्षक रूप में लिखवाया - "अध बाणभट्ट की आत्मकथा लिख्यते"
- "उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' सात दिनों की कथा है और तीन महीने अन्तराल के साथ कहा गया है।"
- यह इतिहास और कल्पना पर आधारित है।
- उद्देश्य - आजादी से पहले की स्थिति को पहचानना।
- निपुणिका को निझुनिया कहते हैं हजारी प्रसाद जी
- बाणभट्ट की आत्मकथा में 'भट्टिनी' देश की स्वतंत्रता का प्रतीक है।
- पात्र - बाणभट्ट, निपुणिका, भट्टिनी, महामाया, सुचरिता, अघोर भैरव, विरति वज्र।
- नारी के तीन रूपों का चित्रण - 1. प्रेमिका रूप 2. सन्यासी रूप 3. धर्म पत्नी रूप।
- प्रेम के उच्च कोटि का स्वरूप चित्रण।
- इस उपन्यास को क्लासिकल रोमांटिक उपन्यास माना है - बच्चन सिंह ने। - "बाण की कादम्बरी की तरह ही एक रोमांस है, हजारी प्रसाद का उपन्यास बाणभट्ट की आत्मकथा" कथन है - भगवतशरण उपाध्याय ।
- निपुणिका निम्न वर्ग की थी।
- निपुणिका बाण के साथ नाटक मण्डली में अभिनय करती थी। - महामाया के गुरु अघोर भैरव थे।

*6.*मैला आंचल-उपन्यास (सांराश और प्रश्नोत्तर)

मैला आंचल फणीश्वरनाथ रेणु जी को निर्विवाद प्रेमचन्द परम्परा की सामाजिक चेतना का सशक्त उपन्यास लेखक माना गया है | प्रेमचन्द के बाद फणीश्वरनाथ 'रेणु' जी ने निश्चित रुप से सामाजिक मूल्यो की पुष्टि कर, प्रेमचन्द की सामाजिक चेतना का विकास किया है ।"मैला आंचल" (1954), 'परती परिकथा '(1950), 'दीर्घतपा – (1963), और 'जुलूस ' (1965), लेखक की उपन्यास कृतियाँ है। फणीश्वर नाथ रेणु द्वारा लिखित उपन्यास मैला आंचल प्रेमचंद की गोदान के बाद 'हिन्दी साहित्यिक परंपरा में सबसे महत्वपूर्ण हिन्दी उपन्यास के रूप में माना जाता है| यह एक "आंचलिक उपन्यास" (क्षेत्रीय उपन्यास) में हिन्दी का सबसे बड़ा उदाहरण है| नेपाल की सीमा से सटे उत्तर-पूर्वी बिहार के एक पिछड़े ग्रामीण अंचल को पृष्ठभूमि बनाकर रेणु ने इसमें वहाँ के जीवन का, जिससे वह स्वयं ही घनिष्ट रुप से जुड़े हुए थे, अत्यन्त जीवन्त और मुखर चित्रण किया है। कथा-सार 'मैला आँचल' का कथानक एक युवा डॉक्टर है जो अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद पिछड़े गाँव को अपने कार्य-क्षेत्र के रुप में चुनता है, तथा इसी क्रम में ग्रामीण जीवन के पिछड़ेपन, दुःख-दैन्य, अभाव, अज्ञान, अन्धविश्वास के साथ-साथ तरह-तरह के सामाजिक शोषण-चक्रों में फँसी हुई जनता की पीड़ाओं और संघर्षों से भी उसका साक्षात्कार होता है। कथा का अन्त इस आशामय संकेत के साथ होता है कि युगों से सोई हुई ग्राम-चेतना तेजी से जाग रही है।कथाशिल्पी फणीश्वरनाथ रेणु की इस युगान्तकारी औपन्यासिक कृति में कथाशिल्प के साथ-साथ भाषाशिल्प और शैलीशिल्प का विलक्षण सामंजस्य है जो जितना सहज-स्वाभाविक है, उतना ही प्रभावकारी और मोहक भी | ग्रामीण अंचल कि धन्निओं और धूसर वातावरण से संपन्न यह उपन्यास हिंदी कथा-जगत में पिछले कई दशकों से एक क्लासिक रचना के रूप में स्थापित है। कुछ आलोचकों ने इसे गोदान के बाद इसे हिंदी का दूसरा सर्वश्रेष्ठ उपन्यास माना है। वस्तु-विधान 'मैला आंचल' में मुख्य कथा डा. प्रशांतकुमार और कमला की प्रेम-कथा है । 'मैला आंचल' के लेखक का उद्देश्य कोई कहानी कहना नहीं है, वह तो 'मैला आंचल' की ही एक कहानी कहता है । अनेकानेक पात्रों की कहानियों के द्वारा एक भारतीय ग्राम के माध्यम से भारतीय जनजीवन भारतीय जीवन की दुर्बलताओं , अभावों , कमियों और भारतीय जीवन की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक स्थितियो को अभिव्यक्त करना लेखक चाहता है, इसलिए कथा कहने का मोह लेखक को नहीं रहा है । उपन्यास का पूर्वाद्ध अत्यन्त रोचक एव गठित है और धीरे-धीरे वह शिथिलता की ओर दृढ़ गया है | डा. प्रशांत कुमार और कमला के प्रसंग से कथा मे एक गति आती है, जिसका प्रभावोत्पादक अंत दोनो के मिलन से हो गया है । उपन्यासकार के द्वारा उठाए गए राजनीतिक आदोलनों की रुपरेखा इस प्रेमकथा मे दब गई है | यह एक दृश्यात्मक उपन्यास है क्योकि यहाँ वर्णन न होकर छोटे-छोटे दृश्य है । परम्परागत शिल्प को आधार मानकर इस उपन्यास का विवेचन-विश्लेषण करे, तो यह अनुभव करेंगे कि केन्द्र मे मूलकथा के अभाव मे और अन्य कथाओ का मुख्य कथा से सैंकडो स्थलो पर सबंध न होने के कारण अन्विति का प्रभाव खटकेगा किंतु भारतीय जन जीवन के चित्रण को उपन्यास का कथ्य माने तो यह शिल्प की नवीनता के फलस्वरुप सुन्दर स्थापत्य का नमूना है | चरित्र-विधान वयक्तिपरक उपन्यासकार एक दो स्त्री-पुरुष के चरित्र को उपन्यास मे वैयक्तिकता के साथ प्रकट करता है, किंतु सामाजिक उपन्यासकार समष्टि को ही प्रधानता देता है । उपन्यासकार तटस्थ रहकर पात्रो का ढेर हमारे सामने रख देता है | सच्चाई मे यह उपन्यास चरित्रो की अभिव्यक्ति के स्थान पर, एक गांव की आत्मा को प्रकट करना चाहता

है । मैला आंचल' मे एक गांव की आत्मा की गाथा है और यह गांव विशिष्ट गांव न होकर उत्तर भारत का प्रत्येक गांव है जो जाग रहा है | अनेक चरित्र व्यक्ति चरित्र के प्रतीक है । सेवादास मठ के महन्त का, बलदेव राजनीतिक चेतना का, बावनदास गांधी जी का, कालीचरण सोशलिस्ट नेताओं का, वासुदेव कम्युनिष्ट नेता का, लक्ष्मी मठ की कोठारिन का, डाक्टर आदर्शवाद और मानवतावादी विचारधाराओं का प्रतीक है । बलदेव, बावनदास और कालीचरण का चरित्र- चित्रण अपूर्व उतरा है | लेखक को बलदेव का बडा ममत्व मिला है और उसका चरित्र बडा ही दर्दभरा और सजीव उतरा है । बावनदास महात्मा गांधी का प्रति-रुप है, और प्रतिरुप है उन देश के नेताओं का जो लोभ मे नही पडे | कालीचरण का चरित्र, देश की बढती हुई जागरुक जनता के प्रतिनिधि का |बलदेव, बावनदास और कालीचरण के चरित्रचित्रण द्वारा ही लेखक ने सामाजिक और राजनीतिक जीवन और उसके खोखलेपन का खाका खींचा है । डाक्टर और कमला उपन्यास के नायक और नायिका न होकर, प्रधान पुरुष और प्रधान स्त्री पात्र है । यह नायक नायिका विहीन उपन्यास है । रेणु के पात्रो के बारे मे यह गलत आरोप है कि रेणु का शिल्पविधान पात्रो के एक भावतत्व को नहीं , उनकी विच्छित्ति को प्रकट करने के लिए उपयुक्त है |सभी पात्र यथार्थ और सजीव रुप मे हमारे सामाने आते है, परतु उनकी भावात्मक सत्ता की दुर्बलता के कारण उनसे तादात्म्य प्राप्त करना कठिन लगता है । उपन्यासकार की दृष्टि मे व्यक्ति से अधिक परिवेश महत्वपूर्ण था, किंतु पात्रों की भावात्मक सत्ता है । 'रेणु' ने अपने हदय की संवेदना, ममता और करुणा उडेलकर प्राणवान पात्रो का निर्माण किया । रोग शैया पर लेटी कमला, कोठारिन लक्ष्मी और मानवतावादी प्रशातकुमार के हदय की धडकन और स्पन्दन हम स्पष्ट सुन सकते है | इसमे पात्रों की आशाएं और आकाक्षाएं, कुण्ठाएं और ईर्ष्या, प्रेम और घृणा, विश्वास और अविश्वास सभी हमारे सामने आते है | उपन्यास की पार्श्वभूमि मे आने वाली युवती-पात्र-ममता मे भी ममता और संवेदना कम नही है । प्रशात सोचता है शरतबाबू के उपन्यासो की यह नारी अपने विश्वास पर अडिग रहकर आज भी आगे बढ़ रही है । रुप बदल दो, नाम बदल दो, जगह बदल दो, पर यह कभी नही बदल सकती । शरत की नारियों की तरह “मैला आचल" के स्त्री-पात्र पुरुष-पात्रो की अपेक्षा अधिक प्राणावान है | परिवेश की प्रधानता होते हुए भी 'रेणु' ने अनगिनत प्राणवान पात्र दिये है | उद्देश्य डा. प्रशांतकुमार के जीवन और विचारो ने उपन्यास का उद्देश्य स्पष्ट किया है क्योंकि डाक्टर लेखक का प्रवक्ता है | डाक्टर लोक कल्याण करना चाहता है । डाक्टर ने चारो और राजनीतिक कुचक्रो और सामाजिक रुढियो मे लिपटी गरीबी और जहालत को देखा । डा. प्रशातकुमार ग्रामवासिनी का धूलभरा मैला आंचल देखना चाहता है और गांधी का प्रतीक बावनदास भी मानता है कि भारतमाता जार बेजार रो रही है । उपन्यासकार मेरीगंज के जनजीवन का चित्रण कर भारतीय-जीवन के रुदन-गरीबो और बीमारी को अभिव्यक्त करना चाहता है किंतु ममता प्रशांतकुमार को पत्र के माध्यम से आधुनिक युग की। युध्दजनित पीडित मानवता से जोडना चाहती है । वह आधुनिक सभ्यता की विभीषिका पर तीखा व्यंग प्रकट करती है कि युध्द के विषैले गैसो ने सारे समाज के मानवो को विकृत कर दिया है । मानवतावाद ही उपन्यास का मूल संदेश है । लेखक राजनीतिक मतवादी से मुक्त होकर मानव-कल्याण की कामना करता है । एक गांव के सामाजिक, धार्मिक ओर राजनैतिक जीवन का अंकन सामूहिक दृष्टिकोण से करता है | यहां व्यष्टि प्रमुख न होकर समष्टि का अंकन ही लेखक का उद्देश्य है । यहाँ, व्यक्ति चिंतन न होकर समाजचिंतन है, व्यष्टि सत्य न होकर समाज-सत्य, व्यक्ति न होकर समाज है । मेरीगंज के समाज मे व्यक्ति खो जाते है और उभरता है तो

केवल समाज। उपन्यास की विषयवस्तु सामाजिक है, पात्र सामाजिक और उद्देश्य सामाजिक है । गांव के परिवेश में व्यक्ति से अधिक समाज उभरता है।

महत्त्वपूर्ण तथ्य -

- मैला आँचल का प्रकाशन - 1954 ई.।।
- मैला आँचल उपन्यास का नायक - मेरीगंज का अँचल ।
- मैला आँचल की कथावस्तु दो खण्डों में विभाजित है।
- मैला आँचल के प्रथम खण्ड में 44 तथा दूसरे खण्ड में 23 परिच्छेद है। । मैला आँचल उपन्यास में 18 मुख्य तथा 78 गौण कथाएँ है।
- मैला आँचल उपन्यास आंचलिक उपन्यास माना जाता है। ।
- रांची स्थित पागलखाने को कहा जाता है - कांके।
- विश्वनाथ प्रसाद मल्लिक राज पारबंगा के तहसीलदार है।
- मेरीगंज में पढ़े-लिखे आदमियों की संख्या दस बतायी गई है।
- कोठारिन है - लक्ष्मी।
- माँ के मरने के बाद बालदेव अजोधी भक्त की भैंस चराता था।
- डॉक्टर प्रशांत का नौकर प्यारू था।
- डॉक्टर प्रशांत हिन्दू विश्वविद्यालय में अपने पिता का नाम डॉक्टर अनिल कुमार बनर्जी लिखवाता है। ।
- महंत सेवकदास का चेला रामदास था।
- तंत्रिमा टोली की औरतों की सरदारिन - रमजूदारा की स्त्री।
- गाँव के लोग सुमरितदास को लबडा आदमी समझते है।
- जिला का सबसे बडा किसान भोला बाबू था। ।
- मैला आँचल की कथावस्तु का घटना स्थल :- पूर्णिया जिले का मेरीगंज गाँव । - मैला आँचल की भाषा है - मैथिली मिश्रित खडी बोली। ।
- साल भर की कमाई का लेखा-जोखा खम्हार (खलिहान) में होता था।
- महात्मा गाँधी को गन्ही महत्तमा कहा गया है।
- कमली 'नल' की तस्वीर के नीचे प्रशांत नाम लिखती है।
- गाँव के लोग अर्थशास्त्र का साधारण सिद्धांत भी नहीं जानते थे।
- अंग्रेज w.मार्टिन - वहाँ आया । उसकी पत्नी का नाम मेरी था इसलिए उसने उस गाँव का नाम मेरीगंज रखा।
- कालीचरण और मंगला चरखा सेंटर चलाते थे।
- बावनदास उपन्यास में महात्मा गाँधी का प्रतीक या प्रतिरूप है।
- यह उपन्यास नायक-नायिका विहीन है।

7.झूठा सच (वतन और देश)- यशपाल

कथासार

-झूठा सच,' (वतन और देश) मे भारत विभाजन की विभिषिकाओं के परिपार्श्व मे एक मध्यवर्गीय भारतीय-परिवार की कहानी कही गई है। जयदेव पूरी प्रथम श्रेणी में एम. ए. कर किसी कालेज में अध्यापक बनना चाहता है, किन्तु 1942 के आन्दोलन की पुकार पर स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए, राजनीतिक जीवन मे कूद पडता है । तारा जयदेव की स्वतंत्र और उदार विचारवाली बहिन है । वह एक कम्युनिस्ट युवक असद से प्रेम करती है । तारा का विवाह एक व्यभिचारी लम्पट और दुराचारी युवक सोमराज से हो जाता है किन्तु जयदेव पूरी चुप रहता है । पुरी का विवाह कनक से हो जाता है | सुहागरात के दिन तारा का पति तारा को बुरी तरह पीटता है और हिन्दू मुस्लिम दंगो के कारण भाग जाता है किन्तु तारा को ऊपर की मंजिल से भागना पड़ता है । मुसलमानो के हाथो मे पड़ने के कारण तारा का सतीत्व भंग होता है । वह व्यथाओं और पीडाओं को झेलती हुई असद से मिलती है किन्तु उसकी बाट न जोहकर उसे अमृतसर पहुंचना पडता है | देश का भविष्य में तारा, कनक और पुरी की कथा वतन को छोडकर देश मे प्रारंभ होती है । अनेक कठिनाईयों को झेलते हुए तारा भारत-सरकार के एक मंत्रालय में 'अंडर सेक्रेटरी' बन जाती है और पुरी एक कांग्रेसी नेता सूद के चक्कर मे जीवन के पतन का मार्ग अपनाकर एक पत्र का सम्पादक बन जाता है । पुरी के जीवन मे उर्मिला का आगमन होता है किन्तु पुरी का अंश उसके भीतर होते हुए भी वह नारी केन्द्र की शरण लेती है | कनक । बौद्धिक और शारीरिक दोनो धरातलो पर पुरी से घृणा करती है और पुरी को असहाय होकर तलाक को मानना पडता है | कनक गिल को आत्मसमर्पण कर देती है। अन्त मे तारा और डा. प्राणनाथ का विवाह हो जाता है | वस्तु -विधान - इस उपन्यास मे भारत विभाजन के पश्चात भारतीय परिवार की कहानी है । इसमे तारा की कथा मुख्य रुप से चलती है । अन्य कथाए तारा की कथा के इर्दगिर्द घूमती है । अन्य कथाओ मे तारा के भाई जगदेवपुरी, तारा का लम्पट और दुराचारी पति सोमराज, तारा की भाभी कनक, तारा के प्रेमी असद, तारा के दूसरे पति डा प्राणनाथ और तारा के सहयोगी निल की कथाए मुख्य है | जयदेवपुरी ओर कनक की कथा प्रारंभ के अन्त तक, तारा की कथा के साथ -साथ चलती है | पुरी को अगर इस उपन्यास का नायक नही माने तो पुरी के जीवन मे घटने वाली अनेकानेक घटनाओ का तारा की कथा के साथ दूर का भी संबंध नही है । 'देश का भविष्य' मे पुरी और तारा का जीवन दो प्रतिकूल दिशाओ मे रहा है । पुरी और कनक के बीच होने वाले वैमनस्य को लेखक ने तारा के जीवन से सादृश्य दिखाने के लिए उपस्थित किया है | यह स्वातत्रयोत्तर भारतीय-परिवार की कहानी है, किन्तु अंत मे तारा और प्राणनाथ के विवाह को न्यायोचित सिद्ध करने के प्रयत्न मे, लेखक इसको तारा की जीवन कथा मे समेट देना चाहता है । 'झूठासच' का चित्रफलक बहुत बड़ा है, लेकिन एक सुगठित कथानक ने घटनाओ के अपने भीतर समेट लिया है | यशपाल कहानियो और उपन्यासो मे कथानक का हमेशा ध्यान रखते है और कथानक को गढने मे सिद्धहस्त है । यही कारण है कि झूठा-सच' मे इतने बड़े चित्रफलक के बावजूद शिथिलता नही आती और घटना अस्वाभाविक नही जान पड़ती है। अगर तारा को उपन्यास का केन्द्र बिन्दु मानते है और तारा के दूसरे विवाह का औचित्य ही उपन्यास का उद्देश्य हो तो उपन्यास की वस्तु -अन्विति मे अभाव खटकता है, क्योकि यह बृहद उपन्यास विशाल घटनाओ और कथाओ का अम्बार है और अनेक घटनाओ का तारा के जीवन से कोई संबंध नही है । स्वातत्रयोत्तर भारतीय-समाज और भारतीय-परिवार को

उपन्यास का केन्द्र बिन्दु माने तो कथाओ से सगुम्फन सुन्दर रुप से दिखाई पडता है । यह तो विशाल महासागर है, और महासागर की कुछ लहरो और बूंदो को चुनने का प्रयत्न लेखक ने नही किया है । इसका वस्तु-शिल्प अमृतलाल नागर के 'बूंद और समुद्र' भगवती चरण वर्मा के 'भूले बिसरे चित्र' और प्रेचचंद के अधिकाश उपन्यासो का शिल्प है | उसके वस्तु-विधान मे विस्तार है गहराई नही | चरित्र-विधान-'झूठा-सच' मे अनगिनत पात्र है-पुरी, तारा, कनक, रामज्वाया, रामलुभाया, पंडित गिरधारीलाल, नैयर, डा. प्राण, सूद, शीला, उर्मिला और सोमराज - सभी पात्र मध्यवर्गीय समाज के विभिन्न स्तरो का प्रतिनिधित्व करते है, सभी पात्र सामाजिक और आर्थिक संघर्षों से जुझते है, अधिकांश पात्र प्रेम और विवाह की समस्या को अनेक पहलुओ से सामने रखते है | यशपाल की वर्ग लेखनी इतनी सशक्त है कि वह अनगिनत पात्रो के व्यक्तित्व को उभार सकती है । पुरी उपन्यास का प्रमुख पात्र है, यह निश्चित है कि वह मार्क्सवादी नायक नही है इसलिये उपन्यासकार का प्रवक्ता भी नही है |उपन्यासकार का विचारपक्ष कनक और तारा के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है ।एक विवेचक के शब्दो मे 'कनक मुनिकन्या लगती है और तारा ऋषि कन्या' । आधुनिक मुनि तथा आधुनिक ऋषि की कन्याए अस्वस्थ है । तारा ऋषि कन्या है क्योकि उसका विचारपक्ष कनक से प्रबल है । इन दोनो पात्रो को दुर्बलताओ के प्रतीक रुप मे यशपाल ने चित्रित नही किया है | कुछ अंशो मे इनको फ्रायड और मार्क्स का प्रतीक मान सकते है । उपन्यास के सभी पात्रो के जीवन मे कितने ही उतार-चढाव आते है इसलिये पुरी जहा एक और अपनी विशेषताओ को लेकर व्यक्त है, वहा दूसरी ओर वर्गगत भावनाए भी उनमे अपने उच्चतम रुप में विकसित है | यह 'टाइप' मनोविज्ञान की कसौटी पर खरे उतरने वाले है । उन पात्रो के माध्यम से आज के समाज को चित्रित करने का ऐतिहासिक यथार्थ को मूर्त करने का प्रयत्न किया गया है | पुरी प्रगतिशील पात्र होते हुए प्रतिक्रयावादी ताकतो के सामने घुटने टेक देता है । तारा प्रतिक्रियावादी ताकतो के खिलाफ प्रगतिवादी चेतना का प्रतीक बनती है । पुरी मार्क्सवादी मान्यताओ के अनुसार पाजिटिव हीरो नही है। कनक प्रतिक्रियावादी पुरी से अपने को स्वतंत्र कर नारी स्वतंत्रता की प्रतीक बनती है । रामज्वाया और रामलुभाया मध्यवर्गीय समाज की दुर्वलताओ का, पण्डित गिरधारीलाल समाज -सुधारको का, पुरी युवक की विकृतियो का सोमराज दुष्ट युवक का,डा. प्राण सज्जनता का, उर्मिला मूक युवती का और सूद राजनीति कुचक्रो का प्रतिनिधित्व करते है । प्रतिनिधि परिस्थितियो के प्रतिनिधि पात्र होते हुए भी तारा, कनक और पुरी अपने व्यक्तित्व की रक्षा करते हुए प्राणवान पात्र है उद्देश्य - लेखक ने समर्पण मे ही कहा है :'सच की कल्पना से रंगकर उसी जनसमुदाय की सौंप रहा हूं, जो सदा झूठ से ठगा जाकर भी सच के लिये अपनी निष्ठा और उसकी ओर बढने का साहस नही छोडता | जीवन के सत्य का अनावरण करना ही उपन्यासकार का उद्देश्य है | इस देश के जीवन का राजनैतिक सत्य है, जनता निर्जीव नहीं है । जनता सदा मूक भी नहीं रहती । 'देश का भविष्य' नेताओं और मन्त्रियों की मुट्ठी मे नही है, देश की जनता के ही हाथ में है । इसके अतिरिक्त इस उपन्यास में लेखक ने प्रेम और विवाह के सामाजिक सत्य का उद्घाटन किया है | कनक का पुरी को त्यागकर गिल के प्रति आत्मसमर्पण और तारा का विवाहित होते हुए डा. प्राणनाथ से विवाह कहां तक ठीक है? नय्यर लेखक का प्रवक्ता बनकर कहता है 'घटना तो झूठ सच नहीं होती, झूठ- सच तो घटना को प्रकट करने के प्रयोजन में होता है । मूल सत्य को प्रकट करने के लिये प्रयत्न करना या उसे जमाना भी आवश्यक होता है । अत: स्वातंत्र्योत्तर भारत के भारत-विभाजन के परिपार्श्व मे युग के सामाजिक और राजनीतिक सत्य को प्रस्तुत करना ही उपन्यास

का उद्देश्य है । 'झूठासच' की रचना तक यशपाल क मार्क्सवादी या समाजवादी लेखक के रुप मे स्वीकार करने मे कोई शंका नही थी किन्तु इस उपन्यास में इस संदर्भ मे एक प्रश्न चिन्ह खडा कर दिया है । यह निश्चित है कि यशपाल मार्क्सवाद के सैद्धांतिक प्रचार के पूर्वाग्रह से मुक्त हुए है और यह उनकी एक महान उपलब्धि है । इतना होने पर भी 'झूठा-सच' से सामाजिक यथार्थ के स्थान पर समाजवादी यथार्थवाद का रंग स्पष्ट रुप से उभर कर आता है | वर्ग-संघर्ष के फतवे इस उपन्यास में नहीं दिये है किन्तु प्रेम और विवाह की समस्या को समाजवादी दृष्टिकोण से देखा है | पुरी समाजवादी 'हीरो' नहीं है किन्तु कनक और तारा का जीवन उनके समाजवादी- चिन्तन को स्पष्ट करता है | समाजवादी-विचारधारा के अनुसार विवाह केवल मूक सामाजिक समझौता नहीं है । शोषण और अन्याय की स्थिति मे हर पक्ष को यह अधिकार है कि वह पुराने समझोतो को भंग करके नये समझोतो की स्थापना कर सकता है । विवाह को अधिकारों के धरातल पर खीच लाना मार्क्सवादी चिन्तन का परिणाम है

महत्त्वपूर्ण तथ्य -

- भारत - पाक विभाजन की त्रासदी का चित्रण |
- औपन्यासिक महाकाव्य हैं। ।
- यह उपन्यास दो भागों में है - 1. वतन और देश (1958 ई.) 2. देश का भविष्य (1960 ई.)
- पहले भाग में 1943 ई. से 1947 ई. तक। ।
- दूसरे में 1947 से 1957 का दौर लोग विस्थापित
- देश का भविष्य में तारा कनक और पुरी की कथा वतन को छोड़कर देश मे प्रारंभ होती है ।
- काल्पनिक पात्र - तारा, कनक, गिल, डॉ. नाथ, नैयर, सूजी, सोमराज, असद, प्रधानमंत्री
- वतन और देश की शुरुआत पंजाबी परिवेश में लाहौर की एक गली से में मास्टर लाभ/लुभाया और जयदेव पुरी मिलजुलकर रहते हैं। ।
- निम्न मध्यम वर्गीय परिवार की कहानी।
- तारा अपने भाई जयदेव को आदर्श मानती है पर भ्रम टूट जाता है जब वह विजातीय लडके से प्रेम करती ह और भाई उसका साथ नहीं देता। फिर उसकी शादी सजातीय आवारा - सोमराज से हो जाती है।
- तारा पर आक्रमण - मुस्लिम परिवार धर्म परिवर्तन के लिए जोर - विभाजन - भाई बहन से कहानी शुरू होती है। बाकी पात्र इनके इर्द गिर्द घूमते है।

-'झूठा-सच' से सामाजिक यथार्थ के स्थान पर समाजवादी यथार्थवाद का रंग स्पष्ट रुप से उभर कर आता है । ।

- दूसरे भाग में आजादी के समय विस्थापितों की कहानी ।
- कनक - जयदेवपुरी की पत्नी उससे विच्छेद कर लेती है।
- उस सच को दिखाया है जिसे ढका जाता है। सच को कल्पना से रंग पर। .
- स्वातंत्र्योत्तर भारत के भारत-विभाजन के परिपार्श्व मे युग के सामाजिक और राजनीतिक सत्य को प्रस्तुत करना ही उपन्यास का उद्देश्य है ।
- शरणार्थियों के देश छोडने व भारत विभाजन की त्रासदी।
- मुख्य पात्र - जयदेवपुरी, उसकी बहन तारा एवं पत्नी कनक ।

- तारा का सोमराज से विवाह होता है।
- जयदेव पुरी की शादी कनक से होती है।

8. मानस का हंस(उपन्यास) अमृतलाल नागर

गोस्वामी तुलसीदास के जीवन पर आधारित इस उपन्यास की वस्तु रोचक है। तुलसीदास के जीवन के बारे में प्रामाणिक जानकारी बहुत कम उपलब्ध होती है। अधिकतर प्रचलित किंवदंतियाँ है, जिनके सही होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता। लेखक ने इस उपन्यास की कथा का निर्माण प्रचलित किंवदंतियाँ और तुलसीदास के ग्रंथों से उभरनेवाले व्यक्तित्व के आधार पर किया है।

उपन्यास में तुलसीदास का जन्म यमुना-तट के राजापुर से करीब एक गाँव में हुआ बताया गया है। पिता का नाम आत्माराम और मां का नाम हुलसी था। तुलसी के जन्मते ही मां का निधन हो गया। पिता ज्योतिषी थे, अतः बुरे नक्षत्रों में जन्म के कारण, जन्मते ही तुलसी को त्याग दिया। तुलसी का लालन-पालन एक दायी, पार्वती ने किया। तब उसका नाम था राम बोला। वह भिक्षावृत्ति से पेट पालते थे। तुलसीदास की पांच-छ साल की उम्र तक तो दायी का देहांत हो गया। उसके सम आयु मित्र ने उससे छल किया,झोंपडी जला दी और स्थान छोड़ने को विवश कर दिया। भटकते हुए वह सूकर खेत पहुंच गया।जहां महावीरजी के मंदिर में उसकी दोस्ती तो बंदरों से हुई पर, उसकी भेंट नरहरिदास बाबा से हुई। जो उसके गुरू बन गये। और इनकी निश्रा में ही तुलसीदास ने संस्कृत, ज्योतिष-शास्त्र, एवं धर्मग्रंथों की शिक्षा प्राप्त की। उस दौरान वह एक वेश्यापुत्री मोहिनी के प्रेम पाश में बंध गये थे।

अपना जीविकोपार्जन वह ज्योतिष एवं वाल्मिकी रामायण के कथावाचन से करते थे। यहां उनका विवाह यमुना पार के विद्वान ज्योतिषी पं. दीनबंधु की बेटी रत्नावली से हुआ। और उनके एक संतान भी हुई। फिर तुलसी काशी चले आये। यहां अपने मित्र गंगाराम की एक समस्या के समाधान हेतु “रामाज्ञा प्रश्न” की रचना की। जिसके एवज में प्रचुर धन प्राप्त हुआ। फिर राजापुर लौट आए। पत्नी संतान समेत पिता के घर गयी थी। उनसे मिलने के अधैर्य ने उन्हें विचलित कर दिया स्थल-काल से परे वे ससुराल पहुंच गये। बे-समय, अधैर्य के कारण अपमानित एवं मजाक के पात्र बने। रत्नावली का मोह उन्हें यहाँ खींच लाया था। रत्नावली का व्यंग्य- “स्त्री और पुरुष में यही तो अंतर है।नारी भले कामवश माता क्यों न बने,किंतु माता बनकर वह एक जगह निष्काम हो जाती है और पुरुष पिता बनकर भी दायित्वबोध भली प्रकार से अनुभव नहीं कर पाता। सच पूछो तो यह निरे चाम का लोभी है, जीव में रमे राम का नहीं। -

इससे तुलसीदास को बोध हुआ कि मैं सांसारिक कर्मों में लिप्त रहकर अपना जीवन नष्ट कर रहा हूँ। मध्य रात्रि को ही पत्नी एवं संतान को छोड़कर हमेशा के लिए चल निकले। बाद में उस शिशु की भी मृत्यु हो गई। घर त्यागने के पश्चात कई ग्रंथों की रचना की । उन्होंने अमर ग्रंथ 'रामचरित मानस' की भी रचना की।

काशी में रहते हुए तुलसीदास 'रामचरित मानस' के माध्यम से लोगों में भक्ति और भावात्मक एकता का मंत्र फूंकने लगे। वे लोक धर्म का प्रचार-प्रसार कर रहे थे, जिससे कई महंत और पंडित उनके विरुद्ध हो गये। लेकिन वे अपने मार्ग से न हटे। गांवगांव और घर-घर तक राम भक्ति आधारित लोकधर्म को पहुंचाते रहे। उन्होंने रामलीला की भी शुरूआत की। काशी में अखाड़े खुलवाए जनता को बलशाली बनाने हेतु। महामारी के फैलने पर अखाड़े के ब्रह्मचारियों और युवकों ने जन-जन की सेवा की।
जब वे मानस की रचना के बाद काशी में रहे तब रत्नावली का आगमन काशी में हुआ और उसने तुलसीदास से वहीं रहने की आज्ञा मांगी। दूसरी ओर उसके आने से तुलसीदास के बारे में कई तरह की बातें फैल रही थी, ये भी उनके कानों तक पहुँचती थी। इसलिए उन्होंने लोक धर्म की रक्षा हेतु यह निर्णय किया कि रत्नावली को वापिस राजापुर भेज दिया जाय। उन्होंने रत्नावली को वचन दिया कि मृत्यु से पूर्व उससे मिलने अवश्य आयेंगे और वे यह वचन निभाते है।

तुलसीदास जीवन पर्यंत अपने धर्म का पालन करते रहते हैं और रामचरित मानस, विनयपत्रिका आदि ग्रंथों की रचना कर तथा रामलीला का व्यापक प्रचार कर, लोक धर्म का आदर्श स्थापित करते है। तुलसीदास को आजीवन रूढ़िवादी समाज का विरोध सहना पड़ता है। वृद्धावस्था में कई बीमारियाँ घेर लेती है, और उनका समग्र जीवन संघर्ष में ही व्यतीत होता है।

हमने देखा कि मानस का हंस किवंदतियो पर आधारित तुलसीदास के जीवन की पीड़ा, अभाव, करूणा, तिरस्कार एवं संघर्ष से परिपूर्ण कथा है। कोमल हृदय के,अति संवेदनशील तुलसीजी पत्नी के मार्मिक वचन से आहत होते हैं और जीवन में बहुत बड़ा बदलाव आता है, क्रमशः अनेक श्रेष्ठ रचनाओं के द्वारा जग प्रसिद्धी पाते है, महाकवि के रुप में जाने जाते हैं।

नागरजी ने तुलसीदास के जीवन को तत्कालीन राजकीय, सांस्कृतिक परिवेश में समाज की गतिविधियों के साथ चित्रित किया है। तुलसीदास के जन्म समय, उत्तर में मुगल आपनी शासन सत्ता स्थापित करने की कोशिष कर रहे थे। उनका संघर्ष था पठानों से। इस राजसत्ता की लड़ाई में पिसते थे गरीब, मज़दूर, आम आदमी। उपन्यास में अकबर के शासन काल को भी चित्रित किया है। राजनीतिक स्थिति अराजकता पूर्ण थी, जो उपन्यास के प्रारंभ में दिखाई देती है--
"हुमायूं और शेरशाह की लड़ाई के पुराने दिनों की भगदड़ में इधर-उधर छितरा के भागनेवाले मुगल लड़वैये डाकू बनकर लूट-पाट और आतंक मचाने लगे, तब यह विक्रमपुर गांव पूरी तरह से लूट-पिट और खंडहर बनकर सभ्यता के मानचित्र से मिट गया था। बस, दो-चार गरीब-गुरबे, छोटे काम करनेवाले हिंदु 15-20 मुसलमानों के घर ही बचे रहे थे।"

उपन्यास के मध्य में अयोध्या में राम जन्मस्थान के ध्वंस और उसके स्थान पर मस्जिद का निर्माण, काशी के विश्वनाथ मंदिर के जीर्णोद्धार की घटनाओं से यह आभास मिलता है कि राजनीतिक स्थिति अस्थिर एवं डांवाडोल थीं।

इस उथल-पुथल तथा संघर्ष के वातावरण में विजय प्राप्त किए हुए राजा-बादशाह उन प्रदेशों में सब कुछ तहस-नहस करने पर उतारु होते थे। उदा- “खच्चरों पर लदा हुआ लूट-पाट का माल लेकर मुगल सिपाही जीत और लूट की मस्ती में गाते, बीच-बीच में एकाध बंदी या बंदिनी पर चाबुकें बरसाते जाते, अपने पड़ाव के सामनेवाले बड़े तंबु की तरफ बढ़ रहे हैं। सरदार मसनद पर बैठकर नाच देख रहा है।"

इतना ही नहीं राजघराने की औरतों को भी लूट का सामान समझकर उपभोग की बेजान चीजों की तरह खरीद-बेचा जाता था। राजकुमारी और रानियाँ अपनी इज्जत की रक्षा हेतु कुएं, नदी में डूबकर आत्महत्या कर लेती थीं। बन्दीजनों से कामवालियों का काम लिया जाता था। रास्ते में तुलसी, राम, राजाभगत तथा संत बेनी माधव दास को एक पेड़ पर एक लाश लटकती दिखाई दी। उन्हें ज्ञात हुआ कि स्त्री की रक्षा करने में संघर्षशील पति को मुगल सिपाहियों ने फांसी दे दी, और स्त्री ने आत्मघात किया। कुछ सिपाही उन मृत शरीरों पर से रत्नालंकार लेकर, चील कौओं के लिए छोड़कर भाग गए।

ये वह समय था जब सत्ताधीशों की विलासिता और अधिकार प्राप्ति की लालसा अत्यधिक प्रबल थी। इस बात को नागरजी कहते हैं–

“क्या हिंदु राजे-महाराजे, क्या मुगल-पठान सभी बड़े पाप परायण है। उनकी चेतना से धर्म शब्द ही लोप हो गया था। जो जितना बड़ा हाकिम उसे इतना ही बड़ा औरतों का रनिवास चाहिए। किसी की दस किसी की पचास, सौ, दो सौ, पांच सौ, और दिल्ली के रनिवास में तो सुना है कि पांच हजार रमणियाँ थी। इनके खर्चे के लिए नित्य ही प्रजा के प्राण खींचे जाते थे, राणा विलासी तो उनके चाकर दस हाथ आगे। ठंडी पतल काट ले जाए, गाय ,बैल आदि पशु हांक ले, कौन-सा ऐसा आसुरी कर्म था, जो ये कर्मचारी नहीं करते।"

मुस्लिम शासक मूलतःकट्टर और सांप्रदायिक थे। अराजकता,विषमता,अन्याय इसके अंग थे। कोई नियम, मर्यादा या आदर्श तो विद्यमान था नहीं। भतीजा चाचा को, भाई-भाई को, पिता-पुत्र का वध करते थे या बंदी बनाकर राज्य पर अपना अधिकार पा लेते
काशी के सुबेदार उमरा आगानूर ने काशी और जौनपुर के बड़े-बड़े जौहरियों, सराफों, कोठीवालों को एक दिन अकारण ही पकड़ बुलवाया और बंदी बना लिया। उदा- “बंदी गृह में बंद सेठों ने वहाँ कर्मचारियों के मारफत के रिश्वत का प्रलोभन देकर अपने पकड़े जाने का कारण जानना चाहा। बाहर उनके सगे-संबंधी भी यही कह रहे थे। सरकारी चाकरो की जेबों में रिश्वत के पैसे पहँचाकर भी न तो बंदियों को और उनके घरवालों को ही पकड़े जाने का कारण ज्ञात हो सका।"

बटेश्वर मिश्र के उकसाने पर काशी के कोतवाल ने कुछ तांत्रिको के साथ निरपराध साधु संत सहित तुलसी को भी बंदी बना लिया। बदला लेने के लिए अहीर, केवट,ठाकुर आदि जातियों के वीर वानर सेना के रुप में कोतवाली पर टूट पड़े थे।

प्रजा में व्याप्त पापों को केवल वैयक्तिक राग-द्वेष का परिणाम न मानकर, व्यवस्था तंत्र बताते हुए तुलसी कहते है-- "शासक दिल्ली में रहता है, उसे नित्य हीरे, मोती चाहिए। स्त्री और धन की लूट का नाम ही कलिकाल है , सारे पाप यहीं से प्रारंभ होते है।

इस उपन्यास की विशेषता है कि तत्कालीन सामाजिक परिवेश अपनी समग्रता में उपस्थित है। उस समय वर्ण व्यवस्था,ऊंच-नीच, आश्रम व्यवस्था नहीं थीं, पर संन्यासी साधु, भक्तों, योगियों आदि का बहुत आदर होता था, सम्मान का भाव भी था। स्त्रियों की स्थिति निम्न स्तर की रही। ये बातें नागरजी ने बड़ी शिद्दत से प्रस्तुत की है।

तत् युगीन वर्णामाश्रम एवं जाति व्यवस्था को आज भी समाज में यथातथ हम देख रहे हैं। आज भारतीय समाज में कुष्ट रोग की तरह पैठी है, धर्मनिरपेक्ष भारत की स्थिति एवं दशा में आधुनिकता के बावजूद कोई बदलाव नज़र नहीं आता। तुलसी की यह उक्ति बड़ी सार्थक है--

"छूत कही, अवधूत कही, राजपूत कही जोलहा कहा कोऊ--"

इसी से प्रतीत होता है कि तुलसी पर भी जाति के प्रश्न को लेकर कई आरोप लगाये गये थे। एक चमार-ब्रह्म हत्यारे को तुलसी ने भोजन क्या करवाया कि समस्त ब्राह्मण वर्ग उसके ब्राह्मणत्व पर संशय करने लगा। किसी ने तो तुलसी पर व्यंग्य भी कसा---

"राम से तो वह राम का प्यारा ब्रह्म पातकी चमार ही मिला सकता है। आपने तो उस हत्यारे के पैर भी धुलवाए थे।"

"हाँ, दीन-दुर्बल और रोगी की सेवा करना मैं राम की सेवा करना ही मानता हूं।"
"सुना है आप जाति-पांति नहीं मानते।"
"कैसे ?"
“वर्णाश्रम धर्म को मानता हूं, परंतु प्रेम-धर्म को वर्णाश्रम से भी उपर मानता हूं।"(5)

दुर्भिक्ष-अकाल का इस उपन्यास में कई स्थान पर उल्लेख हुआ है। भूख, अकाल, महामारी आदि दैवी आपत्तियां है, फिर भी । उसका उचित प्रबंध हो ही जाता है, पर उस समय व्यवस्था समुचित न थी। उदा "कुरूक्षेत्र में उन दिनो भीषण अकाल पड़ा था। दिल्ली,मथुरा,आगरा आदि जगहों में प्रजा त्राहि-त्राहि कर रही थीं। उजडा भूखंड, रुखी काया, कष्ट और फीके चेहरोवाली कंकालवत् कायाएँ इधर-उधर डोलती थीं। और भी एक जगह चार-चार मुट्ठी गेहूं-चावल के लिए लोग-बाग अपनी जवान स्त्रियों, लड़के-लड़कियों, तक बेच रहे थे।

क्षुधा शांति के लिए एक-दूसरे के मुंह का कौर छीनने के लिए किसी को कोई हानि नहीं पहुँचती थी। अकाल ग्रस्तता के कारण वर्ण व्यवस्था का भी कोई विवाद नहीं था। इस समय में प्रजा इतनी दीन-हीन क्षुधातुर हो, तब भी हेमू के हाथों चावलचीनी और घी के लड्डू खा खाकर मरने-मारने के लिए तैयार हो रहे है।

तुलसी युगीन समाज में नारी की स्थिति अति निम्न कोटि की हो गई थी। स्त्री के लिए परिवार में अनेक प्रकार के बंधन, स्वतंत्रता और अधिकार के नाम पर कुछ नहीं। आर्थिक रुप से पुरूषाश्रित रहना पड़ता था। औरतों को लूट के सामान की तरह, बेजान चीजों के समान खरीदा-बेचा जाता था। इस संदर्भ में तुलसीदास कहते है---
"स्त्री और धन की लूट का नाम ही कलिकाल है, सारे पाप यहीं से आरंभ होते है।
इस युग की विलासिता के चर्चे तो इतिहास प्रसिद्ध है। बादशाह तो खैर पर पदाधिकारी भी अनेक स्त्रियाँ रखते थे, परिणाम था दुराचार जो नाश की दिशा में ले जाता है। शासकों की विलासिता के परिणाम स्वरुप, जनता प्रभावित हुई और समाज में चोतरफ अनाचार-दुराचार,अराजकता, नारी व्यापार जैसी विकृतियाँ फूली फली थी। शासक ही मानो शोषक बन गया था।
ये वो समय था जब लोगों की बुद्धि पर पटी बंधी हुई थीं। बिना सोचे-समझे एक अंधे प्रवाह में लोग बह रहे थे। गति जिस दिशा में हो रही है, क्या वह सही है या नहीं, ये सोचने का विवेक भी लोगो में नहीं था। काशी में चूहों के मरने से बीमारी तेज गति से फैली। अफवाह यह भी है कि-- "किसी जादूगर के शिष्य ने कुप्पे में भरकर ऐसा रसायन छोड़ा है कि चूहे मरते हैं और बीमारी फैल रही है। ऐसा इसलिए किया गया है कि काशी के सभी निवासी मारे जाएं और उनकी माल मत्ता, रुपए-टके आसानी से हाथ में आए।"

नागरजी ने इस उपन्यास में तुलसी के समसामयिक युग के धार्मिक संघर्ष और सांप्रदायिक संकीर्णताओं को चित्रित किया है। मुगल सम्राटों की इस्लाम के प्रति कट्टर आस्था और असहिष्णुता ने हिन्दु धर्म की नींव हिला दी थी। जहां तक हिन्दु मंदिरों, मूर्तियों एवं आस्थाओं के ध्वस्त करने का प्रश्न है, वहां मुगल और पठान एक साथ थे। इसी कारण से 16वीं शती के तीसरे दशक तक मुस्लिमों के सतत आक्रमण एवं प्रहारों से हिन्दु समाज पूरी तरह विश्रृंखलित एवं दिग्भ्रमित हो उठा था। ब्राह्मणों में उच्चता का मिथ्या दर्प और जात्याभिमान था, पर पारस्परिक शिक्षा, संस्कार, त्याग, ऊर्जा एवं शक्ति का उनके भीतर से लोप हो चला था। तत्कालीन हिन्दु समाज भी कई संप्रदायों में बंटा हुआ था। संप्रदायों के लोगो में परस्पर विद्वेष की अग्नि प्रज्वलित रहती थी। कभी-कभी इतनी जोर से भभक उठती कि दंगे-फसाद भी हो जाते थे। यही सांप्रदायिक समस्या आज के सामाजिक जीवन में अभिशाप-सी बनी हुई है। अयोध्या में राम जन्मभूमि और बाबरी मस्जिद विवाद चल रहा था, जो आज भी हिन्दु-मुस्लिम विद्वेष का कारण बना हुआ ही है। इस रचना में नागरजी ने इस प्रश्न को सुलझाने का प्रयास किया है। जन्मभूमि के प्रश्न को लेकर हिंदु-मुस्लिमों में संघर्ष और आतंक उत्पन्न होता है, तब करुणाद्र स्वर में गोस्वामीजी कहते है "रामभद्र आप साक्षी है,मैंने इस मस्जिद में अपने मनमें कोई दुर्भाव नहीं रखा। पूजा भूमि इस रुप में भी पूज्य ही है। अब भी यहाँ निर्गुण निराकार परब्रह्म के प्रति ही माथा झुकाया जाता है।"

तुलसीदास अपनी भावात्मक अभिव्यक्ति में हिंदु-मुस्लिम ऐक्य की बात करते ही है जो वर्तमान में हिंदु-मुस्लिम ऐक्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

तुलसीदास के मन में राम और काम का द्वन्द्व चलता है, जब से वह मोहिनी के संगीत के रागपाश में बंध जाते हैं। पर समय सच की अनुभूति कराता है, तब मोहिनी से दूर होते हैं तो उन्हें लगता है-जैसे जीव का अपने एक जन्म से साथ छूट गया हो। रत्नावली के प्रति तुलसी का प्रेम उनके काम और राम के संघर्ष की गाथा को प्रस्तुत करता है। जिसको स्वयं तुलसी भी स्वीकार करते है--

"मेरा द्वन्द्व आरंभ से ही काम वासना से था। मेरी अंतर्बाह्य चेतना अपने भीतर वाले काम हठ से अपने राम हठ को श्रेष्ठ मानती थीं।

कुल मिलाकर कह सकते है कि मानस का हंस तुलसीदास की जीवनी ही नहीं, उस युग का सांस्कृतिक इतिहास भी है। लेखक ने तुलसीदास के बहाने उस युग की वास्तविक दशा का चित्रण तो किया ही है, उस युग के सामाजिक, धार्मिक अंतरविरोधो का चित्रण भी किया है, जो स्वयं तुलसी की जीवनी में दिखाई देते हैं। यह कैसी विडंबना है कि जो कवि अपने आराध्य राम पर यह लांछन नहीं लगने देना चाहता कि उन्होंने अपनी पत्नी का परित्याग कर दिया था, यही कवि लोक-धर्म की रक्षा के लिए अपनी पत्नी को अंगीकार नहीं कर पाता। तुलसी लोक कल्याण की भावना से प्रेरित होकर धर्म को लोक धर्म का रुप देना चाहते है। वे सामज को लोक आदर्श में बांधकर एक करना चाहते है, इसीलिए रामलीला का प्रारंभ करते है। महामारी या अकाल के समय वे दुःखियों की सेवा करने का अभियान चलाते है। यहां तक की मठ की गद्दी भी छोड़ देते हैं क्योंकि सामान्य जन से विलगता का अनुभव करते है। इस उपन्यास में तुलसी समाज सुधारक, जननायक, युगदृष्टा के रुप में उभरकर आते है।

रचनाकार का उद्देश्य लोकोन्मुखी आदर्श को प्रस्तुत करना है। तुलसी के जीवन के माध्यम से कहना चाहते है कि वही रचनाकार महान होता है जो अपने को साधारण जन की पीड़ा से जोड़ता है, जन-जन की वेदना को अपने साहित्य में अभिव्यक्ति देता है।

इस उपन्यास में भक्ति आंदोलन के सांस्कृतिक-सामाजिक पक्ष को रखते हुए, ये बताया है कि हम वर्तमान समस्याओं का सामना तभी कर सकते है, जब जन सामान्य का उत्पीड़न समाप्त हो, भेदभाव की दीवारें टूटें और सभी लोगों में एकता और भाईचारे की भावना प्रबल रुप से पनपे।

1-बूंद और समुद्र, सुहाग के नूपुर, अमृत और विष, एकदा नैमिषारण्ये, मानस का हंस, खंजन नयन उपन्यास है -

- अमृतलाल नागर ।

2- सतखण्डी हवेली का मालिक' बाल साहित्य है -

- अमृतलाल नागर।

3- मानस का हंस' उपन्यास किसक जीवन पर आधारित है?

• तुलसीदास के जीवन पर।

4- तुलसीदास किसके लिए वैराग्यमय जीवन का अनुसरण करते है?

• लोक-कल्याण के लिए।

5- मानस के हंस' के संकलित अंश में किसका दिग्दर्शन होता है?

• तुलसीदासस का अन्तर्द्वन्द्व, तत्कालीन समाज की मनःस्थिति तथा रत्नावली की त्यागमयी प्रतिमूर्ति का।

6- गोस्वामी जी किस मठ में श्रीकृष्ण की आरती कर रहे थे?

• लोलार्क कुण्ड के मठ में।

7- तुलसीदास जी के ध्यान में कभी-कभी कौन प्रकट हो जाते है?

• हनुमान जी।

8- विरक्त अब फिर से राग के बन्धनों में नही बँध सकता।' यह कथन है -

• तुलसीदास का।

9- राजा भगत अपने साथ किसको लेकर आए?

• रत्नावली को।

10-तुलसीदास लोलर्क कुण्ड के मठ में किसकी आरती उतारते है?

• भगवान श्रीकृष्ण की।

11-रत्नावली को देखकर तुलसी ने राजा से पूछा-इन्हें क्यों लाए? इस कथन में तुलसी का कौन-सा भाव व्यक्त हुआ?

• रोष का।

12- तुलसी और रत्नावली के संवादों की विशेषता है

• मर्मस्पर्शी।

13- रत्नावली में कौन-सा चरित्र परिलक्षित होता है

• त्यागमयी नारी का।

14- सभी प्रकार की साधना करने के बाद भी तुलसी को प्राप्त नही हुआ -

• प्रत्यक्ष दर्शन।

15- अब इस जन्म में हमारा - तुम्हारा साथ नहीं हो सकता' - तुलसीदास के इस कथन में भाव है

• वैराग्य

16- इस कलिकाल में ऐसा कठिन जोग साधने वाली जोगिन मैंने नहीं देखी' | पंक्ति में 'जोगिन' शब्द किसके लिए आया है?

• यह कथन राजा भगत का है और उन्होंने 'जोगिन' शब्द रत्नावली के लिए प्रयुक्त किया है।

17- उपन्यास में तुलसीदास का जो रूप प्रतिष्ठापित होता है, वह है -

• रामभक्ति के शिखर पुरुष के रूप में।

18- मैं अपने मन से बड़ा दुःखी हूँ रघुनाथ" तुलसी मन से क्यों दुःखी थे?

• मन की चंचलता के कारण।

19- भोग के लिए भोजन में कौन-कौन से व्यंजन बनें? शिष्य के पूछने पर तुलसी ने क्या उत्तर दिया?

• तुलसी ने उत्तर दिया - "जो भगवान को रुचता हो वही बनाओ, जो रुचे सो बनाओ।

20- तुलसीदास ने किसे निर्देश दिया कि माता जी (रत्नावली) को ऊपर के कक्ष में पहुँचा दो?

• प्रभुदत्त को।

21- गंगाराम के घर से रत्नावली लौट आई है।" यह सुनकर तुलसी के चेहरे पर भाव व्यक्त हुआ -

• संतोष का।

22- तुलसीदास केशव से क्या प्रार्थना करते है?

• वे कहते है कि हे प्रभो! एक बार यह कक्ष तुम्हारे आश्वासन भरे स्वर से गूंज उठे, तुम कह दो कि तुलसी तू मेरा है, तो बस फिर मुझे कुछ नहीं चाहिए।

23- टोडरमल की क्या अभिलाषा थी?

• रत्नावली तुलसी के साथ उसके घर पहुँचे व भोजन करें तो उनके जूठन गिरने का सौभाग्य मेरे घर को मिलेगा।

24- रत्नावली ने सबको मोह लिया था, कारण था -

• व्यवहार से।

25- दो (तपस्वी) जब मिल जाते है तब दोनों के मन में एक-दूसरे से आगे बढ़ने का भाव उत्पन्न होता है।" कौन-सा भाव उत्पन्न होता है?

• हौंसले का।

26- तुलसी को रात में अच्छी नींद न आई' नींद न आने का कारण था -

• अन्तर्द्वन्द्व

27- रत्नावली ने तुलसीदास से किस रचना की प्रति माँगी?

• रामचरितमानस की।

28- विदाई के समय भिक्षा के रूप में रत्नावली ने क्या विनती की?

• मृत्यु से पहले उसे एक बार अपना श्रीमुख दिखाने की कृपा करें।

29- उपन्यास में आए शब्द 'स्वाद रुपिणी गऊ' किसके लिए आया है?

• जीभ के लिए।

30- अरे भैया, तुम तो एकदम बदल गए हो" कथन है -

• राजा भगत का।

31- शब्दार्थ लिखें

किस्वत - नाई की पेटी

भृत्य - नौकर

गिरहस्त - गृहस्थ

32- गौसाई लोग तो घिरस्तासमी होते है" कथन है -

• नाथू का।

33- माता जी आ गई सरकार, यह बड़ा सुभ भया" कथन है -

- नाथू का (नाई)

महत्त्वपूर्ण तथ्य -

- मानस का हंस प्रकाशन - 1972
- तुलसीदास का अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण।।
- तुलसीदास व रत्नावली संवाद मार्मिक है।

9. तमस (उपन्यास) भीष्म साहनी

तमस भीष्म साहनी का सबसे प्रसिद्ध उपन्यास है। वे इस उपन्यास से साहित्य जगत में बहुत लोकप्रिय हुए थे। तमस को 1975 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया था। इस पर 1986 में गोविंद निहलानी ने दूरदर्शन धारावाहिक तथा एक फ़िल्म भी बनाई थी। 'तमस' की कथा परिधि में अप्रैल 1947 के समय में पंजाब के जिले को परिवेश के रूप में लिया गया है। 'तमस' कुल पांच दिनों की कहानी को लेकर बुना गया उपन्यास है। परंतु कथा में जो प्रसंग संदर्भ और निष्कर्ष उभरते हैं, उससे यह पांच दिवस की कथा न होकर बीसवीं सदी के हिंदुस्तान के अब तक के लगभग सौ वर्षों की कथा हो जाती है। यों संपूर्ण कथावस्तु दो खंडों में विभाजित है। पहले खंड में कुल तेरह प्रकरण हैं। दूसरा खंड गांव पर केंद्रित है। 'तमस' उपन्यास का रचनात्मक संगठन कलात्मक संधान की दृष्टि से प्रशंसनीय है। इसमें प्रयुक्त संवाद और नाटकीय तत्व प्रभावकारी हैं। भाषा हिन्दी, उर्दू, पंजाबी एवं अंग्रेजी के मिश्रित रूप वाली है। भाषायी अनुशासन कथ्य के प्रभाव को गहराता है। साथ ही कथ्य के अनुरूप वर्णनात्मक, मनोविशेषणात्मक एवं विशेषणात्मक शैली का प्रयोग सर्जक के शिल्प कौशल को उजागर करता है। आजादी के ठीक पहले सांप्रदायिकता की बैसाखियाँ लगाकर पाशविकता का जो नंगा नाच इस देश में नाचा गया था, उसका अंतरग चित्रण भीष्म साहनी ने इस उपन्यास में किया है। काल-विस्तार की दृष्टि से यह केवल पाँच दिनों की कहानी होने के बावजूद इसे लेखक ने इस खूबी के साथ चुना है कि सांप्रदायिकता का हर पहलू तार-तार उदघाटित हो जाता है और पाठक सारा उपन्यास एक साँस में पढ़ जाने के लिए विवश हो जाता है। भारत में साम्प्रदायिकता की समस्या एक युग पुरानी है और इसके दानवी पंजों से अभी तक इस देश की मुक्ति नहीं हुई है। आजादी से पहले विदेशी शासकों ने यहाँ की जमीन पर अपने पाँव मजबूत करने के लिए इस समस्या को हथकंडा बनाया था और आजादी के बाद हमारे देश के कुछ राजनीतिक दल इसका घृणित उपयोग कर रहे हैं। और इस सारी प्रक्रिया में जो तबाही हुई है उसका शिकार बनते रहे हैं वे निर्दोष और गरीब लोग जो न हिन्दू हैं, न मुसलमान बल्कि सिर्फ इन्सान हैं और हैं भारतीय नागरिक। भीष्म साहनी ने आजादी से पहले हुए साम्प्रदायिक दंगों को आधार बनाकर इस समस्या का सूक्ष्म विश्लेषण किया है और उन मनोवृत्तियों को उघाड़कर सामने रखा है जो अपनी विकृतियों का परिणाम जनसाधारण को भोगने के लिए विवश करती हैं।

तमस की कहानी दो प्रमुख चरित्रों 'मुराद अली' और 'नत्थू' नामक चमार के वार्तालाप से शुरू होती है। मुराद अली जो म्युनिसिपल कमेटी का एक कर्मचारी है,वह 'नत्थू से एक अँगरेज़ 'सालेतरीसाहब' के लिए एक सूअर

को मारने को कहता है| नत्थू सूअर को मार देता है,परन्तु उसे बाद में पता चलता है कि उस मरे हुए सूअर को मस्जिद की सीढ़ियों पर फेंक दिया गया है जिससे शहर में दंगा भड़क गया है| सूअर के मारने की त्वरित प्रतिक्रिया दुसरे वर्ग के लोगों के द्वारा गाय मारने से होती है। जिससे दंगा शहर से लेकर आस पास के गांवों तक फैल जाता है। इसके बाद शहर के नागरिकों का एक शिष्टमंडल नगर में शान्ति स्थापित करने के उद्देश्य से जिला कलेक्टर रिचर्ड सेमिलता है,पर बिना किसी ठोस आश्वासन के लौट आता है| रिचर्ड के अनुसार यह एक 'छोटी सी बात है। बहरहाल शहर में लूट,हत्या और आगजनी का तांडव होने लगता है। सबसे विकराल घटना होती है सैय्यदपुर गाँव में,जहाँ के गुरुद्वारे में सारे सिख एकत्रित होकर मोर्चाबंदी करते है वहीं मुसलमानों का मोर्चा शेख गुलाम रसूल के किले पर होता है। भीष्म साहनी कहते है “यह लड़ाई ऐतिहासिक लड़ाइयों की श्रृंखला में महज एक ही कड़ी थी| लड़नेवालों के पाँव बीसवी सदी में थे और सर मध्ययुग में|" दरअसल भीष्म इन दंगो की ऐतिहासिकता की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं जो इतिहास अंग्रेजों ने हमारे बीच में तोड़-मरोड़ कर पेश कर दी थी और जिसके अनुसार मुसलमान तुर्क हैं और सिखों को खालसा सेना की तरह उनसे लोहा लेना है|

दो दिनों में सिखों का मोर्चा शिथिल पड़ने लगता है और इसी बीच एक मर्मस्पर्शी घटना घटती है जब 'जसबीर' नामक सिक्ख महिला के नेतृत्व में तमाम सिख महिलाएं अपने बच्चो समेत कुए में कूदकर आत्महत्या कर लेती है| यह घटना हमें उस ऐतिहासिक सच्चाई से परिचित करती है जब राज्य और पुरुषों को हारता देख औरते सती या जौहर कर लेती हैं और अपना शारीर त्याग देती हैं। 'पुरुषों के वर्चस्व की लड़ाई में भला इन महिलाओं का क्या ही दोष रहा होगा?'

बहरहाल दंगे के पाँच दिन बीतने के बाद दंगा शिथिल पड़ जाता है पर तब तक पूरे शहर का दृश्य बदल जाता है| संपत्तियां लूट ली जाती हैं या जलकर खाक कर दी जाती हैं। सैकड़ों लोग मारे जाते है या लापता हो जाते है और सदियों में विकसित मानवीय सभ्यता का एक क्षण में नाश हो जाता है। इसके बाद दंगों के समाप्त होने की औपचारिकता पूरी कर ली जाती है| शांति स्थापित करने के लिए विभिन्न पार्टियों और सम्प्रदायों के अग्रणी नेताओं के साथ मिलकर कमेटी का गठन किया जाता है और शहर में शान्ति की अपील की जाती है। दिलचस्प बात ये है कि इनमे वे नेता भी शामिल होते है,जो दंगे भड़काने का प्रमुख कारण होते है| ‘आम जनता तो इन दंगो का एक निमित्त मात्र होती है| वही मुराद अली जिसने सूअर को मारकर मस्जिद के सामने फेका था अब वह 'हिन्दू-मुसलिम एकता' के नारे लगा रहा था| साम्प्रदायिकता के अतिरिक्त यह उपन्यास अंग्रेजों के कुटिल नीतियों,स्वार्थपरकता और कांग्रेस के नेताओं की आपसी खींचतान को उजागर करता है जिसके कारण स्वतंत्रता संघर्ष की धार कुंद पड़ रही थी|

महत्त्वपूर्ण तथ्य -

- तमस उपन्यास का प्रकाशन - 1973 ई.
- भारत-पाकिस्तान विभाजन की पृष्ठभूमि पर आधारित
- पात्र - नत्थू (चमड़े का कार्य)

- पात्र - लक्ष्मी नारायण (हिन्दु वानप्रस्थी)
- देवव्रत - (अखाडा मास्टर)
- हरनाम सिंह - पत्नी - बन्तो
- ब्रिटिश प्रशासनिक अधिकारी
- रिचर्डस - रिचर्डस की पत्नी - लीजा।
- मुरादअली जो अंग्रेजो का चमचा हे वह नत्थू को 5 रूपए देकर सुअर मरवा देता है। ।
- दंगो के पाँच दिन की कहानी।
- 1947 में पंजाब में हुए साम्प्रदायिक दंगो पर आधारित
- उपन्यास 2 खण्डों में विभाजित है।
- सैयदपुर में सिक्ख व मुसलमानों के बीच हिंसा होती है। ।
- देश-विभाजन के समय की स्थितियों, साम्प्रदायिक दंगों को सामाजिक, राजनैतिक दृष्टि से देखने का प्रयास। प्रधान पात्र आतंक है, जिसे उपन्यास का नायक कहा जा सकता है।

*10.*राग दरबारी (उपन्यास) श्रीलाल शुक्ल

इस उपन्यास में श्रीलाल शुक्ल जी ने स्वतंत्रता के बाद के भारत के ग्रामीण जीवन की मूल्यहीनता को परत-दर-परत उखाड़ कर रख दिया है। राग दरबारी की कथा भूमि एक बड़े नगर से कुछ दूर बसे गाँव शिवपालगंज की है जहाँ की जिन्दगी प्रगति और विकास के समस्त नारों के बावजूद, निहित स्वार्थों और अनेक अवांछनीय तत्वों के आघातों के सामने घिसट रही है। शिवपालगंज की पंचायत, कॉलेज की प्रबन्ध समिति और कोआपरेटिव सोसाइटी के सूत्रधार वैद्यजी साक्षात वह राजनीतिक संस्कृति है जो प्रजातन्त्र और लोकहित के नाम पर हमारे चारों ओर फल फूल रही है।

वैसे तो 'राग दरबारी' का प्रकाशन 1968 में हुआ था।

श्रीलाल शुक्ल द्वारा रचित 'राग दरबारी'
इस उपन्यास की कहानी किन्हीं मुख्य किरदारों के इर्द-गिर्द नहीं घूमती है। उपन्यास में अनेक पात्र हैं और लगभग सभी किरदारों को समान अहमियत दी गई है। गाँव की राजनीति के दो मुख्य ध्रुव हैं - वैद्यजी और रामाधीन भीखमखेड़वी। वैद्यजी अपरोक्ष रूप से गाँव का कॉलेज, कोआपरेटिव सोसाइटी चलाते हैं। इस बार प्रधान पद भी वैद्यजी के गुट में आ गया था। रामाधीन के पास अवैध धंधों का एकाधिकार था। वैद्यजी के दो बेटे थे - एक अखाड़े में पहलवानी करते थे और दूसरे कॉलेज में राजनीति और गुण्डागर्दी। रंगनाथ शहर का पढ़ा हुआ एक लड़का है जो कि कुछ दिनों की छुट्टी के लिए शिवपालगंज में अपने मामा वैदयजी के पास जाता है। ये सभी पात्र शिवपालगंज के रहने वाले हैं। कहानी के स्थानों के वर्णन से यह लखनऊ के पास किसी स्थान की कहानी लगती है, जहाँ अवधी भाषा बोली जाती है।

कहानी में हास्य है लेकिन हास्य केन्द्रित कहानी कह देना अनुचित होगा। कहानी का केन्द्र व्यवस्था में जड़ जमा चुकी अनैतिकता है। अंत में हर एक पात्र का उद्द्येश्य सिर्फ यह रह जाता है कि कोई चीज उसके अनुसार हो रही है कि नहीं। व्यवस्था को सुधारने से किसी का कोई उद्द्येश्य नहीं रह जाता। सरकारी तंत्र के जिन अंगों का यहाँ पर ज़िक्र हुआ है उनका बहुत ही पतित रूप दिखाया गया है चाहे वह पुलिस हो, न्यायालय हो, सरकारी विद्यालय निरीक्षक हों या गाँव के प्रधान ही क्यों न हों। हर एक व्यवस्था को अपने अनुसार ढाल लेना यह कोई इस उपन्यास के पात्रों से सीखे। यह करते समय भी ऊपर से आदर्शवाद का दिखावा बनाये रखा जाता है और भाषणों में आदर्शवाद की कोई कमी नहीं दिखाई पड़ेगी। सामान्य जनता में भी शायद इस बात का भरोसा हो गया है कि जिसके पास शक्ति है वही सब कुछ कर सकता है, अन्यथा व्यवस्था से लड़ने का कोई फायदा नहीं है। उपन्यास में यह भी दिखाया गया है कि किस प्रकार से रबरस्टाम्प लोगों के माध्यम से सत्ता को परदे के पीछे से संचालित किया जाता है।

इस उपन्यास में आदर्शवाद और यथार्थवाद के बीच की खींचतान को दिखाया गया है। शहर का पढ़ा हुआ नौजवान जब किताबी आदर्शों को लेकर ग । है तो उसे हर एक संस्था भ्रष्ट लगती है। वह हर समय यही कोशिश करता रहता है कि कैसे इस व्यवस्था को सुधार जाये। उसने जब देखा कि अन्याय के खिलाफ लड़ने वालों का पलड़ा कमजोर हो रहा है तो उसने उन लोगों की तरफ से आवाज उठाने की कोशिश भी की और उनको अप्रत्यक्ष रूप से बेईमानी के विरुदध लड़ते रहने के लिए उकसाया भी। इतना सब करने के बाद भी जब उसकी कोशिशों का कोई परिणाम नहीं निकला तो उसने हार मान ली। और गाँव छोड़कर जाने का फैसला कर लिया। लेकिन तब कहानी के अन्य पात्र ने उससे कहा कि जाओगे कहाँ। हर जगह तो बेईमानी और भ्रष्टाचार व्याप्त है। उसने इस बात पर सोचा भी कि छोटे बड़े रूप में हर जगह शासन ऐसे ही चलता है। यही इस उपन्यास का मूल तत्त्व कहा जा सकता है कि अनेक बार जब आदर्शवाद और यथार्थवाद टकराते हैं तो बहुधा पहले हार मानने वाला आदर्शवाद ही होता है।

उपन्यास की भाषा में आँचलिकता के तत्व हैं। उत्तर प्रदेश के अवध प्रान्त में बोले जाने वाले बहुत से शब्द इस्तेमाल किये गए हैं। कई जगह सीधे सीधे अवधी भाषा में किये गए वार्तालाप को उद्धृत किया गया है। पूरी पुस्तक के हर एक पैराग्राफ में शासन-व्यवस्था पर प्रत्यक्ष रूप से कटाक्ष किया गया है। इस तरह से कहीं भी रूचि कम नहीं होती है। कहानी का अंत थोड़ा अलग है। यह लग सकता है कि अंत अचानक से हो गया है। साथ ही साथ कॉफ़ीहाउस में चलने वाली वैचारिक चर्चाओं पर भी व्यंग कसा गया है जिनका कोई परिणाम निकलकर नहीं आता है लेकिन उसमें भाग लेने वाले अपने कर्तव्यों की इतिश्री समझ लेते हैं। श्रीलाल शुक्ल को इस कृति के लिए 1969 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से नवाज़ा गया था।

इस उपन्यास के पात्र परिचय इस प्रकार है

वैद्यजी: वह सभी गांवों की राजनीति के पीछे का मास्टरमाइंड है अपने वाक्य तैयार करने और उसके शब्दों को चुनने में बहुत स्पष्ट, वैद्यजी भी आधिकारिक तौर पर स्थानीय कॉलेज के प्रबंधक हैं।

रुप्पन बाबू: वैद्यजी के छोटे बेटे और कॉलेज के छात्रों के नेता, रुप्पन बाबू पिछले कई सालों से 10 वीं कक्षा में रहे। हैं, उसी कॉलेज में, जहां उनके पिता प्रबंधक हैं रुप्पन सक्रिय रूप से सभी गांवों की राजनीति में शामिल है और गांव समुदाय द्वारा उनके शानदार गणिता के कारण उनका सम्मान किया जाता है। उपन्यास के अंत में, उसके व्यवहार में एक क्रमिक परिवर्तन देखा जा सकता है।

बद्री अग्रवाल: रुप्पन बाबू के बड़े भाई बद्री अपने पिता की सहभागिता से दूर रहती है और खुद को शरीर-निर्माण के अभ्यास में व्यस्त रखती है और अपने आश्रय की देखभाल करती है।

रंगनाथ: इतिहास में एम.ए., रंगनाथ वैद्य जी के भतीजे हैं। वह लगभग 5-6 महीने के लिए छुट्टी पर शिवलगंज आ गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक शिक्षित व्यक्ति की आंखों के माध्यम से गांवों में दयनीय स्थिति को देखते हुए देखना चाहता है।

छोटा पहलवान: गांव की राजनीति में एक सक्रिय पार्टनर बद्री अग्रवाल के एक, गांव की राजनीति में एक सक्रिय सहभागिता है और वैद्यजी द्वारा बुलाए गए बैठकों में लगातार सहभागिता है।

प्रिंसिपल साहिब: जैसा कि नाम का अर्थ है, प्रिंसिपल साहिब, छांमल विद्यालय इंटर कॉलेज का प्राचार्य है। कॉलेज में कर्मचारियों के अन्य सदस्यों के साथ उनका संबंध साजिश का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

जोगनाथ: स्थानीय गुंडे, लगभग हमेशा नशे में वह प्रत्येक 2 सिलेबल्स के बीच "एफ" ध्वनि डालने से एक अनूठी भाषा बोलती है

सनीचर : उनका असली नाम मंगलदास है, लेकिन लोग उसे सनीचर कहते हैं। वह वैद्ययाजी का नौकर है और बाद में वैद्यजी द्वारा राजनीतिक रणनीति के उपयोग के साथ गांव की कठपुतली प्रधान (नेता) बनाया गया था।

लंगड़ : वह अस्थायी आम आदमी का प्रतिनिधि है जो भ्रष्ट व्यवस्था के सामने झुकाता है, यहां तक कि छोटी-सी चीजें भी करने के लिए।

महत्वपूर्ण तथ्य :

- "रागदरबारी उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल के एक कस्बानुमा गाँव शिवपाल गंज की कहानी है; उस गाँव की जिन्दगी का दस्तावेज, जो स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद ग्राम विकास और 'गरीबी हटाओ' के आकर्षक नारों के बावजूद घिसट रही है।"- कथन है @ गोपाल राय
- उपन्यास की भाषा में आंचलिकता के तत्व हैं। ..
- 'राग दरबारी' का प्रकाशन 1968 में हुआ था।
- राग दरबारी की कथा भूमि एक बड़े नगर से कुछ दूर बसे गाँव शिवपालगंज की है।
- गाँव की राजनीति के दो मुख्य ध्रुव हैं - वैद्यजी और रामाधीन भीखमखेड़वी।
- कहानी के स्थानों के वर्णन से यह लखनऊ के पास किसी स्थान की कहानी लगती है, जहाँ अवधी भाषा बोली जाती है।

*11.*जिन्दगीनामा' उपन्यास - कृष्णा सोबती

'जिन्दगीनामा' उपन्यास की शुरुआत लेखिका की काव्यात्मक अभिव्यक्ति में लेखिका की काव्यात्मक अभिव्यक्ति से होती है। सात-साढ़े सात पृष्ठों के भौगोलिक, सामाजिक व सांस्कृति परिवेश को ऐसा भावात्मक रूप दिया है कि देखते ही बनता है। इन बिंबों में 'चिनाब और जेहलम (नदियों) की धरती के 'माँ' बनने, 'मीठी सजरी धूप', 'ठंडी भरी गदराई देहें', 'घी रची मोटी वजनी रोटियाँ', 'बैसाखी और लोहडी के लाख बाट बजते ढोल', 'गुल्ली डंडे और सौन्ची की बोरियाँ', 'सगुणों के बाग और फुलकारियाँ', 'खुशहाल धरती का खुशहाल लिश्कारा', 'भरे-पूरे पंजाब की धरती पर घिर आयीं', जहर की कांगें', 'पंज दरियाओं के पंजाब', जिंदा रुखों की छाँह', 'चिट्टी दूध शोख पंजाब की बेटियाँ' इत्यादि अनेक जीवंत बिंबों का ऐसा सृजन कृष्णा सोबती ने किया है कि पंजाब का पूर परिवेश ही जैसे आँखों के सामने रूपायमान हो जाता है।

इस काव्यात्मक अभिव्यक्ति के बाद उपन्यास के गद्यात्मक भाग का आरंभ भी परिवेश के ही जीवंत चित्रण से होता है। यह चित्रण है - विभाजनपूर्व पंजाब के गाँव में 'शरद पुण्या की रात' का। पूरा गाँव तो जैसे लिरक रहा ही है, लेखिका ने इस चित्रण को अपनी बिंबात्मकता से और अधिक सजीव बना दिया है, जैसे 'चिट्टी दूध चाँदनी रात की मस्ती में हँसना-खेलना। फिर बड़े लाला के घर के परिवेश का चित्रण, जहाँ पंजीरी का प्रसाद पूरे गाँव को बाँटा जा रहा है। प्रसाद के बाद बड़े लाला का गाँव भर को कथा सुनाना। एक पूरा सांस्कृतिक परिवेश जैसे आँखों के सामने दृश्यमान होने लगता है।

पूरा उपन्यास आदि से अंत तक इसी प्रकार की बिंबात्मकता और चित्रमयता से भरा हुआ है। अपने शिल्प में भी जैसे लेखिका ने उपन्यास में दृश्यों की एक लडी का सृजन किया हो। उपन्यास में हर अल्प विराम के बाद एक नया दृश्य है। लेखिका ने पूरे उपन्यास में अध्याय विभाजन के रूप में पूर्ण विराम या अर्द्धविराम कहीं किया ही नहीं है।

लेखिका के परिवेश-चित्रण में एक सावधानी और सजगता मौजूद है, बावजूद इसके कि पूरा परिवेश एक सहज-स्वाभाविक रूप में चित्रित हुआ है। 'शरद पुण्या की रात' के चित्रण में हिंदू रीति का चित्रण है तो अगला की दृश्य मुस्लिम परिवेश का आभास भी करा देता है - 'मसीत से अजान और मुर्गे की बांग के एक साथ होने से भोर के होने के चित्रण द्वारा।

'जिन्दगीगामा' के डेरा जट्टां गाँव की रात यदि सुंदरता में सराबोर है तो उसकी प्रभात भी कम आकर्षक नहीं। भोर में मुँह अँधेरे ही गाँव जग जाता है और स्नानादि व आस्था मूलक कर्म में लग जाता है। गाँव में सुहावना समय है, लेकिन अंधी आस्था में 'रूहों-मृतात्माओं के दर्शन भी हो जाते हैं। बडी शाहनी को 'साक्खयात आबडयाल वाली ब्याह का लाल सुन्दर गोटेवाला जोडा और नाक में सोने का 'लौंगडा' रूप में दिखाई देती है - बड़े शाह की स्वर्गीय पहली पत्नी।। कृष्णा सोबती परिवेश चित्रण में इतनी बारीकबीनी से दत्तचित्त हो सृजन करती है कि मानव शरीर के अंग-अंग से लेकर बाह्य परिवेश के हर अंश भी उसमें समन्वित हो जाते हैं। 'ओलू में शाहनी के मल मल नहाने' का भी पूरा दृश्य और 'आबडयाल वाली का

परधावाँ उतरने' को वे साथ-साथ चित्रित करती चलती है। बाह्य परिवेश-चित्रण में गुरुद्वारे में गुरवाणी गायन को भी वे परिवेश-चित्रण का अंग बनाकर प्रस्तुत करती है।

रात और प्रभात के चित्रण के बाद जीवन के समूचे कार्य-व्यापारों का चित्रण लेखिका करती हैं। लेखिका ने उपन्यास में पंजाबी जन-जीवन के, उसकी लोक-संस्कृति के हर पहलू को व्यवस्थित रूप से चित्रित करने की शिल्पविधि अपनाई है। और इस क्रम में लोहडी के पहले के पंजाबी संस्कृति के रोचक रूप 'त्रिंजन' का चित्रण प्रस्तुत होता है। 'त्रिंजन' में गाँव की कुँवारी लडकियाँ मिल-बैठकर चर्खा कातती हैं, हँसती-बोलती, गीत गाती हैं और एक समां सा बाँध देती हैं। इस चित्रण में औरतों की आपस की छेडछाड भी शामिल है। यह कातना, नाचना-गाना, हँसना-खेलना, बिना खाए-पिए कैसे हो सकता है ? सो गुड की पिन्नियाँ, सीलम के मरुंडे, शीरनी के थाल, दूध के छन्ने भी साथ ही रहते हैं। सर्दी में ही यह सब खाया-पिया जाता है। और आधी रात तक स्त्रियों का यह खुशी भरा त्यौहार चलता रहता है।

लोहडी पंजाब में 13 जनवरी के आसपास, सर्दी के शिखर के अवसर पर मनाई जाती है, जब पूरा गाँव-मोहल्ला इकट्ठे बैठकर उपलों को जलाकर आग सेंकता हैं, नाचता-गाता है, खाता-पीता है और सर्दी को एक तरह से सामूहिक रूप से

खूबसूरत विदाई देता है। लडकियाँ यदि इस मौके पर त्रिंजना लगाती हैं तो लडके, खासकर छोटे लडके क्यों पीछे रहें? लोहडी से कुछ दिन पहले ही गा-बजाकर घर-घर से विशेषतः जिन घरों में लड़कों का पिछले एक वर्ष के अंदर जन्म हुआ है, उनसे जोर से 'लोहडी' माँगी जाती है। कृष्णा सोबती ने उस परिवेश को 'जिन्दगीनामा' में जैसे साक्षात् दृश्यमान् कर दिया है -

"आयेगी भई आयेगी
इस घर लोहडी आयेगी
आने वाली लोहड़ी पर
शानो की माँ गोदी में
बच्चडा खिलायेगी
आ तेरा गीमडा जीये

वैसे लड़कों के जन्म के ये चाव पंजाबी के सामंती पक्ष को ही इंगित करते हैं, जो जमीनों-जायदादों के 'वारिस' लडके के रूप में ही देखता है। लोहडी की रात विभाजनपूर्व पंजाब के गाँवों-कस्बों में ऐसा खुशियों व चावों से भरा सामूहिक उत्सव का रूप प्रस्तुत करती थी, जो आज की दीवाली से भी कहीं अधिक आकर्षक था। इस उत्सव में पूरा गाँव, बिना किसी धार्मिक भेदभाव के शामिल होता था। इस पूरे उत्सव को 'जिन्दगीगामा' में कृष्णा सोबती ने ऐसा सजीव बना कर प्रस्तुत किया है। कि उनके परिवेश-चित्रण के कौशल का लोहा मानना पड़ता है।

पुत्र-प्राप्ति की मन्नत मानना, इसके लिए पीर-फकीरों को पूजना आदि पहले भी आम बात थी और अब भी यह लोकरीति खतम नहीं हुई है। चाची मेहरी को साथ ले शाहनी संतान प्राप्ति की चाह लिए बाबा फरीद के दरबार में मन्नत मानने जाती है तो रास्ते में चाची मेहरी अपनी पहली ससुराल में रुकती है, जहाँ वह 'लड्डिक्को' कहलाती थी, जहाँ उसका देवर साहिब सिंह जैसे उसी की इंतजार में था। इस घर में दीदार सिंह से उसका ब्याह हुआ था, जिसकी मृत्यु के बाद वह गणपत शाह के इश्क में रंग कर चाची मेहरी बन गई थी। लेकिन इस प्रसंग में सामंती सामज में भी तमाम बंधनों के बावजूद स्त्री-पुरुष के इश्क होने व परवान चढ़ने को लेखिका ने बडा आकर्षक बना कर प्रस्तुत किया है। न सिर्फ बाह्य परिवेश-चित्रण में ही, वरन् उपन्यास के चरित्रों के मनोगत व आंतरिक चित्रण में भी लेखिका ने बडी दक्षता का परिचय दिया है। अपने सभी किरदारों-शाहजी, शाहनी, छोटे शाह-बिंद्रादयी, राबयाँ, लाल, चाची मेहरी आदि के व्यक्तित्वों को स्वरूप प्रदान करने वाले बाह्य पक्षों अर्थात् सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश को तो लेखिका ने पूरे कौशल के साथ चित्रित किया ही है।

सामाजिक परिवेश को चित्रित करते समय लेखिका सहज रूप में ही 'जिन्दगीगामा' में प्रस्तुत कालखण्ड, जो कि 1907-1915 के बीच का कालखण्ड है, का राजनीतिक संदर्भ भी चित्रित करती चलती हैं। लेखिका ने उपन्यास में कहीं भी किसी ईस्वी सन् आदि का जिक्र नहीं किया है, किंतु उसके चरित्र जिस प्रकार गदरी इन्कलाबियों या मदन लाल ढींगरा की शहादत, बंग-भंग स्पष्ट आभास हो जाता है। 'जिन्दगीगामा' भाग एक (जिंदा रुख) में प्रस्तुत कालखण्ड का 1907-1915 के बीच का है और इस कालखण्ड की औपनिवेशिक नीतियों या कि ब्रिटिश प्रशासनिक तंत्र का भी वे यथार्थ वर्णन करती चलती हैं। आज भी देश में ब्रिटेन द्वारा स्थापित पुलिस तंत्र अत्यंत क्रूर, अमानवीय व भ्रष्ट ब्रिटिश काल से ही है, जिसने अपने इन 'गुणों' में 'आजाद' भारत में और भी 'तरक्की' की है। पुलिस तंत्र के इस स्वरूप को 'जिन्दगीगामा' में भी उघाडा गया है। इसे सबसे पहले सिपाही लाल खाँ के किरदार रूप में देखा जा सकता है, जो सरकारी अहलकार पैंडा खाँ के कत्ल की तफ्तीश के लिए गाँव आता है और पूरा गाँव थानेदार सलामत अली के सामने हाजिर हो जाता है। पुलिस मार-पीट के सिवाय और कुछ तो जानती नहीं, पंजाबी ग्रामीण पुलिस की मार भी खाते हैं और पंजाबी मिरासी-कंजर-सांसी मार खाकर भी उसकी हँसी उडाते हैं। इस तरह पुलिस की क्रूर मार और पंजाबी स्वभाव का इस मार का हँस कर सामना करना - इस पूरे परिदृश्य को लेखिका ने बड़े जीवंत रूप से 'जिन्दगीनामा' में चित्रित किया है। पंजाब के गाँवों में से वैसे ही दो चार लोग जरूर किसी कत्ल जैसे अपराध में जेल में बंद रहते हैं और पीछे उनके परिवार कष्ट झेलते हैं, इस स्थिति के यथार्थ को भी लेखिका ने करम बीबी और उसके पोतरे बरखुरदार के जीवन के माध्यम से उघाडा है।

बडी शाहनी का गर्भवती होना उपन्यास का महत्त्वपूर्ण प्रसंग बन कर चित्रित हुआ है। सिर्फ गर्भवती होना ही पूरे गाँव में उत्सव मनाने का अवसर प्रदान कर देता है। पूरे गाँव को खिलाया-पिलाया जाता है। इसके बाद तो बडी शाहनी के लडका पैदा होने तक और फिर उसके बाद भी शाहों के घर में और कुछ हद तक गाँव भर में उत्सवप्रियता का ही आलम बना रहता है।

इस उत्सवप्रियता का शिखर है - बच्चे लाली का जन्म । गाना-बजाना शाह जी की बहनों व दूसरे संबंधियों का आना जाना, पूरे गाँव को खिलाना-पिलाना, फिर विभिन्न रस्में- सुखनाहन - शाहनी का नहा धोकर - चौके चढ़ना, और इसी क्रम में राबयाँ का शाह-परिवार से जुडते चले जाना आदि एक ही सूत के विभिन्न मनके हैं।

लोहडी के बाद बैसाखी पंजाब के गाँवों का महत्त्वपूर्ण त्यौहार है, जब किसानों की फसलें पक जाती हैं और उन्हें बेचकर खुशियाँ मनाने के मूड में होता है। जगह-जगह बैसाखी के मेले लगते हैं, डेरा जट्टा गाँव की बैसाखी का लेखिका ने 'जिन्दगीगामा' में बड़े मनोयोग से चित्रण किया है। इस चित्रण में केवल हँसना-खेलना या गाना-बजाना ही नहीं है, किसानों-मेहनतकशों के शाहों द्वारा शोषण को भी रेखांकित किया गया हैं 'दानों के ढेर लगे-खेत तो शाहों के ही न! अपने हिस्से तो मेहनताना - वाढी की कुछ भरियाँ!' किसानों के शाहों के ऋण-जाल में फँसे होने के आर्थिक दुष्चक्र को भी लेखिका ने अपने परिवेश-चित्रण का अंग बनाया है, जिससे परिवेश-चित्रण में सामाजिक यथार्थ का प्रामाणिक रूप भी उजागर हुआ है। किस प्रकार शाहों द्वारा दी गई सौ रुपेय की मूल रकम ब्याज के जाल में फँस कर एक हजार रुपये तक पहुँच जाती है, बड़े शाह के लिए यह साधारण बात है, क्योंकि, 'साहूकारी पेशा है। किसी ने दिलजोही के लिए नहीं बनाया-चलाया' इसी पेशे के चलते एक सौ एक रुपये लेकर शाहों के मिल्कियत बन गए हैं। आर्थिक शोषण शाहों का मूल कर्म है, इसे लेखिका ने उपन्यास के सांस्कृतिक सौन्दर्य में छिपाया नहीं है।

न्यायिक व्यवस्था अर्थात् कोटे-कचहरी भी पुलिस तंत्र की तरह ब्रिटिश उपनिवेशवादी व्यवस्था की देन है जो अभी भी उसी रूप में बरकरार है। इस न्यायिक तंत्र में आम आदमी कितना पिसता है और कैसे शाह जैसे धनी लोग ही मुकदमें जीतते हैं, इसे अत्यंत कौशल के साथ उपन्यास में चित्रित किया गया है। इस प्रकार परिवेश को यथार्थ और जीवन्त बनाने के लिए कृष्णा सोबती ने संस्कृति के साथ ही भ्रष्ट न्यायिक तंत्र का भी प्रामाणिक चित्रण किया है।

गांवों के जीवन में कत्ल होना सनसनी जरूर फैलाता है, लेकिन ऐसी घटनाएँ पंजाब के ग्रामीण जीवन का सामान्य अंग रही हैं। शाहदाद के कत्ल, तारेशाह द्वारा बरकती को उठा लाने की घटना आदि ऐसे ही प्रसंग है, जिनमें गाँवों में अपराध के प्रति भी एक रोमांच भाव दृष्टिगोचर होता है। इन अपराधिक घटनाओं की बहादुरी के प्रति एक प्रशंसा का भाव भी लोगों में बना रहता है।

बैसाखी के बाद 'जिन्दगीगामा' में सावन के बरसात के मौसम का भी चित्रमय अंकन किया गया है। 'सावन की जल-बिंबियों यह जा और वह जा! फणकारे मारते पनीले मीह ऐसे घिर-घिर आए ज्यों ज्यों गाजी मरदों के लश्कर । बादल गरजे-कडकें कड़ाकों से मानो फौजों की टुकड़ियाँ! बिजली लप्प-लप्प चमकें ज्यों तलवारें! चमा-चम्म! झमा झम्म! प्राकृतिक परिवेश के अभाव में सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश जीवंत नहीं हो सकता, इसे कृष्णा सोबती ने बखूबी समझा है।

पंजाब के ग्रामीण जीवन का एक महत्त्वपूर्ण पहलू रहा है - फौज में भर्ती का, फौज में लड़ते हुए शहीद होना या फिर फौज से रिटायर होकर गाँव में बसने का। फौज में भर्ती से लेकर, युद्धों में फौजियों की शूरवीरता, शहादतें या रिटायर फौजियों के अनगिनत किस्से गाँव के जीवन का अभिन्न अंग रहे हैं। 'जिन्दगीगामा' में भी जहाँदाद और गंडा सिंह रिटायर होकर फौजी जीवन के किस्सों से गाँव भर का जी बहलाते रहते हैं। यहाँ 33 पंजाब और 40 की बटालियनों के अनगिनत किस्से है। इसके साथ ही फौजियों की आपसी दुश्मनियों की बातें भी हैं। 33 पंजाब के लबाणा जाति के फौजी थे तो रजमेंट 40 पंजाबी मशहूर मुल्की पलटन है। कोई जात-जिरगा नहीं जो इसमें न हो। इसमें जट्ट, राजपूत, बुनेरवाल, स्वाती, गिलजई, दुर्रानी, बजौरी, भट्टानी, यहाँ तक कि इसमें गोरखे तक शामिल है। ये सभी तथ्य उपन्यास में प्रसंगतः ही आए हैं।

डेरा जट्टा गाँव के जीवन में गाँववासियों का इकट्ठे बैठकर गप्पे लड़ाना एक बड़ा जीवंत दृश्य है। वैसे तो भारत में हर गाँव में सामूहिक गप-शप के लिए एक केन्द्रीय जगह रहती ही है। इसी चौपाल चर्चा को 'जिन्दगीनामा' में 'मजलिस' भी कहा गया है। इस मजलिस का एक दिलचस्प विषय रहा है -पंजाब के विभिन्न क्षेत्रों के लोगों के चारित्रिक विशिष्टताओं के अंकन का 'मिट्टी-पानी, कद-बुत, वजह-कतह और लहजे से यह पहचानना कि आदमी लहंदे का है या पोठोहार का या माझे का।' विभाजनपूर्व पंजाब की सात उपभाषाएँ थीं - लहंदी, पोठोहारी, मुल्तानी, झांगी, माझी, दोआबी। इस समय भारतीय पंजाब में मलवई मुख्य उपभाषा है, माझी और दोआबी केन्द्र से हट गई है। जबकि पाकिस्तानी पंजाबी में माझी केन्द्रीय उपभाषा और लहंदी, पोठोहारी, मुल्तानी और झांगी अन्य उपभाषाएँ रही हैं। इन्हीं उपभाषाओं के केन्द्र विभिन्न शहर-कस्बे हैं, जिनके नाम से वहाँ के बाशिंदों की चारित्रिक विशेषताएँ भी जुड़ी हैं, जैसे 'स्यालकोट तो सेहरा हुआ पंजाब का', 'स्यालकोटिये चाल-ढाल में शौकीन - जहीन और गुफ्तगू में बारीक' । स्यालकोट संबंधी बड़ा प्रसिद्ध लोकगीत है - 'तेरे मुखड़े ते काला तिल वे-वे मुंडिया स्यालकोटिया' (ओ स्यालकोट के लड़के, तेरे चहरे पर काला-काला तिल है) । लाहौर के बाद स्यालकोट पंजाब का प्रसिद्ध शहर रहा है, जो भारतीय सरहद में जम्मू व गुरदासपुर के बहुत ही नजदीक है।

गुजरात विभाजनपूर्व पंजाब का महत्त्वपूर्ण जिला रहा है, जहाँ पर कृष्णा सोबती का जन्म हुआ था। वहाँ के लोगों के संबंध में 'जिन्दगीगामा' के पात्र कहते हैं - "गुजराती बंदे बड़े ऐबर्ची और बदगुमान!.... मिजाज से बातूनी और दूसरों के बखिए उघेड़ने में माहिर ।' लाहौर के बारे में कहा है - "जो लाहौर नहीं गया, वह जन्म्या ही नहीं" | बिल्कुल इसी शीर्षक से पिछले वर्षों असगर वजाहत का नाटक खूब खेला गया, चर्चित हुआ व सराहा भी गया।

स्थानीय परिवेश के चित्रण की दृष्टि से चौपाल-चर्चा का विशेष महत्त्व होता है। शाह दरबार में लगने वाली मजलिस में नाई रमजान, चौधरी मौलादाद, मौलबी इल्मदीन, कृपाराम, कर्म इलाही, रमजान, पिण्डीदास, फत्ते खाँ, गण्डा सिंह आदि जैसे लोगों के बीच चलने वाली वार्ता में तमाम सारी गप्पों के साथ पंजाबी जीवन के महत्त्वपूर्ण पहलू भी उद्घाटित होते हैं। इस चर्चा में लाहौर, काबुल, स्यालकोट आदि जैसे कस्बों का निजीपन ही नहीं, पंजाब की विभिन्न जातियों का जातीय चरित्र भी उद्घाटित होता है। यह चौपाल ही है, जो डेरा

जट्टां को पूरे पंजाब से जोड़ देता है। इस प्रकार 'जिन्दगीनामा' पंजाब के पूरे परिवेश का प्रामाणिक दस्तावेज बन जाता है।

चौपाल की इसी चर्चा के दौर में देश की राजनीति पर भी चर्चा होती है, हालांकि पूरे गाँव में एकाध अखबार ही आता है, वह भी कई दिनों के बाद । सिर्फ बाहर से आने वाली चिट्ठियों या किसी मेहमान के गाँव में आकर जाने के बाद गाँव वालों को चर्चा के लिए खबरों का खजाना मिल जाता है। लाला लाजपय राय की वकालत की चर्चा भी डेरा जट्टां गाँव की चौपाल में होती है।
इसी चौपाल चर्चा के बहाने लेखिका ने पंजाब के तमाम मिठाइयों को भी पाठकों के सामने उनकी पूरी रसमयता के साथ पेश कर दिया है। संदर्भ दीवाली चित्रण का है, विशेषतः लाली की पहली दीवाली का। इस अवसर पर मिठाइयों की सूची बनती है। हलूके के लड्डू, खांड मलेके मढे, मक्खनबड़े, बालूशाहियाँ, अंदरस्से, शीरनी, कुलियाँ बताशियाँ, मखाने, कड़ाह प्रसाद, छैनामुर्गी, कलाकंद, कत्तलम्मे, बदाना आदि मिठाइयों की चर्चा होती है, किंतु दीवाली का वैसा चित्रण 'जिन्दगीनामा' में नहीं है, जैसा लोहड़ी का। संभवतः दीवाली शहरी त्यौहार अधिक है, और विभाजनपूर्व पंजाब के गाँवों में आतिशबाजी या पटाखे चलाने का ज्यादा रिवाज न रहा हो।

चौपाल चर्चा में पंजाब की गर्म राजनीति पर चर्चा बढ़ जाती है। छोटा काशीशाह क्योंकि अखबार पढ़ता है, उसी से सब खबरें पूछी जाती हैं। खबरों में 'पगडी संभाल जट्टा' गीत की गूंज, दंगे फसाद, बंगाल के दो टुकड़े होने (1905), लाजपत राय और अजीत सिंह को जलावतन करने (1907) आदि की चर्चा के साथ-साथ ब्रिटिश सरकार की जमकर आलोचना भी डेरा जट्टां गाँव के लोग करते हैं। 'जिन्दगीनामा' उपन्यास में लेखिका ने स्वतंत्रता संग्राम के संदर्भ में पंजाब में व्याप्त उपनिवेशवाद विरोधी भावनाओं को भी यथार्थ रूप से बडी कलात्मकता के साथ अंकित किया है।

शाहों के घर जन्मे लालीशाह के लिए उत्सव चलते ही रहते हैं। इसके लिए गाँव में लखनवाल वाली बुद्धां और हुस्ना को गाने के लिए बुलाया जाता है, जिससे सारे गाँव में उत्तेजना फैली है, इसी बहाने पंजाब की लोकगायन परंपराओं-टप्पे, पूर्ण भगत, सस्सी, पुन्न, मिर्जा-साहिबाँ, काफियाँ, हीर आदि की चर्चा भी हो जाती है। चौपाल चर्चा में औरतों की किस्मों की भी गिनती लेखिका ने किरदारों के माध्यम से करवा दी है।

उपन्यास में चौपाल चर्चा या मजलिस बहुत सी बातें कहने का माध्यम बनी है। इसमें पंजाब की इतिहास चर्चा भी शामिल है। लाहौर के जालिम सूबेदार मीर मन्नू, अब्दाली शाह दुर्रानी, सिख प्रतिरोध, गुरु गोविन्द सिंह की भूमिका आदि पर चर्चा होती रहती है।

उपन्यास में धर्म और जाति से ऊपर उठकर इश्क के अनेक किस्से हैं। विधवा ब्राह्मणी का मुसलमान से प्यार, तारेशाह का छोटी जाति की स्त्री से प्यार आदि अनेक किस्सों द्वारा लेखिका ने दिखाया है कि

सामंती संस्कृति व्यक्तिगत भावनाओं को धर्म आदि दबावों द्वारा जितना चाहे दबा ले, इंसान की प्राकृतिक भावनाएँ समय पाकर अपनी अभिव्यक्ति प्राप्त करके ही रहती है।

उपन्यास में पंजाब के सामाजिक-राजनीतिक इतिहास में धर्म-सुधार आंदोलन के रूप में आर्य समाज व स्वामी दयानंद के प्रभाव को गाँव में आर्यसमाजी प्रचारक के माध्यम से अंकित किया है। यद्यपि आर्यसमाजी के प्रचार का ढंग ग्रामीण जीवन में मजाक का विषय अधिक बनता है, सुधार का कम। इससे पता चलता है कि सुधार के लिए खाली तर्क नहीं, सांस्कृतिक परिवेश को समझना भी जरूरी है। रेलगाडी शुरू होने व लोगों में आश्चर्य भाव पैदा होने का जिक्र भी। उपन्यास में है। पंजाबी कैसे बीसवीं सदी के आरंभ में ही इंग्लैंड, कनाडा आदि देशों में जाकर बसना शुरू हुए, इसका पता भी डेरा जट्टा गाँव के परिवेश-चित्रण से ही लग जाता है।

उपन्यास के अंत तक आते-आते लाम लगने अर्थात् द्वितीय विश्व युद्ध शुरू होने (1914) का वर्णन भी है। इस युद्ध के दौरान गाँव से जबरदस्ती फौज की भर्ती का दृश्य डेरा जट्टा गाँव के माध्यम से लेखिका ने चित्रित किया है। फौज के प्रति पंजाबियों के आकर्षण को लेखिका ने युद्ध के समय एक लाख पंजाबी सैनिक फौज में होने व हर 28 फौजियों में से एक के पंजाबी होने के उल्लेख द्वारा व्यक्त किया है।

मिट्टी के ब्याह की योजना द्वारा लेखिका ने शादी के उत्सव और रस्मों का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। बारात की सेवा, गाना-बजाना, खिलाना-पिलाना इस उत्सव का मुख्य आकर्षण हैं। अभी युद्ध चल ही रहा है कि गदरी आंदोलन शुरू हो जाता है। उपन्यास में गदरी इन्क्लाबियों के कारनामों व गुजराती वकील (गांधी) - दोनों की यथोचित चर्चा हुई है। उपन्यास का अंत लेखिका गदरी क्रांतिकारियों के प्रति सहानुभूति व समर्थन की भावना के साथ गुरु गोविन्द सिंह के इस संदेश द्वारा करती हैं कि "चूँ कार अज हमां हीलते दरगुजश्त । हलालस्त बुर्दन ब-शमशीर दस्त!' 'जब दूसरे सब रास्ते कारगर न हों सकें तो जुल्म के खिलाफ तरवार उठा लेना जायज है!' 'जिन्दगीनामा' मूलतः विभाजनपूर्व पंजाब के जन-जीवन की लोक-संस्कृति पर आधारित उपन्यास है, जिसके सांस्कृतिक परिवेश को लेखिका ने अत्यंत कौशल के साथ जीवंत रूप में चित्रित किया है।

पंजाब के तीन त्योहारों-लौहडी, बैसाखी व दीवाली का तथा अन्य अनेक लोक उत्सवों का लेखिका ने मनोयोग से चित्रण किया है। होली का चित्र इसमें शामिल नहीं है, संभवतः विभाजपूर्व पंजाब के ग्रामीण परिदृश्य में होली का विशेष महत्त्व न रहा हो। यह भी हो सकता है कि सिक्खों और मुसलमानों के बीच होली के प्रति अनुत्साह के कारण लेखिका ने स्वयं इसे छोड दिया हो।

लोक संस्कृति के साथ-साथ लेखिका ने तत्कालीन पंजाब के सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक परिवेश को भी बड़े यथार्थ व प्रामाणिक रूप से अंकित किया है। इससे यह उपन्यास 1907-1915 के कालखण्ड का ऐतिहासिक-सांस्कृतिक दस्तावेज भी बन गया है।

कुल मिलाकर कृष्णा सोबती द्वारा 'जिन्दगीनामा' उपन्यास में परिवेश-चित्रण का ऐसा सजीव रूप प्रस्तुत किया गया है, जो अन्य आंचलित उपन्यासों के लिए एक प्रतिमान बन सकता है।

'जिन्दगीनामा' से संबंधित प्रस्तुत इकाई में उपन्यास की कलात्मकता के दो विशिष्ट पक्षों 'परिवेश-चित्रण व भाषा-सृजन' पर विस्तार से विचार किया गया है।

इस इकाई में आपने देखा कि 'जिन्दगीनामा' मुख्यतः परिवेश प्रधान उपन्यास है और इस उपन्यास में विभाजनपूर्व पंजाब ग्रामीण जीवन की सांझी व समेकित लोक संस्कृति का जीवंत चित्रण प्रायः बिंबों के माध्यम से हुआ है। पंजाब के गुजरात जिले के एक गाँव डेरा जट्टां को केन्द्र में रख कर लेखिका द्वारा पंजाबी संस्कृति के प्रातिनिधिक रूप को परिवेशगत चित्रण द्वारा अभिव्यक्त किया गया है।

इस परिवेशगत चित्रण में लोकजीवन की विविध झाँकियाँ - 'लोहडी', 'बैसाखी', 'त्रिंजन', शादी-ब्याह' व अन्य अनेक मेलों -त्योहारों के माध्यम से उकेरी गई है। परिवेश-चित्रण में व्यावसायिक जीवन-किसान, मजदूर सैनिक आदि के यथार्थ चित्र को भी उद्घाटिक करने का प्रयास किया गया है।

परिवेश को यथार्थ और जीवन्त रूप में प्रस्तुत करने के लिए लेखिका ने भाषा का जो सृजनात्मक उपयोग किया है, उसे भी इस इकाई में विस्तार से स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। सांस्कृतिक परिवेश को अत्यधिक सघन और सार्थक रूप से प्रस्तुत करने के लिए कृष्णा सोबती ने मुहावरों, लोकोक्तियों, लोकगीतों, लोककथाओं का अत्यन्त कौशल के साथ उपयोग किया हैं। मैला आँचल की तरह इस उपन्यास में भी भाषा प्रयोग में आंचलिकता का पुट अत्यधिक होने से कुछ पाठकों के लिए भाव एवं अर्थ-ग्रहण संबंधी कठिनाइयों की ओर संकेत भी इस इकाई में किया गया है। इसके लिए रेणु और कृष्णा सोबती के भाषा प्रयोग संबंधी साम्य ओर वैषम्य पर विचार करते हुए 'जिन्दगीनामा' की क्षमता अक्षमता को भी यथोचित रूप से स्पष्ट किया गया है।

महत्त्वपूर्ण तथ्य -

- 'जिन्दगीनामा' का प्रकाशन समय - 1979 ई.। ।
- इसे 1980 ई. में साहित्य अकादमी पुरस्कार दिया गया।
- विभाजन के पूर्व के पंजाब के आंचलिक जीवन की मार्मिकता की अभिव्यक्ति, साम्प्रदायिक सौहार्द, पारिवारिक

-जीवन और सामाजिक गठन को जीवंतता से प्रस्तुत किया गया है। - इसके दो भाग प्रकाशित हुए

- पहला भाग 'जिन्दा रुख' नाम से प्रकाशित हुआ, दूसरा भाग 'जिन्दगीनामा' नाम से।

-स्वंतत्रता संग्राम व देशप्रेम का आह्वान है।

- चिनाब व झेलम नदी का वर्णन किया गया है।
- जिन्दा रुख - पंजाब की सांझी जन संस्कृति का प्रतीक 1947 ई. तक ।
-इस उपन्यास में डेरा -जट्टा गाँव (गुजरात) का चित्रण किया गया है। V इसमें 62 दृश्य है। । उपन्यास चित्रात्मक शैली में है।
-लोहडी के पहले के पंजाबी संस्कृति के रोचक रूप 'त्रिंजन' का चित्रण प्रस्तुत होता है। 'त्रिंजन' में गाँव की कुँवारी लडकियाँ मिल-बैठकर चर्खा कातती हैं
- 'जिन्दगीगामा' भाग एक (जिंदा रुख) में प्रस्तुत कालखण्ड का 1907-1915 के बीच का है
-परिवेश को यथार्थ और जीवन्त बनाने के लिए कृष्णा सोबती ने संस्कृति के साथ ही भ्रष्ट न्यायिक तंत्र का भी प्रामाणिक चित्रण किया है।
- गुजरात विभाजनपूर्व पंजाब का महत्त्वपूर्ण जिला रहा है
- 'जिन्दगीनामा' उपन्यास में लेखिका ने स्वतंत्रता संग्राम के संदर्भ में पंजाब में व्याप्त उपनिवेशवाद विरोधी भावनाओं को भी यथार्थ रूप से बडी कलात्मकता के साथ अंकित किया है। ।
-उपन्यास का अंत लेखिका गदरी क्रांतिकारियों के प्रति सहानुभूति व समर्थन की भावना के साथ गुरु गोविन्द सिंह के इस संदेश द्वारा करती हैं कि "चूँ कार अज हमां हीलते दरगुजश्त । हलालस्त बुर्दन ब-शमशीर दस्त!" 'जब दूसरे सब रास्ते कारगर न हो सकें तो जुल्म के खिलाफ तरवार उठा लेना जायज है!'
- इस उपन्यास में विभाजनपूर्व पंजाब ग्रामीण जीवन की सांझी व समेकित लोक संस्कृति का जीवंत चित्रण प्रायः बिंबों के माध्यम से हुआ है। ।
-उपन्यास में 'चौपाल' को 'मजलिस' कहा गया है।
- शाहनी इस उपन्यास का सशक्त नारी पात्र है।

*12.*आपका बंटी उपन्यास सारांश प्रश्नोत्तर

'आपका बंटी' एक मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास है। इसमें आधुनिक सभ्य समाज में बिखरते पारिवारिक सम्बन्धों का यथार्थ चित्रण किया गया है। लेखिका ने इस उपन्यास में बंटी के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व और उसकी सूक्ष्म मनोभावनाओं का चित्रण किया है। बंटी शकुन और अजय बत्रा का पुत्र है। बंटी की माँ शकुन एक कॉलेज की प्रिंसिपल है और अजय । बत्रा एक संस्था का डिवीजनल मैनेजर है। बंटी का वास्तविक नाम अरुप बत्रा है। उपन्यास में 'बंटी' ही प्रयुक्त हुआ है। बंटी के माता-पिता परस्पर अलग-अलग रहते हैं। उन दोनों के बीच तलाक की बातें भी यदा-कदा होती रहती हैं। बंटी के कानों में भी ये सभी बातें पडती रहती है। उसके मन में तरह-तरह के विचार उत्पन्न होते हैं। भले ही वह अपनी माँ शकुन के पास रहता हो, किन्तु वह यह भी जानता है कि उसके पिता शहर में आते-जाते रहते हैं, पर वे घर नहीं आते। वे सर्किट हाउस में ठहरते हैं। बंटी अपने पापा से मिलने के लिए वहीं जाता है। ये स्थितियाँ बंटी के मन में अन्तर्द्वन्द्व को जन्म देती हैं। इस उपन्यास में बंटी प्रमुख पात्र के रूप में उभरकर सामने आया है

चरित्र-विधान आधुनिक उपन्यास का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। आज के युग में जो उपन्यास लिखे जाते हैं, उनमें प्रमुखतः मानव -चरित्र का बहु-पक्षीय विश्लेषण किया जाता है। यही कारण है कि मन्नू भण्डारी के

'आपका बंटी' नामक उपन्यास में भी चरित्र-विधान पर्याप्त महत्त्वपूर्ण बन पड़ा है। यद्यपि इस उपन्यास का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पात्र 'बंटी' हैं क्योंकि उसी को केन्द्र में रखकर इस उपन्यास की रचना की गई है परन्तु इस उपन्यास में दूसरा महत्त्वपूर्ण पात्र 'शकुन' भी कोई कम महत्त्व नहीं रखता। शकुन, बंटी की माँ है। वह लगभग दस वर्ष तक अजय के साथ दाम्पत्य जीवन व्यतीत करने के बाद तलाक लेने पर मजबूर हो जाती है और उसके बाद डॉक्टर जोशी के साथ पुनः अपना नया जीवन प्रारम्भ करने की योजना बनाती है। इस उपन्यास में शकुन मध्यम वर्गीय पारिवारिक व्यवस्था से सम्बद्ध, शिक्षित नारी की प्रतिनिधित्व करती है, जिसमें अन्याय और शोषण के विरुद्ध संघर्ष की भावना हैं। घर मे वह केवल एक माँ के रूप में रहती है और कॉलेज में पूरी तरह से एक प्रिंसिपल की भूमिका निभाती है। आधुनिक सन्दर्भो में शकुन का चरित्र पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है।

समीक्षा- 'आपका बंटी' नामक उपन्यास लेखिका मन्नू भण्डारी की एक ऐसी अद्भुत रचना है जिसमें बंटी नामक एक बालक की मनोवृत्तियों का सूक्ष्म चित्रण किया गया है। इस उपन्यास में लेखिका ने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि आधुनिक युग में बिखरते पारिवारिक सम्बन्धों और टूटते समाज के कारण इस विखण्डन के शिकार बालकों का गलत विकास हो रहा है। उनका बचपन मानो छीन लिया गया है। वे अपनों के बीच रहकर भी अपनापन अनुभव नहीं कर पाते और स्वयं को अकेला महसूस करते हैं। आधुनिकता की दौड़ में शिक्षा का नकाब ओढे उनके माता-पिता इतने आत्म-केन्द्रित और स्वार्थी हो गये हैं कि उन्हें आत्म-सुख के समक्ष अपने बच्चों के सुख, उनकी मानसिकता और उनके पालन-पोषण का कोई ध्यान नहीं है। आधुनिक दम्पत्तियों का बालकों के प्रति यह उपेक्षा भाव आगामी पीढी की कुण्ठाओं का महत्त्वपूर्ण कारण है। लेखिका ने प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से आधुनिक जीवन की सभी विसंगतियों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करते हुए बाल मनोविज्ञान का सूक्ष्म और गहन चित्रण किया है। इस उपन्यास में बाल-मनोविज्ञान का इतना सशक्त, सजीव और मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है कि इस उपन्यास को सहज ही मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की श्रेणी में रखा जा सकता है। स्वयं मन्नू भण्डारी ने अपने इस उपन्यास के मूल में विद्यमान अपनी भावनाओं के विषय में लिखा है-" सम्बन्धों के दरमयान गहरी होती दरारें, अन्तर्द्वन्द्व से उठता हुआ सैलाब, पात्रों की कमशः उठती-गिरती मानसिकता, अपने आस-पास के परिवेश से उठे कथानक की लीक से हटकर आये हुए लेखन के सीधे 'विद्रोहात्मक पहलू' को लेकर चलती है। इतना ही नहीं मनोवैज्ञानिक स्तर पर जब उनकी लेखनी ने उलझे हुए मन, आपस में उभरे हुए रंगों की टकराहट और सम्बन्धों की बारीकियों को सुलझाया है, तब उनके उपन्यास स्वयं ही उद्देश्यपूर्ण बन गये हैं।"

आधुनिक उपन्यास और मनोविज्ञान- हिन्दी साहित्य में मनोवैज्ञानिक उपन्यास लेखन की परम्परा का सूत्रपात जैनेन्द्र कुमार ने किया। उनके बाद इलाचन्द्र जोशी, सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय और देवराज आदि लेखकों ने उच्चकोटि के मनोवैज्ञानिक उपन्यास लिखे। इन उपन्यासों में व्यक्ति की मानसिक प्रवृत्तियों एवं उसके अन्तर्द्वन्द्व का सूक्ष्म चित्रण किया गया। इस प्रकार के उपन्यासों में अन्तर्द्वन्द्व की प्रधानता रही है और उपन्यास के शेष तत्त्व मानो गौण होकर रह गए हैं। इस प्रकार के उपन्यासों में स्त्री-पुरुष के विसंगतिपूर्ण संघर्षों का चित्रण किया गया है। यह उपन्यास किसी एक प्रवृत्ति विशेष से प्रेरित होकर लिखे गये हैं। इन उपन्यासों में निम्नलिखित विशेषताओं की ओर विशेष ध्यान दिया गया है

(1) हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में उपन्यासकारों ने कथा तत्त्व के प्रति विशेष मोह प्रदर्शित नहीं किया है।

(2) इन उपन्यासों में उपन्यासकारों ने व्यक्ति के बाहरी व्यक्तित्व की अपेक्षा उसके भीतर छिपे हुए व्यक्तित्व का उजागर करने का अधिक प्रयास किया है। इन उपन्यासों में अन्तः प्रेरणाओं का चित्रण, अन्तर्द्वन्द्व निरूपण, अन्तर्विवाद मनोविश्लेषण, मुक्त आसंग प्रणाली, बाधकता विश्लेषण, स्वप्न-विश्लेषण, निराधार प्रत्यक्षीकरण का विश्लेषण, सम्मोह विश्लेषण, प्रत्यक्षावलोकन विश्लेषण, पूर्ववृत्तात्मक प्रणाली और शब्द सह स्मृति परीक्षा आदि का ओर विशेष ध्यान केन्द्रित किया गया है।

(3) इन उपन्यास का प्रत्यक्ष सम्बन्ध व्यक्ति के अचेतन संघर्ष से होता है। अचेतन संघर्ष में पात्रों के अचेतन मस्तिष्क में हलचल उत्पन्न होती है और द्वन्द्व प्रारम्भ हो जाता है। पात्र यह नहीं समझ पाता कि यह क्यों हो रहा है, परन्तु वह यह अवश्य अनुभव करता है कि वह बेचैन है और कुछ ऐसा है जो उसके भीतर चल रहा है, पर पकड़ में नहीं आ रहा है।

(4) इन उपन्यासों में अन्तर्विवाद की मनोवृत्ति की प्रधानता होती है। वास्तव में जो पात्र अन्तर्मुखी होते हैं, वे अपने भीतर की बात छोटे-छोटे असम्बद्ध वाक्यों द्वारा प्रकट किया करते हैं। इस कथन द्वारा हमें पात्र के भीतर संघर्षों और ऊहापोहों का आभास मिल जाता है।

(5) इनमें मनोविश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। कहीं-कहीं उपन्यासों ने अन्तर्द्वन्द्व शैली, पूर्वदीप्ति शैली आदि का प्रयोग भी किया है।

(6) मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में भाषा प्रवाहपूर्ण, पात्र के मन को टटोलती हुई और उसके द्वन्द्व को वहन करती हुई उसे पाठकों तक पहुँचाने में सक्षम रही है। यहाँ शब्द विन्यास सरल, किन्तु विश्लेषणपरक है और साथ ही साथ शब्द प्रयोग में सटीकता और सार्थकता सर्वत्र देखने को मिलती है।

(7) मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में संवाद-प्रयोग, कथ्य विश्लेषण, उद्देश्य प्रस्तुति और किसी निष्कर्ष पर पहुँचने की मनोवृत्ति भी दिखाई देती है, परन्तु इस मनोवृत्ति को प्रस्तुत करने के लिए लेखक सीधा-सादा मार्ग नहीं अपनाता है बल्कि कुछ इस प्रकार से अपने कथ्य को पाठक के समक्ष प्रस्तुत करता है कि उसे समझने के लिए पाठक को मानसिक व्यायाम के कडे दौर से गुजरना पड़े।

बाल मनोविज्ञान और उपन्यास- मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में सभी वर्ग के और सभी उम्र के व्यक्तियों के चरित्र के मनोवैज्ञानिक पक्ष को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। कुछ मनोवैज्ञानिक उपन्यास स्त्रियों के मनोविश्लेषण को प्रस्तुत करते हैं, तो कुछ में स्त्री-पुरुष के मानसिक संघर्ष को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। मन्नू भण्डारी ने 'आपका बंटी' के माध्यम से पाठकों के समक्ष एक ऐसे बालक की मानसिक व्यथा को प्रस्तुत किया है, जो अपने माता-पिता के अलगाव का शिकार होने के कारण अनेक प्रकार की मानसिक यातनायें भोग रहा है। आधुनिक उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक घटक एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते है। मानवीय रिश्ते अतियथार्थपरक हो गए है। सामाजिक उलझावों के बीच उनमें उलझे हुए मन का चित्रांकन किया है। मन्नू भण्डारी एक कुशल और बाल-मनोविज्ञान की पारखी उपन्यासकार है। 'आपका बंटी' में उन्होंने एक बालक मन के सभी पक्षों को पूरी कुशलता और सूक्ष्मता के साथ उद्घाटित किया है।

'आपका बंटी' और बाल-मनोविज्ञान- मन्नू भण्डारी का 'आपका बंटी' एक मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने बंटी नामक एक बालक के आन्तरिक व्यक्तित्व के प्रत्येक पक्ष का सजीव चित्रण किया है। उन्होंने स्वयं भूमिका में स्वीकार किया है कि इस उपन्यास का पात्र बंटी कोई पात्र विशेष नहीं है बल्कि प्रत्येक उस बालक का प्रतिनिधि है, जो आज आधुनिक बोध में भटक रहे शिक्षित और फेशन-परस्त माता-पिता के आपसी टकराव को मानसिक स्तर पर भोग रहा हैं। उन्होंने इस सन्दर्भ में स्वयं लिखा है कि "मुझे लगा कि बंटी किन्हीं दो-एक घरों में नहीं, आज के अनेक परिवारों में साँस ले रहा है अलग-अलग सन्दर्भो में, अलग-अलग स्थितियों में, लेकिन एक बात मुझे इन बच्चों में समान लगी और वह है कि यह सभी फालतू, गैर-जरुरी और अपनी जडों से कटे हुए हैं। किसी एक व्यक्ति के साथ घटी घटना, दया, करूणा और भावुकता पैदा कर सकती है, लेकिन जब अनेक जिंदगियाँ एक-जैसे साँचें में ही सामने आने लगती हैं, तो दया और भावुकता के स्थान पर मन में धीरे-धीरे एक आंतक उभरने लगता है। मेरे साथ भी यही हुआ। बंटी के इन अलग-अलग टुकडों ने उस समय मुझे करुणाविगलित और उच्छवसित ही किया था, लेकिन जब सब मिलाकर बंटी जब मेरे सामने खड़ा हुआ, तो मैंने अपने आप को आतंकित ही अधिक पाया, समाज की दिनों-दिन बढती हुई एक ऐसी समस्या के रूप से, जिसका कहीं कोई हल दिखाई नहीं देता। यही कारण है कि बंटी मुझे तूफानी समुद्र-यात्रा में किसी द्वीप पर छूटे हुए अकेले और असहाय बच्चे की तरह नहीं वरन् अपनी यात्रा के कारणों के साथ और समानान्तर जीते हुए दिखाई दिया।"

प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने बंटी को शकुन और अजय बत्रा नामक पति-पत्नी के पुत्र के रूप में चित्रित किया है। अजय बत्रा कलकत्ता में एक फर्म में डिविजनल मैनेजर हैं। वे शकुन के बाहरी और आधुनिक व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उससे विवाह कर लेते हैं परन्तु उन दोनों के बीच सुखमय वैवाहिक जीवन कायम नहीं रह पाता। इसका कारण शकुन का आत्माभिमान और आधुनिक बोध से युक्त होना है। पति-पत्नी दोनों ही अपने-अपने अहं पर डटे रहते हैं। कोई भी समझौते के लिए झुकना नहीं चाहता और ना ही अपने आत्म-सम्मान को छोटा बनाना चाहता है। परिणाम यह होता है कि उन दोनों के बीच अलगाव हो जाता है। अजय पूर्ववत् कलकत्ता में ही रहते हैं परन्तु शकुन अपने पुत्र को लेकर कलकत्ता छोङ देती है और छात्राओं के एक कॉलेज में प्रिंसिपल के पद पर कार्य करने लगती है। इसी अलगाव से बंटी की मानसिक यातना का दौर प्रारम्भ होता हैं।

बंटी की चिन्तनशीलता का मनोवैज्ञानिक आधार- अलगाव के सात वर्षों में शकुन अपना पूरा ध्यान अपने कॉलेज और बंटी पर केन्द्रित कर देती है। वह समाज से स्वयं को पूरी तरह काट लेती है। इसके फलस्वरूप वह बंटी के जीवन की दूरी बन जाता है और बंटी उसके जीवन का केन्द्र बन जाता है। इस दौरान अजय अपने पुत्र से मिलने किसी न किसी बहाने आते रहते हैं और उसके लिए ढेर सारे उपहार भी लाते रहते हैं। बंटी को अकेलेपन ने चिन्तनशील बना दिया है। वह हर छोटी-छोटी बात पर गहराई से सोचता है। वह अपने परिवार की स्थितियों की अन्य बालकों के परिवार से तुलना करते है। उसके घर के समीप टीटू का परिवार रहता है। वह जब भी टीटू के घर जाता है तो उसकी अम्मा का व्यवहार उसे अच्छा नहीं लगता क्योंकि वह हमेशा उससे कहती हैं कि "आ गये बंटी। छुट्टी के । दिन तो तुम्हारा सूरज भी इसी घर में उगता है और

इसी घर में डूबता है।" ऐसी बातें सुनकर बालक बंटी उदास हो जाता है और उसकी इच्छा होती है कि वह तुरन्त टीटू के घर से लौट जाये और फिर कभी न आये। इसी सन्दर्भ में वह मन ही मन अपनी मम्मी और टीटू की अम्मा की तुलना करने लगता है। वह सोचने लगता है कि टीटू भले ही कितनी ही देर उसके घर रह ले परन्तु उसकी मम्मी कभी उससे इस प्रकार की बातें नहीं करतीं। फिर वह सोचता है कि जब भी वह टीटू को छुट्टी के दिन अपने घर आने के लिए कहता है तो वह दिनभर अपने ही घर में खेलना पसंद करता है क्योंकि वहाँ उसके साथ खेलने के लिए बिंदा और शन्नों हैं। वह यह भी सोचता है कि उसके घर में तो उसके साथ खेलने के लिए कोई भी नहीं है इसलिए टीटू के साथ खेलना उसकी विवशता है।

बंटी की मम्मी के प्रति मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण- बंटी के मानसिक धरातल का दूसरा पक्ष लेखिका ने उस समय उजागर किया है, जब वह अपनी मम्मी की प्रत्येक गतिविधि पर गहराई से नजर रखता है। कभी उसे अपनी मम्मी बहुत अधिक सुन्दर और अच्छी दिखाई देती हैं और कभी उसे पराई-सी लगती हैं। वह अनुभव करता है कि उसकी मम्मी जब कॉलेज जाने के लिए तैयार होती हैं, तब उनके चेहरे पर बंटी के लिए स्नेह और वात्सल्य नहीं होता। वह जैसे एक कठोर प्रिंसिपल का मुखौटा लगा लेती है। इसके विपरीत जब वह घर पर होती हैं, तो मानो पूरी तरह स उसकी मम्मी होती हैं। उसके इस चिन्तन का चित्रण लेखिका ने इन शब्दों में किया हैं- इस समय मम्मी कितनी अच्छी लग रही हैं। वैसे तो शाम के समय मम्मी बिल्कुल उसकी अपनी हो जाती हैं। बालों की खूब ढीली-ढीली चोटी और चेहरा भी एकदम मुलायेम-सा। कोई तनाव नहीं, कोई सख्ती नहीं। हमेशा ही इस समय बंटी को मम्मी बहुत अच्छी लगती हैं। बहुत सुन्दर भी। कभी-कभी वह मम्मी की नजर बचाकर एकाटक मम्मी को देखता रहता है। मम्मी की ठोढी का तिल उसे बहुत अच्छा लगता है। रात में पास लेटता है तो अक्सर उस पर धीरे-धीरे उँगली फिराता रहता है।"

माता-पिता के तनावग्रस्त संबंध और बंटी- बंटी जब थोडा बडा होता है, तो वह अपने माता-पिता के सम्बन्धों को लेकर तनावग्रस्त रहने लगता है। उसके मन में प्रश्न उठता है कि जब सभी बच्चों के माता-पिता एक साथ रहते हैं, तो उसके माता-पिता साथ-साथ क्यों नहीं रहते

"मम्मी, पापा हम लोगों के साथ क्यों नहीं रहते?"
मम्मी चुप!
"आज टीटू कह रहा था....."
क्या कह रहा था टीटू?

" मम्मी एकदम बंटी पर झुक आई। आवाज की सख्ती से बंटी जैसे एक क्षण का सहम गया।"
"बता क्या कह रहा था टीटू?.....
"टीटू कह रहा था कि तेरे मम्मी-पापा का तलाक हो गया है। अब पापा कभी हमारे साथ नहीं रह सकते।" बंटी ने जैसे-तैसे कह दिया।

वह सोचने लगता है कि क्या उसकी मम्मी को कभी पापा की याद नहीं आती? वह अपने संदर्भ में इस प्रकार सोचता है कि जब वह टीटू या कुन्नी से लड़ाई कर लेता है दो-तीन दिन तक बात नहीं करता, तब उसका जी घबराने लगता है, तो वह किसी न किसी बहाने से फिर से दोस्ती कर लेता है। फिर मम्मी तो हमेशा अकेली रहती हैं। क्या उनका जी नहीं घबराता होगा? उसके मन में प्रश्न उठता है कि तलाक में क्या फिर से दोस्ती नहीं हो सकती? इसी प्रकार के प्रश्न उसके बाल-मन को परेशान करते रहते हैं और वह भीतर ही भीतर एक अनजानी यातना को भुगतता रहता है। इसी दौरान वकील चाचा तलाकनामा लेकर उनके घर पर आते हैं। पहले तो वह उनके आगमन पर बड़ा प्रसन्न होता है क्योंकि वह जब भी आते है, तब उसके पापा का कोई उपहार लेकर आते हैं, परन्तु इस बार वह उसके लिए कुछ नहीं लाए, तो उसका मन उदास हो जाता है। वह अनुभव करता है कि वकील चाचा और मम्मी के बीच कोई ऐसी बात हो रही है, जो मम्मी को उदास बना रही है। वह मम्मी को छिप-छिप कर रोते हुए देखकर परेशान हो उठता है और कारण जानने की कोशिश करता हैं। वह छिपकर वकील चाचा और मम्मी की बातें सुनने की कोशिश भी करता है परन्तु उसे कुछ भी समझ नहीं आता।

"बातें कर रहे हैं, पर बंटी तक को लग रहा है कि जैसे कमरे का मौन नहीं टूट रहा है। उदासी नहीं छट रही है। यह चाचा को क्या हो गया है? वैसे तो चाचा जब भी आते है, उन्हें मम्मी से बहुत-बहुत बातें करनी होती है। शाम को या दोपहर को आयेंगे तो रात के पहले कभी नहीं जायेंगे और जब तक बैठेंगे तो लगातार कुछ न कुछ बोलते ही जायेंगे..... उन्हें इस तरह लगातार बोलते देखकर बंटी को ख्याल आता है कि अगर इन्हें कभी क्लास में बैठना पड़े तो? बाप रे बाप! सारा दिन सजा खाते ही बीते। मुँह पर उँगली रखकर खड़े हैं या कि मुँह पर डस्टर बाँधे बैठे ।

बंटी का असामान्य व्यवहार- इस प्रकार बंटी कम उम्र में ही इतना अधिक चिन्तनशील, समझदार और सूक्ष्मदर्शी हो जाता है कि वह एक असामान्य बालक की तरह व्यवहार करने लगता है। जब उसे ज्ञात हो जाता है कि उसके माता-पिता के बीच तलाक हो गया है और अब कभी उनमें समझौता नहीं हो सकेगा, तब वह मन ही मन निश्चय करता है कि वह अपनी मम्मी का कहना मानेगा, उनका ध्यान रखेगा, उन्हें कभी उदास नहीं होने देगा और उन्हें कभी छोड़कर नहीं जायेगा परन्तु उसकी आशाओं पर उस समय पानी फिर जाता है जब उसकी मम्मी का डॉक्टर जोशी और उनके परिवार के साथ मेलजोल बढता जाता है और वे अन्ततः उनके साथ विवाह कर लेती हैं। उसके मन में एक प्रकार का विद्रोह पनपने लगता है।

विद्रोह की भावना और बंटी- बंटी की मम्मी शकुन जब डॉक्टर जोशी और उनके परिवार के साथ मेल-जोल बढाती है, तब बंटी के मन में विद्रोह की भावनाएँ पैदा होने लगती हैं। उसे ऐसा लगता है कि मानो उसकी उपेक्षा करने लगी हों अथवा उनका ध्यान कहीं ओर केन्द्रित होने लगा है। एक बार शकुन डॉक्टर जोशी को सपरिवार भोजन पर आंमत्रित करती है। वह अपने बच्चों को भी साथ लेकर आते हैं। वे दोनों चाहते है कि डॉक्टर साहब के बच्चे बंटी के साथ घुल-मिल जायें जिससे कि बाद में साथ रहने में कोई परेशानी उत्पन्न न हो परन्तु बंटी किसी भी स्थिति में डॉक्टर साहब के परिवार के साथ मेल-जोल बढाना नहीं चाहता क्योंकि

उसे लगता है कि मम्मी का सारा ध्यान डॉक्टर साहब और उनके बच्चों पर केन्द्रित होने लगा है। एक प्रंसग में जब बंटी को उसकी मम्मी घुमाने के बहाने डॉक्टर साहब के बच्चों के साथ पार्क ले जाती है, तब वह स्वयं को उपक्षित अनुभव करता है और उसके मन में विद्रोह उत्पन्न होने लगता है- डॉक्टर साहब की गाड़ी में बैठते समय वह उसे आगे उसकी माँ के साथ बिठाना चाहते है, पर वह कहती है," डॉक्टर साहब ने अपनी बगल वाली सीट का फाटक खोला तो मम्मी ने भीतर बैठते हुए कहा-तू पीछे बैठ
जा'।

'इसे भी आगे ही ले लो। दोनों बैठ सकोगे।'

पर मम्मी ने पीछे का फाटक खोलकर कहा, ' नही, यह पीछे बैठ जायेगा आराम से, आगे मेरी साडी मुड जायेगी।
बिना एक भी शब्द बोले अपमानित-सा बंटी चुपचाप पीछे बैठ गया। उसका क्या है, आगे बिठाओ, पीछे बिठाओ या घर ही छोड जाओ। नई साडी पहनकर कैसा इतरा रहीं हैं, मम्मी। अब तो दोनों बैठ गये। ये डॉक्टर साहब गाडी क्यों नहीं स्टार्ट कर रहे हैं? एकटक मम्मी को ही देख रहे हैं, जैसे कभी देखा न हो।"

वह अपनी मम्मी की गतिविधियों पर अत्यधिक ध्यान देने लगता हैं। उसे लगता है कि जब डॉक्टर जोशी साथ मे होते हैं, तब मम्मी बेवजह हँसा करती है। पार्क में जब डॉक्टर साहब कहते हैं कि बंटी आज हम तुम्हें अपने बच्चों से मिलायेंगे और अपने बच्चों का परिचय देते हैं, तब उसकी मम्मी हँसने लगती है। तब उसे मम्मी की हँसी बिल्कुल अच्छी नहीं लगती हैं। वह सोचता है कि डॉक्टर साहब ने कोई चुटकुला तो सुनाया नहीं है, फिर मम्मी क्यों हँस रही हैं। हर स्थिति में बंटी स्वयं को उपेक्षित अनुभव करता है और मन ही मन यह निश्चय कर लेता है कि उसे किसी से दोस्ती नहीं करनी है। गाड़ी में बैठने की बात पर जब उसे पीछे की सीट पर बीच में बैठा दिया जाता , तब वह सोचता है-" बीच में बैठना भी कोई बैठना होता है? अब कुछ देख सकता है वह? दूसरों की गाडी में वह कहे भी क्या? पर मम्मी तो कह सकती थी दोनों में से कोई एक बीच में बैठ जाये और बंटी को खिडकी के पास बैठने दे। वे तो बंटी को घुमाने लाई थीं। झूठ! उसे नहीं करनी दोस्ती किसी से। आगे से वह कभी आयेगा भी नहीं इनके साथ। डॉक्टर साहब, मम्मी आगे की खिडकियों पर बैठे हैं और जोत और अमित पीछे की खिडकियों पर । बस, वही फालतू-सा बीच में बैठा है।"

इसी प्रकार मम्मी की शादी के बाद वह डॉक्टर जोशी के घर पर रहने चला जाता है, तब उसे वहाँ सब कुछ बेगाना-सा लगता है। यहाँ तक की उसे मम्मी भी पराई लगने लगती है। अब तक वह मम्मी के साथ सोता आया था परन्तु यहाँ आकर उसे बच्चों के कमरे में सुलाया जाता है। वह बहुत अकेला महसूस करता है। उसे डर लगता है और रात को बिस्तर भी गीला कर देता है। उसके मन में अनेक प्रकार की कुण्ठायें पनपने लगती है। वह देखता है कि अमित और जोत के साथ-साथ मम्मी को कॉलेज से लेने के लिए भी गाडी जाती हैं परन्तु वह अपनी स्कूल बस में ही स्कूल जाता है। उसके दोस्त स्कूल में उसे चिढाते है परन्तु वह

ऊपर से उनकी बात टालता हुआ अन्दर ही अन्दर उदास रहता है। स्कूल में सर पढाते पर उसका ध्यान पढाई में नही होता। उसकी आँखों के सामने डॉक्टर जोशी, उनका परिवार और उनका पराया-सा लगने वाला घर घूमता रहता है। वह बहुत कोशिश करता हैं कि वह यह सब न सोचे परन्तु ऐसा हो नहीं पाता। वह स्कूल से लौटकर आता है तो मम्मी घर पर ही मिलती हैं। वह घर के सामान जमाने में व्यस्त हैं। उसे ऐसा लगता है कि जैसे उसकी मम्मी ने टीटू की अम्मा का रूप धारण कर लिया है। वह बताती है कि उन्होंने उसके लिए एक लम्बी सी अलमारी खाली कर दी है। वह अलमारी खोलता है तो उसे दवाईयों की बदबू आती है। बाद में उसे पता चलता है कि उसके कपड़ों के लिए डॉक्टर साहब की दवाइयों की अलमारी खाली कर दी गई है। वह कहता है- "नहीं चाहिए हमें ऐसी अलमारी। घर का सारा आलतू-फालतू सामान मेरे लिए! अपने लिए कैसा बढिया कमरा, कैसी बढिया अलमारी....."

इन स्थितियों में उसके मन का विद्रोह बढ़ता ही जाता है। कभी मेज को लेकर, कभी खाने को लेकर, कभी अमित से चिढकर वह भीतर-भीतर विद्रोही होता जाता है। उसके लिए अमित की मेज खाली की जाती है पर वह शोर मचा देता है। गुस्से में आकर अमित बंटी की सारी किताबें जमीन पर फैंक देता है। बंटी का विद्रोह बढ जाता है और वह

अमित की किताबें फैंक देता है। डॉक्टर साहब बंटी के लिए नई मेज बनवाते है पर विद्रोही बंटी उस मेज का इस्तेमाल नहीं करता और जमीन पर पढने की व्यवस्था कर लेता है। उसे याद आता है कि उसकी मम्मी ने कहा था- " वहाँ तो अपना घर होगा- अपने लोग होगे बेटे-सब झूठ! यहाँ तो मम्मी भी उसकी नहीं रह गई। मन हो रहा है, मम्मी के कमरे की हर चीज उठाकर फैंक दे, घर की सारी चीजें चकनाचूर कर दें। गुस्से से भिन्नाते हुए उसने अपनी अलमारी खोली। बस इसी पर तो अधिकार है। एक-एक खिलौंना निकालकर फैंक दिया, एक-एक कपडा कमरे में छितरा दिया।" उपन्यास के अन्त तक आते-आते उसका विद्रोह उसकी चरम सीमा तक पहुँच जाता है। वह मन ही मन निश्चय करता है कि अब उसे इस घर में मम्मी के साथ नहीं रहना। वह पापा को चिट्ठी लिखेगा और उनसे कहेगा कि वे उसे अपने साथ ले जायें। अन्त में, वह अपने पापा के साथ कलकत्ता जाता है परन्तु वहाँ भी उसे अपनापन नहीं मिलाता । अन्त में उसकी नियति उसे हॉस्टल में ले जाकर छोड देती है। यही 'आपका बंटी' उपन्यास का चरमोत्कर्ष हैं।

निष्कर्ष- इसमें कोई सन्देह नहीं कि लेखिका ने प्रस्तुत उपन्यास में बाल-मनोविज्ञान का बडा ही सूक्ष्म चित्रण किया है। बच्चों का अपनापन, उनका माँ पर अपना एकाधिकार समझना, अपने खिलौनों को किसी को हाथ न लगाने देना, माँ का दूसरे बच्चों पर ध्यान देना नापंसद करना आदि ऐसी परिस्थितियाँ है जो प्रत्येक बालक के व्यवहार में पाई जाती हैं। लेखिका ने इन सभी स्थितियों का चित्रण करते हुए यह बताया है कि किस प्रकार अपने माता-पिता के अलगाव और अपनी माँ के पुनर्विवाह के फलस्वरूप बालक बंटी अनेक प्रकार की कुण्ठाओं का शिकार होता चला गया। वह इतना चिन्तनशील हो गया कि जीवन और परिस्थितियों के प्रत्येक पहलू पर गहराई से विचार करने लगा। एक लेखक के शब्दों में, " उपन्यास की कथावस्तु का सृजन करते समय मन्नू भण्डारी ने अपने विलक्षण सर्जक व्यक्तित्व का परिचय दिया है। बंटी

की अवस्थानुरूप चिन्तन करते हुए प्रौढ चिन्तन में उसकी परिणति के द्वारा कथा के तन्तुओं को जोड़ा गया है। अस्तु, लेखिका ने बाल मनोविज्ञान की सफल ज्ञात्री के रूप में अपना परिचय प्रस्तुत किया है। 'आपका बंटी' में लेखिका ने बंटी की मानसिकता, उसके जिद्दीपन, उसके प्रतिक्रियात्मक आवेश के साथ-साथ माता द्वारा की जा रही उसकी अतिरिक्त देखरेख, जिसमें उपेक्षा अधिक हैं, को भी लेखिका ने बड़ी खूबी के साथ चित्रित किया है। एक प्रकार से बंटी जिस अन्तर्द्वन्द्व का शिकार है और जिन मनोग्रंथियों से भरता जाता है, उनकी अभिव्यक्ति भी उपन्यास में बाल-मनोविज्ञान का श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करती है। इनका यहाँ संकेत मात्र ही पर्याप्त है, क्योंकि बंटी के चरित्रांकन वाले प्रश्न में इन स्थितियों का विशद् विवेचन किया गया है।"

महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

- प्रकाशन समय -1971 ई.
- पात्र परिचय- अजय (पिता), शकुन (माता), बंटी (पुत्र)
- बंटी का वास्तविक नाम- अरुप बत्रा। Vबंटी की उम्र-7 वर्ष, बंटी का दोस्त- टीटू।
- डॉ. जोशी जो कि शकुन के दूसरे पति है।
- मीरा जो अजय की दूसरी पत्नी है।
- बंटी अपने माता पिता के तलाक के कारण समस्याग्रस्त पात्र।
- तलाक, पुनर्विवाह का बच्चों की मानसिक स्थिति पर प्रभाव दिखाया गया है।
- आपका बंटी उपन्यास मनु भंडारी का पहला स्वतंत्र उपन्यास है क्योंकि इन्होंने 'एक इंच मुस्कान' उपन्यास राजेन्द्र यादव के सहयोग से लिखा था।
- बाल मन के द्वंद का चित्रण।
- अजय और शकुन में दोनों के अहम के कारण समझौता नहीं हो पाया।
- 'बहुत अरसे बाद हिन्दी में यह सशक्त उपन्यास आया है, लेखिका की अद्भुत क्षमता से मैं स्तब्ध हूँ, लेखिका का समय एवं सहानुभूति संवेदन इस रचना में प्रकट हुआ है।' कथन है- जैनेन्द्र
- 'आपका बंटी' उपन्यास सोलह विभागों में विभक्त है।
- पारिवारिक विसंगति के शिकार पति-पत्नी के पुत्र बंटी को केन्द्र में रखा गया है। । शकुन एक कॉलेज में प्रिंसिपल है।
- डॉ. जोशी की पत्नी प्रमिला की मृत्यु हो चुकी है। उनके दो बच्चे अमि और जोत है।
- 'जब धूरी गड़बड़ा जाती है तो जिन्दगी लड़खड़ा जाती है।' कथन है-वकील चाचा
- 'अभी से तुम्हारा यह हाल है तो बड़े होकर पता नहीं क्या सुख दोगे अपनी महतारी को' कथन है-फूफी का

*13.*धरती धन न अपना (उपन्यास) जगदीश

चंद्र

'धरती धन न अपना' पंजाब के दोआबा क्षेत्र के दलितों की कहानी है जिसे लेखक ने मुख्य पात्रों काली व ज्ञानो की कहानी के ज़रिये हमारे सामने रखा है। दलित समाज से संबंध रखने वाला काली छः साल बाद

कानपुर से अपने गाँव घोड़ेवाहा लौटकर आता है जहाँ उसकी चाची प्रतापी अकेले रहती है। उसके गाँव लौटने का कारण तो शायद चाची से उसका प्यार अथवा मोह ही था लेकिन गाँव लौटने के बाद जब वह वहीं रहकर अपना घर बनवाने और बसाने का फैसला करता है तो गाँव के ही उच्च-वर्ग के लोगों को काली एक आँख नहीं सुहाता। चूंकि काली शहर रह कर आया है तो उसमें अपनी जाति या अपने आप को लेकर कोई हीन भावना नहीं है और यही उसकी सबसे बड़ी कमी और अपराध बन जाता है।
घोड़ेवाहा में ठाकुर, जमींदारों और साहूकारों को छोड़कर किसी के भी मकान पक्के नहीं हैं, खास तौर से चमादड़ी, जहाँ काली और उसकी जाति के सभी लोग रहते हैं, जीवन का स्तर बहुत ही नीचा है। काली अपने मकान को पक्का बनाने की कोशिश करता है तो गाँव के सभी सवर्ण लोग उसके इस काम में जो संभव अड़चन डाल पाएं, डालते हैं। काली शहर से आया है और अपने हक़ की बात करना जानता है इसलिए कुछ लोग उससे थोड़ा ध्यान देकर बात करते हैं लेकिन उसके व्यक्तित्व और बातों के आगे, उसकी जाति को भूल जाना किसी को गंवारा नहीं। मिस्त्री हो या साहूकार सब उससे छुआ-छूत का व्यवहार रखते हैं।

गाँव में अकेला काली ही नहीं, उसका पूरा वर्ग इस भेद-भाव को झेलता है। ठाकुरों का जब मन आया, चमार के किसी लड़के को । पीट दिया, हाथ-पाँव तुड़वा दिए और गाली बिना तो चमारों को सम्बोधित ही नहीं किया जाता। चमारों की स्त्रियों के साथ बदतमीज़ी और यौन शोषण एक आम बात है जिसके खिलाफ बेचारे बोल भी नहीं सकते क्योंकि आर्थिक रूप से चमार, ठाकुरों पर निर्भर करते हैं। उनके घर में एक-एक वक्त की रोटी ठाकुरों की दया से आती है। यहाँ तक कि जब बाढ़ आती है और चमादड़ी के कुँए का पानी पीने लायक नहीं रहता, तब भी ठाकुरों को दया नहीं आती और काली और उसके मोहल्ले वाले पीने के पानी तक के लिए मोहताज़ हो जाते हैं। ऐसी ही जाने कितनी घटनाएँ इस किताब में हैं जो पढ़ने वाले को सोचने पर मजबूर कर देती हैं कि क्या कभी ऐसा भी हमारे इस समाज में हुआ करता था? क्या ऐसे समाज का एक रूप आज भी जीवित है और अगर है तो इससे बड़ी शर्म की बात पढ़े-लिखे उच्च कहे जाने वाले वर्ग के लिए है या नहीं। उपन्यास का शीर्षक भी इस तरह की एक और अनीति की तरफ इशारा करता है। दलित समाज को 'धरती' या 'सम्पति' का सामान्य मानव अधिकार भी नहीं दिया जाता था। किसी दलित का घर/मकान केवल तब तक उनके पास है जब तक वो या उसकी संतान उस घर में रह रहे हैं, दलितों को यह अधिकार नहीं था कि वो उस मकान को बेच पाएं।

हम आज जिस परिवेश में, जिन सामाजिक स्थितियों में अपनी ज़िन्दगी बिताते हैं, वो स्थितियाँ किन रास्तों से होकर यहाँ आयी हैं। जिससे यह याद रखा जा सके कि आज के समय की भी हर वो बात जो उन्हीं रास्तों की तरफ इशारा करती हों, उन्हें सिरे से नकारना कितना ज़रूरी है। जगदीश चंद्र ने जब यह किताब लिखी थी तो शायद उनका सामना इन्हीं मनोस्थितियों से हुआ होगा, तभी इतने जीवंत और पाठकों को सोचने पर मजबूर कर देने वाले प्रसंग इस किताब में भरे पड़े हैं। उन्हीं के शब्दों में

“मेरी यह उपन्यास मेरी किशोरावस्था की कुछ अविस्मरणीय स्मृतियों और उनके दामन में छिपी एक अदम्य वेदना की उपज है।"

काली के अलावा उपन्यास में एक सशक्त पात्र ज्ञानो है, जिससे काली को प्रेम हो जाता है लेकिन वह प्रेम भी काली के समाज के पिछड़ेपन की बलि चढ़ जाता है। यह पिछड़ापन भी काली के समाज को उच्च वर्ग की ही देन है। चमादड़ी में न कोई पढ़ता, न अपने जीवन को बेहतर करने हेतु प्रयास करता और अगर काली जैसा कोई इंसान इस दिशा में सोचने भी लगे, तो जाति और परंपरा की बेड़ियाँ उसे आ घेरती और तब तक दम नहीं लेती जब तक उस इंसान के सारे हौसले पस्त न हो जाएँ।

"गाँव में चमार होना ही सबसे बड़ा पाप है। घोर लांछन है। दो कौड़ी का मालिक काश्तकार अपने चमार को छटी का दूध पिला देता है। मुझे 'चमार' शब्द से ही नफरत है। मुझे कोई चमार कहे तो गुस्सा आ जाता है।"

ठाकुर, साहूकार, पुरोहित जहाँ वर्ग समुदाय के प्रतिनिधियों के रूप में उपन्यास में हैं तो वहीं नन्द सिंह जो पहले सिख बनता है।
और फिर ईसाई, जातिवाद से उपजी कुंठा का प्रतीक है। बाकी पात्रों का विकास कहानी के साथ-साथ होता चलता है और पाठक के सामने सभी पात्र एक-एक करके सहज रूप से सामने आते हैं।

भाषा के स्तर पर यह उपन्यास पढ़ना एक लाजवाब अनुभव रहा है | गाँव के लोगों की सोच का सादापन और बोली का अक्खड़पन दोनों को संवादों में बेहद खूबसूरत तरीके से उभारा गया है। छुआ-छूत, अंधविश्वास, जातिवाद, स्त्री-यौन शोषण जैसे गंभीर मुद्दों के साथ-साथ उच्च वर्ग के दोगलेपन की कलई भी उपन्यासकार बड़े ही मजेदार ढंग से खोलते चलते हैं

"बड़ा कायाँ आदमी है। उसकी छूत-छात पानी और रोटी तक ही है। एक बार उसके हाथ में दूध की गड़वी थी। मेरा जी चाहा कि दूध मिल जाये तो चाय बनाकर पियूँ! मैंने जान-बूझकर उसे छू दिया। उसने मुझे बहुत गालियाँ दीं। मैं चुपचाप खड़ी सब-कुछ सुनती रही। इस उम्मीद पर कि वह दूध फेंकने लगेगा तो मिन्नत करके कहूँगी कि मुझे दे दे। लेकिन उसने दूध की गड़वी मंदिर के दरवाजे पर रख दी और अंदर से घास का तिनका लाकर उसमें डाल दिया और दूध उठाकर घर चला गया।' कह प्रसिन्नी फिर बोली, 'वह घास के तिनके से हर चीज़ शुद्ध कर लेता है। तिनके से शुद्ध न हो तो मंत्र फूंककर शुद्ध कर लेता है।"

इस उपन्यास की एक ख़ास बात यह भी है कि यह एक अंचल विशेष की कहानी है और लेखक ने उपन्यास में दोआबा क्षेत्र को बखूबी उतारा है। गांव से मिलती 'चो' ('चो' पहाड़ी नदी को कहते हैं) का वर्णन हो या पात्रों की बातों में आए क्षेत्र विशेष के शब्द
और मुहावरे, इस किताब को पढ़ते हुए यही प्रतीत होता है कि हम इस गाँव को अपनी ही आँखों से देख रहे हैं, कहीं भी यह आभास नहीं होता कि हम एक उपन्यास पढ़ रहे हैं।

इस उपन्यास को पढ़ने के विभिन्न लोगों के विभिन्न कारण हो सकते हैं लेकिन उन सब कारणों में से सबसे ज़रूरी यह है कि दलित समाज के संघर्षों को इतने पास और इतनी बारीकी से उकेरने वाली कहानी इतनी आसानी से नहीं मिलती। उपन्यास में प्रत्येक घटना इतने प्रामाणिक रूप से उस समय के सामाजिक ढांचे को प्रस्तुत करती है कि पाठक खुद को उस समाज का एक अंग महसूस करने से रोक नहीं पाता। काली की चाची की अन्धविश्वास की वजह से मृत्यु हो जाना, नन्द सिंह का बार-बार धर्म परिवर्तन, ज्ञानो और काली का प्रेम संघर्ष और उनकी दुखद परिणति, हम इन सब संघर्षों के साक्षी तो नहीं हो सकते लेकिन मानवीय स्तर पर एक दूसरे वर्ग को समझने और उनकी वेदना को अपने ह्रदय में जगह देने का एक मौका यह उपन्यास हमें देता है।

महत्त्वपूर्ण तथ्य -

- पंजाब के दोआबा क्षेत्र के दलितों की कहानी।
- मुख्य पात्र - काली व ज्ञानों
- काली छः माह बाद कानपुर से अपने गाँव घोड़ेवाहा आता है, वही अपनी चाची के पास बस जाता है।
- दलित समाज को केन्द्र में रखना
- 'मेरी यह उपन्यास मेरी किशोरावस्था की कुछ अविस्मरणीय स्मृतियों और उनके दामन में छिपी एक अदम्य वेदना की उपज है।" - जगदीश चन्द्र
- छूआछूत, अंधविश्वास, जातिवाद, स्त्री-यौन शोषण जैसे - गंभीर मुद्दो का चित्रण।
- काली व ज्ञानों में प्रेम होता है।
- उपन्यास में धर्म बदलने वाला पात्र - नन्द सिंह
- हरिजनों की बस्ती का नाम - चमादड़ी - हरिजन जाति की उपेक्षा का चित्रण। - 'ये सारी फोज मेरी ही है, घर से बाहर निकलती हूँ तो मोये लश्कर बनाकर मेरे पीछे-पीछे आ जाते है। कथनहै
- प्रीतो
- प्रीतो के बच्चे - लच्छी, अमरू, नाथी
- काली की ताई निहाली - निहाली का बेटा - जीतु है। - मंगु की बहन - ज्ञानो
- चौधरी हरनामसिंह जीतु को पीटता है, फसल खराब करने के आरोप में। - चौधरी हरनाम सिंह के कान भरता है - मंगु।
- चमार हरिजन जाति को केन्द्र में रखा है। - उपन्यास में पंडित सन्तराम धार्मिक पाखण्ड व दम्भ का प्रतीक है।

भाग 8

नाटक व सारांश व महत्वपूर्ण तथ्य

नाटक व सारांश व महत्वपूर्ण तथ्य पार्ट 1

1- ध्रुवस्वामिनी ----नाटक

प्रकाशन समय : 1933 ई .

इस नाटक के प्रमुख पुरुष पात्र है -

चंद्रगुप्त

रामगुप्त

शिखर स्वामी

शकराज

मिहिर देव।

मुख्य स्त्री पात्र है -

ध्रुवस्वामिनी

कोमा

मंदाकिनी

ध्रुवस्वामिनी जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित प्रसिद्ध हिन्दी नाटक है। यह प्रसाद की अंतिम और श्रेष्ठ नाट्यकृति है।

इसका कथानक गुप्तकाल से सम्बद्ध और शोध द्वारा इतिहाससम्मत है।

प्रसाद द्वारा चरित सन् 1933 में लिखा गया 'ध्रुवस्वामिनी' अंतिम नाटक हैं। इस नाटक का कथानक भी इतिहास से लिया गया है।

सम्राट समुद्रगुप्त के दो पुत्र थे। एक था चन्द्रगुप्त और दूसरा रामगुप्त। रामगुप्त कामुक, दुराचारी एवं विलासी है। रामगुप्त की अयोग्यता को ध्यान में रखकर ही सम्राट समुद्रगुप्त ने चन्द्रगुप्त को सजा बनाने की इच्छा प्रकट की थी। यह चन्द्रगुप्त के द्वारा ही अपनी पत्नी ध्रुवस्वामिनी और राज्याधिकार सौंपा जाता है। विलासी रामगुप्त अपनी सुन्दर पत्नी को कारावास की सजा देता है और स्वयं सुन्दरियों के संपर्क में रहकर अपने जीवन और समस्त राजकीय व्यवस्था की आहुति देता है। कारावास में सजा भोगती हुई ध्रुवस्वामिनी आँसुओं के साथ अपने वर्तमान और भविष्य की चिंता करती है। ध्रुवस्वामिनी के जीवन में रामगुप्त का प्रवेश धार्मिक परिवेश में होता है, किन्तु एक क्षण के लिए भी उसको पति-सुख प्राप्त नहीं होता। दूसरी ओर चन्द्रगुप्त के प्रति संदेह हो जाता है। परिणामस्वरूप ध्रुवस्वामिनी को कठोर नियंत्रण में रखा जाता है। पर सत्य हकीकत है कि प्रतिबंध में प्रेम प्रखर हो उठता है। ध्रुवस्वामिनी के साथ भी कुछ ऐसा ही होता है। उसी समय रामगुप्त पर शकों पर आक्रमण होता है। शकराज इसी शर्त पर समाधान के लिए तैयार होता है कि यदि उसे ध्रुवस्वामिनी दे दी जाय तो उसे छोडा जा सकता हैं। कायर रामगुप्त पत्नी को देकर प्राणों की रक्षा के लिए तैयार हो जाता हैं। उधर दूसरी ओर वंश की मर्यादा को ध्यान में रखते हुए और प्राणों की बाजी लगाकर भी चन्द्रगुप्त ध्रुवस्वामिनी की रक्षा करता है। चन्द्रगुप्त में शासन चलाने की

क्षमता और व्यक्तित्व की गरिमा को देखकर सब सामंत एक स्वर में उसे अपना सम्राट एवं ध्रुवदेवी को राजमर्हिषी के रूप में स्वीकार करते हैं। चारों ओर से निराश रामगुप्त चन्द्रगुप्त पर आक्रमण करा है किन्तु एक सामन्त द्वारा उसकी हत्या हो जाती है।

स नाटक के अंत तक इसमें संघर्ष चलता है। वस्तुविन्यास, चरित्रांकन, संवाद इत्यादि के विचार में इसमें नया रूप प्रकट होता है। रचना-पद्धति की नवीनता से यह रचना सर्वथा भिन्न है।

ध्रुवस्वामिनी प्रसाद जी की बहुचर्चित नाट्य कृति है। जिसकी कथावस्तु गुप्त वंश के यशस्वी सम्राट समुद्रगुप्त के पुत्र चंद्रगुप्त के काल से संबंधित है नाटक की भूमिका में प्रसाद जी ने इस की ऐतिहासिकता के प्रमाण दिए हैं। उनके अनुसार विशाखदत्त द्वारा रचित संस्कृत नाटक देवी चंद्रगुप्त मे यह घटना अंकित है जिसमें ध्रुवस्वामिनी का पुनर्विवाह चंद्रगुप्त के साथ हुआ बताया गया है। सातवीं सदी में बाणभट्ट ने भी अपने हर्षचरित में लिखा है कि चंद्रगुप्त ने नारी वेश में शक शिविर में जाकर शकराज का वध किया। प्रसाद जी ने इसे स्वीकार करते हुए भूमिका में लिखा है कि -
" चंद्रगुप्त का परकलबत कामुक शकराज को मारना और ध्रुवस्वामिनी का पुनर्विवाह इत्यादि एक ऐतिहासिक सत्य होने में संदेह नहीं रह गया है।"

शकराज से गुप्त वंश का यह युद्ध इतिहासकारों के अनुसार 374 ईसा पूर्व 380 ईसापूर्व के बीच में हुआ था। नाटक की मूल घटना यद्यपि ऐतिहासिक है , तथापि नाटककार ने उसमें कल्पना का समावेश भी किया है। नाटक के कुछ पात्रों तथा - चंद्रगुप्त , ध्रुवस्वामिनी , रामगुप्त , शकराज , शिखर स्वामिनी ऐतिहासिक पात्र हैं। जबकि कोमा और मंदाकिनी आदि काल्पनिक पात्र की श्रेणी में आते हैं , और उनकी कल्पना शकराज के अनैतिक आचरण को पुष्ट करने हेतु की गई है। समग्रतः यह कहा जा सकता है कि ध्रुवस्वामिनी नाटक में प्रसाद जी ने इतिहास और कल्पना का सुंदर समन्वय किया है।

ध्रुवस्वामिनी नाटक की कथावस्तु संक्षेप रोचक और गतिशील है। गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त ने अपने पुत्र चंद्रगुप्त को राज्य का उत्तराधिकारी बनाया था और उसका विवाह जीते हुए राजा की कन्या ध्रुवस्वामिनी से निश्चित किया था। चंद्रगुप्त का बड़ा भाई रामगुप्त अयोग्य विलासी एवं दुराचारी था। किंतु समुद्रगुप्त की मृत्यु के उपरांत शिखर स्वामी नामक षड्यंत्रकारी अनाचारी के सहयोग से रामगुप्त राज्य का उत्तराधिकारी बन बैठा और उसने ध्रुवस्वामिनी से विवाह भी कर लिया। चंद्रगुप्त पारिवारिक विग्रह की आशंका से शांत बना रहा और उसकी बहुलता दूसरे की पत्नी बन गई।

रामगुप्त सेना लेकर दिग्विजय करने निकल पड़ा इस समय शकराज ने गुप्त साम्राज्य का युद्ध चल रहा था। इस युद्ध में शिक्षकों की स्थिति बेहतर थी शकराज ने युद्ध बंद करने के लिए जो संधि प्रस्ताव भेजा उसके अनुसार रामगुप्त को अपनी पत्नी ध्रुवस्वामिनी स्वराज को उपहार में देनी थी। रामगुप्त ने इस प्रस्ताव को तुरंत स्वीकार कर लिया , ध्रुवस्वामिनी ने रामगुप्त से अपनी रक्षा की प्रार्थना की अपने कुल

गौरव और मान-सम्मान की रक्षा के लिए अनुनय-विनय किया। किंतु रामगुप्त ने अपनी निर्लज्जता प्रदर्शित करते हुए कायरों की भांति अपनी प्राण रक्षा के लिए शकराज के संधि प्रस्ताव को स्वीकृत कर दिया।
ध्रुवस्वामिनी का आत्मगौरव जागृत होता है और वह शक राज के शिविर में जाने के लिए स्पष्ट इंकार कर देती है -
" यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते , अपने कुल की मर्यादा नारी का गौरव नहीं बचा सकते , तो तुम्हें बेचने का अधिकार नहीं है। "
वह आत्महत्या करने को प्रस्तुत होती है। किंतु चंद्रगुप्त उसे आकर रोक लेता है। चंद्रगुप्त स्वयं स्त्री वेश में ध्रुवस्वामिनी के साथ शकराज के शिविर में जाता है और शकराज की हत्या कर देता है। इससे पूर्व शकराज को उसकी प्रेमिका कोमा भी समझाती है कि , तुम्हें ध्रुवस्वामिनी को उपहार में नहीं मांगना चाहिए राजनीति से भी बड़ी होती है नीति जिसका आश्रय छोड़ने पर व्यक्ति नष्ट हो जाता है। ऐसा कॉमा के पिता आचार्य मिहिरदेव , शकराज को समझाते हैं , किंतु वह उनका तिरस्कार कर देता है और कॉमा के प्रेम को भी ठुकरा देता है।

शक दुर्ग पर अधिकार कर लेने का समाचार सुनकर रामगुप्त के सैनिक वहां पहुंचकर क्रूरता प्रदर्शित करते हुए मारकाट करने लगते हैं और कोमा तथा उसके पिता दोनों ही मारे जाते हैं। ध्रुवस्वामिनी की प्रेरणा पर चंद्रगुप्त अपने भाई रामगुप्त का मुखर विद्रोह करता है और ध्रुवस्वामिनी रामगुप्त जैसी क्लीव को अपना पति मानने से इंकार कर देती है। अंत में धर्म परिषद का आह्वान किया जाता है और उसमें पुरोहित अपना निर्णय देते हुए कहता है - " विवाह की विधि ने देवी ध्रुवस्वामिनी और रामगुप्त को एक भ्रांतिपूर्ण बंधन में बांध दिया है , धर्म का उद्देश्य इस तरह पददलित नहीं किया जा सकता। यह रामगुप्त के गौरव से नष्ट आचरण पददलित और कर्मों से राज की वश बिलीव है ऐसी अवस्था में रामगुप्त का ध्रुवस्वामिनी पर कोई अधिकार नहीं। "

परिषद् के लोग रामगुप्त को गुप्त वंश के राजसिंहासन से भी हटा देते हैं। चन्द्रगुप्त राजा बनता है और उसका विवाह ध्रुवस्वामिनी से कर दिया है।
" मैं पुरुष हूं ? नहीं ! मैं अपनी आंखों से अपना वैभव और अधिकार दूसरों को अन्याय से छिनता देख रहा हूं और मेरी वाग्दत्ता पत्नी मेरी अनुत्साह से मेरी नहीं रही। “----चन्द्रगुप्त
" मैं उपहार में देने की वस्तु शीतल मणि नहीं हूं , मुझमे रक्त की तरह लालिमा है , मेरा हृदय उष्ण है और आत्मसम्मान की ज्योति है। उसकी रक्षा में ही करूंगी। “------ध्रुवस्वामिनी
" पुरुष ने स्त्रियों को अपनी पशु संपत्ति समझकर उस पर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया है , वह मेरे साथ नहीं चल सकता , तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते तो मुझे बेच भी नहीं सकते। "-----ध्रुवस्वामिनी
" कौन महादेवी राजा या अभी मैं महादेवी ही हूं ? जो शकराज की सैया के लिए कृत दासी की तरह भेजी गई हूं वह महादेवी आश्चर्य !"---- ध्रुवस्वामिनी
" यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते , अपने कुल की मर्यादा नारी का गौरव नहीं बचा सकते , तो तुम्हें बेचने का अधिकार नहीं है। "---- ध्रुवस्वामिनी

" मैं केवल यही कहना चाहती हूं कि पुरुषों ने स्त्रियों को पशु समान समझ कर उन पर अत्याचार करने का जो अभ्यास बना लिया है , वह मेरे साथ नहीं चल सकता। यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते , तो मुझे बेच भी नहीं सकते।" ---- ध्रुवस्वामिनी

" अमात्य यह कैसी व्यवस्था है तुम मृत्युदंड के लिए उन्मुक्त महादेवी आत्महत्या करने के लिए प्रस्तुत फिर यह हिंसक क्यों एक बार अंतिम बल परीक्षा कर देखो बचोगे तो राष्ट्र और सम्मान ही बचेगा नहीं तो सर्वनाश। "------मंदाकिनी

" राजा का भय मंदा का गला नहीं घोंट सकता। तुम लोगों में यदि कुछ भी बुद्धि होती तो इस अपनी कुल मर्यादा नारी को शत्रु के दुर्ग में यूं ना भेजते भगवान ने स्त्रियों को उत्पन्न करके ही अधिकारों से वंचित किया है। किंतु तुम लोगों की दस्यु वृत्ति ने उन्हें लूटा है। "------ मंदाकिनी

'वीरता जब भागती है, तब उसके पैरों से राजनीतिक छलछंद की धूल उड़ती है- मंदाकिनी

'जिसकी भुजाओं में बल न हो,उसके मस्तिष्क में तो कुछ होना चाहिए'- रामगुप्त

विशेष तथ्य -

यह समस्यात्मक नाटक है।

प्रकाशन समय- 1933 ई.

ध्रुवस्वामिनी नाटक के प्रमुख गीत -

1. यह कसक अरे आँसू सह जा.... शीतलता फैलाता बह जा। (मंदाकिनी, प्रथम अंक में)
2. पैरों के नीचे जलधर हो, बिजली से उनका खेल चले
   विश्राम शांति को शाप दिये, ऊपर ऊँचे सब झेल रहे। (मंदाकिनी, प्रथम अंक में ।)
3. यौवन तेरी चंचल छाया, इसमें बैठ घूट भर पी लूँ जो रस तू है लाया।
   पल भर रुकने वाले! कह तू पथिक! कहाँ से आया ? (कोमा, द्वितीय अंक में।)

2. स्कंदगुप्त (1928 ई.)

आलोचकों ने प्रसाद के इस नाटक को शास्त्रीय दृष्टि से उत्तम माना है।

इस नाटक में पाँच अंक है। शेक्सपियर के नाटकों में भी पाँच अंकों की परम्परा मिलती हैं।

नाटक के प्रथम अंक में गुप्त साम्राज्य में आंतरिक विद्रोह और सम्राट कुमारगुप्त के विलासपूर्ण जीवन में गुप्त साम्राज्य की शांति और व्यवस्था, अशांति में बदली स्थिति को बतलाया गया है। सम्राट की अयोग्यता, वीरसेन की असमय मृत्यु और विदेशियों के आक्रमण से गुप्त साम्राज्य पर प्रश्नचिह्न लग जाता है। ऐसी स्थिति में स्कंदगुप्त का कर्तव्य स्वाभाविक रूप से बढ़ जाता है। पारिवारिक विद्रोह की शांति और आर्यावर्त की गौरव की रक्षा उसका प्रथम कर्तव्य बन जाता है। इसी समय पुरुगुप्त, भट्टार्क और अनन्तदेवी की षड्यंत्रपूर्ण योजना से सम्राट की मौत हो जाती है। इतना ही नहीं पर साम्राज्य के परम शुभ चिंतक

पृथ्वीसेन, महाप्रतिहार और दण्डनायक आत्महत्या कर लेते हैं। ऐसी स्थिति में स्कन्दगुप्त विचलित हो जाता है, फिर भी लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में पूरी शक्ति लगाकर जुट जाता है।

दूसरे अंक में स्कंदगुप्त का प्रयत्न लक्ष्य के लिए है पर उसमें गृह संघर्ष प्रथम विघ्न के रूप में आता है। इसका पता हमें अनन्तदेवी और भट्टार्क के षड्यंत्रों से चला है। इसी अंक में ये दोनों देवकी की हत्या का भी षड्यंत्र बनाते है। दूसरी समस्या दुश्मनों के क्रूर प्रहार से देश की रक्षा की है, और उसी समय स्कन्दगुप्त कुसुमपुर पहुँचकर अपनी माँ की रक्षा करता है। इसके बाद दुश्मनों का सामना करने के लिए वह शैन्य शक्ति संगठित करता है, और उसे उसमें सफलता मिलती है। उसे राज्य की प्राप्ति होती है। दूरी ओर दुश्मनों के सम्मुख उसे बन्दी रूप में लाया जाता है।

तृतीयं अंक में प्रपंच-बुद्धि, भट्टार्क और अनन्तदेवी की षड्यंत्रपूर्ण योजनाओं का सामना स्कन्दगुप्त को करना पड़ता है। स्कंदगुप्त और मातृगुप्त द्वारा देवसेना की रक्षा, पश्चिमोत्तर सीमा की ओर दुश्मनों का सामना रणक्षेत्र में भट्टार्क का दुश्मनों से मिल जाना, पता चलने के बाद भी उसे क्षमा करना फिर भी कृतघ्न भट्टार्क का स्कंद के साथ विश्वासघात स्कंदगुप्त की सेना को कुम्भा पार करते समय बाँध काटकर विपत्ति में डाल देना आदि आता है।

चौथे अंक में स्कन्दगुप्त विपरीत परिस्थिति में निःसहाय और अकेला दिखाया गया है। उसकी माँ का स्वर्गवास, जीवन के दूसरे साधन अस्त-व्यस्त, भट्टार्क के कारण विजया और अनन्तदेवी में विरोध की स्थिति, शर्वनाग से प्रभावित विजया का भी देशकल्याण की भावना से प्रेरित होकर क्रियाशील होना, देवकी की मृत्यु से भट्टार्क को भी बहुत बडी शिक्षा मिलना और संघर्ष से विमुख रहने का संकल्प, प्रेम के क्षेत्र में भी अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन, विजया का स्कन्द से फिर आसक्त होना, स्कन्द का देवसेना से आसक्त होकर हूणों से भयभीत देवसेना को सहायता करना अनेक प्रकार की उलझनों के बावजूद भी देवसेना के अनुराग के प्रति स्कन्दगुप्त को सजग बताया गया है।

पाँचवें अंक में प्रारंभ सैन्य संचालन में रत भट्टार्क की अदम्यवीरता और सूझ-बूझ के कारण विपक्षियों का एक महत्त्वपूर्ण गढ़ टूट जाता है। अनन्तदेवी और धर्मसंघों में विरोध की स्थिति उत्पन्न होती है। दूसरी ओर पर्णदत्त के अनुपम सहयोग से स्कन्दगुप्त को धनराशि की उपलब्धि, आर्यावर्त के गौरव की रक्षा, फिर रण-क्षेत्र में ही पुरुगुप्त को रक्त का टीका लगाकर पारिवारिक अशान्ति पर विजय प्राप्त करना और स्कंद के सारे प्रयत्न सफल होते हुए दिखाये है। सामाजिक सफलता के रूप में सब कुछ पाकर भी नायक अपने व्यक्तित्व परिवेश में अतृप्ति की पीडा से पीडित हैं देवसेना के चरणों पर अपना सर्वस्व लुटाने वाले स्कंदगुप्त को देवसेना इसलिए उपलब्ध न हो सकी क्योंकि उसे मालव राज के सम्मान का बडा ध्यान था। अकेला स्कंदगुप्त आँसू बहाता रह जाता है और स्कंदगुप्त के करुण उच्छ्वास से ही नाटक का अंत हो जाता है।

महत्त्वपूर्ण तथ्य -

'स्कंदगुप्त विक्रमादित्य' नाटक के पात्र -

पुरुष पात्र -
स्कंदगुप्त - युवराज (विक्रमादित्य)
कुमारगुप्त - मगध का सम्राट
पर्णदत्त - मगध का महानायक
चक्रपालित - पर्णदत्त का पुत्र
बन्धुवर्मा - मालव का राजा
भीमवर्मा - बन्धुवर्मा का भाई
मातृगुप्त - काव्यकर्ता कालिदास

स्त्री पात्र -
देवकी - कुमारगुप्त की बडी रानी, स्कंद की माता
अनन्तदेवी - कुमारगुप्त की छोटी रानी, पुरगुप्त की माता
जयमाला - बन्धुवर्मा की स्त्री, मालव की रानी
देवसेना - बन्धुवर्मा की बहिन
विजया - मालव के धनकुबेर की कन्या
कमला - भटार्क की जननी ।

विशेष तथ्य -

इसमें कुल 17 गीत और 5 अंक है।

- इस नाटक में पाँच अंक व 33 दृश्य है।
- प्रसाद जी की सबसे प्रौढ़ रचना है।

- गुप्त साम्राज्य में आंतरिक विद्रोह और सम्राट कुमारगुप्त के विलासपूर्ण जीवन में गुप्त साम्राज्य की शांति और
- -व्यवस्था, अशांति में बदली स्थिति को बतलाया गया है।
- प्रकाशन समय- 1928 ई.
- अंगीरस- शांत

प्रमुख गीत -

1. प्रिय! संसृति के वे सुंदरतम क्षण यों ही भूल नहीं जाना (मातृगुप्त, प्रथम अंक)
2. हमारे निर्बलों के बल कहाँ हो, हमारे दीन के सम्बल कहाँ हो (स्त्रियाँ, प्रथम अंक)
3. घने प्रेम तरु तले बैठ छाँह लो भव आतप से तापित और जले (देवसेना, द्वितीय अंक)
4. उमङ कर चली भिगोने आज तुम्हारा निश्चल अंचल छोर (विजया, तृतीय अंक)
5. बजा दो वेणु मनमोहन, बजा दो। इसे आनंदमय जीवन बना दो। (स्कंदगुप्त, चतुर्थ अंक)
6. शून्य गगन में खोजता जैसे चंद्र निराश, राका में रमणीय यह किसका मधुर प्रकाश (देवसेना, पाँचवाँ अंक)
7. देश की दुर्दशा निहारोगे, डूबते को कभी उबारोगे (देवसेना, पाँचवाँ अंक)
8. वीरों! हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार (समवेत गान, पाँचवाँ अंक) 9. आह वेदना मिली विदाई, मैंने भ्रमवश जीवन संचित, मधुकरियों की भीख लुटाई.... विश्व! न सँभलेगी यह मुझसे, इसने मन की लज गँवाई। (देवसेना, पाँचवाँ अंक)।

3.चन्द्रगुप्त - 1931 ई.

सन् 1931 प्रकाशित 'चन्द्रगुप्त' नाट्य रचना प्रसाद की उत्तम रचनाओं में एक है। यह नाटक चार अंकों में विभाजित और इतिहास की तीन घटनाएँ अलक्षेद्र का आक्रमण, नंदकुल की पराजय और सिल्यूकस का पराभव-इस तर्क के आधार पर विभाजित है।

नाटक का प्रारंभ तक्षशिला के गुरुकुल में युवकों के पारस्परिक वार्तालाप से होता है। वेदी मैत्री, प्रेम और संघर्ष के बीज शुरू हो जाते है। अलक्षेद्र का आक्रमण और नन्दकुल का विनाश और संघर्ष से सम्बन्धित समस्त पात्रों का प्रवेश प्रथम अंक में दिखाया गया है। नन्दगुल के सर्वनाथ की योजना को चन्द्रगुप्त की सहायता से चाणक्य का बनाना, सीमा प्राप्ति की ओर प्रस्थान, प्रतिपक्षी आम्भीक का सिंधु तट पर विरोध, दाण्डयायन के आश्रम में दोनों विरोधी वर्ग के लोगों का एकत्र होना, दाण्डयायन की प्रशंसा से चन्द्रगुप्त का सम्मान दूसरे की दृष्टि में बढ़ जाना मगध से लेकर गांधार तक की राजनीतिक स्थिति की प्रतिष्ठा प्रथम अंक में दिखायी गई है। पश्चिमोत्तर सीमा प्राप्त की राजनीतिक वस्तुस्थिति की स्पष्ट रूपरेखा द्वितीय अंक में देखी जा सकती है। दुराचारी फिलिप्स के चंगुल से कार्नेलिया का उद्धार करके उसका अपना बन जाना, सूझ-बूझ और अपरिमित शक्ति के आधार पर सिकन्दर को नीचा दिखाने में सफलता, विदेशी सेना की यथार्थ स्थिति की जानकारी चाणक्य को मिलना, चन्द्रगुप्त को दोनों गणतंत्रों का सेनापति बनाना आदि कई घटनाएँ घटती हैं। इसमें भी घायल सिकन्दर को जब चन्द्रगुप्त प्राणदान देता है इस स्थल पर उसका व्यक्तित्व निखर उठता है।

समस्त कार्य-व्यापारों का केन्द्र मगध पुनः बनता है। अपनी विद्याबुद्धि से चाणक्य चन्द्रगुप्त को शक्ति बनाकर नन्दवंश के उन्मूलन में प्रवृत्त होता है। विद्रोह की ज्वाला में नन्द का सर्वनाश होता है और सभी लोग एक मत होकर चन्द्रगुप्त को शासक के रूप में स्वीकार करते हैं। अंत में चाणक्य के कुचक्र में फँसकर पर्वतेश्वर के प्राणों का अंत हो जाता है। इसके बाद भी छोटे-बड़े आंतरिक विद्रोह होते हैं और चाणक्य के सत्य प्रयासों से सारे शांत हो जाते है। राक्षस तथा सुवासिनी तथा चन्द्रगुप्त एवं कार्नेलिया को प्रणयसूत्र में बाँधकर वह राजनीति से संन्यास ले लेता है। इसी के साथ नाटक का अंत हो जाता हैं।

विशेष तथ्य -

- चार अंक व 44 दृश्य ।

पात्र परिचय -

चाणक्य(विष्णुगुप्त)	-	मौर्य साम्राज्य का निर्माता।
चंद्रगुप्त	-	मौर्य-सम्राट् ।
नंद	-	मगध सम्राट्, मौर्य साम्राज्य का निर्माता।
राक्षस	-	मगध का अमात्य |
वररुचि (कात्यायन)	-	मगध का अमात्य |
शकटार	-	मगध का मंत्री।
आंभीक	-	तक्षशिला का राजकुमार |
सिंहरण	-	मालव गुणमुख्य का कुमार |
पर्वतेश्वर	-	पंजाब का राज (पोरस)।
सिकंदर	-	ग्रीक विजेता।
फिलिप्स	-	सिकंदर का क्षत्रप ।
मौर्य-सेनापति	-	चंद्रगुप्त का पिता। एनीसाक्रोटीज - सिकंदर का सहचर ।
देवबल, नागदत्त, गणमुख्य	-	मालव गणतंत्र के पदाधिकारी।
साइबर्टियस, मेगास्थनीज	-	यवन दूत |
गांधार-नरेश	:-	आंभीक का पिता ।
सिल्यूकस	-	सिकंदर का सेनापति ।
दाण्ड्यायन	-	एक तपस्वी।

अलका	-	लक्षशिला की राजकुमारी।
सुवासिनी	-	शकटार की कन्या ।
कल्याणी	-	मगध राजकुमारी।
नीला, लीला	-	कल्याणी की सहेलियाँ ।
मालविका	-	सिंधु देश की कुमारी।
कार्नेलिया	-	सिल्यूकस की कन्या।
मौर्य-पत्नी	:-	चंद्रगुप्त की माता।
एलिस	-	कार्नेलिया की सहेली।

चंद्रगुप्त नाटक के महत्त्वपूर्ण कथन -

1. मैं उसे जानने की चेष्टा कर रहा हूँ। आर्यावर्त्त का भविष्य लिखने के लिए कुचक्र और प्रतारणा की लेखनी और मसि प्रस्तुत हो रही है। उत्तरापथ के खण्ड राज्य द्वेष से जर्जर है। शीघ्र भयानक विस्फोट होगा। (सिंहरण का कथन चाणक्य के प्रति)
2. "तुम मालव हो और यह मागध, यहीं तुम्हारे मान का अवसान है न? परन्तु आत्मसम्मान इतने ही से संतुष्ट नहीं होगा। मालव और मागध को भूलकर जब तुम आर्यावर्त्त का नाम, लोगे, तभी वह मिलेगा। क्या तुम नहीं देखते हो कि आगामी दिवसों में आर्यावर्त्त के सब स्वतंत्र राष्ट्र एक के अनन्तर दूसरे विदेशी विजेता से पददलित होंगे?" (चाणक्य का कथन चंद्रगुप्त के प्रति)
3. "त्याग और क्षमा, तप और विद्या, तेज और सम्मान के लिए है - लोहे और सोने के सामने सिर झुकाने के लिए हम लोग ब्राह्मण नहीं बने हैं। हमारी दी हुई विभूति से हमीं को अपमानित किया जाये, ऐसा नहीं हो सकता। अब केवल परिणति से काम न चलेगा। अर्थशास्त्र और दण्ड नीति की आवश्यकता है।" (चाणक्य का कथन वररुचि के प्रति)
4. "रे पद्दलित ब्राह्मणत्त्व? देख, शूद्र ने निगडबद्ध किया, क्षत्रिय निर्वासित करता है, तब जल-एक बार अपनी ज्वाला से जल । उसकी चिनगारी से तेरे पोषक वैश्व सेवक शूद्र और रक्षक क्षत्रिय उत्पन्न हों। जाता हूँ पौख।" (चाणक्य का स्वगत कथन)
5. "मेरा देश है मेरे पहाड हैं, नदियाँ हैं और मेरे जंगल हैं। इस भूमि के एक-एक परमाणु मेरे हैं और मेरे शरीर के एक-एक क्षुद्र अंश उन्हीं परमाणुओं के बने है। फिर मैं वहाँ जाऊँगी यवन ।" (अलका का कथन सिल्यूकस के प्रति)
6. "जयघोष तुम्हारे चाण करेंगे, हत्या, रक्तपात और अग्निकाण्ड के लिए उपकरण जुटाने में मुझे आनन्द नहीं। विजय-तृष्णा का अन्त पराभव में होता है। अलझेंद्र! राजसत्ता सुव्यवस्था से बढ़े तो बढ़ सकती है, केवल विजयी से नही। इसलिए अपनी प्रजा के कल्याण में लगो।" (दाण्ड्यायन का कथन सिकंदर के प्रति)

7. "उसकी चिंता नहीं। पीछे अंधकार में बढ़ते है और मेरी नीतिलता भी उसी भाँति विपत्तितम में लहलती होगी। हाँ, केवल शौर्य से काम नहीं चलेगा। एक बात समझ लो, चाणक्य सिद्धि देखता है, साधन चाहे कैसे ही हों। बोलो, तुम लोग प्रस्तुत हो।" (चाणक्य सिंहरण से)
8. "फूल हँसते आते हैं, मकरंद गिराकर मुरझा जाते हैं, आँसू से धरणी को भिगोकर चले जाते है। एक स्निग्घ समीर का झोंका आता है, विश्वास फेंककर चला जाता है। क्या पृथ्वीतल रोने ही के लिए है? नहीं, सबके लिए एक ही नियम तो नहीं। कोई रोने के लिए है तो कोई हँसने के लिए।" (मालविका का स्वगत चिंतन)
9. "मनुष्य अपनी दुर्बलता से भली-भाँति परिचित रहता है। परन्तु उसे अपने बल से भी पहले-कर्म क्षेत्र में काँपकर लडखडाओं मत पौरब! तुम विचार कर देखो तो! सिकन्दर ने जो क्षत्रप नियुक्त किया है, जिन संधियों को वह प्रगतिशील रखना चाहता है वे सब क्या है ? अपनी लूटपाट को वह साम्राज्य के रूप में देखना चाहता है।" (चाणक्य का कथन पर्वतेश्वर के प्रति)
10. "महत्त्वाकांक्षा का मोती निष्ठुरता की सीपी में रहता है। चलो अपना काम करो विवाद करना तुम्हारा काम नहीं। अब तुम स्वच्छन्द होकर दक्षिणपथ जाने की आयोजना करो।" (चाणक्य का कथन, चंद्रगुप्त के प्रति)
11. "जाओ प्रियतम! सुखी जीवन बिताने के लिए, और मैं रहती हूँ चिरदुखी जीवन का अंत करने के लिए। जीवन एक प्रश्न है, और मरण है उसका अटल उत्तर।" (मालविका का स्वगत चिंतन)
12. "वह स्त्री जीवन का सत्य है। जो कहती है कि जो मैं नहीं जानतीं - वह दूसरे को धोखा देती है, अपने को भी प्रवंचित करती है। धधकते हुए रमणी-वक्ष पर हाथ रखकर उसी कम्पन में स्वर मिलाकर कामदेव गाता है और राजकुमारी वही काम-संगीत की तान सौंदर्य की रंगीन लहर वन कर, युवतियों के सुख में लज्जा और स्वास्थ्य की लाली बढ़ाया करती है।" (सुवासिनी का कथन)।

4. आगरा बाजार

हबीब तनवीर ने एक सफल रंग-निर्देशक तथा प्रयोगशील नाटककार के रूप में पर्याप्त ख्याति प्राप्त की हैं। वे आरंभ में हिंदुस्तानी थियेटर में कार्य करते थे। सन् 1956 में उन्होंने उसे छोडकर नया थियेटर स्थापित किया। नया थिएटर आरंभ में अन्य देशी-विदेशी लेखकों के नाटकों का अभिनय करता रहा, फिर तनवीर ने आगरा बाजार नामक स्व-रचित नाटक का अभिनय इस मंच से किया जिसमें उन्हें बहुत सफलता एवं ख्याति मिली। आगरा बाजार के माध्यम से हबीब तनवीर ने नजीर अकबराबादी जैसे शायर के जीवन और कलाम को सामने रखा।"

आगरा बाजार जैसे नाटक की प्रस्तुति ने हिंदुस्तानी नाटककारों के सामने ये मिशाल पेश की कि किस तरह यथार्थवादी ढाँचों को पसंद करके पश्चिमी और पूर्वी नाटकों के सम्मिश्रण से एक नए तरह की तर्ज पर नाटकों को प्रस्तुत किया जा सकता है, जिसमें लोक नाटक के फार्म को और उसके असर को जानबूझ कर लूंसा नहीं गया है फिर भी नाटक के डायलॉग से लोक नाटक की अदाकारी व कारीगरी के रंग फूटते हुए महसूस होते हैं। दिल्ली आने के शुरूआती दिनों में ही, यानी सन् 1954 में हबीब तनवीर ने आगरा बाजार लिखा था, और ओखला गाँव के लोग अभिनेताओं और जामिया मिलिया के मध्य वर्गीय पढ़े-लिखे

अभिनेताओं को एक साथ मिला कर स्टेज किया। हबीब तनवीर ने जामिया मिलिया के मुक्ताकाशी रंगमंच पर यह नाटक प्रस्तुत किया, और यहीं बेगम जैदी और दिल्ली के कुछ और लोग आए। उन्हें नाटक इतना पसंद आया कि उन्होंने उसे दिल्ली में दिखाने का प्रस्ताव रखा। इसे नई दिल्ली के ईस्टर्न-कोर्ट में दिखाया गया। 'खुद हबीब तनवीर ने 'आगरा बाजार' को प्लॉट के क्रम और पेशकस के एतबार से चार हिस्सों में बाँटा है। 1. अवाम का अखलाक और बेरोजगारी 2. लेखकों और इंटलेक्चुअल्स की काहिली तास्सुब और जिंदगी से फकीर 3. छोटे पेशेवरों में नजीर अकबराबादी की मकबूलियत 4. नजीर का पैगाम । आगरा बाजार एक पूरे दौर की तारीख बनकर सामने आता है।'

आगरा बाजार में 18 वीं शताब्दी के प्रसिद्ध कवि नजीर अकबरावादी की कविताओं के भावों को मूर्त रूप में प्रस्तुत किया गया है। घटनाओं और उनसे बनने वाली कथावस्तु के प्रभाव में यह नाटक एक विशेष प्रयोग के रूप में सामने आता है। इसमें नायक की भी कल्पना नहीं है। आगरा के एक बाजार तथा कोठे के दृश्यों से जुडी संवेदना मानवीय अनुभूतियों से साक्षात्कार कराती है। समस्त नाटक संगीत-रूपक की पद्धति से चलता है। फल, मीठा, पतंगे, पुस्तकें आदि बेचने वालों, फकीरों, कोठों और काव्य-प्रेमियों के बीच सर्वत्र नजीर की कविता की धूम मची हुई है। इसमें सबके लिए प्यार दुलार, प्रेरणा, वैराग्य आदि के भाव हैं। इन भावों का अभिनय इस नाटक में नजीर अकबरवादी की मानवतावादी एवं राष्ट्रीयता से परिपूर्ण दृष्टि से परिचित कराता है। कथा के नाम पर यदि कुछ है भी तो केवल तीन प्रसंग है, जो व्यापार आर्थिक मंदी के कारण ठीक नहीं चल पा रहा है। दूसरा प्रसंग बेनजीर वेश्या और उसकी वृत्ति से संबंधित है। तीसरे प्रसंग का संबंध पुस्तक विक्रेता आदि से है। 'तनवीर' ने इन कथा-प्रसंगों के मध्य लोक-नृत्य तथा खेल-तमाशों का आयोजन करके नाटक को पूर्णतः लोक-रूचि के निकट पहुँचा दिया है। नजीर अकबरावादी का आगरा बाजार अनेक दृष्टियों से भारतीय संस्कृति और साहित्य के ऐसे दौर का दस्तावेज है, जिसमें अपने भूगोल और इतिहास, समाज और धर्म, आस्था और कुंठाओं से जुझते जन-सामान्य का जीवंत चित्रण उपलब्ध है। यह ऐसे संक्रमण काल की व्यथा-कथा है, जिसने आने वाले समय के भारतीय मूल्यों को नया आधार और नूतन सबल प्रदान किया।"

आगरा बाजार के जितने विषयों को हबीब ने हाथ लगाया वो सब के सब फिर पूरे समाजी दौर में मिले हैं। इसमें इंसानी जिंदगी की तस्वीर पेश की गई है इसमें हमें हबीब तनवीर की समाजी जागरूकता, सामाजिक और इंसानी फितरत और व्यवहार का भी पता चलता है। "एक ओर पतंग बेचने वाले की दुकान और वहाँ पर पतंगों के बारे में बतियाने की आम लोक भाषा में बातचीत में बोली जाने वाली जुबान और दूसरी तरफ किताबें बेचने वाले की दुकान जहाँ शायर आलोचक और इतिहासकार इकट्ठे होते हैं और एक साहित्यिक भाषा बोलते हैं, नजीर की बुराई करते हैं और गालिब, मीर और दूसरे शायरों की तारीफ और सामान बेचने वाले नजीर की कविताएँ गाते हैं, क्योंकि उन्होंने वह उनसे लिखवाई और उनका सामान जो पहले नहीं बिक रहा था फौरन सब बिक जाता है तब वे नजीर की शायरी गाना शुरू करते है।"
आगरा बाजार तनवीर की उन दो केन्द्रीय वृत्तियों को रेखांकित करता है। जो इनके नाटकों में दिखती है। पहली है विचारधारा और कलागत स्तर उनका लोक जीवन, आम जिंदगी की ओर झुकाव और दूसरी नाटकों

में कविता और संगीत का उपयोग । 'यह प्रयोग सतही सजावट के लिए न हो कर ब्रेख्त की तरह उनके नाट्यकम्र का हिस्सा है। इन दोनों वृत्तियों की यह पहली और शानदार अभिव्यक्ति थी।'
हबीब तनवीर का कमला प्रसाद के साथ साक्षात्कार में यह बात सामने आयी कि 'पहले यह नाटक छात्रों और शिक्षकों के साथ किया गया और पडौस के ओखला के गाँव वाले आकर बैठते और उस मुक्ताकाशी खुले रंगमंच पर रिहर्सल देखते। तो मैंने एक दिन उनसे कहा कि दूर से रिहर्सन देखने के बजाय वे मंच पर आकर बैठ सकते हैं क्यों कि भालू नाच हो रहा है। कभी बंदर का तमाशा हो रहा है इन्होंने वही किया और इस तरह वे भी नाटक का एक हिस्सा बन गए। इस तरह वहाँ 70 से भी अधिक लोग हो गए जो राम लीला मैदान में आए।"

आगरा बाजार को पहली बार हबीब तनवीर ने एक खास जरूरत के तहत् लिखा और इसके बाद इसे सन् 1970 में फिर सन् 1977 में और तीसरी बार सन् 1989 में खेला गया और अब तक इसके सैकड़ों शो हो चुके हैं, जो इस बात का सबूत है कि हर दौर में इस नाटक की ताजगी में कमी नहीं आई थी। पश्चिमी और हिंदुस्तानी संस्कृति के मिलाप से किस तरह एक नए रूप का नाटक जन्म ले सकता हैं इसकी उमदा मिशाल आगरा बाजार है, जब ये नाटक प्रस्तुत किया गया तब किसी ने इसकी तरफ ध्यान नहीं दी गईं, हालांकि जिस हिंदुस्तानी नाटक के तर्ज और उसूलों की जरूरत थी हबीब साहब पाँचवीं दहाई में ही आगरा बाजार लिखकर और इसे प्रस्तुत करके वो सब तलाश कर चुके थे
और ये वो वक्त था जब हिंदुस्तानी रंगमंच में हिंदुस्तानियत, अपनी मिट्टी से जुडाव और शैली का डंका पीटने वाले नारों और मुहावरों का जन्म नहीं हुआ था। 'क्या ये एक तारीखी वाकया नहीं कि जिस दौर में हिंदुस्तानी रंगमंच पर पश्चिम के नाटकों को अवाम पसंद कर रही थी उस समय हबीब तनवीर अपने ड्रामा ग्रुप के साथ 'आगरा बाजार' की शक्ल में एक ऐसी रंग शैली की तस्वीर पेश कर रहे थे जो आगे चलकर हिंदुस्तान के रंगमंच में मील का पत्थर साबित हुई।"

आगरा बाजार में हिंदी को जो रंगमंच दिया गया है, वह दर्शक को अतीत की उस शास्त्रीय रंगमंच-परंपरा के आधुनिक प्रयोग की ओर ले जाता है, जिसमें दो मंजिले रंगपीठ होते थे। इस नाटक में बहुखंडीय दृश्य प्रस्तुत हुए है। प्रथम खंड पर बेनजीर खंड पर बेनजीर वेश्या का कोठा है और नीचे बाजार दिखाए गए है। 'उसकी रचनाएँ वह मूल आधार है जो उर्दू साहित्य में हाली, जोश तथा इकबाल जैसे सशक्त शायरों की प्रविष्टी के लिए बहुत हद तक जिम्मेदवार है।

आगरा बाजार नाटक को हबीब तनवीर ने पहले-पहल सन् 1954 में लिखा और प्रस्तुत किया था। बाद में इसे नए रूप में प्रस्तुत किया, इस नए रूप में इसने बहुत अधिक ध्यान आकर्षित किया और रंग-प्रेमी तथा साधारण दर्शक, दोनों में बहुत लोकप्रियता हासिल की। इसमें आगरा के उर्दू कवि नजीर की रचनाओं के सहारे उनके व्यक्तित्व और उस जमाने की आम जिंदगी की एक तस्वीर पेश करने की कोशिश की गई है। रूपबंध की दृष्टि से नाटक शिथिल, लगभग आकारहीन होने पर भी, उससे अलग-अलग चरित्रों और बहुत सामान्य छोटी-छोटी घटनाओं के द्वारा रोजमर्रा की जिंदगी का खट्टा-मीठा सा अनुभव संप्रेषित हो जाता है।

यह नाटक इंसानियत की, ऊँच-नीच तथा भेदभाव से हटकर आपसी बराबरी और भाई-चारे की, भावना को उभारता है, कविता और कला के जिंदगी के साथ जुडने और प्रासंगिक होने पर जोर देता है, और सर्जनात्मक अभिव्यक्ति की भाषा को बोलचाल के पास लाने की जरूरत को भी दिखता है।"
नेमिचंद्र जैन का इस नाटक के बारे में विचार है कि 'आगरा बाजार नाटक से अधिक संगीत प्रधान बहुरंगी प्रदर्शन का एक आलेख भर है, जिसके सहारे निर्देशक ने संगीत, संवाद, समूहन, गति-विधान, अभिनय, रंगसज्जा के कल्पनाशील संयोजन द्वारा एक चाक्षुष अनुभव को जीवंत बनाने की कोशिश की है। कोरस और टिप्पणीकार के रूप में भटिंडा के दो गायकों का, और अलग-अलग भूमिकाओं में छत्तीसगढ़ के लोक-गायकों की आवाजों और गायक की सहजता का, दर्शकों को बाँधे रखने में बडा हाथ है। नाटक में संगीत का ऐसा प्रभावी उपयोग हबीब तनवीर के प्रदर्शनों की खास विशेषता रही है, पर इसमें यह खतरा बना रहता है कि संगीत प्रस्तुति में नाटकीय कथ्य से अलग होकर स्वतंत्र रूप में असरदार बन जाए।"

हबीब तनवीर जी ने आगरा बाजार की रचना ब्रेख्त से प्रभावित होकर की। यह बात गलत है जिसका खंडन उन्होंने स्वयं किया है, कि आगरा बाजार बनाते समय ब्रेख्त से प्रभावित रहे या ब्रेख्त की तकनीक का इस्तेमाल किया। हबीब जी का कथन था कि यहाँ पर किसी किस्म की गलतफहमी जरूर हुई है। 'मुझे अपनी बात स्पष्ट शब्दों में सीधे व साफ कह देनी चाहिए कि निश्चित रूप से इस नाटक को बनाने में ब्रेख्त का कोई प्रभाव नहीं पडा है। जब मैंने सबसे पहली बार आगरा बाजार ड्रामा कराया और खेला था, बहुत पहले सन् 1954 में तब तक ना तो मैंने ब्रेख्त के बारे में कुछ पढ़ा था और ना मेरी उनसे कोई भेंट हुई थी।

जब मैंने 1970 में दूसरी बार 'आगरा बाजार' बनाया तब तक मैं उनके बारे में बहुत कुछ पढ़ चुका था और व्यक्तिगत रूप से उन्हें जानता भी था और अब मुझे लगता है कि मेरे ऐसे नाटक में ब्रेख्त की तकनीक से समानता और लगाव है, बस इतना ही। ब्रेख्त की तकनीकी से मेरे प्रभावित होने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता है। दूसरों के विचारों को अपनाने के प्रति मैं खिलाफ नहीं हूँ, बशर्ते वो आपको अँच जाये। ब्रेख्त ने भी ऐसा किया, गोथे ने भी अपने डॉ. फास्टस के लिए भी भारतीय सूत्रधार का सहारा लिया। आज भी हम इन लेखकों को गैर जर्मन होने का आरोप नहीं लगा सकते है। वास्तव में अन्य जर्मन वासियों की अपेक्षा शायद वे कहीं ज्यादा जर्मन है। सच्चाई तो यह है जब मैं ब्रेख्त से जर्मनी में मिला था तब उन्होंने संस्कृत के प्रसिद्ध नाटक 'मृच्छिकटिक' को जर्मन भाषा में नाटक के रूप में प्रस्तुत करने की इच्छा बतलायी थी और इस विषय पर हम लोगों के बीच थोडा-सा व्यवहार भी हुआ था पर उनकी अचानक मौत ने इस बात को खत्म ही कर दिया।'

नजीर की शायरी में हबीब तनवीर को हमेशा से गहरी दिलचस्पी रही। बचपन से उनकी शायरी से परिचित थे। हबीब तनवीर एक ऐसे क्षेत्र से वास्ता रखते थे जहाँ लोक कला बहुत अधिक प्रचलित व लोकप्रिय थी तथा अनेक लोक गीतों में नजीर का उल्लेख आता यद्यपि इन रचनाओं में गीतकार नजीर के बारे में अनभिज्ञ है। नजीर अकबराबादी जैसे महान कवि के बारे में हबीब तनवीर को ज्यादा कुछ ज्ञान नहीं था।

नजीर से जुड़ी कुछ जानकारियाँ उन्हें लोक किवदंतियों के माध्यम से मिली, परंतु कवि के व्यक्तित्व पर शायद ही कुछ प्रकाश था। हबीब तनवीर का महान व्यक्ति के चारों ओर लिपटी भांतियों को अलग कर, उनके जीवन की मुख्य घटनाओं के बजाय उनकी कविताओं में निहित दर्शन को दिखलाना ही मुख्य उददेश्य था। उनकी जीवनी के बारे में लोगों को बहुत कम जानकारी थी। मुख्य स्त्रोत उनकी रचनाएँ है जिनसे उनकी चारित्रिक विशेषताओं का विविध पक्ष अधिक उजागर होता है बजाय उनके जीवन से जुड़ी किवंदतियों की। इसलिए उनके जीवन से जुडी कुछ विशेष घटनाओं, उल्लेखों में हबीब तनवीर जी ने आंशिक परिवर्तन कर रोचक नाटक बनाने की कोशिश की, हालांकि नाटक का मुख्य आधार या विषय वस्तु पूर्णतः शुद्ध रूप से कल्पना पर आधारित था। 'कुछ आलोचकों ने नजीर की कविताओं के कुछ पक्षों की प्रशंसा करने में अतिशयोक्ति दिखलाई है और कुछ ने यह पाया है कि उनकी रचनाओं में गहरा विरोधाभाष है, यदि उन रचनाओं को संपूर्ण रूप से लिया जाए | परंतु मेरे लिए नजीर की रचनाएँ सयंत उपयुक्त, सुरूचिपूर्ण है और यह सब कुछ एक उच्चतम गुणवत्ता के ड्रामे के लिए सर्वथा उपयुक्त विषयवस्तु है।'

नजीर के जीते जी उन्हें हेय दृष्टि से देखा जाता था तथा उनकी रचनाओं को भाषा के कट्टर लोगों द्वारा नकार दिया गया था, परंतु इस तथ्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती है कि पंडितों ने उसकी कविताओं और रचनाओं को गैर पारंपरिक कहा पर जन सामान्य ने इन्हीं रचनाओं को अपने दिल से लगाया और गली कूचों में गाते फिरे। आज भी स्थिति बदली नहीं है नजीर का दृष्टिकोण बडा व्यापक तथा मस्तिष्क उर्वर था जीवन के प्रति उन्हें अपार प्रेम था तथा जन सामान्य के लिए करुणा, देश के तमाम पेड-पौधों जीवों से उन्हें गहरा लगाव था, चिड़ियों की चहचाहट उन्हें प्यारीथी, उन्हें अपनी जन्मभूमि के उत्सवों व मौसमों से गहरी मोह ब्बत थी। "वह एक ऐसा आदमी था जो इन सबके बारे में सहज कल्पनाशीलता के साथ लिख सकता था, गा सकता था साधारण बोल-चाल की भाषा में एक ऐसी जुबान में जिसे हम बहुत तेजी से भुला रहे है।" आगरा बाजार नाटक का प्रयोगशील शिल्प हिंदी-रंगमंच के स्वतंत्र अस्तित्व की साक्षी देता है। लोक-नाट्य-शैली को पचाकर लिखा गया यह नाटक लोक-जीवन के परिवेश को गहरे प्रभाव के साथ उजागर करता है। तनवीर ने एक कुशल अभिनेता और अनुभवी निर्देशक होने का प्रमाण इस नाटक की रचना में दिया है। समूहन (भीड) की संरचना में पारंगत तनवीर नाट्य-कला को एक नया आयाम देते हैं। रंगमंचीय होने के साथ-साथ इसमें नाट्य कला का उच्च स्तर भी शामिल है।

विशेष तथ्य:

- रचनाकाल: 1954 ई.।
- इसके चार संस्करण प्रकाशित हुए- 1954,1971,1989,2004 ई.।
- इसमें 2 अंक है।
- बेरोजगारी व आर्थिक मंदी का वर्णन।
- मनुष्य की स्वार्थी प्रवृत्ति, पुलिस की लापरवाही का वर्णन। यह नाटक नजीर अकबराबादी की कविताओं पर आधारित है।
- यह जनतान्त्रिक नाटक है।

- एक ककडी बेचने वाली की कहानी है जिसकी ककडी कोई नहीं खरीदता। आखिरकार वह ककडी बेचने के लिए नजीर की नज्मों का सहारा लेता है। ।
- नजीर की प्रसिद्ध आदमी नामा को भी नाटक में सम्मिलित किया गया है। -नाटक में तवायफ और दरोगा, जनता और सत्तापक्ष के रिश्ते की जटिलताओं को बिना लाग लपेट के दिखाया गया है।
- नाटक में मेला, मदारी, त्यौहार, पतंगबाजी काफी कुछ है जो बाजार के माहौल को जीवंत करते
- हैं।
- आगरा बाजार में हबीब जी ने कहीं भी शास्त्र सम्मत नाट्य रूढ़ियों का प्रयोग न करके लोगों की प्रतिष्ठा की है।
- इसमें मुख्य पात्र - तरबूज वाला, बर्फ वाला, ककडी वाला, पान वाला, लड्डू वाला, मदारी,रेवडीवाला, किताबवाला आदि है।

मुख्य कथन:

"आत्महत्या तो मुर्ख लोग करते है,इस ज्ञानी संसार में बहुत से रास्ते है।"- ककडीवाला

5. बकरी - सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का एक प्रतीक नाटक है 'बकरी' | यह समकालीन राजनैतिक जीवन की एक प्रामाणिक दस्तावेज़ है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में पिछले पचास वर्ष से भारतीय जनता, विशेष कर ग्रामीण जनता को जिन हथकण्डों के द्वारा छला गया है, वे सारी बातें इस नाटक के द्वारा हमारे सामने लायी गयी हैं। इस नाटक में बकरी सभी कामनाएँ पूर्ण करनेवाली कामधेनु और सभी दुःखों को दूर करनेवाली देवी का प्रतीक है। बकरी के माध्यम से भारत में अपढ़ ग्रामीणों के मन में देवी-देवताओं और महापुरुषों से जुड़ी किसी भी वस्तु के प्रति अविवेक पूर्ण अन्धश्रद्धा पर व्यंग्य किया गया है। धर्मान्धता और महापुरुष के प्रति अन्धश्रद्धा की फायदा उठाकर ठंग-लुटेरे और ढोंगी सीधी-सादी ग्रामीण जनता को किस प्रकार उल्लू बनाते है उसका एक सफल नाटकीय अभिव्यक्ति है 'बकरी' | साथ ही नाटककार ऐसी गैरसामाजिक प्रवृत्ति के प्रति अपना विरोध सशक्त रूप में प्रकट करने का प्रयास भी करते है। इसमें प्राप्त व्यंग्यात्मकता नाटककार की इस विद्रोही चेतना का प्रकाशन है।

दो अंकों में विभाजित बकरी नाटक के प्रत्येक अंक में तीन-तीन दृश्य है। मंगलाचरण में ही नट समकालीन राजनैतिक भ्रष्टाचार की ओर संकेत करता है। मश्क से सड़क सींचती भिश्ती को देख कर चालाक दुर्जनसिंह, कर्मवीर, सत्यवीर भोली भाली जनता को लूटने की योजना बनाते है और उसमें सत्ता और व्यवस्था का रक्षक सिपाही भी शामिल हो जाता है। वे विपती नामक एक गरीब औरत की बकरी को जिससे वह जीवन यापन करती है। गाँधीजी की वंशज घोषित कर देते है और बलपूर्वक ले जाते हैं। जब वह निर्धन और अपनी बकरी वापस माँगने को इसके पास आती है तो ग्रामीणों की उनकी अन्धश्रद्धा का अनुचित लाभ उठाकर अपने षड़यंत्र में शामिल कर वे उस पर सार्वजनिक संपत्ति को अपनाने का आरोप लगाकर जेल भेज देते है। और भोली भाली जनता से उस बकरी को पुजवाते हैं। जनता के कल्याण के लिये बकरी शान्ति प्रतिष्ठान, बकरी

संस्थान, बकरी सेवासंघ, बकरी मंडल आदि संस्थाओं की स्थापना कर जनता को काफी लूटते हैं। ये सारे नाम सुनते ही हमें अपने महान व्यक्तियों के नाम पर हमारे प्रजातंत्र के रक्षक इसी प्रकार की संस्थाओं को बनाकर आम जनता को किस प्रकार लूटते हैं यह व्यंजित हो जाता है।
बकरी जितना दुह सकती है, उतना ये दुर्जन दोह लेते हैं। अन्त में बकरी की पूंछ पकड़कर ही चुनाव की वैतरणी पार करना चाहते है। कर्मवीर चुनाव लड़कर मंत्री बनने की योजना बनाता है। ग्रामीणों को डरा धमकाकर सभी वोट अपने पक्ष में डलवा लेता हैं। विरोधी युवक को भी जेल में भिजवा देता हैं। इस प्रकार चुनाव भी जीत जाता है। उस खुशी में इस बकरी को मारकर भोज का आयोजन करता है। इसी समय युवक और विपती सभी ग्रामीणों के साथ आकर इन लुटेरों को बाँध लेते है। इस प्रकार नाटक का अन्त आदर्श स्थापना में हो जाता है।

बकरी प्रगतिशील जनवादीचेतना युक्त नाटक है। इसमें सत्ता मूलक शोषण और आम आदमी की विडम्बनाओं का यथार्थ चित्रण नाटककार ने किया है। दुर्जन कर्मवीर और सत्यवीर आधुनिक नेताओं के प्रतीक है तो सिपाही उनका मात्र रक्षक है। इसमें भारत सुरक्षा अधिनियम, निवारक नज़रबंदी कानून आदि पर भी व्यंग्य किया गया है। राजनैतिक नारे अर्थशून्य हो गये और प्रजातंत्र जनता के साथ मज़ाक मात्र रह गये।
हिन्दी नाटक के आधुनिक दौर में विस्तार प्राप्त विद्रोही चेतना का एक हास्य व्यंग्यात्मक मुख सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के 'बकरी' में प्राप्त होता है। मानव का स्वार्थ सब प्रकार की सीमाओं को लांघकर गैर मानवीयता की किस सीमा तक पहुंच गया है, इसका सशक्त व्यंग्यात्मक चित्रण इस नाटक में किया गया है। कोणार्क में जिस प्रकार सत्ता मोह देश और जनता के सर्वनाश में परिणत होता है उसी प्रकार 'बकरी' में आर्थिक मोह और राजनैतिक महत्वकाँक्षा साधारण लोगों की धार्मिक विश्वासों का अवांछनीय लाभ उठाकर समाज के धर्मिक एवं नैतिक अधःपतन का हेतु बनता है। किसी गरीब औरत के जीवनोपाय स्वरूप बकरी पर अलौकिकता का रंग चढ़ाकर उसे हड़प लेकर तीन गैर सामाजिक व्यक्ति पुलीसवालों की सहायता से उस बेचारी को चोरी का इलजाम लगाकर जेल भेज देते है। और बकरी को गाँधीजी की वंश परम्परा की ठहरा देते हैं जिसके द्वारा साधारण लोगों को बहका देते हैं। बिलकुल साधारण बातों को दिव्य घोषित करके आम लोगों की धार्मिक भावना और उससे उदित भक्ति की विवेकहीन मानसिकता का लाभ उठाने के साथ साथ अपने इस स्वार्थपूर्ण व्यापार से लोगों को धोखा देने का पाप भी ऐसे कार्यों में सम्मिलित है। गैरसामाजिकों के द्वारा किये जाने वाले ऐसे कुकर्मों से जब साधारण लोग भटक जाते है और उत्पीड़ित होते हैं तो उनकी नासमझी पर यह समाज विराधी तत्व मंत्री बनते हैं, बड़े बड़े ओहदेदार बनते है और उन्नत पदों पर अधिकारियों के रूप में प्रतिष्ठित होते है। यह समाज के विकास के लिये साधन नहीं है। ऐसे बाधक कार्यों से हमारा वर्तमान समाज पिछड़ जाना दिखाई पड़ने लगा है। छल और कपट का विस्तार, सत्य का निषेध, व्यक्ति का तिरस्कार, उसकी आकाँक्षाओं की अवहेलना सब आज राजनैति क्षेत्र की मान्यता प्राप्त प्रवृत्तियाँ हैं। इन विषमतापूर्ण और अन्धकार से भरे सामाजिक एवं राजनैतिक क्षेत्र की दिशाहीन एवं आलोक रहित अवस्था को देख कर उद्विग्न हो उठने वाले लेखक का धर्मरोष एक व्यंग्यात्मक आक्रोश बन कर इस नाटक में आमूलाग्र बुलन्द हो उठा है। लेकिन लेखक की यह विद्रोहत्मकता की सार्थकता और चरितार्थता तब है

जब नाटक के अन्त में उन तीनों आतताइयों के प्रति जनता का क्रोध उमड़ पड़ता है और तीनों को बन्दी बना लेती है।

विशेष तथ्यः

जनवादी नाटक परंम्परा की परम्परा का प्रमुख नाटक है।

- यह एक प्रतीक नाटक है।
- रचनाकालः 1974 ई.।
- यह समकालीन राजनैतिक जीवन की एक प्रामाणिक दस्तावेज़ है। । दो अंकों में विभाजित बकरी नाटक के प्रत्येक अंक में तीन-तीन दृश्य है।
- बकरी प्रगतिशील जनवादीचेतना युक्त नाटक है। ।
- दुर्जन कर्मवीर और सत्यवीर आधुनिक नेताओं के प्रतीक है
- बकरी गरीब जनता का प्रतीक है।
- भ्रष्टाचार और विसंगतियों का चित्रण |
- गाँधीदर्शन का चित्रण।

पात्रः

नट और नटी,भिश्ती,दुर्जन सिंह,कर्मवीर सिंह,सत्यवीर,विपती,सिपाही

- समकालीन राजनीति की कुरूपता पर व्यंग्यता से प्रहार ।
- बकरी को गांधी जी की बकरी की वंशज बताकर उसकी जय जयकार की जाती है।
- नौटंकी शैली का चित्रण।
- नवयुवकों का आक्रोश का चित्रण।

6. अंधेर नगरी : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

रचनाकाल : 1881 **ई.**

आधुनिक हिंदी साहित्य के जन्मदाता और भारतीय नवोत्थान के प्रतीक "भारतेन्दु हरिश्चन्द्र" का योगदान कभी भुलाया नहीं जा सकता। गोपालचन्द्र उपनाम गिरिधरदास के वह ज्येष्ठ पुत्र थे। भारतेन्दु का जन्म 1850 में उनकी ननिहाल में हुआ। लंबी आयु का वरदान उन्हें नहीं मिला। चौतीस वर्ष चार महीने वह जीवित रहे। परन्तु इस अवधि में उन्होंने नाटक, उपन्यास, काव्य, अनुवाद तथा टीका,
ऐतिहासिक तथा धार्मिक लेखन और संपादन का विराट कार्य किया। उनकी दो सौ अड़तालीस रचनाओं का उल्लेख मिलता है। उनका लिखा अंधेर नगरी प्रहसन अत्यंत लोकप्रिय हुआ है।
घने जंगल में एक साधु अपने दो चेलों के साथ रहता था। एक चेला था नारायण दास और दूसरा था गोवरधन दास। साधु और उसके चेले आसपास के गावों में भीख मांगा करते थे।
एक दिन वे तीनों घुमते-फिरते किसी नए नगर में पहुचे। साधु ने गोवरधन को पश्चिम की ओर और नारायण को पूरब की ओर से नगर में भेजा। गोवर्धन बनिए की दुकान पर पहुँचा। उसने बनिए से पूछा -
क्यो भाई आटा क्या भाव है

बनिए ने जवाब दिया - "टके सेर। "
गोवरधन ने फिर पूछा- "और चीनी"
फिर उसे जवाब मिला- "टके सेर।"
दुकान पर हर चीज का भाव टके सेर ही था। गोवरधन हलवाई की दुकान पर गया। वहाँ उसने भाव पूछा तो जवाब मिला

लड्डू, गुलाब जामुन, हलुआ, खाजा सब टके सेर हैं।
गोवरधन हक्का -बक्का रह गया। उसने पूछा- "इस नगरी का नाम क्या है ? बच्चा
हलवाई बोला - "अंधेर नगरी। और यहाँ के राजा का नाम है चौपट राजा।

गोवरधन के मुंह में पानी आ रहा था। उसके पास सात पैसे थे । उसने साढ़े तीन सेर मिठाई ली और खुश होता हुआ गुरुजी के पास आया । बोला - " अब हमें जहाँ-तहाँ घूमने की जरूरत नहीं। यहीं रहेंगे और तर माल उड़ाएंगे।" पर साधु न माना । बोला - " ऐसे नगर में रहना ठीक नहीं। " उसने दोनों चेलों से झोली दंडा उठाकर चलने को कहा। नारायण तो साथ चल दिया लेकिन गोवर्धन ने साफ कह दिया - "मैं यहीं रहूँगा और मजे से जीवन बिताऊँगा।"

साधु चलते चलते कह गया - " मेरी बात नहीं मानता तू पीछे पछतायेगा। कभी संकट पड़े तो मुझे याद कर लेना। " साधु और नारायण वहाँ से चले जाते हैं।
एक दिन चौपट राजा का दरबार लगा था। एक फ़रियादी न्याय के लिए राजा के पास आया। उसने कहाकल्लू बनिए के घर की दीवार गिरने से मेरी बकरी मर गई। मुझे न्याय मिले महाराज।

चौपट राजा ने आदेश दिया - " कल्लू बनिए की दीवार को पकड़कर लाओ।" मंत्री कुछ समझदार था। उसने कहा -" महाराज दीवार पकड़कर नहीं लाई जा सकती।" इस पर राजा ने कल्लू बनिए को हाजिर करने का आदेश दे दिया। इसके बाद कारीगर, चूने वाले, भिश्ती, गड़रिए पर आरोप लगता हैं किंतु अंत में राजा अपने कोतवाल को फाँसी की सजा दे देता है। सिपाही कोतवाल को फाँसी घर ले गए किंतु फाँसी का फन्दा बड़ा था। चौपट राजा ने हुक्म दे दिया - कोतवाल की जगह किसी मोटे आदमी को फाँसी दी जाए।" नगर में मोटे आदमी की तलाश शुरू हुई तो गोवर्धन पकड़ा गया। गोवरधन ने मिन्नतें की शोर मचाया पर किसी ने उसकी एक न सुनी। उसे फाँसी-घर ले गए।

गोवरधन को फाँसी देने की तैयारी हो रही थी। तभी साधु महाराज अपने चेले नारायण के साथ वहाँ आए । गुरुजी अपने शिष्य को अंतिम उपदेश देना चाहते हैं। गुरुजी गोवरधन के कान में कुछ कहते हैं। इसके बाद गुरु और चेले में फाँसी पर चढने की होड़ लग जाती
हैं। इसी समय राजा मंत्री और कोतवाल वहाँ आते हैं। गुरुजी उनको बताते हैं कि इस शुभ घड़ी में जो मरेगा वह सीधा स्वर्ग जाएगा। मंत्री और कोतवाल दोनों मरना चाहते हैं। लेकिन राजा के रहते उससे पहले बैकुंठ कौन जा सकता है। जल्लाद फाँसी का फंदा चौपट राजा के गले मे डाल देते हैं।

जिस राज्य में विवेक-अविवेक का भेद न किया जाए, वहाँ की प्रजा सुखी नहीं रह सकती। भारतेन्दु हरिचंद्र के प्रहसन अँधेर नगरी का यही संदेश है। अंक दो, चार, पाँच और छह तो विशेष रूप से बच्चों को आकर्षित करते हैं। इसमें छह अंक हैं। अनेक बार विभिन्न मचों पर इसका अभिनय होता रहा है।

अँधेर नगरी में बाजार का बड़ा सजीव वर्णन है। चना बेचने वाले और चूरन बेचने वाले का रोचक चित्रण इस प्रकार है

चना बनावै घासीराम,
जिनकी झोली में दूकान चना चुरमुर चुरमुर बोले, बाबू खाने को मुह खोले
चना खावै तौकी मैना, बोले - अच्छा बना चबैना
चना खायँ गफूरन मुन्ना, बोले और नहीं कुछ सुन्ना
चना खाते सब बंगाली, जिनकी धोती ढीली-ढाली
चना खाते मियाँ जुलाहे, दाढ़ी हिलती गाहे बगाहे
चना हाकिम सब खा जाते, सब पर दूना टिकस लगाते
चना जोर गरम-टके सेर।

चूरन वाले का सुंदर लटका यों हैं --
चूरन अमलबेद का भारी, जिसको खाते कृष्ण मुरारी
मेरा पाचक है पचलोना, जिसको खाता श्याम सलोना चूरन बना मसालेदार, जिसमें खट्टे की बहार
मेरा चूरन जो कोई खाए, मुझको छोड़ कहीं नहिं जाए चूरन साहब लोग जो खाता सारा हिंद हजम कर जाता
चूरन पुलिस वाले खाते,
सब कानून हजम कर जाते , ले चूरन का ढेर - बेचा टके सेर

सौ वर्ष से अधिक हो जाने पर भी इसके व्यंग्य और सीख में कोई कमी नहीं आई। मनोरंजन के साथ ही, आज के प्रशासन को सचेत करने में इसका प्रभाव धूमिल नहीं पड़ा है।

विशेष तथ्य -

इसमें छः अंक व छ: दृश्य हैं।
छ: दृश्य क्रमानुसार है
बाह्य दृश्य-बाजार-जगंल-राजसभा-अरण्य श्मशान

- रचनाकाल - 1881 ई. ।
- यह एक मौलिक प्रहसन नाटक है।
- यह मौलिक नाटक है एवं एक ही रात में लिखा गया नाटक है।
- यह व्यंग्य प्रधान नाटक है।
- इसमें अंग्रेजी शासन की दुर्व्यवस्था और न्याय के ढोंग को चित्रित किया गया है। - मूल्यहीन शासन व्यवस्था का चित्रण |

- नाटक के अंत में राजा को फाँसी होती है।

पात्र परिचय -

महंत-गुरु

नारायण दास व गोबर्धनदास (महंत के शिष्य)।

कबाबवाला,घासीराम,नारंगीवाला,चुरनवाला,कल्लू राजा,मन्त्री,भिस्ती।

7. एक और द्रोणाचार्य (शंकर शेष)

प्रकाशन - 1971 ई.

कुल - 2 अंक व 11 दृश्य

नाटक के पात्र -

पुरुष पात्र - अरविन्द, विमलेन्दु, कालिदास-महेंद्र नथानी

स्त्री पात्र - ललिता, यदू, अनुराधा ।

विशेष तथ्यः

- गुरु और शिष्य के रिश्तों में टकराव ।
- द्रोणाचार्य के रूप में वर्तमान विसंगति का चित्रण।
- अध्यापक के अस्तित्व की समस्या ।
- भ्रष्टाचारी शिक्षण व्यवस्था ।
- पौराणिक व आधुनिक कथा का मेल |
- शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त अनाचार |
- वर्तमान युगीन व्यवस्था से पीडित शिक्षक की विडम्बना।

विशेष :

- पौराणिक कथा में द्रोणाचार्य और एकलव्य की कथा है। ।
- इसमें आधुनिक व पौराणिक कथाएँ समानान्तर चलती है।

सारांश -

इस नाटक के द्वारा वर्तमान शिक्षा जगत में व्याप्त भ्रष्टाचार, पक्षपात, राजनीतिक घुसपैठ, आर्थिक एवं सामाजिक दबावों के चलते निम्न मध्यवर्गीय व्यक्ति के असहाय, बेबस चरित्र को उद्घाटित करना नाटककार का मुख्य लक्ष्य है।

महाकवि व्यास द्वारा रचित प्राचीनतम पौराणिक ग्रंथ महाभारत अपने आप में भारतीय संस्कृति का ज्वलंत उदाहरण है। महाभारत यह आथाह कथासागर के समान है जिसमें डूबकर आधुनिक लेखक गोताखोर के रूप में मौलिक चीजों की ढूँढ़ने में सफल होते रहे हैं। इस पौराणिक कथा में आधुनिक समस्याओं का हल ढूँढ़ने का स्त्युत्य प्रयास करते हैं। नाटककार शेष की सर्वाधिक श्रेष्ठ कृति 'एक और द्रोणाचार्य' में महाभारत

कालीन प्रसिद्ध पात्र द्रोणाचार्य के जीवन प्रसंगों को आधार बनाकर वर्तमान विसंगति को रुपायित किया गया है।
एक और द्रोणाचार्य समानान्तर स्थितियों का सुसम्बद्ध नाटक है। इसमें एक ओर अरविंद उसका परिवार और कॉलेज के प्रसंग है, तो दूसरी और द्रोणाचार्य उसका परिवार और उससे सम्बद्ध महाभारतकालीन प्रसंग। "इस नाटक का उद्देश्य केवल पौराणिक गाथा को दोहराना नहीं रहा है किन्तु उसके माध्यम से किसी सूक्ष्म से सूक्ष्मतर मानवीय सत्य को । खोजना है। मानव के अंतस में गहन अंधेरे में पैठकर उस बिंदु को छूकर एक ऐसी हलचल मचा देना है जिस से व्यक्ति उन पौराणिक घटनाओं को नये संदर्भो में देखने, समझने और स्वीकार करने की कोशिश करें।" डॉ. शेष कृत 'एक और द्रोणाचार्य' दोहरे कथाप्रसंगों को लेकर चलनेवाला आधुनिक चेतना का प्रभावशाली प्रयोगशील नाटक है।

डॉ. शंकर शेष स्वयं एक अध्यापक थे। वे शिक्षा व्यवस्था में जुड़े होने के कारण उन्होंने शिक्षा व्यवसाय में व्याप्त अनाचार एवं गैर सरकारी कॉलेज में अध्यापन कार्य करने वाले अध्यापक का अन्तर्द्वन्द्व, उनकी विवशता उसकी मानसिकता, उसकी नपुंसकता को नजदीक से देखा था, भोगा था। इसी का यथार्थ चित्रण आलोच्य नाटक में हुआ है। इस नाटक में मूलतः दो समस्याओं को उठाया गया है। एक शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त अनाचार और दूसरी समस्या है वेतनभोगी मध्यम वर्ग में जीवन जीनेवाले अध्यापक के अस्तित्व की समस्या है।

पौराणिक कथा का नायक द्रोणाचार्य पांडित्य और कौशल्य के बावजूद घर-गृहस्थी चलाने में असफल है। उसका परिवार अभाव की जिंदगी जीने के लिए विवश है। उसका बालमित्र द्रुपद भी उसे अपमानित कर देता है, ऐसी आर्थिक विपन्नता की स्थिति में वह भीष्म के कहने पर राजगुरु का पद ग्रहण कर लेता है। कृपी द्रोणाचार्य को समझाते हुए कहती है - "अनाज और कपड़े की समस्याएँ हमेशा के लिए मिट जाएगी। कुछ सम्मान से रह सकेंगे और द्रुपद से बदला भी ले सकोगे।" इस प्रकार द्रोणाचार्य अन्न का दास बन जाता है। वह व्यवस्था को बनाये रखने के लिए एकलव्य पर अन्याय करता है, साथ ही द्रोपदी के वस्त्रहरण से समय मौन रहता है। व्यवस्था के खिलाफ आवाज नहीं उठाता। आधुनिक जीवन में अरविंद द्रोणाचार्य का रूप है। वह गैर सरकारी कॉलेज में प्राध्यापक है। अपने सिद्धांतों का पक्का है परन्तु उसकी पत्नी लीला उसका मित्र, कॉलेज का प्राचार्य एवं कॉलेज का अध्यक्ष सब मिलकर उसे सुविधा का, भौतिक वस्तुओं का लालच देकर उसे असमंजस्य में डाल देते है और उसके इस नपुंसकत्व का शिकार बनती है - अनुराधा। उसे अरविंद से न्याय नहीं मिलता और वह आत्महत्या कर लेती है।

इस प्रकार अरविंद और द्रोणाचार्य के समस्या एवं संघर्ष के धरातल पर समानता दिखाई देती है। यहाँ नाटककार ने अरविंद को 'एक और द्रोणाचार्य' साबित किया है - तू किस बात का प्रोफेसर ? तू द्रोणाचार्य है। व्यवस्था और सत्ता के कोडो से पिटा हुआ द्रोणाचार्य - इतिहास की धार में लकडी को ढूँठ की तरह बहता हुआ, वर्तमान के कगार से लगा हाँ, तू द्रोणाचार्य है। एक और द्रोणाचार्य ।" । __ अतः कहा जा सकता है

कि लेखक ने इस नाटक के माध्यम से वर्तमान युगीन व्यवस्था से पीडित शिक्षक की विडम्बना को दर्शाते हुए उसकी नपुंसक बुद्धिवादिता का यथोचित चित्रण किया है।

प्रस्तुत नाटक दो भागों में विभाजित किया गया है। एक पूर्वार्ध और उसका उत्तरार्ध । नाटक के पूर्वार्ध में कुल-मिलाकर चार दृश्य अंकित किये गये हैं। नाटक के उत्तरार्ध में कुल सात दृश्यों का समावेश हैं। दृश्यसज्जा सरल है। चरित्र चित्रण की दृष्टि से नाटक सफल है। नाटक में अधिक पात्र होने पर भी एक समय में चार से अधिक पात्र मंच पर उपस्थित नहीं होते। नाटक के संवाद एवं भाषा नाटकीय गुणों से युक्त है। "एक और द्रोणाचार्य कथ्य और शिल्प की नवीनता को लेकर उपस्थित होने वाला ऐसा प्रयोगशील नाटक है, जिसमें मंचन की पर्याप्त संभावनाएँ निहित है। निर्देशक के लिए अनेक सूप्त संकेतों से युक्त यह नाटक स्वातंत्र्योत्तर नाटक के इतिहास ये शिल्प और शैली वैचित्र्य के कारण एक अलग व्यक्तित्व धारण करता है। इसके प्रयोग गोरखपुर, गाजियाबाद, दिल्ली, इंदौर, भोपाल, बंबई, कलकत्ता आदि महानगरों में हो चुके हैं। कलकत्ता की 'अनामिका' नाट्य संस्था ने इसे सन् 1975 में श्रेष्ठ नाट्यकृति घोषित किया।

इकाई 8 नाटक सारांश व महत्वपूर्ण तथ्य पार्ट 2

8. सिन्दूर की होली- लक्ष्मीनारायण मिश्र

"सिन्दूर की होली" का कथा चिरंतन नारीत्व की समस्या पर आधारित है, इसके प्रेम का आधार प्रथम दर्शन और प्राकृतिक आकर्षण है। रजनीकांत यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से कहीं भी इस नाटक में नहीं आता, फिर भी नाटक के मूल समस्या का और मनोद्वन्द्व का वहीं एकमात्र आधार है। नाटककार ने रजनीकांत के माध्यम से नाटक की समस्त कथाओं को संबद्ध कर दिया है। इस नाटक की कथावस्तु में मुख्य और उपकथा का कोई अंतर दृष्टिगत नहीं होता, क्योंकि रिखत के माध्यम से संयुक्त उकपकथा मुख्य कथा का ही कारण है और इसी आधार पर मुख्य कथा का नियोजन हुआ है।

'सिन्दूर की होली' के दो पात्र - मनोरमा और चन्द्रकान्ता एक-दूसरे के विरोधी है। मनोरमा वैधव्य का समर्थन करती है। चन्द्रकान्ता रोमांटिक प्रेम का। मनोरमा का विधवा-विवाह का विरोध स्वयं बुद्धिवाद का विरोध करने लगता है। रोमांटिक चन्द्रकान्ता का तर्क बुद्धिवाद हो जाता है।

विशेष :

प्रकाशन - 1934 ई. -

यह एक समस्या प्रधान नाटक है।

पात्र परिचय - मुरारीलाल (डिप्टी कलेक्टर)

रजनीकांत (भगवंतसिंह का भतीजा)

भगवंतसिंह

मनोज कुमार

माहिर अली (मुंशी)

मनोरमा (विधवा महिला जो मुरारीलाल के साथ रहती है, मुरारीलाल उससे प्रेम करता है।)

चन्द्रकान्ता (मुरारीलाल की बेटी)

विषय वस्तु :

- निस्वार्थ और आदर्श प्रेम का चित्रण |
- साधन/शक्ति संपन्न वर्ग की मानसिकता।
- रोमाटिक भावुकता और यथार्थ बुद्धिवाद में टकराहट का चित्रण। ।
- जैसे कर्म,वैसे फल की अभिव्यक्ति । ।
- भ्रष्टाचारी कानून व्यवस्था का चित्रण | /
- विधवा महिला का चित्रण ।
- यह नाटक तीन अंकों में विभाजित है प्रमुख कथन:

मनोरमा: कला की साधना अपने नाम के विचार से नहीं होती |

मनोरमा: पुरुष के लिए प्रायश्चित करना पड़ता है स्त्री को "स्त्री जीवन का सबसे सुंदर और सबसे कठोर सत्य है"

मनोज कुमार: प्रेम करना विशेष स्त्री के लिए कभी बुराई नहीं, स्त्री जाति की स्तुति केवल इसलिए होती है कि वह प्रेम करती है |

चन्द्रकला: मेरे भीतर आज निरंतर नारीत्व का उदय हुआ है ,मेरी चेतना आज मेरे चारों ओर फैल रही है।

मनोरमा: कला की भावना किसके अंदर नहीं होती,शिक्षा और कला का संबंध कुछ नहीं है, कला का आधार तो विश्वास और शिक्षा का संदेह इन दोनों को एक ही साथ रख देना |

मनोरमा: पुरुष का सबसे बड़ा रोग स्त्री है और स्त्री का सबसे बड़ा रोग पुरुष है ,यह रोग तो मनुष्यता का है

9. महाभोज (1983 ई.)- मन्नू भंडारी

महाभोज उपन्यास का ताना-बाना सरोहा नामक गाँव के इर्द-गिर्द बुना गया है। सरोहा गाँव उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग में स्थित है जहाँ विधान सभा की एक सीट के लिए चुनाव होने वाला है। कहानी बिसेसर उर्फ बिसू की मौत की घटना से प्रारंभ होती है। सरोहा गाँव की हरिजन बस्ती में आगजनी की घटना में दर्जनों व्यक्तियों की निर्मम हत्या हो चुकी थी। बिसू के पास इस हत्याकाण्ड के प्रमाण थे जिन्हें वह दिल्ली जाकर सक्षम प्राधिकारियों को सौंपना और बस्ती के लोगों को न्याय दिलाना चाहता था। किंतु राजनीतिक षडयंत्र द्वारा बिसू को ही जेल में डाल कर इस प्रतिरोध को कुचल देने का प्रयास किया जाता है। बिसू की मौत के पश्चात उसका साथी बिंदेश्वरी उर्फ बिंदा इस प्रतिरोध को जिंदा रखता है। बिंदा को भी राजनीति और अपराध के चक्र में फंसाकर सलाखों के पीछे डाल दिया जाता है। अंततः नौकरशाही वर्ग का ही एक चरित्र पुलिस अधीक्षक सक्सेना वंचितों के प्रतिरोध को जारी रखता है। जातिगत समीकरण किस प्रकार भारतीय स्थानीय राजनीति का अनिवार्य अंग बन गये हैं उपन्यास की केंद्रीय चिंता है। पिछड़ी और वंचित जाति के लोगों के साथ

अत्याचार और प्रतिनिधि चरित्रों द्वारा उसका प्रतिरोध कथा को गति प्रदान करता है। भंडारी ने नाटक में नैतिकता, अंतर्द्वद्व, अंतर्विरोध से जूझते सत्ताधारी वर्ग, सत्ता प्रतिपक्ष, मीडिया और नौकरशाही वर्ग के अवसरवादी चरित्र पर व्यंग्यात्मक टिप्पणी की है

महाभोज में विशेष तौर पर राजनीतिक उथल पुथल के कारण निम्न वर्ग की पीड़ा सामने आती है।सन् 1979 में लिखा गया मन्नू भंडारी का यह पहला राजनीतिक उपन्यास है। जिस समय स्त्रियों के लिए घर की देहरी लांघना मुश्किल था ऐसे समय में मन्नू भंडारी द्वारा महाभोज लिखना किसी क्रांति से कम नहीं था। मन्नू भंडारी ने राजनीति के क्षेत्र में जिस स्याही से लिखा उसके निशान समकालीन लेखिकाओं के लेखन में भी दिखलाई पड़ते हैं। अब स्त्री सिर्फ घर-गृहस्थी तक ही सीमित होकर नहीं लिख रही अपितु उनका क्षेत्र काफी विस्तृत हो चुका है।

उपन्यास की शुरुआत बिसेसर की हत्या से होती है। बिसेसर उर्फ़ बिसू सरोहा गाँव का दलित युवा था। शोषित, पीड़ित, दमित एवं वंचितों को न्याय दिलाना ही उसके जीवन का ध्येय था। बिसू की प्रसिद्धि इसलिए भी थी क्योंकि उसने हरिजन बस्ती में आग लगाकर लोगों को जिंदा जला देने वाले अपराधियों को सजा दिलाने का भी दृढ़ संकल्प लिया था। ईमानदार, कर्तव्यनिष्ठ एवं दृढ़ संकल्पी बिसेसर को भ्रष्ट लोकतांत्रिक प्रणाली का शिकार होना पड़ता है। एक ऐसी प्रणाली जिसमें ऊपर से देखने पर सब स्याह और सफेद है लेकिन भीतर गहराई में ढेरों इंसानरूपी खूनी गिद्ध ताक में बैठे हुए हैं जो कभी भी किसी भी वक्त हमला कर सकते हैं। उपन्यास की शुरूआती पंक्ति में ही लेखिका ने ऐसे इंसानरूपी गिद्धों की ओर हमारा ध्यान खींचा है- लावारिस लाश को गिद्ध नोंच-नोंचकर खा जाते हैं।

यहाँ पर लावारिस लाश का गिद्धों द्वारा नोंच-नोंचकर खाना भ्रष्ट नेताओं के द्वारा बिसेसर की हत्या करना है।

बिसेसर की हत्या सिर्फ एक दलित युवक की हत्या नहीं थी वरन उस लोकतांत्रिक प्रणाली की हत्या थी जिसमें शिक्षा व समानता जैसे अधिकारों को शामिल करने की आदर्श बातें की जाती रही है क्योंकि किसी भी देश या समाज में विकास की नींव रखने के लिए इन। दोनों (शिक्षा और समानता) का होना बेहद जरूरी माना गया है। यदि हम शिक्षा पर बात करें तो किसी भी समाज या जाति के उत्थान के लिए शिक्षा महत्त्वपूर्ण कारक मानी गयी है। शिक्षा के बिना कोई भी व्यक्ति अपने अधिकारों को प्राप्त कर पाने में अक्षम होता है अर्थात् शिक्षा ही वह बूटी है जिसके लेप से अज्ञानतारूपी कोढ़ दूर होता है और हम ज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। शिक्षा प्रदत्त ज्ञान ही हमारे भीतर समानता और असमानता आदि व्यवहार को निर्मित करता है लेकिन जब यही शिक्षा असमानता की दृष्टि से मृत्यु का कारण बनती है तो समाज के सामने एक बड़ा प्रश्न खड़ा होता है। महाभोज का बिसू बिसेसर पढ़ा लिखा युवक था। जब वह शहर से गाँव आता है तब सभी दलित भाइयों को शिक्षित करने का जिम्मा उठाता है। वह एक स्कूल भी खोलता है साथ ही घर-घर जाकर सभी को पढ़ाता भी है। डॉ. आंबेडकर के सिद्धांत (शिक्षित बनो संघठित रहो और संघर्ष करो) को अपने जीवन में आत्मसात करते हुए बिसू दलितोत्थान के लिए सदैव तत्पर रहता है। उसका यही आन्दोलनकारी रूप सरोहा गाँव के समस्त दलित समाज के लिए प्रेरणादायक है। लेकिन गाँव की कुछ शोषक

शक्तियों के आगे बिसेसर का शिक्षित होना उतना ही बड़ा अभिशाप बनकर सामने आता है जितना कि उसका दलित होना। अपने इस उपन्यास के माध्यम से मन्नू भंडारी ने ऐसी कुत्सित एवं कुंठित राजनीति को उजागर किया है जिसमें चारों तरफ सत्ता (सिंहासन) को हथियाने की होड़ मची हुई है। सत्ता हासिल करने की यह आपसी होड़ एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक ही सीमित नहीं है वरन समाज को भी बड़ी मात्रा में इसका खामियाजा भुगतना पड़ता है। चुनावी प्रक्रिया के दौरान वर्षों से बैठे भूखे नेता गरीबों को झूठे आश्वासन देते फिरते हैं। उनसे बड़े-बड़े वायदे कर उन्हीं के कन्धों पर अपनी राजनीतिक बंदूकें चलाते हैं। इतना ही नहीं अपनी स्वार्थसिद्धि के चलते ये भ्रष्ट नेता गरीबों एवं निचली जातियों को ही वोट बैंक के रूप चुनते हैं। उनकी यहीं धोखेबाजी प्रवृति गरीबों को ओर अधिक गरीब बनाती है। ऐसी ही जालसाजी प्रवृति का प्रतीक है सुकुल बाबू। जो पिछले चुनावों में हारने के बाद राजनीति से संन्यास लेने का वायदा कर चुके थे- वैसे पिछले चुनाव में हारने के बाद सुकुल बाबू ने बाकायदा ऐलान कर दिया था कि वे अब सक्रिय राजनीति से संन्यास ले लेंगे और जीवन के बचे हुए दिन जनता की सेवा में ही बिताएंगे। पर पहला अवसर आते ही वे फिर लपक लिए। क्या करते पद से उतरने के तुरंत बाद उन्होंने यह महसूस किया कि जनता की सच्ची सेवा उच्च पद पर बैठकर ही की जा सकती है

भ्रष्ट नेताओं द्वारा फैलाई गयी भ्रष्ट राजनीति के इस दुरंगेपन को लेकर रजनी गुप्त लिखती है नेताओं की खोखली नारेबाजी कुत्सित इरादे और दमघोंटू साजिशों की अंतहीन सच्चाइयों को पूरी बेबाकी से चीरते महाभोज की प्रासंगिकता आज भी बहुत जरूरी हस्तक्षेप है जो
चमकते-चिकने चेहरों को समझने के लिए सार्थक बयान करते हुए आमजन की विवशता और उनकी असहाय स्थितियों का जीवंत दस्तावेज बन जाता है।

नाटक में अभिव्यक्त वोट की इस राजनीति में दलितों के साथ जो अमानवीय अत्याचार होते हैं वे इस बात को पूर्णत: सिद्ध करते हैं कि शक्तिशाली हमेशा अपने से दुर्बल पर काबिज होकर अपनी श्रेष्ठता के प्रतिमान गढ़ता आया है। तथा कमजोर अपने इसी दुर्बलता के कारण भय के माहौल में जीवन जीता रहा है। इसी भय को लेकर नमिता सिंह लिखती है महाभोज के दलित और अभावग्रस्त लोग आज भी आतंक के साये में जी रहे हैं। वे मनुष्य नहीं केवल वोटर हैं। उचित मजदूरी का सवाल तो अलग रहा यदि वे बाहुबलियों के कहने से वोट नहीं देते तो उन्हें तरह-तरह से प्रताड़ित ही नहीं किया जाता उनके घर भी जला दिए जाते हैं। इतना आतंक कि कोई गवाही देने को तैयार नहीं होता। पुलिस भी पीड़ितों का ही उत्पीड़न करती है।

चुनाव के समय बिसू की हत्या से मिले मौके को दोनों नेता (सुकुल बाबू और दा साहब) अपने हाथ से नहीं जाने देना चाहते क्योंकि बिसू की मौत उनके लिए किसी सफलता की सीढ़ी से कम नहीं। दोनों नेता बिसू की हत्या के मामले पर अपनी हमदर्दी जताकर समस्त दलित वर्ग के वोट को अपनी-अपनी झोली में डालने पर उतारू हैं। बिसू का मित्र बिंदा जिसके ऊपर बिसू की हत्या का सबसे गहरा आघात पहुँचा है वह इन नेताओं की ढोंगी प्रवृति को भलीभांति जानता है तथा भाषण के बीच में ही उठकर चीख-चीखकर बोलता है-

कहाँ रखा है पद-वद! भूल जाइए अब सब। विरोधी दल के नेता इस घटना को ऐसा भुनाएँगे कि हम सब तापते ही रह जाएँगे। यह बिसू की नहीं समझ लीजिए एक तरह से मेरी हत्या हुई है मेरी।

बिसू का प्रतिरोधी स्वर बाद में बिंदा में साफ दिखलाई पड़ता है। बिंदा का संघर्ष इस भ्रष्ट सत्ता के साथ-साथ उसकी पैरवी करने वाली क़ानूनी व्यवस्था के खिलाफ भी है जो गरीब जनता की फरियाद को हमेशा अनसुनी करके अपनी मनमानी करती आई है। पुलिस प्रशासक सक्सेना जब बिंदा से बिसू की मौत का प्रमाण मांगता हैं और पुलिस की मदद करने के लिए उसे कहता है तब वह बड़े ही विरोधी स्वर में सक्सेना को जवाब देता है कुछ नहीं करेगी यहाँ की पुलिस कभी कुछ नहीं करेगी। करना होता तो पहले ही नहीं करती कानून और पुलिस के हाथ तो बहुत लंबे होते हैं! केवल गरीबों को पकड़ने के लिए लेखिका ने यहाँ बिंदा के माध्यम से आज की मौजूदा प्रणाली पर प्रश्न चिन्ह खड़े किये हैं। न्यायपालिका से लेकर कार्यपालिका तक ऐसी कोई भी संस्था नहीं जिसमें मिलावट न हो। यही कारण है कि आज हर जगह अन्याय अत्याचार की ही तस्वीरें दिखलाई पड़ रही है जो कि भविष्य के लिए किसी अंधकार से कम न होगी। महाभोज की प्रसंशा करते हुए उपन्यास के प्रसिद्ध मर्मज्ञ मधुरेश हिन्दी उपन्यास का विकास में लिखते हैं मन्नू भंडारी का महाभोज अंतर्वस्तु के विस्तार का एक विस्मयकारी और अभूतपूर्व उदाहरण है। महिला-लेखक और लेखन की परम्परागत छवि को वह एक झटके से ध्वस्त करता है।

भारतीय राजनीति के अमानवीय चरित्र पर इससे तीखी टिप्पणी मुश्किल है। कमलेश्वर के काली आँधी के साथ रखकर इस अंतर को आसानी से समझा जा सकता है। भारतीय समाज में राजनीतिक जीवन में घुसपैठ करती मूल्यविहीनता और तिकड़म को महाभोज गहरी सलंग्नता के साथ उद्घाटित करता है। आज राजनीतिक व्यक्ति समाज और साहित्य का सबसे बड़ा खलनायक है। दा-साहब के दोहरे व्यक्तित्व को उनके अंदर के शैतान और ऊपर के सत-रूप को मन्नू भण्डारी ने आश्चर्यजनक विश्वसनीयता से साधा है। बिसेसर बिंदा और हीरा उस दलित वर्ग के प्रतिनिधि पात्र हैं जिनके शव पर राजनीति के गिद्ध जीम रहे हैं। धर्म की राजनीति का भी मन्नू भंडारी ने महाभोज में बड़ी ही बेबाकी से पर्दाफाश किया है। आज धर्म को आधार बनाकर राजनीति करने वाले नेताओं एवं साधुजनों की कमी नहीं है।

गली-कूचों से लेकर मंदिरों तथा बड़े-बड़े भव्य समारोह में आसानी से ऐसे सिद्धस्थ नेताओं के दर्शन होना आम बात है। ये सिद्धस्थ नेता धार्मिक मुखौटा पहनकर जनता के बीच हर दिन गंदी राजनीति का न सिर्फ खेल खेलते हैं अपितु उन्हें (जनता) भरमाकर सहयोग प्राप्त करने में सिद्धस्त होते हैं। धर्म के इस विशाल बाजार में हर रोज अमानवीयता के तराजू पर मानवीयता को तोला जाता है। महाभोज के दा साहब इसी धर्म का मुखौटा पहनकर अपनी घिनौनी राजनीति को अंजाम देते हैं। वे न सिर्फ लोगों में गीता जैसे धार्मिक ग्रन्थ के उपदेश देते हैं बल्कि सभी के घरों में गीता की एक-एक प्रति भी बंटवाते हैं। उनका इस कदर गीता प्रेमी होना धार्मिक राजनीति को ही मुख्य रूप से प्रचारित-प्रसारित करना होता है। एक तरफ दा साहब गीता के माध्यम से धार्मिक आदर्शों पर चलने की बात करते हैं तो दूसरी तरफ बिसू के मित्र बिंदा की गिरफ्तारी का जो षडयंत्र रचते हैं उससे उनका पाखंडी व्यक्तित्व सामने आता है।

प्रस्तुत उद्धरण द्वारा दा साहब की धर्म की इस राजनीति को लेखिका ने स्पष्ट रूप से उजागर किया है- मेरे लिए राजनीति धर्मनीति से कम नहीं। इस राह पर मेरे साथ चलना है तो गीता का उपदेश गाँठ बाँध लो- निष्ठा से अपना कर्त्तव्य किये जाओ बस। फल पर दृष्टि ही मत रखो। फिर एक क्षण ठहरकर पूछा पढ़ते हो गीता या नहीं पढ़ा करो। चित्त को बड़ी शांति मिलती है।
आज राजनीति को धर्मनीति से जोड़ने वाले नेताओं की तादाद बहुत अधिक बढ़ गयी है। आए दिन समाचारों में साम्प्रदायिक दंगे हत्या बलात्कार जैसी घटनाएं विषय बनी हुई है। जिसका महाभोज के बिंदा और सक्सेना की भांति घातक परिणाम हम सभी को भुगतना पड़ रहा है।

अतः यह कहने में कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी कि मन्नू भंडारी का महाभोज नाटक अपने नाम को पूरी तरह से सार्थकता प्रदान करता है। महाभोज अर्थात् बड़ा भोज बड़ा आयोजन। जिसमें खाने के लिए बड़े-बड़े लोग आमंत्रित किये जाते हों। किन्तु यहाँ पर बड़ा भोज किसी खाने विशेष को न लेकर व्यक्ति वर्ग की अस्मिता से जुड़ा है। महाभोज में मन्नू भंडारी ने राजनीति के न सिर्फ एक रूप को दर्शाया है अपितु अपने प्रयासों के माध्यम से उन्होंने ऐसी चीजों को भी उजागर किया है जो सहज नहीं है।

विशेष तथ्यः

- महाभोज उपन्यास का ताना-बाना सरोहा नामक गाँव के इर्द-गिर्द बुना गया है।
- नाटक में नैतिकता, अंतर्द्वद्व, अंतर्विरोध से जूझते सत्ताधारी वर्ग, सत्ता प्रतिपक्ष, मीडिया और नौकरशाही वर्ग के
- अवसरवादी चरित्र पर व्यंग्यात्मक टिप्पणी की है
- महाभोज के दा साहब धर्म का मुखौटा पहनकर अपनी घिनौनी राजनीति को अंजाम देते हैं।

त्य चैनल

पात्र- परिचयः

बिसेसर उर्फ़ बिसू (मुख्य पात्र)
हीरा (बिसू के पिता)
बिंदेश्वरी प्रसाद उर्फ बिंदा
रुक्मा (बिंदा की पत्नी)
दा साहब (मुख्यमंत्री, गृह मंत्रालय का प्रभार भी)
सदाशिव अत्रे (सत्ताधारी पार्टी के अध्यक्ष)
जोरावर (स्थानीय बाहुबली और दा साहब का सहयोगी)
सुकुल बाबू (सत्ता प्रतिपक्ष पूर्व मुख्यमंत्री और सरोह गाँव की विधानसभा सीट के प्रत्याशी)
लखनसिंह (सरोहा गाँव की सीट से सत्ताधारी पार्टी का प्रत्याशी दा साहब का विश्वासपात्र)
लोचन भैया (सत्ताधारी पार्टी के असंतुष्ट विधायकों के मुखिया)
सक्सेना (पुलिस अधीक्षक)

दत्ता बाबू (मशाल समाचार पत्र के संपादक)

प्रमुख तथ्यः

- आम जनता की त्रासदी।
- बिकाऊ मिडिया का चित्रण।
- सत्य और ईमानदारी को दबाना।
- हरिजन/ गरीब जनता दयनीय स्थिति का चित्रण |
- राजनीति के षड्यंत्र दांवपेच और हथकंडे का चित्रण ।
- भ्रष्टाचारी पुलिस यंत्रणा ।
- गरीब जनता को फँसाना ।

10.आधे-अधूरे (मोहन राकेश)

आधे-आधूरे पारिवारिक जीवन के विघटन की गाथा है। इसके विषय में महेश आनंद का कथन है कि -यह नाटक विघटित होते हुए मध्यवर्गीय परिवार में व्याप्त कुंठाजन्य घुटन और उससे मुक्त होने की विवशता को पेश करता है। इसी के माध्यम से राकेश ने स्त्री-पुरुष के संबंधों के असामंजस्य के प्रश्नों को भी उभारा है।

मोहन राकेश का नाटक आधे-अधूरे एक मध्यमवर्गीय परिवार की आंतरिक कलह और उलझते रिश्तों के साथ-साथ समाज में स्त्री-पुरुष के बीच बदलते परिवेश तथा एक-दूसरे से दोनों की अपेक्षाओं को चित्रित करता है।

महेन्द्रनाथ बहुत समय से व्यापार में असफल होकर घर पर बेकार बैठा है और उसकी पत्नी सावित्री नौकरी करके घर चलाती है। कई तरह की परिस्थितियों और अपने-अपने स्वभाव के कारण दोनों एक दूसरे से नफरत करते हैं मगर फिर भी सामाजिक, पारिवारिक और रूढ़िगत ढांचों में कसे रहने के कारण साथ रहने को मजबूर हैं। महेन्द्रनाथ और सावित्री का एकदूसरे से घृणा करते हुए भी साथ रहना भारतीय समाज में व्याप्त रूढ़िगत विवशताओं को ज़ाहिर करता है जिसके चलते स्त्री तो क्या पुरुष-प्रधान समाज का एक पुरुष भी शादी जैसे बंधन को तोड़ पाने में खुद को असमर्थ पाता है।

सावित्री को महेन्द्रनाथ हमेशा से दब्बू व्यक्तित्वहीन और उस पर निर्भर रहने वाला बेकार आदमी नज़र आता है जिसका उसकी नज़रों में कोई सम्मान नहीं है। वह अपने लिए या जीवन बिताने के लिए एक ऐसे आदमी की अपेक्षा अपने जीवनसाथी के रूप में नहीं करती। इसलिए उससे कटती जाती है और लगातार किसी ऐसे पूर्ण आदमी की तलाश करती रहती है जो उसकी सारी कसौटियों पर खरा उतर सके किन्तु ऐसा आदमी उसे कहीं नहीं मिलता। कभी-कभी ऐसे आदमी की कुछ विशेषताओं को किसी व्यक्ति में पाकर वह दूसरों की तरफ आकर्षित होती है किन्तु समय बीतने पर कुछ-न-कुछ कमी पाकर सदैव निराश होती है। सावित्री का इस प्रकार अपने पति से मिली निराशा के फलस्वरूप बाहर एक पूर्ण आदमी की लगातार तलाश करना स्त्रियों की अपने जीवन को लेकर एक नयी आत्मकेंद्रित मनोवृत्ति का भी प्रतीक है।

दूसरी और महेन्द्रनाथ को लगता है कि सावित्री सदैव उस पर हावी होने की तथा उसे अपमानित करने की कोशिश करती है। वह हमेशा उसे नियंत्रित करना चाहती है। वह बार-बार उससे दूर जाने की कोशिश करता है परन्तु उस पर इस प्रकार निर्भर है कि उसे हर बार लौट आना पड़ता है।

दोस्तों का चहेता और हँसमुख महेन्द्रनाथ सावित्री से शादी करने के बाद व्यापार में लगातार असफल होकर, मारने-पीटने वाला, पत्नी के परिचितों-प्रेमियों के घर आने पर घर से चले जाना वाला एक हारा हुआ व्यक्ति बन गया है। सबसे अपमानित होकर वह अपने बचपन के मित्र जुनेजा के यहाँ जाता है कि कभी घर नहीं लौटेगा। किन्तु अंत में ब्लडप्रेशर की बुरी हालत में ही वापस लौट आता है। वह न सावित्री के साथ रह सकता है न ही अलग।

कह सकते हैं कि दोनों को किसी दूसरे साथी की तलाश है। दोनों अपने में अभी आधे से हैं अधूरे हैं और उनका वर्तमान साथी इस अधूरेपन को कम नहीं करता बल्कि इस एहसास को और अधिक बढ़ा देता है।
यह स्थिति अपने आप में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों का एक त्रासद रूप है। नाटककार की दृष्टि से देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि किसी भी परिस्थिति में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में कभी कोई सामंजस्य या स्थायी तालमेल हो ही नहीं सकता। स्त्री-पुरुष सम्बन्ध एक ऐसा अंतर्विरोध लेकर आगे बढ़ते हैं जहाँ साथ रहना भी मुश्किल है और अलग होना भी। दोनों को इसी प्रकार से एक आधा-अधूरा सा जीवन जीते रहने के लिए विवश होना पड़ता है।

यह स्थिति आधुनिक मध्यमवर्गीय समाज में स्त्री-पुरुष के बीच के सम्बन्धों में आए बदलाव को यथास्वरूप चित्रित करती है जहाँ महत्त्वाकांक्षाएं, आत्मकेंद्रित स्वभाव तथा आत्म-निर्भर न होने की स्थिति में वह रिश्ता जो जीवन का आधार होना चाहिए, एक बोझ बनकर रह जाता है और स्त्री-पुरुष आजीवन उस बोझ को ढोने के लिए खुद को विवश पाते हैं।

महेन्द्रनाथ और सावित्री के बीच के इस भावनात्मक अलगाव का मुख्य कारण उनकी आर्थिक स्थिति भी समझी जा सकती है। परन्तु नाटककार मोहन राकेश ने अन्य पात्रों के ज़रिए यह भी दर्शाया है कि पति-पत्नी के अलगाव और परिवार के टूटने का एकमात्र कारण हमेशा आर्थिक संकट ही नहीं होता। सावित्री की बेटी बिन्नी और उसके पति मनोज का वैवाहिक जीवन आर्थिक दृष्टि से अच्छा है फिर भी उनके बीच तनाव और उनके बीच के रिश्ते में आयी घुटन उपर्युक्त कथन को प्रमाणित करते नाटक में महेन्द्रनाथ के अलावा जुनेजा, शिवजीत, जगमोहन, मनोज और सिंघानिया का भी उल्लेख हुआ है। इन पात्रों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति महेन्द्रनाथ से काफी अलग थी और यही एक कारण माना जा सकता है कि सावित्री इन पात्रों में से कुछ के प्रति आकर्षित रही, परन्तु फिर भी एक ऐसा स्थायी सम्बन्ध बनाने में असक्षम रही जो उसकी अपूर्णता को ख़त्म कर पाता। इसी से पता चलता है कि मध्यमवर्गीय समाज का मनुष्य आजकल रिश्ते बनाते वक़्त तत्कालीन सुविधा खोजता है और जब वह सुविधा समाप्त हो जाती है तो इस रिश्ते के बने रहने का भी कोई कारण नहीं रहता। बड़ी तेजी से आते इस बदलाव में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध भी अपने रूप

और आकार बदल लेते हैं। यही कारण है कि आधे-अधूरे नाटक स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों में व्याप्त असफलताओं अपूर्ण महत्त्वकांक्षाओं, यौन कुंठाओं तथा भय, घृणा और आक्रोश को उजागर करता है।

पति-पत्नी के बीच मानसिक विच्छेद और कलह का असर उनके अन्य रिश्तों पर भी पड़ता है। महेन्द्रनाथ और सावित्री की बड़ी बेटी बिन्नी ने माँ के ही एक प्रेमी मनोज के साथ भागकर शादी कर ली लेकिन फिर भी दुखी और परेशान है। बेटा अशोक पिता की भांति बेकार है उसका नौकरी में मन नहीं लगता और वह अपना जीवन अभिनेत्रियों की तस्वीरों और अश्लील पुस्तकों के सहारे काट रहा है। छोटी बेटी भी इस वातावरण में बिगड़कर जिद्दी, मुँहफट तथा चिड़चिड़ी हो गयी है और उम्र से पहले ही यौन सम्बन्धों में रूचि रखने लगी है। इन सभी पात्रों के व्यवहार में महेन्द्रनाथ और सावित्री के कटु सम्बन्धों की छाप साफ़ नज़र आती है। अतः आधे-अधूरे नाटक यह भी दर्शाता है कि किस तरह स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों में आए बदलाव पारिवारिक ढाँचे और अन्य रिश्तों पर भी असर डालते हैं।

मध्यमवर्ग में जहाँ एक ओर स्वतंत्र, प्रगतिशील, मुक्त जीवन यापन की आकांक्षा है तो वहीं साथी पर निर्भरता और स्थायी रिश्तों की चाह भी है। और यही कारण है कि ये उलझे हुए रिश्ते कभी सुलझने की कोशिश में तो कभी मुक्त होने की छटपटाहट लिए हुए दिखायी देते हैं। मोहन राकेश का यह नाटक इन सम्बन्धों का एक सटीक चित्र प्रस्तुत कर स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को समझने का एक सफल प्रयास करता है।

महत्त्वपूर्ण तथ्य -

रचनाकाल - 1969 ई.(धर्मयुग पत्रिका में)।

विषय वस्तु -

- परिवार विघटन की समस्या। ।
- इसमें तीन अंक है।
- स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की त्रासदी का चित्रण। ।
- अर्थ एवं काम संबधी कुचक्र का चित्रण।
- मध्यमवर्गीय परिवार की आंतरिक कलह का चित्रण। /
- कुंठित युवा वर्ग की पीड़ा एवं पुरुष के अधुरेपन का चित्रण।

पात्र विवरण -

काले सूट वाला आदमी	-	पुरुष एक, पुरुष दो, पुरुष तीन और पुरुष चार की भूमिका में
स्त्री	-	सावित्री
बडी लडकी	-	बिन्नी
छोटी लडकी	-	किन्नी

लडका	-	अशोक
पुरुष एक	-	महेंद्रनाथ
पुरुष द	-	सिंघानिया सावित्री का बॉस (चीफ कमिश्नर)
पुरुष तीन	-	जगमोहन, सावित्री का प्रेमी, (अवसरवादी चरित्र)
पुरुष चार	-	जुनेजा
अन्य पात्र	-	मनोज (बडी लडकी का हमदर्द, जिसके साथ वह भाग जाती है।)

आधे -आधूरे नाटक के पात्र -

पुरुष पात्र - महेन्द्रनाथ, अशोक, सिंघानिया, जगमोहन जुनेजा

स्त्री पात्र - सावित्री, बिन्नी, किन्नी।

11 .आषाढ़ का एक दिन - मोहन राकेश '

आषाढ़ का एक दिन (1958 प्रथम नाटक) में महाकवि कालिदास की प्रसिद्धि से पूर्व की प्रेमिका मल्लिका के निर्व्याज प्रेम, आत्मसमर्पण एवं करुण अवसाद का मार्मिक चित्रण हुआ हैं। मोहन राकेश रचित आषाढ़ का एक दिन को आधुनिक युग का प्रथम नाटक भी कहा जाता है. इस नाटक का शीर्षक कालिदास की कृति मेघदूतम् की शुरुआती पंक्तियों से लिया गया है चूँकि आषाढ़ का महीना उत्तर भारत में वर्षा ऋतु का आरंभिक महीना होता है, इसलिए शीर्षक का अर्थ वर्षा ऋतु का एक दिन भी माना जा सकता है.

आषाढ़ का एक दिन महाकवि कालिदास के निजी जीवन पर आधारित है | आषाढ़ का एक दिन का परिवेश ऐतिहासिक है, परंतु उसमें आज की आधुनिक समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है | प्रस्तुत नाटक में कालिदास व्रती, तपस्वी, महात्मा नहीं हैं बल्कि दुर्बल और सामान्य व्यक्ति है जो दायित्वहीन, ज्ञानशून्य, स्वार्थी, आत्मसीमित, पलायनवादी कवि के रूप में सामने आता है |

मोहन राकेश ने विश्व-विख्यात कवि कालिदास को कल्पना और मिथक की सहायता से विकसित किया है जो सृजन शक्तियों का प्रतीक है |

आषाढ़ का एक दिन की कथावस्तु के अनुसार कालिदास केवल भावना के स्तर पर मल्लिका से बंधा हुआ है लेकिन भौतिक स्तर पर वह मल्लिका से बहुत दूर चला जाता है | अपनी प्रेयसी मल्लिका से विवाह किए बगैर उज्जयिनी के सम्राट चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के बुलावे पर राज्याश्रय स्वीकार कर उज्जयिनी चला जाता है वहाँ राजकुमारी प्रियंगुमंजरी से विवाह कर लेता है और उसके पश्चात काश्मीर का शासक बन जाता है | काश्मीर जाने के मार्ग में वह मल्लिका के ग्राम-प्रदेश से गुजरता है पर उससे मिलता नहीं है | शासक के रूप में कवि कालिदास की सृजन-क्षमता अवरुद्ध होने लगती है | अंत में पर्वतीय-प्रकृति-प्रेमी कालिदास का शासक के रूप में जब मोह भंग होता है तब वह हताश और पराजित होकर मल्लिका के पास वापस लौटता है लेकिन मल्लिका के वर्तमान रूप को देखकर पुन: मल्लिका को छोड़कर चला जाता है |

इसके विपरीत ऐतिहासिक रूप से कालिदास का चरित्र एक आदर्श चरित्र है | कालिदास का आरंभिक जीवन उपेक्षित और अभावग्रस्त था | कालिदास को उज्जयिनी में राजकवि का सम्मान प्राप्त हुआ था | कालिदास का काश्मीर जाना, काश्मीर के सिहांसन को त्यागकर काशी में संन्यास लेना आदि तथ्य इतिहास-सम्मत हैं | दन्तकथाओं के आधार पर कवि कालिदास का विवाह राजकुमारी विद्योत्तमा से हुआ था | मोहन राकेश ने नाटक में प्रियंगुमंजरी की कल्पना विद्योत्मा से की है. नाटक में अनेक ऐसे संदर्भ हैं जो कालिदास के कुमारसंभवम्, मेघदूत, अभिज्ञान शाकुंतलम् और ऋतुसंहार के दृश्य संदर्भो को उजागर करते हैं |
कहा जा सकता है कि आषाढ़ का एक दिन नाटक के कथासूत्र तथा पात्र भले ही ऐतिहासिक हो किन्तु इसमें मोहन राकेश ने वर्तमान समय की समस्या को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है |

मोहन राकेश ने एक जगह लिखा कि मेघदूत पढ़ते हुए मुझे लगा करता था कि वह कहानी निर्वासित यक्ष की उतनी नहीं है, जितनी स्वयं अपनी आत्मा से निर्वासित उस कवि की, जिसने अपनी ही एक अपराध-अनुभूति को इस परिकल्पना में ढाल दिया है | मोहन राकेश ने कालिदास की इसी निहित अपराध-अनुभूति को आषाढ़ का एक दिन का आधार बनाया.
मोहन राकेश ने कहा है ऐतिहासिक नाटककार इतिहास की बत्ती में कल्पना का दिया जलाकर रसानुभूति का सुंदर प्रकाश फैला देता है | उनके शब्दों में साहित्य में इतिहास अपनी यथा तथ्य घटनाओं में व्यक्त नहीं होता, घटनाओं को जोड़ने वाली कल्पनाओं में व्यक्त होता है, जो अपने ही एक नये और अलग रूप में इतिहास का निर्माण करती है |
1959 में इसे वर्ष का सर्वश्रेष्ठ नाटक होने के लिए संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया था | 1971 में निर्देशक मणि कौल ने इस पर आधारित एक फ़िल्म बनाई जिसने आगे जाकर साल की सर्वश्रेष्ठ फ़िल्म का फ़िल्मफ़ेयर पुरस्कार जीत लिया |

महत्त्वपूर्ण तथ्य -

- आषाढ़ का एक दिन महाकवि कालिदास के निजी जीवन पर आधारित है।
- आषाढ़ का एक दिन नाटक के कथासूत्र तथा पात्र भले ही ऐतिहासिक हो किन्तु इसमें मोहन राकेश ने वर्तमान समय की समस्या को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है।
- 1959 ई.में इसे वर्ष का सर्वश्रेष्ठ नाटक होने के लिए संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। । इसमें तीन खण्ड हैं।
- विलोम कालिदास का बचपन का मित्र होता है।
- कालिदास की पत्नी प्रियंगुमंजरी है।
- सृजनशीलता और सत्ता का द्वंद्व का चित्रण ।
- अस्तित्ववादी दर्शन।
- स्थिति प्रधान नाटक।

आषाढ़ का एक दिन' नाटक के पात्र -

पात्र विवरण

अम्बिका	-	ग्राम की एक वृद्धा
मल्लिका	-	उसकी पुत्री
कालिदास	-	कवि
दन्तुल	-	राजपुरुष
मातुल	-	कवि-मातुल
विलोम	-	ग्राम-पुरुष
संगिणी	-	नागरी
अनुनासिक	-	अधिकारी
प्रियंगुमंजरी	-	राजकन्या, कवि-पत्नी
निपेक्ष	-	ग्राम-पुरुष
रंगिणी	-	नागरी
अनुस्वार	-	अधिकारी
पुरुष पात्र	-	कालिदास, विलोम, मातुल, दंतुल
स्त्री पात्र	-	अंबिका, मल्लिका, प्रियंगुमंजरी, रंगिणी संगिनी।

नाटक के कथन

- मल्लिका- मैं टूटकर भी अनुभव करती रही कि तुम बने रहो क्योंकि मैं अपने को अपने में न
- देखकर तुममें देखती रही।
- मल्लिका - जीवन की स्थूल आवश्यकताएँ ही तो सबकुछ नहीं है। उनके अतिरिक्त भी तो बहुत
- कुछ है।
- कालिदास - तुम्हें बहुत आश्चर्य हुआ था कि मैं कश्मीर का शासन संभालने जा रहा हूँ ?

अभावपूर्ण जीवन की वह एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी। संभवतः उसमें कही उन सबसे प्रतिशोध लेने की भावना भी थी जिन्होंने जब-तब मेरी भर्त्सना की थी, मेरा उपहास उडाया था।

- कालिदास- मैं जानता हूँ मैंने वहाँ रहकर कुछ नहीं लिखा जो कुछ लिखा है, वह यहाँ के जीवन का ही संचय है..... मेघदूत के यक्ष की पीडा मेरी ही पीडा है और विरह विभर्दित यक्षिणी तुम
- हो।
- कालिदास- मैं अपने को आश्वासन देता रहा कि आज नहीं तो कल मैं परिस्थितियों पर वश पा
- लूंगा..... परंतु मैं स्वयं ही परिस्थितियों के हाथों बनता और चालित होता रहा।
- अंबिका - जिसे तुम भावना कहती हो वह केवल छलना और आत्मप्रवंचना है उससे जीवन की
- आवश्यकताएँ किस तरह पूरी होगी।
- निक्षेप- योग्यता एक चौथाई व्यक्तित्व का निर्माण करती है। शेष पूर्ति प्रतिष्ठा द्वारा होती है। मल्लिका- मैं वास्तव में अपनी भावना से प्रेम करती हूँ जो पवित्र है, कोमल है, अनश्वर है..... । - मल्लिका- जानते हो मैंने अपना नाम खोकर विशेषण उपार्जित किया है और अब मैं अपनी दृष्टि में नाम नहीं, केवल विशेषण हूँ|
- कालिदास - न पहचानना ही स्वाभाविक है, क्योंकि मैं वह व्यक्ति नहीं हूँ जिसे तुम पहचानती रही हो। दूसरा व्यक्ति हूँ !..... और सच कहूँ तो वह व्यक्ति हूँ जिसे मैं स्वयं नहीं पहचानता।
- कालिदास - मैं अनुभव करता हूँ कि यह ग्राम प्रान्तर मेरी वास्तविक भूमि है। मैं कई सूत्रों से इस भूमि से जुड़ा हूँ। उन सूत्रों में तुम हो, यह आकाश और ये मेघ है, यहाँ की हरियाली है, हरिणों के बच्चे हैं, पशुपालन हैं। यहाँ से जाकर मैं अपनी भूमि से उखड जाऊँगा।
- प्रियंगुमंजरी- राजनीति साहित्य नहीं है, उसमें एक-एक क्षण का महत्व है। कभी एक क्षण के लिए चूक जाएँ तो बहुत बडा अनिष्ट हो सकता है। राजनीतिक जीवन की धुरी में बने रहने के लिए व्यक्ति को बहुत जागरुक रहना पड़ता है।

12 . भारत दुर्दशा - भारतेंदु

भारत - नाटक के सकारात्मक और नकारात्मक चरित्रों की योजना देखें तो भारत नायक है। पर डॉ. रेवती रमण की टिप्पणी है कि - "भारत दुर्दशा में भारत और भारत भाग्य का पक्ष अत्यन्त दबा हुआ है। भारत को नायक माने तो उसका नायकत्व परम्परागत बिल्कुल नहीं है अनोखा हो तो हो।" निश्चित से रूप चरित्र की भव्यता एवं गरिमा के लिहाज से देखा जाये तो यह आद्यंत कमजोर चरित्र है। वह नाटक के दूसरे अंक में आता है। उसकी हालत बिल्कुल खस्ता है। श्मशान, टूटे फूटे मन्दिर, कौवा, कुत्ता, सियार घूमते हुये अस्थियाँ इधर उधर पड़ी हैं। ऐसे परिवेश में वह आता है और आते ही अपनी दीन हीन दशा का रोना रोने लगता है। वह जयचन्द जैसों को कोसता है तथा राज राजेश्वरी विजयनि से 'अपनाये की लाज रखने' की गुहार लगाता है। ऐसा निर्लज्ज प्रलाप कोई स्खलित चरित्र ही कर सकता है। भारत, भारत-दुर्दैव के कोप से बचने की लाख कोशिश करता है लेकिन बच नहीं पाता। उसके भय से वह मूर्छित हो जाता है। यही मूर्छा मृत्यु में बदल जाती है।

भारत-भाग्य - भारत का एक सहयोगी चरित्र भी है भारत भाग्य । इस चरित्र की सृष्टि द्वारा भारतेन्दु सहज भारतीय मानसिकता में भाग्य के बारे में व्याप्त छद्म चेतना को मूर्त रूप देते है। यद्यपि भारत की दशा सुधार एक छायावादी लेकिन फिर भी इसका एक अपना औचित्य है। भारत दुर्देव की ताकतवर फौज के आगे उसकी एक नहीं चलती है। भारत भाग्य की असफलता को दिखाकर भारतेन्दु ने भाग्यवादियों पर तीखा निशाना साधा है। सही भी है, राष्ट्रीय चेतना का प्रसार भाग्य भरोसे सम्भव भी नहीं था। हालांकि अन्तिम रूप से भारत को जमाने के अपने लक्ष्य में भारत भाग्य असफल रहता है, लेकिन उसके द्वारा किये गये कुछ प्रयास निःसन्देह सराहनीय हैं। नाटक में भले ही वह अपने उद्देश्य को पाने में असफल रहा हो, लेकिन राष्ट्र व्यापी जनजागरण में उस प्रयास की भी महत्ती भूमिका है। "जागा रे भाई" का गान निरर्थक नहीं है। भारत भाग्य के संवादों की खास बात है कि वह सीधा दर्शकों को सम्बोधित है। वह भारत को लगातार जगाने की कोशिश करता है। उसका गान एक तरह से भारत के जातीय गौरव का गान है।

भारत- दुर्दैव - भारत दुर्दैव का चरित्र एक शक्तिशाली खलनायक या प्रतिनायक के रूप में है। उसका आगमन तीसरे अंक में होता है। उसकी वेशभूषा का रंग संकेत काफी कुछ व्यक्त करता है - क्रूर, आधा क्रिस्तानी, आधा मुसलमानी वेश साथ में नंगी तलवार | वह आते ही भारत को ललकारता है फिर नाचता और गाता है। उसके द्वारा गाये जाने वाले गीत में उसके लक्ष्य की व्यंजना मिलती है। "उपजा ईश्वर कोप से और आया भारत बीच, छार खार सब हिन्द कंस में, तो उत्तम नहिं नीच" भारत दुर्दैव सत्यानास फोजदार सहित आलस्य, मदिरा, अन्धकार आदि समस्त सहयोगियों को भारत की जान निकालने के लिए उसे चारों तरफ से घेरने का आदेश देता है। इस चरित्र को भारतेन्दु ने काफी मेहनत से संवारा है। यह चरित्र अपनी आत्म प्रशंसा वाले कथनों से भारतीय समाज के अन्तर्विरोधों को उजागर कर देता है। "भला हमारे बिना और ऐसा कौन कर सकता है कि अंग्रेजी अमलदारी में भी हिन्दू न सुधरें, लिया भी तो अंग्रेज से अवगुण हा हा कुछ पढ़े लिखे मिलके देश सुधारा चाहते है। हा-हा एक चने से भाङ फोड़ेंगे।" जो लोग देशोद्धार या समाज सुधार करना चाहते है, उनके विरुद्ध वह दियासलाई का प्रयोग करता है।

भारत दुर्दशा के गौण पुरुष पात्र ।

भारत दुर्दशा नाटक में भारत दुर्दैव के अधिकांश सहायक सत्यनाश फौजदार रोग, आलस्य, अन्धकार आदि गौण पुरुष पात्र है। इसके अलावा देशोद्धार में जुटे हुए लोग, एक सभापति, एक बंगाली, एक एडीटर और एक कवि आदि अन्य गौण पुरुष चरित्र हैं, जिनकी उपस्थिति नाटक में बहुत कम होने के बावजूद महत्त्वपूर्ण है।

भारत दुर्दशा - चन्द्रावली जहाँ नाटिका है वहाँ भारत दुर्दशा नाट्य रासक या लास्य रूपक है। इसे नाट्यरासक नाम देना लेखक के मस्तिष्क पर संस्कृत नियमों की खुमारी का परिचायक है। यह छह अंकों में विभाजित है - यह अंक विभाजन शास्त्रानुकूल है। इसमें संस्कृत कहावतों का भाषानुवाद भी किया गया है। नाटक में कुछ मानव व कुछ प्रतीक पात्र प्राप्त होते हैं। इसमें भारत, दुर्दैव, आलस्य, अन्धकार और निर्लज्जता आदि का मानवीकरण किया गया है। इस दृष्टि से यह शारिपुत्र प्रकरण से चैतन्य चन्द्रोदय तक की परम्परा के अनुकूल प्रतीत होता है तथापि इसमें राष्ट्रीय और सामाजिक भावना को उद्दीप्त करने का प्रयास किया गया

है। यहाँ मदिरा, आलस्य, अपव्यय, फैशन, निर्लज्जता, रोग रिश्वत, सिफारिश आदि को देश की अवनति का कारण प्रदर्शित किया गया है। इसमें भारतीय जीवन से सम्बन्धित
तयुगीन सामाजिक समस्याओं को मार्मिक रूप में प्रस्तुत किया गया है। नाटककार ने प्रदर्शित किया है कि समाज के कर्णधार, सुधारक, कवि, सम्पादक, सभापति आदि सभा में बैठकर लम्बा चौडा भाषण देकर अपनी जागरूकता का झूठा प्रदर्शन करते हैं, किन्तु यदि संयोगवश उन्हें कभी कष्ट अथवा भय का सामना करना पड़े तो "बाज झपअ जनु लवा लुकाने" की भाँति हम नहीं, हम नहीं कहते हुए भाग खड़े होते हैं। भारतेन्दु जी ने प्रदर्शित किया है कि भारत की दुर्दशा के कारण बाहरी ही नहीं आन्तरिक भी है। हिन्दुओं की फूट, धर्मान्धता, शिक्षा का अभाव, अन्धविश्वास, अशिक्षा आदि ने देश को अधिक हानि पहुँचाई है। रचनाकार ने संकेत किया है कि वैभव से पतन के गर्त में गिरने वाले भारत को दोनों हाथों ने सर्वाधिक हानि प्रदान की है। इनमें एक था यवनों का काला हाथ और दूसरा खून से भरा अंग्रेजों का हाथ।

सरलता और सहजता से व्यक्त की गई भारत दुर्दशा पाठक और प्रेक्षक को सोच विचार करने के लिए प्रेरित करती है। नाटककार की चित्रोपम और सम्प्रेषणीय अभिव्यक्ति ने नाटक को सजीवता प्रदान की है। भारत की दुर्दशा का प्रतीकात्मक बिम्ब अन्तर्मन को झकझोर देता है, जैसे - "भारत दुर्दैव - हाँ, तो तुम हिन्दुस्तान में जाओ और जिसमें हमारा हित हो, सो करो बस, बहुत बुझाय तुमहिं कहा कहऊँ, परम चतुर मैं जानत अहउँ।।" अन्धकार - बहुत अच्छा, मैं चला। बस जाते ही देखिये, क्या करता हूँ।" । भारत दुर्दशा को साकार करने वाला प्रथम गीत देश के प्रति करुण सम्वेदना जागृत कर देता है -

"आवहु सब मिलिकै रोवहु भारत भाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।"
भारत दुर्दशा में स्वदेश महिमा वर्णित की गई है।
सबके पहले जेहि सभ्य विधाता की
सबके पहले विद्याफल जिन गहि लीनो।
जहं राम युधिष्ठिर वासुदेव सर्याती।

इसके साथ दुर्दशा का वर्णन भी सांगोपांग रीति से किया गया है।
" हा हा! भारत दुर्दशा देखी ना जाई।
लरि वैदिक जैन डुबाई पुस्तक सारी।
करि कलह बुलाई जवन सैन पुनि भारी।।"
भारत-परमेश्वर बैकुण्ठ में, राज राजेश्वरी सात समुद्र पार, अब मेरी कौन दशा होगी? हाय अब मेरे प्राण कौन बचावेगा? अब कोई उपाय नहीं। अब मरा, अब मरा....
भारत-दुर्दशा - लिया भी तो अंग्रेजों से औगुन । हा!हा!!हा!!! कुछ पढ़े लिखे मिल कर देश को सुधारना चाहते हैं। एक चने से भाङ फोडेंगे।....

समाज के लोग विलायत गमन को हेय मानते थे। फलतः कूप मण्डूक बने हुये थे। इसकी भी निदा की गई है - सत्यानाश फौजदार - रोकि विलायत गमन कूप मण्डकूल बनायो।
इस दुःखान्त नाटक का नायक भारत है और भारत का दुर्दैव प्रतिनायक है। नाटक में नाट्य शास्त्रीय मर्यादाओं का निर्वाह किया गया है। यह रचना भारतेन्दु के भारत प्रेम का उत्कृष्ट उदाहरण है।

विशेष तथ्यः

- रचना समय : 1875 ई.
- यह एक प्रतीकात्मक नाटक है।
- नाटक रासक में छः अंक है।
- तीसरे अंक का नाम 'भारत दुर्दैव है जो अंग्रेज का प्रतीक है।
- यह नाटक राजनीतिक विषय-वस्तु पर आधारित है। इसमें एक ओर ब्रिटिश राज की निर्ममता का चित्रण है तो दूसरी ओर भारतीयों के आलस्य,निर्धरता, अशिक्षा जैसी प्रवृत्तियों का उल्लेख किया गया है।

मुख्य पात्र

- भारत दुर्दैव, भारत दुर्दशा
- इस दुःखान्त नाटक का नायक भारत है।
- भारत का एक सहयोगी चरित्र भी है भारत भाग्य।
- "क्रूर, आधा क्रिस्तानी, आधा मुसलमानी वेश साथ में नंगी तलवार।" ये विशेषता है- भारत दुर्दैव
- की
- भारत दुर्दशा नाट्य रासक या लास्य रूपक है।
- इसमें भारत, दुर्दैव, आलस्य, अन्धकार और निर्लज्जता आदि का मानवीकरण किया गया है।

13. अंधायुग - धर्मवीर भारती

धर्मवीर भारती कृत 'अंधा-युग' हिंदी नाट्य-साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण नाट्यकृति है। छठे दशक की यह रचना (1955 ई.) महाभारत के कथानक पर आधारित नाटककार के आधुनिकताबोध एवं वैचारिकता से संपन्न एक श्रेष्ठ कृति है। इसमें नाटककार ने महाभारत के 18 वें दिन की संध्या से प्रभासतीर्थ के कृष्ण के मृत्यु के क्षण तक की कथा को आधार बनाकर धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य, सत्य-असत्य पर आधुनिक दृष्टिबोध से विचार किया है। इस नाटक की कथावस्तु के प्लॉट में सर्वत्र (समाज, परिवार, नैतिकता, कृष्ण जैसे पात्र सभी अंधे हैं) अंधापन है। नाटककार धर्मवीर भारती का यह वैचारिक दृष्टिकोण है कि महाभारत काल की भाँति आज भी संकट काल की स्थिति है। धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य, पाप-पुण्य, रक्तपात, प्रतिशोध, अन्याय, अत्याचार से आज का समाज भी आक्रांत है और सर्वत्र अंधापन व्याप्त है।

अंधा-युग नाटक के कलेवर में 5 अंक हैं। अंकों के शीर्षक प्रतीकात्मक है। वक्ता-श्रोता की कथा-शैली में रचित अंधा-युग नाटक का मंचन सफलतापूर्वक कई बार हुआ है।

1. अंधा-युग : अंक -5, रचनाकाल - 1955

(i) स्थापना - अन्धा-युग

(ii) प्रथम अंक - कौरवी नगरी

(iii) दूसरा अंक - पशु का उदय

(iv) तृतीय अंक - अश्वत्थामा का अर्द्धसत्य

(v) अन्तराल - पंख, पहिये और पट्टियाँ

(vi) चतुर्थ अंक - गांधारी का शाप

(vii) पाँचवा अंक - विजय : एक क्रमिक आत्महत्या

(viii) समापन - प्रभु की मृत्यु

अंधा युग (नाटक 8 भागों में विभक्त) है।

पाँच अंको की कमानुसार ट्रिक:

कौरव व्यवहार से पशु थे और आधा सच बोलते थे । इसीलिए गांधारी ने शाप दिया कि आत्महत्या कर लो

2. पात्र

पुरुष पात्र - अश्वत्थामा, धृतराष्ट्र, कृतवर्मा, संजय, वृद्ध याचक, विदुर, युधिष्ठिर, कृपाचार्य, युयुत्सु, गूंगा भिखारी, व्यास, बलराम, प्रहरी 01, प्रहरी 02

स्त्री-पात्र - गान्धारी (एकमात्र स्त्री पात्र)

3. घटनाकाल

महाभारत के 18 वें दिन की संध्या से लेकर प्रभास-तीर्थ में कृष्ण की मृत्यु के क्षण तक।

4. नाटक-रूप

गीतिनाटक (काव्य नाटिका)। 5. अंधा-युग का प्रतिपाद्य

आज के मानव-जीवन की अभिशप्त गाथा। घोर अव्यवस्था, भ्रष्टाचार, मूल्यहीनता, सत्ता-संघर्ष, क्षुद्र स्वार्थों के दलदल में आम आदमी की व्यथा-कथा।

6. अंधायुग का संदेश

वर्तमान युग के अंधे होने, मनुष्य में मनुष्यता के लोप हो जाने की कथा के माध्यम से भविष्य के आसन्न संकट से सावधान रहने का संदेश।

7. अंधायुग से प्रेरणा

जवन में जहाँ आशा, सौन्दर्य, उन्नति, क्षमा, निर्माण इत्यादि सकारात्मक पक्ष हैं, वहीं निराशा, रक्तपात, प्रतिशोध, कुण्ठा, अंधापन इत्यादि कड़वे सच से संघर्ष की प्रेरणा।

8. अंधायुग नाटक की समस्या

द्वितीय विश्वयुद्ध के भयंकर विनाश के उपरांत आम आदमी में व्याप्त कुंठा, भय, संशय, सामूहिक मृत्यु, भय, निराशा, निरर्थकता इत्यादि की समस्या।

अंधा युग : अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य

- महाभारत युद्ध 18 दिनों तक चला था।
- महाभारत युद्ध में अवध्य की सुविधा संजय को प्राप्त हुई थी।
- महाभारत युद्ध में व्यास द्वारा संजय को दिव्य-दृष्टि मिली थी ताकि महाभारत युद्ध का सत्य-समाचार धृतराष्ट्र और गांधारी को वह बता सके।
- महाभारत युद्ध में पाण्डवों की जय हुई थी एवं अधर्म के कारण कौरव परास्त हुए थे। ।
- अर्जुन और अश्वत्थामा द्वारा ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करने पर व्यास इन्हें इसलिए धिक्कारते हैं कि इससे धरती बंजर हो जायेगी और सूरज छिप जायेगा।
- अश्वत्थामा पांडवों से अपने पिता तथा अधर्म से मारे गये दुर्योधन का बदला लेने के उद्देश्य से सेनापति बने थे।
- महाभारत युद्ध में पांडवों के शिविर को अश्वत्थामा ने तहस-नहस किया था।
- अधर्म में दुर्योधन की मृत्यु का समाचार अश्वत्थामा ने कृतवर्मा और कृपाचार्य को दिया था। ।
- दुर्योधन भीम का द्वन्द्व युद्ध देखने छद्मवेश में अश्वत्थामा गये थे।
- युयुत्सु (धृतराष्ट्र-पुत्र) महाभारत युद्ध में पांडव-पक्ष से लडा था क्योंकि उसकी दृष्टि में सत्य कौरव-वंश से अधिक बडा था।
- कौरवों की घायल, हारी सेना के साथ पराजित विपक्षी योद्धा युयुत्सु आया था। ।
- धृतराष्ट्र, कुंती, गांधारी की मृत्यु जंगल में आग लगने के कारण हुई थी। ।
- महाभारत युद्ध में द्रोणाचार्य का वध धृष्टद्युम्न द्वारा किया गया था।
- धृष्टद्युम्न का वध अश्वत्थामा ने पिता के हत्यारे के प्रतिशोध में किया था।
- महाभारत युद्ध में याचक का वध अश्वत्थामा द्वारा किया गया था क्योंकि याचक ने कौरवी की विजय की घोषणा की थी जो झूठी निकली।
- दुर्योधन भीम द्वारा मारा गया था। दुर्योधन मरणासन्न अवस्था में सरोवर में छिप गया था।
- कृष्ण का वध वृद्ध व्याध जरा ने किया था। कृष्ण की मृत्यु गांधारी के शाप के कारण हुई थी।
- प्रभु की मृत्यु' अंधायुग में यह शब्द कृष्ण के लिए प्रयुक्त हुआ है।
- कृष्ण की मृत्यु के बाद युयुत्सु प्रेतात्मा के रूप में प्रकट हुआ।
- महाभारत युद्ध (18 दिन) के बाद धर्मराज युधिष्ठिर का राज्याभिषेक हुआ था।

महत्त्वपूर्ण कथन - अंधा युग

होगी, अवश्य होगी जय... पर जीतेगा दुर्योधन जीतेगा-गांधारी (प्रथम अंक)। मैं वह भविष्य हूँ, जो झूठा सिद्ध हुआ आज कौरव की नगरी में - याचक / आज मुझे भान हुआ मेरी वैयक्तिक सीमाओं के बाहर भी सत्य हुआ करता है.... मेरे अपने वैयक्तिक मूल्य, मेरी निश्चित किन्तु ज्ञानहीन आस्थाएँ-धृतराष्ट्र (प्रथम अंक)।

मैं हूँ परात्पर, जो कहता हूँ करो सत्य जीतेगा, मुझसे लो सत्य मत डरो। -धृतराष्ट्र याचक से प्रथम अंक में (कृष्ण का कथन सुनाते हुए) आज जब मैंने दुर्योधन को देखा निःशस्त्र, दीन आँखों में आँसू भरे मैंने मरोड़ दिया इस धनुष को। कुचले हुए साँप-सा भयावह किन्तु शक्तिहीन मेरा धनुष यह। -अश्वत्थामा का कथन कृपाचार्य और कृतवर्मा के प्रति, द्वितीय अंक ।

किन्तु नहीं, जीवित रहूँगा मैं । अंधे बर्बर पशु-सा वाणी सत्य हो धर्मराज की। मेरी इस पसली के नीचे दो पंजे अग आयें | मेरी ये पुतलियाँ बिना दाँतों के चोथ खायें। - अश्वत्थामा का स्वगत कथन (द्वितीय अंक)। तटस्थ? मातुल मैं योद्धा नहीं हूँ। बर्बर पशु हूँ। यह तटस्थ शब्द है मेरे लिए अर्थहीन। -अश्वत्थामा कृपाचार्य से,(द्वितीय अंक)। ।

मैंने नहीं मारा उसे। मैं तो चाहता था वध करना भविष्य का। पता नहीं कैसे वह बूढ़ा मरा पाया
गया। अश्वत्थामा का कथन कृपाचार्य के प्रति अभिमन्यु के संदर्भ में।
मैंने छू छूकर अंगभंग सैनिकों को देखने की कोशिश की। बाद के पास से हाथ जब कट जाता है। लगता है वैसा जैसे मेरे सिंहासन का हत्था है। धृतराष्ट्र (द्वितीय अंक) मेरा अपराध सिर्फ इतना है सत्य पर रहा मैं दृढ़। द्रोण, भीष्म सबके सब महारथी नहीं जा सके दुर्योधन के विरुद्ध.... पर सत्य बडा है कौरव वंश से - धृतराष्ट्र पुत्र युयुत्सु, (तृतीय अंक)
डरने में उतनी यातना नहीं है जितनी वह होने से, जिससे सबके सब भय खाते है। वैसा ही हूँ मैं आज । ये है महल मेरे पिता, मेरी माता के लेकिन कौन जाने यहाँ स्वागत हो मेरा एक जहर बुझे भाले से। -युयुत्सु (तृतीय अंक)
ढूँढ़ रहा कब से तुमको युयुत्सु वत्स । अच्छा किया तुम वापस चले आये। प्रहरी जाओ जाकर माता गांधारी को सूचित करो -विदुर (तृतीय अंक)
कौरव-पुत्रों की इस कलुषित कथा में एक तुम हो केवल जिसका माथा गर्वोन्नत है। -विदुर युयुत्सु से, (द अंक) /
मातुल सुनो! मरे गये राजा दुर्योधन अधर्म से। - अश्वत्थामा कृपाचार्य से (तृतीय अंक)
जाओ हस्तिनापुर समझाओ गांधारी को । अपने शिविरों को जो जाते पांडवगण वे भी निश्चय मारे जायेंगे अधर्म से। -बलराम कृष्ण से (तृतीय अंक)।

नहीं, नहीं नहीं। तुम कुछ भी कहो कृष्ण । निश्चय ही भीम ने किया है अन्याय आज | उसका अधर्मवार अनुचित ___ था। जानता हूँ मैं तुमको शैशव से रहे हो सदा से मर्यादाहीन कूटबुद्धि। - बलराम कृष्ण से, तृतीय अंक।

ऐसे भयानक महायुद्ध को अर्द्धसत्य, रक्तपात, हिंसा से जीतकर अपने को बिल्कुल हारा हुआ अनुभव कर... किसको बताऊँ मेरे ये कुटुम्बी अज्ञानी है, दुर्विनीत है या जर्जर है। - युधिष्ठिर का पश्चाताप, पाचवाँ अंक

- मुक्ति मिल जाती है सबको कभी न कभी । वह जो बंधु घाती हैं.. भटकता है अँधियारे लोकों में, सदा-सदा के लिए बनकर प्रेत-विदुर, कृपाचार्य से युयुत्सु की आत्महत्या के संदर्भ में, अंक-5
- बुझ गये सभी नक्षत्र, छा गये तिमिर गहन..... जिस क्षण प्रभु ने प्रस्थान किया द्वापर बीत गया उसी क्षण | अंधा युग नाटक का 'समापन' से अवतरित।
- लेकिन शेष मेरा दायित्व लेंगे जीवित और सक्रिय हो उलूँगा मैं बार-बार। -व्याध द्वारा कृष्ण का संदेश वर्णित, 'अंधा युग नाटक का समापन', 'प्रभु की मृत्यु' से।
- उसके इस नये अर्थ में क्या हर छोटे से छोटा व्यक्ति, अपने जीवन की सार्थकता पा जायेगा? -व्याध द्वारा कृष्ण का अंतिम संदेश सुनकर अश्वत्थामा का प्रश्न व्याध से, अंधा युग प्रभु की मृत्यु शीर्षक से।
- वे है भविष्य किन्तु हाथ में तुम्हारे है। जिस क्षण चाहो उसको नष्ट करो। जिस क्षण चाहो उसको जीवन दो, ___ जीवन लो। अश्वत्थामा के प्रश्न का वृद्ध व्याध द्वारा उत्तर, अंधा युग नाटक का समापन 'प्रभु की मृत्यु' शीर्षक से। 'अंधायुग' नाटक के कुछ अन्य कथन -
- जय हो दुर्योधन की, जय हो गांधारी की। -याचक
- मुझको गल जाने दो - धृतराष्ट्र
- संजय तुम जाओ मेरा यह अभिशाप है - धृतराष्ट्र
- गूंगों के सिवा आज और कौन बोलेगा मेरी जय - धृतराष्ट्र
- इस अभिशाप भूमि पर एक कदम भी रखा तो बचकर लौटना असंभव है - द्रोणाचार्य
- मैं अश्वत्थामा उन नीचों को मारूँगा। - अश्वत्थामा, पाण्डवों के लिए
- इस विजय का कोई अर्थ नहीं - युधिष्ठिर
- माता मत कहो मुझे। तुम जिसको कहते हो प्रभु वह भी मुझे माता ही कहता है-गांधारी विदुर से।

14. अन्जो दीदी- उपेन्द्रनाथ अश्क

अंजो दीदी में खास पात्र अंजली ही हैं। वह अहँ की प्रतीछाया है। वह चाहती है कि जीवन को अनुशासित बनाना चाहिए। इस रास्ते में वह एकदम दृढ़ रहती हैं लेकिन अपनी अज्ञानता की पहचान के बिना काम करती है और दीदी बनती है। इसका परिणाम यह हुआ कि वह दूसरों का भी मन विचलित कर देती है और स्वयं व्यक्तिगत ह्रास का कारण बनती है उसके हठी स्वभाव के कारण सारे परिवार का सुख सत्यानाश हो जाता है। नाटककार अश्क जी का विचार है अँह की भावना परम्परागत प्रवृत्ती है जो अपनी मनोवृत्तियों को दूसरों पर जबरदस्त डालता है। वह न अपनी उन्नति करती है न दूसरों की। अंजली को यह अहँ की भावना

उसके नाना से मिली है। नाटक की शुरूआत अंजो दीदी के डायनिंग रुम में होती है। वह अपनी नौकरानी को फटकारती है - मुन्नी नाश्ता रखो मेज पर (तनिक कडे स्वर में) तुम कर क्या रही हो आठ बजने का आये है और नाश्ते का पता नहीं। अंजों की तानाशाही केवल नौकरानी पर ही नहीं सारे पात्रों पर होती है। वह अपने बेटे से कहती है धीरज बेटा कपडे बदल लिये तुमने, अंजली ने दैनिक कार्यक्रम का कठोर नियम बना लिया है कि ठीक आठ बजे सारा परिवार नाश्ता करे, दिन के एक बजे दोपहर का भोजन करें तीन बजे नाश्ता और रात के नौ बजे भोजन होना चाहीए। उसका बेटा नीरज अपनी माँ के नियम का पालन करता है समय पर आराम करता है और समय पर खेलता है। चूंकि वह अंजली के इशारे पर चलता है इसलिए वह मन ही मन खुश होती है और अनिमा से उसकी तारीफ करती है। अंजली के पति इंद्रनारायण है वे पहले सदा हँसमुख रहते थे, लेकिन पत्नी के दमन स्वभाव के कारण वे अपनी हँसमुख प्रवृत्ति खो बैठे और उसके कठपुतली बन गये। लाचारी से वे पत्नी के इशारे पर चलने लगे। अपने पति के परिवर्तन पर अंजली गर्व से कहती है बड़े सिर पिटाये थे पहले पहल पर मै ही आयी ,अपने पति बेटे और नौकरों पर नेतागिरी करती है उसकी यह आदत नौकरानी पर भी जम गयी है। मुन्नी श्रीपत जैसे मनमैंजी आदमी से कहती है आप खाना खा लीजिये हम लोगों के आराम के समय है। अंजली समय की पाबंदी से एकदम जुड गयी है उसके अनुसार जीवन एक महान गति है प्रात: सन्ध्या उसकी सुइयाँ हँ नियमबद्ध एक दूसरे के पीछे घूमती रहती है मैं चाहती हूँ मेरा घर भी उसी घडी की तरह चले और हम सब इसके पुर्जे बन जाय और नियमपूर्वक अपना काम करके जाये। अंजली की इस प्रकार की मनोवृत्ति का मौलिक कारण है उसकी अँह । और इस भावना उसे अपना नानाजी से प्राप्त करने के सबूत मिलते है। वह कहती है हमारे नानाजी कहा करते थे, नौकरों को सदा साफ सुधरा रहना चाहिए। नानाजी कहा करते थे वक्त की पाबंदी सभ्यता की पहली निशानी है। नाटक में हरेक पात्र के विपरित का ..... काफी दिलचस्प होता है श्रीपत ऐसा ही पात्र है जो अंजो की आदत को तोडता है। वह अंजली को समझाता है कि उसके कडे स्वभाव के कारण सारे परिवार का भविष्य समस्यामूलक हो जायेगा। श्रीपत चाहता है कि हरेक मनुष्य अपना नैसर्गिक स्वभाव न छोडें। जब से श्रीपत अंजली के घर आये तब से घर के परिवारों का मनोभाव बदलते लगा। वह अंजली के वकील पति से कहता है कसम आपकी जीजाजी शादी ने आपको बुड़ढा बना दिया है। धीरे धीरे श्रीपत के प्रभाव से घर के सारे सदस्य अपनी अपनी नयी आदत सुधारते हैं नीरज निस्संकोच अंजली से कहता है- मुझे डिप्टी कमीशनर नही बनना। मै तो क्रिकेट का कप्तान बनूँगा। तब श्रीपत लौटने लगता है तब नीरज उनसे क्रिकेट का सामान भिजवाने की सिफारिश भी करता है। तब अंजली को मालूम पड गया कि श्रीपत के कारण घर का वातावरण बदल गया है तब वह साधु से कहती है घडी टूट गयी शायद मैने इसे ज्यादा चाबी दे दी। श्रीपत चले जाते है। फिर एक परिवार के सभी लोगों को अपने वश में करना चाहती है लेकिन असमर्थ हो जाती है। मानसिक रोग से पीडित हो जाती है। अपनी ऊपरी आप आक्रमण करती है आत्महत्या कर लेती है। अंजो के अंह का परिणाम इंद्रनारायण पर हुआ कि वे शराब की आदत में फंस गये और श्रीपत के लौटने के बाद भी अपनी यह आदत छोड न सकें। अंजो भी पछताती है लेकिन अपने कोई पूरा जिम्मेदार नहीं समझती। अंजली के मरे तीन साल गुजर जाते है उसका बेटा नीरज बनावटी स्वभावन के पीछे चलने लगता है और उसका पति इंद्रनारायण अपने पत्नी के आदर्श पर चलने लगता है इस प्रकार मरने के बाद भी अंजली का दमन जारी रहता है। अंजली के कठोर स्वभाव के कारण बताते हुए श्रीपत कहते है अंजो सब तुम मार्बिड

और जालिम भी क्योंकि उसके नाना मार्बिड और भी जालिम थे। श्रीपत के अंजली के गुरु का झिकार नीरज को ही माना है। अंजली नीरज को कमीश्नर बनाना चाहती है लेकिन नीरज स्वयं क्रिकट का कप्तान बनना चाहता है। इस नाटक की ट्रेजडी आनुवंशिक प्रवृत्ति पर निर्भर है। शिक्षा मनोविज्ञान का कहना है कि संसार में समस्यामूलक बच्चे नहीं, बल्कि समस्यामूलक माँ बॉप है अर्थात अंजली ही समस्यामूलक माँ है न अपने बच्चों को अपने अपने इच्छा से जीने देती है न अपने पति को..... अंजली के प्रधान पात्र के रूप में नाटककार ने बनाकर मनोविज्ञान के आधार पर उसकी मनोवृत्ति का शोधन किया है। इस पात्र द्वारा नाटककार हमको ये सबक सिखाना चाहते है कि जो जैसा हो वह वैसा ही रहे जब कोई भी आदमी अपनी वास्तविक मनोवृत्ति का उल्लेखन करता है, वह जीवन में असफलता पाता है।

महत्त्वपूर्ण तथ्य -

रचनाः 1955 ई.

'अंजो दीदी' नाटक के पात्र -

पुरुष पात्र - श्रीपत,वकील साहब, नीरज,राजु ।

स्त्री पात्र - अंजोदीदी (अंजली),मुन्नी,अनिमा।

- यह इनकी सबसे प्रौढ़ रचना है।
- उच्च वर्ग के लोगों का यांत्रिक जीवन दिखाया गया है।
- अंजली के पति इंद्रनारायण है
- इसी यांत्रिकता के चलते अंजो दीदी मानसिक रोगी हो जाती हैं।
- वकील साहब इसी यांत्रिकता में न ढल पाने के कारण आत्महत्या कर लेते है।
- "जीवन स्वयं एक महान घडी है। प्रातःसंध्या उसकी सुईयां है । नियमबद्ध एक दूसरे के पीछे घुमती रहती है। मैं चाहती हूँ मेरा घर भी घडी ही की तरह चले । हम सब उस के पुर्जे बन जाएं और नियमपूर्वक अपना
- अपना काम करते जाएं।" कथन है- अंजो दीदी का
- " जब इंसान मशीन बन जाएगा तो वह दिन दुनिया के लिए सबसे बड़े खतरे का दिन होगा।
- इंसान का मशीन बनना सनक ही का दूसरा रूप है।" कथन है- श्रीपत का
- 'वक्त की पाबंदी सभ्यता की पहली निशानी है'-अंजो दीदी
- अंहकारवादिता व प्राचीन संस्कारों के दुष्प्रभावों का चित्रण।
- इसमें दो अंक है।

भाग 9

विद्यानिवास मिश्र – मेरे राम
का मुकुट भीग रहा है

विद्यानिवास मिश्र - मेरे राम का मुकुट भीग रहा है

(1974ई.)

डॉ. विद्यानिवास मिश्र के निबन्धों का प्रतिपाद्य विषय गरिमापूर्ण है। इन्होंने भारतीय संस्कृति, प्रकृति साहित्य तथा लोक परम्परा के आयामों का उद्घाटन किया है।

'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' विद्यानिवास मिश्र द्वारा रचित विचारात्मक निबन्ध है। प्रस्तुत निबन्ध में लेखक के गहन विचारों का परिणाम दिखाई देता है। निबन्ध में लेखक अपने कुछ विचार प्रकट कर तथा अपने कुछ प्रश्नों का उत्तर खोजता है। यह विचार और सभी प्रश्न लेखक के जीवन की एक घटना से निकलते हैं।

निबंध का उद्देश्यः

वर्तमान पीढ़ी को यह समझाना कि उनको लेकर पिछली पीढ़ी कितनी संवेदनशील है और हर स्थिति में उनके मंगल की कामना करती है। लेखक का एक पुत्र जो किशोरावस्था का है तथा लेखक के घर आई एक मेहमान के साथ संगीत के कार्यक्रम में रात को जाता है, जहाँ से लौटने में उन्हें देर हो जाती है। उनकी प्रतीक्षा करते हुए लेखक अपने विचारों की दुनिया में खो जाता है तथा समाज की विभिन्न परिस्थितियों और समस्याओं को लेकर उनके मन में प्रश्न और विचार एकसाथ उठने लगते हैं।

प्रख्यात साहित्यकार पं. विद्या निवास मिश्र का निबंध मेरे राम का मुकुट भीग रहा है अवलंबित है, भारतीय लोक-संस्कृति पर आधारित लोक समन पर,जहां हर परिस्थितियों-घटनाओं का रस बुने जाने की परंपरा राम के ही दिग्दर्शन में रही है। वैसे तो राम युगों-युगों से भारतीय उपमहाद्विपीय संस्कृति के केंद्र में होते हैं। चाहे समय कैसा और कोई भी क्यों न रहा हो, पर राम के बाद राम राज्य स्थापना की परिकल्पना को कभी आसरा नहीं मिला,स्थापना की चिंता हमेशा बनी रही। ठीक वैसे ही चाहे हम महलो-दुमहलो में ही क्यों न रहें, बनवासी राम को लेकर भी हमारी चिंता कभी खत्म नहीं हुई।

लोक-कथाओं में लोक साहित्य में लोक-गीतों में, मंगल कार्यों, शादी-ब्याह के मौकों पर राम ही याद आते रहे। पता नहीं,कितने युग बीते पर अभी भी हम अपने के कोसते हुए राम से उलाहना देते हैं राम बेइमान अकेले चली गइले। निर्मोही राम सबको छोड़ कर चले गए। खुद ही सबको मना कर सौगंध दे वन में चले गए। उनकी बेइमानी यह कि जो खुशी और प्रसन्नता चितवन की छांह उनके साथ रहने से सहज मिल जाता वह छीन गया। निर्मोही इसलिए कि ऐसा करते (अयोध्या में रहने का सौगंध) हुए उन्हें सबका मोह नहीं आया। तो फिर अयोध्या रहकर अपने साथ गुजरी हर घटनाओं पर राम की ही चिंता। बरसात हुई तो मन फिरा कि वन में राम भीग ही रहे होंगे। उनके साथ माता सीता और भइया लक्ष्मण भी भीग रहे होंगे।

पूरी भारतीय लोक-संस्कृति ही राम से जुड़ीं घटनाओं-परिघटनाओं से अपने को परिपुष्ट करती है।

मोरे राम के भीजे मुकुटवा लछिमन के पटुकवा
मोरी सीता के भीजै सेनुरवा त राम घर लौटहिं।

(मेरे राम का मुकुट भीग रहा होगा, मेरे लखन का पटुका (दुपट्टा) भीग रहा होगा मेरी सीता की माँग का सिंदूर भीग रहा होगा, मेरे राम घर लौट आते)

आज भी जब हम नौकरी-पेशे को लेकर घर से बाहर जाते हैं, घर के बड़े-बुजुर्ग कोसते हैं कैसा वनवास मिल गया है।

मन फिर घूम गया कौशल्या की ओर लाखों-करोड़ों कौशल्याओं की ओर, और लाखों करोड़ों कौशल्याओं के द्वारा मुखरित एक अनाम-अरूप कौशल्या की ओर इन सबके राम वन में निर्वासित हैं पर क्या बात है कि मुकुट अभी भी उनके माथे पर बँधा है और उसी के भीगने की इतनी चिंता है क्या बात है कि आज भी काशी की रामलीला आरम्भ होने के पूर्व एक निश्चित मुहुर्त में मुकुट की ही पूजा सबसे पहले की जाती है क्या बात है कि तुलसीदास ने कानन को 'सत अवध समाना' कहा और चित्रकूट में ही पहुँचने पर उन्हें ।

कलि की कुटिल कुचाल दीख पड़ी, क्या बात है कि आज भी वनवासी धनुर्धर राम ही लोकमानस के राजा राम बने हुए हैं कहीं-न-कहीं इन सबके बीच एक संगति होनी चाहिए।

मन में राम के साथ राम का मुकुट प्रतिष्ठित हो गया। मन में प्रतिष्ठित हुआ इसलिए राम को राजकीय वेश में उतारा, राजकीय रथ से उतरे, राजकीय भोग का परिहार किया, पर मुकुट तो लोगों के मन में था कौसल्या के मातृ-स्नेह में था वह कैसे उतरता। वह मस्तक पर विराजमान रहा और राम भीगें तो भीगें, मुकुट न भीगने पाए। इसकी चिंता बनी रही

राम तो वन से लौट आए, सीता को लक्ष्मण फिर निर्वासित कर आए (वस्तुत: राम का निर्वासन ही सीता का दुहरा निर्वासन है)। पर लोक मानस में राम की वनयात्रा अभी नहीं रूकी। मुकुट, दुपट्टे और सिंदूर के भीगने की आशंका अभी भी साल रही है। कितनी अयोध्याएँ बसीं, उजड़ीं, पर निर्वासित राम की असली राजधानी, जंगल का रास्ता अपने काँटों-कुशों, कंकड़ों-पत्थरों की वैसी ही ताजा चुभन लिये हुए बरकरार है, क्योंकि जिनका आसरा साधारण गँवार आदमी भी लगा सकता है। वे राम तो सदा निर्वासित ही रहेंगे और उनके राजपाट को सम्भालने वाले भरत अयोध्या के समीप रहते हुए भी उनसे भी अधिक निर्वासित रहेंगे, निर्वासित ही नहीं, बल्कि एक कालकोठरी में बंद जिलावतनी की तरह दिन बिताएँगे।

पर इस निर्वासन में भी सीता का सौभाग्य अखण्डित है। वह राम के मुकुट को तब भी प्रमाणित करता है। मुकुटधारी राम को निर्वासन से भी बड़ी व्यथा देता है और एक बार फिर अयोध्या जंगल बन जाती है, स्नेह की रसधार रेत बन जाती है, सब कुछ उलट-पलट जाता है।

लेखक को अपनी दादी का एक गीत याद आता है, जिसमें भगवान राम के वनवास चले जाने पर अयोध्यावासियों की चिन्ता प्रकट की गई थी।

लेखक भारतीय समाज में फैले पीढ़ियों के अन्तर पर भी विचार करता है। जहाँ एक ओर पुरानी पीढ़ी, नई पीढ़ी की क्षमताओं पर विश्वास नहीं करती, अपितु उनकी क्षमताओं की उपेक्षा करती है, लेकिन दूसरी ओर नई पीढ़ी पुरानी पीढ़ी को रूढ़िवादी समझती है। वह उनकी भावनाओं की भी चिन्ता नहीं करती। पुरानी पीढ़ी का मन अपनी सन्तान के ऊपर संकट आने की कल्पना मात्र से उद्विग्न हो जाता है, किन्तु नई पीढ़ी अपनी धुन में रहती है लेखक अपने मन के अन्दर चलते तर्क-वितर्क में विवाद करने लगता है तथा स्वीकारता है कि इस नई पीढ़ी को हदों में रखना सरल कार्य नहीं है तथा पुरानी पीढ़ी को उसकी चिन्ताओं से मुक्त कर देना सम्भव नहीं हैं।

महत्वपूर्ण तथ्यः

- यह ललित निबंध (विचारात्मक) है।
- इस निबंध में इन्होंने हजारी प्रसाद द्विवेदी की परम्परा का पालन किया है।
- कोमलकांत पदावली का प्रयोग।
- शैली उद्धरणात्मक है।
- निबंध में भोजपुरी शब्दों का भी बाहुल्य ।
- व्यक्तिव्यंजक निबंध भी माना जाता है।
- » संगीत का कार्यक्रम सुनने चिरंजीव व कृष्णा (मेहमान कन्या) गए थे। → लक्ष्मण का दुपट्टा प्रतीक है- प्रहरी की जागरूकता का → सीता का सिंदूर प्रतीक है- सीता के अखण्ड सौभाग्य का।
- राम का मुकुट प्रतीक है- राम के उत्कर्ष का।
- 'उस राह पर तुलसी और उनके मानस के नाम पर बड़े-बड़े तमाशे होंगे, फुलझड़िया दगेंगी, सैर-सपाटे होंगे, पर वह राह ढंकी ही रह जाएगी, केवल चक्की का स्वर, श्रम का स्वर ढलती रात में, भीगती रात में अनसोए वात्सल्य का स्वर राह तलाशता रहेगा।' पंक्ति 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है ' से ली गई है
- पुरानी पीढ़ी व नयी पीढ़ी में अंतर दिखाया गया है।

उठ जाग मुसाफिर(विवेकी राय)

'उठ जाग मुसाफिर' प्रख्यात साहित्यकार विवेकी राय द्वारा विरचित ललित निबंध संग्रह है। इस संग्रह में कुल दस निबंध संकलित हैं जो अपने कलेवर में जीवन और जगत के अनेक अनुभवों से परिपूर्ण हैं। विवेकी राय हिंदी जगत के उन गिने-चुने साहित्यकारों में से हैं जिन्होंने ग्रामीण जीवन के यथार्थ को अपने साहित्य का आधार बनाया। वे जिस अंचल में रहते हैं वह अंचल ही उनके साहित्य का प्रेरणा स्रोत है, वही शब्द है, वही छंद है, वही राग है और वही साज और आवाज है। वहाँ की बोली-बानी, तीज-त्योहार, रहन-सहन, दुख-दर्द, आशा-निराशा, छल-छद्म को वहाँ की सामाजिक पहचान के साथ, उसकी तह तक जाकर अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त किया है। यह निबंध संग्रह उनके रचनात्मक विकास का बहुत ही महत्वपूर्ण चरण है। जिस तरह से उन्होंने अपने अनुभवों की प्रामाणिक अभिव्यक्ति अपने कथा-साहित्य में की है उसी तरह से अनुभव के लालित्य को इन निबंधों में अत्यंत रोचक तरीके से व्यक्त किया है। ग्रामीण जीवन का लालित्य यहाँ चिंता के रूप में भी आया है।

इस निबंध-संग्रह को समझने के लिए विवेकी राय के साहित्यिक सफर को समझना बहुत जरूरी है, क्योंकि इस संग्रह के निबंध अनेक जगहों पर इनके पूर्ववर्ती साहित्य की ओर झाँकने के लिए विवश कर देते हैं। हिंदी उपन्यास लेखन में विवेकी राय का आविर्भाव 'बबूल' (1967) के साथ होता है। उसके बाद 'पुरुषपुराण', 'लोकऋण', 'श्वेतपत्र', 'सोना माटी', 'समर शेष है', 'मंगल भवन' और 'अमंगलहारी' के रूप में उनके कथा लेखन का विस्तृत परिक्षेत्र विकसित हुआ है। इन सभी उपन्यासों का यहाँ उल्लेख करना इसलिए आवश्यक है क्योंकि 'उठ जाग मुसाफिर' के निबंध भी किसी न किसी रूप में इन उपन्यासों से जुड़ते हैं और यही एक सुचिंतित साहित्यकार की संवेदनात्मक गहराई होती है।

ऐसा लगता है जैसे यह निबंध संग्रह उनके कथा लेखन के बृहद अनुभव का निचोड़ है। जिस तरह की सरसता इन निबंधो में है वह बिरले देखने को मिलती है। विवेकी राय मूलतः ग्रामीण जीवन से अभिप्रेरित साहित्यकार हैं। उनका संपूर्ण साहित्य ग्रामीण अनुभूतियों में रचा-बसा है। 'बबुल' से लेकर 'उठ जाग मुसाफिर' तक विवेकी राय की समर्थ और यथार्थवादी रचनात्मक दुनिया ही उनकी पहचान है। 'उठ जाग मुसाफिर' में दम निबंध हैं जो लगभग समाप्त होती हुई इस साहित्यिक विधा के लिए पुनर्जीवन की तरह हैं।

हिन्दी साडिल्य चैनल 'उठ जाग मुसाफिर' का पहला निबंध 'मेरी दिनचर्या : कुछ आयाम' है। यह निबंध किसी भी उस मनुष्य के जीवन के अनुभव का हिस्सा हो सकता है जिसके मन में अपनी जमीन के लिए अगाध सम्मान और प्रेम का भाव होगा। पाठक इसके हर हिस्से में खुद को, परिवार के किसी बुजुर्ग को, उसके मनोभावों को, उसकी सोच को देख सकता है। जिस तरह से नई पीढ़ी आधुनिकता के भागमभाग में बेचैन है और बुजुर्ग लगभग एकल और उपेक्षित जीवन की निराशा से जूझ रहे हैं, ऐसे में यह संग्रह हमें नए सिरे से अपने परिवेश को, अपने कर्तव्य को समझने के लिए प्रेरित करते हैं।

लेखक की ऊर्जा देखते बनती है, वे लिखते हैं, "मैं मुंह बिराती सी जर्जर दीवार नहीं हूँ। चिन्मय सत्य हूँ, रचनाकार हूँ, बाहर नहीं भीतर हूँ।" और आत्मविश्वास का तो कहना ही क्या, मसलन-- "मेरा यह पड़ाव समय का जबर्दस्त सत्य है। यह समस्त भ्रम-तमस को फाड़कर आँखें खोल देता है।" इसके अनेक हिस्से ऐसे हैं जो पाठक की संवेदना को अनुभूति की उस गहराई तक ले जाते हैं जहां वह रचना में खुद के जीवन से एकाकार हो जाता है। दूसरा निबंध 'नमो वृक्षेभ्यः' आंखे खोलने वाला है। एक वृक्ष को आधार बनाकर लिखा गया यह लेख उनके अध्ययन के विस्तार का से अवगत कराता है।

इस निबंध को पढ़ते समय प्रसिद्ध ललित निबंधकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का 'कुटज' याद आता है। एक वृक्ष आज की आवाज का अद्भुत मानवीकरण किया है। लिखते हैं, "ऐसा लग रहा है, यह पर्यावरण-विध्वंसकों की चुनौती को स्वीकार करता है, उनके विरुद्ध शंखनाद करता नया रुद्रावतार है, साक्षात रुद्र प्रतीक, जिसको यजुर्वेद के ऋषि ने बहुत पहले ठीक से जाना था और सम्मानित किया था, 'नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः।" उसके बाद 'उठ जाग मुसाफिर' है। इस निबंध में एक अद्भुत कथात्मक लय दिखाई देती है। ऐसा लगता है अपने जीवन की इस लंबी यात्रा के अनुभव के हर क्षेत्र को इस निबंध में रचनाकार ने निचोड़कर रख दिया है। इसे पढ़ते हुए स्वानुभूति और सहानुभूति का सवाल भी । सामने आ जाता है। साहित्य में सहानुभूति को प्रथम श्रेणी का नहीं माना जा रहा है। स्वानुभूति ही यथार्थ की अभिव्यक्ति का मानक बनती जा रही है।

यह निबंध स्वानुभूति की अभिव्यक्ति का मानक हो सकता है। बानगी के लिए हम देखा सकते हैं। लिखते हैं, "कुसमय की साफ-सुथरी, सात्विक और सुवासित अभिव्यक्तियाँ व्यक्ति के जीवनव्यापी ऊंचे सोच और उत्कृष्ट चिंतनाभ्यास की फलश्रुति होती है। ऐसे जीवनसंबल वाला व्यक्ति राग रहित हो, तो मुक्त हास बिखेर सकता है। जिसको दुनिया जीवन की सांझ कहती है वह उसका प्रभात होता है। उस प्रभात शिखर से आवाज देता है उठ जाग मुसाफिर।" आगे के निबंधों में केना, ग्रीष्म बहार, ततः किम और तीनडॅड़िया चोट से उभरा समय और सवाल हैं। तीनों के विषय अलगअलग हैं लेकिन अभिव्यक्ति का विस्तार वही है। ज्ञान के अनेक छोर इस तरह से हिलोरे ले रहे है मानों हजारों नदियो का जल एक साथ एक जगह एकरूप हो रहा हो। उसके

बाद के तीन निबंध---'चिंता भारत के उजड़ते गाँवों की, गाँव पर बनाम गाँव में और सवाल जीवन का' है। यह कहना गलत नहीं होगा कि ये तीनों निबंध इस संग्रह के हृदय हैं। गाँव विवेकी राय के लेखन का केंद्र रहे हैं।

यहाँ भी उन्होने इसके उजड़ने की चिंता को उसके सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में रखने की कोशिश की है। उनकी चिंता कुछ इस तरह व्यक्त हुई है–"लगता है, गाँव भीतर से उठकर सड़क पर आता जा रहा है। किसान दुकान बनाता जा रहा है। खेत में खड़ा है तो उसका चेहरा कुछ और तरह का है तथा सड़क पर कुछ और तरह का।" और वहीं जो सबसे बड़ी समस्या है कि, "किसानी मरी तो किसान कहाँ बचेगा?" इस तरह अनेक सवाल इस संग्रह में हैं जो हमें झकझोरने के लिए, हमें अंदर से हिला देने के लिए काफी हैं। उपन्यासकार के रूप में अपने रचनात्मक जीवन की शुरुआत करने वाले इस प्रतिभाशाली साहित्यकार ने ललित निबंध की विधा को भी अपेक्षित ऊंचाई दी है, लेकिन हिंदी की एकपक्षीय नगरीय बोध की आलोचना ने ग्रामीण बोध को स्वीकार नहीं किया। आज जिस तरह से गाँव उपेक्षित है उसी तरह से ग्रामीण लेखन भी। दोनों की अपनी सांस्कृतिक पहचान है।

हिंदी की शास्त्रीय परंपरा में आचार्य अभिनव गुप्त ने लोक को साहित्य के आधार के रूप में परिभाषित किया है लेकिन आधुनिक आलोचकों के में रचा-बसा गाँव महत्वपूर्ण नहीं रहा। उन्होने भी पश्चिम को ही विचार का आधार समझा। फणीश्वरनाथ रेण और विवेकी राय को छोड़कर अभी तक किसी भी कथाकार के पास ऐसा सामर्थ्य नहीं है कि गाँव को उसकी संपूर्णता में अभिव्यक्त कर सके। इतिहास, लोक और साहित्य में भी किसी न किसी रूप में जिंदा रहता है। जहां पुस्तकीय इतिहास मौन या असमर्थ हो जाता है वहाँ साहित्य में प्रकट तथ्य ही इतिहास ही प्रतिपूर्ति करते हैं।

उत्तराफाल्गुनी के आसपास- कुबेरनाथ राय

ललित निबन्धकार के रूप में प्रसिद्ध कुबेरनाथ राय के प्रमुख निबन्ध संकलन हैं- रस आखेटक, प्रिया नीलकण्ठी, विषादयोग, पर्ण मुकुट, लौह मृदंग, गन्धमादन, महाकवि की तर्जनी, कामधेन, त्रेता का वृहद साम। उन्होंने वर्णनात्मक एवं विवरणात्मक निबन्ध भी लिखे हैं। कुबेरनाथ जी की भाषा संस्कृतनिष्ठ तत्सम प्रधान शब्दावली से युक्त परिनिष्ठित, प्रांजल हिन्दी है। शब्द चयन में वे पर्याप्त सजग है तथा लोकजीवन के शब्दों का प्रयोग भी निबन्धों में करते है।

आपके निबन्धों में चिन्तन का गाम्भीर्य, आत्मव्यंजकता, बहुलता, लोकजीवन की अभिव्यक्ति, रागात्मकता, बौद्धिकता, आदि का समन्वय दिखाई पडता हैं। इन निबंधों के विषय लोकजीवन एवं लोक संस्कृति से लिए गए है। सामयिक युग चेतना भी इन निबन्धों में अनिवार्य रूप से समाहित रहती है। कल्पना के बल पर वे सामान्य विषयों को भी भारतीय संस्कृति से सम्बद्ध कर देने में कुशल है। इनके निबन्धों में समाज, राजनीति का समसामयिक स्वरूप भी दिखाई देता है। अपनी बात को पुष्ट करने के लिए संस्कृत के उद्धरण वे प्रायः देते रहते है।

कुबेरनाथ जी ने निबन्धों में परम्परा और आधुनिकता का समन्वय है। समकालीन लोकजीवन एवं ग्रामीण संस्कृति उनके निबन्धों में देखी जा सकती है। हृदय और बुद्धि का समन्वय भी इन निबन्धों में स्थान-स्थान पर दिखाई देता है। तत्सम भाषा, सुगठित वाक्य विन्यास, सामासिक पदावली आपके निबन्धों की विशेषताएं है। आवश्यकतानुसार शैली का स्वरूप भी आपके निबन्धों में बदलता रहता है। कुबरेनाथ राय द्वारा रचित

'उत्तराफाल्गुनी के आसपास' निबन्ध यों तो समूचा निबन्ध ही संदेशप्रधान है, किन्तु निबंधकार ने जिन बातों पर विशेष बल दिया है, वे निम्नांकित हैं- (1) शत-प्रतिशत अस्वीकार का भाव अनुचित है। सर्जक के लिए स्वीकारवादी और अस्वीकारवादी दोनों का होना आवश्यक है। (2) अस्तित्ववाद और मार्क्सवाद दोनों ही बौद्धिक स्तर पर मौसेरे भाई है। ये दोनों दर्शन विमूढ़ स्थिति के ही दो भिन्न संस्करण है। अतः दोनों ही त्याज्य है। (3) समय नदी की तरह निरन्तर प्रवाहशील होता रहता है। एक ही नदी में दुबारा हाथ डालना सम्भव नहीं होता है। काल-प्रवाह नदी ही हैं। (4)मूल्य तोड़े नहीं जा सकते है, वे बदले जा सकते है, फिर भी एक सनातन मूल्य परम्परा का अस्तित्व हमेशा रहता है, रहेगा। (5) बुद्धिजीवी वर्ग को धीरत्ता और संयम से काम लेना चाहिए। घबराकर किसी भी स्थिति के समक्ष समर्पण करना उचित नहीं है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि कुबेरनाथ राय द्वारा रचित 'उत्तराफाल्गुनी के आसपास' शीर्षक निबंध शैली की दृष्टि से रोचक, सरस और चिन्तन के धरातल पर गम्भीर और सुचिन्तित निबंध हैं। यह निबंध श्री राय की स्पष्ट दृष्टि, व्यवस्थित चेतना और संयमित विचारधारा या चिन्तनधारा को स्पष्ट करता है।

.इनका 'उत्तरफाल्गुनी के आसपास' निबन्ध ज्यातिष शास्त्र से सम्बन्धित है। वर्षा ऋतु का अन्तिम नक्षत्र उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र होता है। लेखक ने उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र को व्यक्ति के जीवनकाल के परिप्रेक्ष्य में देखा है। उन्होंने बताया कि 25वें वर्ष तक व्यक्ति मस्त रहता है। प्रकृति की खूबसूरती के दर्शन करता है। 25 से 30 वर्ष की अवस्था तक वह काम, क्रोध तथा मोह में लीन रहता है

30 वर्ष की आयु सृजनात्मक अवस्था होती है, जिसमें व्यक्ति अपने कार्यों से भावी जीवन की नींव रखता है। 30 वर्ष से 40 तक वह अपने द्वारा किए गए कर्मों का फल भोगता है तथा 40 वर्ष के बाद उसे वृद्धावस्था के संकेत मिलने लगते है। उनकी इन्द्रियाँ क्षीण होने लगती है। मन का उत्साह कम होने लगता है तथा मन शान्त होने लगता है। लेखक को सृष्टि के सृजक ब्रह्मा को बूढ़ा मानने में आपत्ति है। इनका कहना है कि जो सम्पूर्ण विश्व को रचने वाला है वह बूढ़ा कैसे हो सकता है, क्योंकि ब्रह्मा की मूर्ति सभी जगह श्वेत सहित बनी होती है। एक स्थान पर ब्रह्मा जी की युवा मूर्ति को देखकर इन्हें बहुत प्रसन्नता होती है। लेखक ने 40 वर्ष के बाद की अवस्था को उत्तराफाल्गुनी कहा है तथा इसको जीवन का अन्तिम पडाव माना है।

कविता क्या है(आचार्य रामचन्द्र शुक्ल)

चिन्तामणि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबन्धों का संकलन है, जिसके प्रथम भाग में निबन्ध में संकलित है। इस संग्रह के निबन्ध दो वर्गों में विभक्त किये जा सकते है- मनोविकार सम्बन्धी निबन्ध तथा समीक्षा सम्बन्धी निबंध । चिन्तामणि भाग 1 के 17 निबन्धों में से प्रथम दस निबन्ध भाव या मनोविकार सम्बन्धी निबन्धों को पुनः दो उपवर्गों में विभक्त कर सकते हैं- 1. साहित्य समीक्षा सम्बन्धी निबन्ध, 2. व्यवहारिक समीक्षा सम्बन्धी निबंध ।

इनमें से प्रथम में चार निबन्ध है- कविता क्या है, लोक-मंगल की साधनावस्था, मानवीकरण और व्यक्ति वैचित्र्यवाद तथा रसात्मक बोध के विविध रूप। शेष तीन-भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, तुलसी का भक्ति मार्ग और मानस की धर्मभूमि। शुक्लजी के व्यवहारिक समीक्षा सम्बन्धी निबन्ध है।

कविता क्या है, शुक्लजी का लम्बा निबंध है जो 'चिन्तामणि' का ग्यारहवां निबंध है और लगभग 36 पेज का है। इस निबंध में उन्होंने कविता की परिभाषा देते हुए, कविता की आवश्यकता, उपयोगिता, काव्य विषय,

काव्य भाषा, कविता और चमत्कारवाद् तथा कविता पर होने वाले अत्याचार पर विस्तार से प्रकाश डाला है। इस निबन्ध का सार निम्न शीर्षकों से प्रस्तुत किया जा सकता हैं

(1) कविता की परिभाषा- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कविता की परिभाषा देते हुए लिखा है- "जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है, उसे कविता कहते है।" कविता हृदय को स्वार्थ के संकुचित घेरे से ऊपर उठाकर लोक सामान्य की भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित करती है। इस भूमि पर पहुंचे हुए मनुष्य को कुछ काल के लिए अपना पता नहीं रहता क्योंकि वह अपनी सत्ता को लोकसत्ता में लीन किए रहता है। इस अवस्था में पहुंचे व्यक्ति की अनुभूति सबकी होती है या हो सकती है। इस अनुभूति योग के अभ्यास से हमारे मनोविकारों का परिष्कार होता है और शेष सृष्टि हमारे रागात्मक की रक्षा और निर्वाह होता है। शुक्लजी ने कविता को भावयोग कहा है और इसे ज्ञानयोग एवं कर्मयोग के समकक्ष माना है।

(2) सभ्यता के आवरण और कविता- इस शीर्षक के अन्तर्गत शुक्लजी ने यह प्रतिपादित किया है कि ज्यों-ज्यों सभ्यता के आवरण मानव के हृदय पर चढ़ते जायेंगे, त्यों-त्यों कविता की आवश्यकता बढ़ती जायेगी और कवि कर्म कठिन होता जायेगा। सभ्यता की वृद्धि के साथ-साथ मनुष्य अपने भावों को छिपाना सीख गया है। जैसे-जैसे मनुष्य के व्यापार बहुरूपी एवं जटिल होते गये त्यों-त्यों उसके मूल रूप प्रच्छन्न होते गये। प्रच्छन्नता का उद्घाटन कवि कर्म का एक मुख्य अंग बन गया है। काव्य में अर्थग्रहण मात्र से काम नहीं चलता, बिम्बग्रहण अपेक्षित होता है। यह बिम्बग्रहण निर्दिष्ट गोचर और मूर्त विषय का काल ही हो सकता है। कवि का प्रयास यह रहता है कि वह कविता में इन बिम्बों को उपस्थित कर प्रच्छन्ता को उजागर करे और वस्तुस्थिति से पाठकों को अवगत कराये। शुक्लजी का निष्कल यह है कि सभ्यता के प्रसार के साथ-साथ कविता की आवश्यकता इसलिए बढ़ेगी क्योंकि कविता ही हमारी मनुष्यता को जगाती है।

(3) कविता और सृष्टि प्रसार- इस शीर्षक के अन्तर्गत शुक्लजी ने काव्य की विषय-वस्तु एवं उसकी व्यापकता पर प्रकाश डाला है। काव्य का विषय मानव, प्रकृति, भावना, सौन्दर्य, सब कुछ हो सकता है। काव्य दृष्टि कहीं तो नरक्षेत्र के भीतर रहती है, मनुष्येतर बाह्य सृष्टि का चित्रण करती है तो कही समस्त
चराचर जगत को अपना लक्ष्य बनाती है। मानव की अन्त- बाह्य प्रकृति काव्य का विषय बनती है। प्रकृति के विविध रूपों का चित्रण भी कवियों ने काव्य में किया है। यह प्रकृति चित्रण आलम्बन रूप में तथा उद्दीपन रूप में विशेष तौर पर पाया जाता है।
जो कवि प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण करते रहे है, जिन्हें प्रकृति के प्रति गहरा अनुराग हैं, जो परिवेश के साथ उसका सश्लिष्ट विवरण देने में कुशल है, वे ही सच्चे प्रकृति प्रेमी है। संस्कृत के कवियों-बाल्मीकि, कालिदास ने आलम्बन रूप में प्रकृति का अत्यन्त मोहक चित्रण किया है, जो अन्यत्र बहुत कम मिलता
है।

सच्चा प्रकृति-प्रेमी कवि वहीं है जो प्रकृति के कोमल और कठोर, सुन्दर एवं उग्र सभी रूपों को अपनी भावना का विषय बनाते है। प्रकृति अनन्त रूपों में हमारे सामने आती है। उसके इन सब रूपों के प्रति कवि का सच्चा अनुराग होता हैं। जो कवि केवल प्रकृति के सुन्दर रूप का ही चित्रण अपने काव्य मे करते हैं, वे प्रकृति के सच्चे प्रेमी ने होकर विषयी और भोग-लिप्सु है और अपने शरीर सुख की सामग्री ही प्रकृति में खोजा करते है, ऐसे कवियों में रागात्मक सत्य की कमी है।

(4) काव्य और व्यवहार- कुछ लोग कविता पर यह आरोप लगाते है कि काव्य व्यवहार का बाधक है, उसके अनुशीलन से अकर्मण्यता आती है। शुक्लजी ने इस आरोप का जोरदार खण्डन किया है और यह प्रतिपादित किया है कि कविता भाव-प्रसार के द्वारा कर्तव्य के लिए कर्म-क्षेत्र का विस्तार कर देती है। मनुष्य को कर्म में प्रवृत्त करने वाली मूल वृत्ति भावात्मिका है। केवल तर्क-बुद्धि या विवेचना के बल से हम किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होते अपितु आन्तरिक प्रवृत्ति ही हमें उस कर्म में प्रवृत्त करती है। कर्म प्रवृत्ति के लिए मन में कुछ वेग आना आवश्यक है जो काव्य के अनुशीलन से ही सम्भव हो पाता है।
जो केवल अर्थोपार्जन पर ही अपनी दृष्टि केन्द्रित रखते है और स्वार्थ-बुद्धि से ही परिचालित होते है, उन्हें ही केन्द्रित रखते है और स्वार्थ-बुद्धि इसकी निन्दा करते है किन्तु जो भावुक एवं सहृदय है तथ जिनका हृदय स्वार्थ से संकुचित मण्डल से ऊपर उठ चुका है, जो दूसरों के सुख-दुख से प्रभावित होते है, उनके लिए कविता अत्यन्त आवश्यक और प्रयोजनीय वस्तु है जो मानव मात्र को सत्कर्म के लिए प्रेरित करती है।

(5) मनुष्यता की उच्च अमि और कविता- शुक्लजी का मत है कि कविता भावों एवं मनोविकारों का परिष्कार करती है तथा इनका क्षेत्र विस्तृत करते हुए इनका प्रसार भी करती है। मनुष्य पशु-पक्षी, फूल-पत्ते, रेत-पत्थर में भी सौन्दर्य देखकर मुग्ध होता है और यह सौन्दर्य हृदय को उत्तेजित कर भावना को जगाता है, कविता व्यक्ति को स्वार्थ के संकुचित घेरे से ऊपर उठाकर मनुष्यता की उच्च भूमि पर । प्रतिष्ठित करती है। शुक्लजी का कथन है- "कविता ही हृदय को प्रकृत दशा में लाती है और जगत के बीच क्रमशः उसका अधिकाधिक प्रसार करती हुई उसे मनुष्यत्व की उच्च भूमि पर ले जाती है। भावयोग की सबसे उच्च कक्षा पर पहुँचे हुए मनुष्य का जगत के साथ पूर्ण तादात्मक हो जाता है, उसकी अलग भाव सत्ता नहीं रहती, उसका हृदय विश्व हृदय हो जाता है।"

(6) कविता और मनोरंजन- प्रायः सुनने में आता है कि कविता का उद्देश्य मनोरंजन है किन्तु शुक्लजी का मत है कि कविता का उद्देश्य यदि मात्र मनोरंजन करना माना जाये तो कविता भी विलास की एक सामग्री हुई। वाल्मीकि, तुलसी, कालिदास जैसे कवियों ने शुद्ध मनोरंजन की दृष्टि से काव्य सृजन नहीं किया होगा, अतः निश्चित रूप से कविता का उद्देश्य मनोरंजन न होकर कुछ और ही है। कविता पढ़ते समय मनोरंजन अवश्य होता है। उसके उपरान्त कुछ और भी होता है। वह हमें कर्म स प्रवृत्त करती है, एक सन्देश देती है इसलिए मनोरंजन को काव्य का एकमात्र उद्देश्य नहीं कहा जा सकता।

हिन्दी की रीतिकालीन कविता मनोरंजन को प्रधान तत्व मानकर लिखी गयी इसलिए इसमें विलास की प्रधानता है। एक प्रकार के 'कविराज' (वैद्य) तो रईसों के मुँह में रस झोंकते थे तो दूसरे प्रकार के 'कविराज' (कवि) काव्य मे मकरध्वज रस ही झोंक देते थे।

(7) काव्य और सौन्दर्य- कविता हर प्रकार के सौन्दर्य को अभिव्यक्त करती है। सौन्दर्य बाहर की कोई वस्तु नहीं है अपितु मन के भीतर की वस्तु है। किसी वस्तु के प्रत्यक्ष रूप से हमारी अपनी सत्ता का जितना अधिक तिरोभाव होगा और मन की उस वस्तु के रूप में जितनी ही पूर्ण परिणति होगी, हमारी सौन्दर्यानुभूति उतनी ही बढ़ी हुई मानी जायेगी। सौन्दर्य का दर्शन मानव में ही कवि नहीं करता अपितु प्रकृति के विभिन्न व्यापारों में भी सौन्दर्य की झलक देखता है। कविता केवल वस्तुओं के रूप-रंग में सौन्दर्य की छटा नहीं दिखाती अपितु कर्म और मनोवृत्ति के सौन्दर्य के मार्मिक दृश्य सामने लाती है। जो कविता किसी रमणी के रूप माधुर्य से हमें तृप्त करती है, वही उसकी अन्तः वृत्तियों के सौन्दर्य के भी दिग्दर्शन कराती है। बाह्य प्रकृति के सौन्दर्य का बोध कराने वाली कविता अन्त प्रकृति में दया, दान, श्रद्धा, भक्ति आदि के सौन्दर्य का भी वर्णन करती है। कवि की दृष्टि सदैव सौन्दर्योन्मुखी होती है, चाहे वह जहाँ भी हो-वस्तुओं के रूप-रंग में अथवा व्यक्ति के मन, वचन और कर्म में। कभी-कभी उत्कर्ष साधन के रूप में कवि अन्तः एवं बाह्य प्रकृति के सौन्दर्य का मेल भी काव्य में दिखाते हैं।

(8) कविता और चमत्कारवाद- चमत्कार मनोरंजन की सामग्री है। अतः जो लोग मनोरंजन को काव्य का उद्देश्य मानते हैं, वे कविता में चमत्कार का समावेश भी करते है और उसे खोजते भी है। चमत्कार से शुक्लजी का तात्पर्य उक्ति के चमत्कार से है जिसके अन्तर्गत अनुप्रास, यमक, श्लेष आदि शब्दालंकारों के साथ-साथ वचन-वक्रता से जुड़े अर्थालंकार भी आते हैं। यद्यपि भावुक कवि भी काव्य में चमत्कार का विधान करते हैं किन्तु उसी सीमा तक जहाँ तक वह भाव-व्यंजना के लिए आवश्यक हो तथापि जिन लोगों के लिए चमत्कार ही काव्य का साध्य बन गया है, वहाँ काव्यत्व नष्ट हो जाते है और कवि की दृष्टि चमत्कार पर ही टिकी रहती है। इस प्रकार का चमत्कार हिन्दी के रीतिकालीन काव्य में प्रचुरता से देखा जाता है, जिसका शुक्लजी समर्थन नहीं करते।

काव्य और सूक्ति का मोटा अन्तर है कि यदि कोई उक्ति हृदय में भाव जाग्रत कर दे या प्रस्तुत वस्तु या तथ्य की मार्मिक भावना में लीन कर दे, तो वह काव्य है और जो उक्ति कथन के अनोखे ढंग, रचना वैचित्र्य, चमत्कार, कवि की निपुणता या श्रम की ओर ध्यान खींचे, वह सूक्ति है।

(9) कविता की भाषा - कविता की भाषा सामान्य भाषा से अलग होती है। कविता में कही गयी बात चित्र रूप में हमारे सामने आनी चाहिए। समय बीता जाता है कहने के स्थान पर कविता भाषा की लक्षणा शक्ति से काम लेकर रहेगी- समय भागा जाता है। काव्य भाषा में भावना को मूर्त रूप में रखने की आवश्यकता होती है, इसलिए उसमें जाति संकेत वाले शब्दों की अपेक्षा विशेष रूप व्यापार सूचक शब्द अधिक रहते हैं। कविता की भाषा में तीसरी विशेषता वर्ण-विन्यास की है। सामने सूखा वृक्ष खडा है, इस वाक्य को 'शुष्को वृक्षस्तिष्ठत्यग्रे' और 'नीरसतरूरिह विलसित पुरत' इन दो रूपों में व्यक्त किया जा सकता है। स्पष्ट है वर्ण विन्यास की

विशिष्टता के कारण द्धितीय कथन में काव्यतत्व है, प्रथम कथन मे नहीं। काव्य भाषा में नाद सौन्दर्य में उसकी आयु बढ़ती है। अन्त्यानुप्रास, वृत्ति विधान, लय आदि नाद सौन्दर्य में सहायक होते है। काव्य भाषा की चौथी विशेषता है- उपयुक्त शब्द चयन । शब्द प्रकरण विरुद्ध नहीं होने चाहिए। अत्याचारी से छुटकारा पाने के लिए कोई कृष्ण को पुकारा रहा है तो इसे मुरलीधर, राधिकारमण की अपेक्षा उसमें कसनिकन्दन जैसे शब्द प्रयुक्त करने चाहिए।

(10) काव्य और अलंकार- कविता में भावात्कर्ष दिखाने के लिए अलंकारों की आवश्यकता बराबर पड़ती है। कहीं-कहीं तो अलंकारों के बिना कवि का काम ही नहीं चलता किन्तु हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि अलंकार कविता के साधन है, साध्य नहीं। जिन कवियों ने इस बात को भुलाकर अलकारों को ही कविता का साध्य मान लिया उन्होंने अलंकारों का सायास प्रयोग करके कविता के रूप को विकृत कर दिया।
उपमानों को ऐसा प्रयोग नहीं करना चाहिए जो प्रस्तुत भाव के विराधी हों, केशव अलंकारवादी कवि के पचीसों पद्य अलंकार बहुल होते हुए भी प्रभावहीन है क्योंकि उसमें मार्मिकता नहीं है। जिस प्रकार कोई सुन्दर स्त्री आभूषण धारण करके अपनी शोभा बढ़ाती है। उसी प्रकार कविता भी अलंकारों से अपनी शोभा में वृद्धि करती है किन्तु कुरुप स्त्री अलंकार धारण करके सुन्दर नहीं बन सकती उसी प्रकार रमणीयता के अभाव में कोई कविता केवल अंलकारों के बल पर श्रेष्ठ नहीं कही जा सकती।

(11) कविता की आवश्यकता- शुक्लजी का विचार है कि कविता मानव के लिए अत्यन्त प्रयोजनीय वस्तु है इसीलिए संसार की सभी सभ्य-असभ्य जातियों में किसी न किसी रूप में कविता पाई जाती है। चाहे इतिहास न हो, दर्शन न हो, पर कविता का प्रचार अवश्य रहेगा। जैसे जैसे सभ्यता में वृद्धि होती जायेगी मनुष्य अपने ही व्यापारों के सघन और जटिल मण्डल में घिरता जायेगा और शेष सृष्टि के साथ अपने हृदय के सम्बन्ध को भूला रहेगा। इस परिस्थिति में उसकी मनुष्यता खोने का डर बराबर बना रहेगा। मानव की अन्तः प्रकृति में मनुष्यता को समय-समय पर जगाते रहने के लिए कविता मानव-जाति के लिए निरन्तर आवश्यक रहेगी, हाँ जानवरों को इसकी जरूरत नहीं है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र- दिल्ली दरबार दर्पण

वर्णनात्मक शैली का प्रयोग प्रायः इतिहास ग्रन्थों एवं निबन्धों में घटना, वस्तु एवं परिस्थिति का वर्णन करने के लिए भारतेन्दु जी ने किया है। 'दिल्ली दरबार दर्पण' में इस शैली को देखा जा सकता है।
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा 1877 ई. में 'दिल्ली दरबार दर्पण' लिखा गया। यह निबन्ध भारतेन्दु जी के भ्रम का एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है। दरअसल भारतेन्दु जी ने जहाँ-जहाँ भी जातीय प्रगति होने की हल्की सी भी सम्भावना देखी, उसकी प्रशंसा में अपनी लेखनी चलाई। महारानी विक्टोरिया का घोषणा पत्र भी एक ऐसी ही मरीचिका के समान था, जिसे भारतेन्दु जी सच मान बैठे और इसी में भूलकर राजराजेश्वरी का गुणगान किया। दिल्ली दरबार दर्पण में एक जगह ये लिखते हैं-" आजकल ऐसी राजनीति के कारण जिसमें जब जाति और धर्म के लोगों की समान रक्षा होती है, श्रीमती की हर एक प्रजा अपना समय निर्विघ्न सुख से

काट सकती है। सरकार के समभाव के कारण हर आदमी बिना किसी रोक-टोक के अपने धर्म के नियमों और रीतियों को बदल सकता है।

राजराजेश्वरी का अधिकार लेने से श्रीमती का अभिप्राय किसी को मिटाने या दबाने का नहीं है वरन् रक्षा करने और अच्छी राह बतलाने का है। सारे देश की शीघ्र उन्नति और उसके सब प्रान्तों की दिन पर दिन वृद्धि होने से अंग्रेजीराज के फल सब जगह प्रत्यक्ष दीख पड़ते है।" ।

भारतेन्दु जी के लिए अंग्रेजी राज इसलिए श्रेष्ठ था कि उसमें सभी धर्मों, जातियों को बिना किसी भेदभाव के समान रूप में विकास करने का अधिकार प्राप्त था और देश तथा जाति की प्रगति के दसों द्वार मानों खुल गए थे।

हजारीप्रसाद द्विवेदी - नाखून क्यों बढते हैं

'नाखून क्यों बढते है हजारी प्रसाद द्विवेदी का प्रसिद्ध निबन्ध है। नाखून मनुष्य आदिम हिंसक मनोवृत्ति का परिचायक है। नाखून बार-बार बढते हैं और मनुष्य उन्हें बार-बार काट देता है तथा हिंसा से मुक्त होने और सभ्य बनने का प्रयत्न करता है। मानव जीवन में आए दिन अनेक सामाजिक बुराइयों का सामना होता है, सभ्य समाज इसको नियन्त्रित करने का प्रयत्न करता है, साधु-सन्त अपने उपदेशों द्वारा मानव की इन बुराइयों से दूर रहने के लिए सचेत करते रहते है। सरकारें भी इन बुराइयों को रोकने के लिए कानून बनाती हैं। उपर्युक्त सभी प्रयत्न एक तरह से नाखून काटने के समान हैं। बुराई को जङ से खत्म करना तो सम्भव नहीं, लेकिन जो इनमें लिप्त रहते है, वे समाज में अपवाद माने जाते हैं।

द्विवेदी जी ने इस आलोचनात्मक निबन्ध में स्पष्ट किया है नाखूनों का बढ़ना मनुष्य की उस अन्ध सहजावृत्ति का परिणाम है, जो उसके जीवन में सफलता ले आना चाहती हैं तथा नाखूनों को काट देना स्व-निर्धारित आत्म बन्धन है, जो उसे चरितार्थ की ओर ले जाती है। नाखून का बढ़ना मनुष्य के भीतर की पशुता की निशानी है और उसे नहीं बढ़ने देना मनुष्य की अपनी इच्छा है। मनुष्य का अपना आदर्श है। इस निबंध के माध्यम से द्विवेदी जी यह स्पष्ट कर देना चाहते है कि मानव का अपने जीवन में अस्त्र-शस्त्रों को बढ़ने देना मनुष्य के अन्दर पलने वाली बर्बर पशुवृत्ति की पहचान है तथा अस्त्र-शस्त्रों की बढ़ोतरी को रोक देना मनुष्यत्व का अनुरोध तथा मानवता की पहचान तथा उसकी पहचान तथा उसकी आवश्यकता है। द्विवेजी जी ने इस निबंध के माध्यम से नाखूनों को प्रतीक बनाकर व्यंग्य के माध्यम से आज के तथाकथित बाहर से सभ्य दिखने वाले, किन्तु अन्दर से बर्बर समाज पर कटाक्ष किया है।

उन्होंने भारतीय और धर्म का विवेचन किया। रामायण,महाभारत लौकिक बौद्ध साहित्य,संत साहित्य की लोकधर्मिता व उनकी जन सम्बद्धता को उजागर किया। इनके निबन्धों में भारत की संस्कृति,परम्परा जीवन दर्शन,जीवन मूल्यों,आदर्शवादिता,उदारता,उदात्तता की अद्भुत छटा विद्यमान

इन्होंने अपने सांस्कृतिक निबंधों के माध्यम से नव-निर्माण का कार्य किया। इनके निबंधों में भारतीय संस्कृति की देन, कुटज, देवदास, अशोक के फूल, भारतवर्ष की सांस्कृतिक समस्या, हमारी संस्कृति और साहित्य का संबंध, शव साधना आदि प्रमुख हैं।

आचार्य द्विवेदी ने 200 से अधिक निबंधों की रचना की। जो अशोक के फूल, विचार और वितर्क, विचार-प्रवाह, हमारी साहित्यिक समस्याएँ, कल्पलता, साहित्य का अर्थ गतिशील चिंतन, मध्यकालीन धर्म साधना,

कुटज आदि निबंध संग्रहों में संकलित है। द्विवेदी के निबंधों को सांस्कृतिक साहित्यिक, शास्त्रीय, भाषा संबंधी, हिन्दी साहित्य ज्योतिष, धर्म- नीति, रवीन्द्र-गाँधी संबंधी, प्रकृति विषय आदि कई विषयों में विभाजित किया जा सकता है।

आचार्य द्विवेदी के निबंधों से उनका साहित्यिक दृष्टिकोण पता चलता है। वे साहित्य को मानव-सापेक्ष मानते हैं। वे कहते हैं कि हर चीज अशुद्ध है यदि कुछ शुद्ध है तो मानव की जिजाविषा। जो गंगा की अबाधित-अनाहित धारा के समान सब कुछ हजम करने के बाद भी पवित्र है। अपने निबंधों द्वारा वे समाज के पिछड़े, हाशिए पर धकेले गए वर्ग की आवाज भी उठाते हैं। 'कुटज' उनका ऐसा ही निबंध है।

द्विवेदी जी कहते हैं कि भारत की किसी भी भाषा के साहित्य का समुचित अध्ययन के लिए यह आवश्यक है कि हमें अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य से भी परिचित होना पड़ेगा। हिन्दी साहित्य का अध्ययन बिना पाली, प्राकृत और अपभ्रंश के अध्ययन के संभव नहीं । उन्होंने सिद्धों, नाथों, तथा वज्रयानियों की साधना पद्धति, उनके परिवेश युग तथा उनकी साहित्यिक विरासत पर खूब लिखा है।

हिन्दी साहित्य चैनल

भाषा की सहजता, प्रवाह तथा अभिव्यक्ति के दृष्टिकोण से आचार्य द्विवेदी एक आदर्श हैं। वे कहते हैं कि सहज भाषा का अर्थ सहज ही महान् बना देने वाली भाषा है। द्विवेदी जी कहते हैं कि मैं अन्य भाषाओं से शब्द लेने का बिल्कुल विरोधी नहीं हूँ। उनकी रचनाओं में अरबी,फारसी, अंग्रेजी आदि के शब्दों का बहुत प्रयोग हुआ है। वे भाषा में टीमटाम और आडंबर का विरोध करते हैं।

भाषा के समान ही द्विवेदी जी की शैली भी सरल और विविध रूप धारण करने वाली है। उन्होंने व्यास तथा समास दो नों की शैलियों को अपनाया है।

निबंध सारांश

अपनी छोटी लडकी के यह पूछने पर कि नाखून क्यों बढते है,आचार्य हजारी प्रसाद द्विवदी का ललित निबन्धकार की प्रवृति जाग उठती है और वे इसका उत्तर खोजने के लिए मनुष्य के आदिमकाल से अब तक के जीवन पर दृष्टिपात करते है और इस ललित निबन्ध में इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि नाखून पशुता के प्रतीक है और उनका काटना मनुष्यता की निशानी है। ये अस्त्र-शस्त्रों, अणु परमाणु बम्बो का बनना भी पशुता की प्रवृत्ति है। नाखून कटने पर भी बार-बार बढकर इस बात को सूचित करते है कि अज्ञान सर्वत्र आदमी को पछाडता है और आदमी सदैव उससे लोहा लेने को कमर कसते है।

मनुष्य को सुख भौतिक सुख समृद्धि से नहीं मिलेगा, अस्त्र-शस्त्र की बाढ से नहीं मिलेगा वरन् सच्चा सुख मिलता है प्रेम से, आत्मदान से। अनावश्यक अंगों के झडने के प्राकृतिक विकास में जिस दिन मनुष्य के नाखूनों का बढ़ना बंद हो जाऐगा उस दिन मनुष्य की पशुता भी समाप्त हो जाएगे। उस दिन के आने तक मनुष्य नाखून काटता रहेगा, पशुत्व को कुचलता रहेगा। महावीर प्रसाद द्विवेदी जीवन परिचय देखें

इस ललित निबंध में द्विवेदी जी ने मानवीय संस्कृति के उद्गम से लेकर उसकी आज तक की बहुविध स्थितियों का तर्कसंगत इतिहास प्रस्तुत करते हुए अपने इस ललित निबंध को बातचीत के स्तर से ऊपर उठा कर अपरिमेय क्षितिज प्रदान किया है। 'नाखून क्यों बढते है हजारी प्रसाद द्विवेदी का प्रसिद्ध निबन्ध है। नाखून मनुष्य आदिम हिंसक मनोवृत्ति का परिचायक है। नाखून बार-बार बढते हैं

और मनुष्य उन्हें बार-बार काट देता है तथा हिंसा से मुक्त होने और सभ्य बनने का प्रयत्न करता है। मानव जीवन में आए दिन अनेक सामाजिक बुराइयों का सामना होता है, सभ्य समाज इसको नियन्त्रित करने का प्रयत्न करता है, साधु-सन्त अपने उपदेशों द्वारा मानव की इन बुराइयों से दूर रहने के लिए सचेत करते रहते है।

सरकारें भी इन बुराइयों को रोकने के लिए कानून बनाती हैं। उपर्युक्त सभी प्रयत्न एक तरह से नाखून काटने के समान हैं। बुराई को जङ से खत्म करना तो सम्भव नहीं, लेकिन जो इनमें लिप्त रहते है, वे समाज में अपवाद माने जाते हैं। द्विवेदी जी ने इस आलोचनात्मक निबन्ध में स्पष्ट किया है नाखूनों का बढ़ना मनुष्य की उस अन्ध सहजावृत्ति का परिणाम है, जो उसके जीवन में सफलता(success) ले आना चाहती हैं तथा नाखूनों को काट देना स्व-निर्धारित आत्म बन्धन है जो उसे चरितार्थ की ओर ले जाती है। अमृतलाल नागर जीवन परिचय देखें

नाखून का बढ़ना मनुष्य के भीतर की पशुता की निशानी है और उसे नहीं बढ़ने देना मनुष्य(human) की अपनी इच्छा है। मनुष्य का अपना आदर्श

इस निबंध के माध्यम से द्विवेदी जी यह स्पष्ट कर देना चाहते है कि मानव का अपने जीवन में अस्त्र-शस्त्रों को बढ़ने देना मनुष्य के अन्दर पलने वाली बर्बर पशुवृत्ति की पहचान है तथा अस्त्र-शस्त्रों की बढ़ोतरी को रोक देना मनुष्यत्व का अनुरोध तथा मानवता की पहचान तथा उसकी पहचान तथा उसकी आवश्यकता है। द्विवेजी जी ने इस निबंध के माध्यम से नाखूनों को प्रतीक बनाकर व्यंग्य के माध्यम से आज के तथाकथित बाहर से सभ्य दिखने वाले, किन्तु अन्दर से बर्बर समाज पर कटाक्ष किया है।

विशेष:

यह विचार प्रधान व्यक्तिनिष्ठ निबंध है।

नाखून का बढ़ना पशुता का प्रतीक है,

नाखून का काटना मनुष्यता का प्रतीक है।

मानवतावादी स्वर प्रमुख। प्राचीनता और नवीनता का समन्वयता ।

यह निबन्ध कल्पलता' निबन्ध संग्रह में संकलित है।

भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है?

-भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र हिन्दी के युग प्रवर्तक साहित्यकार है। उन्होंने इस निबन्ध की रचना दिसम्बर 1884 ई. में बलिया के ददरी मेले के अवसर पर आर्य देशोपकारिणी सभा में भाषण देने के लिए की थी उनका मत है कि भारतवासियों को अन्धविश्वास त्यागकर शिक्षित होना चाहिए, उद्योग-धन्धों का विकास करना चाहिए और आलस्य को त्याग कर प्रगति की दौङ में शामिल हो जाना चाहिए तभी देश उन्नति कर सकेगा ।

इस निबन्ध का सार निम्न शीर्षकों में प्रस्तुत किया जा सकता है -

1. **कुशल नतृत्व का आवर** नेतत्व की आवश्यकता - देश की उन्नति तभी हो सकती है जब कोई कुशल नेता हमारा सही मार्गदर्शन करे। देश में प्रतिभाओं की कमी नहीं है, किन्तु उन्हें सही रास्ता दिखाने वाला कोई

नहीं है। जैसे रेल के सुन्दर एवं सुविधा सम्पन्न डिब्बे इंजन के अभाव में व्यर्थ है, उसी प्रकार कुशल नेतृत्व के अभाव में भारतवासी प्रगति से वंचित है। भारतवासियों में हनुमान की भाति अपार शक्ति है, पर उन्हें प्रेरित करने वाला जामवन्त चाहिए। राजा-महाराजा या नवाबों से कोई आशा मत रखो। वे हमें नेतृत्व प्रदान नहीं कर सकते, क्योंकि वे आलसी अकर्मण्य एवं विलासी हो गए हैं तथा उन्हें देश की कोई चिन्ता नहीं है।

2. **प्रतिस्पर्धा की जरूरत -** आज दुनिया के सारे देश प्रगति की दौड़ में एक-दूसरे से आगे निकलने के लिए प्रयास कर रहे है। यहाँ तक कि जापान जैसे छोटे देश भी अपनी पूरी शक्ति से देश की उन्नति के लिए सरपट भाग रहे है, किन्तु हम हिन्दुस्तानी जहाँ के तहाँ स्थिर खड़े हैं। हमारे भीतर प्रतिस्पर्धा का अभाव है। यदि हम इस प्रगति की दौड़ में अब भी पीछे रह गए तो देश पिछड़ जाएगा और यह कमी कभी पूरी नहीं की जा सकेगी।

3. **आलस्य का त्याग -** भारतेन्दु जी का मत है कि भारतवासियों को अपना समय व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिए वही देश उन्नति करता है। भारत में लोग इतने आलसी हो गए है कि मलूकदास के इस वाक्य को ही अपना जीवन दर्शन बना बैठे है - अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम, दास मलूका कहि गए सबके दाता राम । इस आलस्य एवं अकर्मण्यता के कारण ही हमारा देश दरिद्र है। निर्धन व्यक्ति एवं निर्धन देश की कोई इज्जत नहीं होती है। हमें ऐसा प्रयास करना चाहिए जिससे हमारे देश की गरीबी समाप्त हो और धन बढ़ें। यह तभी सम्भव है जब हम हिन्दुस्तानी आलस्य को त्यागकर जी-जान से कठोर परिश्रम करेगें।

4. **भातन्निति के मूल उपाय-** हमारे धर्म में जो गुण हैं उनको अच्छी तरह समझे, अन्धविश्वासों को त्यागे । त्योहार हमारे घरों की सफाई का अवसर उपस्थित करते है। उनकी महत्ता को समझकर तद्नुरूप आचरण करें। सब उन्नतियों का मूल धर्म है, किन्तु धर्म के नाम पर जो कुरीतियां प्रचलित की गई है उन्हें त्यागें। बाल विवाह न करें, बहु-विवाह की प्रथा त्यागें, लड़कियों को शिक्षित करें, जहाज के सफर पर प्रतिबन्ध न लगावें, इसके साथ ही पारस्परिक सद्भाव विकसित करें, छुआ-छुत को समाप्त करें और ऊच-नीच की भावना को दूर कर सभी धर्मों के लोग परस्पर मिल-जुलकर रहें, तभी भारतवर्ष उन्नति कर सकता है।

5. **शिक्षा एवं उद्योग -** धन्धों का विकास - देश की उन्नति के लिए शिक्षा का सर्वांगीण विकास आवश्यक है। हम सब बच्चों को अच्छी शिक्षा दे, उन्हें कार्यकुशल बनाए। लड़कों को नई-नई तकनीक सिखाकर रोजगार सिखलाएं उन्हें विदेश भेजकर नया हुनर सीखने को प्रेरित करे तथा अपने देश में ही। उद्योग-धन्धों का विकास करें। यह शर्म की बात है कि हम दियासलाई भी विदेश से मंगाते हैं। हमें । अपनी दैनिक आवश्यकता की वस्तुएँ अपने देश में ही बनानी चाहिए। परदेशी वस्तु और परदेशी भाषा को त्यागकर अपने देश की बनी वस्तुओं एवं अपनी भाषा को व्यवहार में लाना चाहिए।

भारतेन्दु जी का मत है कि यदि हम इन उपायों पर अमल करें तो निश्चय ही हमारे देश की उन्नति ही सकेगी।

अध्यापक पूर्णसिंह - मजदूरी और प्रेम

'मजदूरी और प्रेम' सरदार पूर्णसिंह का एक प्रसिद्ध तथा प्रेरक निबन्ध है। इस निबन्ध में लेखक ने हल चलाने वाले किसान को स्वभाव से साधु, त्यागी तथा तपस्वी बताया है। 'खेत' किसान की यज्ञशाला है तथा वह अपने जीवन को तपाते हुए अपनी मेहनत को ही फसल के रूप में उगाता है। खेती ही उसके ईश्वरीय प्रेम का केन्द्र है। उसका सारा जीवन पत्ते, फूल और फल में बिखरा हुआ है तथा खेत की हरियाली ही उसकी वास्तविक खुशी है।

लेखक ने खुली प्रकृति में जीवनयापन करते हुए गडरिए के पवित्र जीवन का निरूपण करते हुए लिखा है कि वह किस प्रकार खुले आसमान के नीचे बैठा ऊन कातता रहता है, उसकी भेडें चरती रहती हैं तथा उसकी आखों में प्रेम की लाली छाई रहती है। उसके बच्चे शुद्ध हृदय वाले हैं। लेखक ने मजदूर की मजदूरी का उल्लेख करते हुए स्पष्ट किया है कि मजदूर कठिन परिश्रम करके सारे दिन कार्य करता है, किन्तु उसे उसके परिश्रम के अनुकूल मजदूरी नहीं मिलती।

यदि एक विधवा सारी रात बैठकर कमीज सीती है और सीते-सीते थक जाती है, किन्तु पैसे का लोभ से वह कमीज भी नहीं सीती, अपितु कमीज सी कर ही उसे चैन की साँस मिलती है। ऐसा परिश्रम प्रार्थना, संध्या या नमाज कम नहीं है। मनुष्य के हाथ द्वारा बनी हुई वस्तुओं में निश्चय ही उसकी प्रेममय पवित्र आत्मा निवास करती है हाथ से किए जाने वाले परिश्रम में एक अद्भुत रस होता है, जीवन रहता है, उसके हृदय का प्रेम रहता है। आभा एवं कान्ति रहती है। मजदूरी और कला का निरूपण करते हुए लेखक ने मशीनों के प्रयोग की भर्त्सना की है और उसे मजदूर की मजदूरी छीनने वाली बताया है।

लेखक का मानना है कि मशीनें मनुष्य को निकम्मा और अकर्मण्य बना देती हैं, जबकि हाथ से काम करने से वह सदैव परिश्रमी, उद्योगी और पवित्र रहता है। अतः लेखक मशानों के स्थान पर हाथ से होने वाले काम को महत्त्व देता है।

लेखक ने भीख माँगने के स्थान पर परिश्रम करक जीवनयापन करने को महत्त्व दिया है।लेखक ने परिश्रम एवं हाथ से काम करने वाली प्रवृत्ति को दूध की धारा समान बताया है, जो मानव के हृदय को पवित्र बनाती है तथा सच्चे ऐश्वर्य की प्राप्ति कराती है। लेखक के अनुसार पश्चिमी देशों में भी लोग अब मशीनों की अपेक्षा मजदूरी को महत्त्व देने लगे हैं। अन्त में लेखक यही सलाह देता है कि जड मशीनों की पूजा छोडकर सचेतन मजदूरों को गले लगाना चाहिए। इसी से मानव का कल्याण होगा तथा समाज समृद्ध व खुशहाल रहेगा।

मजदूरी और प्रेम : सरदार पूर्ण सिंह

1. किसान के ईश्वर प्रेम का केन्द्र है -

11. "मन क घोडे हार गए है।" इसका

क्या आशय है ?

» खेती।

2. "भोले भाव मिलैं रघुराई" यह कथन किसका है ? > मन की विचार करने की शक्ति खत्म हो गई है।

12. "मेरी आँखों के सामने ब्रहमानन्द का समां बाँध दिया" लेखक को ब्रहमानन्द किससे प्राप्त हुआ ?

→ गुरुनानक जी का।

3. गडरिया और उसके परिवार की पूजा किसको कहा गया है ?

> भेड़ो की सेवा को।

4. लेखक के अनुसार सच्ची फकीरी का अनमोल भूषण क्या है ?

> मजदूरी और श्रम।

5. लेखक ने किसान को किन-किन उपनामों से सम्बोधित किया है ?

> गडरिये की कन्याओं को पहाडी राग अलापते एवं नृत्य करते देखकर लेखक को ब्रहमानन्द प्राप्त हुआ।

13. "इसको पहनना मेरी तीर्थयात्रा है।" किसकी ओर संकेत किया गया है ? > कमीज की ओर (जो विधवा द्वारा सीली गयी थी)

14. यही धर्म है।' सरदार पूर्णसिंह के अनुसार धर्म क्या है ? - मानव से प्रेम करना और उसके लिए श्रम करना ही सच्चा धर्म है।

15. "बरफानी देशों में वह मानो विष्णु के समान क्षीरसागर में लेटा हो।" लेखक का यह कथन किसके लिए कहा गया है ?

» प्रकृति का जवान साधु, बिना मुकट वाला गोपाल, गौवों का मित्र, बैलों का हमजोली पक्षियों का हमराज, महाराजाओं का अन्नदाता, भूखों और नंगो को पालने वाला, समाज के पुष्पोद्यान का माली।

6. पुस्तक देखते ही लेखक को किसकी याद आ जाती है ?

> गडरिये के लिए।

16. 'समाज के पुष्पोद्यान का माली किसे कहा है

> जिल्दसाज।

7. लेखक के अनुसार नया साहित्य कहाँ उत्पन्न हो गया ?

> मजदूरों के हृदय में।

> किसान को।

17. "यह सूर्य को देख रही है और वह इसको देख रहा है।" पंक्ति में 'वह' किसके लिए आया

8. लेखक ने किसे बेघर, बेनाम और बेपता कहा है ?

- गडरिये को।

9. लेखक पूर्ण सिंह ने किन-किन व्यक्तियों को साधु कहा है ?

> किसान व भेड़पालक को।

10. लेखक ने किसान को किसके समान बताया गया है ?

> ब्रह्मा के समान।

» सूर्य के लिए।

18. "किसी के घर में न घर कर बैठना इस दारे फानी में। ठिकाना बेठिकाना और मकाँ बर ला-मकाँ रखना।" पंक्ति किस निबन्ध से है ?

> मजदूरी और प्रेम (सरदार पूर्णसिंह)।

19. जीवन का आध्यात्मिक नियम क्या है ?

→ मजदूरी करना।

20. लेखक के अनुसार पृथ्वी का अपने ही अक्ष पर दिन-रात घूमना क्या माना जाएगा?

21. फकीरी का उच्च भाव शिथिल कब हो जाता है ?

» उसका स्वार्थ।

→ बिना मजदूरी करने पर।

22. लेखक के अनुसार मजदूरी का ऋण कैसे चुकता है ?

- परस्पर प्रेम-सेवा से।

प्रतापनारायण मिश्र- शिवमूर्ति

प्रतापनारायण मिश्र कृत निबंध 'शिवमूर्ति' भारतेन्दु युग का प्रतिनिधि गद्य रूप है। यह 19वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में लिखा गया था। इसमें भारतीय मनीषियों का जनजागरण, संस्कृति का उप-पाठ निहित है साथ ही कला का पाठ भी। इसमें प्रतीकों के माध्यम से बड़े सरल और सहज ढंग से इस बात को रेखांकित किया गया है कि भारत का शिक्षित वर्ग भारतीयता, भारतीय संस्कृति और भारतीय प्रतीकों के प्रति कितना उदासीन है।

'शिवमूर्ति' प्रतीक है तथा शिवमूर्ति के माध्यम से लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि मनुष्यों के बीच बैर नहीं होना चाहिए। इस निबन्ध में आस्तिकता का पाठ भी दृष्टव्य है। लेखक का कहना है कि-"हमारा मुख्य विषय शिवमूर्ति है और वह विशेषतः शैवों के धर्म का आधार है।" इससे जुड़े विषयों का दिग्दर्शन करके लेखक ने अपने शैव भाइयों से पूछा है कि आप भगवान गंगाधर के पूजक होकर वैष्णवों से किस बात पर द्वेष रख सकते हो ? यह प्रश्न आज भी उन्माद और अराजकता का बोलबाला है।

प्रतापनारायण मिश्र समन्वय के पक्षधर हैं। वे अन्धी आस्था के स्थान पर तर्क का पाठ प्रस्तुत करते हुए कहते है- "यदि धर्म से अधिक मतवालेपन पर श्रद्धा हो तो अपने प्रेमाधार भगवान भोलानाथ को परम वैष्णव एवं गंगाधर कहना छोड़ दीजिए, नहीं तो सच्चा शैव वही हो सकता है, जो वैष्णव मात्र को अपना देवता समझे - इससे शैवों का शाक्तों के साथ विरोध अयोग्य है, हमारी समझ में तो आस्तिक मात्र को ही किसी से द्वेष बुद्धि रखना पाप है क्योंकि सब हमारे जगदीश जी की ही प्रजा है, सब हमारे खुदा ही के बन्दे हैं, इस नाते सभी हमारे भारतीय बन्धु है। विश्वबन्धुत्व का यह दर्शन लोकतान्त्रिक और सहअस्तित्व का दर्शन है, जिसकी आज भी दुनिया को सबसे अधिक आवश्यकता है। इस निबन्ध में मिश्रजी ने पहले मूर्तियों की चर्चा की, बाद

में धातुओं की, जिनसे मूर्तियों का निर्माण किया जाता है, फिर मूर्तियों के रंगों की और फिर मूर्तियों के आकार की। पूरी निबन्ध अपने आप में सुगठित है।
सारांश रूप में हम कह सकते हैं कि "शिवमूर्ति निबन्ध के माध्यम से लेखक भगवान शिव का सहारा लेकर देशवासियों को भाईचारे व विश्व बन्धुत्व को पाठ पढाना चाहते है।

शिवशम्भु के चिट्ठे

- बालमुकुन्द गुप्त

बालमुकुन्द गुप्त (1865 - 1907 ई.) हिन्दी के निबन्धकार पत्रकार के रूप में माने जाते है। उनकी प्रसिद्ध एवं चर्चित रचनाएँ 'भारत मित्र' का सम्पादन करते हुए सामने आई। वे अनन्य राष्ट्रभक्त पत्रकार थे। वे भारतीय संस्कृति के प्रबल समर्थक थे तथा विदेशी सरकार पर तीखे व्यंग्य करने वाले लेखक के रूप में प्रसिद्ध थे।
हिन्दी पत्रकारिता के उन्नयन में गुप्तजी ने 'भारत मित्र' के माध्यम से अनूठी प्रतिभा, तीक्ष्ण दृष्टि का परिचय दिया। 'शिवशम्भु के चिढ़े और खत' शीर्षक कॉलम में लिखी उनकी रचनाएं अत्यन्त लोकप्रिय हुई।

'शिवशम्भु के चिठे' शीर्षक रचना व्यंग्य प्रधान निबन्ध है जिससे अग्रेजी शासन की निरंकुशता और भारतीयों पर किये गये अत्याचार, अंग्रेजों की शोषण नीति पर तीखे प्रहार किये गये है। अंग्रेज वायसराय लॉर्ड कर्जन पर करारे व्यंग्य लेखक ने यहां किये है। लेखक ने गूंगी जनता का मुखर वकील बनकर उन कठिनाईयों का वर्णन इस रचना में किया है जो अंग्रेजी शासन के दौरान उसे झेलनी पड़ रही थी इस रचना में गुप्तजी की ओजस्विता, निर्भीकता, दृढता तथा विनोदप्रियता देखते ही बनती है।
इस निबन्ध में अंग्रेज गवर्नर लॉर्ड कर्जन को व्यंग्य का निशाना बनाया गया है।
इस निबन्ध का सार निम्न शीर्षकों में प्रस्तुत किया जा सकता है।

(1) बुलबुल का शौक - अंग्रेज वायसराय लॉर्ड कर्जन को सम्बोधित करते हुए लेखक लिखता है कि माई लॉर्ड बचपन में मुझ भंगडी (भाग का सेवन करने वाला व्यक्ति को बुलबुल का बड़ा शौक था। मेरे गाँव के तमाम लोग बुलबुलबाज थे वे बुलबुले पकडत, पालते और लडाते थे पर मैं (शिवशम्भु शर्मा) इससे वंचित था। मैं तो केवल एक बुलबुल को हाथ पर बिठाकर ही प्रसन्न होना चाहता था पर मैं बाहमण कुमार था, मुझे बुलबुल कैसे मिलती पिताजी को यह डर था कि यदि इस बालक को बुलबुल दी तो यह मार देगा और हत्या होगी, या बिल्ली ही झपट्टा मारकर उसके हाथ से बुलबुल छीन ले जायेगी और खा लेगी, तो भी पाप लगेगा। बहुत अनुरोध के बाद पिताजी ने किसी मित्र की बुलबुल किसी दिन ला दी, तो वह एक घंटे से अधिक मेरे पास नहीं रहने दी गई और वह भी पिता की निगरानी में ही रह सकी।
सराय के भटियारे बुलबुल पकड़ा करते थे और गाँव के लडके उनसे दो-दो तीन-तीन पैसे में खरीद लेते थे पर बालक शिवशम्भु ऐसा नहीं कर सकता था। मन में अपार इच्छा होते हुए भी पिताजी की आज्ञा के बिना भला वह बुलबुल कैसे लाता और कहाँ रखता ? इसी कारण मन में उधेडबुन चलती। जंगल में उड़ती बुलबुल को देखकर वह फडक उठता और बोली को सुनकर हृदय नाचने लगता। मन में अनेक तरह की कल्पनाएं उठती। उन सब बातों से अनुभव भला दूसरों को क्या होगा ? सच तो यह है कि वह अनुभव दूसरों को हो ही नहीं

सकता। आज वृद्धावस्था में स्वयं शिवशंभु को बाल्यकाल से उस निर्वचनीय आनन्द का अनुभव नहीं हो सकता ?

(2) बुलबुल का सपना- बुलबुल पकडने की नाना प्रकार की कल्पनाएं मन ही मन करता हुआ बालक शिवशम्भू सो गया। सपने में देखा कि सारा संसार बुलबुलमय है तो गांव में बुलबुले उड रही है। घर के सामने जो खेल का मैदान है, उसमें सैकड़ों बुलबुलें उड रही है। वे सब बहुत ही नीचे उड रही थी, कभी-कभी उडकर उस बालक के हाथ पर भी आ बैठती थीं, शिवशम्भू आनन्दमग्न होकर इधर-उधर दौड रहा है। उसके कुछ साथी भी बुलबुलों को हाथ पर बिठाये इधर-उधर दौडते फिर रहे हैं।
आज उसकी मनोकामना पूरी हुई। बुलबुलों की कोई कमी उसे नहीं है। आनन्द का सिलसिला वहीं नहीं थमा अपितु उसने देखा सामने एक सुन्दर बाग है। वहीं से बुलबुलें उडकर आती है। वह दौडकर वहाँ पहुँचा, देखा वहां सोने के पेड थे और उनके पत्ते और फूल भी सोने के थे। उन पर सोने की बुलबुलें बैठकर गाती है और उडती-फिरती हैं वही सुनहरे कलशों वाला सोने का एक महल भी है, जिस पर बुलबुलें बैठी है।
बालक दो-तीन साथियों सहित महल पर चढ़ गया और अचानक वह महल, बगीचा बालकों सहित उड गया। अब बुलबुलें उस बालक के दिमाग से निकल गयीं। मैं कहाँ उड रहा हूँ माता-पिता से दूर-इस विचार के आते ही सुख स्वप्न भंग हुआ और वह कुनमुनाकर उठ बैठा। सपना टूटते ही देखा कि वह अपने घर में है, कल्पना की उडान समाप्त हो गयी थी।

(3) लॉर्ड कर्जन पर व्यंग्य- माई लॉर्ड जब से आप वायसराय बनकर भारत में पधारे तब से आपने बस बुलबुलों का सपना ही देखा है, कोई करणीय कर्म नहीं किया ? भारत की जनता (जो आपकी प्रजा है) के लिए आपने किसी कर्त्तव्य का पालन किया ? एक बार धैर्यपूर्वक इस बात पर विचार कीजिए। आपने पिछले पाँच वर्ष के कार्यकाल में अपने नुमाशयी कामों (दिखावे का काम) के अलावा और कोई प्रजाहित का काम किया ? आपने अपने कर्त्तव्य का ठीक ढंग से पालन नहीं किया। इस बार आपने जो बजट भाषण दिया वह आपके कार्यकाल का अन्तिम बजट भाषण था, जिसमें अपने क्वीन विक्टोरिया मेमोरियल हॉल और 'दूसरा दिल्ली दरबार' का जिक्र करते हुए केवल प्रदर्शन -प्रियता का परिचय दिया। अपने कर्तव्य का सही ढंग से पालन नहीं किया। भारत की दरिद्र प्रजा का हित करने वाला कोई काम आपने नहीं किया। उक्त दोनों कार्यों में भारत की गरीब प्रजा का भला कौन-सा हित होगा ?

(4) दिल्ली दरबार का उल्लेख- आपने जिस दिल्ली दरबार को अपनी उपलब्धि बताया, भारतवासियों की दृष्टि में वह बुलबुलों के स्वप्न से अधिक न था। जिस हाथी पर आप सोने की झूल और सोने का हौदा लगवाकर सवार हुए, वह अपने कीमती सामान सहित, जिसका था उसके पास वापस चला गया। आप भी जानते थे कि वह आपका नहीं और दर्शक भी जानते थे कि वह आपका नहीं। दरबार में जिस सुनहरे सिंहासन पर बैठकर आपने भारत के सब राजा महाराजाओं से सलामी ली, वह सिंहासन भी आपका न था। वह भी जहाँ से आया था, वहीं चला गया। ये सब चीजें नुमायशी थीं। इन सबसे आपको क्या हासिल हुआ ? अकबर की इज्जत उनके गुणों से थी न कि उनके तख्त से। आपको भी यह बात सोचनी चाहिए।

दरबार समाप्त होते ही पण्डाल तोड़ दिया गया। नुमाशयी चीजों का यही हश्र होता है। आपने स्वयं कहा था कि भारत के लोग यहाँ सदा रहेंगे जबकि हम विदेशी कुछ दिनों के लिए है। आपके वे 'कुछ दिन' बीत गये, अब तो आप 'कृपा' से मिले दिनों तक ही यहाँ है। यह चिट्ठा आपके पास शिवशम्भू इस आशा में भेज रहा है कि इन कुछ दिनों में ही आपको अपने कर्त्तव्य का ख्याल हो जाये।

(5) लॉड कजन को कर्तव्य की सीख- माई लॉर्ड यहाँ से विदा लेने से पहले भारत की प्रजा के लिए कुछ ऐसा कर जाइए जिससे इस देश की प्रजा के हृदय-मन्दिर में आपकी स्मृति बनी रहे। पर यह तभी हो सकता है जब वैसी स्मृति के लिए आपके हृदय में स्थान हो। जिस देश में लॉर्ड लैसडोन की मूर्ति बन सकती है, उसमें और किसकी मूर्ति नहीं बन सकती। क्या आप चाहते हैं कि उसके पास एक वैसी ही मूर्ति खडी की जाये। इस दरिद्र देश में ये मूर्तियां किस काम की ? केवल कुछ पक्षी ही उस पर रैन बेसरा लेते हैं। भारतवासी इन पत्थर की मूर्तियों को नहीं अपितु उन मूर्तियों को आदर देते हैं जो उनके हृदय में बसी हुई हैं। लॉर्ड रिपन (एक अंग्रेज वायसराय) की मूर्ति भारतवासियों के हृदय में है क्योंकि उन्होंने प्रजा हित के काम किये।
आपकी यादगार भी बन सकती है जनता के हृदय में, यदि आप अपने कर्तव्य का ठीक ढंग से पालन करें। आप 'शो' और 'ड्यूटी' का फर्क समझिए। आपके दिल्ली दरबार के 'शो' की याद कुछ दिन बाद फीकी पड़ जायेगी, उसी तरह जैसे शिवशम्भू शर्मा के बालपन का बुलबुल का सुख स्वप्न अब फीका पड़ चुका है।

(6) प्रतीकात्मकता- लेखक ने प्रतीकात्मक शैली में अपनी बात कही है। शिवशम्भू बुलबुल का चाव रखता था, इसका वास्तविक अर्थ है कि भारतीय जनता स्वन्तत्रता पाने की इच्छुक थी, लेकिन अंग्रेज शासक यह कहकर उनकी स्वतंत्रता पाने की इच्छा को ठुकरा देते थे कि तुम लोग स्वतंत्रता की रक्षा नहीं कर पाओगे। पता नहीं कब कहाँ से आकर कोई बिल्ली (चालाक एवं शक्तिशाली देश) उस बुलबुल (स्वतन्त्रता) को अपना निवाला बना ले। अन्तत भारतीयों का यह सपना फीका पड़ गया।
लॉर्ड कर्जन को सम्बोधित इन चिट्ठों में लेखक ने अंग्रेज सरकार की अनीति का खुलकर पर्दाफाश किया है। लेखक का मत है कि लॉर्ड कर्जन ने प्रजा हित का कोई ऐसा कार्य नहीं किया जिसकी सुखद स्मृति भारत की जनता के हृदय में चिरकाल तक संचित रहे। लेखक ने व्यंग्यात्मक लहजे में अपनी बात कही है तथा उसके वक्तव्य में निर्भीकता, देशभक्ति एवं विनोद वृत्ति साफ झलकती है

संस्कृति और सौंदर्य - नामवर सिंह

'अशोक के फूल' केवल एक फूल की कहानी नहीं, भारतीय संस्कृति का एक अध्याय है; और इस अध्याय का अनंगलेख पढ़नेवाले हिंदी में पहले व्यक्ति हैं हजारीप्रसाद द्विवेदी। पहली बार उन्हें ही यह अनुभव हुआ कि 'एक-एक फूल, एक-एक पशु, एक-एक पक्षी न जाने कितनी स्मृतियों का भार लेकर हमारे सामने उपस्थित है। अशोक की भी अपनी स्मृति-परंपरा है। आम की भी है, बकुल की भी है, चंपे की भी है। सब क्या हमें मालूम है? जितना मालूम है उसी का अर्थ क्या स्पष्ट हो सका है?' अब तो खैर हिंदी में फूलों पर 'ललित' लेख लिखनेवाले कई लेखक निकल आए हैं, लेकिन कहने की आवश्यकता नहीं कि 'अशोक के फूल' आज भी अपनी जगह है। कालिदास के प्रेमी पंडितों को पहली बार इस रहस्योद्घाटन से अवश्य ही धक्का लगा होगा कि जिस

कवि को वे अब तक अपनी आर्य संस्कृति का महान गायक समझते आ रहे थे वह गंधर्व, यक्ष, किन्नर आदि आर्येतर जातियों के विश्वासों और सौंदर्य-कल्पनाओं का सबसे अधिक ऋणी है।

वैसे तो भारत को 'महामानव सागर' कहनेवाले रवींद्रनाथ ठाकुर एक अरसे से यह बतलाते आ रहे थे कि जिसे हम हिंदू रीतिनीति कहते हैं वह अनेक आर्य और आर्येतर उपादानों का मिश्रण है, किंतु यही संदेश 'अशोक के फूल' के माध्यम से आया तो उसकी चोट कुछ और ही थी। क्या इसलिए कि यह मनोजन्मा कन्दर्प के धनुष से छूटा है? फूल की मार कितनी गहरी हो सकती है इसका एहसास कराने के लिए 'अशोक के फूल' के ये दो वाक्य काफी हैं: 'देश और जाति की विशुद्ध संस्कृति केवल बात की बात है। सबकुछ में मिलावट है, सबकुछ अविशुद्ध है।' और सच कहा जाए तो आर्य संस्कृति की शुद्धता के अहंकार पर चोट करने के लिए ही 'अशोक के फूल' लिखा गया है, प्रकृति-वर्णन करने के लिए नहीं। यह निबंध द्विवेदीजी के शुद्ध पुष्प-प्रेम का प्रमाण नहीं, बल्कि संस्कृति-दृष्टि का अनूठा दस्तावेज है।

नामवर सिंह ने 'संस्कृति और सौंदर्य' निबन्ध में द्विवेदी जी के संस्कृति एवं सौन्दर्य सम्बन्धी दृष्टिकोण की व्यापकता और प्रासंगिकता का उद्घाटन किया है। इस लेख के नामवर सिंह ने दो बातों- संस्कृति और सौन्दर्य पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया है। लेखक ने समकालीन सन्दर्भों में सस्कृति के प्रति आसक्ति या मोह को जडता बताया है। नामवर जी द्वारा इस निबन्ध के माध्यम से द्विवेदी जी के संस्कृति चिन्तन को उजागर करने का मूल उद्देश्य यह था कि तथाकथित खुद को आधुनिक और प्रगतिशील समझने वाले संस्कृति को लेकर कितने जङ हैं, जबकि संस्कार एवं विचार पूर्णतः धार्मिक और स्वभाव से आचार्य और कुछ हद तक दक्षिणपन्थी समझे जाने वाले द्विवेदी जी का संस्कृति चिन्तन कितना प्रगतिशील एवं उदार है।

नामवर सिंह ने द्विवेदी के सात्विक सौन्दर्य बोध को 'निराला' के सौन्दर्य बोध से जोडते हुए कहा है- "श्याम तन भर बँधा यौवन।" वे प्रगतिशील सौन्दर्य चेतना का आधुनिक क्रम निर्धारित करते हैं। नामवर सिंह जी ने द्विवेदी जी की लालित्य मीमांसा के तीन सूत्रों की चर्चा की है। पहले सूत्र के अनुसार द्विवेदी जी सौन्दर्य को सौन्दर्य न कहकर 'लालित्य' कहना चाहते थे। दूसरे सूत्र के अनुसार द्विवेदी जी की दृष्टि में कला और सौन्दर्य की सृष्टि विलास मात्र नहीं, बल्कि बन्धनों के विरुद्ध विद्रोह है। तीसरे सूत्र की चर्चा करते हुए नामवर सिंह जी लिखते हैं-"द्विवेदी जी की 'लालित्य मीमांसा' का तीसरा सूत्र है कि सौन्दर्य एक सृजना है-मनुष्य की क्षमता का परिणाम है।"

अन्त में नामवर सिंह जी द्विवेदी जी के सौन्दर्य सम्बन्धी चिन्तन का सार प्रस्तुत करते हुए कहते हैं- "जीवन का समग्र विकास ही सौन्दर्य है। यह सौन्दर्य वस्तुतः एक सृजन-व्यापार है। इस सृजन की क्षमता मनुष्य में अन्तर्निहित है। वह सौन्दर्य-सृजन की क्षमता के कारण ही मनुष्य है। इस सृजन व्यापार का अर्थ है बन्धनों से विद्रोह । इस प्रकार सौन्दर्य | विद्रोह है- मानव मुक्ति का प्रयास है।"

अब तो भारत की 'सामाजिक संस्कृति' की दिन-रात माला जपनेवाले बहुतेरे हो गए हैं। दिनकरजी ने तो 'संस्कृति के चार अध्याय' नाम से एक विशाल ग्रंथ ही लिख डाला; किंतु जैसा कि अज्ञेय ने लिखा है: 'काव्य की पड़ताल में तो दिनकर 'शुद्ध' काव्य की खोज में लगे थे, लेकिन संस्कृति की खोज में उनका आग्रह 'मिश्र संस्कृति' पर ही खोज में लगे थे, लेकिन संस्कृति की मिश्रता को ही उजागर करने का प्रयत्न है, उसकी संग्राहकता को नहीं। संस्कृति का चिंतन करनेवाले किसी भी विद्वान के सामने यह बात स्पष्ट होनी चाहिए कि संस्कृतियाँ प्रभाव ग्रहण करती हैं, अपने अनुभव को समृद्धतर बनाती हैं, लेकिन यह प्रक्रिया मिश्रण की

नहीं है। संस्कार नाम ही इस बात को स्पष्ट कर देता है। यह मानना कठिन है कि संस्कृति की यह परिभाषा दिनकर की जानी हुई नहीं थी; उनका जीवन भी कहीं उस मिश्रता को स्वीकार करता नहीं जान पड़ता था, जिसकी वकालत उन्होंने की। तब क्या यह संदेह संगत नहीं कि उनकी अवधारणा एक वकालत ही थी दृष्टि का उन्मेष नहीं ? और अगर वकालत ही थी तो उनका मुवक्किल क्या समकालीन राजनीति का एक पक्ष ही नहीं था, जिसके सांस्कृतिक कर्णधार स्वयं भी मिश्रता का सिद्धांत नहीं मानते थे, लेकिन अपनी स्थिति दढ़तर बनाने के लिए उसे अपना रहे थे?' (स्मृतिलेखा, पृ. 118)

इस 'मिश्र संस्कृति' की राजनीति से द्विवेदीजी कितने अलग थे, इसका प्रमाण यह है कि स्वाधीनता प्राप्ति के बाद जब से राष्ट्रीय स्तर पर अनुमोदित और प्रोत्साहित नीति के रूप में 'सामाजिक संस्कृति' का बोलबाला हुआ, द्विवेदीजी ने इस विषय पर लिखना लगभग बंद कर दिया। स्पष्ट है कि वे 'मिश्र संस्कृति' के वकील न थे और न एक वकील की तरह अपने पक्ष के लिए इतिहास से तथ्य बटोरने ही गए थे। उन्होंने तो उस अनुभूति को वाणी दी जो अपने अतीत के साहित्य को पढ़ते और कलाकृतियों को देखते समय अंतर्तम में उठी थी; और इस बात से तो संभवत: अज्ञेय भी इनकार न करेंगे कि द्विवेदीजी के लिए वह एक अमूर्त बौद्धिक 'अवधारणा' नहीं थी, बल्कि 'दृष्टि का उन्मेष' था। इसीलिए जब द्विवेदीजी कहते हैं कि 'सबकुछ अविशुद्ध है', तो तुरंत बाद यह भी जोड़ते हैं कि शुद्ध है केवल मनुष्य की जिजीविषा।' वह गंगा की अबाधित-अनाहत धारा के समान सबकुछ को हजम करने के बाद भी पवित्र है!'

इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि अज्ञेय जहाँ संस्कृति की केवल 'संग्राहकता' की हिमायत करते हैं, वहाँ द्विवेदीजी 'त्याग' का जिक्र करना नहीं भूलते। 'अशोक के फूल' में ही, में ही, उसी अनुच्छेद के अंतर्गत एक द्रष्टा की तरह 'मानवजाति की दुर्दम-निर्मम धारा के हजारों वर्ष का रूप साफ' देखते हुए वे कहते हैं: 'मनुष्य की जीवनी शक्ति बड़ी निर्मम है, वह सभ्यता और संस्कृति के वृथा मोहों को रौंदती चली आ रही है। न जाने कितने धर्माचारों, विश्वासों, उत्सवों और व्रतों को धोती-बहाती यह जीवनधारा आगे बढ़ी है। संघों से मनुष्य ने नई शक्ति पाई है। हमारे सामने समाज का आज जो रूप है वह न जाने कितने ग्रहण और
त्याग का रूप है।'

इसलिए द्विवेदीजी के सामने योजनाबद्ध रूप से एक 'मिश्र संस्कृति' तैयार करने की समस्या नहीं है, समस्या यह है कि 'आज हमारे भीतर जो मोह है, संस्कृति और कला के नाम पर जो आसक्ति है, धर्माचार और सत्यनिष्ठा के नाम पर जो जड़िमा है' उसे किस प्रकार ध्वस्त किया जाय ?

इस दृष्टि से यदि दिनकर का 'मिश्र संस्कृति' की एक राजनीति है जो अज्ञेय की संस्कार-धर्मी संग्राहक संस्कृति भी किसी और राजनीति के अनुषंग से बच नहीं जाती। जब वे कहते हैं कि संस्कृतियाँ प्रभाव ग्रहण करती हैं, अपने अनुभव को समृद्धतर बनाती है तो उसमें एक 'मूल संस्कृति' का अस्तित्व पहले ही से स्वीकार कर लिया गया है जो किसी प्रभाव से पहले 'विशुद्ध' है। आकस्मिक नहीं है कि अज्ञेय द्वारा स्थापित वत्सल निधि की 'हीरानंद शास्त्री स्मारक व्याख्यानमाला' के प्रथम आयोजन में प्रकाशित 'भारतीय परंपरा के मूल स्वर' में डॉ.गोविंदचंद्र पांडे भी लगभग ऐसे ही शब्दों में 'सामासिक संस्कृति' का विरोध करते हैं। डॉ. पांडे यह स्वीकार करते हैं कि 'विज्ञान, प्रविधि और भौतिक उपादानों के स्तर पर नाना समाजों में आदान-प्रदान अनायास और चिरपरिचित है; (और) इन साधनों का उपयोग समाज को प्रभावित करता है।' किंतु इसके साथ ही वे यह भी मानते हैं कि 'अतयं भावों, अनुभूतियों और आध्यात्मिक उपलब्धियों के स्तर पर संस्कृतियों का वास्तविक

मिलन अत्यंत कठिन होता है।' (पृ. 18-19) कुल मिलाकर इस विमर्श का निष्कर्ष यह है कि भारतीय संस्कृति की तथाकथित सामासिकता वास्तव में सभ्यता के क्षेत्र में ही लागू होती है और इस क्षेत्र में वह भारत की कोई विशेषता नहीं है।' (पृ. 20)

सवाल यह है कि 'सभ्यता' और 'संस्कृति' की जिन दो यूरोपीय अवधारणाओं को डॉ. पांडे ने भारत की संस्कृति के विवेचन के लिए अपनाया है, उनका संबंध 'सभ्यता' से है या संस्कृति से? आदान-प्रदान यदि सभ्यता के ही क्षेत्र में भी आदान-प्रदान होता है। फिर भी जिस तरह 'राष्ट्रीय स्तर पर अनुमोदित और प्रोत्साहित सामासिक संस्कृति' का विरोध डॉ. पांडे ने किया है उसे किसी अन्य पक्ष की राजनीति की वकालत न मानना अज्ञेय के लिए भी कठिन होगा। तर्क वही है जिसका इस्तेमाल उन्होंने दिनकर के संदर्भ में किया है। यदि दिनकर की 'सामाजिक संस्कृति' का संबंध राजनीति के एक पक्ष से है तो स्वयं अज्ञेय और गोविंदचंद्र पांडे की 'शुद्ध संस्कृति' का संबंध भी राजनीति के दूसरे पक्ष से जोड़ा जा सकता है। शुद्ध होने से ही वह राजनीति से मुक्त नहीं हो जाती।

द्विवेदीजी की दृष्टि में संस्कृति का यह आग्रह भी एक प्रकार का 'मोह' है जो बाधा उपस्थित करता है। संस्कृति में निहित जिस 'संस्कार' की ओर अज्ञेय ने संकेत किया है, उसकी अर्थवत्ता से द्विवेदीजी अपरिचित हैं, यह तो स्वयं अज्ञेय भी न स्वीकार करेंगे; फिर भी उन्हें यह देखकर आश्चर्य न होना चाहिए कि उन्होंने अक्सर इस 'संस्कार को भी बाधा माना है। लखनऊ विश्वविद्यालय के 'साहित्य का मर्म' (1948) शीर्षक व्याख्यानों में उनका जोर इसी बात पर है कि विवेक के परिष्करण के लिए किए गए संस्कार भी काल पाकर किसी नए सृजन के ग्रहण के लिए बाधा बन जाते हैं।

कहते हैं : 'संस्कार' शब्द का प्रयोग करते समय मुझे थोडा संकोच ही हो रहा है। संस्कार शब्द अच्छे अर्थ में ही प्रयुक्त होता है, परंतु मनुष्य स्वभाव से ही प्राचीन के प्रति श्रद्धापरायण होता है और प्राचीनकाल से संबद्ध होने के कारण कुछ ऐसी धारणाओं को श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगता है जो जब शुरू हुई होंगी तो निश्चय ही उपयोगी रही होगी परंतु बाद में उनकी उपयोगिता घिस गई और वे रुढि मात्र रह गईं। ऐसे संस्कार सब समय वहत्तर मानव पट भमिका खरे नहीं उतरते।' इन कालगत संस्कारों की चर्चा करने के बाद वे उन देशगत और जातिगत संस्कारों ओर भी संकेत करते हैं जो 'अन्य देश और अन्य जाति के विश्वासों पर आधारित साहित्य को समझने में बाधक होते हैं।

' प्रसंग यद्यपि साहित्य का है फिर भी संस्कार की यह भूमिका संस्कृति के क्षेत्र में भी स्वीकार की जा सकती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि संस्कार के उल्लेख मात्र से संस्कृति के क्षेत्र में दृष्टिगत होनेवाली संकीर्णता का परिहार नहीं हो जाता। 'संस्कार' की प्रक्रिया अंतत: संस्कृति के क्षेत्र में उस शुद्धीकरण की ओर ले जाती है जिसकी परिणति वर्जनशीलता में होती है - यह वही 'वर्जनशीलता' है जिस पर भारतीय संस्कृति के बहुत से हिमायतियों को अभिमान है। 'हमारे यहाँ' वाला ब्रम्हास्त्र इस वर्जनशील अहंकार की उपज है, जिसका मुकाबला द्विवेदीजी को अक्सर करना पड़ता था।

बहुत क्लेश होने पर ही 'हिंदी साहित्य की भूमिका' के उपसंहार में उन्होंने लिखा : 'आए दिन श्रद्धापरायण आलोचक यूरोपियन मतवादों को धकिया देने के लिए भारतीय आचार्य-विशेष का मत उद्धृत करते हैं और आत्मगौरव के उल्लास से घोषित कर देते हैं कि 'हमारे यहाँ' यह बात इस रूप में मानी या कही गई है। मानो

भारतवर्ष का मत केवल वही एक आचार्य उपस्थापित कर सकता है, मानो भारतवर्ष के हजारों वर्ष के सुदीर्घ इतिहास में नाम लेने योग्य एक ही कोई आचार्य हुआ है, और दूसरे या तो हैं ही नहीं, या हैं भी तो एक ही बात मान बैठे हैं।

यह रास्ता गलत है। किसी भी मत के विषय में भारतीय मनीषा ने गड्डुलिका-प्रवाह की नीति का अनुसरण नहीं किया है। प्रत्येक बात में ऐसे बहुत से मत पाए जाते हैं जो परस्पर एक दूसरे के विरुद्ध पड़ते हैं।' (पृ. 129)

चैनल

पंडितों की समझ का यह इकहरापन द्विवेदीजी की दृष्टि में एक बड़ी बाधा है। इस संकीर्ण इकहरेपन के खिलाफ संघर्ष करते हुए उन्होंने भारतीय संस्कृति की विविधता, जटिलता, परस्पर विरोधी जीवंतता और समृद्धि का पुन: सृजन किया। भारतीय संस्कृति के अंतर्गत आर्येतर जातियों के अवदान की उल्लसित चर्चा का कारण यही है। यदि इस प्रयास में कहीं आर्य-श्रेष्ठता के अहंकार को ठेस लगती है तो द्विवेदीजी इस बात से चिंतित नहीं दिखते। वस्तुत: यह दूसरी परंपरा की खोज का प्रयास है जिसका प्रयोजन मुख्यत: पंडितों की इकहरी परंपरा की संकीर्णता का निदर्शन है।

प्रसंगवश द्विवेदीजी के इस प्रयास की एक परंपरा हिंदी में पहले से दिखाई पड़ती है। एक दशक पहले जयशंकर प्रसाद को भी ऐसे ही भारत व्याकुल लोगों से पाला पड़ा था, जिनके जवाब में कवि को 'काव्य और कला' तथा 'रहस्यवाद' आदि निबंध लिखने पड़े थे। नए काव्य-प्रयोगों की 'प्रतिक्रिया के रूप में उन्हें भी 'भारतीयता की दुहाई' सुनाई पड़ी थी। काव्य और कला' निबंध का आरंभ ही इस प्रकार होता है कि 'भारतीय वाड्मय की' 'सुरुचि-संबंधी विचित्रताओं को बिना देखे ही अत्यंत शीघ्रता में आजकल अमुक वस्तु अभारतीय है अथवा भारतीय संस्कृति की सुरुचि के विरुद्ध है, कह देने की परिपाटी चल पड़ी है।' प्रसाद ने भी यह लक्षित किया था कि 'ये सब भावनाएँ साधारणत: हमारे विचारों की संकीर्णता से और प्रधानत: अपनी स्वरूप-विस्मृति से उत्पन्न हैं।

' यह संकीर्णता और स्वरूप-विस्मृति अपनी परंपरा के ऐतिहासिक और वैज्ञानिक विवेचन से ही दूर हो सकती है। किंतु प्रसाद ने अनुभव किया कि 'इसका ऐतिहासिक और वैज्ञानिक विवेचन होने की संभावना जैसी पाश्चात्य साहित्य में है, वैसी भारतीय साहित्य में नहीं। उनके पास अरस्तू से लेकर वर्तमान काल तक ही सौंदर्यानुभूति-सबंधिनी विचारधारा का क्रमविकास और प्रतीकों के साथ-साथ उनका इतिहास तो है ही, सबसे अच्छा साधन उनकी अविछिन्न सांस्कृतिक एकता भी है। हमारी भाषा के साहित्य में वैसा सामंजस्य नहीं है। बीच-बीच में इतने अभाव या अंधकार-काल हैं कि उनमें कितनी ही विरुद्ध संस्कृतियाँ भारतीय रंग स्थल पर अवतीर्ण और लोप होती दिखाई देती हैं; जिन्होंने हमारी सौंदर्यानुभूति के प्रतीकों को अनेक प्रकर से विकृत करने का ही उद्योग किया है।'

अपनी परंपरा में इस अभाव और अंधकार-काल के बावजूद प्रसाद ने 'रहस्यवाद' शीर्षक निबंध में सौंदर्यानुभूति की परंपरा को पुननिर्मित करने का प्रयास किया। इस परंपरा का आरंभ भी ऋग्वेद से ही होता है, किंतु यह आर्यजन की वह परंपरा है जिसके प्रतिनिधि इंद्र हैं और जिसमें 'काम' की पूर्ण स्वीकृति है। वह वरुण के अधिनायकत्व में विकसित होनेवाली असुर परंपरा से सर्वथा भिन्न है जो विधि-विधान और विवेक को विशेष महत्व देती थी। प्रसाद ने इन दोनों परस्पर-विरोधी परंपराओं के विकास की मनोरंजक रूपरेखा प्रस्तुत की है

और कहने की आवश्यकता नहीं कि उनकी दृष्टि में जीवन में 'काम' को पूर्णत: स्वीकार करके चलनेवाली आनंदवादी परंपरा ही मुख्य है अथच काम्य भी।

किसी प्रकार की प्रतिक्रिया प्राप्त न होने के कारण यह कहना कठिन है कि द्विवेदीजी प्रसाद द्वारा निरूपित आनंदवादी परंपरा से किस हद तक परिचित थे, किंतु तत्त्वत: यह वही परंपरा है जिसका श्रेय वे गंधर्व, नाग, द्रविड़ आदि आर्येतर जातियों को देते हैं। 'विचार और वितर्क' (1945) में संकलित अपने एक आरंभिक निबंध 'हमारी संस्कृति और साहित्य का संबंध' में लिखा है कि 'सबसे अधिक आयैतर-संश्रव साहित्य और ललित कलाओं के क्षेत्र में हुआ है।अजंता के चित्रित, साँची, भरहुत आदि में उत्कीर्ण चित्र और मूर्तियाँ आर्येतर सभ्यता की समृद्धि के परिचायक हैं।

महाभारत और कालिदास के काव्यों की तुलना करने में जान पड़ेगा कि दोनों दो चीजें हैं। एक में तेज है, दृप्तता है और अभिव्यक्ति का वेग है, तो दूसरे में लालित्य है, माधुर्य है और व्यंजना की छटा है। महाभारत में आर्य उपादान अधिक है कालिदास के काव्यों में आर्येतर। जिन लोगों ने भारतीय शिल्पशास्त्र का अनुशीलन किया है, वे जानते हैं कि भारतीय शिल्प में कितने आर्येतर उपादान हैं और काव्यों तथा नाटकों में उनका कैसा अद्भुत प्रभाव पड़ा है। पता चला है कि साँची, भरहुत आदि के चित्रकार यक्षों और नागों की पूजा करनेवाली एक सौंदर्य-प्रिय जाति थी, जो संभवत: उत्तर भारत से लेकर असम तक फैली हुई थी।

बहुत सी ऐसी बातें कालिदास आदि कवियों ने इन सौंदर्यप्रेमी जातियों से ग्रहण कीं, जिनका पता आर्थों को न था। कामदेव और अप्सराएँ उनकी देव-देवियाँ हैं, सुंदरियों के पदाघात से अशोक का पुष्पित होना उनके घर की चीज है, अलकापुरी उनका स्वर्ग है - इस प्रकार की अन्य अनेक बातें उनसे और उन्हीं की तरह अन्यान्य आर्येतर जातियों से महाकवि ने ली हैं।' इसी क्रम में आगे भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के बारे में भी, उसके आर्यों की विद्या न माननेवाले मत का जिक्र करते हुए कहते हैं : 'शुरू में एक कथा में बताया गया है कि ब्रम्हा ने नाट्यवेद नामक पाँचवे वेद की सृष्टि की थी। अगर आर्यों के वेदों से इसका कुछ भी संबंध होता तो पंडितों का अनुमान है, इस कथा की जरूरत न हुई। होती। वास्तव में भारतीय नाटक पहले केवल अभिनय के रूप में ही दिखाए जाते थे। उनमें भाषा का प्रयोग करता आर्य संशोधन का परिवर्धन है।

' (प्रथम संस्करण, पृ. 186-87) आर्येतर अवदान की इस सूची में यदि 'भक्ती द्राविड़ ऊपजी' और आभीरों के आराध्यवदेव बालकृष्ण तथा देवी राधा को जोड़ लें तो हमारी परंपरा में सुंदर माना जानेवाला ऐसा कुछ भी नहीं बचता जो आर्येतर न हो! एक भक्तिकाव्य को छोड़कर प्रसाद और हजारीप्रसाद द्विवेदी में इस बात को लेकर कोई मतभेद नहीं है कि क्या-क्या सुंदर है? अंतर केवल यह है कि प्रसाद जिसे आर्यों के एक समुदाय की परंपरा कहते हैं, हजारीप्रसाद द्विवेदी उसे ही विभिन्न आर्येतर जातियों का अवदान मानते हैं। फिर भी एक बात में उभयत्र समानता है कि हमारी परंपरा में जो भी सुंदर है वह आर्य नाम से प्रचारित मिथक से भिन्न है।

इस मिथकीय आर्यसे इतनी चिढ़ इसलिए है कि इसके ध्वजाधारियों को 'सुंदर' से परहेज है। जैसा कि प्रसाद ने 'रहस्यवाद' शीर्षक निबंध में स्पष्ट लिखा है: 'आनंद पथ को उनके कल्पित भारतीयोचित विवेक में सम्मिलित कर लेने से आदर्शवाद का ढाँचा ढीला पड़ जाता है। इसलिए वे इस बात को स्वीकार करने में डरते हैं कि जीवन में यथार्थ वस्तु । आनंद है, ज्ञान से वा अज्ञान से मनुष्य उसी की खोज में लगा है। आदर्शवाद ने विवेक के नाम पर आनंद और उसके पथ के लिए जो जनरव फैलाया है, वही उसे अपनी वस्तु कहकर स्वीकार

करने में बाधक है।' इसलिए नैतिकतावादियों को प्रत्युत्तर देने के लिए प्रसाद ने यदि 'सुंदर' की परंपरा को अपनी ही परंपरा के अंदर आर्येतर तत्त्वों के अभिन्न मिश्रण के रूप में विवेचित किया। एक की परंपरा और दूसरे की प्रति-परंपरा दो दिशाओं से चलकर एक ही बिंदु पर मिलती है - थोथे नैतिकतावाद के विरुद्ध 'सुंदर' की प्रतिष्ठा! 'सुंदर' को ही लेकर यह सारा विवाद इसलिए है कि जैसा कि प्रसाद ने कहा है : 'संस्कृति सौंदर्यबोध के विकसित होने की मौलिक चेष्टा है।'

यह आकस्मिक नहीं है कि भारतीय संस्कृति के नाम पर नैतिकता की ध्वजा फहरानेवाले प्रकृति के सौंदर्य को तो किसी प्रकार सह लेते हैं, पर नारी-सौंदर्य के सामने आँखे चुराने लगते हैं। उदाहरण के लिए शुक्लजी के लोकमंगल में प्रकृति के सौंदर्य के लिए तो पूरी जगह है, लेकिन छायावादियों की कौन कहे स्वयं विद्यापति के लिए तो पूरी जगह है, लेकिन छायावादियों की कौन कहे स्वयं विद्यापति और सूर जैसे भक्त कवियों का नारी-सौंदर्य भी ग्राह्य नहीं है। आनंद और माधुर्य को लोकमंगल की सिद्धावस्था का गौरवपूर्ण पद देकर उन्होंने साधनावस्था का मार्ग अपनी ओर से सर्वथा निष्कटंक कर लिया, क्योंकि साधना के मार्ग में माधुर्य से बाधा पहुँचने की आशंका है।

संभवत: ऐसे ही पूर्वग्रह का प्रत्याख्यान करने के लिए द्विवेदीजी ने अपनी साहित्य-साधना के आरंभिक सोपान पर ही 'हिंदी साहित्य की भूमिका' के साथ ही प्राचीन भारत का कला-विलास' (1940) नामक पुस्तक लिखी जो आगे चलकर परिवर्धित रूप में प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद' नाम से छपी। प्राचीन भारत में प्रचलित कलाओं के लगभग सौ संदर्भो का तथ्यात्मक विवरण उपस्थित करने से पहले 'कलात्मक विनोद' में द्विवेदीजी ने आरंभ में यह स्पाट कर देना आवश्यक समझा कि 'विलासिता और कलात्मक विलासिता एक ही वस्तु नहीं है। थोथी विलासिता में केवल भूख रहती है - नंगी बुभुक्षा पर कलात्मक विलासितासंयम चाहती है, शालीनता चाहती है, विवेक चाहती है।

सो,कलात्मक विलास किसी जाति के भाग्य में सदा-सर्वदा नहीं जुटता। उसके लिए ऐश्वर्य चाहिए, समृद्धि चाहिए, त्याग और भोग का सामर्थ्य चाहिए और सबसे बढ़कर ऐसा पौरुष चाहिए जो सौंदर्य और सुकुमारता की रक्षा कर सके। परंतु इनता ही काफी नहीं है। उस जाति में जीवन के प्रति ऐसी एक दृष्टि सुप्रतिष्ठित होनी चाहिए जिससे वह पशुसुलभ इंद्रिय-वृत्ति को और बाह्य पदार्थों को ही समस्त सुखों का कारण न समझने में प्रवीण हो चुकी हो, उस जाति की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परंपरा बड़ी और उदार होनी चाहिए और उसमें एक ऐसा कौलीन्य गर्व होना चाहिए जो आत्म-मर्यादा को समस्त दुनिया की सुख-सुविधाओं से श्रेष्ठ समझता हो, और जीवन के किसी भी क्षेत्र में असंदर को बर्दाश्त न कर सकता हो।

जो जाति संदर की रक्षा और सम्मान करता नहीं जानती वह विलासी भले ही हो ले, पर कलात्मक विलास उसके भाग्य में नहीं बदा होता।'

संक्षेप में यह उस सौंदर्यबोध की 'संस्कृति' है, जिसका अत्यंत संवेदनशील औश्र सूक्ष्मविवरण 'कलात्मक विनोद' के बाद के पृष्ठों में मिलता है, या फिर 'बाणभट्ट की आत्मकथा', 'चारु चंद्रलेख', 'पुनर्नवा' और 'अनामदास का पोथा' जैसी सर्जनात्मक कृतियों के उन प्रसंगों में जहाँ नारी-सौंदर्य अपने पूरे वैभव के साथ

प्रकट होता है तथा नृत्य-कला के प्रदर्शन के अवसर अक्सर उपस्थित होते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि द्विवेदीजी के इस सौंदर्यबोध में सर्वथा शास्त्रीय प्रत्यभिज्ञान ही नहीं, बल्कि उसमें एक सजग ऐंद्रिय संवेदन

की प्रत्यग्रता भी है। रूप, शोभा, सुषमा, सौभाग्य, चारुता, लालित्य, लावण्य आदि का ऐसा सूक्ष्म परिज्ञान और संवेदन हिंदी में दुर्लभ ही है।

इस सौंदर्यबोध को सामंती संस्कृति का पर्याय समझ लिए जाने का भ्रम न हो इसलिए 'मेघदूत-एक पुरानी कहानी', (1957) से पूर्व मेघ के 'पुष्पलावी मुखानम्' वाले 26वें छंद पर द्विवेदीजी की व्याख्या का एक अंश प्रस्तुत है : 'जो संपत्ति परिश्रम से नहीं अर्जित की जाती, और जिसके संरक्षण के लिए मनुष्य का रक्त पसीने में नहीं बदलता, वह केवल कुत्सित रुचि को प्रश्रय देती है।

सात्विक सौंदर्य वहाँ है, जहाँ चोटी का पसीना एड़ी तक आता है और नित्य समस्त विकारों को धोता रहता है। पसीना बड़ा पावक तत्व है मित्र, जहाँ इसकी धारा रुद्ध हो जाती है वहाँ कलुष और विकार जमकर खड़े हो जाते हैं। विदिशा के प्रच्छन्न विलासियों में यह पावनकारी तत्व नहीं है। उनके चेहरों पर सात्विक तेज और उल्लसित करनेवाली दीप्ति नहीं रह गई है। इसलिए मैं सलाह देता हूँ कि विश्राम करके आगे बढ़ना; क्योंकि प्रात:काल निचली पहाड़ी के इर्दगिर्द तुमको मनुष्य की सात्विक शोभा दिखाई देगी। वहाँ सवेरे सूर्योदय के साथ ही साथ तुम श्रमजल-स्नात नारियों की दिव्य शोभा देख सकोगे। नागरिक लोगों के आनंद और विलास के लिए कृषकों ने फूलों के अनेक बगीचे लगा रखे हैं।

प्रात: काल कृषक-वधुएँ फूल चुनने के लिए इन पुष्पोद्यानों में आ जाती हैं, उस प्रदेश में इन्हें 'पुष्पलावी' कहते हैं। 'पुष्पलावी' अर्थात् फूल चुननेवाली। ये पुष्पलावियाँ घर का कामकाज समाप्त करके उद्यानों में आ जाती हैं और मध्यान्ह तक फूल चुनती रहती हैं। सूर्य के ताप से इनका मुखमंडल ग्लान हो उठता है, गंडस्थल से पसीने की धारा बह चलती है और इस स्वेदधारा के निरंतर संस्पर्श से उनके कानों के आभरण रूप में विराजमान नीलकमल मलिन हो उठते हैं। दिन-भर की तपस्या के बाद वे इतना कमा लेती हैं कि किसी प्रकार उनकी जीवन-यात्रा चल सके। परंतु तुमको यहीं सात्विक सौंदर्य के दर्शन होंगे। उनके दीप्त मुखमंडल पर शालीनता का तेज देखोगे; उनकी भ्रू-भंग-विलास से अपरिचित आँखों में सच्ची लज्जा के भार का दर्शन कर पाओगे और उनके उत्फुल्ल अधरों पर स्थिर भाव से विराजमान पवित्र स्मित रेखा को देखकर तुम समझ सकोगे कि 'शुचि-स्मिता' किसे कहते हैं। इस पवित्र सौंदर्य को देखकर तुम निचली पहाड़ी की उद्दाम और उन्मत्त विलास-लीला को भूल जाओगे। वहाँत तुम संचय का विकार देखोगे और यहाँ आत्मदान का सहज रूप।' (प्रथम संस्करण, पृ. 45-46)

सिपुष्पलाबियों का यह श्रम-जल-स्नात सौंदर्य कालिदास का नहीं, द्विवेदीजी के 'कालिदास' का सौंदर्य है - क्लासिकी परंपरा से फूटती हुई आधुनिकता! संस्कृति को भी संस्कार देनेवाली यह एक और परंपरा है जो अनजाने ही निराला की 'श्याम तन भर बँधा यौवन' वाली 'वह तोड़ती पत्थर' से जुड़ जाती है।

इसलिए जो लोग द्विवेदीजी के सौंदर्य-संस्कार को रवींद्रनाथ के शांतिनिकेतन की देन बतलाते हैं वे सिर्फ आधी बात कहते हैं। शांतिनिकेतन में चारों ओर संगीत और कला का जो वातावरण था उसने निश्चय ही द्विवेदीजी के सुप्त सौंदर्यबोध को जागृत किया था। स्वयं द्विवेदीजी ने भी शांतिनिकेतन के संस्मरणों में आश्रम के उस वातावरण की चर्चा की है जिसमें संगीत जीवन का अविच्छेद्य अंग बन गया था और छोटेसे-छोटे बच्चों में भी सौंदर्य-निर्माण की सहज प्रेरणा काम कर रही थी। फिर भी उनके अपने सौंदर्यप्रेम का एक बहुत बड़ा स्त्रोत अपना लोक-संस्कार था। यही वजह है कि जीवन के संदर्भ में जब भी सौंदर्य-सृष्टि की बात उठती थी तो वे

उसे सामान्य जन-जीवन में उतारने की कल्पना करते थे। इस दृष्टि से 'विचारप्रवाह' (1959) में संकलित 'जनता का अंत : स्पंदन शीर्षक लेख विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

निबंध इस चिंता से आरंभ होता है : 'कुछ ऐसा प्रयत्न होना चाहिए कि इस वंचित जनता के भीतर रसग्राहिका संवेदना उत्पन्न हो, वे भी 'सुंदर' का सम्मान करना सीखें, 'सुंदर' ढंग से जीवन बिताना सीखें, 'सुंदर' को पहचानना सीखें।' एक सत्ख्यातिवादी की तरह द्विवेदीजी कहते हैं कि जनता के अंत:करण में अगर सौंदर्य के प्रति सम्मान का भाव नहीं है, तो जनता कभी भी सौंदर्य-प्रेमी नहीं बनाई जा सकती। किंतु उनका विश्वास है कि जनता के भीतर वह वस्तु स्तब्ध पड़ी हुई है।

उपयुक्त उद्दीपक के अभाव में वह स्पंदित नहीं हो रही है। इस उद्दीपक वस्तु को समाज में प्रतिष्ठित करना वांछनीय है। जनता की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति से वे बेखबर नहीं हैं। वे अनुभव करते हैं कि जिस जनता को पेर-भर अन्न नहीं मिलता, वह सौंदर्य का सम्मान नहीं कर सकती। नींव के बिना इमारत नहीं उठ सकती। 'भूखे भजन न होहिं गोपाला।' किंतु इसके साथ ही यह भी सच है कि 'जो जाति 'सुंदर' का सम्मान नहीं कर सकती वह यह भी नहीं जानती कि बड़े उद्देश्य के लिए प्राण देना क्या चीज है। वह छोटी-छोटी बातों के लिए झगड़ती है, मरती है और लुप्त हो जाती है।'

स्पष्टत: यह दृष्टि उस विचारधारा से नितांत भिन्न है जो जनता को तात्कालिक आर्थिक और राजनीतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संघर्ष में उतारने की विश्वासी है क्योंकि वहाँ यह समझ निहित है कि जनता के बोध का स्तर इतना ही नीचा है। जो जनता के 'अंत: स्पंदन' से अपरिचित हैं वे सारी शक्ति फौरी लड़ाइयों में ही क्षय करते हैं। कोई जाति कांति जैसे बड़े उद्देश्य के लिए जान की बाजी लगाती है तो इसलिए कि वह सिर्फ जीना नहीं चाहती, बल्कि सुंदर ढंग से जीना चाहती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि आज के अनेक राजनीतिक संगठन और आंदोलन सिर्फ इसलिए असफल हो रहे हैं कि उनके सामने जीवन का यह बड़ा उद्देश्य नहीं है और वे 'सुंदर' को एक अतिरिक्त या फालतू चीज समझते हैं।

द्विवेदीजी भी 'सौंदर्य' को 'अतिरिक्त' मानते हैं किंतु उनके 'अतिरिक्त' का अर्थ वह है जो आनंदवर्धनकृत 'लावण्य' की परिभाषा में है। वह किसी वस्तु के प्रसिद्ध अवयवों में से कोई भी नहीं है, उनसे अतिरिक्त है और फिर भी उन अवयवों को छोड़कर नहीं रह सकता। सो, सौंदर्य रूप नहीं है, लेकिन रूप को छोड़कर रह भी नहीं सकता। इस शास्त्रीय परिभाषा से द्विवेदीजी जीवन के लिए जो निष्कर्ष निकालते हैं, वह द्रष्टव्य है। कहते हैं - 'जीवन को सुंदर ढंग से बिताने के लिए भी जीवन का एक रूप होना चाहिए। बहुत से लोग कुछ भी न करने को भलापन समझते हैं। यह गलत धारणा है। सुंदर जीवन क्रियाशील होता है; क्योंकि क्रियाशीलता ही जीवन का रूप है। क्रियाशीलता को छोड़कर जीवन का 'सौंदर्य टिक नही सकता।' द्विवेदीजी के अनुसार इस भाव से चालित जन-समाज अंतत: 'राजनीतिक और आर्थिक शक्तियों पर कब्जा करने के प्रयास' से कम पर संतुष्ट नहीं हो सकता क्योंकि ' समाज व्यवस्था को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लेना एकदम असंभव हो गया है।'

किंतु उन संकीर्णतावादी क्रांतिकारियों से द्विवेदीजी सहमत नहीं हैं जो मनुष्य के भविष्य को सुखी बनाने के नाम पर आज उसके सौंदर्य-प्रेम को किसी न किसी बहाने कुचल देना चाहते हैं। अंतिम दिनों में लिखित

'परंपरा और आधुनिकता' शीर्षक लेख में वे कहते हैं : 'जो मनुष्य को उसकी सहज वासनाओं और अद्‌भुत कल्पनाओं के राज्य से वंचित करके भविष्य में उसे सुखी बनाने के सपने देखता है वह दूंठ तर्कपरायण कठमुल्ला हो सकता है, आधुनिक बिल्कुल नहीं। वह मनुष्य को समूचे परिवेश से विच्छिन्न करके हाड़-मांस का यंत्र बनाना चाहता है। यह न तो संभव है, न वांछनीय।' (ग्रंथावली 9/363)

इसलिए द्‌विवेदीजी मनुष्य की 'समस्त रचयित्री आनंदिनी वृत्ति' का विकास आवश्यक समझते हैं, क्योंकि चित्रकला, मूर्तिकला, वास्तुकला, धर्मविधान और साहित्य के माध्यम से उसी वृत्ति को अभिव्यक्ति मिलती

यह आकस्मिक नहीं है कि अंतिम दिनों में वे 'सौंदर्यशास्त्र' पर 'लालित्य-मीमांसा' नाम से एक पूरी पुस्तक लिख रहे थे। अपने प्रिय कवि कालिदास पर 'कालिदास की लालित्य-योजना' नामक पुस्तक पूरी करके वे स्वयं लालित्यशास्त्र पर ही व्यवस्थित और सांगोपांग विचार करना चाहते थे। उनके जीवन की सुदीर्घ सौंदर्य-चिंता और सौंदर्य-साधना की यह स्वाभाविक परिणति थी। दुर्भाग्य से उस पुस्तक के केवल पाँच ही निबंध पूरे हो पाए, पर उनसे भी उनकी व्यापक और मौलिक सौंदर्य -चिंता का कुछ आभास मिल ही जाता है। उन्हें इस तथ्य का एहसास है कि 'भारतवर्ष में इस प्रकार के किसी अलग शास्त्र की कल्पना नहीं की गई है; परंतु काव्य, शिल्प, चित्र, मूर्ति, संगीत, नाटक आदि की आलोचना के प्रसंग में और विविध आगमों में 'चरम सुंदर तत्त्व' की महिमा बताने के बहाने इसकी चर्चा अवश्य होती रही है।'

इसलिए अपनी इस छिन्न किंतु समृद्‌ध परंपरा के आधार पर ही उन्होंने लालित्य-चिंतन के भवन निर्माण का प्रयास किया है।

इस प्रयास का पहला सूत्र है कि वे सौंदर्य को सौंदर्य न कहकर 'लालित्य' कहना चाहते हैं, क्योंकि 'प्राकृतिक सौंदर्य से भिन्न किंतु उसके समानांतर चलनेवाला मानवरचित सौंदर्य' (ग्रंथावली 7/34) उनकी दृष्टि में विशेष महत्वपूर्ण है। लालित्य वह इसलिए है कि मानव द्‌वारा लालित है। सौंदर्य की इस मानववादी धारणा का स्त्रोत द्‌विवेदीजी ने अपनी परंपरा से ही ढूंढ निकाला। वह स्त्रोत है भरत मुनि का नाट्‌शास्त्र।

नाट्‌यशास्त्र में नाटक की उत्पत्ति की जो कथा दी गई है उसके अनुसार देवता नाटक न कर सके और नाटक कर सकने में मनुष्य को ही समर्थ समझा गया, क्योंकि उसमें देवताओं से एक विशिष्ट शक्ति है-अनुकरण की। यही नहीं, भरत मुनि ने अपने समय में प्रचलित रूपकों में से पूर्णांग सिर्फ नाटक और प्रकरण को ही माना जहाँ नायक मनुष्य होता है। नायकपर विचार करते हुए प्रसंगवश नाट्‌शास्त्र के अनुसार मनुष्य ही धीरोदात्त हो सकते हैं, जबकि 'देवा धीरोद्‌धता एवं' क्योंकि देवों में फलागम के लिए उतावली होती है और धीरोदात्त की भाँति धीरभाव से प्रत्याशा में वे नहीं उलझते।

इस प्रकार द्‌विवेदीजी 'कला-सृजन में मनुष्य की महिमा का सबल विवेक' भरत मुनि से प्राप्त करते हैं। सौंदर्य को मनुष्य-लालित माननेका दूसरा स्त्रोत है तांडव और लास्य का अंतर। पुराणगाथा के अनुसार शिव का तांडव रस-भाव-विवर्जित 'नृत्त' हैं जबकि पार्वती का लास्य रस-भाव-समन्वित नृत्य है। द्‌विवेदीजी इससे यह संकेत ग्रहण करते हैं कि 'तांडव जहाँ मानव पूर्व तत्त्वों का स्वत: स्फूर्त विकास है, वहाँ लास्य मानवीय प्रयासों का ललित रूप। (वही, 7/31) अंत में आगमों में वर्णित विश्वव्यापिनी सर्जनात्मक शक्ति 'ललिता' के प्रभामंडल से मंडित करते हुए वे मनुष्यनिर्मित सौंदर्य तत्त्व को 'लालित्य' की संज्ञा देते है। किंतु कुल मिलाकर समष्टिगत और व्यष्टिगत दोनों ही

स्तरों पर द्विवेदीजी की सौंदर्यदृष्टिमूलत : मानव-केंद्रित ही है। इसका अर्थ सिर्फ यही नहीं है कि सौंदर्य का स्त्रष्टा मनुष्य है, बल्कि यह भी कि सौंदर्य की सृष्टि करने के कारण ही मनुष्य मनुष्य है।

द्विवेदीजी की लालित्य-मीमांसा का दूसरा सूत्र यह है कि यह 'बंधन के विरुद्ध विद्रोह' है और 'बंधनद्रोही व्याकुलता को रूप देने का प्रयास' है। (7/38) नृत्य के संदर्भ में इसी बात को 'जड़ के गुरुत्वाकर्षण पर चैतन्य की विजयेच्छा' कहा गया है। (7/28) आकस्मिक नहीं है कि द्विवेदीजी ने अपने सभी उपन्यासों में किसी-न-किसी बहाने नृत्य का आयोजन किया है।

नृत्य भले ही बंधनों के विरुद्ध विद्रोह को व्यक्त करनेवाली सबसे जीवंत कला हो, किंतु अन्य कलाएँ भी नृत्य के इस धर्म का अनुसरण करती है, यह भी द्विवेदीजी ने यथास्थान स्पष्ट कर दिया है। इस प्रकार द्विवेदीजी की दृष्टि में कला और सौंदर्य ने यथास्थान स्पष्ट कर दिया है। इस प्रकार द्विवेदीजी की दृष्टि में कला और सौंदर्य की सृष्टि विलास-मात्र नहीं बल्कि । बंधनों के विरुद्ध विद्रोह है जो, शास्त्र समर्थित न होते हुए भी, उनकी क्रांतिकारी सौंदर्य-दृष्टि का परिचायक द्विवेदीजी की लालित्य-मीमांसा का तीसरा सूत्र यह है कि सौंदर्य एक सर्जना है - मनुष्य की सिसृक्षा का परिणाम। उल्लेखनीय है कि 'लालित्य-मीमांसा' के प्राप्त अंशों में सबसे अधिक विचार सिसृक्षा पर ही है, जिसका स्पष्ट अर्थ है कि वे मनुष्य की सृजनशीलता पर सबसे अधिकबल देना चाहते थे। विवेचन की शब्दावली अवश्य पुरानी है और प्राय : शैव तथा शाक्त दर्शनों की इच्छाशक्ति और क्रियाशक्ति का सहारा लिया गया है, किंतु अंतत: इस आध्यात्मिक शब्दावली के बीच से मनुष्य की वह सर्जनात्मक शक्ति ही प्रकाशित होती है जो सौंदर्य, कला और संस्कृति के मूल में है।

इसी सृजनशीलता के संदर्भ में उन्होंने उन 'रूढ़ियों' की भूमिका पर भी विचार किया है जो कलाकार के लिए सब समय बाधक ही नहीं होतीं, बल्कि कभी-कभी साधक या सहायक भी हो जाती है।

अंत में द्विवेदीजी एक ऐसे 'समग्र भाव' के रूप सौंदर्यकी स्थापना करते हैं जो धर्माचरण, नैतिकता आदि (जीवन की) सभी प्रकार की अभिव्यक्तियों को छापकर, सबको अभिभूत करके, सबको अंतर्ग्रथित करके 'सामग्र भाव ' का प्रकाश करता है।

उन्हीं के शब्दों में : 'भाषा में, मिथक में, धर्म में, काव्य में, मूर्ति में, चित्र में बहुधा अभिव्यक्ति मानवीय इच्छाशक्ति का अनुपम विलास ही वह सौंदर्य है जिसकी मीमांसा का संकल्प लेकर हम चले हैं। (न/34)

मीमांसा दुर्भाग्यवश अपूर्ण ही रह गई; पर संकल्प सार्थक है। 'जनता का अंत : स्पंदन' ही नहीं बल्कि अन्य रचनाओं के प्रकाश में 'लालित्य-मीमांसा' के सूत्रों को देखें तो संकेत स्पष्ट है : जीवन का समग्र विकास ही सौंदर्य है। यह सौंदर्य वस्तुत: एक सृजन व्यापार है। इस सृजन की क्षमता मनुष्य में अंतर्निहित है। वह इस सौंदर्य सृजन की क्षमता के कारण ही मनुष्य है। इस सृजन व्यापार का अर्थ है बंधनों से विद्रोह। इस प्रकार सौंदर्य विद्रोह है - मानव-मुक्ति का प्रयास है। (1982)

भाग 10

अरे यायावर रहेगा याद

अरे यायावर रहेगा याद

'अरे यायावर रहेगा याद' पुस्तक सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' द्वारा रचित यात्रा वृतान्त है। इसमें **आठ यात्रा वृत्तान्तों का वर्णन है** और सभी में पर्याप्त विविधता है। यात्राओं में असम, बंगाल, औरंगाबाद, कश्मीर, पंजाब व हिमाचल प्रदेश के भू-भागों का वर्णन है तथा इसमें तमिलनाडु के अति प्राचीन मन्दिरों के बारे में भी बताया गया है। इस पुस्तक की शुरूआत ब्रह्मपुत्र के मैदानी भाग में अवतरण से हुई, फिर बात हिमालय की दुर्गम झील में डेरा डालने की हुई और अन्त एलोरा की गुफाओं में इतिहास खोजने की कोशिश से हुआ।

'अज्ञेय' जी के यात्रा वृत्तान्तों को पढते समय पाठक को लगता है कि वह अज्ञेय जी के साथ स्वयं पहाडों में व नावों में घूम रहा है। लेखक ने स्थानीय लोगों के साथ उनकी भाषा में बात करके कई स्थानों के बारे में प्रचलित किंवदन्तियों के बारे में बताया है।

'अज्ञेय' जी ने एक लेख में पर्यटकों की जिम्मेदारियों का भी बोध कराया है। लाहौली लोगों में अपनी संस्कृति के प्रति अभिमान और बाहर से आने वाले लोगों के प्रति अनभिज्ञता का वर्णन करते हुए चिन्ता व्यक्त की है कि बाहर से आने वाले लोग किस प्रकार नशा, व्यसन आदि यहाँ पर लेकर आते हैं। माना कि पहाडी जनजातियाँ पर्यटकों की जीवन पद्धति के अनुसार विकसित नहीं है लेकिन उनमें विकृतियाँ तो नहीं है।

'अज्ञेय' जी के यात्रा वृतान्तों में पर्यावरण का, इतिहास का व साहित्य का चिन्तन देखने को मिलता है। उन्होंने प्रचलित ऐतिहासिक गाथा को उपलब्ध प्राकृतिक अवरोधों से तौलने की कोशिश की है और सोचा है कि उस समय क्या हुआ होगा।

'अज्ञेय' जी की भाषा संस्कृतनिष्ठ है। यात्रा वृत्तान्त की शैली कहानीमय है। ऐसा लगता है कि अज्ञेय जी कोई कहानी कह रहे हैं। हम सब उस कहानी के पात्र हैं। बीच-बीच में उन्होंने संस्कृत में सूक्तियाँ भी लिखी और हिन्दी की कविताएँ भी रची जो कि उतनी ही अच्छी है जितने अज्ञेय जी के यात्रा वृत्तान्त ।

'अज्ञेय' जी की दृष्टि के कारण यात्रा, भ्रमण की बजाय एक ऐसी घटना बन सकी जिसकी क्रिया-प्रतिक्रिया में अपना कुछ अगर खो जाता है तो बहुत कुछ मिल भी जाता है। अपना बहुत कुछ खोने, पाने और सृजन करने का नाम है 'अरे यायावर रहेगा याद' ।

अज्ञेय ने यात्रा-साहित्य संबंधी दो पुस्तकों की रचना की है, एक - 'अरे यायावर रहेगा याद' (1953) जिसमें अज्ञेय की भारतीय यात्राओं का विशद चित्रण है और दूसरा है 'एक बूंद सहसा उछली' (1965) जिसमें उनके युरोपीय यात्राओं का वर्णन है। इनके अतरिक्त अज्ञेय ने 'जन जनक जानकी' (1984) शीर्षक यात्रा-पुस्तक का संपादन भी किया है। अज्ञेय के यात्रा-वृत्तांतों में भौगोलिक सूचनाओं के अतिरिक्त संस्कृति, सभ्यता, दर्शन एवं इतिहास की विस्तृत जानकारी मिलती है। इस संदर्भ में प्रगतिशील आलोचक रामविलास शर्मा लिखते हैं कि " जो काम उनके पिता ने पुरातत्व क्षेत्र में किया - जमीन से शिलालेख, मूर्तियों के निकालने

का कार्य - वही काम अज्ञेय अंतिम वर्षों में अपने भारतीय अतीत के विशाल स्मृति प्रदेश में करना चाहते थे, इतिहास की राख-मिट्टी में दबे उन सब मील के पत्थरों को खोदकर बाहर निकालना, जिन पर भारतीय संस्कृति के पड़ाव-चिह्न अंकित थे।" निश्चित ही अज्ञेय अपने यात्रा वृत्तांतों के माध्यम से भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग - मिथकों, पौराणिकथाओं, को उत्कीर्णित करते हैं, जो सैकड़ो वर्षों से हमारी वाचिक और साहित्यिक परंपरा में किसी न किसी रूप में विद्यमान रहे हैं।

साहित्य

सन् 1953 में पहली बार प्रकाशित यह पुस्तक (अरे यायावर रहेगा याद) अज्ञेय की यात्रा संबंधी स्मृतियों का संग्रह मात्र नहीं है बल्कि यह पुस्तक अपने काल के भीतर और बाहर झाँकते हुए साँस्कृतिक विमर्श को प्रस्तुत करती है। अज्ञेय इस कृति में बिना किसी लाग-लपेट के संस्कृति, समाज और सभ्यता पर बेबाक विचार रखते हुए समग्र भारत के सांस्कृतिक विशेषताओं को प्रकाश में लाने का प्रयास किया गया है। अज्ञेय ने इस पुस्तक में उत्तर भारत के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक विशेषताओं का उद्घाटन करने के साथ-साथ 'सागर सेवित मेघ मिखलित' यात्रा-वृत्त के माध्यम से दक्षिण भारत की धार्मिक स्थलों की सांकृतिक महत्व को भी प्रस्तुत किया है। इनके अतिरिक्त, पुस्तक के प्रत्येक वृत्तांत में अज्ञेय के व्यक्तित्व की छाप और आधुनिक भारत की जानता के संस्कृति-बोध को पहचानने की उनकी पारखी दृष्टि का भी परिचय मिलता है। एक सचेत यायावर अपनी यात्रा केवल भ्रमण या मनोरंजन के उद्देश्य से नहीं करता है। सही अर्थों में उसके भ्रमण की सार्थतकता तभी होती है जब उससे उस यात्री की साँस्कृतिक-दृष्टि भी विकसित होती है। इसीलिए अज्ञेय कहते हैं - "भ्रमण या देशाटन केवल दृश्य-परिवर्तन या मनोरंजन न होकर सांस्कृतिक दृष्टि के विकास में भी योग दे, यही उसकी वास्तविक सफलता होती है।" इस दृष्टि से 'अरे यायावर रहेगा याद' एक उत्कृत्ट यात्रा-साहित्य है, क्योंकि इससे न केवल लेखक के सांस्कृतिक दृष्टि की जानकारी मिलती है, बल्कि पाठ के साथ यात्रा करते हुए पाठक भी भारतीय संस्कृति के संदर्भ में अपनी जानकारी को समृद्ध करता चलता है।

भारतीय संस्कृति कोई जड़ वस्तु नहीं होती है, एक जीवन्त भावना है, एक जीवन-विधि है, जो देश के हर एक मोड़ पर, प्रत्येक कोने में नज़र आती है। इन्द्रधनुष के रंगों की तरह वह अलग-अलग दिखाई देते हुए भी समेकित रूप से एक होती है। इसी भावात्मक एकता के कारण भारतीय संस्कृति के प्रत्येक रूप के प्रति सभी भारतीयों के मन में श्रद्धा जागृत होती है। यही कारण है कि सजग यायावर अपने देश के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग रूपों में विद्यमान सांस्कृतिक महत्व के स्थलों तक पहुँचना चाहते हैं और उनके अनुरक्षण एवं विस्तार में योग देना अपना कर्तव्य समझते है। पर जब अपने ही देश की संस्कृति एवं परंपरा के संवाहक उन क्षेत्रों के दर्शन के लिए किसी विदेशी अधिकारी से अनुमति माँगने के लिए बाध्य होना पड़े तो किसी भी स्वाभिमानी व्यक्ति को बहुत पीड़ा पहुँचाती है। इस पीड़ा को अज्ञेय ने भोगा है, इसीलिए वे लिखते हैं - "देश की प्रत्येक सीमा तीर्थ होती है, नहीं तो देश पुण्यभूमि कैसे होता है ? पर अपने ही तीर्थ तक जाने के लिए परदेशीय सत्ता के अहंमन्य प्रतिनिधि का मुंह जोहना जैसे चुभता है, उसे भुक्त भोगी जानते हैं.." अज्ञेय की इन पंक्तियों में देश की राजनीतिक पराधीनता की पीड़ा और सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थलों की उपेक्षा के प्रति चिंता स्पष्ट ही नज़र आती है। अज्ञेय की यह पीड़ा और भी बढ़ जाती

है जब देश की सांस्कृतिक विरासत के संवाहक स्थलों को विदेशी नामों से संबोधित किया जाने लगता है। इसीलिए वे लिखते हैं - “यायावर प्रायः कहा करता है कि देश की पराधीनता सब से अधिक अखरती है एक अपने हिमालय के अंग, संसार के सबसे ऊंचे शिखर का नाम 'एवरेस्ट' सुन कर, और एक सीमा-प्रदेशों में जाने के परमिट के लिए फिरंगी पोलिटिकल एजेंट के दफ्तर में जा कर।"

प्रायः ‘संस्कृति' शब्द को जीवन की ओर देखने का और जीवन जीने का दृष्टिकोण के रूप में अभिवर्णित किया जाता है। प्रसिद्ध समाजवैज्ञानिक मालिनॉफ्सकी ने 'जीवन की स्वीकृत पद्धतियों को ही संस्कृति संज्ञा दी है।. शाब्दिक दृष्टि से “ 'संस्कृति' शब्द का अर्थ 'अच्छा बनना', 'अच्छा व्यवहार करना' और 'अच्छे विचारों का प्रादुर्भाव होना' है। 'जैसे हैं वैसे ही रहे', उसी के अनुरूप व्यवहार करे तो वह 'प्रकृति' कहलाएगी और यदि उससे निकृष्ट व्यवहार हो तो वह 'विकृति होगी। मानव का जन्म इसीलिए हुआ है कि वह प्रकृति से । ऊपर उठे, अधिक अच्छा बने और अधिक परिष्कृत हो। इस दिशा में ही प्रयत्न किए जाने हैं।" 'संस्कृति' शब्द की व्याख्यायित करते हुए अज्ञेय लिखते हैं कि - ‘संस्कृति मूलतः एक मूल्यदृष्टि और उससे निर्दिष्ट होने वाले निर्माता प्रभावों का नाम है - उन सभी निर्माता प्रभावों का जो समाज को, व्यक्ति को, परिवार को, सब के आपसी संबंधों को, श्रम और संपत्ति के विभाजन और उपयोग को, प्राणिमात्र से ही नहीं वस्तु मात्र से हमारे संबंधों को, निरूपित और निर्धारित करते हैं।'

इस प्रकार 'संस्कृति' शब्द अधिक व्यापक अर्थ रखता है। संस्कृति की रचना एवं विकास में अनेक सदियों के अनुभवों का योग रहता है। इसके अन्तर्गत समाज, धर्म, ज्ञान, कला, विश्वास, प्रथा, कानून, विज्ञान, दर्शन, साहित्य, वास्तुकला, स्थापत्य, आदतें आदि सभी सम्मिलित हैं। अत्यंत व्यापक इस शब्द को विभिन्न क्षेत्र के अलग-अलग विद्वानों ने अलग-अलग तरह से परिभाषित किया है। अधिकतर विचारकों ने संस्कृति की व्याख्या अतीत की विशेषताओं को ध्यान में रख कर की है। उसके वर्तमान स्वरूप पर बहुत कम बात की है। पर अज्ञेय ऐसा नहीं करते, वे कहते है कि “यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि संस्कृति की कोई परिभाषा हम अपनाए संस्कृति की वर्तमान अवस्था की उपेक्षा हम नहीं कर सकते। बल्कि यों भी कह सकते हैं कि हमारा आरंभ बिंदु तो हमेशा वर्तमान ही होगा; वहीं पर खड़े होकर हम उसके अतीत का परिदृश्य और उसके भावी विस्तार की संभावनाएँ रखेंगे।” इसका अर्थ यह हुआ कि संस्कृति के संवाहक वस्तुओं, कलाओं एवं मान्यताओं के प्रति वर्तमान में हमारी जो दृष्टि होगी उसीसे उसका भविष्य सुनिश्चित होता है।

स्थापत्य का संस्कृति के साथ गहरा संबंध है। स्थापत्य के प्रतिरूप जैसे मंदिर, महल, गुफाएँ आदि संस्कृति के संवाहक होती हैं। महाराष्ट्र के औरंगाबाद के निकट स्थित एलुरा की गुफाएँ भारतीय शिल्पकला एवं भास्कर्य-कला की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती है। ये गुफाएँ सदियों पुराने लोगों की आदर्श-साधना के प्रतिफल हैं। देश-काल के सभी बंधनों से मुक्त इन गुफाओं की मूर्तियाँ यात्रियों एवं पर्यटकों को घेर कर उनके मानस पर छा जाती हैं। पर इन चट्टानों के मध्य पड़े दरारों को देख यात्रियों को उनकी उपेक्षित अवस्था का बोध होता है। दुख तो तब होता है जहाँ एक ओर सदियों पुरानी भारतीय सांस्कृतिक विरासत के ढोये हुए एलुरा की मूर्तियाँ झर्झर अवस्था में हैं तो दूसरी ओर उनके पास ही निर्मित औरंगजेब और उनके परिजनों की कब्रे चक-चक चमकने लगती हैं। अज्ञेय को औरंगजेब और उनके परिवार के सदस्यों की

समाधियों की स्थापना और उनके चमकने पर कोई परहेज नहीं है, उन्हें तो चिंता है भारतीय संस्कृति एवं इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण उस स्थल पर औरंगजेब द्वारा अपनी कब्रगाह बनवाने के निर्माण को लेकर है। क्योंकि एलुरा की गुफाएँ सदियों पुरानी भारत की शिल्प कला के प्रतिरूप ही नहीं है बल्कि बौद्ध, जैन, एवं हिन्दू धर्म से जुड़े लोगों की आस्था का स्थल भी हैं। ऐसे अनुपम स्थल के महत्व को कम करने की चेष्टा एक सम्राट द्वारा की गयी तो अज्ञेय कृद्ध हो कर तीखे स्वर में प्रश्न करते हैं " बटोही फिर पूछता है, क्या सोच कर तुम ने यहां अपनी समाधी बनवाने की सोची, सम्राट औरंगजेब ? अपनी समाधी पहले से बनवा रखने की बात औरों को भी सूझती रही, ठीक है, - मृत्युपूजक और भी रहे - पर तुम ने यह स्थल क्यों चुना ? ठीक यही स्थल, एलुरा की गुफओं की छत का यह समतल, तुम्हारे शासितों को जो आदर्श हो सकता है - कैलास उस से भी कुछ बलिश्त ऊंचा अपना स्वर्ग बनाने की भावना क्यों तुम्हारे मन में रही ?"

निश्चय ही, एक ओर प्राचीन भारतीय संस्कृति के अंग और भास्कर्य-कला के प्रतिरूप एलुरा की गुफाएँ उपेक्षित अवस्था में हैं तो वहीं खुलदाबाद की लिपि-पुती कब्रे चक-चक चमक रही हैं। इसे देख किसी भी सांस्कृतिक-चिंतक का मन विचलित होना स्वाभाविक ही है, इसीलिए अज्ञेय लिखते हैं - " एलुरा की गुफाओं और मूर्तियों पर भी परस्तर और रंग का लेप होता था; वह आज नहीं होता और भीतर के पत्थर निकल आये हैं। तुम्हारी और तुम्हारे भ्रातृघाती, पितृघाती, अपत्यघाती, कुल द्रोही कुनबे की कब्रे आज भी चक-चक लिपी पुती है। लेकिन एलुरा आज भी अचरज है बल्कि रंग न होने के उसका मूल सौंदर्य और उभर आया है; और तुम-तुम्हारी समाधियाँ ? क्यों तुम सोच सके की कि एक दर्प-भले ही शासानुसान का दर्प - एक समूची जाति की श्रद्धाविनत साधान से अधिक समर्थ हो सकता है?"

जब कभी भारतीय संस्कृति की चर्चा की जाती है तो संस्कृति के विचार, चिंतक, और समाज-वैज्ञानिक प्रायः भारतीय संस्कृति के अतीत का गौरवगान करते हैं और वर्तमान में उसकी अवस्था पर शोक प्रकाट करते हैं। किंतु अज्ञेय का संस्कृति की चर्चा करते हुए उसके आधुनिक-स्वरूप को पहचानने और आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में भी प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों के परिरक्षण पर जोर देते हैं। वे लिखते हैं "असल कठिनाई यही है कि ये लोग भारतीय संस्कृति के नाम से केवल उन्हीं बातों पर विचार करते हैं जो कम से कम एक हज़ार साल पहले समाप्त हो गयीं। एक आधुनिक भारतीय संस्कृति है या हो सकती है, यह सुझाव ही मानो उन्हें चौका देता है। एक 'भारतीय' संस्कृति यानी एक हजार साल पहले तक की संस्कृति ; और फिर एक 'आधुनिक' संस्कृति जो कि उन की संस्कृति है, तब फिर 'आधुनिक भारतीय संस्कृति' के क्या मायने ?" निश्चय ही प्राचीन भारतीय संस्कृति का स्वरूप गौरवमय रहा है। किंतु अज्ञेय की चिंता आधुनिक वर्तमान भारत की संस्कृति के स्वरूप को लेकर है। अज्ञेय मानते हैं कि आधुनिक भारतीय संस्कृति के नाम पर केवल पश्चिमी संस्कृति का नकल किया जा रह है। उसमें प्राचीन भारतीय संस्कृति का अंश मात्र में भी विकास देखने को नहीं मिलता है। इसीलिए अज्ञेय कन्याकुमारी में निर्मित प्राचीन मूर्तिकला वैशिष्ट को प्रसारित करती कुमारी मंदिर के सम्मुख निर्मित गांधी की समाधि के औचित्य पर प्रश्न उठाते हैं। क्योंकि उन्हें वह मंदिर न केवल वास्तुकला की दृष्टि से बेमेल लगता है बल्कि उसके स्थापत्य में उन्हें भारतीय संस्कृति की झलक भी देखने को नहीं मिलती है। बल्कि इसके उलटे उन्हें लगता हैं कि मातृशक्ति का यह पुण्य-स्थल नये पार्थिव-देवताओं की उपस्थिति से धुंधला होने लगा है। इसीलिए अज्ञेय लिखते हैं "यह

स्वीकार करने में मुझे हिचक नहीं है कि महात्मा गांधी के प्रति मेरा जो सम्मान-भाव है, मैं कोई कारण नहीं देखता कि वही भाव उनके शव अथवा उनकी राख अथवा उस स्थल के प्रति भी रखू जहाँ पर वह राख समुद्र में बहायी गयी। पर अस्थि-पूजा के प्रति मेरी इस विरसता को छोड़ भी दिया जाये तो भी गांधी-स्मारण का न बेमेल कम होता है, न उसकी अपरूपता, न यह बात भुलायी जा सकती है कि उसने एक सुंदर स्थापना को विकृत कर दिया है।"14 स्टी साहित्य चैनल

अज्ञेय की चिंता इस बात को लेखर भी है कि गांधी मंदिर की स्थापना के लिए कुमारी मंदिर के निकट के समीप का स्थल को ही चुना गया ? निश्चित ही गांधी के प्रति भारत के लोगों में श्रद्धा एवं सम्मान का भाव है और रहना भी चाहिए। किंतु यही गांधी-मंदिर उस तट से कुछ दूर निर्मित होता तो भी उस मंदिर के प्रति लोगों का श्रद्धा-भाव कम नहीं होता बल्कि इससे वहाँ के प्राकृतिक सौंदर्य में और भी उन्नति हो सकती थी। इतिहास साक्षी है भारत में कई सुंदर एवं भव्य मंदिरों की स्थापना की गयी हैं पर किसी भी स्थल पर उनके कारण वहाँ का प्राकृतिक-सामंजस्य बिगड़ा नहीं है। बल्कि उनकी उपस्थिति से वहाँ का सौंदर्य और बढ़ा ही है। इसीलिए अज्ञेय लिखते हैं - " । कोई कारण नहीं था कि गांधी मंदिर तट-रेखा से कुछ अधिक दूर और कुमारी मंदिर से हटकर न बनाया जाता; उससे न उसक की प्रासंगिकता कम होती, न सुन्दरता, न अर्थवत्ता - हाँ, आंखों में उस की चुभन कुछ कम अवश्य होती।" किंतु यही बात वहाँ निर्मित विवेकानंद मंदिर के संदर्भ में नहीं कही जा सकती। क्योंकि विवेकानंद मंदिर की परिकल्पना वास्तुकला की दृष्टि से गांधी मंदिर से अधिक सुंदर है। किंतु यहाँ भी अज्ञेय को उस स्थल के मूल औचित्य के नष्ट होने की चिंता जरूर ज़ाहिर करते हैं। अज्ञेय मानते हैं कि विवेकानंद जिस एकांत की तलाश में वहाँ गये, और ध्यान मग्न होकर जिस विराट-सत्य का उन्होंने साक्षात्कार किया था, जिसके बाद वे अमेरिका जाकर शिकागों की धर्म सम्मेलन में विश्वप्रसिद्ध भाषण दिया था। उस स्थल के सौंदर्य एवं गौरव का महत्व हम नहीं समझ पाये हैं और उसे हम ने भीड़ एवं निरंतर आवाजाई का केन्द्र बना दिया है। और ऐसी व्यवस्था कर दी है कि फिर कभी कोई विवेकानन्द वहाँ न जाये, जाने की न सोचे। इस संदर्भ में अज्ञेय बिल्कुल ठीक लिखते हैं -" निर्ममत्व से हमारा इतिहासबोध उसी चीज़ को मिटाता है जिसकी स्मृति को हम इतिहास में सुरक्षित करते हैं। आत्मा का तेज हमें सहन नहीं होता, अस्थियों के लिए हम मंजूषाएँ बनाते हैं।"

संक्षेप में, हिन्दी साहित्य में 'यायावर' के नाम से विख्यात अज्ञेय ने संपूर्ण भारत का भ्रमण कर भारतीय संस्कृति के स्थावर-कृतियों - मंदिर, महल, गुफाओं पर उत्कीर्ण मूर्तियों - के महत्व उजागर करते हुए उनके संरक्षण एवं विस्तार पर विचार किया है। अज्ञेय भारतीय संस्कृति, सभ्यता एवं इतिहास के पारखी विचारक हैं। वे प्राचीन भारतीय स्थापत्य, शिल्प एवं भास्कर्य-कला के प्रतिरूपों के माध्यम से प्राचीन भारतीय संस्कृति के स्वरूप पर विचार करने के साथ-साथ, आधुनिक भारतीय संस्कृति के दशा-दिशा पर भी प्रकाश डालते हैं। अज्ञेय की मान्यता है कि आधुनिक भारतीय संस्कृति का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जिससे उसके प्रचीन स्वरूप का विकास हो। किंतु अज्ञेय चिंता व्यक्त करते हैं कि वर्तमान समय में आधुनिकता के नाम पर जिस प्रकार पश्चमीकरण की अंधी दौड़-सी लगी हुई है, उसमें भारतीय कलाओं का विकास एवं विस्तार की अधिक संभावना नज़र नहीं आती है। बल्कि वर्तमान समय विनिर्मित बड़े-बड़े भवन, महल ही नहीं छोटे-छोटे घरों भी में पाश्चत्यीकरण का नकल बेतहाशा बढ़ती ही जा रही है। आज भारतीय स्थापत्य नाम की कोई

चीज नज़र नहीं आती। जिसके परिणामवश हम उन्नीसवीं सदी के भारतीय जीवन के बारे में अभी भी हम बहुत-कुछ नहीं जानते हैं, और जो थोड़ाबहुत जानते थे वह भी बड़ी तेजी से भूलते जा रहे हैं। इसीलिए आवश्यक है कि आधुनिक जीवन-शैली को अपनाते हुए भी हमें अपनी संस्कृति का विस्तार करने का प्रयास करना चाहिए, क्योंकि कोई भी प्राणवान संस्कृति नये उपकरणों को अपनी प्रतिभा से अपने । अनुकूल ढालती है - अपनी नयी शैलियों का विकास करती है।' अज्ञेय ठीक कहते हैं- "सब कुछ बदलता जाएगा ---- और परंपरा अटूट भी बनी रहती चली जाएगी ; क्योंकि विकास भी एक सांस्कृतिक मूल्य है और ऐतिहासिक क्रमबोध एक ऐतिहासिक मूल्य है।"

रमणिका गुप्ता- आपहुदरी

. यौन संबंधों की खुली दास्तान
. बाल- यौवन शोषण
. रिश्तों की सत्यता
. सामंती सोच का प्रभाव
. आर्यसमाज का प्रभाव
. मनोविज्ञान की समझ
. रियासतों की सच्चाई
कुप्रथाएँ एवं स्त्रियों की स्थिति
. छुआछूत, जांति-पाँति एवं अंधविश्वास

'आपहुदरी' एक जिद्दी लडकी की आत्मकथा है। यह रमणिका गुप्ता की अपनी एक निजी यात्रा है। इसमें लेखिका ने एक निर्भीक स्त्री के रूप में अपने जीवन की अन्तरंगताओं को बेहद स्पष्ट रूप से दिखाने का प्रयास किया है।

रमणिका गुप्ता ट्रेड यूनियन से जुड़ी कार्यकर्ता रही है, लेकिन उनके जीवन की अपनी खोज सत्ता तक पहुँचकर अपनी उपस्थिति का अहसास कराना भर न था बल्कि वे खुद की आकांक्षा के बारे में उसी आत्मकथा के बारे में कहती है "मैं जब सब परिधियाँ बाँध सकती थीं, सीमाएँ तोड सकती थी सीमाओं में रहना मुझे हमेशा कचोटता रहा है, मैं वर्जनाएँ तोड सकती हूँ..... अपनी देह की मैं खुद मालिक हूँ, मैं संचालक हूँ संचालित नहीं," सम्पूर्ण आत्मकथा में रमणिका एक जिद्दी लडकी की भूमिका के साथ-साथ स्त्री की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति की कामना की खोज में निकल पडती है वे जहाँ कहीं भी जाती है, उनके सम्बन्ध वहीं बनते जाते है, वे कहीं भी छली नहीं जाती। अपने इन सम्बन्धों के बारे में जब भी वे लिखती है, पुरुष प्रधान समाज के तिलिस्म को रेशा-रेशा कर डालती है।

वे अपने अनुभव का बखान इन शब्दों में करती है- "मौन के बारे में सभ्य-असभ्य क्या है, समाज इसका फैसला तो करता रहा है, पर उसने समझ के साथ अपने मानदण्ड नहीं बदले। व्यक्ति बदलता रहा, प्यार की परिभाषाएँ, सुख की व्याख्या, यौन का दायरा सब तो देशकाल के अनुरूप बदलता है, रिश्ते भी सापेक्ष होते है, दुर्भाग्यवष समाज ने अपना दृष्टिकोण नहीं बदला खासकर भारतीय समाज ने।'

इस भारतीय समाज के जिन पुरुषों से रमणिका गुप्ता का सामना हुआ उनमें उनका पति, पति के दोस्त, नेता, नेता के साथ चलने वाले छुटभैये, ओहदेदार पुरुषों की भी लम्बी फेहरिस्त है। आपहुदरी से गुजरते हुए यह स्पष्ट तौर से महसूस होता है कि सेक्सुअलिटी की खोज उत्सवधर्मिता में तब्दील होती है। पूरी आत्मकथा में स्त्री दैन्य कहीं नहीं है। आपहुदरी में रमणिका गुप्ता अन्तरंगता के विमर्श में भिन्न-भिन्न आयामों की पड़ताल कर स्त्री को स्वयं अपनी राह बनने को तैयार करती है। रमणिका गुप्ता ने हिन्दी की सेवा एक सामाजिक कार्यकर्त्ता की तरह की है। इस आत्मकथा में रमणिका जी ने जैसा अपना जीवन जिया वैसा ही लिखा है। लेखिका ने इस आत्मकथा के माध्यम से अपने साहस की कथा कही है। आपहुदरी आत्मकथा के रूप में एक नया मोड़ भी है।

आवारा मसीहा

विष्णु प्रभाकर जी की सर्वश्रेष्ठ कृति है- "आवारा मसीहा"। जो बंगाल के अमर कथा-शिल्पी और सुप्रसिद्ध उपन्यासकार शरत्चंद्र चट्टोपाध्याय के जीवन पर आधारित है। यह जीवनी होते हुए भी किसी रोचक उपन्यास से कम रोचक नहीं है। लगातार चौदह वर्ष तक आस्था और निष्ठा के साथ लगे रहने पर भी वह इसे मार्च 1974 में पूरा कर पाए। शरत् का व्यक्तित्व अत्यंत विवादास्पद रहा है और उनकी कहीं कोई जीवनी भी उपलब्ध न थी। इस विषय में 'विष्णु ' जी "आवारा मसीहा" की भूमिका में स्वयं कहते हैं कि आवारा मसीहा : विष्णु प्रभाकर 'शरत्चंद्र की प्रकृति बहुत जटिल थी। साधारण बातचीत में वे अपने मन के भावों को छिपाने का प्रयत्न करते थे और उसके लिए कपोल-कल्पित कथाएँ गढ़ते थे। कितने अपवाद, कितने मिथ्याचार, कितने भ्रांत विश्वास से वे घिरे रहे। इसमें उनका अपना योग भी कुछ कम नहीं था। वे पहले दर्जे के अड्डेबाज थे। घंटो कहानियाँ सुनते रहते। जब कोई पूछता कि क्या यह घटना स्वयं उनके जीवन में घटित है तो वे कहते"न-न, गल्प कहता हूँ , सब गल्प, मिथ्या, एकदम सत्ये नहीं।" ।

उनके बारे में तरह-तरह के मनगढंत किस्से प्रचारित होते गए। उनके कई मित्र शरत् से कहते कि आप इनका प्रतिकार कीजिए। टालने के लिए शरत् बाबू उत्तर देते- "मैं कहता हूँ कि इन झूठी बातों का प्रचार मैने तो किया नहीं। जिन्होंने किया है प्रतिकार करने का दायित्व भी उन्हीं का है।"
इसमें कोई संदेह नहीं कि अपने जीवन के उत्तरार्ध में जब वह अप्रतिम कथा-शिल्पी के रूप में प्रतिष्ठित हो गए थे, तब उन्हें अपने प्रारंभिक जीवन की चर्चा करते हुए बड़ा दुःख होता था। वह उस सम्बन्ध में किसी प्रश्न का उत्तर नहीं देते थे।

साप्ताहिक हिंदुस्तान(21 सितम्बर, 1969 में प्रकाशित) "शरत् के जीवन का अंतरंग परिचय" लेख में विष्णु प्रभाकर लिखते हैं- "उन्होंने अपने साहित्य में भी धर्म या नैतिकता के विरूद्ध कहीं विद्रोह की घोषणा नहीं की है। इतने पर भी उन्हें दुश्चरित्र और अनैतिक न जाने क्या-क्या कहा गया है।....उनके अपमान और उपेक्षा की कोई सीमा नहीं थी। उनके घर जाकर लोग गालियाँ देते थे। उनकी आँखों के सामने उनके 'चरित्रहीन' की प्रतियाँ जलाई गई थीं।"

गुरूदेव रविन्द्रनाथ ने एक बार शरत्चन्द्र से कहा था- "शरत् ,तुम अपनी आत्मकथा क्यों नहीं लिखते ?" शरत्चन्द्र ने उत्तर दिया था- " गुरुदेव, यदि मैं जानता कि एक दिन मैं इतना प्रसिद्ध व्यक्ति बन जाऊँगा तो मैं एक दूसरी तरह की ही जिंदगी जीता।"

"आवारा मसीहा" नाम से बंगाल के बेजोड़ कथाकार शरत्चंद्र चट्टोपाध्याय की जीवनी लिखकर विष्णु जी ने हिंदी और बंगला साहित्य के बीच ऐसे सेतु का निर्माण किया है जो समूचे राष्ट्र की रागात्मक एकता का प्रतीक है। इस पुस्तक की सामग्री के तीन प्रमुख स्रोत रहे हैं...एक तो उन व्यक्तियों से साक्षात्कार जो किसी न किसी रूप में शरत् बाबू से संबंधित रहे। दूसरे उनके समकालीन मित्रों के लेख संस्मरण और तीसरे उनकी अपनी रचनाओं में इधर-उधर बिखरे वे स्थल और प्रसंग जिनका उनके जीवन से सीधा संबंध रहा। "आवारा मसीहा" में आई कोई घटना विष्णु जी की कल्पित नहीं है। प्रथम पुरुष के रूप में शरत् के मुख से जो कुछ उन्होंने कहलवाया है वह सब उनके उन मित्रों के सस्मरणों से लिया है जो उसके साक्षी रहे हैं।

शरत् की सम्पूर्ण जीवनी (लगभग 430 पृष्ठ) को विष्णुजी ने तीन पर्वो (तीन भागों) में बाट दिया है...
(1) दिशाहारा
(2) दिशा की खोज और
(3) दिशांत।

- "दिशाहारा" (प्रथम पर्व) शीर्षक के अंतर्गत हैं- विदा का दर्द, भागलपुर में कठोर , अनुशासन, राजू उर्फ इंद्रनाथ से परिचय, वंश का गौरव , होनहार बिरवान रोविनहुड अच्छे विद्यार्थी से कथा - विशारद तक, एक प्रेम-प्लावित" आत्मा, वह युग, नाना परिवार से विद्रोह, शरत् को घर में मत आने दो, राजू उर्फ इद्रनाथ की याद, सृजन का युग, आलोशध्य और छाया मेम की अपार भूख, निरुद्देश्य यात्रा, जीवन मंथन से निकला विष। हिन्दी साहित्य चैनल
- दिशा की खोज (द्वितीय पर्व) में शरत् के लेखन विकास प्रेरणा के स्रोत्र रचनाओं की पृष्ठभूमि और पात्रों से समरसता, रंगून प्रवास, गृहदाह, सृजन का आवेग, चरित्रहीन , विराज बहू और आवारा श्रीकांत की चर्चा है।
- दिशांत (तृतीय पर्व) में 'वह' से 'वे' , सृजन का स्वर्ण युग, देश की मुक्ति का व्रत , राजनीति से उनका लगाव और नारी चरित्र के परम रहस्यज्ञाता के रूप में शरत् का चित्रण है।
- आवारा मसीहा का भारत की अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुके हैं। हिंदी में लिखी गई इस कृति को यही गौरव प्राप्त है की शरत के समग्र जीवन पर अधिकृत प्रकाश डालने वाली यह प्रथम कृति है।

मन्नू भंडारी
एक कहानी यह भी (आत्मकथा)
पाठ का सारांश

आलोच्य आत्मकथा मन्नू भंडारी के बचपन और युवावस्था के जीवन के पारिवारिक व सामाजिक प्रसंगों का विवेचन है। उन्होंने इस आत्मकथा को कहानीमत न लिखकर प्रसंगवत लिखा | अजमेर का ब्रह्मपुरी मौहल्ला, सावित्री हाई स्कूल, घर में पिताजी का परिवेश, माँ की स्थिति, स्वतंत्रता आंदोलन आदि । लेखिका ने साधारण से असाधारण व्यक्तित्व के निर्माण में सहयोगी प्राध्यापक शीला अग्रवाल का व्यक्तित्व बखूबी प्रकट हुआ है।

लेखिका का जन्म मध्य प्रदेश के भानपुर गाँव में हुआ। परंतु उसे जो घर याद हैं, वह है अजमेर के ब्रह्मपुरी मोहल्ले । का दुमंजिला मकान। इसकी ऊपरी मंजिल पर उसके पिताजी सदा पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं के ढेर से घिरे रहते थे। नीचे व्यक्तित्व-विहीन अनपढ़ माँ अपने बच्चों की इच्छा और पति की आज्ञा का पालन करने में जुटी रहती थी। पिताजी का समाज में नाम और सम्मान था। वे कांग्रेस और समाज-सुधार के कार्यों में लगे रहते थे। खुशहाली के दिन थे। अतः दरियादिली से आठ-आठ, दस-दस विद्यार्थियों को घर पर रखकर पढ़ाते थे। वे बहुत कोमल व संवेदनशील किंतु क्रोधी और अहंकारी भी थे।
किसी आर्थिक झटके के कारण पिता इंदौर छोडकर, अजमेर आ गए। वहाँ उन्होंने अंग्रेजी-हिंदी कोश के अधूरे काम को पूरा किया। परंतु उनसे उन्हें यश ही मिला, पैसा नहीं मिला, अतः आर्थिक परेशानी बढ़ती गई। नवाबी आदतें, अधूरी इच्छाएँ और महत्त्वहीन होते जाने से उनका क्रोध बढ़ता गया। उनके अपनों द्वारा किए गए विश्वासघात ने उन्हें बहुत शक्कि बना दिया। कभी-कभी इसका दंड बच्चों को भी भुगतना पड़ता था।

बचपन में लेखिका मरियल, काली और दुबला थी। उससे दो साल बडी बहन खूब गोरी और स्वस्थ थी। प्रायः पिताजी बडी बहन की प्रशंसा किया करते थे। इससे उसके मन में हीनता-गंथ्रि बैठ गई। अतः आज भी जब उसे कोई सम्मान या उपलब्धि मिलती है तो उसे विश्वास नहीं होता। आज अगर लेखिका के विश्वास खंडित हो गए हैं, तो उसके पीछे भी पिताजी का शक्की स्वभाव झलकता है।
लेखिका की माँ बहुत ही धैर्यशाली थी। वे पति की हर ज्यादती और बच्चों की हर इच्छा को अपना भाग्य समझती थी। उन्होंने जिंदगी भर त्याग किया। इसलिए सब भाई-बहनों का लगाव उनकी तरफ था। परंतु वह त्याग लेखिका के लिए आदर्श न बन सका।

लेखिका पाँच भाई-बहनों में सबसे छोटी थीं। वे अपने से दो साल बडी बहन सुशीला के साथ बचपन के सारे खेल खेली। यों वह भाइयों के साथ गुल्ली डंडा, पतंग उडाना, माँजा सूतना आदि भी करती रही। परंतु लेखिका की सीमा होती थीं- अपना घर। उन दिनों घर का मतलब पूरा मोहल्ला होता था। कुछ घर तो परिवार के हिस्से ही माने जाते थे। लेखिका सोचती हैं- उन दिनों की तुलना में आज महानगरों के फ्लैटों का जीवन कितना संकुचित, असहाय और असुरक्षित है। लेखिका की सभी कहानियों के पात्र इसी मोहल्ले से हैं। यहाँ तक कि 'दा' साहब भी मौका मिलते ही 'महाभोज' नामक उपन्यास में प्रकट हो गए। तब लेखिका को अहसास हुआ कि बचपन की यादें कितनी गहरी छाप छोड जाती है।

उस समय तक लेखिका के परिवार में लडकी के विवाह के लिए अनिवार्य योग्यता थी- उम्र में सौलह वर्ष और शिक्षा में मैट्रिक । सन् 1944 में लेखिका की बड़ी बहन बहन सुशीला का विवाह हो गया। दो बड़े भाई

भी पढ़ने के लिए बाहर चले गए। तब पिता ने उस पर ध्यान देना शुरू कर दिया। पिताजी को यह पसंद नही था कि उसे रसोई में कुशल बनाया जाए। वे रसोई को 'भटियारखाना' कहते थे। उनके अनुसार, रसोई में रहने से प्रतिभा और क्षमता नष्ट हो जाती है। अतः वे उसे राजनीतिक बहसों में शामिल करते थे। उनके घर आए दिन राजनीतिक पार्टियों के जमावड़े होते थे। पिताजी चाहते थे कि वह देश में हो रहे आंदोलनों के बारे में जाने।

सन् 1945 में मन्नू भंडारी ने कॉलेज में प्रवेश लिया। वहाँ उनका संपर्क हिंदी की प्राध्यापिका श्रीमती शीला अग्रवाल से हुआ। उन्होंने लेखिका को बकायदा साहित्य की दुनिया में प्रवेश करवाया। शीला अग्रवाल ने उन्हें चुनी हुई किताबें पढ़ने को दी। लेखिका ने शरत्-प्रेमचंद से आगे बढ़कर जैनेंद्र, अज्ञेय, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा का पढ़ना शुरू किया।

इन उपन्यासों पर बहसें होने लगीं। लेखिका को जैनेन्द्र के छोटे- छोटे सरल वाक्यों वाली शैली अच्छी लगी। वे 'सुनीता' पढ़ गई। उन्हीं दिनों उन्हें अज्ञेय के 'शेखर- एक जीवनी ' तथा 'नदी के द्वीप' पढ़ने का अवसर मिला। वह युग मूल्योंके मंथन का युग था। शीला अग्रवाल ने साहित्य का दायरा ही नहीं बढ़ाया था बल्कि घर की चार दीवारी के बीच बैठकर देश की स्थितियों को जानने-समझने का जो सिलसिला पिताजी ने शुरू किया था उन्होंने वहाँ से खींचकर उसे भी स्थितियों की सक्रिय भागीदारी में बदल दिया। लेखिका ने स्वतंत्रता आंदोलन में भी सहभागिता निभाई। सब ओर प्रभात फेरियाँ, जलसे, जुलूस, हड़तालें, भाषण आदि चल रहे थे। हर युवा इस माहौल में शामिल था। शीला अग्रवाल की जोशीली बातों ने रंगों में लावा भर दिया था। अतः लेखिका भी सड़कों पर घूम-घूमकर नारे लगवाती , हड़तालें करवातीं। उन्होंने सारी वर्जनाएँ तोड़ डालती। पिताजी से टक्कर लेने का सिलसिला शरू हा गया। स्थिति यह हुई कि " एक बवंडर-शहर में मचा हुआ था और एक घर में।

एक बार पिताजी को कॉलेज की प्रिंसिलपल ने बुलावा आया। उन्होंने पूछा कि क्यों न लेखिका की गतिविधियों के कारण उस पर अनुशासनात्मक कार्यवाही की जाए। पिता आग-बबूला हो गए। गुस्से में भन्नाते हुए कॉलेज गए। वापस आए तो लेखिका डर के मारे पड़ोस मे छिपकर बैठ गई। सोचा, पिताजी का गुबार निकल जाए, तब घर जाया जाए। परंतु माँ ने आकर बताया कि पिताजी तो बड़े खुश है। जाने पर पता चला कि पिताजी उस पर बहुत गर्व कर रहे थे। उन्हें पता चला था कि कॉलेज की सारी लड़कियाँ उसी की मुट्ठी में है। प्रिंसिपल के लिए कॉले चलाना मुश्किल हो रहा है। पिताजी बड़े गर्व से कहकर आए- " यह आंदोलन तो पूरे देश की पुकार है। इसे कोई नहीं रोक सकता।" लेखिका आवक थी। उन्हें न अपनी आँखों पर विश्वास हो रहा था, न अपने कानों पर। पर यह हकीकत थी।

उन दिनों आजाद हिंद फौज के मुकदमें के कारण देशभर में हड़तालें चल रही थी। शाम के समय छात्रों ने समूह चौराहे पर अकट्ठा हुआ। खूब भाषणबाजी हुई। लेखिका ने भी जोशीला भाषाण दिया। पिताजी के एक दकियानूसी मित्र ने आकर पिता जी की अच्छी लू उतारी, 'तुम्हारी मन्नू की तो मत मारी गई है। आपकी

आजादी के चलते कैसे- कैसे लडको के बीच हुडदंग मचाती फिरती है। यह लडकियों को शोभा नही देता।' बस यह सुनते ही पिताजी क्रोध से भनभना उठे। उन्होंने लेखिका का घर से बाहर निकलना बंद करने की चेतावनी दे डाली। दरअसल पिताजी को अपनी प्रतिष्ठा का बहुत ख्याल था। परंतु उस दिन शहर के एक प्रतिष्ठित डॉक्टर अंबालाल जी उनके पास आ बैठे |उन्होंने लेखिका को देखते ही प्रंशसा की। बोले- " मैं तो चौपड पर तुम्हारा भाषाण सुनकर ही भंडारी जी को बधाई देने चला आया। मुझे तुम पर गर्व है।" बेटी की प्रशंसा सुनकर पिता का क्रोध धीरे-धीरे गर्व में बदल गया।

वास्तव में लेखिका के पिताजी अंतर्विरोधों में जी रहे थे। वे विशिष्ट भी बनना चाहते थे और सामाजिक छवि के बारे में भी जागरूक थे। परंतु ये दोनों बातें एक-साथ कभी नहीं निभ पाई। ___ मई, 1947 में शीला अग्रवाल को लडकियों को भडकाने और अनुशासन बिगाडने के आरोप में कॉलेज से नोटिस दे दिया गया। जुलाई में थर्ड इयर की कक्षाएँ बंद करके लेखिका और उसकी दो साथिनों को भी निकाल दिया गया। परंतु लेखिका ने बाहर रहकर भी वह हुडदंग मचाया कि कॉलेज को अगस्त में थर्ड इयर खोलना पडा। तभी देश को इससे भी बडी खुशी मिल गई । भारत आजाद हो गया और लेखिका की सफलता उस चिरप्रतीक्षित सफलता में समाहित हो गई।

परीक्षापयोगी प्रश्न:

1. 'एक कहानी यह भी' आत्मकथा की लेखिका हैं
(अ) कृष्णा सोबती
(ब) मन्नू भंडारी a
(स) ममता कालिया
(द) मेहरुन्निसा परवेज

2. "एक ओर वे बेहद कोमल और संवेदनशील व्यक्ति थे तो दूसरी ओर बेहद क्रोधी और अहंवादी।" उक्त पंक्तियाँ मन्नू जी ने किसके लिए कहा
(अ) अपने दादा जी
(ब) अपने पति के लिए
(स) अपने पिताजी के लिए a
(द) स्वयं के नाना के लिए

3. "नवाबी आदतें, अधूरी महत्त्वाकांक्षाएँ, हमेशा शीर्ष पर रहेने के बाद हाशिए पर सरकते चले जाने की यातना क्रोध बनकर हमेशा माँ को कँपाती-थरथराती रहती थी।" उक्त प्रवृत्तियाँ मन्नू भंडारी ने किस व्यक्तित्व के लिए कही
(अ) अपने नाना के लिए
(ब) अपने पिता के लिए a
(स) अपने दादा के लिए

(द) अपने भाई के लिए

4. मन्नू भंडारी के पिता शक्की हो गए थे क्योंकि
(अ) अपनों के द्वारा विश्वासघात कर देने से a
(ब) धोखा खा जाने से
(स) वृद्धावस्था आ जाने से
(द) कर्ज बढ़ जाने से

5. लेखिका किस हीन भावना से ग्रस्त थी
(अ) कमजोर और काली होने से a.
(ब) पढ़ने में कमजोर होने से
(स) बेहद डरपोक होने से
(द) अत्यंत हीन होने से ।

6. लेखिका की तुलना उनके पिता किससे करते थे
(अ) इनकी पत्नी से
(ब) अपनी माँ से
(स) बहिन सुशीला से a
(द) बहिन शीला से

7. "धरती से कुछ ज्यादा ही धैर्य और सहनशक्ति थी शायद उनमें ।' उक्त कथन लेखिका किसके लिए कहती है
(अ) अपनी माँ के लिए a
(ब) अपने पिता के लिए
(स) अपने भाई के लिए
(द) अपने दादा के लिए

8. लेखिका भंडारी के साहित्य के पात्र, उन्होंने कहाँ से लिये है
(अ) अपने परिवार से
(ब) अपने इन्दौर वाले घर के पास से
(स) अपने अजमेर के मोहल्ले से a.
(द) अपने ननिहाल से

9. लेखिका ने उनके परिवार के अनुसार विवाह की उम्र क्या तय की
(अ) उम्र में सोलह और मैट्रिक पास a.
(ब) उम्र में अठारह और मैट्रिक पास

(स) उम्र में बीस और मैट्रिक पास
(द) उम्र में सत्रह और मैट्रिक पास

10. लेखिका के पिता रसोई को भटियारखाना क्यों कहते थे
(अ) वहाँ की क्षमता को खोना था
(ब) वहाँ क्षमता और प्रतिभा दोनों को खोना था a
(स) अपना विकास अवरुद्ध करना था
(द) केवल पाक शास्त्री बनना था

11. लेखिका ने अपनी स्कूली शिक्षा किस स्कूल से प्राप्त की ?
(अ) सावित्री हाई स्कूल a
(ब) मेयो कॉलेज
(स) सोफिया कॉलेज
(द) आदर्श कॉलेज

12. लेखिका की सबसे प्रिय प्राध्यापिका कौन थी
(अ) सुशीला चतुर्वेदी
(ब) शीला अग्रवाल a
(स) शंकुतला त्यागी
(द) शोभना अग्रवाल

13. प्राध्यापिका शीला अग्रवाल ने सन् 1946-47 के स्वतंत्रता आंदोलनों के लिए किसे प्रेरित किया
(अ) उनके पिता को
(ब) अपने विद्यार्थियों को
(स) मन्नू भंडारी को a
(द) अपने पुत्री को

14. 'मुझे न अपनी आँखों पर विश्वास हो रहा था, न अपने कानों पर, पर यह हकीकत थी'- लेखिका ने ऐसा क्या सोचकर कहा
(अ) पिताजी के स्वभाव के विपरीत स्वयं की प्रशंसा सुनकर
(ब) कॉलेज में स्वयं की शिकायत पर पिताजी द्वारा गर्व अनुभव करते पर a (स) यह जानकर कि पूरा कॉलेज तीन लडकियों के इशारे पर चलता हैं
(द) उक्त सभी

15. लेखिका के स्वतंत्रता संबंधी आंदोलनों पर दिए हुए भाषण की किसने तारीफ की -
(अ) स्वयं पिताजी ने

(ब) उनके अंतरंग मित्र ने
(स) डॉ. अंबालाल ने a
(द) डॉ. सदाशिव पाठक ने

16. "कितनी तरह के अंतर्विरोधों के बीच जीते थे वे, एक ओर विशिष्ट बनने और बनाने की प्रबल लालसा तो दूसरी ओर अपनी सामाजिक छवि के प्रति भी उतनी सजगता।" उक्त कथन किसके सन्दर्भ में मन्नू भंडारी जी ने लिखें
(अ) अपने पिता के लिए a.
(ब) अपने प्राध्यापक के लिए
(स) अपने बड़े भाई के लिए
(द) अपने प्राचार्य के लिए

17. लेखिका ने कॉलेज के बाहर हुड़दंग क्यों मचाया
(अ) कॉलेज की व्यवस्थाओं के लिए
(ब) थर्ड ईयर खोलने के लिए a
(स) स्वतंत्रता आंदोलन में हिस्सा लेने के लिए
(द) शीला अग्रवाल का नोटिस देने के विरोध में

18. सन् 1947 ई. में कॉलेज प्रशासन ने लड़कियों का भड़काने और अनुशासन बिगाड़ने के आरोप मे किसे नोटिस दिया
(अ) मन्नू भंडारी
(ब) शीला अग्रवाल को a.
(स) सुशीला त्यागी को
(द) शोभना अग्रवाल को

19. 'भग्नावशेषों का ढोते पिता' का आशय है
(अ) मेरे पिता जो खंडहरो में जी रहे थे।
(ब) मेरे पिता जो खंडहरों को ढो रहे थे।
(स) मेरे पिता जिनके गुण खंडहरों की तरह नष्ट हो चुके थे। a.
(द) मेरे पिता जो अब खंडहरों को हटाने की नौकरी कर रहे थे।

20. पिता के सकारात्मक गुण समाप्त क्यों होने लगी ?
(अ) विश्वासघात के कारण
(ब) गिरती आर्थिक दशा के कारण a
(स) क्रोध के कारण,
(द) अहंकार पर चोट के कारण

21. लेखिका के विश्वास खंडित क्यों हो गए थे ?
(अ) विश्वासघात के कारण।
(ब) शक्की स्वभाव होने के कारण
(स) संघर्षशीलता के कारण
(द) पिता के शक्की स्वभाव कारण a

22. लेखिका के खेलकूद की सीमा 'घर' थी। यहाँ घर से क्या आशय है
(अ) अपना फ्लैट
(ब) पडोसी का घर
(स) परिवार
(द) आस-पडोस ।

23. लेखिका की आरंभिक कहानियों के पात्र कहाँ के हैं ?
(अ) उनके ऑफिस के
(ब) बचपन के साथियों के
(स) महानगरों के
(द) उनके मोहल्ले के a

24. लेखिका को मोहल्ले के किसी भी घर मे जाने में कोई पाबंदी क्यों नही थीं ?
(अ) अच्छे व्यवहार के कारण
(ब) प्रेम के कारण
(स) मोहल्ले के आपसी सद्भाव के कारण a
(द) पिता के रौबदाब के कारण

25. देश की स्थितियों को समझने-जानने की प्रेरणा लेखिका को किसने दी ? (अ) उसकी अंतरात्मा ने
(ब) उसके खुले विचारों ने
(स) शीला अग्रवाल ने a.
(द) पिता ने

26. क्रांतिकारी गतिविधियों में सक्रिय होकर काम करने की प्रेरणा लेखिका को किसने दी ?
(अ) उसके पिता ने
(ब) संगी-साथियों ने
(स) शीला अग्रवाल ने a
(द) गुरुजनों ने

27. डॉक्टर कौन था ?
(अ) लेखिका का पारिवारिक मित्र a
(ब) एक प्रशंसक
(स) देशभक्त नागरिक
(द) क्रांतिकारी

28. किस रास्ते को टकराहट का रास्ता बताया गया है ?
(अ) क्रांति औश्र शांति
(ब) सामाजिक सम्मान और विशिष्टता a
(स) समझदारी और संघर्ष
(द) अहंकार और सम्मान

29. ' एक कहानी और भी' के लिए मन्नू भंडारी को कौनसा सम्मान मिला
(अ) साहित्य अकादमी पुरस्कार
(ब) शिखर सम्मान
(स) शलाका सम्मान
(द) व्यास सम्मान a

एक साहित्यिक की डायरी(मुक्तिबोध)

मुक्तिबोध जितने बडे कवि हैं उतने ही बडे आलोचक, कथाकार और उपन्यासकार भी हैं। उनका साहित्य हमारे समय में एक अनुपम धरोहर है क्योंकि मुक्तिबोध के साहित्य में तात्कालिक समय का जीवंत इतिहास दर्ज है। इस तरह से देखा जाए तो 'एक साहित्यिक की डायरी' जैसी मिसाल अभी तक दूसरी हिंदी साहित्य में उपलब्ध नहीं है। शायद यही वजह है जिसकी और श्री अदीब संकेत करते हैं कि उनकी डायरी उस सत्य की खोज है जिसके आलोक में कवि अपने अनुभव को सार्वभौमिक अर्थ दे देता है। 'एक साहित्यिक की डायरी' हिंदी में डायरी विधा की पहली कृति है जो फैण्टसी, मनोविश्लेषण, तर्क, कविता, आत्माख्यान के विविध स्तरों पर एक साथ चलती है, या यों कहें कि इन सबको एक में समन्वित करके एक नई ही विधा संभावना की ओर इंगित करती है। इस कृति में शैली गुण और विचार तत्व दोनों ही विद्यमान है और इन्हीं गुणों के कारण पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है और आदर सम्मान पाया है।

'एक साहित्यिक की डायरी' के प्रकाशन की बात की जाए तो बहुत ही दिलचस्प कहानी है। इसके पहले संस्करण की पांडुलिपि मार्च 1964 ईस्वी को भोपाल में श्रीकांत वर्मा को सौंपी थी और वे जिस रूप में चाहते थे उसी रूप में वह प्रकाशित हुई। उस पांडुलिपि में 'कटुयान और काव्य सत्य' और 'कलाकार की व्यक्तिगत ईमानदारी' शीर्षक नहीं थे। फलस्वरूप वह पहले संस्करण में भी नहीं हैं तो कुछ अपने आपसे किंतु कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो दुनिया से बहस करने की प्रक्रिया में अपने-आपसे बहस चालू रखते हैं। मुक्तिबोध ऐसे ही थोडे से लोगों में और उनकी 'एक साहित्यिक डायरी' ऐसी ही है। अपने आप से या किसी

दूसरे से बात करते हुए मुक्तिबोध पाठक को कुछ इस तरह इस वार्तालाप का साक्षीदार बना लेते हैं कि निःसंग रहना कठिन हो जाता है। दूसरे से प्रश्न करने के साथ-साथ अपने आप पर भी उस प्रश्न का वैसा ही वार और इस प्रकार विचार की गति के साथ अपने आपको स्तर-स्तर खोलते जाना न कोई छिपाव, न कोई दुराव। सतत् आत्म सजगता के बीच आत्म विडंबना का निरंतर निर्मम बोध। यह पारदर्शी ईमानदारी ही है जो मुक्तिबोध की 'एक साहित्यिक की डायरी' को अनूठा आकर्षण प्रदान करती है। मुक्तिबोध की डायरी निजी स्मृतियां ना होकर, इसमें साहित्य संबंधी तथ्यों का डायरी विधा में एक काल्पनिक मित्र केशव के साथ हुए संवाद के रूप में लिखा गया है। कहीं-कहीं केशव के स्थान पर 'मित्र' वह अथवा अन्य किसी पात्र के साथ संवाद शैली में निबंध रचना की गई है। जिसमें काव्य संबंधी आधारभूत तत्वों, शिल्प स्वरूप रचना की स्थितियों परिस्थितियों के साथ रचनाकार की रचना प्रक्रिया का भी सुक्ष्म विश्लेषण किया गया है। इसमें कहीं-कहीं नाटकीय शैली के भी दर्शन होते हैं।

1. मुक्तिबोध ने 'एक साहित्यिक की डायरी' में कुल 13 प्रकरणों का समावेश किया गया है जो इस प्रकार हैं-'तीसरा क्षण', 'एक लंबी कविता का अंत', 'डबेर पर सूरज का बिम्ब', 'हाशिये पर कुछ नोट्स', 'सडक को लेकर एक बातचीत', 'एक मित्र की पत्नी का प्रश्न चिन्ह', 'नये की जन्म कुंडली एक और दो', कुटुयान और काव्य सत्य', 'कलाकार की व्यक्तिगत ईमानदारी, 'कलाकार की व्यक्तिगत ईमानदारी आदि।

इस कृति का प्रथम प्रकरण 'तीसरा क्षण' में उनके काल्पनिक मित्र केशव के साथ बौद्धिक वार्तालाप है। इसमें मुक्तिबोध के सृजन प्रक्रिया, फैण्टेसी शिल्प, अनुभूति भाषा आदि से संबंधित उनकी विचारशीलता एवं मान्यताओं के दर्शन होते हैं। इस प्रकरण में कवि ने संवाद शैली का प्रयोग किया है

"इस बीच उसके नाद प्रवाह में कोई परिचित
नाम सुना। मैंने चौंककर पूछा, “क्या"?
"हमने कल तय कर लिया कि इस गर्मी में
विवाह कर लेंगे।"
मैंने बहुत विस्मय से पूछा,
“क्या!.....किससे?"
“केटी से।"
"कौन केटी?"२

मुक्तिबोध की यह प्रवाह शैली निबंध को पढने योग्य बनाकर गंभीर पांडित्य से मुक्त करती है। उनके निबंध कहानीनुमा हैं जो उत्सुकतावश पाठक को बांधे रखते हैं। 'तीसरा क्षण' निबंध में मुक्तिबोध द्वारा केशव की व्यक्तिगत बौद्धिकता का चित्रण इस प्रकार है “समय गुजरता गया। उसे अपनी जिंदगी में विशेष सफलता नहीं मिली। मारो-खाओ, हाथ मत आओ।" के इस जमाने में उस जैसे आदमी की क्या चलती। समय ने हम दोनों के चेहरों पर सूखेपन और अनाशा की कालिख पोत दी थी। दुनिया की नजरों से दूर अकेलेपन के अंधेरे में हम दोनों अलग-अलग पृथ्वी के दो छोरों पर सांस ले रहे थे- "केशव बहुत बदल गया था। तमाम बाल

सफेद हो गए थे। चेहरे पर गहरी लकीरें हो गई थीं। वह बुड्डा हो गया था। इसके बावजूद स्वास्थ्य बहुत अच्छा था। समयहीन तो वह कभी नहीं रहा, किंतु फिर भी अब उसमें पहले से अधिक स्फूर्ति थी।"

इस निबंध के ऐसे अंश पाठक को संभावित घटनाओं के बारे में जानने के लिए उत्साहित करते हैं। मुक्तिबोध ने कला के तीन क्षण माने हैं। कला का पहला क्षण है जीवन का उत्कृष्ट तीव्र अनुभव क्षण। दूसरा क्षण है इस अनुभव का अपने कसकते-दुःखते हुए मूलों से पृथक हो जाना और एक ऐसी फैण्टेसी का रूप धारण कर लेना मानो वह फैण्टेसी अपनी आंखों के सामने खडी हो। तीसरा और अंतिम क्षण है फैंटसी के शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया का आरंभ और उस प्रक्रिया की परिपूर्णावस्था तक की गतिमानता। मुक्तिबोध का कहना है कि शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया के भीतर जो प्रवाह बहता रहता है वह समस्त व्यक्तित्व और जीवन का प्रवाह होता है। इस प्रकार मुक्तिबोध तीसरा क्षण की बात करते हुए कहते हैं कि फैण्टेसी को जितना शब्दबद्ध करने का प्रयत्न किया जाता है फैण्टेसी अपने मूल रूप से उतनी ही दूर चली जाती है। यह कहना कठिन है कि फैण्टेसी का यह नया रूप अपने मूल रूप की प्रतिकृति है। फैण्टेसी को शब्दबद्ध करने की प्रक्रिया के दौरान जो-जो सृजन होता है-जिसके कारण कृति क्रमशः विकसित होती जाती है वही कला का तीसरा और अंतिम क्षण है।

मुक्तिबोध केशव के व्यक्तित्व को विश्लेषित करते हुए कहते हैं कि-"मनुष्य का व्यक्तित्व एक गहरा रहस्य है इसका प्रथम भाग मुझे केशव द्वारा मिला इसलिए नहीं कि केशव मेरे सामने खुला मुक्त रहते नहीं था। उसके जीवन में कोई ऐसी बात नहीं थी जो छुपाने लायक हो। वह सचमुच बहुत दयालु, धीर-गंभीर, भीषण कष्टों को सहज ही सह लेने वाला अत्यंत क्षमाशील था। किंतु साथ ही वह शिथिल, स्थिर, अचंचल,यंत्रवत और सहज स्नेही था। उसमें सबसे बडा दोष यह था कि उसमें बालकोचित बाल सुलभ गुण-दोष नहीं थे। मुझे हमेशा लगा कि उसका विवेक वृद्धता का लक्षण है।

" मुक्तिबोध तीसरे क्षण में कला के मूल द्वंद्ध अत्यंत महत्त्वपूर्ण और सृजनशील है। भाषा एक परंपरा के रूप में फैण्टेसी के मूल रंग को विस्तृत कर देती है, किंतु साथ ही उस फैण्टेसी में संशोधन भी उपस्थित करती जाती है। साथ ही फैण्टेसी अपने मूल रंगों के निर्वाह के लिए अपने मूल रंगों की अभिव्यक्ति के लिए भाषा पर दबाव लाती है, उसके शब्दों और मुहावरों में नयी अर्थमत्ता, नहीं अर्थ क्षमता, नई अभिव्यक्ति भर देती है। कला के तीसरे क्षण में यह महत्वपूर्ण द्वन्द्व है।

'एक साहित्यिक की डायरी' का दूसरा प्रकरण है “एक लंबी कविता का अंत"। यह निर्विवाद है कि मुक्तिबोध ने काव्य के क्षेत्र में पर्याप्त कार्य किया है। उनकी चर्चित कविताओं में ऐसी कविताएं अधिक हैं जो आकार में बहुत बडी है। इस प्रकार की लंबी कविताओं के बारे में मुक्तिबोध ने अपने अंतर्गत मुक्तिबोध ने अपनी कविताओं के आकार, स्वरूप और विस्तार के बारे में चर्चा की है। इसी चर्चा के दौरान मुक्तिबोध में प्रगतिशीलता, यथार्थवाद, कविता की रचना प्रक्रिया आधुनिक सहित्यकारों की स्थिति, उनके स्वभाव और उनकी श्रेणियों का विवेचन किया है। मुक्तिबोध की कविताएँ यथार्थ के भयावह परिदृश्य को उभारती हुई आकार में बड़ी हो जाया करती हैं। और आकार की दीर्घता उनकी चिन्ता का कारण बन गयी। उनको यह भी

भय है कि उनकी कविता बहुत बढ़ गयी तो मासिक पत्रिका में असंभव हो जाएगा और हिन्दी आलोचक कविता की दीर्घता को अच्छा नहीं मानते है- “यथार्थ के तत्व परस्पर गुम्फित है यही कारण है कि मैं छोटी कविताएं लिख नहीं पाता और जो छोटी होती है वस्तुतः छोटी ना होकर अधूरी होती हैं। और इस प्रकार न मालूम कितनी ही कविताएँ मैंने अधूरी लिखकर छोड दी हैं। उन्हें खत्म करने की कला मुझे नहीं आती यही मेरी ट्रेजेडी है।"

मुक्तिबोध अपनी अभिव्यक्ति में यह बताना भी नहीं भूले हैं कि उनकी व्यक्तिगत, सामाजिक और आर्थिक क्या थी कुल मिलाकर मुक्तिबोध ने इस प्रकरण में कविता की रचना, प्रक्रिया को अभिव्यक्त किया है।

वहीं दूसरी ओर उनके समकालीन साहित्यकारों विचारकों, आधुनिकतावादियों की स्थिति का भी निरूपण किया है। एक लंबी कविता का अंत' विचारों का जनक निबंध है। इसमें मौलिकता, अस्पष्टता और साफगोई के कारण उनके विचार प्रभावी रूप से सामने आए हैं।

'एक साहित्यिक की डायरी' का तीसरा प्रकरण है 'डबरे पर सूरज का बिम्ब'। इसमें मुक्तिबोध की व्यंग्य शैली के दर्शन होते हैं। इसमें मुक्तिबोध ने मध्यमवर्गीय संस्कारों वाले बुद्धिजीवी की मानसिकता पर व्यंग्य किया है। इस निबंध का नायक अपने सिद्धांतों के प्रति अनुभव संसार को नहीं छोडने के संकल्प लेने की प्रक्रिया में प्रयत्नशील है। जैसे कि मुक्तिबोध ने इस निबंध में कुंठा की बहुत ही रोचक ढंग से आत्मा व्यंग्यात्मक शैली में विवेचन की है- "कुंठा-कुंठा मैं नहीं समझता" उस ने जवाब दिया” हर जमाने में गरीबों की मुश्किल रही है। हर जमाने में एक श्रेणी का दिल नहीं खुला है। बहुत विशाल श्रेणी का, भारतीय जनता का, मेहनतकश का।" वह आगे कहता गया, पिछला कौन सा ऐसा युग था जिस में कुंठा ना रही हो। और फिर कुंठा का मतलब क्या है?" उसने समझाते हुए कहा, “कुंठा का आधिपत्य तो अब समझना चाहिए जब कुंठा के बुद्ध बुनियादी कारणों को दूर करने की बेसब्री ओर विक्षोभ न हो।"

'हाशिए पर नोट्स' के अंतर्गत मुक्तिबोध ने एक आलोचक की तटस्थता पर जोर देते हुए कहा है कि आलोचक को निष्पक्ष भाव से आलोचना करनी चाहिए। एक आलोचक को अपनी आलोचनात्मक भावना को प्रधान मानते हुए तटस्थ रूप से कृति की समीक्षा करनी चाहिए और उस कृति को विश्वास के बल पर श्रद्धा हृदय से नहीं बुद्धि से उत्पन्न हुई है। और उसी माक्र्सवाद की बहुतेरी आलोचना अंधी भावना से प्रेरित हुई है। मुक्तिबोध इसी संदर्भ में कहते हैं कि व्यक्ति में अंधश्रद्धा नहीं होनी चाहिए। निष्पक्ष एवं तटस्थ रूप से की गई आलोचना से मनुष्य में सुधार किया जा सकता है और मनुष्य अपनी सीमा और कमजोरियों से ऊपर उठ सकता है। निष्कर्ष रूप में मुक्तिबोध यह कहना चाहते हैं कि बुनियादी श्रद्धा के फलस्वरूप ही इतना सारा साहित्य लिखा गया है।

'सडक को लेकर एक बातचीत' में मुक्तिबोध ने निम्न वर्ग के काव्य को भी पत्रिकाओं में प्रकाशित करने पर जोर देते हैं। और निंदा करते हैं।

"एक मित्र की पत्नी का प्रश्न चिन्ह" के अंतर्गत मुक्तिबोध ने व्यक्तित्व का विश्लेषण किया है। यह विश्लेषण संवाद शैली में । हुआ है। मुक्तिबोध की लंबी-लंबी बहसें सिर्फ उनके व्यक्तित्व को ही प्रतिष्ठित नहीं करती बल्कि उनके मित्रों को भी एक पूर्ण व्यक्तित्व प्रदान करते हुए पाठकों के सामने उजागर करती हैं। और यह व्यक्तित्व विश्लेषण करके मित्रों के क्रियाकलापों और विशेषताओं के माध्यम से उजागर हुआ है। एक तरह से देखा जाए तो मुक्तिबोध में वैज्ञानिक व्यक्तित्व विश्लेषण प्रस्तुत किया "व्यक्तित्व के न मालूम कितने ही पहलू हैं जो मुझसे छिपे हुए हैं। जैसे पंखुरी के भीतर पंखुरी अथवा प्याज की परतों के अंदर ही परतें। फिर व्यक्तित्व का जो रूप आज हमें दिखाई देता है कहां तक स्थायी है हम नहीं कह सकते।तीसरी सबसे बड़ी बात यह है कि व्यक्तित्व के निर्माण की कार्य कारण परंपरा का यदि अध्ययन करें तो आप देखेंगे कि व्यक्तित्व निर्माण में चेतन मन का रोल बहुत कम होता है और उससे हम रोल संकल्पशक्ति का। दोनों के रोल निस्संदेह कम होते हैं लेकिन होते हैं बहुत ही महत्त्वपूर्ण इतने महत्त्वपूर्ण की उन्हीं के कारण मनुष्य है।
" 'नए की जन्म कुंडली एक और दो' के अंतर्गत मुक्तिबोध ने जीवन के संवेदनात्मक ज्ञान को एक मूल्य के रूप में स्थापित किया है। साथ ही अपने मित्र के राजनीति में उतरने के प्रसंग को लेकर राजनीति की निंदा की है। और समाज और परिवार का समर्थन करते हुए यह कहते हैं कि व्यक्ति का विकास समाज और परिवार से ही होता है। संस्कृति की शिक्षा समाज और परिवार से ही प्राप्त होती है। साहित्य और राजनीति के पास ऐसी कोई दृष्टि नहीं होती है जो परिवार तथा समाज और परिवार से ही प्राप्त होती है। साहित्य और राजनीति के पास ऐसी कोई दृष्टि नहीं होती है जो परिवार तथा समाज के पास होती है। इस तरह व्यक्ति के जीवन के आधार तत्वों की बात की जाए तो सांस्कृतिक तत्व ज्यादा महत्व रखते हैं।

इसी चर्चा को ही नए की जन्मकुंडली में आगे बढ़ाते हुए मुक्तिबोध नए मूल्यों की स्थापना करने पर बल देते हैं। 'सवाल पूरी परंपरा को समाप्त करके नए मूल्यों की नई परंपरा के अभाव में अंतर प्रवृतियों के दास हो गए हैं। इन अंतः प्रवृत्तियों का चाहे जितना आदर्शीकरण किया जाए। वे मात्र व्यक्तिगत हैं। और इस समय तो नए मूल्य के केवल बौद्धिक स्तर पर हैं। वे जीवन का अनुशासन क्या कर सकेंगे। यदि समाज की संस्कृति मुख्यतः बौद्धिक संस्कृति होती, वैज्ञानिक दृष्टि समाज की प्रधान दृष्टि होती, तो शायद यह संभव भी था। किंतु यह नए मूल्य कुछ ही लोगों के प्रवाह की नालियां बन रहे हैं।"

इस तरह मुक्तिबोध ने पुरानी परंपराओं के स्थान पर नए मूल्यों की स्थापना को अनिवार्य माना है।

'वीरकर' के अंतर्गत मुक्तिबोध वीरकर के माध्यम से जीवन के तत्वों की महत्ता को समझाने का प्रयत्न किया है। उनका कहना है कि रचनात्मक स्तर पर जीवन के वास्तविक तत्वों की उपेक्षा करना गलत है। उनका कहना है कि साहित्य का विकास तभी संभव है जब समाज का विकास हो, देश का विकास हो और विशेष रूप से मानव का विकास हो। मनुष्य का विकास ही समग्र विकास है। यहां मुक्तिबोध एक साहित्यकार के संवेदनात्मक जीवन तत्वों की बात करते हैं जो इन की दृष्टि में ठीक नहीं है"तथ्यों से क्यों जी चुराते हो? उस वर्ग के आलोचक तुम जैसों को कहते हैं कि तुम ऑब्सक्योर हो। जो लिखते हो उसका ठीकठीक अर्थ समझ में नहीं आता। या फलाँ हो फलाँ हो। असल में तुम्हारी दुनिया ही अलग है। तुम्हारे

डिजिट्स (गणित) ही अलग हैं। तुम्हारा वातावरण ही अलग है। तुम्हारी प्रेरणा भी भिन्न है। वह भला उनके लिए अनुकूल क्यों होगी? वह उन्हें समझने कैसे आ सकती है? क्यों, वह उन्हें सुंदर क्यों लगेगी?"

'विशिष्ट और अद्‌वितीय' प्रकरण में मुक्तिबोध ने जन साधारण के जीवन सत्य को उजागर किया है। साथ ही साथ इसी जीवन सत्य की उपेक्षा करने वाली साहित्यिक मान्यताओं की निंदा की है। इस संदर्भ में मुक्तिबोध ने 'नई कहानी' और 'नई कविता' पर भी व्यंग्य करते हैं 'नई कहानी' में आधुनिक मानव की जो विचित्र मनोदशा है उसको अगर आप उसके सारे संदर्भो से काटकर उसके सारे बाह्य सामाजिक पारिवारिक इत्यादि संबंधों से काटकर, उस मनोदशा को मानो अधर में लटकाकर चित्रित करेंगे तो मनोदशा के नाम पर (कहानी में) एक धुन्ध समा जाएगी। कहानी में अगर सिर्फ भीतरी ढूंढ हो और सिर्फ वही वह रहे और इसी की इतनी प्रधानता हो की वस्तु सत्य के संवेदनात्मक चित्रों का प्रायः लोप हो जाए तो आप वही गलती करेंगे कि जो (मेरे ख्याल में) नई कविता ने की। कविता की कला, कथा की कला से अधिक अमूर्त तो वैसे ही होती है, इसलिए संभवतः उसमें वे बातें खप भी जाती हैं। किंतु कहानी में? यानी मैं चाहता हूं कि साहित्य में मानव की पूर्ण मूर्ति स्थापित की जाए?

आगे मुक्तिबोध इसी संदर्भ के अंतर्गत आचार्य रामचंद्र शुक्ल का उदाहरण देते हुए यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि बाल बच्चेदार व्यक्ति और अकेले व्यक्ति के विचारों और भावनाओं में घर वैषम्य है। मुक्तिबोध का कहना है कि बाल-बच्चेदार कवि या साहित्यकार की प्रतिभा व्यापक कोमल भावना या करुणा के भाव में परिवर्तित हो जाती है। मुक्तिबोध इसी प्रकरण के संदर्भ में कहते हैं कि कभी आदित्य और विशिष्ट होते हैं। शायद अद्‌वितीय और विशिष्ट हैं इसलिए कवि हैं। पर जो कभी अपने आप को अद्‌वितीय समझते हैं या जिन्होंने अद्‌वितीय कि जो परिभाषा अपने लिए बना रखी है उसे मुक्तिबोध दोष देते हैं। इस तरह से मुक्ति बोध ने अलग अलग श्रेणियों के कवियों के साहित्य का विश्लेषण किया है।

'कुटू मानव काव्य सत्य' के अंतर्गत मुक्तिबोध ने प्रेम कथा के माध्यम से वास्तविक जीवन और लेखक की वास्तविक मानसिकता का अवलोकन करते हुए निर्मम निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं। साथ ही साथ मुक्तिबोध ने साहित्य में जीवन मूल्य और आदर्श कोई स्थापित किया है-“इतना निश्चित है कि वह शुक्ल के प्रेम से वशीभूत होकर शुक्ल को मदद करने के लिए तैयार नहीं है।"

जो आंसू वह लगातार बहा रही है, वह विरह के कहे जा सकते हैं क्योंकि आरक्षण का भाव वीरा से उत्पन्न हुआ है। किंतु उस दुख की करतूतें उसकी तीव्रता और रक्षा की है विरह कि नहीं..." मित्र ने जोर जोर से आगे कहना शुरू किया
उसके आंसू काव्य सत्य हैं।
उसका उल्लास काव्य सत्य था।
उसका प्रेम काव्य सत्य है।
उसका वियोग काव्य सत्य है।

मुक्तिबोध ने इसी प्रकरण में कवि के अंतर्द्वद को उजागर किया है- “सामंजस्य की कल कल्पना यांत्रिक रूप से लागू नहीं की जा सकती। यह तो ठीक है और इस बात का शीघ्र पता चल जाता है कि एक प्रतिवादी प्रगतिवादी विद्यार्थी मजदूर- किसानों की हडताल है तोडता है या नहीं वह जनता के विरुद्ध अधिकारियों का गुप्तचर है या नहीं अथवा वह एक दोहरी दुरंगी उर्दू मही मूवी नीति का अवलंबन कर रहा है या नहीं। इनकी रूप रेखाएं स्पष्ट होती हैं साधारण पढी-लिखी जनता इसे खूब जानती है अवसरवादी दृष्टियां और कार्यनीति के विविध रूपों और प्रकरणों प्रकारों का तुरंत पता चल जाता है। किंतु.... किंतु.... महत्वपूर्ण बात यह है कि इस प्रकार की विसंगतियां छोड जो तुरंत ही प्रकट हो जाती हैं अन्य विसंगतियां पहचानना मुश्किल रहता है और बहुधा मनुष्य अपने मानसिक स्वार्थों की दृष्टि से अन्य में विसंगतियां और बुद्धि ऊंचे आदर्शों को आगे करके उनके झंडे के नीचे काम करती हैं।”

'कलाकार की व्यक्तिगत ईमानदारी' के अंतर्गत मुक्तिबोध रचना प्रक्रियागत संघर्षों के निर्माण को जीवन तथ्यों या वस्तु तथ्यों से जोडते हुए व्यक्तिगत तथा अभी व्यक्तिगत ईमानदारी के जटिल प्रश्नों से जूझते हुए दिखाई देते हैं- “मैंने अपने को संवारते हुए, अटकते हुए और शब्दों के लिए भटकते हुए कहा, “तुम भले ही फ्रॉड कहलो। इसमें व्यक्तिगत ईमानदारी जरूर है। डायरी मेरी व्यक्तिगत ईमानदारी का सबूत है।"

"जिंदगी एक महाविद्यालय या विश्वविद्यालय नहीं है। वहां एक प्राइमरी स्कूल है, जहां टाट पट्टी पर बैठना पडता है। जरासी बात पर चाटे के आघात की सारी संवेदनाएं गालों पर झेलनी पडती है। जी हां! इस जिंदगी का यही हाल है! भय, आतंक, विचित्र आशंकाएं, अजीबोगरीब उलझाव, कटी हुई टाट पट्टियां, पुराने स्याही रंगे टेबल, गुरुजी की भयानक दुतरफा मुंहतोड घर में माता-पिता की डांट फटकार और बच्चे का कमल छोआ-सा शरीर!

" मुक्तिबोध इसी प्रकरण में व्यक्तिगत इमानदारी को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि व्यक्तिगत ईमानदारी का अर्थ है- जिस अनुपात में जिस मात्रा में, जो भावना या विचार उठा है, उसको उसी मात्रा में प्रस्तुत करना। जो भावना विचार जी स्वरूप को लेकर प्रस्तुत हुआ है उसको उसी स्वरूप में प्रस्तुत करना लेखक का धर्म है।

मुक्तिबोध की डायरी की भाषा सहज सरलता के कलेवर से युक्त है। उनका विचार-विमर्श और लंबे-लंबे संवाद एक विशेष प्रकार की संवेदनात्मक उपस्थिति दर्ज करते हैं। मुक्तिबोध की एक साहित्यिक की डायरी में विचारों की गंभीरता को है उसमें भावात्मक और आत्म परम तत्व शामिल हैं।

इनकी डायरी के प्रकरणों की रचना शैली को डॉ. मोतीराम वर्मा के शब्दों में इस तरह से कह सकते हैं कि “इन निबंधों का प्रत्येक प्रकरण सीदी-साधी शुरुआत, अक्सर कहानी जैसी बल्कि आत्म कथानक व्रत के एक मार्मिक अंश जैसी जो आपने विकास क्रम में सरजी जीवन की जटिलताओं के किसी पाषाण खंड से जा टकराती जहां प्रश्नों के टुकडे फूट पडते हैं फिर उन टुकडों की चिंतन के सूक्ष्म हजारों से सर्जनात्मक छानबीन की जाती है। बीच-बीच में जरूरत के मुताबिक व्यंग्य की एक ही हल्की चोट की आवाज सुनाई देती

है और अंततः यह महसूस होता है कि अपूर्व सा कुछ अनमोल यद्यपि निहायत परिचित लगने वाला समाधान हाथ आ गया है।"

क्या भूलूँ क्या याद करूँ- हरिवंशराय बच्चन

क्या भूलूँ क्या याद करूँ हिंदी की सर्वाधिक चर्चित आत्मकथाओं में से एक है। कृति के शीर्षक से स्पष्ट पता चलता है कि लेखक के निजी और सार्वजनिक जीवन में ऐसी घटनाएँ घटित हुई होगी, जिनका उल्लेख वह यहां करना चाहता है। पर किनका करें, किनका नहीं- तय नहीं कर पाता है। बावजूद इसके, असमंजस की स्थिति से वह मुक्त होता है और इस कृति में उन घटनाओं, प्रसंगों और स्थितियों का उल्लेख करता है, जिनका गहरा संबंध उसकी प्रारंभिक जिंदगी से रहा है और एक समय जिसने उसके जीवन की दशा और दिशा दोनों को पूरी तरह से बदल दिया था। बच्चन के जिस कवि व्यक्तित्व से आज पूरा हिंदी संसार परिचित है- उसका स्रोत इस आत्मकथात्मक कृति में आसानी से ढूँढा जा सकता है। इसलिए इस आत्मकथात्मक कृति को पढ़ने का अर्थ एक रचना का आस्वादन करना ही नहीं है, बल्कि उन मार्मिक स्थितियों से गुजरना भी है जिसके कारण बच्चन के रचनात्मक व्यक्तित्व का निर्माण और विकास होता है और 'मधुशाला', 'मधुबाला', 'निशा निमंत्रण' जैसी काव्य-कृतियाँ रची जाती है। क्या भूलूँ क्या याद करूँ स्पष्टतः बतलाती है कि इसे पढने का अर्थ लेखक के बचपन से लेकर पहली पत्नी श्यामा की मृत्यु तक जीवन क्रम को जानना ही नहीं, अपितु उस समय के समाज को समझना भी है, जब भारत में जातिवादी और धार्मिक संस्थाएँ मजबूत थीं, सामाजिक जिंदगी में उनका बोलबाला था और तत्कालीन ब्रिटिश साम्रज्यवाद उनके सहयोग से शासन और दमन के रास्ते पर बढ़ रहा था। इन बातों का संकेत जगह-जगह इस कृति में मिल जाएगा।

वस्तुतः प्रत्येक बडी रचना का अपना एक सच होता है। अधिकांशतः इस सत्य का दर्शन रचना की अंतर्वस्तु में निहित होता है। 'क्या भूलँ क्या याद करूँ' को पढ़ते हुए बार-बार इस बात का एहसास होता है कि बच्चन अपने जीवन की जिन सच्चाइयों से पाठक समाज को परिचित कराना चाहते हैं, वे उनकी जरूर है पर उनका गहरा संबंध तत्कालीन युगीन परिवेश से रहा है तथा वे सच्चाइयाँ ऐसी नहीं है कि व्यर्थ का प्रचार करें। नायब साहब, राधा बुआ, बाबा भोलानाथ, पिता प्रतापनारायण, पत्नी श्यामा, मित्र कर्कल चंपा-प्रकाशों-श्रीकृष्ण आदि की जिंदगी की सच्चाइयों का गहरा संबंध लेखक के जीवन और युगीन परिवेश से रहा है, पर उनको लेकर वह आत्मालोचन अधिक करता है प्रचार कम । इतना ही नहीं उनको लेकर उसके अंदर भावुकता नहीं है बल्कि, वह मानता है कि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के कुछ मार्मिक प्रसंग होते हैं, जिन्हें लेकर वे अपनी जिंदगी की एक दिशा तय कर लेते हैं। इस आत्मकथा को पढ़ते हुए इसके पात्रों की जिदंगी में आए निर्णायक क्षण से 'सच को समझा जा सकता है। जिस 'संयम के विस्फोट' की चर्चा लेखक बार-बार इस कृति में करता है, वह उसकी जिंदगी की एक सच्चाई है जिसे वह पहली पत्नी श्यामा की बीमारी के चलते शारीरिक स्तर पर दूर रहने के कारण प्राप्त करता है। अगन बच्चन ने यह आत्मकथा नहीं लिखी होती तो शायद ही हम उनके जीवन की इस सच्चाई से परिचित हो पाते और 'मधुशाला' से व्यक्त प्रेम और विरह का रहस्य समझ पाते। पहले संस्करण की भूमिका में उन्होंने लिखा भी है कि "मुझे कई वर्षों से लग

रहा था कि जब तक मैं अपने अंतर में निरंतर उठती स्मृतियों को चित्रित न कर डालूँगा तब तक मेरा मन शांत नहीं होगा।"

वास्तव में क्या भूलूँ क्या याद करूँ को पढ़ने का अर्थ है 'मधुशाला' के कवि हरिवंशराय बच्चन की प्रारंभिक जिंदगी को नजदीक से देखना, उसे महसूस करना, समझना और उस भारतीय समय तथा समाज को जानना, जब जातीय और धार्मिक संस्थाओं का विकास जोरों पर था एवं स्वाधीनता आंदोलन गांधीवाद तथा क्रांतिकारी गतिविधियों के बीच से नया मार्ग ढूढ़ रहा था। यद्यपि इस कृति में इनका व्यापक वर्णन नहीं है और न ही विधा तथा लेखक की जिंदगी को देखते हुए उसकी जरूरत भी है, पर जगह-जगह अनेक ऐसे संकेत हैं जो इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

सारांश

हरिवंशराय बच्चन की 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' पर केंद्रित इस इकाई में उनकी आत्मकथा के पहले भाग पर विचार किया गया है जिसमें लेखक के जन्म से लेकर पहली पत्नी श्यामा की मृत्यु तक का मार्मिक वर्णन है। यह सही हैकि आत्मकथाकार का अपना एक समाज और अपनी एक संस्कृति है अपने जीवन की सच्चाइयों का यथार्थ चित्रण। लेखक, आत्मकथा लेखन के बहाने समाज और संस्कृति के इस 'सच' से टकराता है। बच्चन भी उस आत्मकथा में बार-बार अपने जीवन की सच्चाइयों को टकराते हैं। इस इकाई को पढ़कर आप उनके जीवन के इस 'सच' और इससे टकराने की प्रक्रिया को समझ सकते हैं।

यह सही है कि लेखक के जीवन में बहुत सारी बातें ऐसी होती है जिसे वह कहानी, कविता, उपन्यास, नाटक, निबंध जैसे प्रचलित विधाओं में व्यक्त नहीं कर पाता है। खासकर जीवन की वैसी सच्चाइयाँ जो समाज और लेखन की मर्यादाओं से अनुशासित होती हैं। बच्चन अपने जीवन के जिस सच को प्रकट करना चाहते हैं, उसके लिए उपयुक्त विधा आत्मकथा ही है। कारण, आत्मकथा की सरंचना ऐसी होती है कि लेखक उसमें एक सीमा तक छूट ले सकता है। चाहे वह जाति का प्रसंग हो अथवा समाज का । व्यक्ति हो अथवा परिवार का। वह इसमें कथा कहने की भिन्न-भिन्न शैलियों का प्रयोग कर सकता है। इस इकाई को पढकर आप देखेंगे कि बच्चन लेखन के स्तर पर रचना की अनेक शैलियों का प्रयोग करते हैं और आत्मकथा को रोचक, पठनीय तथा प्राणवान बनाते हैं।

आत्मकथा में न ही कोई विषयवस्तु निर्धारित होती है और न ही अंतर्वस्तु | पर लेखक इस बात का ध्यान रखता है कि जो भी प्रसंग अथवा घटनाएँ चित्रित हो, उससे उसके जीवन का सीधा जुडाव हो। क्या भूलूँ क्या याद करूँ में बच्चन ब्रिटिशकालीन भारतीय जीवन के ऐसे अनेक प्रसंगों और घटनाओं का उल्लेख करते हैं जिनका गहरा संबंध तत्कालीन समाज से हैं। पर, उन्हें वे अपने जीवन से जोडकर देखते हैं। आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक परिवेश किस स्तर पर एक लेखक को प्रभावित करते हैं, और उनका चित्रण आत्मकथात्मक कृति में वह किस प्रकार करता है, इस इकाई को पढ़कर देखा जा सकता है।

विचार तथा थोडा और स्पष्ट करें तो दृष्टिकोण का रचनाकार के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान होता है। पर बडा रचनाकार अपनी दृष्टि को रचना पर आरोपित नहीं करता है बल्कि घटनाओं और प्रसंगों के माध्यम से अपने विचारों को स्पष्ट कर देता है। क्या भूलूँ क्या याद करूँ में बच्चन सामाजिक रूढ़ियों, मान्यताओं, समस्याओं आदि के खिलाफ और रचना तथा रचनाकार के बारे में जगह-जगह अपनी राय व्यक्त करते हैं। इस इकाई को पढ़कर आप देखेंगे कि बच्चन अपने भावों और विचारों को किसी घटना अथवा प्रसंग के साथ जोडकर प्रस्तुत करते हैं सीधे-सीधे आरोपित नहीं। उसका औचित्य बतलाते हैं और मानवीय मूल्यों के आधार पर उन्हें मानने और समझने की वकालत करते हैं।

निष्कर्षतः हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथा का यह पहला भाग एक लेखक के लेखकीय व्यक्तित्व के बनने की प्रक्रिया से हमें परिचित करता है। इस क्रम में उसके सकारात्मक और नकारात्मक पहलुओं पर टिप्पणी करता है तथा यह बतलाता है कि लेखन के लिए जितनी जरूरत सामाजिक प्रतिबद्धता की होती है, उतनी निजी जिंदगी में ईमानदारी की भी। बिना अपनी निजी जिंदगी में ईमानदार हुए कोई भी लेखक अपने समाज की 'संपूर्ण सच' को प्रकट करने का दावा नहीं कर सकता। 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' के माध्यम से लेखक ने इस सच को प्रकट करने का साहस पाठक समाज के सामने किया है और यही इस आत्मकथा की सबसे बडी विशेषता है।

विशेष

- 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथा का प्रथम भाग है। इनकी आत्मकथा चार भागों में विभक्त है

क्या भूलूँ क्या याद करूँ - 1969 ई.

नीड का निर्माण फिर से - 1970 ई.

बसेरे से दूर - 1977 ई.

दशद्वार से सोपान तक - 1985 ई.

- इसके लिए बच्चन जी को सरस्वती सम्मान से भी सम्मानित किया जा चुका है।
- इस आत्मकथा की शुरुआत अपने पुरखों के इलाहाबाद में बसने आने की कथा से शुरू करते है।
- बचपन से ही पढ़ने का शौक था, जहाँ छोटे बच्चे खेलते हुए अपना समय बिताते थे वही बच्चन एकांत में बैठकर पढ़ने में लगे रहते थे।
- युवावस्था की तरफ बढ़ते हुए बच्चन ने अपने एक मित्र कर्कल का वर्णन किया है।
- कर्कल की पत्नी चंपा से भी इनका आत्मीयता का संबंध था।
- बच्चन का विवाह श्यामा के साथ हुआ। बच्चन ने श्यामा का नाम 'ज्वाय' रखा। . इसमें अनेक प्रारंभिक संघर्ष की कहानी है।
- उनकी श्यामा के साथ शादी, और श्यामा की मृत्यु का वर्णन है।
- वे इसमें अन्य महिलाओं के साथ अपने उन सम्बन्धों का भी इशारा करते है जो हमारे समाज में अनुचित माना जाता है।

- डॉ. धर्मवीर भारती ने इसे हजार वर्षों के इतिहास में ऐसी पहली घटना बताया जब अपने बारे में सब कुछ इतनी बेबाकी, साहस और सद्भावना से कह दिया है।
- डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार इसमें केवल बच्चन जी का परिवार और उनका व्यक्तित्व ही नहीं उभरा है, बल्कि उनके साथ समूचा काल और क्षेत्र भी अधिक गहरे रंगों में उभरा है। -
- डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन की राय में ऐसी अभिव्यक्तियाँ नई पीढ़ी के लिए पाठेय बन सकेगी, इसी में उनकी
- सार्थकता भी है।

जामुन का पेड़

- भारत में नौकरशाही (सरकारी कर्मचारी) का मौजूदा स्वरूप ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन की देन है। इसके कारण यह वर्ग आज भी
- अपने को आम भारतीयों से अलग, उनके ऊपर, उनका शासक और स्वामी समझता है। अपने अधिकारों और सुविधाओं के लिए यह वर्ग जितना सचेष्ट रहता है, आम जनता के हितों, जरूरतों और अपेक्षाओं के प्रति उतना ही उदासीन रहता है।
- भारत जब गुलाम था, तब महात्मा गांधी ने विश्वास जताया था कि आजादी के बाद अपना राज यानी स्वराज्य होगा, लेकिन आज जो हालत है, उसे देख कर कहना पड़ता है कि अपना राज है कहाँ ? आज चतुर्दिक अफसरशाही का जाल है। लोकतंत्र की छाती पर सवार यह अफसरशाही हमारे सपनों को चूर-चूर कर रही है।
- देश की पराधीनता के दौरान इस नौकरशाही का मुख्य मकसद भारत में ब्रिटिश हुकूमत को मजबूत करना था। जनता के हित,
- उसकी जरूरतें और उसकी अपेक्षाएँ दूर-दूर तक उसके सरोकारों में नहीं थे। -
- कृष्ण चंदर की कहानी जामुन का पेड़ सरकारी विभागों की लालफ़ीताशाही का पर्दाफ़ाश करती है। इस कहानी के माध्यम से लेखक ने सरकारी कर्मचारियों और अधिकारियों में फैली अकर्मण्यता पर भी करारा व्यंग्य किया है। हर विभाग अपनी ज़िम्मेदारी को दूसरे विभाग पर तरह-तरह के बहाने बनाकर डाल सेता है। फ़ाइल एक विभाग से दूसरे विभाग तक घूमती रहती है किन्तु परिणाम कुछ नहीं निकलता है।पेड़ के नीचे दबा आदमी प्राण-रक्षा के लिए मृत्यु से जूझता हुआ अंतत: मारा जाता है। प्राय: सरकारी विभाग और दफ़्तर आम व्यक्ति के प्राणों तक को अपनी विकृत फाइल कल्चर का शिकार बना देते हैं।
- सरकारी कार्यशैली की निकृष्टता, उसमें निहित अमानवीयता, गैर-जनहितवादी अफसरशाही का दबदबा, विभागों के बीच टालाटाली का खेल, शिक्षित मध्यमवर्ग का ढकोसलापन, सर्वत्र फैला दिमागी दिवालियापन, इस सबको दर्शाना ही इस कहानी का परम लक्ष्य है।

- मुख्य प्रश्नोत्तर

(i) कौन सी घटना की वजह से एक आदमी पेड़ के नीचे दबा पड़ा था ?

(ii) दबे हुए आदमी को देखकर माली तथा अन्य लोगों की क्या प्रतिक्रिया हुई ?

(iii) पहले, दूसरे और तीसरे क्लर्क ने क्या-क्या कहा ? इससे उनकी किस

मानसिकता का पता चलता है ?
(iv) कहानी से सरकारी विभागों की कार्य-शैली के बारे में क्या पता चलता

- उत्तर

(i) रात को बड़ी ज़ोर से आँधी चली जिससे व्यापार विभाग के सेक्रेटेरियट
के लॉन में जामुन का पेड़ गिर गया और उसके नीचे एक व्यक्ति दब गया।
(ii) सुबह जब माली ने देखा कि पेड़ के नीचे एक आदमी दबा पड़ा है तो वह दौड़ा-दौड़ा चपरासी के पास गया, चपरासी क्लर्क के पास और क्लर्क दौड़ा-दौड़ा सुररिंटेंडेंट के पास गया। सुपरिंटेंडेंट दौड़ा-दौड़ा बाहर लॉन में आया। मिनटों में गिरे हुए पेड़ के नीचे दबे हुए आदमी के चारों ओर भीड़ इकट्ठी हो गई।
(iii) पहले क्लर्क ने कहा कि बेचारा जामुन का पेड़ कितना फलदार था। दूसरे क्लर्क ने कहा कि इसकी जामुनें कितनी रसीली होती थीं। तीसरा क्लर्क लगभग रुआँसा होकर बोला कि वह फलों के मौसम में झोली भरकर ले जाता था। उसके बच्चे जामुन को कितनी खुशी से खाते थे। सभी स्वार्थी मानसिकता के हैं। उन्हें किसी आदमी की दुख-तकलीफ से ज्यादा सरोकार नहीं था।
(iv) इस कहानी के माध्यम से लेखक ने सरकारी कर्मचारियों और अधिकारियों में फैली अकर्मण्यता पर भी करारा व्यंग्य किया है। हर विभाग अपनी ज़िम्मेदारी को दूसरे विभाग पर तरह-तरह के बहाने बनाकर डाल सेता है। फ़ाइल एक विभाग से दूसरे विभाग तक घूमती रहती है किन्तु परिणाम कुछ नहीं निकलता है। प्रस्तुत कहानी सरकारी विभागों की लापरवाही और जिम्मेदारी से मुँह मोड़ने की प्रवृत्ति को उजागर करती है। इस तरह की कार्य-शैली के अंर्तगत अनावश्यक नियमों का उल्लेख कर विभाग अपनी ज़िम्मेदारी एक-दूसरे पर थोप देते हैं।

प्रधानमंत्री ने इस पेड़ को काटने का हुक्म दे दिया, और इस घटना की सारी अन्तर्राष्ट्रीय ज़िम्मेदारी अपने सिर ले ली। कल यह पेड़ काट दिया जाएगा, और तुम इस संकट से छुटकारा हासिल कर लोगे। सुनते हो? आज तुमहारी फ़ाइल पूर्ण हो गई।

- प्रश्न

(i) उपरोक्त पंक्तियाँ कौन, किससे, कब कह रहा है और क्यों ?
(ii) अन्तर्राष्ट्रीय ज़िम्मेदारी से क्या तात्पर्य है ? यहाँ इन शब्दों का प्रयोग किस संदर्भ में किया गया है और क्यों ?
(iii) संकट क्या था ? क्या उस व्यक्ति को संकट से छुटकारा मिल सका ? - यदि नहीं, तो क्यों ? स्पष्ट कीजिए।
(iv) जामुन का पेड़ कहानी के शीर्षक की सार्थकता स्पष्ट कीजिए।
मनमायाका की साया

उत्तर

(i) प्रस्तुत पंक्तियाँ सुपरिटेंडेंट ने कवि से कहा है। जब दौरे से वापस लौटने पर प्रधानमंत्री जामुन का पेड़ को काटने का आदेश देते हैं
तो सुपरिटेंडेंट खुशी से फूला नहीं समाता। वह इस संवाद को स्वयं दबे हुए व्यक्ति तक पहुँचाता है। वह सोचता है कि अब दबे हुए व्यक्ति का संकट शीघ्र ही दूर हो जाएगा।
चिन्दी साहित्य चैनल
(ii) अन्तर्राष्ट्रीय ज़िम्मेदारी से आशय है - पेड़ काटने पर विदेशों में होने वाली प्रतिक्रिया की ज़िम्मेदारी।
जब फ़ॉरेस्ट डिपार्टमेन्ट (वन विभाग) के आदमी आरी, कुल्हाड़ी लेकर पहुंचे तो उन्हें पेड़ काटने से रोक दिया गया। कारण यह था कि विदेश विभाग से आदेश मिला हुआ था कि उस पेड़ को न काटा जाए क्योंकि उस पेड़ को दस वर्ष पहले पीटोनिया राज्य के प्रधानमंत्री ने लगाया था। इस बात की पूरी संभावना थी कि उस पेड़ के काटने से पीटोनिया सरकार के साथ हमारे देश के संबंध बिगड़ सकते हैं और उसका प्रभाव हमारे देश को मिलने वाली सहायता पर भी पड़ सकता है। इसलिए प्रधानमंत्री ने पेड़ काटने की अनुमति देते समय विदेशी विभागों से संबंधित अन्तर्राष्ट्रीय ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ली थी।
(iii) तेज आँधी से जामुन के पेड़ के गिरने पर एक व्यक्ति उसके नीचे दब गया था। दबे हुए व्यक्ति के प्राण संकट में थे, लेकिन वनविभाग से अनुमति लिए बिना उस पेड़ को हटाना संभव नहीं था। वन विभाग की अनुमति मिलने पर विदेश विभाग ने पेड़ काटने के बारे में आपत्ति की थी। अन्त में जब प्रधानमंत्री ने अन्तर्राष्ट्रीय ज़िम्मेदारी अपने सिर पर लेते हुए पेड़ काटने का आदेश दे दिया तो सुपरिटेंडेंट ने यह समाचार दबे हुए व्यक्ति को दिया कि कल पेड़ काटने का आदेश दे दिया कि कल पेड़ काटकर उसे निकाल लिया जाएगा परन्तु वह इस सुखद समाचार के मिलने से पहले ही दम तोड़ चुका था।
(iv) जामुन का पेड़ कहानी का शीर्षक प्रतीकात्मक है। जब किसी कहानी का शीर्षक सामान्य शाब्दिक अर्थ के अलावा किसी विशेष
अर्थ की ओर संकेत करता है तब उस शीर्षक को प्रतीकात्मक शीर्षक की संज्ञा दी जाती है।

• प्रस्तुत कहानी में जामुन का पेड़ देश की समस्याओं का प्रतीक है और उसके नीचे दबा व्यक्ति देश का आम नागरिक है जो किसी न किसी बोझ तले दबा हुआ है और छटपटा रहा है। वहीं दूसरी ओर देश की शासन व्यवस्था को चलाने वाला सरकारी कर्मचारी-वर्ग अपने को आम भारतीयों के ऊपर शासक करने वाला स्वामी समझता है। अपने अधिकारों और सुविधाओं के लिए यह वर्ग जितना सचेष्ट रहता है, आम जनता के हितों, जरूरतों और अपेक्षाओं के प्रति उतना ही उदासीन रहता है।

- कहानी में जामुन के पेड़ के नीचे दबा व्यक्ति सरकारी कर्मचारियों की उदासीनता और लापरवाही के कारण दम तोड़ देता है। अत:कहानी का शीर्षक सार्थक एवं उपयुक्त है।

ठकुरी बाबा (रेखाचित्र)महादेवी वर्मा

'महादेवी वर्मा' द्वारा रचित 'ठकुरी बाबा' एक मर्मस्पर्शी रचना है।
लेखिका महादेवी वर्मा की 'ठकुरी बाबा' से भेंट प्रयाग में उनके कल्पवास के दौरान हुई।

'ठकुरी बाबा' का चरित्र उस ग्रामीण वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जिसे रसिया, बिरहा गाने, आल्हा या आलाप या नौटंकी आदि भाग लेकर तरह-तरह के स्वांग रचने के कारण समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता है। पर लेखिका महादेवी वर्मा के मन को ठकुरी की यही सहजता व निश्छलता भा जाती है। ग्रामीण भारत का प्रतिनिधित्व करने वाले ठकुरी की यही सरल, सहज स्वाभाविक प्रवत्ति ही लेखिका को आकर्षित करती है। महादेवी वर्मा कहती हैं कि ठकुरी बाबा के चरित्र में उदारता व आतिथ्य भाव कूट-कूट कर भरा है। वह सबको अपना अतिथि बनाने को आतुर रहते हैं। साथ ही साथ वह किसी के दूसरे के घर जाते हैं तो दूसरे के घर का अन्न खाकर बदले में कुछ देने की परंपरा का निर्वहन करने का सरल-सहज भाव उनके अंदर है इसलिये वो अपनी गठरी में खाने-पीने का सामान लेकर चलतें अपनी गठरी में का अन्न खाकर सबको अपना अति कल्पवास में वस्तुओं के विनिमय अर्थात अपनी-अपनी आवश्यकता के अनुसार एक-दूसरे से वस्तुओं के आदान-प्रदान की परंपरा रही है।

लोगों से वस्तुओं के विनिमय अर्थात आदान-प्रदान में वो सरल व सीधे हैं और ये नही देखते कि लोगों उनसे क्या लेकर बदले में क्या दिया।

कोई उन्हें मात्र एक गुड़ की डली देकर बदले में आधा सेर आटा ले जाता है तो कोई तोला भर दही देकर कटोरा भर चावल ले जाता है। कोई छंटाक भर घी देकर लोटा भर दूध चाहता है और कोई केवल चार मिर्चों के बदले शकरकंद का आनन्द लेना चाहता है। पर 'ठकुरी बाबा' किसी को भी मना नहीं करते और अपनी सरल प्रवृत्ति से इसे बिल्कुल सहजता से स्वीकार करते हैं।

'ठकुरी बाबा' की यही सरलता, सहजता व स्वाभाविकता ही उनकी चारित्रिक विशेषता है। वृद्ध और युवा के अन्तर को स्पष्ट करते हुए महोदवी जी लिखती है "यदि वह वृद्ध यहाँ न होकर हमारे बीच में होता, यह प्रश्न भी मेरे मन में अनेक बार उठ चुका है, पर जीवन के अध्ययन ने मुझे बता दिया कि इन दोनों समाजों का अन्तर मिटा सकना सहज नहीं। उनका बाह्य जीवन दीन है और हमारा अन्तर्जीवन रिक्त ।"

विधवा की समस्या, विधुर की समस्या, वृद्ध की समस्या, ग्रामीण जीवन, स्त्री शृंगार आदि का चित्रण करना महादेवी जी का उद्देश्य रहा है। महादेवी जी ने इस रेखाचित्र के माध्यम से नगरीय व ग्रामीण सभ्यताओं का अन्तर बडी मार्मिकता के साथ स्पष्ट किया है। लेखिका ने सांस्कृतिक समन्वय की भावना को चित्रित किया है। रेखाचित्र द्वारा ग्रामीण समाज की विशेषताओं का उद्घाटन किया है। आधुनिक शिक्षित, शिष्ट और सभ्य कहे जाने वाले व्यक्तियों पर व्यंग्य किया है।

विशेष-

- "स्मृति की रेखाएं' में भक्तिन, चीनी फेरीवाला, रंगिया धनिया, मुन्नी की मां, ठकुरी बाबा, बैरेठन [गीया रेखाचित्रसंकलित है।
- इसमें ठकुरी बाबा का व्यक्तित्व कवि का असली स्थान, काव्यानंद की प्राप्ति, देहाती कवि का जीवन चित्र खींचा गया है।

- 'ठकुरी बाबा' का चरित्र उस ग्रामीण वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। जिसे रसिया, बिरहा गाने, आल्हा या आलाप या नौंटकी आदि में भाग लेकर तरह-तरह के स्वांग रचने के कारण समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता है, पर लेखिका महादेवी वर्मा के मन को ठकुरी बाबा की यही सहजता व निश्छलता भा जाती है।
- महादेवी कहती है कि ठकुरी बाबा के चरित्र में उदारता व आतिथ्य भाव कूट-कूट कर भरा है। वह सबको अपना अतिथि बनाने को आतुर रहते है।
- कल्पवास में वस्तुओं के विनियम अर्थात् अपनी-अपनी आवश्यकतानुसार एक-दूसरे से वस्तुओं का आदान-प्रदान की परंपरा रही है।
- ठकुरी बाबा सरल व सीधे है और ये नहीं देखते कि लोगों ने उनसे क्या लेकर बदले में क्या दिया है। वह सहज-सरल प्रवृत्ति के निश्छल व्यक्ति है।
- 'ठकुरी बाबा' 1945 ई. में प्रकाशित 'स्मृति की रेखाएं' में संकलित है।
- 'ठकुरी बाबा' रेखाचित्र एक मर्मस्पर्शी रचना है। महादेवी जी की 'ठकुरी बाबा' से भेट प्रयाग में उनके कल्पवास
- के दौरान हुई।
- ग्रामीण भारत का प्रतिनिधित्व करने वाले ठकुरी की यही सरल, सहज, स्वाभाविक प्रवृत्ति ही लेखिका को आकर्षित करती है।

. वह किसी दूसरे के घर जाते हैं तो दूसरे के घर का अन्न खाकर बदले में कुछ देने की परंपरा का निर्वाहन करने का सरल-सहज स्वभाव उनके अंदर है इसलिए वो अपनी गठरी में खाने-पीने का सामान लेकर चलते है।

तुलसीराम - मुर्दहिया (आत्मकथा)

प्रकाशन समयः 1 जनवरी 2010(तद्भव पत्रिका,अखिलेश)

इस आत्मकथा को सात शीर्षकों में बांटा गया है।

1.भुतही पारिवारिक पृष्ठभूमि

2.मुर्दहिया तथा स्कूली जीवन

3.अकाल में अन्धविश्वास

4.मुर्दहिया के गिद्ध तथा लोक जीवन

5.भुतनिया नागिन

6.चले बुद्ध की राह

7.आजमगढ की फाकाकशी

डॉ. तुलसीराम द्वारा रचित आत्मकथा 'मुर्दहिया' में दलितों की पीड़ा को रेखांकित करने के साथ-साथ अपने गाँव धरमपुर (आजमगढ) के जरिए उस समय के पूरे भारतवर्ष के गाँवों को ही चित्रित कर दिया है।

डॉ. तुलसीराम कहते हैं- इसमें मेरा दर्द है, मेरे समाज का दर्द है। मेरा पूरा जीवन ही मुर्दहिया है। मुर्दहिया यानि गाँव का वह कोना जहाँ मुर्दे फँके जाते हैं, मुर्दहिया यानि गाँव का वह हिस्सा जहाँ मरे हुए जानवरों के चमड़े उतारे जाते हैं।" ।

तुलसीराम द्वारा अपनी आत्मकथा को मुर्दहिया नाम देना केवल एक शीर्षक मात्र नहीं अपितु उनकी रचना की आत्मा है। 'मुर्दहिया' आत्मकथा में गाँव में घटित हर घटना को अन्ध-विश्वास से जोड़कर देखा जाता है। उल्का पिण्ड का रात में टुटने को भूत समझा जाता है। जब कोई उड़ता हुआ कौआ किसी को पेरों या चोंच से मार देता है तो इसे भी अपशकुन माना जाता है। बचपन में 3वर्ष की आयु में डॉ. तुलसीराम को चेचक । निकल आने व इसमें उनकी एक आँख चले जाने से घरवालों समेत सभी गाँव वाले उन्हें अपशकुन मानते हैं। डॉ. तुलसीराम 'मुर्दहिया' आत्मकथा के माध्यम से पूरे भारतीय देहाती गाँव में फैले अन्धविश्वास को अपने गाँव के जरिए बताते हैं। गाँव की दक्षिण दिशा में दलितों को रहने के लिए ब्राह्मणों, ठाकरों आदि द्वारा विवश किया जाता है, क्योंकि एक हिन्दू अन्धविश्वास के अनुसार किसी भी गाँव की दक्षिण दिशा में ही सर्वप्रथम कोई आपदा या बीमारी आती है।

एक तरफ धरमपुर गाँव अन्धविश्वास में डूबा पड़ा है, वहीं दूसरी तरफ दलित तुलसीराम ज्ञान हासिल करने के लिए परिवार और विपरीत परिस्थितियों से जूझते हुए दसवीं कक्षा में प्रथम आते हैं तथा एक होनहार विद्यार्थी के रूप में उनकी ख्याति पूरे गाँव में फैल जाती है। शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए उनकी सहायता हिन्दी के अध्यापक सुग्रीव सिंह ने की। इस प्रकार कठिनाइयों का सामना करते हुए तुलसीराम कॉलेज में पहुँच जाते हैं, लेकिन उनके ही एक दोस्त द्वारा उनके स्कॉलरशिप के 162 रुपये में से 81 रुपये चाकू की नोंक (देशराज) पर लूट लेने से तुलसीराम समझ जाते हैं कि मानवीय मूल्यों पर पैसा हावी है।

'मुर्दहिया' आत्मकथा में वेदना, आक्रोश व उत्तेजना का उतावलापन नहीं है अपितु इसमें सभी चीजों को बडी बारीकियों से पेश किया गया है। तुलसीराम का चमरा और कनवा जैसे अपमानजनक सम्बन्धों से
सूचित होते हुए भी इन सभी रूढ़िवाढी परिवेश के बीच से अपना रास्ता निकालते हुए ज्ञान के क्षेत्र में आगे बढ़ना एक प्रेरक प्रसंग के रूप में उभरा हैं।
> दलित जीवन की त्रासदी का विस्तार से वर्णन।
> खेत-मजदूरी पर आश्रित दलित जीवन की विभीषिका और शोषणकारी परम्परा को बड़े निर्विकार
भाव से यर्थाथवादी चित्रण किया गया है।
> नाईयों,धोबियों,मुसहरों व नटों की बदहाली का मार्मिक चित्रण किया गया है।
> शिक्षा व शिक्षण तन्त्र की विद्रुपता का चित्रण ।
> अध्यापक मुन्शीराम व सुरतलाल विद्यालय में दलित बच्चों को 'चमरकिट' कहकर ताने मारते थे।
> 'मुर्खता मेरी जन्मजात विरासत थी'- कथन है (लेखक का)
> वे अक्सर कहा करते थे कि यदि हरवाही छोड़ दूंगा तो ब्रहमहत्या का पाप लगेगा पंक्ति में 'वे' किसके लिए कहा गया है-लेखक के पिता के लिए।

शिवरानी देवी- प्रेमचन्द घर में

प्रेमचन्द जी की पत्नी शिवरानी देवी ने 'प्रेमचन्द घर में' नाम से उनकी जीवनी लिखी और उनके व्यक्तित्व के उस हिस्से को उजागर किया है, जिससे लोग अनभिज्ञ थे। इस जीवनी में लिखी गई हर घटना सत्य पर आधारित है, क्योंकि उन्होंने खुद उन पलों को जिया है, महसूस किया है। यह पुस्तक वर्ष 1949 में प्रथम बार प्रकाशित हुई तथा वर्ष 2005 में संशोधित करके इसे पुनः प्रकाशित किया गया। वह साहित्य की एक अमूल्य निधि है।

प्रेमचन्द एक महान् साहित्यकार तथा सहृदय होने के अतिरिक्त एक संवेदनशील पति भी थे, वे स्त्री-पुरुष समानता के पक्षधर थे। उन्होंने अपनी पत्नी को हमेशा लिखने तथा सामाजिक कार्यों में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेने के लिए प्रेरित किया। शिवरानी ने इस पुस्तक में प्रेमचंद जी के साथ बिताए हुए जीवन के सुनहरे पलों को सहज संवेदना के साथ लिखा है। जीवन के अन्तिम क्षणों में भी प्रेमचन्द जी ने साहित्य रचना का साथ नहीं छोडा और उनका पत्नी के प्रति लगाव और भी बढ़ गया। शिवरानी अपने पति की महानता को उनके मरणोपरान्त ही समझ पाई। उनकी मृत्यु के पश्चात् शिवरानी देवी का वह विलाप हृदय को छू लेता है कि जब तक जो चीज हमारे पास रहती है तब तक हमें उसकी कद्र नहीं होती, लेकिन वो जब हमसे ओझल हो जाती है, तो हमारा मन पछताता रहता है और तब हमारे पास दुखी होने के अलावा कोई विकल्प नहीं बचता।

प्रेमचन्द के मरणोपरान्त शिवरानी देवी के जीवन में भी ऐसी ही परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई। ऐसे ने उनकी लेखनी से साहित्य जगत के लिए संग्रहनीय जीवनी फूटी। इस जीवन में साहित्य प्रेमी प्रेमचन्द का केवल साहित्यकार का रूप ही नहीं, अपितु उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का वर्णन है।

विशेष

- शिवरानी देवी ने 'प्रेमचंद घर में नाम से प्रेमचंद की जीवनी लिखी और उनके व्यक्तित्व के उस हिस्से को उजागर किया है, जिससे लोग अनभिज्ञ थे, अनजान थे।
- ऐसा नहीं है कि प्रेमचंद की जीवनी किसी और ने लिखी ही नहीं, उनके बेटे ने 'कलम का सिपाही'- (अमृत राय) पिता की जीवनी लिखी। कई अन्य साहित्यकारों ने भी इस दिशा में प्रयास किए, लेकिन वो सारा लेखन सुनी-सुनाई घटनाओं पर आधारित था। जिसमें लेखकों की खुद की भी थोडी बहुत कल्पनाएँ शामिल होती थी।
- शिवरानी देवी द्वारा लिखी गई इस जीवनी में हर घटना खरे सोने की तरह है, क्योंकि उन्होंने खुद उन पलों को जिया है और महसूस किया है।
- इस जीवनी में उनके बचपन से लेकर अंतिम दिनों तक की 88 घटनाओं का वर्णन मिलता है।
- प्रेमचंद के व्यक्तित्व की साफगोई को जिस तरह से उनकी पत्नी ने बयान किया है, वह हिन्दी साहित्य प्रेमियों के लिए पठनीय है।
- वो एक महान साहित्यकार थे, यह बात साहित्य प्रेमियों से छिपी नहीं है। साथ ही उनकी सहृदयता से भी लोग वाकिफ थे, लेकिन बहुत कम लोग ही ये जानते होगें कि साहित्य से इतर वे एक संवेदनशील पति थे, जो

- स्त्री-पुरुष समानता के पक्षधर थे।
- प्रेमचंद ने अपनी पत्नी को हमेशा प्रेरित किया कि वे लिखें और सामाजिक कार्यों में भी बढ़-चढ़कर हिस्सा लें।
- अपनी पत्नी के प्रति उनके मन में अगाध प्रेम और सम्मान था।
- शिवरानी देवी ने उनके साथ बिताए जीवन के उन सुनहरे पलों को जिस सहज संवेदना के साथ लिखा है, उसे शायद ही अन्य साहित्यकार लिख पाता, क्योंकि उनके लेखन में भावनाओं का कहीं अभाव नहीं है और न ही उसके प्रवाह में ही कोई कमी नजर आती है।
- जीवन के अंतिम क्षणों में उन्होंने साहित्य रचना का साथ नही छोडा और पत्नी के प्रति उनका लगाव और भी बढ़ गया।
- शिवरानी देवी को इस बात का मलाल हमेशा रह गया कि वे अपने पति की महानता को उनके मरणोपरांत समझ पाई।
- प्रेमचंद की मृत्यु के बाद शिवरानी देवी का वह विलाप हृदय को छू लेता है कि जब तक जो चीज हमारे पास रहती है तब तक हमें उसकी कद्र नहीं होती, लेकिन वो हमसे ओझल हो जाए तो हमारा मन पछताता रहता है। फिर हमारे पास दुःखी होने के अलावा और कोई विकल्प नहीं बचता।
- इस जीवनी को पढ़कर साहित्य प्रेमी प्रेमचंद को केवल एक साहित्यकार के रूप में नहीं, बल्कि उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को जान पाएंगे।

भोलाराम का जीव (हरिशंकर परसाई)

परसाई जी की रचना 'भोलाराम का जीव' एक व्यंग्य रचना है। इस रचना में लेखक ने एक मनुष्य की आत्मा के लुप्त हो जाने की घटना के माध्यम से शासकीय व्यवस्था, घूसखोरी जडता और यथार्थ की उद्घाटन किया है। यह कहानी सतही तौर पर एक व्यक्ति की व्यवथा कथा दिखाई देती है, जो भ्रष्टाचार की चक्की में पिस रहा है, परन्तु इस कथा के पीछे लेखक की मानवीय करुण और सामाजिक यथार्थ के प्रति आक्रोश झलकता है।

यह रचना स्वातन्त्र्योत्तर भारत के सामाजिक यथार्थ की सशक्त प्रस्तुति है। एक मामूली सरकारी कर्मचारी रिटायर हो । गया और पाँच साल तक पेंशन के लिए चक्कर लगाते-लगाते मर गया। उसके जीव को लेने जब यमदूत गया तो जीव यमदूत को चकमा देकर ऐसा गायब हुआ कि बहुत खोजने पर भी नहीं मिला । आखिरकार जब नारद जी उसे ढूँढ़ते हुए स्वयं धरती पर आए तो वह जीवन अपनी पेंशन की फाइल में अटका हुआ पाया गया।

आश्चर्य यह था कि नारद जी के कहने पर भी वह स्वर्ग में जाने को तैयार नहीं, क्योंकि उसका मन अपनी पेंशन फाइलों में ही अटक गया है। कहानी के माध्यम से परसाई जी यह बताना चाहते हैं कि जिस भ्रष्टाचार से आज हम दबे हुए है वह इता सर्वव्यापी है कि आज उसकी पहुँच अलौकिक हो गई। इस कहानी के प्रारम्भ में ही लेखक स्वर्ग और नरक की दिव्यता अलौकिकता का मिथक तोड देते हैं।

मिथक तोड़ते हुए वे कहते हैं कि कुछ भी जीवन के बाहर नहीं है और जीवन से अधिक सत्य कुछ भी नहीं है। जिस अलौकिकता को आधार बनाकर धर्म के पुरोहित-पण्डे लोगों को ठगते हैं उस अलौकिकता को प्रारम्भ में ये वाक्य धराशायी कर देते हैं। यह मनुष्य की जय का गान है, क्योंकि परसाई जी की विचारधारा मानती है कि मनुष्य से बड़ा कुछ भी नहीं है न देवता और न स्वर्ग। इस कहानी की शैली और भाषा अत्यधिक सरल व स्पष्ट है। इस कहानी का उद्देश्य भ्रष्टाचार की कथा कहना है। भ्रष्टाचार कितना सनातन है, यह परसाई जी ने इस कहानी की माध्यम से स्पष्ट रूप से दिखाया है।

1. सहसा फाइल से किसकी आवाज आई ?

> भोलाराम के जीव की

1. "अरे! तु कहाँ रहा इतने दिन ? भोलाराम का जीव कहाँ है ?" कथन में किसने किसको संबोधित किया है?

> चित्रगुप्त ने, यमदूत को।

2. भोलाराम की आत्मा ने कितने दिन पहले देह त्यागी थी ?

> पाँच दिन पहले।

3. भोलाराम की मृत्यु का सही कारण था

> चिन्ता और गरीबी से घुल-घुल कर जर्जरित होना

3. लाखों वर्षों से कौन असंख्य आदमियों को कर्म और सिफारिश के आधार पर स्वर्ग या नरक के निकट 'स्थान' अलोट करने आ रहे थे ?

> धर्मराज

4. शासकीय ढाँचे की लाल फीता शाही घूसखोरी और क्रूरता को उजागर करने वाली रचना कौनसी है?

> भोलाराम का जीव

5. नारद हँसकर बोले, "तुम्हारा सोचना ठीक है। यह भ्रम अच्छी गृहस्थी का आधार हैं।" नारद के इस कथन में कौनसा भाव व्यक्त हुआ है ?

5. साहब नारद से अपनी पुत्री के लिए वीणा देने की बात क्यो कहते हैं ?

> पुत्री की शादी हो जाएगी।

6. “इसे कोई मंदिर वंदिर समझ लिया है क्या ?" कथन में निहित भाव है

> अप्रसन्नता

7. 'भोलाराम का जीव' कहानी में लेखक का मुख्य उद्देश्य क्या है ?

> भ्रष्ट नौकरशाही की जड़ता को उजागर करना

7. नारद के कमरे में एकदम चले आने पर साहब के नाराज होने का कारण था

> विजिटिंग कार्ड न भेजना

8. भोलाराम को पेंशन न मिलने का कारण था

> पेंशन के प्रार्थना पत्र पर वजन न रखना।

9. 'भोलाराम का जीव' कहानी के अनुसार आजकल सरकारी कार्यालयों में अपना कार्य करवाने का क्या तरीका है ?

> रिश्वत देना

9. सरकारी दफ्तर में रिश्वत (वजन) के रूप में नारद जी से क्या से लिया गया?

> वीणा

10. 'यह भ्रम अच्छी गृहस्थी का आधार है।' पंक्ति में भ्रम है

> पत्नी का अपने पति पर विश्वास (कि वह दूसरी स्त्री को आँख उड़ाकर भी नहीं देखता)

11. 'भोलाराम का जीव' कहानी है

> व्यंग्य प्रधान

11. "बको मत महाराज साधु हो, कोई लुच्चे-लफंगे नहीं हो।" पंक्ति में किसने किसे संबोधित किया है ?

> भोलाराम की पत्नी ने, नारद को।

12. नारद के पूछने पर भोलाराम की पत्नी ने मृत्यु का कारण किस बीमारी को बताया ?

> गरीबी की बीमारी

13. महर्षि नारद को कार्यालय के चपरासी ने भोलाराम की पेंशन का मामला शीघ्र निबटाने का क्या उपाय बतलाया था

> किसी भी प्रकार से बड़े साहब को खुश करना

13. भोलाराम ने कितने साल से मकान का किराया नहीं दिया था ?

> एक साल से

14. मृत्यु से कितने साल पहले भोलाराम रिटायर हो गया था ?

> पाँच वर्ष पहले 'भोलाराम का जीव' कहानी द्वारा कहानीकार ने प्रशासन के किस पक्ष की ओर ध्यान आकृष्ट किया है ? भ्रष्टाचार की ओर

15. मृत्यु के समय भोलाराम की उम्र थी ?

> लगभग पैंसठ साला

16. भोलाराम के परिवार में कौन-कौन थे?

> पत्नी, दो लड़के और एक लड़की।

17. साहब ने कुटिल मुस्कान के साथ कहा, "मगर वजन चाहिए।" अफसर नारदजी से वजन के बदले चाहता था

> नारद जी की वीणा

17. भोलाराम का निवास स्थान कहा था ?

> जबलपुर शहर के धमापुर मुहल्ले में नाले के किनारे एक डेढ़ कमरे के टूटे-फूटे मकान में।

18. भोलाराम के जीव को पृथ्वी पर तलाशने कौन आया ?

> नारद।

20. 'भोलाराम का जीव' कहानी की मूल संवेदना क्या है ?

> शासकीय ढाँचे की जड़ता

20. "उस पर इन्कम टैक्स तो बकाया नही था ? हो सकता है, उन लोगों ने रोक लिया हो।" कथन के वक्ता है -

> नारद जी

21. "तुम्हारी भी रिटायर होने की उम्र आ गई।" कथन में किसने किसे संबोधित किया

> धर्मराज ने चित्रगुप्त को।

22. धर्मराज ने कहा, "वह समस्या तो कभी की हल हो गई मुनिवर।" नारद ने धर्मराज से किस समस्या के विषय में पूछा था ?

> नर्क में आवास के लिए स्थान कम पड़ जाने की समस्या

23. “महाराज आजकल पृथ्वी पर इस प्रकार का व्यापार बहुत बना है।" कथन के वक्ता एवं संबोध्य है ?

> वक्ता - चित्रगुप्त, संबोध्य - धर्मराज

24. 'पर इस बार तो कोई इन्द्रजाल हो गया। यमदूत के इस कथन में इंद्रजाल है ?

> भोलाराम के जीव का चकमा देकर भाग जाना (इन्द्रजाल, धोखा)

25. "मूर्ख जीवों को लाते-लाते बूढा हो गया। फिर भी एक मामूली बूढ़े आदमी के जीव ने तुझे चकमा दे दिया।" -कथन के वक्ता है ?

> धर्मराज (क्रोध भाव से)

26. यमलोक मे बार-बार थूक से पन्ने पलट कर रजिस्टर कौन देख रहे थे?

> चित्रगुप्त

माटी की मूरतें(रामवृक्ष बेनीपुरी)

सन् 1946 में प्रकाशित 'माटी की मूरतें' (रेखाचित्र) ,इस संग्रह में 12 शब्दचित्र हैं। शब्दशिल्पी रामवृक्ष बेनीपुरी की 'माटी की मूरतें' वस्तुतः ग्रामीण जीवन के उन अविस्मरणीय जीवन्त पात्रों की हैं जिनका उनके जीवन में विशिष्ट स्थान है या फिर उनके सर्पक में बेनीपुरी जी रह चुके हैं।

हजारीबाग सैन्ट्रल जेल के एकान्त में बेनीपुरी जी के मस्तिष्क में जब उनके गाँव बेनीपुर के और वंशी पचडा के ऐसे लोगों की हलचल होने लगी तो उनकी जादू की छडी ने उनको मूर्ति के रूप में गढ़ना शुरु कर दिया।

उनकी लेखनी के जादुई स्पर्श से वे बारह- 'माटी की मूरतें' सोने की मूरतें बन कर निखर उठीं और बेनीपुरी जी ने उन उपेक्षित माटी की मूरतों में जादुई छड़ी के द्वारा जीवन का रंग भर कर जीवन्त बना दिया है। रजिया, बलदेव सिंह, सरजू भैय्या, मंगर, रूपा की आजी, देव, बोलगोविन भगत, भौजी, परमेसर, बैजूमामा, बुधिया, सुभानखाँ, सब के सब एक गाँव-गँवई के पात्र है जिनके वास्तविक जीवन की अनुपम छवि बेनीपुरी जी के मन प्राण में अंकित है। उदाहरणस्वरूप 'रजिया' नामक रेखाचित्र के माध्यम से निम्न वर्ग की एक बालिका को जीवन्त कर दिया है।

बेनीपुरी जी ने इस बारह शोषित और पीडित शब्दचित्रों के संदर्भ में लिखा है-" ये मूरतें न तो किसी आसमानी देवता की होती है, न अवतारी देवता की। गाँव के ही किसी साधारण व्यक्ति मिट्टी के पुतले ने किसी असाधारण अलौकिक कर्म के कारण एक दिन देवत्व प्राप्त कर लिया, देवता में गिना जाने लगा और गाँव के व्यक्ति- व्यक्ति के सुख-दुख का सृष्टा बन गया।"

'माटी की मूरतें' कालजयी गुणों से युक्त एक सर्वश्रेष्ठ रचना है। उनकी 'माटी की मूरतें' लिखी जाने वाली कथाकृति भारतीयेत्तर भाषाओं तथा देशों में अनूदित और प्रतिष्ठित हुई है। उत्तम श्रेणी के रचनाकार की यशःप्राप्ति कथाकृतियों में 'माटी की मूरते उनका नितान्त मौलिक एवं पार्यन्तिक प्रकाशन है।
रामवृक्ष बेनीपुरी हिन्दी के श्रेष्ठ रेखाचित्रकार माने जाते है। इनके रेखाचित्रों में सरल भाषा शैली में । सिद्धहस्त दिखाई देती है। इस संग्रह को विशेष ख्याति मिली। इसमें रेखाचित्रों की श्रेष्ठता के बारे में मैथिलीशरण गुप्त का कथन है "लोग माटी की मूरतें बनाकर सोने के भाव से बेचते है पर बेनीपुरी सोने की मूरतें बनाकर माटी के मौल बेच रहे है।"

'माटी की मूरतें' संग्रह की रचनाओं में बेनीपुरी जी ने गाँव की जमीन से उठाए गए कुछ अनगढ़ चरित्रों को न केवल रंगत दी है अपितु उनमें प्राण भी फूंक डाले हैं। गाँव के किसी पीपल या बङ के नीचे रखी हुई-माटी की मूरतों के बारे में बेनीपुरी जी उन मूर्तियों को जीवनियाँ व चलते-फिरते हुए शब्द चित्र मानते हुए कहते हैं- "मानता हूँ, कला ने उन पर पच्चीकारी की है, किन्तु मैंने ऐसा नहीं होने दिया कि रंग-रंग में मूल रेखाएँ ही गायब हो जाएँ, मैं उसे अच्छा रसोइया नहीं मानता, जो इतना मसाला रख जी का मूल स्वाद ही नष्ट हो जाए।" यह जीवन के विविध रंगों को रेखांकित करती बेनीपुरी जी की सशक्त लेखनी से निकली आकर्षक, मार्मिक और संवदेनशील रेखाचित्र है।

विशेष
इसमें 12 रेखाचित्रों का वर्णन हैं
1. रजिया- एक निम्नवर्ग की बालिका, चूडिहारिन, बेनीपरी जी के जीवन से जुङा ऐसा चरित्र जिसे उन्होंने बहुत बारीकी से बुना है। रजिया से एक ऐसा आत्मीय रिश्ता जो न दोस्ती के दायरे में आता है न प्यार के। पवित्र निश्छल रिश्ता जो उनके साथ उनके बाल्यकाल से अंत तक जुङा रहता है।
2. बलदेव सिंह- एक पहलवान युवक का मार्मिक रेखाचित्र है। बेनीपुरी के मामा जी के गाँव का एक युवक जिसके पिता बचपन में ही मर गये। उसकी माता उसे अपने मायके ले जाती है, लंबे समय बाद वह गाँव में वापस आता है। पहलवानी करते दूसरों की मदद करते उसकी हत्या कर दी जाती है।
3. सरजू भैया- बेनीपुरी जी के घर से सटा घर जहां सरजू भैया नामक पात्र रहता है। जो शरीर से एकदम दुबला-पतला है शायद ही गाँव में ऐसा कोई हो। अपने पिता की इकलौती संतान, बेनीपुरी जी को अपना छोटा भाई मानता है। सूदखोरी में सारा बर्बाद हो जाता है। दूसरों की सेवा में खुद को नहीं देखता।
4. मंगर- मंगर एक हलवाहा है वह अत्यंत मेहनती होता है। उसके जैसा मेहनतकश हलवाला पूरे गांव में कोई नहीं होता। वह गरीब है लेकिन स्वभाव का रूखा लेकिन ईमानदार भी है।

5. रूपा की आजी- रूपा की आजी अत्यंत मार्मिक रेखाचित्र है। पूरे गांव में अंधविश्वास व्याप्त है। रूपा की माँ की मृत्यु के बाद उसकी आजी ही उसे पालती है।
उसके विवाह के बाद उसके सास-ससुर की मृत्यु हो जाती है, धीरे-धीरे पूरा परिवार मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। जिस कारण सब उसे डायन कहकर पुकारते है। इसी अंधविश्वास के चलते लोगों द्वारा पीटे जाने पर वह कुंए में कूद जाती है और मर जाती है।
6. देव- देव बेनीपुरी जी के बचपन के एक साथी का रेखाचित्र है। जो निडर और बहादुर था। इस रेखाचित्र में कथा 1930-32 को भी छूकर गुजरती है।

जब बेनीपुरी जी पटना कैंप जेल में आजादी की जंग में शामिल होने पर बंद थे, बहुत वर्षों बाद देव से उनकी मुलाकात जेल में होती है और वह जान पाते हैं कि उनका वह बचपन का साथी भी नेता बनकर एक दल का नेतृत्व कर रहा है।
7. बालगोविन भगत- बोलगोविन भगत एक ऐसे व्यक्ति का रेखाचित्र है जो जाति से तेली और कर्म से ब्राह्मण से भी उच्चासीन है। जिनकी उम्र 60 से ऊपर की है और उनके एक बेटा और बेटे की पत्नी है।
वह कबीरदास जी को मानने वाला और संगीत प्रेमी है। उसके बेटे की मृत्यु हो जाने पर भी वह विचलित नहीं होता, सच्चे अर्थों में एक साधु है।
8. भौजी- भौजी रेखाचित्र बेनीपुरी जी के स्वयं के घर की एक कथा है। उनके भैया की शादी के कटु अनुभव से लेकर उनकी भाभी के साथ बीते हँसी ठिठोली भरे दिन साथ ही कुछ कड़वे अनुभव और उन अनुभवों के बाद भी अपनेपन की गहरी आत्मीयता।
भौजी की मृत्यु के बाद उनके दोनों बच्चों का लालन-पालन धर्म माँ बनकर उनकी पत्नी रानी करती है।
9. परमेसर- परमेसर बेनीपुरी के गाँव का ही एक ऐसा व्यक्ति है जिस से उनकी कोई गहरी निकटता तो नहीं रही लेकिन उसकी बीमारी की खबर सुनकर वह रूक भी नहीं पाते और शहर से गाँव पहुँच जाते है।
परमेसर में बहुत ऐब थे उसने तरह-तरह के नशे किये यहां तक की अपनी पत्नी के गहने तक बेचकर नशे में उड़ा दिए, पर गांव में किसी का बुरा नहीं किया।
10. बैजू मामा- बैजू मामा एक ऐसे व्यक्ति का रेखाचित्र है जिससे बेनीपुरी जी की मुलाकात जेल में हुई। बैजू को हर कोई जेल में मामा ही कहता था। वह लगभग 30 साल से जेल में चोरी की सजा काट रहा है।
हर 1 या 2 साल में जेल से छूटता और फिर चोरी कर जेल में पहुंच जाता उसने पहली बार बैल चुराया था। जेल के पेड़-पौधे सब उसके लगाए हुए थे।
11. सुभान खाँ-सुभान खाँ भी बेनीपुरी जी के बचपन से जुड़ा एक चरित्र है जिसे उन्होंने सुभान दादा कहकर संबोधित किया है। जब कभी भी बेनीपुरी के दीवारों की मरम्मत करनी होती तो सुभान दादा को ही बुलाया जाता। उनकी सफेद दाढ़ी छोटे बेनीपुरी को बहुत भाती थी।

देश के बंटवारे से पहले सब एक दूजे के साथ मिलकर रहते हैं। मंदिर का निर्माण सुभान दादा ने किया था। उन्होंने ही एक मस्जिद बनवाई थी। जब गाँव में साम्प्रदायकि दंगे भड़के और मुसलमानों ने गाय काटने की बात की तो सुभान दादा ने ऐसा नहीं करने दिया और मस्जिद की सीढ़ियों पर बैठे रहे। उधर बेनीपुरी के मामा ने हिंदुओं को रोक लिया था।

12. बुधिया- बुधिया रेखाचित्र भी मन पर अपनी छाप छोड़ने वाला रेखाचित्र है। रेखाचित्र का प्रारंभ आठ साल की बुधिया की पठिया के चमेली के बेल और फूल खाने से होता है।

अगली मुलाकात जब होती है तब बुधिया जवान हो चुकी होती है। उसका शरीर गठ चुका होता है। बेनीपुरी का मित्र उन्हें बताता है कि गांव का हर युवा उसका दीवाना है। तीसरी मुलाकात में बहुत कुछ बदल चुका होता है, बेनीपुरी के खेत में गेहूँ की कटनी हो रही है अरैर एक अधेड़ औरत अपने चार-पांच बच्चों के साथ खेत में काम कर रही है, उसके वस्त्र इधर-उधर हो रहे हैं, वह कोई और नहीं बुधिया है।

राहुल सांकृत्यायन- मेरी तिब्बत यात्रा

राहुल सांकृत्यायन को महापण्डित की उपाधि दी जाती है। ये हिन्दी के एक प्रमुख साहित्यकार है। 'मेरी तिब्बत यात्रा' वृत्तान्त में इन्होंने अपनी तिब्बत यात्रा का वर्णन किया है, जो लेखक ने वर्ष 1929-30 में नेपाल के रास्ते की थी। उस समय भारतीयों को तिब्बत यात्रा की अनुमति नहीं थी। अतः उन्होंने यह यात्रा एक भिखारी के छद्म वेश में की थी।

लेखक ने तिब्बत की यात्रा उस समय की थी, जब नेपाल से तिब्बत जाने का केवल एक ही रास्ता था। इस रास्ते पर नेपाल के लोग भी भारत के लोगों के साथ-साथ जाते थे। यह रास्ता व्यापारिक और सैनिक रास्ता भी था, इसलिए लेखक ने इसे मुख्य रास्ता बताया है। तिब्बत में जाति-पाति और छुआछूत नहीं था। वहाँ औरतें पर्दा नहीं करती थीं। चोरी की आंशका के कारण भिखारियों को कोई घर में नहीं घुसने देता था औरी न ही अपरिचित होने पर कोई घर के अन्दर जा सकता था। साथ ही अपनी जरूरत के अनुसार अपनी झोली से चाय दे सकते थे, घर में बहू या सास उसे आपके लिए पका देगी।

राहुल सांकृत्यायन को योगदान यात्रा साहित्य में अद्‌वितीय व अग्रणी है। मेरी तिब्बत यात्रा में उन्होंने तिब्बतीय समाज और ज्ञान वर्धक संस्कृति का वर्णन किया है। तिब्बत की धार्मिक व्यवस्था, प्रथा-परम्पराएँ, खान-पान तथा वेश-भूषा अन्य देशों से बिल्कुल भिन्न है। लेखक ने तिब्बती लोगों की कलाप्रियता का प्रकाश डालते हुए वहाँ के मन्दिरों का वर्णन भी किया है।

तिब्बत के नारी समाज का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है कि तिब्बत में भिक्षुणियों की संख्या ज्यादा है, क्योंकि वहाँ की प्रथानुसार सभी भाइयों की एक पत्नी होने के कारण अनेक लड़कियाँ अविवाहित रह जाती थी और वे भिक्षुणियाँ बन जाती है। राहुल जी ने 'अपनी तिब्बत यात्रा में वहाँ की संस्कृति का अद्‌भूत ढाँचा प्रस्तुत किया है।

संस्कृति के चार अध्याय 1956 (दिनकर)

दिनकर जितने बड़े कवि थे, उतने ही बड़े गद्‌यकार गद्‌य के क्षेत्र में"संस्कृति के चार अध्याय "बहुमूल्य ग्रंथ है। यह उनका आलोचनात्मक निबंध है इसके लिए उन्हें 1959 में साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। यह उनकी गहन शोध दृष्टि, मंथन क्षमता भारतीय संस्कृति से प्रेम की अभिव्यक्ति तो है ही, विश्लेषण क्षमता

का भी सजीव प्रमाण है। दिनकर ने भारत के ऐतिहासिक विकास व संस्कृति सम्मलेन को चार कालखंडों में विभाजित करके देखा है लेखक की मान्यता है कि भारतीय संस्कृति में चार बड़ी क्रान्तियां हुई हैं। इन क्रान्तियों को ही उन्होंने अध्याय का नाम दिया है।

पहली क्रांति आर्यो के भारत आने और आर्यात्तर जातियों से उनके संपर्क में आने से हुई। आर्य और आर्यात्तर जातियों के मेलजोल से जिस समाज की रचना हुई, वही आर्य का बुनियादी समाज था और आर्य तथा आर्यात्तर संस्कृतियों के मिलने से जो संस्कृति उत्पन्न हुई, बही इस देश की बुनियादी संस्कृति कहलाई।

आर्य इस देश में बाहर से आए अथवा मूल रूप से यही के निवासी थे, इस संबंध में विद्वानों में आज भी मतभेद हैं। दिनकर का कहना था कि आर्य मध्य एशिया से भारत आए थे। उन्होंने अपने ग्रन्थ में आर्य और आर्यात्तर संस्कृतियों के मिलन की व्यापक चर्चा की है। उनका कहना था कि सभ्यता यदि संस्कृति आदि का भौतिक पक्ष है तो भारत में इसका अधिक विकास आर्यो ने किया। उनकी दृष्टि में वर्ण -व्यवस्ता कर्मपरक थी। यह स्थिर नहीं, गतिशील थी। जाति-वर्ग कब पर्यायवाची हो गए कहना मुश्किल है।

दिनकर के अनुसार दूसरी क्रांति का सूत्रपात तब हुआ जब महावीर और बुद्ध के नेतृत्व में स्थापित वैदिक धर्म का कर्मकांड बाह्य आडम्बर आदि दुर्गणों से आच्छादित होना। इस काल में दो प्रकार के लीग थे। एक यज्ञ मात्र को ही ईष्ट मान वैदिक धर्म का पालन करते थे। लेकिन जो लोग इस धर्म से संतुष्ट नहीं थे, हठयोग की क्रिया से शरीर को कष्ट देने में सुख मानते थे।

यज्ञो में दी जाने वाली पशु बलि की अधिकता से उत्पन्न संकट ने ही जैन व बुद्ध धर्म को पुष्पित-पल्लवित होने का अवसर दिया। किंतु दिनकर ने इस मान्यता का तार्किक खंडन किया है। भारत में इस्लाम के आगमन हिन्दुओं से उसके संबंध टकराहट तथा समन्वय का इतिहास एक हजार वर्ष से अधिक पुराना है। हालांकि ये संपूर्ण विवादों से घिरा है।

"संस्कृति के चार अध्याय में तीसरी क्रांति पर विस्तृत ढंग से विचार है। दिनकर ने प्रश्न उठाया की किस राह पर चल कर हिन्दू -मुसलानों के और मुसलमान -हिन्दू के अधिक निकट आ सकता है। उनका कहना था कि गज़नवी व गोरी के साथ इस्लाम भारत पहुँचा, वह वह इस्लाम नहीं जिसकी व्याख्या हजरत मुहम्मद व उनके प्रारंभ के चार खलीफाओं ने की थी।

सबसे महत्वपूर्ण अध्याय चौथी क्रांति भारतीय संस्कृति और यूरोप के संबंध पर आधारित है। सबसे पहले पुर्तगाली भारत आए, फिर डच, फ्रांसिसी व अंग्रेज देश में व्यापार करने आए और अपने उपनिवेश स्थापित करने लगें बक्सर युद्ध (1764)में अंग्रेजों की विजय ने भारत में ब्रिटश सत्ता को सुदृढ़ बनाने में योगदान दिया। धीरे -धीरे संपूर्ण भारत पर अंग्रेजों का आधिपत्य हो गया। पश्चिम संसार के सम्पर्क में आने के बाद भारत में अंग्रेजी शिक्षा पद्धति का विस्तार हुआ इसमें ईसाई मशिनरियों का व्यापक सहयोग प्राप्त हुआ। अंग्रेजों के साथ बने सम्पर्क में देश की जनता में किस प्रकार आत्म-चेतना उत्पन्न की, किस प्रकार विभिन्न

समुदायों में पुनजर्जागृति की भावना उत्पन्न हुई, इसके साथ -साथ नवजागरण आन्दोलन के प्रवर्तकों राजा राम मोहन राय, विवेकानंद, इक़बाल, भारतेंदु आदि के विचार एवं भारत के मुक्ति संग्राम में उनके योगदान की व्यापक चर्चा है।

यह ग्रन्थ आधुनिक राजनीति, सामाजिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से भारत के अतीत का प्रत्यक्षीकरण है।

विशेष

- संस्कृति के चार अध्याय का प्रकाशन मार्च 1956 ई. में हुआ।
- यह भारत के सम्पूर्ण इतिहास को चार खंडो में बाँटकर लिखने का अद्‌वितीय प्रयास है।
- इस किताब की प्रस्तावना पहले प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने लिखी।
- दिनकर की इस पुस्तक में हम चार क्रांतियों का इतिहास देखेंगे। इसके पहले अध्याय में 3 प्रकरण, दूसरे में 7, तीसरे में 12 और चौथे में 17 प्रकरण है।
- प्रथम अध्याय- भारतीय जनता की रचना और हिन्दू संस्कृति का अविर्भाव
- द्‌वितीय अध्याय- प्राचीन हिन्दुत्व से विद्रोह
- तृतीय अध्याय- हिन्दू संस्कृति और इस्लाम
- चतुर्थ अध्याय- भारतीय संस्कृति और यूरोप

प्रथम अध्याय- भारतीय जनता की रचना और हिन्दू संस्कृति का अविर्भाव

1. भारतीय जनता की रचना
2. आर्य- द्रविङ समस्याएँ
3. आर्य और आर्येतर संस्कृतियों का मिलन

द्‌वितीय अध्याय- प्राचीन हिन्दुत्व से विद्रोह

1. बुद्‌ध से पहले का हिन्दुत्व
2. जैन धर्म
3. बौद्‌ध धर्म
4. वैदिक बनाम बौद्‌ध मत
5. प्राचीन भारत और बाह्य विश्व
6. बौद्‌ध साधना पर शाक्त प्रभाव
7. बौद्‌ध आन्दोलन के सामाजिक प्रंसग

तृतीय अध्याय- हिन्दू संस्कृति और इस्लाम

1. हिन्दू मुस्लिम प्रश्न की भूमिका
2. इस्लाम धर्म
3. मुस्लिम आक्रमण और हिन्दू समाज
4. हिन्दू मुस्लिम संबंध
5. इस्लाम का हिन्दुत्व पर प्रभाव

6. भक्ति आन्दोलन और इस्लाम
7. अमृत और हलाहल का संघर्ष
8. सिक्ख धर्म
9. कला और शिल्प पर इस्लाम का प्रभाव
10. साहित्य और भाषा का प्रभाव
11. उर्दू का जन्म
12. सामाजिक संस्कृति के कुछ और रूप

चतुर्थ अध्याय- भारतीय संस्कृति और यूरोप

1. भारत में यूरोप का आगमन
2. शिक्षा और क्रान्ति
3. ईसाई धर्म और भारतीय जनता
4. हिन्दू-नवोत्थान
5. ब्रह्म समाज
6. महाराष्ट्र में नवोत्थान
7. आर्य समाज
8. थियोसॉफिकल सोसाइटी या ब्रह्म विद्या समाज
9. धर्म के जीते जागते स्वरूप परमहंस रामकृष्ण
10. कर्मठ वेदांत- स्वामी विवेकानंद
11. प्रवृत्ति का उत्थानः लोक मान्य तिलक
12. स्वर्ग का भूमिकरण : महायोगी अरविन्द
13. भूमिका स्वर्गीकरण : महात्मा गांधी का प्रयोग
14. विश्वदर्शन के प्रवर्तक श्री सर्वपल्ली राधाकृष्ण
15. मुस्लिम नवोत्थान
16. सर मोहम्मद इकबाल
17. भारतीय राष्ट्रीयता और मुसलमान

- यह भारतीय संस्कृति का सर्वेक्षण है जिसके लिए दिनकर जी को 1959 से साहित्य आकदमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

भाग 11

हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल

हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल

भक्ति आन्दोलन के उदय के सामाजिक, सांस्कृतिक कारण :

भक्तिकाल की सम्पूर्ण कालावधि भारत पर विजातियों के आक्रमण और राजसत्ता का समय है, सन् 1325 ई. से तुगलक वंश की स्थापना के साथ भारत पर सैयद वंश, लोदी वंश और मुगल वंश के शाहजहाँ के समय (1628 ई.) तक भारतीय समाज में उथल-पुथल होती रही। कुछ विजेता शासकों के वाह्य प्रभावों के कारण, कुछ अपने अन्तर्द्वन्द्वों के दबाव के कारण, विजातीय शासकों की दमनकारी नीतियों के कारण हिन्दू समाज चिन्तित हुआ, किन्तु इसके समाधान के लिए कोई क्रान्तिकारी कदम उठता नहीं दिखाई पड़ा, वरन् हिन्दू जनता ने अपने को 'स्मृतियों' और 'टीकाओं का सहारा लेकर सीमित कर लिया।

वर्णों, जातियों-उपजातियों में इतने भेद थे कि परस्पर आत्मीयता का अभाव था। छुआछूत के नियम सवर्णों में ही नहीं पिछड़ी तथा निचली जातियों में भी कठोर थे। समाज सुविधा सम्पन्न और अभावग्रस्त दो वर्गों में बँटा था। राजा, सुल्तान, अमीर, सामन्त, सेठ, साहूकार अपने वैभव प्रदर्शन में मदमस्त थे, तो किसान, मजदूर, सैनिक और घरेलू कुटीर उद्योग-धन्धों में लगी सामान्य जनता किसी तरह जीवनयापन कर रही थी। स्त्रियों की दशा भी अच्छी नहीं थी। दास प्रथा, सती प्रथा, बहुविवाह और पुनर्विवाह प्रथा, पर्दा-प्रथा आदि प्रथाओं ने उनको केवल घर तक सीमित कर दिया था। उनकी सामाजिक भूमिका नगण्य थी।

ऐसे निराश और अराजक सामाजिक जीवन को लक्ष्य कर ही रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है- "अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था।" किन्तु भक्ति आन्दोलन के उदय के संदर्भ में रामचन्द्र शुक्ल का यह कथन अर्द्धसत्य ही है।

वस्तुतः भक्ति आन्दोलन का मुख्य कारण सांस्कृतिक है। दक्षिण से उत्पन्न भक्ति आन्दोलन का प्रवाह उत्तर की ओर बढ़ा और वहाँ सम्प्रदायों के धार्मिक जन-जागरण के सहयोग से पल्लवित हुआ। वैष्णव सम्प्रदाय, शाक्त सम्प्रदाय, सूफी सम्प्रदाय ने भक्ति आन्दोलन की जड़ों को सींचने का कार्य किया। जिससे अनेक नए सम्प्रदायों और दार्शनिक मतमतान्तरों का जन्म हुआ।

हजारी प्रसाद द्विवेदी भक्ति आन्दोलन के उदय में सांस्कृतिक कारणों की भूमिका को प्रमुख मानते हुए कहते हैं कि "अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी इस साहित्य का बारह आना वैसा ही होता जैसा आज है।" वस्तुतः द्विवेदी जी का यह कथन भी उतना ही एकांगी है जितना कि रामचन्द्र शुक्ल का भक्ति आन्दोलन के उदय से यदि भक्ति की सांस्कृतिक परम्परा को प्रमुख मान भी लिया जाय तो आन्दोलन के विस्तार, प्रभाव और उसको आत्मसात करने में सामाजिक स्थितियों और मनोदशाओं के योगदान को बिल्कुल नकारा नहीं जा सकता।

प्रमुख निर्गुण एवं सगुण सम्प्रदाय

अद्वैतवादी सम्प्रदाय

अद्वैतवाद के प्रवर्तक आदिगुरु शंकराचार्य है। अद्वैत का अर्थ है- ब्रह्म और जीव में द्वैत का अभाव अर्थात् ब्रह्म और जीव में कोई तात्विक भेद नहीं है। जीव ब्रह्म का ही प्रतिबिम्ब है। शंकराचार्य ने संसार को भ्रम (माया) माना है। उनके अनुसार यह जगत् मिथ्या है, ब्रह्म की सत्य है। अविद्या ही संसार से जीव के बंधन का एकमात्र कारण है और यह बंधन विद्या अर्थात् ज्ञान के द्वारा ही काटा जा सकता है। शंकराचार्य ने ज्ञान को ही एकमात्र सच्ची साधना कहा है और भक्ति को विद्या माया माना है, किन्तु उन्होंने ज्ञान के अनुभूति पक्ष पर भी बल दिया है

'अनुभवावसान्त्वात ब्रह्म ज्ञानस्य'

अर्थात् 'अहम् ब्रह्मास्मि' का ज्ञान जब तक अनुभव में फलित नहीं होता, तब तक वह निस्सार है। ज्ञान मार्ग में स्वानुभूति की यही स्वीकृति हिन्दी के संत कवियों द्वारा विविध रूपों में वर्णित हुई है।

मध्यकालीन हिन्दी काव्य में "स्वानुभूति' ही अद्वैतवाद का मुख्य प्रमाण है। अद्वैतवादी सम्प्रदाय में ब्रह्म की कल्पना अनादि, अनन्त, निर्विकार, सर्वव्यापक, अन्तर्यामी, असीम आदि रूपों में की गई है। वह प्राकृत गुणों-सत्व, रज और तम से हीन होने के कारण निर्गुण है।

अद्वैतवाद के दार्शनिक आधार को लेकर मध्यकाल में निर्गुण सम्प्रदाय को प्रेरित करने वालों में स्वामी रामानन्द और कबीर का प्रमुख योगदान है।

विशिष्टद्वैतवादी सम्प्रदाय

आचार्य रामानुज विशिष्टाद्वैतवाद के सर्वश्रेष्ठ प्रवर्तक हैं। उन्होंने प्रस्थानत्रयी की विशद् व्याख्याओं में चिद्-चिद् विशिष्ट ब्रह्म की स्थापना की। उन्होंने शंकराचार्य की ब्रह्मजीव की अद्वैतता के विचार को नहीं माना, बल्कि ब्रह्म को चिन्मय आत्मा

विशिष्टाद्वैत के अनुसार ब्रह्म के दो रूप हैं- कारण ब्रह्म और कार्य ब्रह्म । कारण ब्रह्म सूक्ष्म चित् और अचित् से विशिष्ट है। कार्य ब्रह्म (जीव सहित समस्त जगत्) स्थूल चित् तथा अचित् से विशिष्ट है। दोनों का एकमेक ही विशिष्टाद्वैत है।

विशिष्टाद्वैतवादी तीन नित्य तथा स्वतंत्र पदार्थ मानते हैं- परमात्मा (ईश्वर), चित् (जीव) और अचित् (प्रकृति)। परमात्मा अन्तर्यामी रूप से जीवन और प्रकृति में विद्यमान है। वह अंगी है और जीव तथा प्रकृति उसके अंग हैं- "ईश्वर अंश जीव अविनाशी।" चित् और अचित् से विशिष्ट परमात्मा ही एकमात्र सत्य है।

रामानुजाचार्य ने शंकराचार्य की तरह सृष्टि को माया नहीं माना है, वरन् वास्तविक माना है। जैसे मकड़ी अपने भीतर से ही जाला-पैदा करती है, वैसे ही ईश्वर अपने अन्दर से ही इस जगत् की सृष्टि करता है। उत्तर भारत में भक्ति आन्दोलन के मुख्य प्रचारक स्वामी रामानन्द पर विशिष्टाद्वैत का गहरा प्रभाव है। तुलसीदास भी शुद्ध विशिष्टाद्वैतवादी हैं। हिन्दी के प्रायः सभी सगुण भक्त कवि विशिष्टाद्वैत से प्रभावित हैं।

विशिष्टाद्वैतवादियों ने आलवार संतों के भक्ति मार्ग और वेद-उपनिषदों में प्रतिपादित ज्ञानमार्ग, कर्ममार्ग और उपासनामार्ग का सुन्दर समन्वय करके प्रपत्तिमार्ग की प्रतिष्ठा की और एक नए वैष्णव मत को चलाया जो श्री अर्थात् लक्ष्मी के प्रथम प्रवर्तक होने के कारण 'श्रीवैष्णव' अथवा 'श्री सम्प्रदाय' के नाम से प्रसिद्ध हुआ, इसके आदि आचार्य श्री रंगनाथ मुनि (824-924 ई.) हैं,

द्वैतवादी सम्प्रदाय

इसके संस्थापक मध्वाचार्य (1149 ई.) हैं, द्वैतवाद का लक्ष्म ब्रह्म को प्राप्त करना है, किन्तु इसमें जीव, जगत् और ब्रह्म को परस्पर भिन्न माना गया है अभिन्न नहीं, द्वैतवाद का उदय अद्वैतवाद के प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ था, मध्वाचार्य के अनुसार संसार मिथ्या नहीं है, जीव ब्रह्म का आभास नहीं है और न ही ब्रह्म और जीव की अभेदता का खण्डन करते हुए मध्वाचार्य ने पाँच भेदों को सिद्ध किया -

1. ईश्वर का जीव से नित्य भेद है,
2. ईश्वर का जङ पदार्थ से नित्य भेद है,
3. जीव का जङ पदार्थ से नित्य भेद है, 4. एक जीव का दूसरे जीव से नित्य भेद है,
5. एक जङ का दूसरे जङ से नित्य भेद है।

इस सिद्धान्त को पंचभेद सिद्धान्त कहा जाता है, द्वैतवाद का मूलमन्त्र है-तदीयः (तस्य) त्वम् असि (तू उसका है) अर्थात् तुझमें और मुझमें भेद हैं, द्वैतवाद का प्रचार दक्षिण भारत में अधिक हुआ, उत्तर भारत में इस मत का प्रभाव बहुत कम है, द्वैतवाद में भी मुक्ति का साधन अमला भक्ति को माना गया है।

द्वैताद्वैतवादी सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक निम्बार्काचार्य (12 वीं शताब्दी) हैं, इसका दार्शनिक आधार 'द्वैताद्वैतवाद' अथवा 'भेदाभेदवाद' हैं, शंकराचार्य ने ब्रह्म और संसार की अभिन्नता सिद्ध करते हुए अद्वैतवाद की स्थापना की, रामानुजाचार्य ने ब्रह्म को संसार से भिन्न न मानते हुए भी दोनों की विशिष्ट अभिन्नता पर जोर देते हुए "विशिष्टाद्वैत' का सिद्धान्त स्थापित किया, किन्तु निम्बार्क के अनुसार संसार ब्रह्म से भिन्न और अभिन्न दोनों है और भिन्नता-अभिन्नता का समान महत्त्व है, जैसे कार्य (घट) कारण (मिट्टी) से अभिन्न है, क्योंकि दोनों की सामग्री एक ही है, साथ ही भिन्न भी है, क्योंकि दोनों के नाम, रूप, आकार, प्रयोजन आदि अलग-अलग हैं, वैसे ही संसार (कार्य), ब्रह्म (कारण) से भिन्न और अभिन्न दोनों हैं,

ब्रह्म अद्वैत है, संसार द्वैत है, दोनों नित्य सत्य हैं, अद्वैत ब्रह्म (कारण) ही द्वैत संसार (कार्य) का वास्तविक रूप धारण करता है, वस्तुतः द्वैताद्वैतवाद का आधार कार्य-कारण सम्बन्ध है, निम्बार्क के मत का प्रचार वृन्दावन और बंगाल में विशेष रूप से हुआ, निम्बार्क ही प्रथम वैष्णव हैं जिन्होंने कृष्ण और राधा को सर्वप्रथम विशेष महत्व दिया, निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुयायी राधा-कृष्ण के उपासक हैं, हिन्दी में निर्गुण-सगुण दोनों प्रकार के कवि द्वैताद्वैत सम्प्रदाय से प्रभावित हैं,

शुद्धाद्वैतवादी सम्प्रदाय

इस दार्शनिक मत के प्रवर्तक वल्लभाचार्य हैं, इसके अनुसार ब्रह्म माया से सर्वथा अलिप्त होने के कारण शुद्ध है, मायारहित ब्रह्म ही एक अद्वैत तत्व है और सारा संसार उसी की लीला का विलास है, 'सर्व खलु इदं ब्रह्म' - अर्थात् सब कुछ ब्रह्म ही है, यही इस सम्प्रदाय का प्रमुख सिद्धान्त है, जिस प्रकार स्वर्ण अनके रूपों में परिवर्तित होने पर भी शुद्ध स्वर्ण ही रहता है, उसी प्रकार ब्रह्म शुद्ध है।

इसके अतिरिक्त रुद्र सम्प्रदाय (विष्णु स्वामी), चैतन्य सम्प्रदाय (महाप्रभु चैतन्य), महानुभाव सम्प्रदाय (चक्रधर), वारकरी सम्प्रदाय (आचार्य पुण्डलिक) आदि भी उल्लेखनीय है जिनके प्रयासों से भक्ति आन्दोलन का अन्तः प्रादेशिक स्वरूप निर्मित हुआ।

वैष्णव भक्ति की सामाजिक – सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

वैष्णव भक्ति का मूल आधार भागवत धर्म है जिसके आराध्य वासुदेव हैं, जिन्हें षडगुणों से युक्त होने के कारण भगवान या 'भगवत' कहा जाता है, मध्यकाल में वैष्णव भक्ति का सम्बन्ध सगुण भक्ति का सम्बन्ध सगुण भक्ति काव्य से है, जिसमें राम और कृष्ण को केन्द्र में रखकर विपुल साहित्य की रचना हुई है, यह तो विदित ही है कि उत्तर भारत में वैष्णव भक्ति का प्रचार-प्रसार दक्षिण भारत के बाद हुआ, मुगलों के निरन्तर आक्रमण, उनके द्वारा मन्दिर-मूर्तियों का तोड़ा जाना और इस्लाम धर्म के प्रचार से वैष्णव भक्ति को उत्तर भारत में अनुकूल परिस्थितियाँ मिलीं,

सामाजिक दृष्टि से वैष्णव भक्ति के द्वारा जाति-पांत की सीमाएं टूटी, प्राणिमात्र के प्रति प्रेम और उदार दृष्टि का विकास हुआ, वैष्णव भक्ति के प्रेम, अहिंसा जैसे मानवीय मूल्यों ने समाज को एक नई दिशा दी, हिन्दू मानस को वैष्णव भक्ति के रूप में एक ऐसा सम्बल मिला कि जिसने उसके निराश और हताश मन को जीने की नई प्रेरणा दी,

सांस्कृतिक दृष्टि से वैष्णव भक्ति का अवदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, सर्वप्रथम भक्ति की ऐसी प्रतिष्ठा किसी अन्य युग में न हो सकी जिसके कारण भक्ति को एक नए रस के रूप में प्रतिष्ठा मिली, काव्य को ही लें तो वैष्णव भक्ति के । प्रचार-प्रसार से ही रामभक्ति और कृष्णभक्ति का इतना विपुल साहित्य रचा गया, राम और कृष्ण के रूप, गुण, शील और विविध लीलाओं का जैसा वर्णन मध्य युग में हुआ, वैसा कभी नहीं हो सका, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत, परिधान आदि को भी वैष्णव भक्ति ने विविध रूपों में प्रभावित किया, इस तरह मध्यकालीन काव्य, कला और संस्कृति की उन्नति में वैष्णव भक्ति का प्रभाव महत्त्वपूर्ण हैं।

आलवार संत

दक्षिण भारत में आलवार संतों की परम्परा 9 वीं शताब्दी तक अविछिन्न रूप से चलती रही, आलवार संतों ने 'नाम । संकीर्तन' भक्ति धारा से दक्षिण भारत को रस सिक्त कर भक्ति की मधुर हिलोर उत्तर की ओर बढ़ाई, वे राम कृष्ण के भक्त थे, उनकी भक्ति साधना में भावना और भगवान के अनुग्रह का सबसे अधिक महत्त्व रहा है, आलवार संतों की संख्या बारह मानी जाती हैं, इनमें गोदा या अण्डाल नाम की प्रसिद्ध स्त्री भक्त भी थी,

आलवार संतों के भावपूर्ण गीत तमिल भाषा में 'नालियर दिव्य प्रबन्धम्' में संगृहीत है जिसे 'तमिल वेद' भी कहा जाता है, इनमें आलवार संतों ने भगवान विष्णु तथा उनके अवतारों - राम-कृष्ण के प्रति असीम भक्ति व आत्मसमर्पण के उद्‌गार व्यक्त किए हैं, कृष्ण-गोपियों की आनन्द लीलाओं का तन्मयतापूर्ण वर्णन करते हुए आलवार संतों ने उनके प्रति दास्य, वात्सल्य और माधुर्य भाव की भक्ति प्रकट की है,

आलवार उसे कहते हैं जिसे भगवान की स्वतः स्फूर्त अनुभूति होती है और वे भावविभोर होकर ईश्वर को आत्म-समर्पित रहते हैं, आलवारों में अधिकांश शुद्र, स्त्री, छोटी जाति के किसान और कारीगर थे, आलवारों में सबसे अधिक लोकप्रिय नम्मलवार या शठाकोपि जाति के शुद्र थे, मधुर कवि आलवार ब्राह्मण थे, किन्तु शठकोपि के शिष्य भी, आलवार केवल भक्त ही नहीं थे, वे श्रेष्ठ कवि भी थे, कहा जाता है कि 'श्रीमद्‌भागवत' आलवारों से प्रभावित है, अब यह प्रमाणित हो चुका है कि भागवत की रचना दक्षिण में ही हुई, भागवतकार ने द्राविडी भक्ति का उल्लेख करते हुए लिखा है"उत्पन्ना द्रविड़े साहं बुद्‌धिं, कर्णाटके गता" यहाँ 'उत्पन्ना द्रविडे' से आलवारों की ही ओर संकेत किया गया हैं,

डॉ. राधाकृष्णन् ने लिखा है कि आलवारों ने यशोदा भाव, गोपी भाव, पति भाव से भी कृष्ण के प्रति अपना प्रेम निवेदन किया है, इस प्रकार की भक्ति मीरा, राधावल्लभ सम्प्रदाय और हित हरिवंशी सम्प्रदाय में दिखाई पड़ती हैं, आलवार संतों के भक्ति आन्दोलन को वैदिक और शास्त्रीय रूप देने वाले आचार्य 9वीं-10वीं शताब्दी में तमिल प्रान्त में हुए जिनमें सर्वप्रथम रंगनाथ मुनि (824-924 ई.), यमुनाचार्य (रंगनाथ मुनि के पुत्र), रामानुजाचार्य (1016-1137 ई.) और मध्वाचार्य उल्लेखनीय हैं।

भक्ति आन्दोलन का अखिल भारतीय स्वरूप

'भक्ति द्राविडी उपजी, लाए रामानन्द' उक्ति के अनुसार भक्ति आन्दोलन का उदय दक्षिण भारत में तमिल प्रान्त के आलवार सन्तों की परम्परा से हुआ, 10 वीं से 13 वीं शताब्दी तक भक्ति आन्दोलन रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, निम्बर्काचार्य द्‌वारा दार्शनिक आधार प्राप्त कर उत्तर भारत में फैला, उत्तर भारत में भक्ति आन्दोलन को नवीन रूप में प्रचारित करने का श्रेय रामानन्द को जाता हैं,

रामानन्द ने रामानुज के विशिष्टाद्‌वैत को मानते हुए भक्ति का पृथक् सम्प्रदाय स्थापित किया जिसमें उन्होंने भक्ति को निम्न वर्ग के लोगों के लिए भी सुलभ बनाया, रामानन्द ने लक्ष्मीनारायण (विष्णु) के स्थान पर सीताराम को उपास्य बनाया, इसी प्रकार वल्लभाचार्य द्‌वारा श्रीकृष्ण राधा को उपास्य मानकर कृष्ण भक्ति की नई धारा प्रवाहित हुई जिसके अन्तर्गत अनेक सम्प्रदायों का जन्म हुआ, जिन्होंने कृष्ण भक्ति आन्दोलन के रूप में भागवत धर्म को लोक जीवन से गहरे तक सम्बद्‌ध किया,

16 वीं शताब्दी तक भक्ति आन्दोलन संतों, सूफियों, रामकृष्ण भक्तों द्‌वारा जन-जीवन में गहरे पैठ चुका था, उत्तर भारत के साथ ही महाराष्ट्र, गुजरात, पंजाब, मध्य प्रदेश, मगध प्रान्त, उडीसा, राजस्थान, असम, बंगाल में भी भक्ति आन्दोलन का विस्तार हुआ, इस तरह वह एक व्यापक लोक धर्म के रूप में प्रतिष्ठित हुआ, बंगाल

में सहजिया, बाउल, सत्यपीर सम्प्रदाय, उड़ीसा में पंच सखा सम्प्रदाय, महाराष्ट्र में वारकरी और महानुभाव सम्प्रदाय', आदि भक्ति आन्दोलन की ही उपज है।

इस तरह 16 वीं शती तक भक्ति आन्दोलन का अखिल भारतीय स्वरूप स्पष्ट हो चुका था और वह एक लोक धर्म के । रूप में प्रतिष्ठित हो चुका था, यद्यपि विभिन्न प्रान्तों के सम्प्रदायों द्वारा इस लोक धर्म में पर्याप्त वैविध्य आ गया था, किन्तु उसके मूल में एक ही तत्व था-भक्ति, उपासना पद्धति और उपास्यदेव की विभिन्नता और दार्शनिक दृष्टिकोण की विशिष्टता के बावजूद भक्ति आन्दोलन का अन्तः प्रादेशिक स्वरूप भक्ति तत्व की प्रतिष्ठा के कारण एकसूत्र में बँधा रहा, यही भक्ति आन्दोलन का वैशिष्टय था।

सामान्य परिचयः

- मोनियर विलियम्स के अनुसार 'भक्ति' शब्द की व्युत्पत्ति 'भज्' धातु से हुई है।
- 'भक्ति' शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख श्वेताश्वेतर उपनिषद में मिलता है।
- भक्ति आन्दोलन के उदय के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों का अभिमत निम्नलिखित हैं

विद्वान/प्रस्तोता	अभिमत
ग्रियर्सन	ईसाइयत की देन
रामचन्द्र शुक्ल	इस्लामी आक्रमण की प्रतिक्रिया
हजारी प्रसाद द्विवेदी	भारतीय चिन्तनधारा का स्वाभाविक विकास
गजानन माधव मुक्तिबोध	ऐतिहासिक-सामाजिक शक्तियों के रूप में जनता के दुःख व कष्टों से हुआ।
रामविलास शर्मा	भक्ति आन्दोलन एक जातीय और जनवादी आन्दोलन है।

भक्ति आन्दोलन के उद्गम स्थल के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों के मत निम्न हैं -

"भक्ति का जो सोता दक्षिण की ओर से धीरे-धीरे उत्तर भारत की ओर पहले से ही आ रहा था उसे राजनीतिक

परिवर्तन के कारण शून्य पड़ते हुए जनता के हृदय क्षेत्र में फैलने के लिए पूरा स्थान मिला।"

रामचन्द्र शुक्ल

"भक्ति द्राविडे उपजी, लाये रामानन्द। परगट किया कबीर ने, सात दीप नौ खण्ड।।"

कबीरदास

"उत्पन्ना द्राविडे साहं वृद्धि कर्णाटके गता।
क्वचित्क्वचिन्महाराष्ट्र गुर्जरे जीर्णंता गता।।"

श्रीमद्भागवत

- आचार्य शुक्ल ने दक्षिण में भक्ति का उद्भव स्वीकार किया है।
- भक्ति आन्दोलन के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के कथन निम्नलिखित है - "बिजली की चमक के समान अचानक समस्त पुराने धार्मिक मतों के अन्धकार के ऊपर एक नयी बात दिखायी दी। कोई हिन्दू यह नहीं जानता कि यह बात कहाँ से आयी और कोई भी इसके प्रादुर्भाव का कारण निश्चित नहीं कर सकता।"

ग्रियर्सन

"देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिन्दू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया। उसके सामने ही उसके देव मन्दिर गिराए जाते थे, देव मूर्तियाँ तोडी जाती थी और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था और वे कुछ भी न कर सकते थे। ऐसी दशा में अपनी वीरता के गीत न तो वे गा ही सकते थे और न बिना लज्जित हुए सुन ही सकते थे। आगे चलकर जब मुस्लिम साम्राज्य दूर तक स्थापित हो गया तब परस्पर लडने वाले स्वतंत्र राज्य भी नहीं रह गए। इतने भारी राजनीति उलटफेर के पीछे हिन्दू जन समुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी सी छाई रही। अपने पौरुष से हताशा जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था ?"

रामचन्द्र शुक्ल

"लेकिन जोर देकर कहना चाहता हूँ कि अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी इस साहित्य का बारह आना वैसा ही होता जैसा आज है।"

हजारी प्रसाद द्विवेदी

"म्लेच्छाक्रान्तेषु देशेषु, पापैकनिलयेषु च ।
सत्पीडाव्यग्रलोकेषु कृष्ण एव गतिर्मम ।।"

वल्लाभाचार्य

- जार्ज ग्रियर्सन ने भक्तिकाल को हिन्दी साहित्य का 'स्वर्ण युग' कहा था।
- डॉ. रामविलास शर्मा ने भक्तिकाल को 'लोक जागरण काल' नाम से पुकारा है।
- आचार्य हजारी प्रसाद ने भक्ति आन्दोलन को 'लोक जागरण' की संज्ञा दी।

संत काव्य–विशेषताएँ, प्रमुख कवि एवं रचनाएँ

भक्तिकाल का वर्गीक

निर्गुण

निर्गुण ज्ञानाश्रयी (शुक्ल जी ने नाम दिया)

निर्गुण प्रेमाश्रयी (शुक्ल जी)

या

संत काव्य धारा (रामकुमार वर्मा ने नाम दिया)

सूफी काव्य धारा

उदाहरण

कबीर

जायसी

सगण

कृष्ण भक्ति धारा

उदाहरण

राम भक्ति धारा

सूरदास

तुलसीदास

निर्गुण भक्तिकाव्य की ज्ञानामार्गी शाखा या 'संत काव्य' :

- निर्गुण भक्ति काव्य के अनुसार अव्यक्त, अनादि, अनन्त, अनाम, अगोचर, अमूर्त, निराकार, घट-घट व्यापी, सूक्ष्म ब्रह्म
- की प्राप्ति ज्ञान साधना द्वारा सम्पन्न की जाती है।
- भक्ति का आलम्बन निराकार अतः जनसाधारण के लिए यह मार्ग अग्राह्य था।
- गुरु का विशेष महत्त्व।
- निर्गुण एवं निराकार ब्रह्म से माधुर्य का भावात्मक सम्बन्ध जोड़ने से रहस्यवाद का जन्म हुआ।
- ईश्वर के नाम (राम नाम) की महत्ता पर बल।
- मूल आधार शंकर का अद्वैत दर्शन है जिसमें विशुद्ध ब्रह्म तत्त्व तथा आत्मा की सर्वशक्तिमत्ता, सर्वात्मा भावना, सर्वरूपता को स्वीकार करते हैं।
- नाथपंथियों से शून्यवाद, गुरु की प्रतिष्ठा योग प्रक्रिया को ग्रहण किया है।
- सन्त कवियों ने वैदिक साहित्य, वैदिक परम्पराओं एवं बाह्याचारों की आलोचना बौद्ध धर्म के प्रभाव से की है।
- जाति वर्ण के अन्तर को दूर कर मानव मात्र की एकता का प्रतिपादन निर्गुण काव्य की महान् विशेषता है।
- सहज साधना पर बल जिससे धार्मिक जीवन की दुरूहता कम हुई।
- कवि का प्रधान उद्देश्य कविता करने की बजाय उपदेश देकर समाज सुधार करना था।

- एकेश्वरवादी मान्यता (मुस्लिम या इस्लाम प्रभाव)।
- सत्संग की अनिवार्यता। रूढ़िवादिता, उपासना के प्रति विद्रोह। प्रेम की व्यापकता व लोक सेवा धर्मिता।
- अवतारवाद का खण्डन व माया की भर्त्सना।
- नारी निन्दा (नारी का कामिनी रूप)।
- मूर्तिपूजा एवं हिंसा का विरोध ।
- सधुक्कडी भाषा (ब्रज, अवधी, राजस्थानी, पूर्वी हिन्दी, अरबी, फारसी भाषा के शब्दों का मिश्रण)।
- माया का विरोध किया क्योंकि वह आत्मज्ञान में बाधक है।
- जीव जगत् की क्षणभंगुरता का वर्णन।
- अन्तर्मुखी साधना में योग क्रियाओं का प्रयोग।
- जीवात्मा को प्रिया तथा परमात्मा को प्रियतम मानकर विरल भावनाओं की मार्मिक अभिव्यक्ति (रहस्यवाद)
- सामाजिक सुधार और जनजागरण की चेतना का प्रसार ।
- मुक्तक काव्य रूप में रचना। बहुदेववाद तथा अवतारवाद का खण्डन ।
- उलटबाँसी काव्य शैली का प्रयोग।
- आध्यात्मिक प्रतीकों का निर्माण हुआ।
- 'सुरति' से आशय है -आनन्द का अनुभव ।
- 'निरति' से आशय है - जगत्प्रपंच से विरक्ति।
- कबीर साहित्य में उपलब्ध उलटबाँसी का प्रेरणास्त्रोत सिद्ध एवं नाथ साहित्य है।
- संत काव्य का प्रधान रस 'शांत' है।
- भक्ति काव्य का मूल कथ्य – 'भक्ति' है।
- संतमत का प्रारम्भ नामदेव (1267 ई.) से माना गया है। त्रिलोचन नामक संत इन्हीं के समकालीन हैं। इनके बाद संत सधन, संत बेनी का उल्लेख मिलता है। ये सभी प्रायः महाराष्ट्र से सम्बन्धित है। अतः संत-साधना का साहित्यिक रूप भी महाराष्ट्र से प्रारम्भ माना जाता है।
- कबीर अपने परमत्त्व को 'राम' कहते हैं इसी परम तत्त्व को गुरुनानक ने सबद कहा है।
- नानक दर्शन का सारतत्त्व जपुजी है।
- नानक देव के पदों को 'गुरुग्रंथसाहब' के 'महला' प्रकरण में संकलित किया गया है।
- मीराबाई के गुरु संत रैदास है।
- संत रैदास रामानंद के शिष्य थे।
- रहीम संत कवि नहीं है। संतदास और जगन्नाथदास ने दादू की रचनाओं का संग्रह 'हरडेवाणी' नाम से किया था।
- अंगवधू नामक प्रसिद्ध काव्य संग्रह 'दादू दयाल' का है।
- अकबर दादू दयाल के उपदेशों से बहुत प्रभावित हुआ था।
- दादू दयाल के साहित्य की सबसे प्रमुख विशेषता उनकी सरल और बोधगम्य भाषा है।

- दादू साहब ने परब्रह्म सम्प्रदाय की स्थापना की थी। निर्गुण पंथियों में सर्वाधिक शिक्षित संत सुन्दरदास हैं।
- संत जगजीवनदास ने 'सत्यनामी सम्प्रदाय' का प्रवर्तन किया था।
- संत रैदास के काव्य में उनका 'समाज सुधारक' रूप पूर्णतः प्रकट नहीं हुआ है।

निर्गुण भक्ति धारा के प्रमुख कवि और रचनाएँ :

रामानन्द – (सं. 1425-1525)

- जन्म 1368 ई. तथा मृत्यु 1468 ई. के लगभग।
- ये कान्यकुब्ज के ब्राह्मण थे, शिक्षा काशी में हुई।
- गुरु राघवानन्द के शिष्य (राघवानन्द – सिद्धान्त पंच मात्रा) थे।
- भक्तमाल के अनुसार इनके अनन्तानन्द, सुखानन्द, सरसुरानन्द, नरहर्यानन्द, भावानन्द, पीपा, कबीर, सेन, धन्ना, रैदास, सुरसुरी, पदमावत कुल 12 शिष्य थे।
- सुरसुरी एवं पद्मावत शिष्याएँ थी।
- गुरु राघवानन्द से प्राप्त भक्ति और ज्ञान की पृष्ठभूमि में इन्होंने रामावत सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया।

रैदास – (सं. 1455-1505)

- अन्य नाम रविदास, जाति चमार, जन्म स्थान – काशी
- डॉ. भण्डारकर के अनुसार जन्म 1299 ई. में, डॉ. भगवतव्रत मिश्र के अनुसार जन्मकाल 1398 ई., मृत्युकाल 1448 ई. के मध्य, मीराबाई (1498-1546) के गुरु थे अतः निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता।
- परिचई (अनन्तदास), सटीक भक्तमाल (प्रियादास) के अनुसार रैदास स्वामी रामानन्द के शिष्य थे लेकिन रैदास की रचनाओं में कहीं भी रामानन्द का उल्लेख नहीं हुआ है।
- पत्नी का नाम 'लोना' था।
- सिकन्दर लोदी के निमन्त्रण पर वे दिल्ली भी गए थे।
- मोक्ष स्थान काशी का गंगा घाट था।
- उन्होंने साहित्य सृजन में ब्रजभाषा को अपनाया। जिसमें अवधी, राजस्थानी, खड़ी बोली और उर्दू-फारसी शब्दों का मिश्रण है।
- सन्तबानी सीरीज के अन्तर्गत इनकी रचनाओं का संकलन 'रविदास की बानी' शीर्षक से प्रकाशित हुआ, इनके लिखे 40 पद गुरु ग्रन्थ साहब में भी संकलित हैं।

गुरु नानक या नानक देव : (सं. 1526-1595)

जन्म 1469 ई. में तलवण्डी में, मृत्यु 1538 ई. में।

(तलवण्डी का नामकरण वर्तमान में ननकाना गुरु नानक के आधार पर हुआ)

- सिख सम्प्रदाय के प्रवर्तक गुरु नानक थे।

- पिता कालूचंद खत्री, माता-तृप्ता, 1488 ई. में मूलचन्द खत्री की कन्या सुलक्षणा से विवाह, दो पुत्र श्री चन्द्र, लक्ष्मीचंद्र हुए, श्री चंद्र आगे चलकर उदासी सम्प्रदाय के प्रवर्तक हुए।
- कबीर की निर्गुण उपासना का प्रचार पंजाब से आरम्भ किया।
- नानक के अनेक पद श्री गुरु ग्रंथ साहिब (सं. 1661) में संकलित हैं।
- 'जपुजी' नानक दर्शन का सार तत्त्व है।
- असादीवार, रहिरास, सोहिला इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।
- नानक का अधिकांश साहित्य पंजाबी में है। कुछ हिन्दी, ब्रजभाषा, फारसी बहुल पंजाबी में है।
- 'नसीहतनामा' में खडी बोली का रूप व्यक्त हुआ है।
- उपमा, रूपक, प्रतीक, अनुप्रास इनके प्रिय अलंकार हैं, छंदों का प्रयोग इन्होंने नहीं किया।

जंभनाथ : (1451-1536)

- जन्म 1451 ई. में जोधपुर राज्य के नागौर प्रदेश के पीपासर (परसर) ग्राम के राजपूत परिवार में हुआ।
- जनश्रुति है कि 34 वर्ष की अवस्था तक इन्होंने एक भी शब्द उच्चारित नहीं किया सिद्धि प्राप्ति के बाद मुनीन्द्र जम्भ ऋषि के नाम से विख्यात हुए।
- किंवदती है कि ये आजीवन ब्रह्मचारी रहे, किन्हीं बाबा गोरखनाथ से दीक्षित हुए। • अभी तक इनकी कोई कृति नहीं मिली है, कतिपय संग्रहों में इनकी स्फुट रचनाएँ संकलित हैं।
- जंभनाथ ने अपने मत के प्रचारार्थ विश्नुई सम्प्रदाय की स्थापना की।
- इनके चार प्रमुख शिष्य थे – हावली पावजी, लोहा पागल, दत्तनाथ, मालदेव ।
- 1523 ई. के लगभग तालबा (बीकानेर) में इन्होंने समाधि ली।

हरिदास निरंजनी : (1455-1543)

- इनका जन्म 1455 ई. में और मृत्यु 1543 ई. में अनुमानित है। हरिदासजी की परिचई के अनुसार 1499 ई. में बसन्त पंचमी को स्वयं हरि ने गुरु गोरखनाथ का रूप धारण करके इन्हें ब्रह्मज्ञान की दीक्षा दी थी।
- ये निरंजनी सम्प्रदाय के कवि थे। निरंजनी सम्प्रदाय को नाथ पंथ एवं सन्त काव्य के बीच की कडी माना जा सकता है।
- इनके लिखे ग्रंथ हैं - अष्टपदी जोगग्रन्थ, हंस प्रबोध ग्रंथ, निरपखमूल ग्रंथ, पूजाजोग ग्रंथ, समाधिजोग ग्रंथ, संग्राम जोग ग्रंथ, ब्रह्मस्तुति।
- काव्य की भाषा सरल ब्रजभाषा है, अन्य सन्तों की भाँति कलापक्ष के अलंकरण का आग्रह इनमें भी नहीं मिलता।

सींगा : (1519-1659)

- सन्त सींगा (1519-1659) का जन्म मध्य भारत की रियासत बडवानी के खजूर गाँव में एक ग्वाल परिवार में हुआ।

- बाल्यकाल से ही वे संसार से विरक्त रहते थे, पिपल्या के जंगलों में उन्होंने निर्गुण ब्रह्म की साधना की और अनहद नाद सम्बन्धी भजन लिखे इनकी धारणा कबीर के निर्गुण ब्रह्म से बहुत कुछ साम्य रखती है।
- इनकी काव्य भाषा निमाडी है।
- विरचित पदों की संख्या 800 बताई जाती है, सभी अब तक उपलब्ध नहीं हैं।
- कहा जाता है कि उन्होंने ग्यारह रचनाओं का निर्माण किया था। सम्प्रति उनके काव्य का एक छोटा-सा संग्रह 'सन्त सिंगाजी' शीर्षक से उपलब्ध है।

लालदास : (1540-1648)

- लालपंथ के प्रवर्तक सन्त लाल दास (1540-1648) का जन्म अलवर राज्य के ग्राम धौलीधूप में एक मुसलमान परिवार में हुआ।
- धौलीधूप- रामगढ़ परगने में स्थित बादोनी- नारोली ग्राम- रसगाँव को अपना निवास स्थान बनाया।
- उनकी समाधि नगला (भरतपुर राज्य) में आज भी है।
- उनकी रचनाएँ 'लालदास की चेतावनी' में संकलित हैं।

दादूदयाल : (1601-1660 सं.)

- दादू पंथ के प्रवर्तक दादूदयाल धर्म सुधारक, समाज सुधारक और रहस्यवादी कवि थे। उनका जन्म अहमदाबाद में हुआ था।
- इनके आविर्भाव काल के सम्बन्ध में मतभेद है, डॉ. बडथ्वाल, शुक्ल, परशुराम चतर्वेदी ने 1544 ईस्वी स्वीकारा है।
- जाति के संबंध में भी मतभेद है, दादू धुनिया (मोची) परिवार में उत्पन्न हुए, जाति के मुसलमान थे। अन्य मत के अनुसार ये गुजराती ब्राह्मण थे।
- दादूदयाल के गुरु अज्ञात हैं, पर ये कबीर के मतानुयायी थे।
- गरीबदास तथा मिस्कीनदास नामक उनके दो पुत्र थे।
- परची के अनुसार 1603 ई. में दादू का महाप्रस्थान हुआ।
- इनके पंथ को 'परमब्रह्म सम्प्रदाय' भी कहा जाता हैं, सत्संग स्थल 'अलख-दरीबा' नाम से प्रसिद्ध हुआ।
- भक्तमाल (नाभादास) में दादू के 52 शिष्यों का उल्लेख हैं, जिनमें रज्जब, सुन्दरदास, प्रागदास, जनगोपाल प्रमुख हैं।
- सन्त दादू की विचारधारा कबीर से प्रभावित हैं, निर्गुण भक्त कवि होने पर भी उन्होंने ईश्वर के सगुण स्वरूप को मान्यता दी।
- उनकी रचनाओं का संकलन 'हरडेवाणी' नाम से उनके शिष्यों सन्तदास एवं जगन्नाथ दास ने प्रस्तुत किया। परशुराम चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित दादूदयाल में भी उनकी प्रामाणिक रचनाएँ संकलित हैं। 'अंगवधू' भी उनका प्रसिद्ध काव्य संग्रह है, जिसे संत रज्जब ने संगृहीत किया।
- काव्य भाषा ब्रजभाषा है जिसमें राजस्थानी और खडी बोली का मिश्रण भी मिलता है।

- इन्हें 'राजस्थान का कबीर' कहा जाता है।

मलूकदास :

- इनका समय (1574 – 1682) मुगल काल में है। कडा-इलाहाबाद जन्म-स्थान है।
- इनके संबंध में बहुत से चमत्कार या करामातें प्रसिद्ध है।
- इनके पिता का नाम सुन्दरदास खत्री था, ये विवाहित थे।
- मलूकदास के प्रामाणिक ग्रंथ ये हैं – ज्ञानबोध, रतनखान, भक्तवच्छावली, भक्तिविवेक, ज्ञानपरोछि, बारहखडी, रामअवतार लीला, ब्रजलीला, ध्रुवचरित, विभवविभूति, सुखसागर, सबद तथा स्फुट पद
- मलूकदास ने अवधी और ब्रजभाषा (कृष्णचरित से सम्बद्ध ग्रंथ) में काव्य रचना की है, संस्कृत, फारसी तथा अन्य बोलियों के शब्दों का भी प्रयोग किया है। इन्होंने एक आलसियों का महामंत्र लिखा अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम। दास मलूका यौं कहे, सबके दाता राम ।।

बाबा लाल : (1590-1655)

- बाबा लाल नामक चार साधकों का आविर्भाव पंजाब में हुआ।
- आचार्य क्षितिमोहन सेन के अनुसार बाबा लाल का आविर्भाव 1590 ई. में मालवा प्रदेश के खत्री परिवार में हुआ था।
- आस्थावान भक्तों ने देहावसान 1655 ई. में माना।
- इनके पिता का नाम भोलानाथ, माता का नाम कृष्णादेवी था।
- चेतन बाबा या चैतन्य स्वामी से उन्होंने दीक्षा ली।
- बाबा लाल तथा दारा का वार्तालाप 'असरारे-मार्फत' में संगृहीत है, 'नादिरुन्निकाल' नामक ग्रंथ में भी उनके विचारों का संग्रह हुआ है।

सुन्दरदास : (सं. 1653-1736)

- सन्त दादूदयाल के शिष्य सुन्दरदास का जन्म जयपुर की प्राचीन राजधानी (धौंसा) के खण्डेलवाल परिवार में हुआ।
- इनके पिता का नाम परमानन्द, माता का नाम सती था।
- इनके 42 ग्रंथों में से ज्ञानसमुद्र और सुन्दर विलास अधिक प्रसिद्ध हैं। इनकी रचनाओं का संकलन 'सुन्दर ग्रन्थावली' (दो भाग) में पुरोहित हरिनारायण शर्मा ने किया।
- सुन्दरदास संत कवियों में सबसे ज्यादा पढ़े-लिखे एवं विद्वान् थे।
- शृंगार रस के विरोधी सुन्दरदास ने केशव की रसिक-प्रिया और नन्ददास की रसमंजरी की निंदा अपने एक छन्द में की है -

रसिक प्रिया रसमंजरी और सिंगारहि जानि।
चतुराई करि बहुत बिधि विषै बनाई आनि।।
विषै बनाई आनि लागत विषयनि कौं प्यारी।

जानें मदन प्रचण्ड, सराहै नख शिख नारी।।
ज्यों रोगी मिष्टान पाइ रोगहि बिस्तारै। सु
न्दर यह गति होइ जुतो रसिकप्रिया धारै।।

धर्मदास :

- कबीर की मृत्यु के पश्चात् ये कबीरदास की गद्दी पर 20 वर्ष के लगभग रहे।
- कबीर-वाणी को 'बीजक' (सं. 1521) में संकलित करने का श्रेय इन्हीं को है।
- कबीरपंथी होने के बावजूद खण्डन-मण्डन की कटुता इनके काव्य में नहीं मिलती।
- इनकी रचनाएँ 'धनी धरमदास की बानी' में संकलित है।

सन्त रज्जब : (1567-1689)

- सन्त रज्जब या रज्जब अली खाँ दादूदयाल के शिष्य थे।
- दादूदयाल की समग्र रचनाओं को 'अंगवधू' शीर्षक कृति में इन्होंने ही संकलित किया था।
- "सबंगी' नामक रचना में इन्होंने अपनी रचनाओं के साथ अन्य प्रसिद्ध निर्गुण संत कवियों की वाणी का संकलन किया।
- इनकी रचनाएँ 'रज्जब-बानी' में संगृहीत है।

बावरी पंथ की बावरी साहिबा : (1542-1605 ई.)

- इनके द्वारा लिखित निर्गुण ईश्वर एवं वैराग संबंधी रचनाएँ यत्र-तत्र प्राप्त होती है।

गुरु अंगद (1504-1552) : .

- इन्होंने पंजाबी भाषा में काव्य रचना की किन्तु इनकी भाषा ब्रजभाषा के निकट हैं।
- नानकदेव की रचनाओं को एकत्र करने का श्रेय इनको प्राप्त हैं।

गुरु अर्जुन देव (1563-1606)

- इनकी रचनाओं में सुखमनी, बावन आखरी, बारहमासा विशेष प्रसिद्ध है। 'ग्रंथ साहिब' में उनके 6000 पद संकलित
- इनकी रचनाओं में शान्त रस की प्रधानता एवं भाषा ब्रजभाषा है।

अन्य सन्त कवि :

- सन्त सदना (चौदहवीं शताब्दी), सन्त बेनी (पन्द्रहवीं शताब्दी), रामानन्द के शिष्य संत पीपा एवं संत सेन (1540), संत धन्ना (1614) संतकवियों में स्थान पाते हैं।
- शेख फरीद (1472-1552), सन्त भीषन के 2-2, 4-5 पद 'आदि ग्रन्थ' में संकलित हैं।
- अक्षर अनन्य प्रसिद्ध छत्रसाल के गुरु थे। इन्होंने योग और वेदान्त पर कई ग्रन्थ – राजयोग, विज्ञानयोग, ध्यानयोग, सिद्धान्तबोध विवेकदीपिका, ब्रह्मज्ञान, अनन्यप्रकाश आदि लिखे और दुर्गा सप्तशती का हिन्दी पद्यों में अनुवाद किया।

- दादूदयाल के शिष्य परम्परा में जगजीवनदास या जगजीवन साहब हुए जो 1818 के लगभग विद्यमान थे। इन्होंने सत्यनामी सम्प्रदाय चलाया।

नामदेव (सं. 1327-1407) -

- महाराष्ट्र के प्रसिद्ध सन्त थे, इनका जन्म नरूसी बमनी (सतारा) में हुआ था। पत्नी का नाम राजाबाई था।
- स्वामी प्राणनाथ का जन्म संवत् 1675 में जामनगर (काठियावाड़) के खमेजी के यहाँ हुआ। आपके मत के सम्प्रदाय हैं –अनामी और धामी। आपका प्रसिद्ध ग्रंथ 'कुलजाम स्वरूप' है।
- धरनीदास का जन्म माँझी ग्राम में संवत् 1713 में हुआ, आप माँझी के बानू के दीवान थे जो सेवानन्द के शिष्य बन गए। 'प्रेम-प्रकाश' और 'सत्यप्रकाश के अतिरिक्त रागों के 'शब्द' लिखे।
- दरिया साहब के दरियापंथ के अलावा दरियासागर और ज्ञानदीप प्रसिद्ध ग्रंथ हैं, समय 19 वीं शताब्दी, स्थान बिहार है।
- चरणदास (1760 सं.), भीखा साहब (1770 सं.), गरीबदास (सं. 1774), सहजोबाई, पलटूदास (सं. 1850) अन्य सन्त कवि रहे हैं।

सन्त काव्य के प्रतिनिधि कवि : कबीर

(1398-1518 ईस्वी,सं. 1455-1575)

कबीर की जन्मतिथि में मतैक्य नहीं है। एक प्रसिद्ध दोहे के अनुसार इनका जन्म सं. 1455 में हुआ था।

चौदह सौ पचपन साल गये, चन्द्रवार एक ठाठ भये।

जैठ सुदी बरसाइत को, पूरनमासी प्रगट भये ।।

इसी प्रकार एक जनश्रुति के अनुसार कबीर का निधन सं. 1575 में हुआ। कबीर चरित्र बोध के अनुसार

सवंत पन्द्रह सौ पछत्तरा, कियो मगहर को गौन।

माघ सुदी एकादशी, रलो पौन में पौन।।

जन्म व निधन स्थान ट्रिक: काम (का से काशी म से मगहर)

- इसके अनुसार कबीर का समयकाल (सं. 1455-1575) 1398 ई. से 1518 ई. तक माना जा सकता है। कबीर का जन्म स्थान काशी है।
- सिकन्दर लोदी (1488-1517) द्वारा कबीर के साथ किये गए अत्याचारों का वर्णन अनन्तदास कृत 'कबीर-परिचई' में है।
- किंवदन्ती के अनुसार स्वामी रामानन्द के वरदानस्वरूप एक विधवा ब्राह्मण कन्या को पुत्र प्राप्ति हुई, लोक-लाज के कारण वह पुत्र को लहरतारा के ताल पर फैंक आयी। अली या नीरू नामक जुलाहा उस बालक को अपने घर उठा लाया। (भक्तमाल के अनुसार)
- 'कबीर परिचई' के अनुसार कबीर जन्म से जुलाहे थे। निवास स्थान काशी तथा कबीर के गुरु रामानन्द थे, सिकन्दर लोदी ने अनेक प्रकार की यातनाएँ दी, 120 वर्ष तक पवित्र जीवन पाया।

- जनश्रुतियों में प्रसिद्ध है कि नीरू जुलाहा तथा उसकी पत्नी नीमा ने कबीर का पालन-पोषण किया। कबीर की पत्नी का नाम लोई था। उनकी सन्तान के रूप में पुत्र कमाल और पुत्री कमाली का उल्लेख मिलता है।
- आजकल की उपलब्ध रचनाओं में कबीर के पद, साखियाँ, रमैनियाँ एवं कुछ अन्य प्रकार की रचनाएँ सम्मिलित है। पंचबानी, सर्वंगी आदि ग्रंथों में अन्य कवियों के साथ कबीर की भी रचनाएँ संगृहीत है। कबीर-बीजक, कबीर-बानी तथा सत्य कबीर साखी जैसे स्वतन्त्र काव्य संग्रह भी वर्तमान में उपलब्ध है।
- सिकन्दर लोदी (सं. 1545-1574) के अत्याचारों का वर्णन भक्तमाल की टीका (प्रियादास) में हुआ है।
- बघेल राजा नाहरसिंह देव कबीर के समकालीन थे। सिकन्दर शाह का काशी आगमन कबीर से संबंधित है।
- गुरुग्रंथ साहब (अर्जुन देव, 1661) में कबीर के पदों का 'रागू व सलोक शीर्षक से संकलन किया गया है।
- डॉ. बच्चन सिंह ने लिखा है, 'हिन्दी भक्ति काव्य का प्रथम क्रान्तिकारी पुरस्कर्ता कबीर है।
- मुसलमानों के अनुसार कबीर के गुरु का नाम सूफी फकीर शेख तकी था। ये सिकन्दर लोदी के पीर (गुरु) है।
- कबीर की वाणी का संग्रह उनके शिष्य धर्मदास ने 'बीजक' नाम से सन् 1464 ई. में किया। बीजक के तीन भाग किए गए हैं- (1) रमैनी (2) सबद और (3) साखी।

कबीर की रचनाओं में प्रयुक्त छन्द एवं भाषा निम्न है -

रचना	अर्थ	प्रयुक्त छंद	भाषा
रमैनी	रामायण	चौपाई+दोहा	ब्रजभाषा और पूर्वी बोली सबद
सबद		गेय पद	ब्रजभाषा और पूर्वी बोली साखी साक्षी
साखी		दोहा	राजस्थानी, पंजाबी मिली खडी बोली

विशेष:

(1) साखी- इस भाग में कबीर द्वारा रचित दोहों को शामिल किया गया है।इसमें साम्प्रदायिक शिक्षा और सिद्धान्त के उपदेश है। इसकी भाषा सधुक्कडी है। इसका विभाजन 59 अंगो में किया गया है। प्रथम अंग- गुरुदेव को अंग अन्तिम अंग- अबिहड को अंग

(2) सबद- इस भाग द्वारा रचित पदों का शामिल किया गया है।इसकी भाषा ब्रज या पूर्वी बोली है। इस भाग में कबीर के माया सम्बन्धी विचारों की अभिव्यक्ति हुई है।

(3) रमैणी- इस भाग में कबीर द्वारा रचित राम संबंधी पदों व चौपाइयों को शामिल किया गया है। इसकी भाषा ब्रज या पूर्वी बोली है।

- कबीरदास की भाषा को 'पंचमेल खिचडी', सधुक्कडी आदि नाम से अभिहित किया जाता है।
- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर को 'भाषा का डिक्टेटर' कहा है।
- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, "कबीर की वचनावली की सबसे प्राचीन प्रति सन् 1512 ई. की लिखी है।"
- कबीरदास के भाषा के सम्बन्ध में विद्वानों ने निम्नलिखित मत प्रस्तुत किये -

विद्वान	कबीर की भाषा
श्याम सुन्दर दास	पंचमेल खिचडी
रामचन्द्र शुक्ल	सधुक्कडी
हजारी प्रसाद द्विवेदी	भाषा के डिक्टेटर

कबीर की बानियों का सबसे पुराना नमूना 'गुरु ग्रन्थ साहिब' में मिलता है।

कबीर के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण कथन अग्रांकित हैं -

(1) "इसमें कोई सन्देह नहीं कि कबीर ने ठीक मौके पर जनता के उस बड़े भाग को सँभाला जो नाथ पंथियों के प्रभाव से प्रेमभाव और भक्ति रस से शून्य शुष्क पडता जा रहा था।"
रामचन्द्र शुक्ल

(2) "उन्होंने भारतीय ब्रह्मवाद के साथ सूफियों के भावात्मक रहस्यवाद, हठयोगियों के साधनात्मक रहस्यवाद और वैष्णवों के अहिंसावाद तथा प्रपत्तिवाद का मेल करके अपना पंथ खडा किया।" –
रामचन्द्र शुक्ल

(3) "भाषा बहुत परिष्कृत और परिमार्जित न होने पर भी कबीर की उक्तियों में कहीं-कहीं विलक्षण प्रभाव और चमत्कार है। प्रतिभा उनमें बडी प्रखर थी इसमें सन्देह नहीं है।"
रामचन्द्र शुक्ल

कृष्णकाव्य काव्यधारा पार्ट-1

दार्शनिक पृष्ठभूमि

भक्त कृष्ण रूपी परमब्रह्म को साधकर कृष्ण के लोक के साहचर्य को पा लेता है। यहाँ कृष्ण गोलोकवासी और गजेन्द्रकृष्ण के रूप में वर्णित है। तीसरा सम्प्रदाय हरिदासी या सखी सम्प्रदाय है उसकी स्थापना श्री हंस या श्री व्यास जी के द्वारा की गई। हरिदासी सम्प्रदाय में कृष्ण पूर्ण तथा परम ब्रह्म हैं परन्तु ये जीवों का संहार नहीं करते, और न ही जन्म लेते हैं। जगत् के सभी कार्यों का निष्पादन इनके अनुचर के रूप में शिव या हरि के रूप में किया जाता है। जीवात्मा के लिए सखी भाव की भक्ति की चर्चा है और राधाबल्लभी सम्प्रदाय है। यहाँ राधा ही मुख्य है जबकि कृष्ण । उनके सहयोगी। राधाकृष्ण की जगह यहाँ राधाबल्लभ की चर्चा है हालांकि कृष्ण पूर्ण ब्रह्म हैं। सम्प्रदायिक गतयक्ति के अलावा कृष्ण काव्यधारा के विकास में सम्प्रदाय रहित भक्ति का योगदान जैसे-मीरा, रहीम, रसखान आदि। कृष्ण भक्तिधारा के उपरोक्त सम्प्रदायों

ने आराध्य अथवा उपास्य के स्वरूप के साथ-साथ उसके प्रति की गई भक्ति की श्रेणी को भी निर्धारण किया, जैसे हरिदासी सम्प्रदाय ने सख्य और दास्य भाव की भक्ति, वल्लभ के रुद्र सम्प्रदाय को माधुर्य और कान्त भाव की भक्ति, तो राधावल्लभ सम्प्रदाय ने शान्त व दास्य भाव की भक्ति।

कृष्ण के स्वरूप की चर्चा

मध्यकालीन सगुण भक्ति के आराध्य देवताओं में भगवान श्रीकृष्ण का स्थान सबसे ऊपर माना जाता है। ऋग्वेद के आठवें व दसवें मण्डल के कुछ सूक्तों के रचयिता ऋषिकृष्ण है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में भी कृष्ण का उल्लेख है।

कौशितकी ब्राह्मण में अंगारिस ऋषि के शिष्य कृष्ण का वर्णन है। छान्दोग्य उपनिषद् में भी अंगारिस के शिष्य कृष्ण का उल्लेख है। भारतीय विद्या के विख्यात पण्डित डॉ. भण्डारकर ने यह सिद्ध किया है कि वैदिक ऋषिकृष्ण व महाभारत के कृष्ण दोनों अलग-अलग है। इस बात का समर्थन लोकमान्य तिलक भी करते है।

महाभारत में वर्णित कृष्ण यदुवंशीय क्षत्रिय के रूप में अंकित हैं। गीता में कृष्ण स्वयं कहते हैं कि मैं वृष्णियों में वासुदेव हूँ| यदि गीता के आधार पर कृष्ण के चरित्र का आकलन किया जाए तो उनके दार्शनिक व्यक्तित्व का पूरी तरह उद्घाटन होता है। वेद-वेदांग के ज्ञाता कृष्ण ने पहली बार व्यवहारिक स्तर पर दर्शन को गीता में प्रतिष्ठित किया है।
पुराण ग्रन्थों में श्रीकृष्ण का आध्यात्मिक रूप भी पूर्णरूपेण व्यंजित हुआ है। अन्य अवतारों को अंशावतार व श्रीकृष्ण को पूर्णावतार पहली बार पुराणों में ही कहा गया है। भागवत पुराण में कृष्ण की महिमा का ज्ञान करते हुए कहा गया है कि समस्त वेद भगवान कृष्ण की आराधना करते हैं। पुराणों में श्रीकृष्ण को योगेश्वर, सच्चिदानन्द, अच्युत, अविनाशी, स्वगतभेदशून्य आदि कहा है। भागवत पुराण, हरिवंश पुराण, विष्णु पुराण, पद्म पुराण, ब्रह्यावैवर्त पुराण में श्रीकृष्ण की महिमा का गान बड़े विस्तार से हुआ है। कृष्ण के दो रूप हैं- लोकरक्षक तथा लोकरंजन।

<u>महाभारत के कृष्ण लोकरक्षक जबकि पुराणों के लोकरंजन हैं।</u> लोकरंजन रूप उनकी माधुर्य भावना का द्योतक है। जिसके अन्तर्गत वे अपने भक्तों के साथ अनुरंजन के लिए कई प्रकार की लीलाएँ करते हैं। श्रीमदभागवत पुराण में राधा का कहीं उल्लेख नहीं है, परन्तु अन्य पुराणों, जैसे-ब्रह्मावैवर्त पुराण, हरिवंश पुराण आदि में राधा को विशेष महत्व प्राप्त हुआ है। पुराणों में न तो महाभारतीय कृष्ण को प्रमुख स्थान दिया गया है, और न ही द्वारकाधीश कृष्ण का विस्तार से वर्णन किया गया है। <u>उनके वर्ण्य विषय तो ब्रजवासीलीलापरायण कृष्ण रहे हैं।</u>

रासपंचाध्यायी में गोपियों के साथ कृष्ण की रासलीला का मोहक वर्णन होने पर भी राधा का कहीं कोई उल्लेख नहीं है। परन्तु धीरे-धीरे राधा-कृष्ण की प्रेमलीलाएँ प्रसिद्ध हो गई। कृष्णलीलाओं का संस्कृत काव्यों में सबसे पहले उल्लेख अश्वघोष के ब्रह्मचरित काव्य में मिलता है। इसके बाद हाल कवि द्वारा रचित गाहा

सतसई में कृष्ण व राधा-कृष्ण गोपी यशोदा आदि का नामोल्लेख है। कृष्ण की इन लीलाओं को पढ़ने-देखने से वैसा ही चित्र उभरता है।

भट्टनारायण के नाटक वेणी संहार में श्रीकृष्ण रूठी हुई राधा से अनुनय विनय करते है। वेणीसंहार नाटक से प्रामाणि होता है कि आठवीं शताब्दी में रासलीला प्रसंग में राधा-कृष्ण का वर्णन शुरू हो गया था। संस्कृत काव्यशास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ ध्वन्यालोक में उद्धत एक श्लोक में भी कृष्ण का उल्लेख है। जयदेव कृत गीत गोविन्द में कृष्ण की सरस केलि क्रीडाओ का वर्णन करने वाला उत्कृष्ट और प्रख्यात गीतिकाव्य है। कृष्ण विषयक काव्य की प्रचुरता 12 वीं शती के बाद दिखाई देती है।

रूप गोस्वामी की कृतियाँ– 'उज्जवल नीलमणि' और 'हरिभक्त रसामृत सिन्धु' है। इन दोनों कृतियों के द्वारा कृष्ण-भक्ति को साहित्यशास्त्र में प्रतिष्ठित किया गया। आधुनिक भारतीय भाषाओं में कृष्ण काव्य का प्रारम्भ मैथिल कोकिल विद्यापति से स्वीकार किया जाता है।

राधा-कृष्ण की प्रेमलीलाओं का वर्णन करने के लिए विद्यापति ने 'पदावली' की रचना की। पदावली का स्थान कृष्ण-भक्ति में सर्वोच्च है। प्राचीन संस्कृत के साहित्य के अतिरिक्त जैन व बौद्ध साहित्य में भी कृष्ण की सत्ता प्रमाणित होती है। बौद्धों के घट जातक व जैनियों के उत्तराध्ययन सूत्र में कृष्ण का उल्लेख एक ऐतिहासिक क्षत्रिय वीर के रूप में किया गया है।

अवतारवाद का जब विकास हुआ तो कृष्ण को विष्णु के अवतारों में सर्वोच्च स्थान दिया गया। कृष्ण के जीवन का विस्तृत अंकन सर्वप्रथम हरिवंशपुराण में हुआ। भागवत पुराण में कृष्ण के बाल्यकाल से लेकर द्वारका प्रवास तक की सारी घटनाएँ विस्तार से अंकित है। अश्वघोष की कृति बुद्धचरित व हाल की कृति गाथा सप्तशती में कृष्ण का उल्लेख स्फुट रूप में हुआ है। विद्यापति की पदावली मैथिली हिन्दी में रचित होने पर भी उस पर बंगला प्रभाव विद्यमान है। पदावली के जिन पदों में राधा-कृष्ण को नायक-नायिका के रूप में ग्रहण कर शृंगार वर्णन किया गया हैं उनमें भी भावुक जनभक्ति की अन्तसलिला का प्रवाह है। ऐसा कहा जाता है कि चैतन्य महाप्रभु इन पदों को गाते-गाते भाव-विभोर होकर मूर्छित हो जाया करते थे। राधा-कृष्ण की शृंगारिक चेष्टाओं व क्रियाओं का वर्णन इन पदों में है।

नख-शिख वर्णन, मिलन की आकांक्षा, कामकेलि और पूर्वघटित प्रेमलीलाओं की वियोगकाल में स्मृति पदावली के मुख्य वर्ण्य विषय है।

कृष्ण-भक्ति के विविध सम्प्रदाय

1. बल्लभ सम्प्रदाय
बल्लाभाचार्य

2. निम्बार्क सम्प्रदाय
निम्बार्काचार्य

3. राधाबल्लभ सम्प्रदाय
हितहरिवंश

4. हरिदासी सम्प्रदाय
स्वामी हरिदास

5. गौडीय सम्प्रदाय
चैतन्य महाप्रभु

ट्रिक: वह निगोरा(कृष्ण काव्य के सम्प्रदाय)
व-बल्लभ सम्प्रदाय
ह-हरिदास सम्प्रदाय
नि-निम्बार्क सम्प्रदाय
गो-गौडीय सम्प्रदाय
रा-- राधावल्लभचार्य सम्प्रदाय

बल्लभ सम्प्रदाय
बल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्तक बल्लभाचार्य है। इनका दार्शनिक मत शुद्धाद्वैत है। इनके मार्ग को पुष्टिमार्ग कहते है। भगवत कृपा या अनुग्रह को पुष्टि कहा जाता है। भगवान के अनुग्रह या कृपा का नाम ही पोषण है।

जिस प्रकार बिल्ली का बच्चा अथवा बन्दर का बच्चा स्वयं को माँ के ऊपर छोड़ देता है, उसी प्रकार जो भक्त अपने को भगवान के आश्रय पर छोङ दे वही सच्चा भक्त है। पुष्टिमार्ग का इसी प्रकार का संकेत गीता ग्रन्थ में भी है। गीता में कृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि 'सर्वधर्मान् परित्यज्ज मामेंक शरणं व्रज।'

बल्लभाचार्य ने भक्ति विवेचन करते हुए तीन मार्गों – मर्यादामार्ग, प्रवाहमार्ग एवं पुष्टिमार्ग का उल्लेख किया है। तीनों मार्गों में बल्लभाचार्य ने सर्वाधिक बल पुष्टिमार्ग पर दिया। पुष्टिमार्ग भगवान के अनुग्रह का मार्ग है। इस मार्ग के पथिक किसी लौकिक या बाह्य साधन का आश्रय नहीं लेते। वल्लभाचार्य पुष्टिमार्ग को सर्वश्रेष्ठ मार्ग मानते है। भगवान के अनुग्रह प निर्भर होकर भी जो मर्यादानुसार कर्म करते हैं वे 'मर्यादापुष्ट' भक्ति कहलाते है। जो केवल अनुग्रह का सहारा लेते हैं वे 'शुद्ध पुष्ट' भक्त है।

बल्लभ द्वारा भक्त वर्गीकरण
1. प्रवाही पुष्ट भक्त
2. मर्यादा पुष्ट भक्त
3. पुष्टिपुष्ट भक्त
4. शुद्ध पुष्ट भक्त

पुष्टि मार्ग केवल अनुग्रह पर निर्भर करता है। पुष्टिमार्गीय भक्ति रागानु भक्ति है। इस भक्ति में किसी भी प्रकार के साधन या कर्मकाण्ड की जरूरत नहीं पड़ती। पुष्टिमार्गीय भक्ति में ईश्वर कृपा से व्यक्ति के प्रारब्ध व संचित कर्मों का शमन स्वतः हो जाता है।

पुष्टिमार्गीय भक्ति के तीन फल हैं

1. रसरूप पुरुषोत्तम की लीला में प्रविष्ट होना।
2. पूर्ण पुरुषोत्तम के श्री अंग या आभूषण आदि का अंग बनना।
3. स्थूल शरीर से मुक्त होकर बैकुण्ठ आदि लोकों में आनन्द भोग करना।

बल्लभाचार्य जी के पुष्टिमार्ग के मानने वाले आठ कवियों को अष्टछाप कहते हैं।

बल्लभाचार्य के 4 शिष्य

1. कुम्भनदास 2. सूरदास 3. परमानन्ददास 4. कृष्णदास

ट्रिकः सूरदास ने कृष्ण के कुंभ(घडा) से परमानन्द लिया तो हो गई बल्ले -बल्ले
बल्ले-बल्ले - बल्लभाचार्य

बिट्ठलदास जी के 4 शिष्य

1. गोविन्द स्वामी 2. नन्ददास 3. छीतस्वामी

ट्रिक: चतुर गौ छीन बैठे

चतुर्भुजदास गोविन्द स्वामी छीतस्वामी नन्ददास विट्ठलदास

<u>अष्टछाप की स्थापना विट्ठलदास ने 1565 ई. में की।</u>

अष्टछाप पर बल्लभाचार्य के पुत्र गोस्वामी विट्ठलदास ने अपने आशीर्वाद की छाप लगाई। कृष्ण-भक्त आठ कवियों में 4 शिष्य बल्लभाचार्य के व शेष 4 शिष्य विट्ठलदास जी के थे। ये आठों भक्त श्रीनाथ जी की नित्यलीला में अन्तरंग सखाओं के रूप में सदैव उनके साथ रहते थे। इसी मान्यता के आधार पर इन्हें 'अष्टसखा' कहते है। गोवर्धन में श्रीनाथ जी की प्रतिष्ठा जब हुई तो ये आठों भक्त वहाँ सेवा के लिए चले गए।

अष्टयाम सेवाविधि बल्लभ सम्प्रदाय की 'अष्टयाम सेवाविधि'

1. मंगला चरण
2. शृंगार
3. ग्वाल
4. रजयोग
5. उत्थापन
6. भोग

7. संध्या आरती
8. शयन

अष्टछाप की स्थापना 1565 ई. में गोस्वामी विट्ठलदास ने की।

निम्नलिखित ग्रन्थों में कृष्ण-भक्ति कवियों की चर्चा है

1. चौरासी वैष्णव की वार्ता
2. दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता
3. भक्तमाल
4. भाव प्रकाश
5. बल्लभ दिग्विजय

बल्लाभाचार्य जी ने अपने सम्प्रदाय का मुख्य साधना केन्द्र मथुरा जिले में गोवर्धन पहाड़ी पर स्थित श्रीनाथ जी के मन्दिर में स्थापित किया। यह मन्दिर उन्हीं की प्रेरणा से उनके एक भक्त पूरनमल खत्री ने 1519 ई. में बनवाया था।

बल्लभाचार्य द्वारा लिखे गए ग्रन्थ

1. पूर्व मीमांसा
2. श्रीमद्भागवत सूक्ष्म टीका
3. अणुभाष्य
4. तत्त्वदीप निबन्ध
5. सुबोधिनी टीका
6. शृंगार रस मण्डन
7. विद्वन्मण्डन

निम्बार्क सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक निम्बार्काचार्य थे। इनके सिद्धान्त को द्वैताद्वैतवाद कहा जाता है। निम्बार्काचार्य का समय 1162 ई. माना गया है। निम्बार्काचार्य की जन्म स्थली दक्षिण भारत एवं कर्मस्थली ब्रजमण्डल थी। इनके बचपन का नाम नियमानन्द था। निम्बार्काचार्य के चार शिष्य थे

1. श्रीनिवासाचार्य
2. औदुम्बराचार्य
3. गौरमुखाचार्य
4. लक्ष्मण भट्ट निम्बार्क सम्प्रदाय में निम्बार्काचार्य को सुदर्शन चक्र का अवतार माना जाता है।

निम्बार्काचार्य के ग्रन्थ

1. वेदान्त परिजात-सौरभ

2. दशश्लोकी
3. श्रीकृष्ण स्तवराज
4. मन्त्र रहस्य
5. प्रपन्न कल्पवल्ली

'वेदान्त परिजात-सौरभ' ब्रह्मसूत्र पर स्वल्पकाय वृत्ति है। दशश्लोकी भक्ति सिद्धान्त प्रतिपादक दस श्लोकों की सुप्रसिद्ध रचना है। द्वैताद्वैतवाद प्राचीन भेदाभेदवाद का ही नवीन रूप है।
'दशश्लोकी' में निम्बार्क ने ईश्वर, जीव, प्रकृति आदि का सरल भाषा में निरूपण प्रस्तुत किया है। निम्बार्काचार्य के अनुसार जीव परम् ब्रह्म का अंश है। जहाँ ईश्वर समग्र का नियन्ता है, वहाँ जीव अणु का दृष्टा है। भक्ति द्वारा व्यक्ति ईश्वर को प्राप्त करता है। ईश्वर को सगुण अवतारी श्रीकृष्ण के रूप में स्वीकार किया जाता है। निम्बार्क सम्प्रदाय में राधा का स्वकीया रूप स्वीकार किया गया है।

भक्ति के भाव

1. दास्य भाव 2. संख्य भाव 3. वात्सल्य भाव 4. शान्त भाव 5. माधुर्य भाव

रूप गोस्वामी का भक्ति वार्गीकरण

1. शान्त 2. प्रीता 3. प्रेयसी 4. अनुकम्पा 5. कान्ता

भक्ति में माधुर्य भाव को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। माधुर्य भाव दो प्रकार का होता है- स्वीकार रूप में, परकीया रूप में। रागानुगा भक्ति क्रमशः माधुर्य परकीया संयोग-सुख में परिणत होती हुई अन्त में विशुद्ध रसिकता के रूप में अवशिष्ट रह गई। श्रद्धा के अभाव में भक्ति का कोई मूल्य नहीं होता है। श्रेष्ठ आलोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भक्ति को परिभाषित करते हुए लिखा है कि 'श्रद्धा व प्रेम के योग का नाम भक्ति है। श्रद्धा व प्रेम का सम्मिश्रण भक्ति के लिए अनिवार्य है। भक्ति के पाँच रूपों में निम्बार्क सम्प्रदाय में दाम्पत्य भक्ति को सर्वश्रेष्ठ भक्ति के लिए अनिवार्य है। भक्ति के पाँच रूपों में निम्बार्क सम्प्रदाय में दाम्पत्य भक्ति को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। राजस्थान के सलेमाबाद में इस सम्प्रदाय की सबसे बड़ी गद्दी है। मथुरा, राधाकुण्ड, गोवर्धन तथा नीमगाँव में निम्बार्कीय मन्दिर है।

इस सम्प्रदाय के निम्नलिखित कवि हैं -

1. श्री भट्ट
2. हरिव्याससेन
3. परशुरामदेव

राधाबल्लभ सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी हितहरिवंश जी है। इसका प्रवर्तन 1534 ई. में वृन्दावन में हुआ। इसमें प्रेम को ही भक्ति तथा सम्प्रदाय का मूलाधार माना जाता है। इस सम्प्रदाय में न तो मुक्ति की कामना है न ही मुक्ति का कोई स्थान है। साधनापरक कर्मकाण्डीय भक्ति की भी जगह नहीं है।

राधाबल्लभ सम्प्रदाय के कवि व उनकी रचनाएँ

1. हितहरिवंश-रचना की मधुरता के कारण इन्हें श्री कृष्ण की वंशी का अवतार कहा जाता है।

इनके दो हिन्दी ग्रन्थ हैं

(i) हित चौरासी (इसे राधावल्लभ सम्प्रदाय का आधारग्रन्थ भी कहा जाता है।)

(ii) स्फुटवाणी

दो संस्कृत ग्रन्थ भी है - राधासुधानिधि, यमुनाष्टक

इनके निधन पर हरिराम व्यास देव ने कहा था'

हुतौ रस रसिकन कौ आधार |

बडौ अभाग्य अनन्य सभा कौ उठि गयौ ठाठ सिंगार।।'

2. दामोदरदास- इन्हें सेवक जी भी कहते थे। इनकी रचना 'सेवकवाणी ' नाम से चर्चित हुई।
3. हरिरामव्यास

   रचनाएँ - व्यासवाणी, रागमाला, नवरत्न, स्वधर्म पद्धति
4. चतुर्भुजदास -दाद्वशयश
5. ध्रुवदास इनके ग्रन्थों की संख्या 42 है। इनके ग्रन्थों के नाम के अन्त में लीला शब्द जुड़ा हुआ है, जैसे- सुखमंजरी लीला, रसानन्द लीला, प्रेम दशा लीला, मानलीला, दानलीला, नित्यविलास लीला आदि।
6. नेही नगरीदास ये राधा के अनन्य उपासक थे। इनके द्वारा रचित ग्रन्थों में 'राधाष्टक' प्रकाशित है।
7. कल्याणपुजारी इनके लगभग दो सौ मुक्तक उपलब्ध है। ये कवित्त, सवैया, दोहा, सोरठा आदि छन्दों में रचित है।
8. वृन्दावन दास इन्होंने दीर्घ समय तक काव्य रचना की। डॉ. विजयेन्द्र स्नातक के अनुसार इनकी 158 पुस्तकें उपलब्ध है। संख्या की बात की जाए तो ब्रजभाषा के भक्त कवियों को ये पीछे छोड़ जाते है। इनका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'लाड सागर' है। इनके अन्य ग्रन्थ इस प्रकार हैं- प्रेमानन्द सागर, जुगलस्नेह पत्रिका, आरती पत्रिका, श्री हरिवंश सहस्त्रनाम आदि।

मुख्य रूप से नित्यविहार दर्शन ही सहचरी का उपास्य भाव है जिसकी प्राप्ति केवल प्रेम से होती है। नित्यविहार के विधायक चार तत्त्व हैं -कृष्ण, राधा, सहचरी, वृन्दावन । राधा एवं कृष्ण नित्यविहारी है। प्रेम में 'तत्सुखी भाव' को स्थान देने की जैसी सफल चेष्टा इस सम्प्रदाय में लक्षित होती है, वैसी अन्यत्र कही नहीं होती। इस सम्प्रदाय में उपासना का आधार रस माना गया है। इस सम्प्रदाय के मन्दिरों में राधा का विग्रह कृष्ण से नहीं होता। श्रीकृष्ण की वाम भाग में वस्त्र निर्मित गद्दी होती है जिसके ऊपर स्वर्णपत्र पर श्री राधा शब्द अंकित रहता है। इस सम्प्रदाय का प्रमुख मन्दिर

वृन्दावन में है। इस सम्प्रदाय की एक अन्य विशेषता यह है कि इसमें संयोग-सुख की लीला ही स्वीकृत है, वियोग की भावना मान्य नहीं है।

डॉ. विजयेन्द्र स्नातक ने इस सम्प्रदाय के कुछ अन्य कवियों का भी उल्लेख किया है जो इस प्रकार हैं

1. वनचन्द्र गोस्वामी
2. कृष्णचन्द्र
3. रसिकलाल
4. सुखलाल
5. गुलाबलाल
6. जतनलाल
7. हितरूपलाल
8. चन्द्रलाल
9. रंगीलाल
10. मनोहरलाल

हरिदासी सम्प्रदाय(सखी सम्प्रदाय)

इस सम्प्रदाय को निम्बार्क सम्प्रदाय की ही शाखा माना जाता है।

प्रवर्तकःस्वामी हरिदास

इन्हें ललिता सखी का अवतार कहा जाता है।

इसका एक अन्य नाम सखी सम्प्रदाय भी है। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी हरिदास जी है। स्वामी हरिदास अपने समय के महान् संगीतज्ञ भी थे। इनके गुरु मरदाना थे जो गुरुनानक जी के साथ कीर्तन किया करते थे। हरिदास के शिष्य तानसेन थे जो संगीतज्ञ थे। तानसेन को दीपक राग में महारत हासिल थी।

इस सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का परिचय, 'निजमत सिद्धान्त' नामक ग्रन्थ में मिलता है जिसकी रचना किशोरदास ने की है। स्वामी हरिदास जी के उपास्य देव निकुंजबिहारी है। इनका एक अन्य ग्रन्थ 'केलिमाल' है। केलिमाल स्वामी जी की रसमयी रचना है। इसमें 110 पदों में श्री श्यामा कुंजबिहारी की लीलाओं के अनेक मृदु चित्र अंकित है।

इस सम्प्रदाय के प्रमुख कवि हैं।

जगन्नाथ गोस्वामी
श्रीठल विपुल
बिहारिनदास
नागरीदास
स्वामी हरीनाथ

स्वामी हरिदास जी के काव्य की शैली 'वार्तालाप शैली' है। जिसमें स्वाभाविकता व जीवन की सम्पूर्ण मिठास है।

एक उदाहरण -

भूले भूले हू मान न करि, री प्यारी!
तेरी भौंहे मैली देखन, प्रान न रहत तन!
ज्यौं न्यौछावर करौं प्यारी री तो पर!
काहे मैं तू मूकी, रहत स्यामघन!

चैतन्य सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय को गौडीय सम्प्रदाय भी कहा जाता है। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक चैतन्य महाप्रभु है। चैतन्य महाप्रभु का जन्मकाल 1486-1533 ई. माना जाता है। इनका जन्म बंगाल के नवद्वीप नामक स्थान पर हुआ। इनका बचपन का नाम विश्वम्भर था। 24 वर्ष की आयु में ही इन्होंने संन्यास की दीक्षा ग्रहण की। इनकी भक्ति भावना का आधार – प्रेम, ममता व भावुकता थे। इनका दार्शनिक सिद्धान्त अचिन्त्य भेदाभेद कहलाता है। इस सिद्धान्त की व्यापक प्रतिष्ठा बलदेव विद्याभूषण ने गोविन्द भाष्य में की। मुक्ति का मुख्य साधन भक्ति है। भक्ति के पाँच भेद हैं – शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर।

ईश्वर कृपा से ही मुक्ति सम्भव है। मुक्ति से ईश्वर समान आनन्द प्राप्त होता है, किन्तु ईश्वर से पृथकत्व बना रहता हैं। इस सम्प्रदाय के प्रमुख कवि निम्नलिखित हैं –

चैतन्य सम्प्रदाय के कवि

1. रामराय,
2. सूरदास
3. मदनमोहन
4. गदाधर भट्ट
5. चन्द्रगोपाल
6. भगवानदास
7. माधवदास माधुरी
8. भगवतमुदित आदि ।

- माधवदास माधुरी की रचनाएँ केलि माधुरी, वंशीवट माधुरी, वृन्दावन माधुरी
- भगवतमुदित की रचना वृन्दावन रात
- चन्द्रगोपाल की रचनाएँ श्री राधामाधव भाष्य, गायत्री भाष्य, श्री राधामाधवाष्टक, चन्द्र चौरासी, अष्टयाम सेवासुधा, गौरांग अष्टयाम, ऋतु विहार, राधाविरह।

कृष्णभक्ति काव्य धारा के प्रमुख कवि

1.सूरदास

- जन्मकाल – 1478 ई. (1535 वि.)
- जन्मस्थान - 1. डॉ. नगेन्द्र के अनुसार इनका जन्म दिल्ली के निकट 'सीही' नामक ग्राम में एक 'सारस्वत ब्राह्मण' परिवार में हुआ था।

1. आधुनिक शोधों के अनुसार इनका जन्मस्थान मथुरा के निकट 'रुनकता' नामक ग्राम माना गया है।

नोट :- परीक्षा में दोनों विकल्प एक साथ होने पर 'सीही' को ही सही उत्तर मानना चाहिए।

मृत्युकाल – 1583 ई. (1640 वि.) मृत्युस्थान – 'पारसोली' गाँव

गुरु का नाम – वल्लाभाचार्य

गुरु से भेंट (दीक्षा ग्रहण) - 1509-10 ई. में (पारसोली नामक गाँव में)

भक्ति पद्धति – ये प्रारम्भ में 'दास्य' एवं 'विनय' भाव पद्धति से लेखन कार्य करते थे, परन्तु बाद में गुरु वल्लभाचार्य की आज्ञा पर इन्होंने 'सख्य, वात्सल्य एवं माधुर्य' भाव पद्धति को अपनाया। (विनय और दास्य ट्रिक: विदा कर दिया)

काव्य भाषा - ब्रज

प्रमुख रचनाएँ -

1. सूरसागर

नोट :-

1. यह इनकी सर्वश्रेष्ठ कृति मानी जाती है।
2. इसका मुख्य उपजीव्य (आधार स्त्रोत) श्रीमद्भागवतपुराण के दशम स्कंध का 46 वाँ व 47 वाँ अध्याय माना जाता है।
3. इसका सर्वप्रथम प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा करवाया गया था।
4. भागवत पुराण की तरह इसका विभाजन भी बारह स्कंधों में किया गया है।
5. इसके दसवें स्कंध में सर्वाधिक पद रचे गये हैं।
6. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा हैं - "सूरसागर किसी चली आती हुई गीतकाव्य परंपरा का, चाहे वह मौखिक ही रही हो, पूर्ण विकास सा प्रतीत होता है।"

2. साहित्यलहरी -

1. यह इनका रीतिपरक काव्य माना जाता है।
2. इसमें दृष्टकूट (अर्थगोपन या रहस्यपूर्ण अर्थ शैली) पदों में राधा-कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया गया है।
3. अलंकार निरुपण दृष्टि से भी इस ग्रंथ का अत्यधिक महत्त्व माना जाता है।

3. सूरसारावली

नोट :- यह इनकी विवादित या अप्रामाणिक रचना मानी जाती है।

विशेष – डॉ. दीनदयालु गुप्त ने इनके द्वारा रचित पच्चीस पुस्तकों का उल्लेख किया है, जिनमें से निम्न सात पुस्तकों का प्रकाशन हो चुका हैं :

1. सूरसागर
2. साहित्य लहरी
3. सूरसारावली
4. सूररामायण
5. सूरसाठी
6. सूरपचीसी
7. राधारसकेली

विशेष तथ्य :

1. सूरदासजी को 'खंजननयन, भावाधिपति, वात्सल्य रस सम्राट्, जीवनोत्सव का कवि पुष्टिमार्ग का जहाज' आदि नामों (विशेषणों) से भी पुकारा जाता है।
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इनको 'वात्सल्य रस सम्राट्' एवं 'जीवनोत्सव का कवि' कहा है।
3. गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने इनकी मृत्यु के समय इनको 'पुष्टिमार्ग का जहाज' कहकर पुकारा था। इनकी मृत्यु पर उन्होंने लोगों को सम्बोधित करते हुए कहा था
   :"पुष्टिमार्ग को जहाज जात है सो जाको कछु लेना होय सो लेउ।"
4. हिन्दी साहित्य जगत् में 'भ्रमरगीत' परम्परा का समावेश सूरदास द्वारा ही किया हुआ माना जाता है।
5. 'सूरोच्छिष्ट जगत्सर्वम्' अर्थात् आचार्य शुक्ल के अनुसार इनके परवर्ती कवि सूरदासजी की जूठन का ही प्रयोग करते हैं, क्योंकि साहित्य जगत् में ऐसा कोई शब्द और विषय नहीं है, जो इनके काव्य में प्रयुक्त नहीं हुआ हो।
6. कुछ इतिहासकारों के अनुसार ये चंदबरदाई के वंशज कवि माने गये हैं।
7. आचार्य शुक्ल ने कहा है, "सूरदास की भक्ति पद्धति का मेरुदण्ड पुष्टिमार्ग ही है।' 8. सूरदास जी ने भक्ति पद्धति के ग्यारह रूपों का वर्णन किया है।
9. संस्कृत साहित्य में महाकवि 'माघ' की प्रशंसा में यह श्लोक पढ़ा जाता हैं –
   "उपमा कालिदासस्य, भारवेरर्थगौरवम् ।
   दण्डिनः पदलालित्यं, माघे सन्ति त्रयो गुणाः।।"
   इसी श्लोक के भाव को ग्रहण करके 'सूर' की स्तुति में भी किसी हिन्दी कवि ने यह पद लिखा हैं -
   "उत्तम पद कवि गंग के, कविता को बल वीर।
   केशव अर्थ गंभीर को, सूर तीन गुण धीर।।"
10. हिन्दी साहित्य जगत् में सूरदासजी सूर्य के समान, तुलसीदासजी चन्द्रमा के समान, केशवदासजी तारे के समान तथा अन्य सभी कवि जुगनुओं (खद्योत) के समान यहाँ-वहाँ प्रकाश फैलाने वाले माने जाते हैं। यथा -
    "सूर सूर तुलसी ससि, उडूगन केशवदास। और कवि खद्योत सम, जहँ तहँ करत प्रकास।।"

11. सूर के भावचित्रण में वात्सल्य भाव को श्रेष्ठ कहा जाता है। आचार्य शुक्ल ने लिखा है, "सूर अपनी आँखों से वात्सल्य का कोना-कोना छान आये हैं।"

2. कुंभनदास

जन्मकाल – 1468 ई. (1525 वि.) मृत्युकाल – 1583 ई. (1640 वि.)
जन्मस्थान – ग्राम-जमुनावती (गोवर्धन क्षेत्र, मथुरा)
गुरु का नाम – वल्लभाचार्य
गुरुदीक्षा – 1492 ई. में

प्रमुख रचनाएँ – इनकी कोई स्वतंत्र रचना प्राप्त नहीं होती है। इनके रचित पदों के निम्न दो संग्रह प्राप्त होते हैं -

1. कांकरोली विद्या प्रभाग से 'पद संग्रह' के नाम से संकलित हैं, जिसमें कुल 186 पद हैं
2. नाथद्वारा, पुस्तकालय में संकलित हैं, जिसमें कुल 367 पद हैं।

विशेष तथ्य –

1. ये अष्टछाप के कवियों में सबसे वरिष्ठ कवि माने जाते हैं।
   अष्टछाप में सबसे वरिष्ठ कवि -कुंभनदास
   अष्टछाप में सबसे कनिष्ठ कवि -नन्ददास
   ट्रिक: कुन -नन्ददास - कुंभनदास
2. ये वल्लभाचार्यजी के अष्टछापी शिष्यों में सर्वप्रथम शिष्य (1492 ई. में दीक्षा) माने जाते हैं।
3. ये अष्टछाप के कवियों में सूरदास के बाद दूसरे प्रमुख कवि माने जाते हैं।
4. ये कृष्ण भक्ति शाखा की दार्शनिक पीठिका तैयार करने वाले कवि माने जाते है। 5. सम्राट् अकबर इनके पदों पर अत्यधिक मुग्ध थे। अकबर के बुलावे पर एक बार इनको फतेहपुर सीकरी भी जाना पड़ा था, जहाँ इन्होंने एक अनासक्त भाव का पद सुनाया था। यथा - भक्तन को कहा सीकरी सों काम। आवत जात पन्हैया टूटी बिसरि गयो हरिनाम।। जाको देखे दुःख लागै ताकौ करन परी परनाम । कुम्भनदास लाल गिरिधन बिन यह सब झूठो धाम ।।

3. कृष्णदास

जन्मकाल – 1496 ई. (1553 वि.) जन्मस्थान – गाँव -चिलोतरा, अहमदाबाद (गुजरात)
मृत्युकाल – 1578 ई. (1635 वि.)
गुरु का नाम – वल्लाभाचार्य गुरु दीक्षा – 1510 ई. में

प्रमुख रचनाएँ -

1. जुगलमान चरित्र 2. भ्रमरगीत 3. प्रेम तत्त्व निरुपण

विशेष तथ्य -

1. ये अष्टछाप कवियों में सबसे कुशाग्रबुद्धि माने जाते हैं।
2. कुशाग्रबुद्धि होने के कारण वल्लभाचार्यजी द्वारा श्रीनाथजी मन्दिर में सेवा प्रबंध का सम्पूर्ण दायित्व इनको सौंपा गया था।
3. ये अष्टसखाओं में 'अधिकारी' के नाम से प्रसिद्ध थे।
4. किंवदन्तियों के अनुसार एक कुआँ बनवाते समय, उसी में गिर जाने से इनकी मृत्यु हुई थी।
5. इनकी मातृभाषा गुजराती थी, परन्तु इन्होंने अध्यवसायपूर्वक (मेहनत करके) ब्रजभाषा पर पूर्णाधिकार प्राप्त कर लिया था एवं अपने पदों में शुद्ध ब्रजभाषा के पदों का प्रयोग किया था।
6. इनके द्वारा रचित एक पद यहाँ द्रष्टव्य हैं -

"तरनि तनया तट आवत है प्रात समय,
कंदुक खेलत देख्यो आनंद को कँदवा।
नूपुर पद कुनित, पीतांबर कटि बाँधे,
लाल उपरना, सिर मोरन के चँदवा।।"

4. परमानन्ददास

जन्मकाल – 1493 ई. (1550 वि.) जन्मस्थान – कन्नौज राज्य, कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में
मृत्युकाल – 1572 ई. (1629 वि.)
रचनाएँ – इनकी कोई स्वतंत्र नामित प्राप्त नहीं होती है। इनके रचित पदों को 'परमानंदसागर' नाम से संकलित किया गया है, जिसमें कुल 835 पद हैं।

नोट :- इसके अतिरिक्त इनके कुछ पद 'परमानंद के पद' और 'वल्लभसंप्रदायी कीर्तन-पदसंग्रह' के नाम से भी संकलित किये गये हैं।

विशेष तथ्य -

1. ये सूरदासजी के बाद 'वात्सल्य रस' का प्रयोग करने वाले दूसरे अष्टछापी कवि माने जाते हैं।
2. इनके अधिकांश पद बाललीला विषयक हैं।
3. इन्होंने कृष्ण के माधुर्य पक्ष की लीलाओं का वर्णन अधिक किया है। अतः इनकी भक्ति पद्धति माधुर्य भाव की मानी जाती है।
4. इनके पदों में 'सूरसागर' की भाँति 'भागवत' की कथा का वर्णन नहीं है, अपितु इन्होंने कृष्ण के मथुरा-गमन से भंवरगीत तक के प्रसंग का ही मुख्यतः वर्णन किया है।
5. इन्होंने अक्षयतृतीया (परशुराम), दीपमालिका, रामजन्म नृसिंह, वामन आदि अवतारों से संबंधित पद भी रचे हैं।
6. काव्य सौष्ठव की दृष्टि से ये 'सूरदास' व 'नंददास' के बाद तीसरे प्रमुख अष्टछापी कवि माने जाते हैं।
7. इनके द्वारा रचित एक पद यहाँ द्रष्टव्य हैं :

"राधे जू हारावलि टूटी।
उरज कमलदास मालल मरगजी, बाम कपोल अलक लट छूटी।।
बर उर उरज करज बिच अंकित, बाहु जुगल बलयाबलि फूटी।
कंचुकि चीर विविध रंग रंजित, गिरधर अधर माधुरी चूंटी।।
आलस बलित नैन अनियारे, अरुन उनींदे रजनी खूटी।
परमानंद प्रभु सुरति समय रस मदन नृपति की सेना लूटी।।"

5. नंददास

जन्मकाल – 1533 ई. (1590 वि.) मृत्युकाल – 1583 ई. (1640 वि.)
जन्मस्थान – गाँव रामपुर, सोरों या सूकर क्षेत्र (उ.प्र., सनाढ्य ब्राह्मण)

प्रमुख रचनाएँ -

1. अनेकार्थ मंजरी
2. मान मंजरी
   (ये दोनों रचनाएँ पर्याय कोश ग्रंथ हैं। 'मानमंजरी' ग्रंथ नंददास के भाषा विषयक प्रौढ़ ज्ञान और पांडित्य का द्योतक माना जाता है।)
3. विरह मंजरी (यह बारहमासा शैली में रचित इनका भावात्मक काव्य माना जाता है।)
4. रूप मंजरी (यह इनका लघु आख्यानकाव्य माना जाता है। इनकी एक प्रेयसी का नाम भी 'रूपमंजरी' माना जाता है।

5. रसमंजरी
6. भंवरगीत (यह नंददास के परिपक्व दर्शन ज्ञान, विवेक बुद्धि, तार्किक शैली और कृष्ण भक्ति का परिचायक काव्य है। इसके पूर्वार्द्ध भाग में गोपी-उद्धव संवाद तथा उत्तरार्द्ध भाग में कृष्ण-प्रेम में गोपियों की विरह दशा का वर्णन है।

   इसके लेखन का मुख्य उद्देश्य निर्गुण-निराकार ब्रह्म की उपासना का खंडन करके सगुण साकार कृष्ण की भक्ति की स्थापना करना है।)
7. रास पंचाध्यायी (यह इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना मानी जाती है। इसमें वियुक्त आत्मा (गोपी) रासलीला के माध्यम से रस-रूप परमात्मा (कृष्ण) से मिलाने के लिए प्रयत्नशील हैं। यह 'रोला' छंद में लिखित रचना है। इस रचना में उपयुक्त शब्द चयन एवं उनके सुष्ठु प्रयोग के कारण इनको 'जडिया-कवि' की उपाधि प्रदान की जाती है। आचार्य शुक्ल ने लिखा हैं
8. सिद्धान्त पंचाध्यायी (यह कृष्ण की रासलीला से संबंधित रचना है। इसमें कृष्ण, वृदांवन, वेणु, गोपी, रास आदि शब्दों की आध्यात्मिक व्याख्या प्रस्तुत की गयी हैं।)
9. सुदामा चरित (इसका कथानक 'श्रीमद्भागवत' से गृहीत किया गया है। काव्यदृष्टि से यह साधारण रचना है।)

10. नन्ददास पदावली (इसमें नंददास द्वारा रचित पदों को बारह प्रकरणों में संकलित किया गया है। इसमें इनके काव्यसौष्ठव का उत्कर्ष देखा जा सकता है।)
11. रुक्मिणी मंगल
12. प्रेम-बारहखडी
13. श्याम सगाई
14. दशमस्कन्ध भागवंत
15. गोवर्धनलीला
16. अनेकार्थमाला (पर्यायकोश)

नोट :- आचार्य शुक्ल ने इनके द्वारा रचित निम्न दो गद्य रचनाओं का भी उल्लेख किया हैं :

1. हितोपदेश
2. नासिकेत पुराण भाषा

1. ये अष्टछाप के कवियों में सबसे कनिष्ठ कवि माने जाते हैं।
2. जनश्रुतियों के अनुसार ये गोस्वामी तुलसीदास के चचेरे भाई माने जाते है। इनके पिता 'जीवनराम' एवं तुलसीदास के पिता 'आत्माराम' सगे भाई थे।
3. इन्होंने बचपन में तुलसीदास के साथ ही श्री नृसिंह पंडित से संस्कृत भाषा का ज्ञान प्राप्त किया था।
4. नृसिंह पंडित रामानंदीय सम्प्रदाय के रामोपासक थे, अतएव प्रारम्भ में नंददास जी ने भी रामभक्ति को ही स्वीकार किया था।
5. ये किसी रूपवती खत्रानी स्त्री पर आसक्त होकर उसके पीछे-पीछे गोकुल चले गये थे, जहाँ गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के सदुपदेश से इनका मोह भंग हुआ और ये कृष्ण के अनन्य भक्त हो गये।
6. इतिहासकारों के अनुसार नंददास के भंवरगीत में वर्णित गोपियाँ से भी अधिक मुखर एवं वाचाल मानी जाती है।
7. इनके द्वारा रचित निम्न पद द्रष्टव्य हैं -

(i) "जो उनके गुन होय, वेद क्यों नेति बखानै।
निरगुन सगुन आत्मा रुचि ऊपर सुख सानै ।।
वेद पुराननि खोजि कै पायो कतहुँ न एक।
गुन ही के गुन होहि तुम, कहो अकासहि टेक।।" (भंवरगीत से)

(ii) "ताही छिन उडुराज उदित रस-रास-सहायक।
कुंकुम-मंडित-बदन प्रिया जनु नागरि नायक ।।
कोमल किरन अरुन मानों वन व्यापि रही यों।
मनसिज खेल्यौ फाग घुमडि धुरि रह्यो गुलाल ज्यों ।।"

6. चतुर्भुजदास

जन्मकाल – 1530 ई. (1857 वि.) जन्मस्थान – ग्राम जमुनावती, गोवर्धन क्षेत्र (उ.प्र.)
मृत्युकाल – 1585 ई. (1642 वि.)

प्रमुख रचनाएँ -

1. चतुर्भुज कीर्तन संग्रह
2. कीर्तनावली
3. दानलीला
4. द्वादशयश
5. भक्ति प्रताप
6. हित जू को मंगल
7. मधुमालती नोट :- 'द्वादशयश, भक्तिप्रताप एवं मधुमालती' रचनाओं को डॉ. नगेन्द्र अष्टछापी चतुर्भुजदास द्वारा रचित नहीं मानकर किसी अन्य राधावल्लभीय चतुर्भुजदास द्वारा रचित मानते हैं। जबकि शुक्ल ने इन रचनाओं को इन्हीं की रचना के रूप में स्वीकार किया है।

विशेष तथ्य -

1. ये कुंभनदासजी के सबसे छोटे पुत्र माने जाते हैं।
2. इन्होंने इन्हें स्वयं गानविद्या की शिक्षा देकर पुष्टिमार्ग की दीक्षा दिलायी थी।
3. इनके द्वारा रचित निम्न पद द्रष्टव्य हैं :

"जसोदा! कहा कहौं हौं बात?
तुम्हरे सुत के करतब मो पै कहत कहे नहिं जात।।
भाजन फोरि, ढारि सब गोरस, लै माखन दधि खात।
जौ बरजौं तौ आँखि दिखावै, रंचहु नाहिं सकात।।
और अटपटी कहँ लौ बरनौ, छुवत पानि सों गात।
दास चतुर्भुज गिरिधर गुन हौं कहति कहति सकुचात।।"

7. गोविन्द स्वामी

जन्मकाल – 1505 ई. (1562 वि.), जन्मस्थान -ग्राम – आंतरी, जिला –भरतपुर (राज.)
मृत्यु – 1585 ई. (1642 वि.)
प्रमुख रचनाएँ – इनकी कोई स्वतंत्र रचना प्राप्त नहीं होती है। इनके द्वारा रचित पदों का एक संकलन 'गोविंद स्वामी पद' नाम से प्राप्त होता हैं, जिसमें कुल 252 पद संकलित हैं।

विशेष तथ्य -

1. ये अष्टछाप के कवियों में सूरदास के बाद दूसरे बड़े संगीतज्ञ माने जाते हैं।
2. इन्होंने 1535 ई. में गोस्वामी विट्ठलनाथ से विधिवत पुष्टिमार्ग की दीक्षा ग्रहण की थी।
3. ये संसार से वैरागी होकर अपने जन्मस्थान आंतरी को छोड़कर ब्रजमंडल के 'महावन' क्षेत्र में आ बसे थे।

4. गुरु दीक्षा के बाद ये 'महावन' को छोडकर गोवर्धन चले आये। जहाँ ये रहने लगे, वहाँ इन्होंने कुछ कदंब के वृक्ष लगाये थे, जिसके कारण यह स्थान आज भी 'गोविंदस्वामी की कदंबखंडी' के नाम से जाना जाता है।
5. अकबरी दरबार के प्रसिद्ध गायक 'तानसेन' ने भी इनसे पद-गायन की शिक्षा ग्रहण की थी।
6. इनके द्वारा रचित निम्न पद द्रष्टव्य हैं -

"प्रात समय उठि जसुमति जननी गिरिधर सुत को उबटिन्हवावति।
करि सिंगार बसन भूषन सजि फूलन रचि रचि पाग बनावति।।
छुटे बंद बागे अति सोभित, बिच बिच चोव अरगजा लावति।
सूथन लाल पूँउना सोभित, आजु कि छवि कछु कहति न आवति।।
विविध कुसुम की माला उर धरि श्री कर मुरली बेंत गहावति।
लै दरपन देखे श्रीमुख को, गोविंद प्रभु चरननि सिर नावति।।"

7. ये राजस्थान से संबंधित एकमात्र अष्टछापी कवि माने जाते हैं।

8. छीतस्वामी

जन्मकाल – 1515 ई. (1572 वि.) मृत्युकाल – 1585 ई. (1642 वि.)
जन्मस्थान – मथुरा (उ.प्र.), चतुर्वेदी ब्राह्मण परिवार में गुरु विट्ठलनाथ से दीक्षा उपरांत ये 'पूंछनी' नामक स्थान पर रहने लग गये थे।
प्रमुख रचनाएँ – इनकी कोई स्वतंत्र रचना प्राप्त नहीं होती हैं। इनके द्वारा रचित पदों का एक संकलन 'पदावली' नाम से प्राप्त होता है। इसमें कुल 200 पद शामिल किये गये हैं।

विशेष तथ्य -

1. ये राजा बीरबल के पुरोहित माने जाते हैं।
2. अपनी यौवनावस्था में ये उद्दण्ड प्रकृति के कारण लडाई-झगड़े के लिए बदनाम थे और मथुरा में उद्दण्डी (बदमाश) 'छीतू चौबे' के नाम से प्रसिद्ध थे।
3. इन्होंने एकबार गोस्वामी विट्ठलनाथजी को एक छोटा रुपया व एक थोथा नारियल भेंट में देने को योजनाएँ बनायी थी, परन्तु विट्ठलनाथजी ने अपनी दिव्यशक्ति से उनको शुद्ध व परिपूर्ण बना दिया था।
4. विट्ठलनाथजी के इस चमत्कृत व्यक्तित्व से प्रभावित होकर ही इन्होंने पुष्टिमार्ग में दीक्षा ग्रहण की थी।
5. इनके पदों में शृंगार के अतिरिक्त ब्रजभूमि के प्रति प्रेमव्यंजना भी अच्छी पायी जाती है।

राम काव्यधारा पार्ट – 1

राम काव्य-धारा

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र का शील, शक्ति और सौन्दर्य से मण्डित अलौकिक व्यक्तित्व प्राचीनकाल से ही भारतीय जनमानस को अनेक रूपों में प्रभावित करता रहा है, वाल्मीकि की 'रामायण' को राम भक्ति का आदिग्रन्थ माना जाता है, संहिताओं, उपनिषद् तथा पुराणों में विविध रूपों में राम कथा कही गई है, बौद्ध

तथा जैन कवियों ने भी राम कथा को अपने-अपने धर्म के अनुसार प्रस्तुत किया है, बौद्ध ग्रन्थों में 'दशरथ जातक' तथा जैन ग्रन्थों में 'पउमचरिअ', 'रामचरिउ' तथा 'उत्तर पुराण' उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं,

राम कथा की भक्ति गंगा को जनमानस की भावभूमि पर लाने का श्रेय तुलसीदास को है, भक्तिकाल का राजनीतिक-सामाजिक वातावरण भी राम के मर्यादा पुरुषोत्तम लोकरक्षक रूप की अभिव्यक्ति के लिए सर्वथा अनुकूल था, डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में – "विदेशी शक्ति से आक्रान्त, सामाजिक दृष्टि से विषमता से पीडित, सिद्धों एवं तांत्रिकों के विविध मत-मतान्तरों से ग्रस्त निराश-त्रस्त हिन्दू जनता को राम के असुर संहारक, शरणागत-प्रतिपालक अलौकिक रूप ने मधुमय सम्बल प्रदान किया।"

विविध सम्प्रदाय -

1. रसिक सम्प्रदाय – राम भक्ति में रसिक भावना के समावेश का श्रेय स्वामी अग्रदास की जाता है, ये पयहारी कृष्णदास के शिष्य और 'भक्तमाल' के प्रसिद्ध लेखक नाभादास के गुरु थे, 'रसिक प्रकाश भक्तमाल' में जीवाराम ने अग्रदास की रसिक भाव की भक्ति का प्रचारक कहा है, अग्रदास 'अग्रअली' के नाम से लोकप्रिय थे इन्हें लोग जनकलली (जानकी) की प्रमुख सखी कहते थे, ये राम-जानकी की शृंगारिक रसपूर्ण लीलाओं में सदैव मग्न रहते थे, रास के लिए अग्रदास ने अनेक नाट्यमंडलियों की भी स्थापना की।

रसिक सम्प्रदाय के अन्तर्गत रामभक्ति में माधुर्य भावना का प्रवेश सर्वथा नवीन घटना नहीं थी, तुलसी से पूर्व भी राम-सीता की शृंगारिक लीलाओं का माधुर्यपूर्ण वर्णन अनेक रचनाओं में मिलता है, संस्कृत की 'आनन्द रामायण और 'रामलिंगामृत' रचनाओं में राम-सीता के सहवास का खुलकर वर्णन हुआ है, तमिल की 'कम्ब रामायण' में राम-सीता के प्रेम उद्गारों का वर्णन हुआ है।
अग्रदास के बाद उनके शिष्यों - जीवाराम, जंगी, प्रयाग-दास, विनोदी, पूरनदास आदि ने इस सम्प्रदाय की रामरसिक भावना का खूब प्रचार किया, किन्तु उसके बाद यह सम्प्रदाय अधिक नहीं चल सका।

स्वसुखी सम्प्रदाय - अयोध्या के रामचरणदास इस सम्प्रदाय के संस्थापक थे, इस सम्प्रदाय के राम भक्त नारी वेश धारण कर लाल साहब (रास) को प्रसन्न करने के लिए अनेक प्रकार की रसपूर्ण लीलाएं करते थे, रामचरणदास के अतिरिक्त जानकीचरण, बनारसीदास आदि इस सम्प्रदाय के अनुयायी थे।

तत्सुखी सम्प्रदाय - इस सम्प्रदाय की स्थापना जीवाराम ने की थी, जो रसिक सम्प्रदाय के भी अनुयायी थे, इन्हें 'युगल-प्रिया' कहा जाता था। वास्तव में उपर्युक्त तीनों सम्प्रदाय में रसिक सम्प्रदाय ही प्रमुख था, रसिक भावना को लेकर अलग-अलग रूपों में बने ये सम्प्रदाय अधिक समय तक नहीं चल पाए।

रामभक्ति शाखा के कवि और काव्य

रामानन्द

- जन्मकाल- 1368 ई. (1425 वि.)
- मृत्युकाल- 1468 ई. (1525 वि.)
- जन्म स्थान- प्रयाग (कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में) -

- दीक्षा गुरु का नाम- राघवानंद कांचीपूर्ण (ये रामानुजाचार्य की शिष्य परम्परा के चौथे गुरु माने जाते हैं)
- शिष्य- नाभादासजी ने अपनी 'भक्तमाल' रचना में रामानंद जीके निम्न बारह शिष्यों का उल्लेख किया है

1. अनंतानंद
2. सुखानंद
3. सुरसुरानंद
4. भावानंद -
5. नरहर्यानंद
6. कबीर
7. पीपा
8. सेन
9. धन्ना
10. रैदास
11. सुरसुरी
12. पद्मावती

प्रमुख रचनाएँ

1. रामरक्षास्तोत्र
2. रामतारक मंत्र
3. योग चिंतामणि
4. वैष्णवमताब्ज भास्कर (संस्कृत)
5. श्री रामार्चन पद्धति (संस्कृत)
6. श्रीराम आरती
7. श्री हनुमान आरती ।

विशेष तथ्य

1. इन्होंने 'रामावत संप्रदाय' की स्थापना की थी, जो आगे चलकर श्री रामानुजाचार्य द्वारा प्रवर्तित श्री सम्प्रदाय (विशिष्टाद्वैतवाद) में समाहित हो गया था।
2. इन्होंने 'दास्य भाव' पद्धतिको अपनाकर राम की उपासना की है।
3. इन्होंने कुल दस प्रकार की भक्ति पद्धतियों का विवेचन किया था, अतएव नाभादास जी ने इनको 'दशधा भक्ति का आगार' कहकर पुकारा हैं।
4. ये तीर्थयात्रा, मूर्तिपूजा एवं वेदादि के विरोधी माने जाते हैं।
5. जयपुर (राजस्थान) के निकट 'गलता' नामक स्थान पर रामानंद संप्रदाय की पीठ स्थापित है। इस पीठ की स्थापना 'कृष्णदास पयहारी' के द्वारा की गयी थी।

अग्रदास

तुलसीदास के पूर्व उल्लेखनीय राम भक्त कवि, ये रामानन्द की शिष्य परम्परा में थे, 'अग्रअली' के नाम से अग्रदास स्वयं को जानकीजी की सुखी मानकर काव्य रचना करते थे, रामभक्ति परम्परा में रसिक भावना के समावेश का श्रेय अग्रदास को जाता है। 'अष्टयाम', 'ध्यानमंजरी','राम-भजन मंजरी' तथा 'उपासना बावनी' इनकी प्रमुख रचनाएं हैं, अग्रदास ने ब्रजभाषा में काव्य रचना की।

ईश्वरदास

'अंगद पैज' और 'भरत मिलाप' ईश्वरदास की प्रमुख रचनाएं हैं, भरत मिलाप का प्रसंग अत्यन्त मार्मिक हैं, 'अंगद पैज' में रावण की सभा में अंगद के पैर जमाकर डट जाने का वीर रसपूर्ण चित्रण हुआ है।

नाभादास

ये तुलसीदास के समकालीन और अग्रदास के शिष्य थे 'अष्टयाम' उनकी प्रमुख रचना है, जो रसिक भावना से प्रेरित है।

केशवदास

केशवदास की 'रामचन्द्रिका' राम भक्ति परम्परा की विशिष्ट कृति है, किन्तु इसमें अलंकार प्रियता और शब्द चमत्कार की प्रधानता के कारण राम कथा के मार्मिक प्रसंगों की उपेक्षा हुई है, वाग्वैदग्ध्य के कारण केशव के संवाद अवश्य अत्यन्त नाटकीय और प्रवाहपूर्ण हैं, छन्दों की विविधता के कारण प्रबन्धात्मकता को काफी क्षति पहुँची है, इसी को लक्ष्य कर रामचन्द्र शुक्ल ने उन्हें 'कठिन काव्य का प्रेत' कहा है।

सेनापति

'कवित्तरत्नाकर' इनकी प्रसिद्ध रचना है, जिसमें चौथी-पाँचवीं तरंग (शीर्षक) में रामायण के विविध मधुर प्रसंगों का वर्णन हुआ है।

साकार (सगुण) भक्ति-धारा में 'राम-काव्य परम्परा' के अन्तर्गत मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के अलौकिक व्यक्तित्व को केन्द्र में रखकर दास्य भाव से आराधना करने वालों में लोकनायक एवं समन्वयवादी कवि के रूप में विख्यात गोस्वमी तुलसीदास का नाम सर्वोपरि है।

इनकी 12 रचनाओं को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी माना है। रामचरितमानस इनका विश्व प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसकी कथा सात काण्डों में विभक्त है। हिन्दी में राम-काव्य परम्परा का शुभारम्भ राघवानन्द से माना गया है, जो आचार्य रामानन्द के गुरु थे।

तुलसी के अतिरिक्त अग्रदास, ईश्वरदास, नाभादास, सेनापति, माधवदास, हृदयराम, लाल दास, प्राणचन्द चौहान आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इस धारा के इन कवियों की ध्यानमंजरी (अग्रदास), भरत मिलाप (ईश्वरदास), अष्टयाम (नाभादास), अध्यात्म रामायण (माधवदास), अवध विलास (लालदास), रामायण

महानाटक (प्राणचन्द) आदि रचनाएँ राम-काव्य परम्परा की उत्कृष्ट रचनाएँ हैं। 'केशव की रामचन्द्रिका' भक्तिकाल के अन्त और रीतिकाल के आरम्भ अर्थात् 'सन्धिकाल' में रामकाव्य-परम्परा की श्रेष्ठ रचना है।

राम-काव्य परम्परा की प्रमुख प्रवृतियाँ -

1. इस काव्य-परम्परा में राम के लोकरक्षा एवं मर्यादा पुरुषोत्तम रूप का चित्रण हुआ है तथा नवरसों का वर्णन हुआ है।
2. लोकमंगल एवं समन्यवादी प्रवृत्ति, वर्णाश्रम व्यवस्था का समर्थन
3. भक्ति में दास्य भाव
4. विशिष्ट अद्वैत की दार्शनिकता का समावेश
5. शृंगार के शिष्ट एवं मर्यादित रूप का प्रयोग, सनातन मूल्यों की पुनर्स्थापना 6. प्रकृति के विविध रूपों का मनोहारी चित्रण
7. ग्रन्थों में पात्रों का स्वाभाविक एवं आदर्श चित्रांकन 8. ब्रज तथा अवधी दोनों भाषाओं में रचनाएँ
9. प्रबन्ध, खण्ड एवं मुक्तक काव्य शैलियों में रचनाएँ
10. सम्पूर्ण मानव मात्र को धर्म और जीवन का सन्देश
11. इन राम काव्यों पर पूर्ववर्ती वाल्मीकि (रामायण), बौद्ध-ग्रन्थों (दशरथ जातक), जैन साहित्य (पउमचरिउ) आदि का प्रभाव भी पडा
12. ब्रज एवं अवधी के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रीय भाषाओं बंगला (कृतिवास की रामायण), तमिल (कम्ब की रामायण), तेलुगु (रंग रामायण), मराठी (स्वामी एकनाथ की भावार्थ रामायण), असमिया (पदरामायण), गुजराती (विष्णुदास की रामकथा) की रचनाएँ भी रामकाव्य परम्परा की अमूल्य निधियाँ हैं
13. तत्कालीन विदेशी शासन से त्रस्त जनता को इन राम भक्त कवियों की रचनाओं से मानसिक शान्ति प्राप्त हुई
14. अवधी और ब्रजभाषा में अभिव्यक्ति
15. अलंकारों और छन्दों का विविधतापूर्ण चुनाव ।

राम भक्ति काव्य धारा के अन्य कवि एवं उनकी रचनाएँ

क्र.सं. कवि का नाम

रचना का नाम

1. विष्णुदास

(i) वाल्मीकि रामायण का हिन्दी अनुवाद (ii) महाभारत कथा (iii) स्वर्गरोहण ग्रंथ

(रचनाकाल 1435 ई.) (iv) रुक्मिणी मंगल (v) स्नेह लीला (रचनाकाल 1435 ई.)

नोट :- वेदव्यास द्वारा विरचित महाभारत का हिन्दी अनुवाद 'गोकुलनाथ गोपीनाथ ने किया था।

2. अग्रदास (1556 ई.)

(i) ध्यानमंजरी (ii) रामभजनमंजरी (iii) रामाष्टयाम (iv) उपासना बावनी (v)

पदावली (vi) हितोपदेश भाषा या हितोपदेश उपाख्यान बावनी

नोट :- ये 'अग्रअली' के उपनाम से रचना करते थे एवं स्वयं को सीताजी की सखी के रूप में मानते थे। ये जाति से डोम थे।

3. ईश्वरदास (1480 ई.)
(i) भरत मिलाप (ii) अंगद पैज (iii) सत्यवती कथा (1501 ई.) (iv) स्वर्गारोहिणी कथा (v) एकादशी कथा

4. मुनि लावण्य
(i) रावण मन्दोदरी संवाद

5. ब्रह्म जिनदास
(i) रामचरित या रामरास (ii) हनुमन्तरास

6. ब्रह्मनारायण 'मल्ल'
(i) हनुमन्तगामी कथा

7. रामचरणदास
(i) रामचरित मानस टीका

8. प्राणचंद चौहान
(i) रामायण महानाटक (1610 ई.)

9. माधवदास चारण
(i) रामरासो (1618 ई.) (ii) अध्यात्म रामायण (1624 ई.)

10. हृदयराम
(i) हनुमन्नाटक या रामगीत (1566 ई.)

11. लालदास
(i) अवध विलास

नोट :- 1643 ई. में रचित इस रचना का विभाजन आठ विश्रामों में किया गया है। इसमें सीता व राम की लीलाओं का वर्णन है।

12. नरहरि वापट
(i) पौरुषेय रामायण

13. रायमल पांडे

(i) हनुमच्चरित्र

14. नाभादास
(i) भक्तमाल (1586 ई.) (ii) अष्टयाम (1603 ई.)

नोट :- इनका मूल नाम 'नारायण दास' था। 'भक्तमाल' में 200 कवियों का परिचय 316 छप्पयों में दिया गया है।

15. प्रियादास
(1) भक्तमाल टीका (1712 ई.)

16. बेनी माधवदास
(i) मूल गोसाई चरित

17. माधवदास जगन्नाथी
(i) रघुनाथ लीला

18. परशुरामदेव
(i) दशावतार चरित (ii) रघुनाथ चरित

19. चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित
(i) कैकेयी (महाकाव्य)

20. रामप्रियाशरण
(i) सीतायण (सीताराम प्रिया)

21. जानकी रसिक शरण
(i) अवधी सागर

22. कलानिधि
(i) शृंगाररस माधुरी (ii) वाल्मीकि रामायण (iii) रामायण सूचनिका (iv) वृत्त चन्द्रिका (v) नवसई (vi) समस्यापूर्ति (इनका मूल नाम श्रीकृष्ण था।) (i) शब्द (ii) ककहरा (iii) चौरासी रमैनी (iv) वसंत चौंतीसी (v) आदिमंगल (vi)

23. महाराज विश्वनाथ सिंह
आनंद रघुनंदन नाटक (vii) संगीत रघुनंदन (viii) आनंद रामायण (ix) रामचंद्र की सवारी (x) गीता रघुनंदन (x i) रामायण

24. जाखू मणियार
(i) हरिश्चन्द्र पुराण (1396 ई.)

25. गुरु गोविंद सिंह
(i) गोविंदरामायण

26. भगवंतराय खींची
(i) हनुमत्पच्चीसी (1760 ई.)

27. नवलसिंह
(i) रामचंद्रविलास (ii) आल्हारामायण (iii) अध्यात्मक रामायण (iv) रूपकरामायण (v) नामरामायण (vi) सीता स्वयंवर (vii) रामविवाह खंड (viii) रामायणसुमिरनी (ix) मिथिलाखंड

28. रसिकअली
(1) षड्ऋतु पदावली (ii) होरी (iii) अष्टयाम (iv) मिथिला विहार

29. कृपानिवास
(i) भावनापच्चीसी (ii) समय प्रबंध (अष्टयामलीला) (iii) माधुरीप्रकाश (iv) जानकीसहस्त्रनाम

30. मधुसूदन
(i) रामाश्वमेध (1782 ई.)

31.सुन्दरदास
हनुमान चरित

32.मुनि लावण्य
रावण-मन्दोदरी-संवाद

33.कपूरचन्द्र त्रिखा
रामायण

34.सेनापति
कवित्तरत्नाकर

35. मैथिलीशरण गुप्त
साकेत

36.केशवदास
रामचन्द्रिका

37. रामानन्द
हनुमान जी की आरती,रामरक्षा स्त्रोत

रामकथा पर आधारित जैन साहित्य

1.विमल सूरि
पउमचरिउ

2.भुवनतुंग सूरि
रामचरिउ,सियाचरियम

3.गुणभद्र
उत्तरपुराण

4.स्वंयभू
पउमचरिउ

5.पुष्पदन्त
महापुराण

तुलसीदास का सम्पूर्ण परिचय

- जन्म-मृत्यु – 1532-1623 ई.
- पिता – आत्माराम दूबे
- माता - हुलसी
- पत्नी – रत्नावली
- दीक्षा गुरु – नरहर्यानन्द
- शिक्षा गुरु - शेष सनातन

तुलसीदास के जन्म स्थान के विषय में मतभेद है, जो निम्न हैं –

- लाला सीताराम, गौरीशंकर द्विवेदी, हजारी प्रसाद द्विवेदी, रामनरेश त्रिपाठी, रामदत्त भारद्वाज, गणपतिचन्द्र गुप्त के अनुसार तुलसीदास का जन्म स्थान – सूकर खेत (सोरों) (जिला एटा)
- बेनीमाधव दास, महात्मा रघुवर दास, शिव सिंह सेंगर, रामगुलाम द्विवेदी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार ___तुलसीदास का जन्म स्थान – राजापुर (जिला बाँदा) > आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तुलसीदास को 'स्मार्त वैष्णव' मानते हैं।

- आचार्य शुक्ल के अनुसार 'हिन्दी काव्य की प्रौढ़ता के युग का आरम्भ' गोस्वामी तुलसीदास द्वारा हुआ।
- तुलसीदास के महत्त्व के सन्दर्भ में विद्वानों की कही गई उक्तियाँ निम्न हैं

विद्वान

प्रमुख कथन

नाभादास
कलिकाल का वाल्मीकि

स्मिथ
मुगलकाल का सबसे महान व्यक्ति

ग्रियर्सन
बुद्धदेव के बाद सबसे बडा लोक-नायक

मधुसूदन सरस्वती
आनन्दकानने कश्चिज्जङगमस्तुलसी तरुः ।
कवितामंजरी यस्य रामभ्रमर भूषिता।।

रामचन्द्र शुक्ल
"इनकी वाणी की पहुँच मनुष्य के सारे भावों व्यवहारों तक है।
एक ओर तो वह व्यक्तिगत साधना के मार्ग में विरागपूर्ण शुद्ध
भगवदभजन का उपदेश करती है दूसरी ओर लोक पक्ष में
आकर पारिवारिक और सामाजिक कर्तव्यों का सौन्दर्य
दिखाकर मुग्ध करती है।

रामचन्द्र शुक्ल
" यह एक कवि ही हिन्दी को प्रौढ़ साहित्यिक भाषा सिद्ध करने के लिए काफी है।

रामचन्द्र शुक्ल
तुलसीदासजी उत्तरी भारत की समग्र जनता के हृदय मन्दिर में पूर्ण प्रेम-प्रतिष्ठा के साथ विराज रहे हैं।

हजारीप्रसाद द्विवेदी
भारतवर्ष का लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय करने का अपार धैर्य लेकर आया हो।

रामविलास शर्मा

जातीय कवि

अमृतलाल नागर
मानस का हंस।

गोस्वमी तुलसीदास रामानुजाचार्य के 'श्री सम्प्रदाय' और विशिष्टाद्वैतवाद से प्रभावित थे। इनकी भक्ति भावना 'दास्य भाव' की थी।
गोस्वामी तुलसीदास की गुरु परम्परा का क्रम इस प्रकार हैं -
राघवानन्द – रामानन्द – अनन्तानन्द – नरहर्यानंद (नरहरिदास) – तुलसीदास

'रत्नावली' के निम्न कथन पर तुलसीदास ने वैराग्य धारण किया -
"लाज न लागत आपको दौरे आयहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को कहा कहौं मैं नाथ ।।
अस्थि चर्म मय देह मम तामे जैसी प्रीति।
तैसी जौ श्री राम महँ होति न तौ भवभीति ।।"
गोस्वामी तुलसीदास के स्नेही मित्रों में नवाब अब्दुर्रहीम खानखाना, महाराज मानसिंह, नाभादास, मधुसूदन सरस्वती और टोडरमल का नाम प्रसिद्ध है।

टोडरमल की मृत्यु पर तुलसीदास ने कई दोहे लिखे थे जो निम्न हैं

"चार गाँव को ठाकुरो मन को महामहीप।
तुलसी या कलिकाल में अथए टोडर दीप।।
रामधाम टोडर गए, तुलसी भए असोच ।
जियबी गीत पुनीत बिनु, यहै जानि संकोच ।।"

रहीमदास ने तुलसी के सन्दर्भ में निम्न दोहा लिखा है -

सरतिय, नरतिय, नागतिय, सब चाहति अस होय। - तुलसीदास
गोद लिए हुलसी फिरें, तुलसी सो सुत होय।। - रहीमदास

गोस्वामी तुलसीकृत 12 ग्रन्थों को ही प्रामाणिक माना जाता है। इसमें 5 बड़े और 7 छोटे हैं।
तुलसी की पाँच लघु कृतियों - "वैराग्य संदीपनी', 'रामलला नहछू', 'जानकी मंगल', 'पार्वती मंगल' और 'बरवै रामायण' को 'पंचरत्न' कहा जाता है।
कृष्णदत्त मिश्र ने अपनी पुस्तक 'गौतम चन्द्रिका' में तुलसीदास की रचनाओं के 'अष्टांगयोग' का उल्लेख किया है।

ये आठ अंग निम्न हैं –

(1) रामगीतावली, (2) पदावली, (3) कृष्ण गीतावली, (4) बरवै, (5) दोहावली, (6) सुगुनमाला, (7) कवितावली और (8) सोहिलोमंगल।

तुलसीदास की प्रथम रचना 'वैराग्य संदीपनी' तथा अन्तिम रचना 'कवितावली' को माना जाता है। 'कवितावली' के परिशिष्ट में 'हनुग्गनबाहुक' भी संलग्न है। किन्तु अधिकांश विद्वान 'रामलला नहछू' को प्रथम कृति मानते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय निम्न हैं –

अवधी भाषा में रचित -

1. 1574 ई. रामचरित मानस – (सात काण्ड)
2. 1586 ई. पार्वती मंगल 164 हरिगीतिका छन्द
3. 1586 ई. जानकी मंगल 216 छन्द
4. 1586 ई. रामलला नहछु – 20 सोहर छन्द
5. 1612 ई. बरवै रामायण 69 बरवै छन्द (सात काण्ड)
6. 1612 ई. रामाज्ञा प्रश्नावली - 49–49 दोहों के सात सर्ग (अवधी एवं ब्रज भाषा दोनों में रचित)

ब्रज भाषा में रचित -

1. 1578 ई. गीतावली – 330 छन्द – (सात काण्ड)
2. 1583 ई. दोहावली - 573 दोहे – (तुलसी रचित विभिन्न काव्य ग्रन्थों में से)
3. 1583 ई. विनय पत्रिका – 276 पद
4. 1589 ई. कृष्ण गीतावली - 61 पद
5. 1612 ई. कवितावली - 335 छन्द – (सात काण्ड)
6. 1612 ई. वैराग्य संदीपनी 62 छन्द

ट्रिक: जिन रचनाओं में राम व मंगल शब्द आते है वे अवधी में है शेष ब्रज भाषा में है।

- 'रामचरितमानस' की रचना संवत् 1631 में चैत्र शुक्ल रामनवमी (मंगलवार) को हुआ। इसकी रचना में कुल 2 वर्ष 7 महीने 26 दिन लगे।
- "रामाज्ञा प्रश्न' एक ज्योतिष ग्रन्थ है।
- "कृष्ण गीतावली' में गोस्वामीजी ने कृष्ण से सम्बन्धी पदों की रचना की तथा 'पार्वती मंगल' में पार्वती और शिव के विवाह का वर्णन किया।
- 'रामचरितमानस' और 'कवितावली' में गोस्वामी जी ने 'कलिकाल' का वर्णन किया है। > 'कवितावली' में बनारस (काशी) के तत्कालीन समय में फैले 'महामारी' का वर्णन 'उत्तराकाण्ड' में किया गया है।
- तुलसीदास ने अपने बाहु रोग से मुक्ति के लिए 'हनुमानबाहुक' की रचना की।
- "बरवै रामायण" की रचना रहीम के आग्रह पर की थी।
- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'रामचरितमानस' को 'लोकमंगल की साधनावस्था' का काव्य माना है।

- 'मानस' में सात काण्ड या सोपान हैं जो क्रमशः इस प्रकार हैं – (1) बालकाण्ड, (2) अयोध्याकाण्ड, (3) अरण्यकाण्ड, (4) किष्किन्धाकाण्ड, (5) सुन्दरकाण्ड, (6) लंकाकाण्ड, (7) उत्तरकाण्ड |
- 'अयोध्याकाण्ड' को 'रामचरितमानस' का हृदयस्थल कहा जाता है। इस काण्ड की "चित्रकूट सभा' को आचार्य ___रामचन्द्र शुक्ल ने 'एक आध्यात्मिक घटना' की संज्ञा प्रदान की।
- 'चित्रकूट सभा' में 'वेदनीति', 'लोकनीति' एवं 'राजनीति' तीनों का समन्वय दिखाई देता है।
- 'रामचरितमानस' की रचना गोस्वामीजी ने 'स्वान्तः सुखाय' के साथ-साथ 'लोकहित' एवं 'लोकमंगल' के लिए कियास है। 'रामचरितमानस' के मार्मिक स्थल निम्नलिखित हैं – (1) राम का अयोध्या त्याग और पथिक के रूप में वन गमन, (2) चित्रकूट में राम और भरत का मिलन, (3) शबरी का आतिथ्य, 4) लक्ष्मण को शक्ति लगने पर राम का विलाप, (5) भरत की प्रतीक्षा आदि।
- तुलसी ने 'रामचरितमानस' की कल्पना 'मानसरोवर' के रूपक के रूप में की है। जिसमें 7 काण्ड के रूप में सात सोपान तथा चार वक्ता के रूप में चार घाट हैं।
- तुलसीदास को 'लाला भगवानदीन और बच्चन सिंह' ने 'रूपकों का बादशाह' कहा है। > तुलसीदास को 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल' ने 'अनुप्रास का बादशाह' कहा है।
- तुलसीदास को 'डॉ. उदयभानु सिंह' ने 'उत्प्रेक्षाओं का बादशाह' कहा है।
- आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है, "तुलसी का सम्पूर्ण काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है।"
- 'रामचरितमानस' पर सर्वाधिक प्रभाव 'अध्यात्म रामायण' का पड़ा है।
- तुलसीदास ने सर्वप्रथम 'मानस' को रसखान को सुनाया था।
- 'रामचरितमानस' की प्रथम टीका अयोध्या के बाबा रामचरणदास ने लिखी।
- 'रामचरितमानस' के सन्दर्भ में रहीमदास ने लिखा है -

रामचरित मानस विमल, सन्तन जीवन प्रान।
हिन्दुवान को वेद सम, यवनहि प्रकट कुरान ।।

भिखारीदास ने तुलसी के सम्बन्ध में लिखा हैं -
तुलसी गंग दुवौ भए सुकविन के सरदार।
इनके काव्यन में मिली भाषा विविध प्रकार।।

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने इनके सम्बन्ध में लिखा हैं -
'कविता करके तुलसी न लसे, कविता पा लसी तुलसी की कला'
सूफी काव्य धारा पार्ट-1

हिन्दी सूफी काव्य धारा निर्गुण भक्ति काव्य की प्रमुख काव्य धारा हैं जिसे प्रेममार्गी शाखा, प्रेमकाव्य, प्रेमाख्यान काव्य, सूफी काव्य आदि विभिन्न नामों से जाना जाता है, स्पष्ट है कि इन सभी नामों में प्रेम तत्व की प्रधानता है जो सूफी काव्य की मूल प्रवृत्ति की ओर संकेत करता है, इस काव्य धारा में वर्णित प्रेम का विशिष्ट रूप है, वह शुद्ध स्वच्छन्दतावादी है।

सूफी काव्य की वैचारिक आधार सूफी दर्शन है, सूफी दर्शन को 'तसव्वुफ' कहा गया है, सूफी दर्शन इस्लाम के एकेश्वरवाद पर आधारित होते हुए भी किंचित भिन्न है, सूफी दर्शन के अनुसार जात (सत्ता), सिफत (गुण) और कर्म में परमात्मा अद्‌वितीय और निरपेक्ष है, परमात्मा परम सत्य होने के साथ ही परम कल्याणकारी और परम सौन्दर्यवान भी है, परमात्मा सूफियों के लिए परम प्रियतम है जिसको साधक शैतान (माया) द्‌वारा डाली गयी सभी कठिनाइयों को पार करता हुआ प्राप्त करता है, सूफी साधना का आरम्भ परमात्मा के प्रति सौन्दर्य-प्रेम से आकर्षित होकर होता है और प्रेम में ही उसकी परिणति होती है,

सूफियों ने भारतीय लोककथाओं पर आधारित लौकिक प्रेम कथाओं द्‌वारा अलौकिक प्रेम का आभास दिया है, जो सूफी साधना का मूल है, ये लौकिक प्रेम कथाएं कल्पित भी है और ऐतिहासिक भी सूफियों ने अपने काव्य में भारतीय कथानक रूढियों का भी प्रयोग किया है, इस प्रकार सूफी काव्य वैचारिक दृष्टि से सूफी दर्शन से प्रभावित होते हुए भी पूर्णरूप से भारतीय परम्परा का काव्य है, प्रेम कथाओं की प्रधानता होने के कारण इतिहासकारों ने इसे 'प्रेमाख्यानक काव्य' भी कहा है,

रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार – "हिन्दी सूफी काव्य, फारसी सूफी मसनबियों से प्रभावित होकर भी अपनी सम्पूर्ण बनावट में भारतीय है, काव्य के प्रारम्भ में ईश्वर-स्तुति, शाहे वक्त की प्रशंसा, गुरु वन्दना, आत्म-परिचय, एक ही छन्द का प्रयोग आदि मसनवी की विशेषता है"

डॉ. बच्चन सिंह के शब्दों में "हिन्दी सूफी कवियों की जमीन भारतीय है, हिन्दी सूफी कवियों ने अपने जनपद की भाषा, रीति-नीति, ऋतुवर्णन, छन्द, कथानक रूढ़ियों आदि को इस ढंग से अपनाया है कि उनके काव्य पूर्णतः भारतीय बन गए है।"

हिन्दी सूफी काव्य की प्रमुख विशेषताएं -

भाव व्यंजना और काव्य शिल्प की दृष्टि से हिन्दी सूफी काव्य की निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएं हैं -

1. प्रेम तत्व की प्रधानता
2. लौकिक प्रेम कथाओं का आधार
3. लौकिक प्रेम द्‌वारा अलौकिक प्रेम की व्यंजना
4. भारतीय लोक संस्कृति के पर्व, त्यौहार और लौकिक जीवन के अनेक क्रिया-कलापों का चित्रण
5. प्रकृति का विस्तृत वर्णन
6. सूफी दर्शन का प्रभाव
7. साधनात्मक व भावात्मक रहस्यवाद की अभिव्यक्ति
8. भारतीय कथानक रूढ़ियों का प्रयोग
9. नायिका के सौन्दर्य वर्णन में नखशिख वर्णन परम्परा का प्रयोग
10. प्रतीकों द्‌वारा दार्शनिक भावों की अभिव्यंजना
11. प्रबन्धात्मक काव्य रूप
12. इतिवृत्तात्मक काव्य शैली का प्रयोग

13. शृंगार रस के संयोग-वियोग पक्ष का विस्तार से अंकन
14. अवधी भाषा का प्रयोग
15. दोहा-चौपाई छन्द का प्रमुखतः प्रयोग
16. फारसी की मसनवी शैली का स्पष्ट प्रभाव।

सूफी काव्यधारा की प्रवृत्तियाँ -

- सूफी काव्यों में प्रबन्ध कल्पना होती है, सभी में पृथ्वी, देवी, अप्सराओं की अन्तर्कथाएँ हैं, जिनमें अतिमानवी वर्णन और अस्वाभाविकता है। प्रारंभ में मंगलाचरण, ईश्वर स्तुति, पैगम्बर नमस्कार, शंहशाह की प्रशस्ति, गुरु महिमा, वंश परिचय तथा रचनाकाल निर्देशन के अतिरिक्त चित्र दर्शन, स्वप्न दर्शन या शुक-शुकी द्वारा सौन्दर्य निरूपण, नायिका का विरह, पक्षियों द्वारा संदेश, प्रतिनायक द्वारा बाधाएँ, नायिका की मृत्यु या सती होने की घटना में मौलिकता का अभाव होता है। प्रबन्ध रूढ़ियाँ पाई जाती है।
- विरह वर्णन में बारहमासे वियोग के अतिरिक्त फारसी साहित्य का अतिरंजित वर्णन जिसमें रक्त के आँसू, माँस का सगबुगाना तथा हड्डियों का ढाँचा आदि आते हैं।
- संयोग वर्णन में अश्लीलता और मांसल कामशास्त्र जैसा वर्णन मिलता है।
- काल्पनिक पात्र अतिरंजित, रूढिबद्ध, आलौकिक हो गए है।
- हिन्दू प्रेम कहानियों में अन्धविश्वास, जादू-टोना, मनौतियाँ, उत्सव, त्योहार, धर्म-व्रत, पौराणिक कथाएँ, महापुरुषों के __ नाम की व्यापक झाँकियाँ हैं।
- शैतान साधक को भ्रष्ट करने का प्रयास करता है, गुरु कृपा से मुक्ति पाई जा सकती है।
- सूफी काव्यों ने खण्डन का पथ न अपनाकर सृजन का मार्ग अपनाया, हिन्दू-मुस्लिम की तात्विक एकता का प्रचार किया।
- शृंगार रस प्रधान काव्य प्रेमाश्रयी काव्य है।
- अधिकांश कवि मुसलमान हैं, जिन्होंने मसनवी शैली का प्रयोग किया (सर्ग बद्धता, उच्चकुलोत्पन्न नायक, महान् उद्देश्य की प्राप्ति, विविध छन्दों का प्रयोग, अध्यायों का गठन, सुखान्त फलागम आदि भारतीय महाकाव्यों के लक्षण नहीं मिलते) फिर भी कथा तारतम्य के कारण ये महाकाव्य है।
- अधिकांश सूफी काव्यों की भाषा अवधी है।
- प्रेमाख्यानों का नामकरण प्रायः नायिका के नाम पर हुआ है।
- कथानक रूढ़ियों का पालन किया गया है।
- दोहा-चौपाई शैली का प्रचुर प्रयोग हुआ है।
- सूफी मत के अनुसार ईश्वर एक है जिसका नाम 'हक' है, खुदा तक पहुँचने के लिए बन्दे को चार दशाएँ -
- शरीयत, तरीकत, हकीकत, मारिफत पार करनी पड़ती है। सत्यबोध एवं उपासना कहा जाता है।
- सूफीमत में बन्दे और ईश्वर के मिलन में बाधक माया की जगह शैतान को मानते है।
- सूफियों ने वेदान्तियों की तरह जीन को ही ब्रह्म माना है।
- सूफियों की साधना यही है कि वे 'अन-अल-हक्क' को स्वयं अनुभव कर सकें।

- सूफी काव्यधारा की अधिकांश रचनाएँ इतिहास और कल्पना के योग से सृजित हुई है।
- ये प्रेम गाथाएँ लौकिक से अलौकिक प्रेम की व्यंजना करती है।
- नायक सर्वदा सिद्धि का साधक एवं संघर्षशील होता है।
- सूफी दर्शन में अहिंसा पर जोर, जगत् ब्रह्म का प्रतिबिम्ब, सृष्टि की उत्पत्ति में आकाश को न मानकर चार ही तत्त्व माने हैं।
- सामान्यत: नायक को बहुपत्नीवादी दिखलाया है।

प्रसिद्ध प्रेमाख्यान रचनाएँ :

- मृगावती (1501ई.) – कुतुबन, अवधी (राजकुमार-मृगावती) को आचार्य शुक्ल ने प्रथम सूफी काव्य माना।
- सत्यवती कथा (1500 ई.) – ईश्वरदास, अवधी (ऋतु पर्ण -सत्यवती) को हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस परम्परा की प्रथम कृति उल्लिखित किया।
- चन्दायन (1379 ई.) – मुल्ला दाउद (लोर या लोरिक-चंदा) अवधी का प्रथम प्रबंध काव्य माना जाता है।
- हंसावली (1370 ई.) – (राजकुमार-हंसावली) 'असाइत' राजस्थानी हिन्दी की ओर विद्वानों का ध्यान नहीं गया- डॉ. नगेन्द्र।
- लेखमसेन पद्मावती कथा (1459 ई.) – दामोदर कवि (लक्ष्मणसेन-पद्मावती), राजस्थान भाषा, स्वयं कवि ने 'वीर-कथा' कहा।
- माधवानल–कामकन्दला (1527 ई.) – गणपति (माधव-कामकन्दला) भाषा राजस्थानी, परिचय से पूर्व कामदेव स्तुति
- पद्मावत (1540 ई.) – मलिक मुहम्मद जायसी
- मधुमालती (1545 ई.) – मंझन (मनोहर-मधुमालती) भाषा-अवधी, बहुपत्नीवाद का अपवाद ।
- ढोला मारू रा दूहा – कुशललाभ (ढोला-मारवणी) भाषा राजस्थानी (पुरानी)
- तू ही सज्जण मित्त तूं प्रीतम तूं परिवाण ।
- हियडई भीतर तूं बसई, भावई जांण न जाण ।।
- माधवानल कामकन्दला चौपाई (1556 ई.) – कुशललाभ या कल्लोल (माधव-कामकन्दला) भाषा राजस्थानी।
- रूपमंजरी (1568 ई.) - नन्ददास (कृष्ण-रूपमंजरी), नायिका विवाहित ब्रजभाषा।
- पुनि कवि अपने मन में गुने।
- मो कवित कोउ निरस न सुने।।
- प्रेम विलास प्रेमलता की कथा (1556 ई.) – जैन श्रावक जटमल (लाहौर) कथावस्तु मौलिक, आरम्भ 'जैनाय नमः' से (दोहा-चौपाई)
- छिताई वार्ता (1590 ई.) – नारायणदास (ढोल समुद्रगढ़ का राजकुमार-छिताई), राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा, दोहा चौपाई, अलाउद्दीन खिलजी द्वारा व्यवधान ।

- माधवानल कामकन्दला (1584 ई.) – आलम, अवधी चौपाइयों की 5-5 अर्धालियों के बीच दोहा या सोरठा
- चित्रावली (1613 ई.) – गाजीपुर निवासी 'उसमान', अवधी (सुजान-चित्रावली)। जाकी बुद्धि होइ अधिकाई, आन कथा एक कहै बनाई।।
- रसरतन (1618 ई.) – अकबर के दरबारी कवि दुर्गादास के प्रपोत्र 'पुहकर' (सोम-रम्भा) अवधी भाषा, दोहा-चौपाई।
- ज्ञानदीप (1619 ई.) – शेखनबी (ज्ञानदीप-देवयानी) अवधी दोहा-चौपाई, वेदमार्ग की प्रशंसा।
- हंस जवाहिर –कासिमशाह, अवधी।
- अनुराग बाँसुरी (1764 ई.) – नूर मुहम्मद, अवधी भाषा, अंतिम सूफी रचना।
- इन्द्रावती (1744 ई.) – नूर मुहम्मद, (राजकुंवर–इन्द्रावती)।
- जान कवि (1612 ई.-1664) – 78 काव्य ग्रंथों में से 29 प्रेमाख्यान काव्य माने जाते हैं। भाषा राजस्थानी प्रभावित ब्रजभाषा, छन्द योजना में दोहा-चौपाई के अतिरिक्त कवित्त सवैया का भी प्रयोग किया गया है।

कथा – रतनावती, कथा कनकावती, कथा कंवलावती, कथा मोहिनी, कथा नल दमयन्ती, कथा कलावन्ती, कथा रूपमंजरी, कथा कलन्दनी, पिजरषां साहिजादै वा देवलदे आदि जान कवि कृत प्रमुख प्रेमाख्यान हैं।

मलिक मुहम्मद जायसी

जन्म : 1492 ई. निधन : 1542 ई.

जन्मस्थान : जायस नगर (रायबरेली),उ.प्र.

गुरु : शेख मोहिदी

जायसी अमेठी नरेश रामसिंह के गुरु थे।

जायसी काने व कुरूप थे , एक बार शेरशाह सूरी इनके रूप को देखकर हँसा था।

जायसी की प्रमुख रचनाएँ:

पद्मावत

अखरावट

आखिरी कलाम

चित्ररेखा

कहरानामा

मसलानामा

पद्मावत :

- इसका रचना काल 1540 ई. माना जाता है। ।
- आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस रचना को हिन्दी साहित्य का प्रथम बडा महाकाव्य माना है।

- महाकाव्य श्रेणी की इस रचना का विभाजन 57 खण्डों में किया गया है।
- इसे सूफी काव्य परम्परा का प्रौढ़तम काव्य माना जाता है।
- विजयदेव नारायण साही ने 'पद्मावत' को हिन्दी में अपने ढंग की अकेली ट्रेजिक कृति कहा है। ।
- 'पद्मावत' का 'नागमती वियोग खण्ड' हिन्दी साहित्य की अनुपम निधि है।
- 'पद्मावत' को प्रतीकात्मक महाकाव्य कहा जाता है।
- जायसी कृत 'पदमावत' की भाषा ठेठ अवधी है।
- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जायसी के द्वारा रचित तीन ग्रंथों – (1) पद्मावत, (2) अखरावट तथा (3) आखिरी कलाम का ही उल्लेख किया है।
- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है, "कबीर ने केवल भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष सत्ता की एकता का आभास दिया था। प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखने की आवश्यकता बनी थी। प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखने की आवश्यकता बनी थी। यह जायसी द्वारा पूरी हुई।"
- इसमें चित्तौड के राजा रत्नसेन एवं सिंहलद्वीप (श्रीलंका) की राजकुमारी पदमावती के प्रेमविवाह एवं विवाहोत्तर जीवन का मार्मिक चित्रण किया गया है। * इसकी कथावस्तु को दो भागों में बाँटा जा सकता है -

1. पूर्वार्ध भाग – रत्नसेन-पद्मावती के विवाह तक की कथा।
2. उत्तरार्ध भाग - विवाहोत्तर जीवन की कथा

आलोचक पूर्वार्द्ध भाग को कल्पनाप्रसूत एवं उत्तरार्द्ध भाग को ऐतिहासिक मानते हैं। - डॉ. हरदेव बाहरी द्वारा रचित 'प्राकृत साहित्य का इतिहास' ग्रंथ के अनुसार इस रचना का मूल स्त्रोत प्राकृत में रचित 'रत्नशेखरकथा' को माना गया है।

'पद्मावत' के विभिन्न पात्र विभिन्न दार्शनिक तत्त्वों के भी प्रतीक हैं। इस दृष्टि से इसे 'रूपक काव्य' भी कहा जा सकता है।

प्रतीकार्थों का संकेत रचना के अंत में स्वयं कवि जायसी के द्वारा निम्नानुसार दिया गया हैं :

"तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल बुधि पदमिनी चीन्हा।
गुरु सुआ जेइ पंथ देखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा।।
नागमती यह दुनिया धंधा । बाँचा सोइ न एहि चित बंधा ।।
राघव दूत सोई सैतानू । माया अलाउदीं सुलतानू ।।" .

अर्थात् इसके पात्र एवं उनके प्रतीक निम्नानुसार हैं :

क्र.सं.	पात्र का नाम	प्रतीक
1.	चित्तौड़	तन (शरीर)
2.	सिंहलद्वीप	हृदय

3.	राजा रत्नसेन (नायक)	मन(योगी साधक)
4.	रानी पद्मावती (नायिका)	सात्विक बुद्धि
5.	रानी नागमति (सहनायिका)	सांसारिक बुद्धि
6.	हीरामन तोता	गुरु
7.	राघव चेतन	शैतान
8.	अलाउद्दीन खिलजी	माया

नोट :- आचार्य शुक्ल ने इस प्रतीक योजना में फेरबदल करके राजा रत्नसेन को 'आत्मा' का एवं पद्मावती को 'परमात्मा का प्रतीक माना है।

इस ग्रंथ में आरंभ में कवि ने मसनवी शैली की रुढ़ि के अनुसार 'शाहेवक्त' शेरशाह की प्रशंसा की है

"सेरशाह देहली सुलतानु। चारहु खंड तपै जस भानू।।
ओही छाज राज औ पाटू। सब राजा भुइँ धरा ललाटू।।"

इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह रचना 'शेरशाह सूरि के शासनकाल में रची गयी थी।

- आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस रचना को 'समासोक्ति' कहकर पुकारा है।
- आचार्य शुक्ल के अनुसार ही यह सर्वाधिक प्रौढ़ एवं सरस प्रेममार्गी काव्य माना जाता है।
- इसमें एक स्थान पर नागमती के बारह महीनों की वियोगदशा का वर्णन किया गया है, जिसे 'बारहमासा' कहा जाता है।

ग्रंथ के प्रारंभ में जायसी ने 'ईश्वरस्तुति' में लिखा है :
"सुमरौं आदि एक करतारु। जेहि जिउ दीन्ह कीन्ह संसारु।।"
- 'अखरावट' रचना के संबंध में -

1. इस रचना में वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर को लेकर सूफी मत के सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है।
2. चौपाई छंद का प्रयोग हुआ है।

'आखिरी कलाम' रचना के संबंध में -
1. इस रचना में रोजे कयामत (प्रलय) के दिन का वर्णन किया गया है।
2. यह रचना बाबर के शासनकाल में रचित मानी जाती है।

रचना

विषय

पद्मावत

नागमती, पदमावती और रत्नसेन की प्रेम कहानी है।

अखरावट

वर्णमाला के एक-एक अक्षर को लेकर सिद्धान्त सम्बन्धी तत्वों से भरी चौपाई है।

आखिरी कलाम

कयामत का वर्णन तथा मुगल बादशाह बाबर की प्रशंसा है

चित्ररेखा

लघु प्रेमाख्यानक

कहरानामा

आध्यात्मिक विवाह का वर्णन है। यह कहरवा शैली में लिखी है।

मसलानामा

ईश्वर भक्ति के प्रति प्रेम निवेदन है।

कन्हावत

रसखान

जन्म : 1548 ई. निधनः 1628 ई.(वास्तविक नाम- सैयद इब्राहिम)

डॉ. नगेन्द्र के अनुसार रसखान का जन्म 1533 ई. में हुआ। मुस्लिम कवियों में रसखान का श्रेष्ठ स्थान है।ये कृष्ण भक्त मुस्लिम कवि थे। इन्होनें वल्लभ सम्प्रदाय के गोस्वामी विट्ठलनाथ जी से दीक्षा ली थी। कृष्ण-भक्ति ने उन्हें ऐसा मुग्ध कर दिया कि गोस्वामी विट्ठलनाथ से दीक्षा ली और ब्रजभुमि में जा बसे। मूल गुसाई चरित के अनुसार तुलसीदास द्वारा रचित रामचरितमानस सबसे पहले रसखान को सुनाया था।

रसखान की काव्य भाषा शुद्ध, परिमार्जित एवं साहित्यिक ब्रज है। जिसमें माधुर्य एवं प्रसाद गुण है। रसखान किसी काव्य परम्परा में नहीं बँधे, उनकी भक्ति साम्प्रदायिक सिद्धान्त से आबद्ध नहीं है। उनका श्रृंगार चित्रण किसी 'रीति' विशेष में सीमीत नहीं है। इसलिए इन्हें स्वच्छन्द काव्यधारा का प्रर्वतक कहा जाता है।

- इनके बारे में भारतेन्दु ने कहा था कि " इन मुसलमान हरिजनन पै कोटिक हिन्दू वारिए"
- आचार्य शुक्ल के अनुसार, " प्रेम के ऐसे सुन्दर उद्गार इनके सवैयों मे निकले कि जनसाधारण प्रेम या शृंगार संबंधी कवित्त सवैयों को ही रसखान कहने लगे ,जैसे 'कोई रसखान सुनाओ।

"इनकी भाषा बहुत चलती,सरल,और शब्दाडंबरमुक्त होती थी। शुद्ध ब्रजभाषा का जो चलतापन और सफाई इनकी और घनानन्द की रचनाओं में है ,वह अन्यत्र दुर्लभ है।" - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

इनकी प्रमुख रचनाएँ

1.प्रेमवाटिका

2. दानलीला

3. सुजान-रसखान

4. अष्टयाम

- प्रेमवाटिका में राधा-कृष्ण को प्रेमोद्यान का मालिन माली मानकर प्रेम संबंधी गूढ़ विचार प्रकट किए है।
- रसखान ने अपनी रचनाओं में दोहा,कवित्त और सवैया छन्दों का प्रयोग अधिक किया है।
- इन्होनें अपनी रचना 'अष्टयाम' में श्री कृष्ण के प्रातः जागरण से लेकर रात्रि शयन पर्यन्त उनकी दिनचर्या का वर्णन किया है।
- 'सुजान –रसखान रचना कवित्त सवैया छन्द में है।

प्रमुख पंक्तियां

'या लकुटि अरू कामरिया पर
राज तिहूँ पुर का तजि डारौ।"
" मानुष हो तो वही रसखान बसौ
ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन"

मीराबाई

जन्म: 1498 ई.

निधनः 1564 ई.

जन्मस्थानः मेङता के कुङकी गाँव में

- चित्तौङगढ के राणा साँगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज से 1516 ई. में हुआ।
- दुःसयोंगवश विवाह के सात वर्ष बाद भोजराज का स्वर्गवास हो गया ।
- मीराँ की भक्ति दैन्य और माधुर्य भाव की है।
- किवदंति के अनुसार इन्होनें घरवालों से तंग आकर इन्होनें गोस्वामी तुलसीदास को यह पद लिखकर भेजा था

"स्वस्ति श्री तुलसी कुल भूषण दूषण हरन गोसाई,
बारहिं बार प्रनाम करहुँ, अब हरहु सोक समुदाई।।"

इस तुलसीदास ने 'विनयपत्रिका' का यह पद लिखकर मीराँ को भेजा था
"जाके प्रिय न राम बैदही,
सो नर तजिय कोटि बैरी सम जद्यपि जरम सनेही

मीराँबाई की काव्यभाषा राजस्थानी मिश्रित ब्रज है किन्तु उनके पदों में गुजराती और खडी बोली का भी प्रयोग भी मिलता है।

प्रमुख रचनाएं

1. मल्हार राग
2. राग सोरठा पद
3. राग गोविन्द
4. गीतगोविन्द टीका
5. नरसीजी का मायरा
6. नरसी मेहता की हूण्डी

रहीम

जन्म – 17 दिसम्बर, 1556 ई.(शुक्लानुसार 1553 ई.)

जन्म स्थान – लाहौर

निधन – सन् 1626 ई.

पिता – बैरम खाँ (अकबर के संरक्षक)

- रहीम का पूरा नाम अर्दुरहीम खानखाना था।
- रहीम अकबर के नवरत्नों में एक थे।

प्रमुख रचनाएँ -

1. खेट कौतुक जातकम
2. मदनाष्टक
3. नगरशोभा
4. बरवैनायिका भेद
5. रास पंचाध्यायी
6. दोहावली
7. शृंगार सोरठा
8. रहीम दोहावली/सतसई

- रहीम की रचनाएँ ब्रज, अवधी और खड़ी बोली में है।
- 'बरवै-नायिका भेद' यह रचना नायिका भेद संबंधी अवधी भाषा में रचित है।
- 'खेटकौतुक जातकम'
- फारसी मिश्रित संस्कृत भाषा में रचित यह एक ज्योतिष ग्रंथ है।
- सन् 1584 ई. में अकबर द्वारा इन्हें 'खान खाना' की उपाधि और 'पांचहजारी का मनसब' प्रदान किया गया।
- 'शृंगार सोरठा' रहीमकृत रस रचना में प्रेम सम्बन्धी छः सोरठे है।
- रहीम स्वभाव से दानवीर थे और दानशीलता में इनकी तुलना कर्ण से की जाती है।
- 'मदनाष्टक' खडी बोली में रचित ग्रन्थ है। इसमें श्रीकृष्ण की रासलीला का वर्णन है।

- रहीम ने स्वयं को 'रहिमन' कहकर सम्बोधित किया है।
- 'नगरशोभा' रचना में किसी नगर में रहने वाली विभिन्न जाति की स्त्रियों की सुंदरता का वर्णन दोहा छन्द में किया गया है।
- बरवै छन्द के जन्मदाता रहीम को कहा जाता है।
- अकबर ने रहीम से प्रभावित होकर शहजादों को प्रदान की जाने वाली उपाधि 'मिर्जा खां' रहीम को प्रदान की।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार -

"भाषा का तुलसी का सा ही अधिकार हम रहीम का भी पाते है। ये ब्रज और अवधी पश्चिमी और पूर्वी दोनों काव्यभाषाओं में समान कुशल थे।"

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार -

"अपने उदार और ऊँचे हृदय को संसार के वास्तविक व्यवहारों के बीच रखकर जो संवदेना इन्होंने प्राप्त की थी, उसी की व्यंजना अपने दोहे में की है।"

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार -

"रहीम के दोहे वृंद और गिरधर के पद्यों के समान कोरी नीति के पद्य नहीं है। उनमें मार्मिकता है, उनके भीतर से एक सच्चा हृदय झाँक रहा है। जीवन की सच्ची परिस्थितियों के मार्मिक रूप को ग्रहण करने की क्षमता जिस कवि में होगी, वही जनता का प्यारा कवि होगा।"

'गोस्वामी तुलसीदास से भी इनका बडा स्नेह था। ऐसी जनश्रुति है कि एक बार ब्राह्मण अपनी कन्या के विवाह के लिये धन न होने से घबराया हुआ गोस्वामीजी के पास आया। गोस्वामीजी ने उसे रहीम के पास भेजा और दोहे की यह पंक्ति लिखकर दे दी -

"सुरतिय नरतिय नागतिय, यह चाहत सब कोय"

रहीम ने उस ब्राह्मण को बहुत सा द्रव्य देकर विदा किया और दोहे की दूसरी पंक्ति इस प्रकार पूरी करके दे दी -

"गोद लिए हुलसी फिरै, तुलसी सो सुत होय"

भक्तिकाल की प्रमुख पंक्तियाँ

संत कबीर

- झिलमिल झागरा झूलत बाकी रही न काहु।
- गोरख अटके कालपुर कौन कहावै साहु।। -
- तंत्र न जानूँ, मंत्र न जानें, जानूँ सुन्दर काया।
- "दसरथ सुत तिहुँ लोक बखाना रामनाम का मरम है आना।।
- माधो मैं ऐसा अपराधी तेरी भगति होत नहीं साधी।
- नैया बिच नदिया डूबति जाय ।
- मोको कहाँ ढूढ़े बंदे मैं तो तेरे पास में।।

- मसि कागज छुयौ नहीं, कलम गह्यौ नहि हाथ ।।
- हरि मोरा पिउ मैं हरि की बहुरिया।
- दुलहिन गावहु मंगलचारण हमरे घर आये राजा राम भरतार
- संतों भाई आयी ज्ञान की आँधी रे।
- निस दिन खेलत रही सखियन संग, मोहि बडा डर लागे
- जाति न पूछो साधु की, पूछि लीजिए ज्ञान
- मोरी चुनरी में परि गयो दाग पिया
- भीजे चुनरिया प्रेम रस बूंदन
- तोको पीव मिलेंगे चूंघट के पट खोल रे।
- पूजा-सेवा-नेम-व्रत, गुडियन का-सा खेल।

गुरु नानक देव

- जो नर दुख में दुख नहिं मानै
- सुख स्नेह अरू भय नहिं जाके, कंचन माटी जानै ।
- इस दम दा मैनू कीबे भरोसा, आया न आया न आया।

सुन्दरदास

- है यह अति गंभीर उठति लहरि आनंद की
- मिष्ठ सु याकौ नीर, सकल पदारथ मध्य है।
- ब्रज ते पुरुष अरु प्रकृति प्रकट भई,
- प्रकृति में महत्तत्व, पुनि अहंकार है।

रामभक्ति शाखा

रामानंद :

- आरती कीजै हनुमान लला की। दुष्टदलन रघुनाथ कला की।
- जय हनुमान ज्ञान गुन सागर । जय कपीस तिहु लोक उजागर।।

तुलसीदास :

- एक भरोसे एक बल एक आस विस्वास
- एक राम धन श्याम हित चातक तुलसीदास
- का भाखा का संस्कृत प्रेम चाहिए साँचु ।
- का जुआवै कामारी का लै करै कमाचु ।।
- बिनु पद चलै सुनै बिनु काना
- कर बिनु करम करै बिधि नाना
- सुरतिय नरतिय नागतिय सब चाहति अस होय।

- पराधीन सपनेहु सुख नाहि।
- परहित सरिस धर्म नहि भाई। पर पीडा सम नहिं अधमाई।
- बिनु सतसंग विवेक न होई।
- कवित्त विवेक एक नहिं मोरै। सत्य कहहुँ लिखि भवसम्भव खेदा।
- छन्द सोरठा सुन्दर दोहा। सोई बहुरंग कमल कुल सोहा।
- गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोगु।
- धूत कहो अवधूत कहौ, राजपूत कहो जुलहा कहौ कोऊ।
- खेती न किसान को भिखारी को न भीख भली।
- अवधेस के द्वारे सकारे गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसै
- अब लौ नसानी अब न नसैहौ
- राम कृपा भव निसा सिरानी, जागे फिरि न डसैहौ।
- केसव! कहि न जाइ का कहिये।
- जाके प्रिय न राम बैदेही
- तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही।
- कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहैं हित होई ।।
- अगुन सगुन दुई ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा।।
- भगति ग्यानहि नहि कछु भेदा। उभय हरहि भव संभव खेदा।
- ढोल गंवार सूद्र पसु नारी। सकल ताडना के अधिकारी
- बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेदपथ लोग। चलहि सदा पावहिं सुखनहि भय सोक न रोग।

सेनापति :

- वृष को तरनि तेज सहसौ करनि तपै
- ज्वालनि के जाल विकराल बरसत है।
- सेनापति सोई, सीतापति के प्रसाद जाकी,
- सब कवि कान दै सुनत कविताई है।

सूरदास :

- है हरि भजन को परमान | नीच पावै ऊँच पढ़वी, बाजते नीसान।
- शोभित कर नवनीत लिए घुटरून चलत रेनु तन मंडित मुख दधि लेप किए।
- सिखवत चलन जसोदा मैया
- अरबराय कर पानि गहावति, डगमगय धरै पैयौ।
- निर्गुन कौन देस को बासी ? मधुकर हँसि समुझाय सौह दै
- बूझति साँच, न हाँसी बूझत स्याम कौन तू गौरी कहाँ रहति, काकी है बेटी, देखी नहीं कहूँ ब्रज खोरी
- रूपरेख-गुन जाति-जुगति-बिनु निरालंब कित धावै। सब विधि अगम विचारहि तातै सूर-सगुन पद गावै
- लरिकाई कौ प्रेम कहौ अलि कैसे करि के छूटत

- हरि है राजनीति पढ़ि आए समुझी बात कहत मधुकर जो ? समाचार कछु पाए ?
- हम भक्तन के भक्त हमारे
- सुन अर्जुन परतिज्ञा मेरी यह व्रत टरत न टारे।।
- मैया कबहि बढेगी चोटी ?
- किती बार मोहि दूध पियत भई अजहु है यह छोटी।
- प्रभु हौं ! सब पतितन को टीको
- नंद ! ब्रज लीजै ठोंकि बजाय
- मधुबन ! तुम कत रहत हरे ?
- आयो घोष बडो व्यापारी।
- गोकुल सबै गोपाल उपासी
- हमारे हरि हारिल की लकरी
- चरण-कमल बन्दौ हरिराई।

परमानंददास :-

- जब से प्रीति श्याम ते कीनी
- ता दिन ते मेरे इन नैनहि नेकह नींद न लीनी
- कहा करौ बैंकुठहि जाय
- जहँ नहि, नंद, जहँ न जसोदा नहि जहँ गोपी ग्वाल न गाय |

हितहरिवंश :-

- विपिन धन कुंज रति केलि भुज केलि रूचि।
- स्याम स्यामा मिले सरद की जामिनी।।

रसखान :-

- मानुष हो तो वही रसखान बसा संग गोकुल गाँव के ग्वारन |
- या लकुटी अरू कमरिया पर राज तिनू पुर को तजि डारौं ।
- मोर पखा सिर ऊपर राखिहौं, गुंज की माल गले पहिरौंगी
- सेस महेस गनेस दिनेस सुरेसहु जाहिं निरंतर गावैं।
- ताहि अहीर की छोहरियां भर छाछ पै नाच नचावै।

संत नामदेव -

- मन मेरी सुई, तन मेरा धागा। खेचरजी के चरण पद नामा सिपी लागा।।
- सुफल जन्म मोको गुरु कीना। दुःख बिसार सुख अन्तर कीना।
- दसरथनंद राजा रामचन्द्र । प्रणवै नामातत्त्व रस अमृत पीजै।
- माई न होती, बाप न होते, कर्म न होता काया।

- हम नहि होते, तुम नहि होते, कौन कहाँ ते आया।
- हिन्दू पूजै देहरा, मुसलमान मसीद |
- नामा सेविया जहँ देहरा न मसीद ।।

रैदास -

- प्रभुजी तुम चंदन हम पानी, जाकी अंग अंग वास समानी
- जब हम होते तब तुम नाही, अब तू है मैं नाही
- -जाति ओछा पाती ओछा, ओछा जनमु हमारा
- थावर जंगम कीट पतंगा पूरि रह्यो हरिराई।

दादू दयाल :

- भाई रे ! ऐसा पंथ हमारा है परव रहित पंथ गह पूरा अवरन एक अधारा।
- अपना मस्तक काटिकै वीर हुआ कबीर।
- असत मिलइ अतर पंडइ, भाव भगति रस जाई। साथ मिलइ सुख ऊपजई, आनंद अंग नवाई ।।
- निर्गुण ब्रह्म का कियो समाधु
- तब ही चले कबीरा साधु ।

सूफी काव्य

मंझन

- देखत ही पहिचानेउ तोहीं। एही रूप जेहि छंदर्यो मोही।
- एही रूप बुत अहै छपाना। एही रूप रब सृष्टि समाना।।

मलिक मुहम्मद जायसी

- विक्रम धंसा प्रेम के बारा। सपनावती कह गयउ पतारा।।
- तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंहल बुद्धि पद्मिनी चीन्हा।।
- मानुस प्रेम भयउ बैकुंठी। नाहित काह छार भई भूठी।
- छार उठाय लीन्ह एक मूंठी। दीन्ह उडाइ पिरिथिमी झूठी।
- पिउ सो कहहु सदेसडा हे भौंरा हे काम ।
- सो धनि विरहे जरि मुई तेहिक धुंआ हम लागा।
- फिर फिर रोइ कोइ नहीं बोला। आधी रात विहंगम बोला।।
- भयउँ विरह जलि कोइलि कारी। डार डार जो कूकि पुकारी।।
- प्रेम पहार कठिन विधि गढ़ा। सो पे चढ़ि जो सीस सौ चढ़ा।
- पंथ सूरि कर उठा अंकूरू | चोर चढ़े की चढ़ मसूरू ।।

अग्रदास :

- कुण्डललित कपोल जुगल अस परस सुदेसा।।

केशवदास :

- जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवृत्त ।
- भूषण बिनु न बिराजई, कविता बनिता मित्त ।।
- मातु। कहाँ नृपतात ? गए सुरलोकहि, क्यों ? सुतलोक किए।
- राम को काम कहाँ रिपु जीतहि, कौन कवै रिपु जीत्यों कहा ?
- देखे मुख भावै, अनदेखेई कमल चंद।।
- ताते मुख-मुखै, सखी कमलौ न चंद री।।

कृष्ण भक्ति काव्य पंक्तियाँ

श्रीभट्ट :

- ब्रजभूमि मोहनी मैं जानी
- मोहनकुंज, मोहन वृन्दावन, मोहन जमुना पानी
- -बसौ मेरे नैननि मैं दोउ चंद गोरे बदनि वृषभानु, नंदिनी, स्याम बरन नंद नंद।।

गदाधर भट्ट :

- झूलति नागरि नागर लाल
- मंद मंद सब सखी झुलावति, गावति गीत रसाल ।

मीराँबाई :

- बसो मेरे नैनन में नंदलाल।
- घायल की गति घायल जाने और न जानै कोई
- जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोइ
- जोगी, मत जा, मत जा पाइ परूं चेरी तेरी हौ।
- म्हांने चाकर राखोजी।
- चाकर रहतूं बाग लगातूं नित उठ दरसन पाँसू ।

अन्य भक्तिकालीन प्रमुख पंक्तियाँ -

1. अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम
   दास मलूका कह गए सबके दाता राम
   - मलूकदास
2. प्रभु जी तुम चन्दन हम पानी
   - रैदास
3. कबीर कानि राखि नहीं वर्णाश्रम षटदर्शनी

4. निर्गुण ब्रह्म को कियो समाधु
तब ही चले कबीरा साधु

- दादू

5. अपना मस्तक काटि के वीर हुआ कबीर

- दादू

6. कब घर बैठे रहै, नाहि न हाट बाजार
मधुमालती, मृगावती पोथी दोउ उचार

- बनारसीदास

7. विक्रम धंसा प्रेम के बारा । सपनावती कहं गयउ पतारा - मंझन

8. रुकमिनी पुनि वैसहि मरि गई। कुलवंति सत सों सति भई – कुतुबन

9. बलदीप देखा अंगरेजा। वहां जाइ जेहि कठिन करेजा - उसमान

10. जानत है वह सिरजन हारा। जो किछु है मन मरम हमारा – नूर मुहम्मद

11. सन्तन को कहा सीकरी सो काम

- कुम्भनदास

12. स्वस्ति श्री तुलसी कुलभूषण दूषन हरन गोसाईं
बारहिं बार प्रनाम करहुं, अब हरहु सोक समुदाई

- मीराबाई

13. या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहुं पुर को तजि डारौ – रसखान

14. जब ते प्रीति श्याम ते कीनी
ता दिन तै मेरे इन नैननि नेकहु नींद न लीनी

- परमानन्द

15. जो नर दुख में दुख नहि मानै

- नानक

16. बोलिए तौ तब जब बोलिये की बुद्धि होय
ना तौ मुख मौन गहि चुप होय रहिए

- सुन्दर दास

17. आरती कीजै हनुमान लला की। दुष्टदलन रघुनाथ लला की – रामानन्द

18. कलि कुटिल जीव निस्तारहिन बाल्मीकि तुलसी भयो - नाभादास

19. मन रे परसि हरि के चरन

- मीराबाई

20. मोर पखा सिर ऊपर राखिहौं, गुंज की माल गले पहिरौंगी - रसखान

21. तुलसी गंग दुवौ भए सुकविन के सरदार

- भिखारीदास

22. जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवृत्त
भूषण बिनु न बिराजई कविता बनिता मित्त

- केशवदास

23. देखे मुख भावै, अन देखेई कमल चंद
ताते मुख मुखै सखी कमलौ न चंद री

- केशव

24. बासर की सम्पत्ति उलुक ज्यों न चितवत

- केशव

25. केशव केसनि असकरी बैरिहु जस न कराहिं
चन्द्रबदनि मृगलोचनी 'बाबा' कहि कहि जाहिं।

- केशव

26. अरुणगात अति प्रात पदिमनी प्राननाथ भय

- केशव

27. उत्तम जाति है ब्राह्मनी, देखत चित्त लुभाय

- रहीम

28. यह सिर नवै न राम कू, नाहीं गिरियो टूट - चरनदास
आन देव नहिं परसये यह तन जायो छूट

29. मो सम कौन कुटिल खल कामी - सूरदास

30. माधव हम परिनाम निरासा - विद्यापति

31. पुष्टिमार्ग को जहाज जात है

- विटठल दास

32. गोद लिए हुलसी फिरै तुलसी सो सुत होय

- रहीम

33. दुलहिन गावहु मंगलाचार, हम घर आए हो राजा राम भरतार - कबीर

34. कलि कुटिल जीव निस्तार हित बाल्मीकि तुलसी भयो - नाभादास

35. लोटा तुलसी दास को, लाख टका को मोल - होलराय

36. कहे बिनु रहयो न परत, कहे राम! रस न परत - तुलसी

37. भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो

- सूरदास

38. सूर कवित्त सुनि कौन कवि जो नहिं सिर चालन करै - नाभादास

39. अनुखन माधव माधव सुमिरत सुंदर भेलि मधाई - विद्यापति

40. मो मन गिरिधर छवि पै अटक्यौ - कृष्णदास

41. कहा करौ बैकुंठहि जाय

- परमानंददास

हिंदी

बहु विकल्पीय प्रश्न

बहु विकल्पीय प्रश्न

टेस्ट - 1 (आदिकाल पार्ट - 1)

1. प्राकृतप्रथमकेनामसेकौनसीभाषाजानीजातीहै?

क) प्राकृत ख) पालि

ग) अपभ्रंश घ) संस्कृत

2. पश्चिमी हिंदी का विकास किस अपभ्रंश से हुआ है?

क) शौरसेनी ख) गुरजरा अपभ्रंश

ग) मागधी घ) अर्द्मागधी

3. पूर्वी हिंदी की बोली कौन नहीं सी है?

क)अवधी ख) बघेली

ग) छत्तीसगढ़ी घ) बांगरू

4) मेरठ दिल्ली सहारनपुर आदि क्षेत्रों में बोली जाने वाली व बोली कौन सी है जो कोरवी के नाम से जानी जाती है?

क)अवधी ख)ब्रज

ग) खड़ी बोली घ) कन्नौजी

5. पूर्वी हिंदी का विकास निमन में से किस अपभ्रंश की देन है?

क) मागधी ख) अर्धमागधी

ग) महाराष्ट्र घ) गुरजरा

6. हिंदी भाषा का प्रारंभ कब माना जाता है?

क) 1000 ई. से ख) ईसा की छठी सताब्दी uपूर्व

ग) वैदिक युग से घ) हड़प्पा काल से

7. भोजपुरी का विकास किस अपभ्रंश से हुआ है?

क) शौरसेनी ख)मागधी

ग) अर्द्मागधी घ) ब्राचड.

8. हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा सूत्रपात किसने कराया?

क) रामचंद्र शुक्ल ख) जार्ज ग्रियर्सन

ग) गार्सा-द-तासी घ) तेसीटॉरी

9. निम्न में से कौन सा सुमेलित नहीं है-

क) राजस्थानी भाषा और साहित्य- मोतीलाल मेनारिया

ख) हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास- डॉ गणपति चंद्रगुप्त

ग) हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास- सर जॉर्ज ग्रियर्सन

घ) शिवसिंह सरोज- शिवसिंह सेंगर

10. इनमें से सत्य कथन कौन सा है?

क) शुक्ल जी का इतिहास ग्रंथ सन 1929 ई. में प्रकाशित हुआ

ख) गार्सा-द-तासी हिंदी साहित्य के इतिहास के प्रथम लेखक हैं

ग) शिवसिंह सरोज में लगभग 1000 कवियों का विवरण है

घ) हिंदी साहित्य का आदिकाल डॉ नागेंद्र की रचना है

11. उस इतिहास ग्रंथ का नाम बताइए जिसमें लगभग 5000 कवियों का विवरण संकलित है

क) मिश्रबंधु विनोद ख) शिवसिंह सरोज

ग) हिंदी साहित्य की भूमिका घ) हिंदी साहित्य का इतिहास

12. हिंदी वीर काव्य के रचयिता कौन है:

क) रामनरेश त्रिपाठी ख) आचार्य चतुरसेन

ग) टीकम सिंह घ) रामविलास शर्मा

13. शुक्ल जी ने आधुनिक काल का नाम क्या रखा?

क) वर्तमान काल ख) आधुनिक काल

ग) गद्यकाल घ) जागरण सुधार काल

14. पूर्व मध्यकाल के लिए शुक्ल जी ने क्या नाम दिया है?

क. भक्ति काल ख. पूर्व माध्यमिक काल

ग . रीतिकाल घ. कोई नहीं

15. किस इतिहास लेखक ने हिंदी साहित्य का प्रारंभ 1050 वी. स्वीकार किया है?

क. हजारी प्रसाद　　ख. रामचंद्र शुक्ल
ग . डॉ नागेंद्र　　घ. मिश्र बंधु

16. डॉ. रामकुमार वर्मा के काल विभाजन में हिंदी साहित्य का प्रारंभ कब से माना गया है?
क. 700 वी.　　ख. 750 बी.
ग. 1000 वी.　　घ. 1050 वी.

17. जॉर्ज ग्रियर्सन की रचना का हिंदी में अनुवाद किया?
क. किशोरी लाल गुप्त　　ख. रामचंद्र शुक्ल
ग . राहुल सांकृत्यायन　　घ. इनमें से कोई नहीं

18. "प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चित्रवृत्ति का संक्षिप्त प्रतिबिंब होता है " यह कथन किसका है?
क . मिश्र बंधु　　खडॉक्टर धीरेंद्र वरमां
ग. रामचंद्र शुक्ल　　घ. श्यामसुंदर दास
.
19. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने आदिकाल का काल निर्धारित किया है-
क. 1050 इ.-1375 ई.　　ख. 993 इ.-1318
ग. 850 ई.-1100 ई.　　घ. इनमें से कोई नहीं

20. आदिकाल को संधिकाल नाम किसने दिया?
क. रामचंद्र शुक्ल　　ख. राजकुमार वर्मा
ग. महावीर प्रसाद द्विवेदी　　घ. डॉ नागेंद्र

21. रासो ग्रंथकारों में निम्नलिखित में से कौन-सी प्रवृत्ति नहीं थी?
क. आश्रयदाताओं की अतिशयुक्तिपूर्ण प्रशंसा
ख. डिंगल पिंगल भाषा
ग. जैन धर्म संबंधित रचनाएं
घ. वीर एवं श्रृंगार रस का प्रयोग

22. आदिकाल के साहित्य में कौन सी प्रवृत्ति नहीं पाई जाती?
क) श्रृंगार　　ख) भक्ति
ग) प्रकृति वर्णन　　घ) राष्ट्रीय भावना

23. 'कयमास वध' किस आदिकालीन रचना का अंश है?

क) हम्मीररासो ख) परमालरासो

ग) पृथ्वीराजरासो घ) खुमानमलरासो

24. 'पृथ्वीराजरासो' मे कितने प्रकार के छंदों का प्रयोग हुआ?

क) 50 ख) 40

ग) 68 घ) 70

25. 'हिंदी साहित्य का इतिहास दर्शक' नामक ग्रंथ के लेखक है?

क) विजयेंद्र स्नातक ख) डॉ नलिन विलोचन शर्मा

ग) डॉ नामवर सिंह घ) डॉ विनय मोहन

26. शिवसिंह सेंगर द्वारा रचित हिंदी साहित्य का इतिहास शिवसिंह सरोज किस वर्ष में प्रकाशित हुआ?

क) सन 1850 ई. ख) सन 1873 ई.

ग) सन 1863 ई. घ) सन 1883 ई.

27.निम्नलिखित इतिहास- ग्रंथों मे से इसे सही अर्थों में हिंदी साहित्य का पहला इतिहास कहा जाएगा?

क) शिवसिंह सरोज ख) 200 चौरासी वैष्णवन की वार्ता

ग) भक्तमाल घ) द मोहन वर्नाकुलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान

28. "हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास" किसने लिखा है?

क) राहुल संस्कृतयायन ख) महावीर प्रसाद द्विवेदी

ग) मिश्रबंधु घ) डॉ राजकुमार वर्मा

29. हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास किसके द्वारा रचित है?

क) डॉ श्यामसुंदर दास ख) डॉ नामवर सिंह

ग) डॉ नागेंद्र घ) डॉ गणपति चंद्रगुप्त

30. हिंदी साहित्य के आदिकाल को प्रारंभिक काल मानने वाले विद्वान थे?

क. राहुल सांकृत्यायन ख. हजारी प्रसाद द्विवेदी

ग. रागेय राघव घ. मिश्र बंधु

31. पृथ्वीराज रासो के विषय में कौन सी धारणा अधिक उपयुक्त है?

क. प्रमाणिक ख. अप्रमाणिक

ग. अर्ध प्रमाणिक घ. जाली ग्रंथ

32. बीसलदेव रासो का प्रधान रस क्या है?

क. वीर रस ख. शांत रस

ग. सिंगार रस घ. करुण रस

33. पृथ्वीराज रासो में सर्वाधिक विवादित पक्ष है?

क. भाषिक संरचना ख. ऐतिहासिकता

ग. चरित्रड़ाकन घ. प्रबंधकमकता

34. निम्नलिखित में से बीसलदेव रासो के रचयिता कौन है?

क. जगनिक ख. चंदबरदाई

ग. नरपति नालह घ. भट्ट केदार

35. रासो ग्रंथ के रचनाकार का नाम बताइए जिसकी रचना अजमेर के शासक से संबंधित है?

क. दलपति विजय ख. नरपति नल्ह

ग. नलला सिंह घ. मधुकर भट्ट

36. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी रासो शब्द की व्युत्पत्ति किस शब्द से मानते हैं?

क. रसायन ख. राशक

ग. रास घ. रसीक

37. खुमान रासो की प्रमाणिक प्रति कहां संग्रहित की गई है?

क. पुणे संग्रहालय ख. मथुरा संग्रहालय

ग. जयपुर संग्रहालय घ. ग्वालियर संग्रहालय

38. बीसलदेव रासो मूलत: एक काव्य है-

क. स्मृति काव्य ख. शोक गीत

ग. गीती काव्य घ. गेय काव्य

39. कौन सा रासो ग्रंथ केवल सूचना- रूप में उपलब्ध है, उसका कोई पुस्तकाकार रूप आज तक अनुपलब्ध है?

क) हम्मीर रासो ख) बीसलदेव रासो

ग) भरतेश्वर बाहुबली राष्ट्र घ) परमाल रासो

40. आल्हा और उदल नाम के दो वीर सरदारों की वीरतापूर्ण लड़ाइयां और युद्ध अत्यंत प्रभावशाली निम्नलिखित में से किसमें है?

क) पृथ्वीराज रासो ख) खुमान रासो

ग) विजयपाल रासो घ) परमाल रासो

41. "मनहु कला ससभान कला 1600 बनिए " किस रासो ग्रंथ की पंक्ति है?

क) बीसलदेव ख) पृथ्वीराज रासो

ग) खुमान रासो घ) परमाल रासो

42."पृथ्वीराज रासो" का सर्वथा अप्रमाणिक मानने वाले विद्वान हैं-

क) मिश्रबंधु ख) कर्नल टोड

ग) हीराचंद ओझा घ) अचार्य शुक्ल

43.पृथ्वीराज रासो का शुक- शुकी संवाद के रूप में रचित मानने वाले आलोचक है-

क) आचार्य शुक्ल ख) हजारी प्रसाद द्विवेदी

ग) धीरेंद्र वर्मा घ) राजकुमार वर्मा

44. आदिकाल को अत्यधिक विरोधी और व्याघातो का युग कहा-

क) राजकुमार वर्मा ख) हजारी प्रसाद द्विवेदी

ग) अजय घ) आचार्य शुक्ल

45. बीसलदेव रासो का काव्य रूप क्या है?

क) प्रबंधकाव्य ख) खंडकाव्य

ग) गीतिकाव्य घ) मुक्तक काव्य

46. निम्नलिखित में कौन सी रचना वीरगाथात्मक नहीं है-

क) खुमान रासो ख) जयमयंकजसचंद्रिका

ग) बीसलदेव रासो घ) पृथ्वीराज रासो

47. आदिकाल का अधिकतम साहित्य किस प्रांत से प्राप्त हुआ है?

क) राजस्थान b) बंगाल

ग) उत्तर प्रदेश घ) दक्षिण भारत

48. निम्नलिखित में से कौन सा विषय संयोजन है?

क. छत्तीसगढ़ी- पूर्वी हिंदी ख. मगही-बिहारी हिंदी

ग. मालवी -राजस्थानी हिं घ. बघेली- पश्चिमी हिंदी

49. बैसवारी किस प्रमुख बोली के निकट है?

क. छत्तीसगढ़ी ख. अवधि

ग. बज्र घ. कन्नौजी

50. निम्नलिखित में राजस्थानी हिंदी की कौन सी बोली नहीं है?

क. मारवाड़ी ख. जयपुरी

ग. मेवाती घ. बुंदेली

	उत्तरमाला
1	ख
2	क
3	घ
4	ग
5	ख
6	क
7	ख
8	ग
9	ग
10	घ
11	क
12	ग
13	ग
14	क
15	ख
16	ख
17	क
18	ग
19	ख
20	ख
21	ग
22	घ

23	ग
24	ग
25	ख
26	घ
27	घ
28	घ
29	घ
30	घ
31	ग
32	ग
33	ख
34	ग
35	ख
36	ख
37	क
38	घ
39	क
40	घ
41	घ
42	ख
43	ख
44	ख
45	घ
46	ग
47	क
48	घ
49	ख
50	घ

टेस्ट - 2 (आदिकाल part 2)

1. सिद्धओ का संबंध किससे है?

क. बौद्ध मत　　ख. नाथ पंथ

ग. जैन मत　　घ. शेव मत

2. बौद्ध मत की महायान शाखा के साधना पक्ष में किस प्रमुख तत्व के प्रवेश से वज्रयान का उदय हुआ?

क. मैथन　　ख. हठयोग

ग. मूर्ति पूजा　　घ. तांत्रिक साधना

3. सिद्ध मत में 5 मकार कौन से हैं?

क. मग, मोहिनी, मत्स्य, महाकाल, मुद्रा

ख. मग, मांस, मत्स्य, मैथुन, मुद्रा

ग. मग, मांस, मत्स्य, महाकाल, मुद्रा

घ. इनमें से कोई नहीं

4. सहजयान को वज्रयान कौन सी अवस्था माना गया है?

क. पूर्व अवस्था　　ख. मध्य अवस्था

ग. सीद्धा अवस्था　　घ. अपूर्ण अवस्था

5. चर्या पद का संबंध किससे है?

क. सिद्ध मत　　ख. नाथ पंथ

ग. रासो साहित्य　　घ. जैनमत

6. डिंगल शैली का प्रयोग किस में मिलता है?

क. सिद्ध साहित्य　　ख. जैन साहित्य

ग. रासो साहित्य　　घ. लौकिक साहित्य

7. गुहंसमाज या श्रीसमाज का संबंध किससे है?

क. सहजयान　　ख. वज्रयान

ग. हीनयान　　घ. महायान

8. सिद्ध की तांत्रिक साधना में सहयोग स्त्री को क्या कहा जाता है?

क. डोमिनी　　ख. भैरवी

ग. महामुद्रा घ. उपयुक्त सभी

16. 12 पंथी संप्रदाय के प्रवर्तक कौन है?

क. मत्स्येंद्रनाथ ख. सरहपा

ग. कबी रैदास घ. गोरखनाथ

17. कॉल मत के प्रवर्तक कौन है?

क. मत्स्येंद्रनाथ ख. सरपहा

ग. गोरखनाथ घ. शालीभद्र सूरी

18. सिद्ध साहित्य के संदर्भ में कौन सा कथन असत्य है?

क. इसमें हठयोग और तांत्रिक साधना प्रमुख है

ख. सिद्धि के लिए स्त्री का भोग आवश्यक माना गया है

ग. रहस्य भावना की प्रमुखता

घ. मूर्ति पूजा का विशेष महत्व

19. साहित्य की किस काव्य धारा प्रसिद्ध और नाथ साहित्य का सर्वाधिक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है?

क. सूफी काव्य ख. संत काव्य

ग. राम कृष्ण काव्य घ. रीति काव्य

20. सिद्ध और नाथू में किस बात को लेकर मतभेद था?

क. तीर्थाटन और कर्मकांड का विरोध ख. जाति पंथ का खंडन

ग. हठ योग साधना घ. शाहदरा में नारी का भोग

21. कान में बड़े-बड़े छेद करके उनमें भारी कुंडल धारण करने वाले कंफर्टा साधु किस पंथ /संप्रदाय से संबंधित है?

क. औघड़ पंथ ख. सूफी संप्रदाय

ग. नाथ संप्रदाय घ. सहजिया संप्रदाय

22. बैराग पंथ किस संप्रदाय की शाखा है?

क. नाथ संप्रदाय ख. गौरव पंथी संप्रदाय

ग. जैन संप्रदाय घ. सिद्ध संप्रदाय

23. श्रावकाचर रचना का संबंध किससे है?

क. नाथ पंथ ख. जनमत

ग. सिद्ध संप्रदाय घ. इनमें से कोई नहीं

24. सरपहा सिद्ध कवि की कौन सी रचना है?

क. दोहा कोश ख. प्राण.संकली

ग. चर्या पद घ. इनमें से कोई नहीं

34. शंकराचार्य के बाद इतना प्रभावशाली और इतना महिमा बनती भारतवर्ष में दूसरा नहीं हुआ... भक्ति आंदोलन के पूर्व सकते शक्तिशाली धार्मिक आंदोलन गोरखनाथ का भक्ति मार्ग ही था!

क. रामचंद्र शुक्ल ख. हजारी प्रसाद द्विवेदी

ग. रामविलास शर्मा घ. जॉर्ज ग्रियर्सन

35. आदिकाल नाम भ्रामक है इससे बाबा आदम के जमाने का आभास होता है यह कथन किसका है?

क. हजारी प्रसाद द्विवेदी ख. राम चंद्र शुक्ला

ग. बच्चन सिंह घ. नामवर सिंह

36. तुबी मैं त्रिलोक समाया त्रिवेणी रेन चंदा!
बूझो रे ब्रह्मा गीयानी अनहद नाद अभंगा!
यह पंक्ति किसकी है?

क. सरपहा ख. कबीर

ग. स्वयंभू घ. गोरखनाथ

37. सिद्दो का महासुखवाद क्या है?

क. संभोग की चरम परिणति

ख. कुंडलिनी का जागरण

ग. आत्म साक्षात्कार की अनुभूति

घ. आत्म विस्मृति

38. लोक भाषा में कौन सी साहित्य लिखा गया?

क. जैन साहित्य ख. सिद्ध साहित्य

ग. नाथ साहित्य घ. रासो साहित्य

39. सिद्ध साहित्य का क्षेत्र कौन सा था?

क. पूर्वी क्षेत्र ख. पश्चिमी क्षेत्र

ग. उत्तरी क्षेत्र घ. दक्षिणी क्षेत्र

40. जैन साहित्य के क्षेत्र में लिखा गया था?

क. पूर्वी क्षेत्र　　ख. पश्चिमी क्षेत्र

ग. उत्तरी क्षेत्र　　घ. दक्षिणी क्षेत्र

41. रास ग्रंथ रूप किस साहित्य का लोकप्रिय रूप था?

क. जैन साहित्य　　ख बौद्ध साहित्य

ग. नाथ साहित्य　　घ. लौकिक साहित्य

42. नाथ संप्रदाय में आदिनाथ किसे माना गया है-

(क) गोरखनाथ　　(ख) मत्स्येंद्रनाथ

(ग) शिव　　(घ) जालंधर नाथ

43. लुईपा के गुरु थे?

(क) शबरपा　　(ख) सरहपा

(ग) गोरखनाथ　　(घ) मछंदर नाथ

44. आचार्य, रास, फाग ,चरित्र शैलियां की मिलती है-

(क) जैन साहित्य में　　(ख) नाथ साहित्य

(ग) रासो साहित्य　　(घ) सिद्ध साहित्य

45. नेमिनाथ रास नाम 50 शब्दों में रचना की है-

(क) जनदत्त सूरी　　(ख) जयचंद्

(ग) सुमतीगणी　　(घ) विजय सेन

46. नारी निंदा किस संप्रदाय में मिलती है-

(क) नाथ पंथ　　(ख) जैन संप्रदाय

(ग) सिद्धसंप्रदाय　　(घ) कोई नहीं

47. इनमें से नाथ संप्रदाय में क्या नहीं है-

(क) गुरु महिमा　　(ख) नारी निंदा

(ग) इंद्रिय निग्रह　　(घ) गृहस्थओं का आदर

48. राहुल सांकृत्यायन द्वारा संपादित दोहा कोश में किस कवि की रचना संपादित की गई है-

(क) सरहपा　　(ख) लुईपा

(ग) गोरखनाथ (घ) जालंधर नाथ

49. आदि काल में चरित्र काव्य सर्वाधिक किस साहित्य में रखे गए-

(क) जैन साहित्य (ख) रासो साहित्य

(ग) नाथ साहित्य (घ) सिद्ध साहित्य

50. चरित काव्य के क्षेत्र में अधिक लिखे गए-

(क) दोहा चौपाई (ख) कविता

(ग) पद (घ) पदधरी

	उत्तरमाला
1	क
2	घ
3	ख
4	ग
5	क
6	ग
7	ख
8	घ
9	क
10	ग
11	ख
12	ग
13	घ
14	ग
15	ख
16	घ
17	क
18	घ
19	ख
20	घ
21	ग
22	ख

23	ख
24	क
25	घ
26	ख
27	ग
28	क
29	ख
30	ग
31	ग
32	ख
33	ग
34	ख
35	ग
36	घ
37	क
38	ख
39	क
40	ख
41	क
42	ग
43	घ
44	क
45	ग
46	क
47	घ
48	क
49	क
50	क

टेस्ट - 3 (आदिकाल सम्पूर्ण)

1. खीर पकाई से चरखा दिया चला |
आया कुत्ता खा गया बैठी ढोल बजा ||
अमीर खुसरो की यह रचना निम्नलिखित में किस के अंतर्गत आती है?
क. पहेली ख. ढकोसला
ग. मुकरी घ. दोस्तखून

2. हिंदी साहित्य का आदिकाल पुस्तक के लेखक है?
क. राहुल सांकृत्यायन ख. जॉर्ज ग्रियर्सन
ग. रामचंद्र शुक्ल घ. हजारी प्रसाद द्विवेदी

3. " सखी पिया को जो ना देखूं
तो कैसे कार्टू अंधेरी रतियां!"
यह पंक्ति किस कवि की है?
क. नंददास ख. घनानंद
ग. अमीर खुसरो घ. बिहारी

4. ऑरर गोला छोटन लागे, सर- सर तीर रहे सनाय!
गीला लागे जेही हाथी के, मानो चोर सेंध हवे जाय!!
इस पंक्तियों के कवि कौन हैं?
क. चंदबरदाई ख. जगनिक
ग. भूषण घ. जलहन

5. चंदबरदाई हिंदी के प्रथम महा कवि माने जाते हैं और इसका पृथ्वीराज रासो हिंदी का प्रथम महाकाव्य है?
क. हजारी प्रसाद द्विवेदी ख. रामचंद्र शुक्ल
ग. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय घ. चंद्रधर शर्मा गुलेरी

6. निम्नलिखित में किस कवि को अभिनव जयदेव की उपाधि मिली?
क. घनानंद ख. नंददास
ग. पुष्पदंत घ. विद्यापति

7. “पुस्तकजलहनहाथदेचलीगजननेटकाज”यहपंक्तिकिसकीहै?

क) गोरखनाथ ख) स्वयंभू

ग) चंदबरदाई घ) इनमें से कोई नहीं

8. ‘देसीनाममाला’ के रचनाकार है-

क) धनपाल ख) स्वयंभू

ग) हेमचंद् घ) दामोदर शर्मा

9. ‘पुरुषपरीक्षा’ के रचनाकार है-

क. विद्यापति ख) दामोदरन

ख. विद्याधर घ) जज्जल

10. ‘जयमयंक जसचंद्रिका’ के रचनाकार है-

क) केदार भट्ट ख) धनपाल

ग) मधुकर कवि घ) दामोदर शर्मा

11. रामचंद्र शुक्ल ने वीरगाथा काल के अंतर्गत किस साहित्य को देशभाषा काव्य कहां है?

क) जैन काव्य ख) रासो काव्य

ग) सिद्ध काव्य घ) नाथ काव्य

12. ‘वय: संधि’ मैं ईश्वर से संधि कहां, ‘सधस्नाता’ में ईश्वर से नाता कहां और, ‘अभिसार’ में भक्ति का सार कहां? डॉ राजकुमार वर्मा का यह कथन किस कवि के संदर्भ में हैं

क) अमीर खुसरो ख) धनपाल

ग) विद्यापति घ) अब्दुल रहमान

13. अमीर खुसरो की रचना ‘खालिकबारी’ है-

क) कहानी ख) उपन्यास

ग) शब्दकोश घ) नाटक

14. “ हठयोग की साधना पद्धति तीव्र वैराग्य भाव, वर्ण जाति के बंधन से ऊपर उठने का आग्रह “आदि तीनों तत्व किस साधना प्रवृत्ति के सूचक है?

क. बौद्ध ख. नाथ

ग. जैन घ. चरित्र मानस

15. आदिकाल की की साधना पद्धति से कबीर प्रभावित थे?

क. जैन　　ख. बौद्ध

ग. सिद्ध एवं नाथ　　घ. इनमें से कोई नहीं

16. जैन धर्म संबंधी रचनाएं किस भाषा में रची गई?

क. संस्कृत　　ख. अपभ्रंश

ग. पाली　　घ. प्राकृत

17. सरहपाद की प्रसिद्धि रचनाएं थी?

क. जय चंद्र प्रकाश　　ख. दोहा कोश

ग. प्रिया पद　　घ. योग चर्या

18. आदि कालीन युद्ध वर्णन में किस भाषा का प्रयोग?

क. बज्र　　ख. खड़ी बोली

ग. अवधि　　घ. डिंगल

19. संस्कृत के भवभूति की अपभ्रंश के किस कवि से तुलना की गई?

क. स्वयंभू　　ख. पुष्पदंत

ग. राम सिंह　　घ. धनपाल

20. अमीर खुसरो के गुरु थे?

क. कबीर　　ख. हजरत निजामुद्दीन औलिया

ग. रामानंद　　घ. इनमें से कोई नहीं

21. स्वयंभू रचित रितनिमी चरीहूं मे किस ईश्वर का वर्णन है?

क. राम　　ख. कृष्ण

ग. शिव　　घ. ब्रह्मा

22. असुग कवि द्वारा रचित रचना है-

क. चंदनबाला रास　　ख. जीव दया राज

ग. बुद्धि रास　　घ. उपयुक्त सभी

23. आदिकालीन अब्दुर्रहमान का अपभ्रंश में नाम है?

क. अदहमान　　ख. पूर्वमाण

ग. अबदमान　　घ. इनमें से कोई नहीं

24. आदिकालीन गति परंपरा के आदि कवि है-

क) चंदबरदाई　　ख) विद्यापति

ग) करो　　घ) अब्दुल रहमान

25. प्रादेशिक बोलियों के साथ देश भाषा ब्रज के संयोग से बनी अपभ्रंश भाषा का नाम क्या है?

क) डिंगल　　ख) पिंगल

ग) भोजपुरी　　घ) मैथिली

26. 'एक थाल मोती से भरा सबके सिर पर औंधा धरा' यह आदिकालीन खड़ी बोली की पंक्ति किस कवि की है?

क) भोज　　ख) हेमचंद

ग) अमीर खुसरो　　घ) अब्दुल रहमान

27. 'तेरे इस कुकवित्त को सुनेंगे नहीं और न अबुधजन
अबुद्ता के कारण इस में प्रवेश करेंगे'- यह पंक्ति किस कवि ने किस रचना के लिए कहीं

क) अमीर खुसरो- खालिकबारी

ख) रहमान- संदेश रासक

ग) विद्यापति- कीर्तिलता

घ) उपरोक्त में से कोई नहीं

28. "रासो" नए-नए रोमांस प्रस्तुत करता है और संदेश रासक" पुरानी प्रीति को निखार देता है" उक्त पंक्ति किस आलोचक की है?

क) डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी

ख) आचार्य रामचंद्र शुक्ल

ग) डॉ नागेंद्र

घ) आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

29. हिंदी साहित्य के इतिहास का सर्वाधिक विवादास्पद काल माना जाता है?

क) आदिकाल　　ख) भक्ति काल

ग) रीतिकाल　　घ) आधुनिक काल

30. सहजयान के पर्वतक सिरप्पा को किस विधान ने हिंदी का प्रथम कवि माना है?

क) राहुल सांकृत्यायन ख) शिव सिंह सेंगर

ख) रामचंद्र शुक्ला घ) राजकुमार वर्मा

31. संध्या भाषा जो कि सिद्धों की मुख्य भाषा थी मेक लिखा ग्रंथ चर्या पद किसकी रचना है?

क. सबरपा ख. सरहपा

ग. लुईपा घ. कडप्पा

32. इनमें से किस से सिद्ध का स्थान 84 सिद्धों में सबसे ऊंचा माना जाता है?

क. सबरपा ख. सरहपा

ग. लुईपा घ. कडप्पा

33. जॉर्ज ग्रियर्सन के "दी मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान" का प्रथम हिंदी अनुवाद निम्न में से किसने किया?

क. लक्ष्मीसागर वॉइस नेम ख. लक्ष्म सागर वार्ष्णेय

ग. मौलवी करीमुद्दीन घ. किशोरी लाल गुप्ता

34. गणपति चंद्रगुप्त के अनुसार निम्न में से किस कृति को हिंदी साहित्य की प्रथम प्रति माना जाता है?

क. देवसेन कृत श्रावकाचार

ख. उद्बोधन सूरी कृत कुबलय माला

ग. सारंगधर कृत हमीर रासो

घ. सालीबध सूरी भारतेश्वर बाहुबली रास

35. निम्न में से कौन से ग्रंथ में महोबा के वीर योद्धा आला-उदल का वर्णन है?

क. बीसलदेव रासो ख. पृथ्वीराज रासो

ग. परमाल रासो घ. बीसलदेव रासो

36. निम्न में से किस विद्वान ने सर्वप्रथम पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता पर प्रश्नचिन्ह खड़ा किया?

क. कप्तान वर्क ख. जेम्स प्रिसेप

ग. डॉक्टर गूलर घ. डा टीस्टोरी

37. पृथ्वीराज रासो की संस्कृति को सर्वाधिक प्रमाणित माना जाता है?

क. माता प्रसाद द्वारा संपादित

ख. कर्नल टॉड द्वारा प्रस्तुत

ग. वृहद रूपांतर घ. मध्यम रूपांतर

38. निकसिख प्रारंभ करने वाला वह ग्रंथ जो हिंदी साहित्य में प्रथम चंपू काव्य के रूप में माना जाता है?
क. रोडा कृत राहल वैल
ख. पीथल कृत वेद किशन रुक्मणी री
ग. सरहपा कृत दुआ कोर्स
घ. अमीर खुसरो कृत दो सकूंने

39. निम्न में से किस विद्वान ने हिंदी साहित्य के आदिकाल को संधि चारण काल कहा है?
क) राहुल संस्कृतयायन ख) शिव सिंह सेंगर
ग) रामचंद्र शुक्ल घ) राजकुमार वर्मा

40. हिंदी के हिंदी के आरंभिक रूपों को अभयटठ किसने कहा-
क) भोलानाथ तिवारी ख) भोला नाथ पांडे
ग) भोलाशंकर व्यास घ) भूशंकर मिश्र

41. भविष्यत कहा नामक ग्रंथ के रचनाकार है?
(क) धनपाल (ख) पुष्पदंत
(ग) जो इंदु (घ) दामोदर कवि

42. अपभ्रंश व्याकरण हेमशब्दनुशासन के रचयिता है-
(क) धनपाल (ख) विद्याधर
(ग) हेमचंद (घ) शाली भद्र सूरी

43. नाला रसायन आरंभई, शारदा टूठि ब्रहमाकुमारी- किस रासो ग्रंथ की पंक्तियां हैं-
(क) खुमान रासो (ख) परमाल रासो
(ग) बीसलदेव रासो (घ) हम्मीर रासो

44. रासो काव्य में मेघदूत और संदेश रासक परंपरा का विकास मिलता है?
(क) बीसलदेव रासो (ख) खुमान रासो
(ग) हम्मीर रासो (घ) परमाल रासो

45. हिंदी साहित्य प्रथम महाकाव्य माना जाता है-

(क) पृथ्वीराज रासो (ख) परमाल रासो

(ग) खुमान रासो (घ) बीसलदेव रासो

46. रामचंद्र शुक्ला, डॉक्टर गूलर मुंशी, देवी प्रसाद जैसे विद्वानों ने पृथ्वीराज रासो को माना है?

(क) प्रमाणिक ग्रंथ (ख) आप्रमाणिक ग्रंथ

(ग) अर्थ अर्प्रमाणिक ग्रंथ (घ) इसमें से कोई नहीं

47. पृथ्वीराज विजय किसकी रचना है जिसके आधार पर सन 1875 में डॉक्टर भुल्लर ने पृथ्वीराज रासो को जारी ग्रंथ कहा-

(क) चंद्रवरदाई (ख) जयानक

(ग) जलहण (घ) मिश्र बंधु

48. चंद्रप्रकाश और जयमयंक जसचंद्रिका का उल्लेख किस कृति से मिलता है?

क. रासो साहित्य ख. राठौड़ री ख्यात

ग. लोक साहित्य घ. आदिकालीन साहित्य

49. पृथ्वीराज रासो को प्राथमिक ग्रंथ नहीं मानने वाले विद्वान है?

क. कर्नल टॉड ख. श्यामसुंदर दास

ग. मिश्र बंधु घ. मुंशी देवी प्रसाद

50. ताज कीराई सूअरई हिंदी! नामक हिंदी साहित्य के इतिहास के लेखक थे-

क. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ख. शिव सिंह सिंगर

ग. मौलवी करीमुद्दीन घ. किशोरी लाल गुप्त

	उत्तरमाला
1	ख
2	घ
3	ग
4	ख
5	ख
6	घ
7	ग

8	ग
9	क
10	ग
11	ख
12	ग
13	ग
14	ख
15	ग
16	ख
17	ख
18	घ
19	ख
20	ख
21	ख
22	घ
23	क
24	ख
25	ख
26	ग
27	क
28	क
29	क
30	क
31	क
32	ग
33	घ
34	क
35	घ
36	ग
37	क
38	क
39	घ
40	ग

41	क
42	ग
43	ग
44	क
45	क
46	ख
47	ख
48	ख
49	घ
50	ग

टेस्ट - 4 भक्तिकाल (निर्गुण संत काव्य)

1. आचार्य शुक्ल ने भक्ति आंदोलन के उदय कौन सा प्रमुख कारण इनमें से माना है?

क. ईसाई धर्म का प्रभाव ख. हिंदुओं की पराजित मनोवृति

ग. गीता की भक्ति योग घ. इनमें से कोई नहीं

2. आलवार भक्तों का मूल स्थान कहां था?

क. उत्तर भारत ख. पूर्व भारत

ग. दक्षिण भारत घ. संपूर्ण भारत

3. आचार्य शुक्ल ने भक्ति काल की समय सीमा क्या मानी थी?

क. संवत 1050 से 1375 वी.

ख. संवत 1375 से 1700 वी.

ग. 1350 ई. से1650 ई.

घ. सम्वत 750. से1050 वी.

4. आलवार भक्तों की संख्या कितनी मानी गई है?

क. 8 ख. 10

ग. 12 घ. 16

5. भक्ति भावना का मूल स्त्रोत भारत के किस भाग में माना गया है?

क. उत्तर भारत　　ख. दक्षिण भारत

ग. महाराष्ट्र　　घ. पश्चिमोत्तर भारत

6. इनमें से कौन सा कथन असत्य है?

क. भक्ति आंदोलन तत्कालीन धार्मिक परिस्थितियों की उपज है !

ख. भक्ति आंदोलन हिंदुओं की पराजित मनोवृति की उपज है!

ग. दक्षिण में आती हुई भक्ति की धारा को पनपने के लिए उपयुक्त परिस्थितियां उत्तर भारत में थी !

घ. भक्ति भावना ईसाईयों से हिंदुओं की प्राप्ति हुई!

7. संत कवियों ने वैदिक परंपराओं की आलोचना किसके प्रभाव से की:

क) बौद्ध धर्म　　ख) जैन धर्म

ग) नाथ पंथ　　घ) सिद्ध संप्रदाय

8. "दिव्य प्रबंधम" किसके पदों का संकलन है?

क) कलवारी भक्त　　ख) शंकराचार्य

ग) रामानंद　　घ) रामानुजाचार्य

9. कबीर काव्य में उपलब्ध कुंडलिनी योग के शब्द किसके प्रभाव से गृहीत है?

क) तेज संप्रदाय　　ख) नाथ पंथ

ग) बौद्ध धर्म　　घ) इनमें से कोई नहीं

10. अलवार भक्तों के पद किस भाग में है?

क) बांग्ला　　ख) तमिल

ग) हिंदी　　घ) उर्दू

11. संत कवियों के दार्शनिक सिद्धांतों का मूल आधार क्या है?

क) सिद्धाद्वैत　　ख) अद्वैत वेदांत

ग) नाथ पंथ　　घ) बौद्ध संप्रदाय

12. बीजक में किस कवि की रचनाएं संकलित है?

(क) सूरदास　　(ख) मुल्क दास

(ग) कबीर दास　　(घ) रामानंद

13. इनमें से कौनसी प्रवृत्ति संत काव्य नहीं है-

(क) गुरु की महत्ता (ख) रहस्यवादी भावना

(ग) ब्रह्मांडब्रों की खंडन (घ) वर्ण व्यवस्था का समर्थन

14. द्वैताद्वैतवाद के प्रवर्तक अरे का नाम क्या है?

क) रामानुजाचार्य ख) निंबार्काचार्य

ग) वल्लभाचार्य घ) माधवाचार्य

15. समाधि जोग ग्रंथ किस संत कवि की रचना है?

क. रैदास ख. हरिदास निरंजनी

ग. मलूक दास घ. दादू

16. राघवानंद जी किस प्रमुख व्यक्ति के गुरु थे?

क. कबीर ख. रामानंद

ग. सूरदास घ. मधवाचार्य

17. सिद्धांत और पंचमात्रा ग्रंथ के रचयिता कौन थे?

क. रामानंद ख. बल्लभ आचार्य

ग. नंददास घ. राघवानंद

18. सुंदर ग्रंथावली का संकलन किसने किया है?

क. बाबू श्यामसुंदर दास ख. पीतांबरदत्त बड़थ्वाल

ग. पुरोहित हरिनारायण शर्मा घ. गोविंद रजनीश

19. कबीर काव्य में उपलब्ध अहिंसा का तत्व किस संप्रदाय की देन है?

क. वैष्णव संप्रदाय ख. बौद्ध संप्रदाय

ग. जैन संप्रदाय घ. नाथ संप्रदाय

20. कबीर में उपलब्ध ज्ञान मार्ग की बातें आचार्य शुक्ल के अनुसार कहां से ली गई है?

क. हिंदू शास्त्रों से ख. बौद्ध धर्म से

ग. सिद्धू की वाणी से घ. नाथ पंथ से

21. कबीर काव्य में उपलब्ध प्रेम तत्व किसकी देन है?

क. वैष्णव संप्रदाय ख. नाथ संप्रदाय

ग. सूफी संप्रदाय घ. रामावत संप्रदाय

22. आचार्य शुक्ल ने निर्गुण मार्ग का निर्देश प्रवर्तक किसे माना है?
क. रामानंद ख. नामदेव
ग. कबीर घ. ज्ञानदेव

23. ज्ञान समुद्र के रचनाकार का नाम बताइए?
क. हरिदास निरंजनी ख. गुरु नानक
ग. सुंदर दास घ. पीपा

24. इनमें से दादू दयाल का शिष्य कौन सा कवि है?
क. कबीर ख. नानक
ग. हरिदास घ. सुंदर दास

25. "कबीर विरचित दुल्हनी गावहु मंगलाचार, हम घर आहेयू राजा राम भरतार|" जैसे पद किस श्रेणी में रखे जा सकते हैं?
क) शृंगार रस ख) लोकाचार संबंधी ज्ञान
ग) परंपरा पोषक घ) भावनात्मक रहस्यवाद

26. कबीर की समस्त रचनाओं का संपादन किस ग्रंथ में हुआ है?
क) कबीर वाणी ख) साखी
ग) सबद घ) बीजक

27. "कबीर परिचइ" के लेखक कौन है?
क) रैदास ख) अनंत दास
ग) धन्ना घ) पीपा

28. रज्जब ने दादू की रचनाओं का संपादक किस नाम से किया?
क) हरने बानी ख) सोहिला
ग) अंगबधू घ) जपुजी

29. नामदेव जी की भक्ति किस प्रकार की थी?
क) सगुन ख) निर्गुण
ग) सगुण-निर्गुण घ) कोई नहीं

30. “निर्गुण ब्रह्मा को कियो समाधू, तब ही चले कबीरा साधु |” उपयुक्त पंक्तियों के रचनाकार कौन से संत है?

क) दादू ख) कबीर

ग) रैदास घ) धर्मदास

31. “सो जोगी जाके मन में मुद्रा. रात दिवस ना करई निद्रा|” पंक्तियों के रचयिता कौन हैं?

क) रैदास ख) कबीर

ग) रज्जब घ) मूलक दास

32. “अपना मस्तक काटीके वीर हुआ कबीर|” पंक्ति के कवि हैं?

क) कबीर ख) सुंदर दास

ग) दादू घ) पीपा

33. मुहम्मद बोध के रचयिता कौन हैं?

क) कबीर ख) दादू

ग) रैदास घ) नामदेव

34. कबीरकीमृत्युकेपश्चातउसकीगद्दीकैसेमिली?

क. धर्मदास ख. पीपा

ग. दादू घ. रैदास

35. “ नया बीच नदिया डूबी जाए “पंक्ति के रचयिता कौन है?

क. दादू ख. पीपा

ग. मीरा घ. कबीर

36. झरी लागे मगलिया गगन हराए के रचनाकार है-

क. कबीर ख. मलूकदास

ग. नानक घ. धर्मदास

37. ‘थावर जंगम कीट पतंग पूरी रहयो हरि राइ’ किसकी है-

क. नानक ख. कबीर

ग. मलूक दास घ. रैदास

38. सुंदर दास का जन्म स्थान कहां है?

क. माधवपुर ख. सी ही

ग. दौसा घ. कड़ा

39. इनमें से अद्वैतवाद किसको प्रतिपादित करता है?

क. जीव और ब्रह्म एक है

ख. जीव और ब्रह्मा अलग-अलग है

ग. संसार सत्य है

घ. महा का प्रतिबिंब है

40. संत कबीर पुस्तक के लेखक हैं?

क. नामवर सिंह ख. रामचंद्र शुल्क

ग. राजकुमार वर्मा घ. श्यामसुंदर दास

41. कबीर पुस्तक किसने लिखी?

क. सारी प्रसाद द्विवेदी ख. नंददुलारे बाजपेई

ग. रामचंद्र शुल्क घ. राजकुमार वर्मा

42. 'अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी इस साहित्य का बारह आना वैसा ही होता जैसे आज है 'इस कथन के लेखक है-

क. रामचंद्र शुल्क ख. हजारी प्रसाद द्विवेदी

ग. रामविलास शर्मा घ. डॉ नागेंद्र

43. आलवार संतो मे प्रसिद्ध महिला संत?

क. अंडाल ख. सहजोबाई

ग. भाई घ. इनमें से कोई नहीं

44. किस रचना को तमिल वेद कहा जाता है?

क. तमिल प्रकाश ख. दिव्या प्रकाशन

ग. नालीयार वेदांतम घ. नालीयर दिव्य प्रबंधन

45. किसे दर्शन में संसार को ब्रह्मा से भिन्न और अभिन्न दोनों माना गया है?

क. अद्वैतवाद ख. द्वैतवाद

ग. द्वैतद्वैतवाद घ. विशिष्टाद्वैतवादवाद

46. कबीर किसके समकालीन थे?

क. शाहजहां　　ख. औरंगजेब

ग. सिकंदर लोदी　　घ. अकबर

47. संत काव्य को ज्ञानाश्रई काव्य किसने की थी?

क. जारी प्रसाद द्विवेदी　　ख. आचार्य रामचंद्र शुक्ल

ग. मिश्र बंधु　　घ. राजकुमार वर्मा

48. भक्ति का वह कौन सा मूल तत्व है जो निर्गुण सगुण दोनों प्रकार की भक्ति में समान रूप से पाया जाता है?

क. रागआत्मकता　　ख. विरह

ग. योग　　घ. विनय

49. संत रज्जब का पूरा नाम है-

क. मोहम्मद रज्जब　　ख. रज्जब अलीखा

ग. रज्जब दास　　घ. सैयद रज्जब खा

50. कबीर सिद्ध साहित्य से काफी प्रभावित है निम्नलिखित में सिद्ध साहित्य और कबीर साहित्य में कौन सी और समानता मिलती है?

क. जाति पात का विरोध　　ख. ब्राह्मणडबर पर फटकार

ग. आत्म साक्षात्कार　　घ. चमत्कार प्रदर्शन

	उत्तरमाला
1	ख
2	ग
3	ख
4	ग
5	ख
6	घ
7	क
8	क
9	ख
10	ख

11	ख
12	ग
13	घ
14	ख
15	ख
16	ख
17	घ
18	ग
19	क
20	क
21	ग
22	ग
23	ग
24	घ
25	घ
26	घ
27	ख
28	ग
29	ग
30	क
31	ख
32	ग
33	क
34	क
35	घ
36	घ
37	घ
38	ग
39	क
41	घ
42	ख
43	क
44	घ

45	ग
46	ग
47	ख
48	क
49	ख
50	घ

टेस्ट - 5 सूफी काव्य धारा (भक्तिकाल)

1. सूफी साधना में ईश्वर की कल्पना किस रूप में की गई है?

क. पति रूप में ख. पत्नी रूप में

ग. मित्र रूप में घ. कोई नहीं

2. इनमें से सूफी साधना के मकानों में कौन सा शामिल नहीं है?

क. मलकत ख. शरीयत

ग. मैरिफत घ. हकीकत

3. डॉ नागेंद्र ने प्रोमांख्याना नायक काव्य परंपरा का पहला ग्रंथ किसे माना है?

क. चंद आयन ख. हंसांवली

ग. मृगावती घ. पद्मावत

4. आचार्य शुक्ला ने किस काव्य ग्रंथ को प्रोमख्यानाक काव्य परंपरा का पहला ग्रंथ माना है?

क. चंद्रयान ख. मृगावती

ग. सत्यवती कथा घ. मधुमालती

5. चंद्रयान रचयिता का नाम क्या है?

क. कासिम शाह ख. मलादाऊद

ग. शेख नवी घ. कुतुबन

6. मधुमालती के रचनाकार का नाम बताइए?

क. कुतुबान ख. मंझन

ग. जायसी घ. उस्मान

7. शेख नवी की कौन सी रचना इसमें से है?

क. ज्ञानदीप ख. हंस जवाहिर

ग. ढोला मारू रा दूहा घ. इंदिरा वर्ली

8. माधवानल कंडलानल नामक रचना किस कवि की है?

क) जायसी ख) गणपति

ग) उस्मान घ) दामोदर कवि

9. 'रूपमंजरी' के रचयिता कौन है?

क) सूरदास ख) नंददास

ग) कृष्ण दास घ) नारायण दास

10. गणपति रचित माधवानल कामकांडला किस भाषा में रचित है?

क) ब्रजभाषा ख) खड़ी बोली

ग) राजस्थानी घ) अवधि

11. 'ढोला मारू रा दूहा' किस भाषा में रचित है?

क) ब्रजभाषा ख) खड़ी बोली

ग) राजस्थानी घ) अवधि

12. मधुमालती के नायक कौन है?

क) रत्न सेन ख) मनोहर

ग) माधव घ) ऋतुपर्ण

13. किस प्रेमाख्यानक काव्य का नायक राजकुमार ऋतुपर्ण है?

क) सत्यवती कथा ख) मधुमालती

ग) मृगावती घ) चित्रावली

14. ' ज्ञानदीप' नामक प्रेमाख्यानक काव्य की नायिका कौन है?

क) पदमावती ख) देवयानी

ग) सत्यवती घ) इंद्रावती

15. लैला मजनू के कथानक हिंदी में प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा में प्रस्तुत करने का श्रेय किस कवि को है?
क) ईश्वरदास ख) जान कवि
ग) उसमान घ) आलम

16. 'तन चीतउर मन राउर कीन्हा' पंक्ति किस काव्य ग्रंथ की है-
क) मृगावती ख) पदमावत
ग) मधुमालती घ) चित्रावली

17. 'रत्न शेखर कथा' के आधार पर हिंदी में कौन सा ग्रंथ लिखा गया है?
क) पावती ख) पद्मावत
ग) मधुमालती घ) रूपमंजरी

18. ' ओ मैं जानी कवित अस् कीन्हा| मकू यह रहे जगत मन चिन्हा"| यह पंक्ति किस कवि की है?
क) तुलसी ख) जायसी
ग) कुतुबन घ) मंझन

19. कौन सी विशेषता सूफी काव्य की नहीं है?
क) पदमावती
ख) हिंदू संस्कृति का चित्रण
ग) अलौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की व्यंजना
घ) ब्रज भाषा का प्रयोग

20. किस जैन कवि ने अपने आत्म चरित्र की मधुमालती एवं मृगावती का उल्लेख किया है?
क) स्वयंभू ख) बनारसीदास
ग) जोइंदु घ) मुनि श|लीभद्र

21.'आखिरी कलाम' . नामक पुस्तक जायसी ने किस शासक के शासनकाल में लिखी थी?
क) बाबर ख) हुमायूं
ग) शेरशाह सूरी घ) अकबर

22. पदमावत कि अधिकतर हस्तलिखित प्रतियां किस लिपि में मिली है?
क) देवनागरी लिपि ख) फारसी लिपि
ग) गुरुमुखी लिपि घ) ब्राह्मी लिपि

23. " मोही का हंसेसी की कोहरही" पंक्ति किस कवि की है?

क) कबीर ख)जायसी

ग) सूरदास घ) तुलसीदास

24. आखिरी कलाम में किसका वर्णन है?

क) सृष्टि का ख) कयामत का

ग) संसार का घ) सिद्धांत का

25. जायसी का किस रचना में वर्णमाला एक एक अक्षर को लेकर सिद्धांत संबंधी तत्वों से भरी चौपाइयां कही गई है-

क) पदमावत ख) आखिरी कलाम

ग) अखरावट घ) कोई नहीं

26. पदमावत में हीरामन किसका काम है?

क) एक हंस ख) एक ब्राह्मण

ग) एक तोता घ) एक दूध

27. राघव चेतन का उल्लास किस प्रेमखयानाक ग्रंथ में है?

क) पदमावत ख) मृगावती

ग) हंस जवाहिर घ) मधुमालती

28. "भूली चकोर दीढा मुख लावा| मेघ घटा मह चंद देखावा|" यह पंक्ति किस ग्रंथ की है?

क) हंसावली ख) चित्रावती

ग) ज्ञानदीप घ) पद्मावत

29. प्रेमगाथा परंपरा का सर्वाधिक प्रोढ एवं सरस ग्रंथ शुक्लजी ने किसे माना है?

क) मृगावती ख) मधुमालती

ग) पदमावत घ) सत्यवती कथा

30. गोरा बादल का उल्लेख किस प्रेमाख्यानक काव्य में है?

क) पदमावत ख) चित्रावली

ग) ज्ञानदीप घ) हंसावली

31. चित्रावली कहां की राजकुमारी थी?

क) रूपनगर ख) सिंहलद्वीप

ग) मलय घ) जंबूद्वीप

32. जायसी की पद्मावत में कितने अर्धांगलिया के बाद दोहा है?

क. पांच ख. सात

ग. आठ घ. छह

33. कहां मानसर चाहा सो पाई । पारस रूप इनहां लागी आई । यह पंक्ति किस कवि की है?

क. उस्मान ख. जायसी

ग. कुतुबन घ. मुरला दाऊद

34. विरह के अंतर्गत पद्मावत में बारहमासा का प्रारंभ किस महीने से जायसी ने किया है?

क. चैट ख. वैशाख

ग. जेठ घ. आषाढ़

35. नूर मोहम्मद की कौन सी रचना में आध्यात्मिक रूप है?

क. अनुराग बांसुरी ख. इंद्रावती

ग. कथा चित्रावली घ. कोई नहीं

36. हंसांवली की नायिका कहां की राजकुमारी थी?

क. पाटन ख. गुजरात

ग. उज्जयिनी घ. कर्नाटक

37. कामदेव की स्तुति किस प्रेमाख्यान काव्य ग्रंथ में है?

क. पद्मावत ख. हंसआवली

ग. माधवानल कामकंदरा घ. किसी में नहीं

38. पद्मावत का रचनाकाल क्या है?

क. 927 ई. ख. 1200

ग. 1540 इ. घ.1660 ई.

39. जायसी ने अपने किस गुरु का उल्लेख पद्मावत में किया है?

क. हीरामन ख. सैयद अशरफ

ग. ख्वाजा निजामुद्दीन घ. कोई नहीं

40. "यह तन जाड़ों छाड़ के कहा कि पवन उड़ाओ" यह पंक्ति किस काव्य ग्रंथ की है?

क. पद्मावत ख. चित्रावली

ग. मधुमालती घ. मृगावती

41. भीष्म साहनी को तमस उपन्यास पर साहित्य अकादमी पुरस्कार कब मिला?

क. 1976 ख. 1975

ग. 1977 घ. 1978

42. मुझे चांद चाहिए रचना किस कवि की है?

क. सुरेंद्र वर्मा ख. केदारनाथ सिंह

ग. अरुण कमल घ. विनोद कुमार शुक्ल

43. उदय प्रकाश को किस रचना का पर साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला?

क. कोहरे के कैद रंग ख. रेहन पर रग्घू

ग. पत्थर फेंक रहा हूं घ. मोहनदास

44. आग की हंसी रचना किस कवि की है?

क. चंद्रकांत देवताले ख. रामदरश मिश्र

ग. रमेश कुंतल मेघ घ. रमेश चंद्र शाह

45. नसीरा शर्मा को पराजित विद्या अकादमी पुरस्कार कब मिला?

क. 2015 ख. 2016

ग. 2017 घ. 2012

46. कैलाश वाजपेई को किस रचना पर साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला?

क. हवा में हस्ताक्षर ख. मिलजुल मन

ग. अकेले घ. अकाल में सारस

47. चिदंबरा रचना पर पंत को ज्ञानपीठ पुरस्कार कब मिला?

क. 1967 ईसवी ख. 1968 ईस्वी

ग. 1970 ईस्वी घ. 1972 ईस्वी

48. कितनी नावों में कितनी बार रचना पर अज्ञेय को ज्ञानपीठ पुरस्कार कब मिला?

क. 1976 ईस्वी ख. 1977 ईस्वी

ग. 1978 ईस्वी घ. 1979 ईस्वी

49. श्रीलाल शुक्ल को साहित्य अकादमी पुरस्कार किस रचना पर मिला?

क. राग दरबारी ख. दो चट्टानें

ग. अमृत और विष घ. कला और बूढ़ा चांद

50. माखनलाल चतुर्वेदी को साहित्य अकादमी पुरस्कार किस रचना पर मिला?

क. मध्य एशिया का इतिहास ख. रस सिद्धांत

ग. हिम्मतरंगनी घ. मुक्तिबोध

	उत्तरमाला
1	ख
2	क
3	ख
4	ख
5	ख
6	ख
7	क
8	ख
9	ख
10	ग
11	ग
12	ख
13	क
14	ख
15	ख
16	ख

17	ख
18	ख
19	घ
20	ख
21	क
22	ख
23	ख
24	ख
25	ग
26	ग
27	क
28	घ
29	ग
30	क
31	क
32	ख
33	ख
34	घ
35	क
36	क
37	ग
38	ग
39	ख
40	क
41	ख
42	क
43	घ
44	ख
45	ख
46	क
47	ख
48	ग
49	क

50	ग

टेस्ट - 6 कृष्णकाव्य धारा (भक्तिकाल)

1. मोरपंखा सिर ऊपर रखीहो गूंज कि माल गरी पहिरागी यह पंक्ति किस कवि की है?

क. देव ख. रसखान

ग. पद्माकर घ ग्वाल कवि

2. मीराबाई की भक्ति किस प्रकार की है?

क. दास भाव ख. सखियां भाव

ग. माधुर्य भाव घ पुष्टि भाव

3. अष्टछाप की स्थापना का श्रेय किस आचार्य को है?

क. वल्लभाचार्य ख. विट्ठलनाथ

ग. हित हरिवंश घ .रूप गोस्वामी

4. नंददास की किस कृति पर मुग्ध होकर उन्हें जरिया उपाधि दी गई है ?

क. राज पंचायतीआई ख. अनेकार्थी मंजरी

ग. भंडर गीत घ पदावली

5. ध्रुव दास के संप्रदाय की कमी है?

क. वल्लभ संप्रदाय ख. निंबार्क संप्रदाय

ग. राधा बल्लभ संप्रद घ. चैतन्य संप्रदाय

6. इन मुसलमान हरिजन पै कोटन हिंदू वरीय
भारतेंदु जी ने यह पंक्ति किस कवि के लिए कही है?

क. रहीम ख. रसखान

ग. मुरला दाऊद घ. जायसी

7. रसखान के दीक्षा गुरु कौन थे?

क. गोस्वामी विट्ठलन ख. वल्लभाचार्य

ग. मधुआचार्य घ स्वामी हरिदास

8. कैसे संप्रदाय में गद्दी सेवा का विधान है?

क. वल्लभ संप्रदाय ख. सखी संप्रदाय

ग. राधा बल्लभ संप्रदाय घ गौड़ीय संप्रदाय

9. सतन को कहा सीकरी सो काम यह प्रसिद्ध पंक्ति किसकी है?

क. सूरदास ख. कुंभानंदास

ग. परमानंद दास घ नंददास

11. श्रीमद्भागवत पुराण मैं इनमें से किस का उल्लेख नहीं है

क) कृष्ण ख) राधा

ग) गोपी घ) ग्वाल

12. गदाधर भट्ट किस संप्रदाय के कवि है?

क) चैतन्य संप्रदाय ख) सखी संप्रदाय

ग) बल्लभ संप्रदाय घ) राधा बल्लभ संप्रदाय

13. कृष्ण भक्ति के लिए परिवार जनकी प्रताड़ना किसने सहन की?

क) रसखान ख) नंददास

ग) मीराबाई घ) सहजोबाई

14. संख्या की दृष्टि से सर्वाधिक रचनाएं कृष्णभक्त कवियों में किसकी है?

क) नंददास ख) ध्रुव दास

ग) सूरदास घ) मीराबाई

15. सूरदास ने कृष्ण के किस रूप का चित्रण किया है?

क) लोकरक्षक ख) लोकरंजक

ग) योगेश्वर घ) परमब्रह्मा

16. सर्वाधिक तर्कशिला गोपियां किस कवि की है?

क) सूरदास ख) नंददास

ग) रत्नाकर घ) कविरत्न

17. 'साहित्य लहरी' की विषय वस्तु क्या है?

क) नायिका भेद ख) छंद शास्त्र

ग) पर्याय कोश घ) रस

18. ब्रह्मा सूत्रों का अनुभव से किस आचार्य ने लिखा है?

क) शंकराचार्य ख) माधवाचार्य

ग) वल्लभाचार्य घ) निंबार्क

19. रसखान की किस रचना में राधा-कृष्ण को मालिक माली मानकर प्रेम और धान का वर्णन करते हुए प्रियम के गुड तत्व का सच में विवेचन किया गया है?

क. सुजान रसखान ख. प्रेम वाटिका

ग. दानलिला . घ. अष्टछाप

20. कौन सी रचना नंददास की नहीं है?

क. अनेकार्थी मंजूरी ख. रास पंचाध्याई

ग गोवर्धन लीला. घ. प्रेम वाटिका

21. वृंदावन में मीरा की भेंट कैसे कृष्ण भक्तों से हुई?

क. रूप गोस्वामी ख. जीव गोस्वामी

ग. वल्लभाचार्य घ. विट्ठलनाथ

22. युगलशतक किस संप्रदाय से संबंधित है-

क. हरिदासी संप्रदाय ख. निंबार्क संप्रदाय

ग. वल्लभ संप्रदाय घ. चैतन्य संप्रदाय

23. इनमें से कौन कवि जन्म काल के अनुसार सबसे पहले क्रम पर होना चाहिए?

क. नंददास ख. कुंभनदास

ग. श्री भट्ट घ. छीतस्वामी

24. आगे होने वाले कवियों की श्रृंगार और वात्सल्य की उसकी आंख सूर की झूठी सी जान पड़ती है यह कथन किसका है?

क. हजारी प्रसाद द्विवेदी ख. विजेंद्र स्नातक

ग. डॉ नागेंद्र . घ. आचार्य शुक्ला

25. निम्नलिखित सूचियों को सुमेलित कीजिए?

क. भ्रमगीत	1. सत्यनारायण कवि रतन
ख. भंवर गीत	2. सूरदास
ग. भ्रमर दूत	3. जगन्नाथदास रत्नाकर
घ. उद्धव शतक	4. नंददास

.	क.	ख.	ग.	घ.
क.	3	4	2	1
ख.	2	4	1	3
ग.	2	1	3	4
घ.,	4	3	2	1

26. निम्नलिखित सूचियों को सुमेलित कीजिए?

कवि का नाम	जीवन काल
क. सूरदास	1. 1533- 1618ईसवी
ख. नंददास	2. 1604-1563 ईसवी
ग. मीरा	3. 1533-1583 ईसवी
घ. रसखान	4. 1478-1584 ईसव

.	क.	ख.	ग.	घ.
क.	4	3	2	1
ख.	3	4	2	1
ग.	2	4	1	3
घ.	3	2	4	1

27. अष्टसखाओ की लीलात्मक स्वरूप आदि का विस्तार पूर्वक उल्लेख किस ग्रंथ में मिलता है?

क) राष्ट्रगान ख) भाव प्रकाश

ग) भक्तनामावली घ) भक्तमाल

28. 'पूर्व मीमांसा भाषा' के रचनाकार है?

क) वल्लभाचार्य ख) जैमिनी

ग) पतंजलि घ) कनाद

29. वल्लभाचार्य के संपर्क में आने से पूर्व सूर किस भाव की भक्ति करते थे?

क) सखयभाव ख) माधुर्य भाव

ग) वात्सल्य भाव घ) दास भाग

30. भ्रमरगीत का प्रमुख आधार क्या है?

क) द्वादश स्कंध ख) गीता

ग) भागवत का दशम स्कंध घ) उपनिष

31. "सिंगार और वात्सल्य के क्षेत्र में जहां तक इनकी दृष्टि पहुंची वहां तक किसी कवि की नहीं| सोना क्षेत्रों में तो इस महा कवि ने मानो औरों के लिए कुछ छोड़ा ही नहीं|" किसकी पंक्तियां हैं?

क) हजारी प्रसाद द्विवेदी ख) धीरेंद्र वर्मा

ग) डॉ नागेंद्र घ) आचार्य शुक्ल

32. ताहि छन उदराज उदित रस-रास सहायक|
कुमकुम मंडित वदन प्रिया जनों नागरी नायक" किसक पंक्तियां हैं?

क) सूरदास ख) नंददास

ग) रसखान घ) मीराबाई

33. "मो मन गिरीधन छवि पे अटक्यों
ललित त्रिभंग चाल पे चार्ल के, चिबुक चारों गाड़ी
थरक्यों" किसकी पंक्ति है?

क) कृष्ण दास ख) सूरदास

ग) मीरा घ) परमानंद दास

34. कहां करो बैकुंठ की जाय
जह नही नंद, जहा ना जसोदा, नहीं जहां गोपी ग्वाल ना गाय|" किस कवि की पंक्तियां हैं?

क) कुंभन दास ख) परमानंद दास

ग) नंददास घ) सूरदास

35. "हितजु को मंगल" किसकी रचना है?

क) कृष्ण दास ख) सूरदास

ग) चतुर्भुज दास घ) नंददास

36. स्वस्ति श्री तुलसी कुलभूषण दूषण हरण गोसाई 12 बार प्रणाम करो अब हरहो सोक समुदाई किसकी पंक्तियां हैं?

क. तुलसीदास ख. भूषण

ग. मीराबाई घ. रसखान

37. मन रे परसी हरि के चरण सुभग सीतल कमल कोमल त्रिवेदी जवाला हरण किसकी पंक्ति है-

क. सूरदास ख. रसखान

ग. मीराबाई घ. नंददास

38. भक्तिरसअमृत सिंधु काव्य किसकी रचना है?

क. छीत स्वामी ख. रूप गोस्वामी

ग. गोविंद स्वामी घ. नंददास

39. सोभित कर नवनीत लिए

घूटूरूम चलत र तननूमंडित, मुख गधी लिप किए!

इस पंक्तियां हैं?

क. मीराबाई ख. रसखान

ग. परमानंद दास घ. सूरदास

40. जब दे प्रीति श्याम ट्रैरकिनी

ता दिन मेरे इन नैनी नेकहूं नींद ना लीनी!

किसकी पंक्तियां हैं?

(क) नंददास (ख) सूरदास

(ग) परमानंद दास (घ) कुंभन दास

41. किस कृष्ण भक्त कवि ने कृष्ण का लीला गान के पदों में ना कर सवेयो में किया?

(क) मीरा बाई (ख) सूरदास

(ग) कृष्ण दास (घ) रसखान

42 निम्न में से कौन सा कृष्ण पाठक भक्त आचार्य अपने समय का महान संगीतज्ञ भी था?

(क) रामानंद (ख) स्वामीहरिदास

(ग) चैतन्य महाप्रभु (घ) हरि दास निरंजनी

43. ब्रह्म माया से सर्वथाअलिफ अर्थात अशुद्ध है यह मूल स्थापना है निम्नलिखित दर्शनीय सिद्धांतों में से-

(क) विशिष्ट द्वैत (ख) द्वैत द्वैत

(ग) भेंदा भेद (घ) शद्धा द्वैत

44. पुष्टिमार्गीय भक्ति संप्रदाय को किस नाम से जाना जाता है?
(क) पुष्पछाप (ख) अष्टछाप
(ग) वल्लभ संप्रदाय (घ) ब्लैटर संप्रदाय

45. अष्टछाप के 8 शिक्षकों में से श्री वल्लभाचार्य के 4 शिक्षकों के संबंध में कौन सा विकल्प सही है-
(क) गोविंद स्वामी, नंद दास, छीतस्वामी, चतुर्भुज दास
(ख) कुंभन दास, सूरदास, परमानंद दास, कृष्णदास
(ग) हित हरिवंश, दामोदरदास , हरिराम व्यास, चतुर्भुज दास
(घ) ध्रुव दास , नंददास ,जगन्नाथ स्वामी, कृष्ण दास

46. 'दृष्टकूट' पदों का वर्णय-विषय है?
(क) लौकिक जीवन में दृष्टांत देकर बात को सिद्ध करना
(ख) अष्टछाप के दर्शनिक द सिद्धांतों का वर्णन
(ग) कूटनीतिज्ञ जीवन दर्शन का प्रतिपादन
(घ) राधा कृष्ण की लीलाओं का अर्थ गोपन शैली में वर्णन

47. मुगल शासक अकबर अष्टछाप के किस भक्त कवि के पदों पर मुक्त हो गया था?
(क) सूरदास (ख) कुंभन दास
(ग) कृष्ण दास (घ) छीत स्वामी

48. परमआनंद सागर किसकी रचना है?
(क) कृष्ण दास (ख) ध्रुव दास
(ग) चतुर्भुज दास (घ) परमानंद दास

49. नंदलाल से वंचित कौन सा ग्रंथ शब्दों के पर्यायवाची के संग्रह के साथ-साथ शृंगारिक भाभाभक्ति की भी सृष्टा का उदाहरण है?
(क) अनेकार्थी मंजरी (ख) अमरकोश
(ग) रसमंजरी (घ) मान मंजरी

50. अष्टछाप के कवि चितस्वामी अष्टछाप में दीक्षित हुए विट्ठलनाथजी के-
(क) निमंत्रित करने पर
(ख) चमत्कारी व्यक्तित्व के कारण
(ग) द्वारा फटकारे जाने पर
(घ) आत्मगलानी होने पर

	उत्तरमाला
1	ख
2	ग
3	ख
4	क
5	ग
6	ख
7	क
8	ग
9	ख
10	क
11	ख
12	क
13	ग
14	ख
15	ख
16	ख
17	क
18	ग
19	ख
20	घ
21	ख
22	ख
23	ख
24	घ
25	ख
26	क
27	ख
28	क
29	घ
30	ग
31	घ

32	ख
33	क
34	ख
35	ग
36	ग
37	ग
38	ख
39	घ
40	ग
41	घ
42	ख
43	क
44	ग
45	ख
46	घ
47	ख
48	घ
49	घ
50	ख

टेस्ट - 8 सम्पूर्ण भक्तिकाल

1. किस रचना को तमिलवेद कहा जाता है-

(क) तमिलप्रकाश (ख) दिव्यप्रकाश

(ग) नारीयारवेदां (घ) नालियादिव्याप्रबंधाम

2. निम्नलिखितआचार्योंकावशिष्टाकर्मक्याहै-

(क) माधवाचार्य, रामानुजाचार्य, निंबरकचार्य (ख) रामानुजाचार्य, मधुआचार्य, निंबरकचार्य

(ग) निंबार्काचार्य, रामानुजाचार्य, माधवाचार्य (घ) माधवाचार्य, निंबरकचार्य, रामानुजाचार्य

3. भेदाभेदबादकिसदर्शनकोकहाजाताहै-

(क) द्वैतद्वैतवाद (ख) अद्वैतवाद

(ग) विशिष्टद्वैतवाद (घ) द्वैतवाद

4. रामाकृष्णकृष्णकेपुरवातारमानेगएहैं-

(क) ब्रह्मा (ख) विष्णु

(ग) शिव (घ) इनमें से कोई नहीं

5. रुद्रसंप्रदायकेप्रवर्तकहै-

(क) चक्रधर (ख) आचार्यपुंडलिक

(ग) चैतन्यमहाप्रभु (घ) विष्णुस्वामी

6. द्वैतवादकेप्रतिष्ठास्थापकआचार्यहै-

(क) निंबार्काचार्य (ख) मधवाचार्य

(ग) शंकराचार्य (घ) वल्लभाचार्य

7. पांचविषयोंकीसमवेतग्रहणको 5 रातधर्मकहतेहैंयहपांचविषयक्याहै-

(क) तत्व, मुक्ति, भक्ति, योगसंसार

(ख) माया, संसारभक्ति, मोक्ष, योग

(ग) मोक्ष, योग , ब्रह्मा , जीव , संसार

(घ) परम, ब्रह्म, जीव ,जगत ,,माया ,, भक्ति

8. रामानंदकेदीक्षागुरुकौनथे-

(क) नरहरीदास (ख) राघवानंद

(ग) शंकराचार्य (घ) निंबार्काचार्य

9. संत रज्जब का पूरा नाम है-

(क) मोहम्मद रज्जब (ख) रज्जब अली खान

(ग) रज्जब दास (घ) सैयद रज्जब खान

10. जायसी की किस रचना में सूफी दर्शन का सिद्धांत वर्णन मिलता है?

(क) आखिरी कलाम (ख) अखराबाद

(ग) पदमावत (घ) चित्रलेखा

11. जायसी की विरह वर्णन में कौन सी विशेषता नहीं है?

(क) एक पक्षीय प्रेम का चित्रण

(ख) फारसी काव्य का प्रभाव

(ग) लोक संस्कृति का चित्र
(घ) बारहमासा का वर्णन

12. किस आलोचक ने जायसी की अवधि को अवधि का अरघान कहा है?
(क) बच्चन सिंह (ख) राजकुमार वर्मा
(ग) रामविलास शर्मा (घ) हजारी प्रसाद द्विवेदी में

13. पद्मावत का कौन सा खंड हिंदी साहित्य की अनुपम निधि माना जाता है?
(क) पद्मावती वियोग खंड
(ख) सिन्हलद्वीप वर्णन खंड
(ग) नागमती वियोग खंड
(घ) रतन सेन विदाई खंड

14. निर्गुण संत कवियों मैं सबसे पढ़े-लिखे अबे शास्त्रज्ञ संत कौन थे?
(क) नानक देव (ख) सुंदरदास
(ग) दादू (घ) रज्जब

15. संत कवियों के संदर्भ में कौन सा कथन असत्य है?
(क) लगभग सभी कभी पिछड़े वर्ग की खेती
(ख) उन्होंने भक्ति साधना के साथ कर्म को भी महत्व दिया
(ग) कभी सन्यासी थे
(घ) उन्होंने ज्ञान और प्रेम को समान महत्व दिया

16. संत काव्य और सूफी काव्य में कौन सी विशेषता और समान है-
(क) गुरु का महत तुलसीदास
(ख) माया और शैतान का विरोध
(ग) प्रेम की प्रधानता
(घ) खंडन आत्मक प्रवृत्ति

17. वल्लभाचार्य से भेंट होने पर सूरदास ने कौन सा पद गाया था-
(क) प्रभु हो सब पतितन को टीका
(ख) मधुबन तुम कत रहत हरे
(ग) निर्गुण कौन देस को वासी
(घ) ऊधो मोहि ब्रज बिसरत नाहीं

18. कृष्ण भक्ति काव्य में वर्णित भ्रमरगीत का मुख्य प्रतिपादक है?
(क) गोपियों का विरह वर्णन
(ख) सगुण भक्ति की प्रतिष्ठा
(ग) कृष्ण के प्रति गोपियों की प्रेम व्यंजना
(घ) दिव्या चित्र का प्रदर्शन

19. गोंडिसप्रदाय के प्रवर्तक कौन थे-
(क) चैतन्य महाप्रभु (ख) स्वामी हरिदास
(ग) निंबार्काचार्य (घ) विद्यापति

20. उत्तर भारत में राम भक्ति का प्रवर्तन आचार्य रामानुजन की परंपरा में राघवानंद द्वारा प्रारंभ हुआ और उनके शिष्य ने उसे योग योग अनुकूल भाग भूमि प्रदान किए ! राघवानंद के शिष्य कौन थे?
(क) अगर दास (ख) रामानंद
(ग) तुलसीदास (घ) स्वामी किस

21.आलोचक ने तुलसीदास को बुद्धदेव के बाद सबसे बड़ा लोकनायक कहा है-
(क) रामचंद्र शुक्ल (ख) फादर कामिल बुल्के
(ग) हजारी प्रसाद द्विवेदी (घ) जॉर्ज ग्रियर्सन

22. कवितावली का मुख्य छंद है-
(क) दोहा चौपाई (ख) दोहा-कवित
(ग) कुंडलियां (घ) कवित-सवैया

23. तुलसीदास की किस रचना को मृत्यु पीड़ा की चीख कहा गया है?
(क) रामाज्ञा प्रश्नावली (ख) राम चरित्र मानस
(ग) हनुमान बाहुक (घ) विनय पत्रिका

24. रामचरितमानस में प्रत्येक कांड का आरंभ से किया गया है?
(क) गुरु वंदना (ख) संत वंदना
(ग) कवि वंदना (घ) मंगलाचरण

25. तुलसीदास की अंतिम रचना है-
(क) हनुमान बाहुक (ख) विनय पत्रिका
(ग) रामचरितमानस (घ) गीतावली

26. तुलसीदास की किस रचना पर कालिदास के 'कुमारसंभव' का विशेष प्रभाव दिखाई पड़ता है?
(क) पार्वतीमंगल (ख) जानकीमंगल
(ग) कवितावली (घ) गीतावली

27. तुलसीदास की कौन सी रचना गीतिकाव्य के अंतर्गत नहीं आती?
(क) गीतावली (ख) कृष्ण गीतावली
(ग) कवितावली (घ) विनयपत्रिका

28. जानकीमंगल और पार्वतीमंगल का काव्य रूप क्या है?
(क) महाकाव्य (ख) खंडकाव्य
(ग) मुक्तक काव्य (घ) गीतिकाव्य

29. तुलसीदास ने अपने अभावग्रस्त बचपन का उल्लेख किस रचना में किया है?
(क) रामचरितमानस (ख) कवितावली
(ग) रामाज्ञाप्रश्न (घ) दोहावली

30. रामचंद्रिका का रचनाकार है-
(क)1591 ईसवी (ख)1600 ईसवी
(ग) 1601 ईसवी (घ)1607 ईसवी

31. रामचंद्रिका में कुल कितने प्रकार है-
(क) 39 (ख) 41
(ग) 51 (घ) 70

32. अकबर के दरबार में सम्मानित संगीतज्ञ तानसेन के किस संप्रदाय से जुड़े हुए थे?
(क) वल्लभ संप्रदाय (ख) रसिक संप्रदाय
(ग) ब्रह्मा संप्रदाय (घ) रुद्र संप्रदाय

33. रहीम का ज्योतिष ग्रंथ निम्नलिखित में से कौन सा है-
(क) मदनअष्टक (ख) दोहावली
(ग) बरवैनायिका भेद (घ) खेतकोदुख जाटकम

34. रहीम का समय क्या है-

(क) 1556-1627 (ख)1500-1575

(ग) 1495-1570 (घ)1580-1640

35. नूरजहां ने कुपित होकर किस कवि को हाथी से कुचल लगाकर मरवा दिया था-

(क) रहीम (ख) गंग

(ग) कबीर (घ) इनमें से कोई नहीं

36. निम्नलिखित में से नंबर दास की सर्वश्रेष्ठ कृति कौन सी मानी जाती है-

(क) रास पंचाध्याई (ख) अनेकार्थी मंजरी

(ग) सुदामा चरित (घ) महान मंजूरी

37. अपने पुरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान लिए जान जाने की अतिरिक्त दूसरा मार्ग क्या था ! यह कथन किस लेखक का है?

(क) रामविलास शर्मा (ख) रामचंद्र शुक्ला

(ग) हजारी प्रसाद द्विवेदी (घ) नंददुलारे वाजपेई

38. किस ने कबीर को रेडिकल सुधारक कहां है-

(क) नामवर सिंह (ख) बच्चन सिंह

(ग) रामविलास शर्मा (घ) मैनेजर पांडेय

39. सूरा सो पहचानिए जो लड़े दीन के हेतु!
पुर्जा पुर्जा कट मरे कबहु ना छोड़े खेत!
यह दोहा किस कवि का है-

(क) कबीर (ख) सूरदास

(ग) नानक देव (घ) घनानंद

40. सखी सबदी दोहरा कहीं कहींनी उफखान!
भक्ति निरोपही भगत कली नदीही वेद पुराण!!
यह किस कवि की पंक्तियां हैं

(क) रैदास (ख) तुलसीदास

(ग) कबीर (घ) नानक

41. “प्रभु जी तुम चंदन हम पानी” शीर्षक पद किसका है?

(क) कबीर (ख) मीराबाई

(ग) दादू (घ) रैदास

42.”सो जोगी जाके मन में मुद्रा|
रात दिवस न करई निद्रा||”
यह किसकी पंक्ति है

(क) कबीर (ख) मलूकदास

(ग) दादू (घ) रज्जब

43. हां सब कविनह केर पीछलगा,
किछु कहीं चला तबल दई डगा|
यह किस कवि की पंक्ति है?

(क) तुलसीदास (ख) ईश्वरदास

(ग) कबीर (घ) जायसी

44. “मानुस प्रेम भयहू बैकुंठी, नाहित कहां छाड़ भाई मुंथी|”
यह किस कवि की पंक्ति है?

(क) जायसी (ख) तुलसीदास

(ग) केशवदास (घ) नंददास

45. मोहम्मद जीवन जल भरन रहट घड़ी के रीति|
घरी सो आई जयो भरी जन्म गा बीती|
यह किसकी पंक्तियां हैं?

(क) रहीम (ख) रसखान

(ग) कुतुबन (घ) जायसी

46. भारतवर्ष का लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय करने का धैर्य लेकर आया हो या कथन किस लेखक का है?

(क) रामचंद्र शुक्ल (ख) राहुल संस्कृतिआयन

(ग) हजारी प्रसाद द्विवेदी (घ) परशुराम चतुर्वेदी

47. लाज ना लागत आपको दौरे आई हूं साथ! धिक धिक कैसे प्रेम को कहा कहो हूं मैं नात!!
यह किसकी पंक्तियां हैं-

(क) मीराबाई (ख) तुलसीदास

(ग) सहजोबाई (घ) रत्नावली

48. इसका स्वरूप तो प्रबंध काव्य कासा है परंतु कट्ठा का प्रभाव प्रबंध काव्य के अनुरूप नहीं है कि अलंकारों को अनावश्यक महत्व दिया गया है !रामचंद्र शुक्ल का यह कथन किस ग्रंथ के संदर्भ में है?

(क) रामचंद्रिका (ख) रामचरितमानस

(ग) पद्मावत (घ) पृथ्वीराज रासो

49. भलो बोलो ना तू गुना बुद्धा कतथ कहै सुनै ना!
रामदेव गाई है ना देवलोक पाई है!!
यह पंक्ति किस कवि की है

(क) रामानंद (ख) तुलसीदास

(ग) केशवदास (घ) ईश्वरदान

50. यदि कहीं रमणीय सुंदर अद्वैथी रहस्यवाद है तो..... मैं जिसकी बाबू कथा उच्च कोटि की है रामचंद्र शुक्ल के इस कथन में रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए-

(क) मलिक मोहम्मद जायसी (ख) कबीर दास

(ग) तुलसीदास (घ) सूरदास

	उत्तरमाला
1.	घ
2	ख
3	क
4	ख
5	घ
6	ख
7	क
8	ख
9	ख
10	ख
11	क
12	क

13	ग
14	ख
15	ग
16	घ
17	क
18	ख
19	क
20	ख
21	घ
22	घ
23	ग
24	घ
25	क
26	क
27	ग
28	ख
29	ख
30	ग
31	क
32	क
33	घ
34	क
35	ख
36	क
37	ख
38	ख
39	क
40	ख
41	घ
42	क
43	घ
44	क
45	घ

46	ग
47	घ
48	क
49	ग
50	क

टेस्ट - 9 सम्पूर्ण रीतिकाल

1. रामचंद्र शुक्ल ने रीतिकाल का प्रवर्तक किसे कहा है-
(क) चिंतामणि (ख) केशवदास
(ग) रत्नाकर (घ) मतिराम

2. गोरी तेरी पायल की हा हा नेको आने दे!
यह धार्मिक चरण किसके काव्य का आज तक-
(क) घनानंद (ख) ठाकुर
(ग) बोधा (घ) बृज देव

3. द्वीज देव का वास्तविक नाम था-
(क) राजा नृपसंभू (ख) राजा मानसिंह
(ग) बलवंत दास (घ) महेश दास

4. कविता रत्नाकर के रचयिता है-
(क) रत्नाकर (ख) मतिराम
(ग) सेनापति (घ) भूषण

5. रामचंद्रिका के रचयिता है-
(क) चिंतामणि (ख) के शब्दार्थ
(ग) भिखारी दास (घ) जोधराज

6. डॉग नागेंद्र के अनुसार रीती निपुण का आरंभिक ग्रंथ है-
(क) कवि प्रिया(केशवदास)
(ख) कवीकल्पद्रुम(चिंतामणि)
(ग) हीतरंगिणी (कृपाराम)
(घ) साहित्य लहरी(सूरदास)

7. सतसई परंपरा की पहली रचना मानी जाती है-

(क) अमरूद शतक (ख) वृंद सतसई

(ग) नीति शतक (घ) गाथा सप्तशती

8.रामचंद्रिका को छंदों का जयाबधक कहने वाला समीक्षक है?

(क) आचार्य शुक्ल (ख) डॉ नागेंद्र

(ग) रामस्वरूप चतुर्वेदी (घ) राजकुमार वर्मा

10. निम्नलिखित रितिकालीन ग्रंथों को उनके रचयिताओ से सुमेलित कीजिए-

1. पंडिनी चरित (क) चिंतामणि
2. सुजान चरित्र (ख) लाल कवि
3. काव्यप्रकाश (ग) मुबारक
4. छत्र प्रकाश (घ) सूदन

	क	ख	ग	घ
अ)	1	2	3	4
ब)	2	1	4	3
स)	3	4	1	2
द)	4	3	2	1

11. बिहारी सतसई के प्रत्येक दोहे पर सवैया की रचना करने वाले कवि है

(क) भारतेंदु हरिश्चंद्र (ख) कृष्ण कवि

(ग) कवि गिरिधर (घ) लालचंद्र

12. निम्नलिखित रितिकालीन ग्रंथों को उनके रचयिताओं से सुमेलित कीजिए

1. वीरसिंह देव चरित (क) रसलीन
2. कविकुल कंठाभरण (ख) मतिराम
3. वृत कॉमदी (ग) कभी दूल्ह
4. रस प्रबोध (घ) केशवदास

	क	ख	ग	घ
अ)	1	2	3	4
ब)	4	1	2	3
स)	4	3	1	2
द)	1	2	3	4

20. निम्न में से कौन सा रितिग्रंथ मतिराम का नहीं है-

क) रसराज ख) अलंकार पंचशिका

ग) वृत्त विचार घ) वृत्त कौमुदी

21. निम्न में से कौनसी कृति गुरु गोविंद सिंह विरचित नहीं है-

क) कवित प्रकाश ख) सर्व सोलह प्रकाश

ग) सुनीति प्रकाश घ) चंडी चरित

22. सुजान रहित प्रबंध, सुजान विलास, सुजान चरित के रचयिता क्रमश है?

क) देव, घनानंद, ग्वाल ख) सूदन, देव, घनानंद

ग) सोमनाथ, घनानंद, सुदन घ) घनानंद, सोमनाथ, सुदन

23. कविराज शिरोमणि उपाधि प्राप्त कवि है-

क) भूषण ख) सूदन

ग) पदाकर घ) द्वजदेव

24. छल को 34वा संचारी भाव मानने वाला रीतिबद्ध कवि है-

क) केशवदास ख) चिंतामणि

ग) मतिराम घ) देव

25. इनका वास्तविक नाम क्या है-

क) सैयद अशरफ ख) महेश दत्त

ग) सैयद गुलाम नबी घ) बलिद

26. निम्नलिखित रितिकालीन कृतियों को उनके कृतिकालो से सुमेलित कीजिए-

1. रसिक मोहन क) रघुनाथ बंदीजन

2. तुलसी भूषण ख) रसू रूप

3. राज दर्पण ग) सेवादास

4. वृत्त विचार घ) सुखदेव मिश्र

	क	ख	ग	घ
अ)	2	1	3	4
ब)	4	3	2	1
स)	1	2	4	3
द)	1	2	3	4

27. रामचंद्र शुक्ल के अनुसार रीतिकाल का अध्ययन गारी कभी है-
(क) ग्वाल कवि (ख) द्विज देव
(ग) पधाकर (घ) घनानंद

28 रीतिकालीन लक्षण ग्रंथ कारों का अंतिम कवि निर्धारित है-
(क) कृष्णकवि (ख) भारतेंदूहरीशचंद्र
(ग) राधा कृष्ण दास (घ) महावीर प्रसाद द्विवेदी

29. रीतिकालीन लक्षण ग्रंथ कारों का अंतिम कबीर निर्धारित है-
(क) द्विज देव (ख) ग्वाल कवि
(ग) ठाकुर (घ) पताकर

30. लोगन कविता किवो खेल करी जनीय है!
समीक्षात्मक उक्ति के लेखक है?
(क) मोतीराम (ख) भिखारीदा
(ग) ठाकुर (घ) चिंतामणि

31. रितिकालीन राम काव्य परंपरा का प्रबंध काव्य रामास्वामेध रचयिता है?
(क) केशवदास (ख) दीनदयाल गिरी
(ग) मधुसूदन (घ) भगवत रसिक

32. सुरती मिश्र कृत बिहारी सतसई की टीका का नाम है?
(क) सुरती चंद्रिका (ख) बिहारी सार
(ग) अमर सुरती (घ) अमर चंद्रिका

33. लल्लूलाल कृत लालचंदरीका का विषय है-
(क) वृंद सतसई की टीका
(ख) काव्यंग निरूपण
(ग) बिहारी सतसई कीर्ति का
(घ) काव्य शास्त्र पर भाषण

34. घनानंद किस संप्रदाय में दीक्षित थे-
(क) राधा वल्लभ संप्रदाय (ख) निंबार्क संप्रदाय
(ग) गौड़ीय संप्रदाय (घ) हरिदासी संप्रदाय

35. देवर बिहारी की तुलनात्मक आलोचना के सूत्रपत करता थे-

(क) पता सिंह शर्मा (ख) मिश्र बंधु

(ग) लाला भगवानदीन (घ) कृष्णा बिहारी मिश्र

36. "बिहारी की कविता शंकर की रोटी है जिधर से भी थोड़े उधर से मीठी है।" सतसई महिमा प्रतिपादक उक्त कथन के लेखक हैं-

(क) मिश्र बंधु (ख) कृष्ण बिहारी मिश्र

(ग) पदसिंह शर्मा (घ) लाला भगवानदी

37. बिहारी पर लिखित समीक्षात्मक पुस्तकों को उनके लेखकों से सुमेलित कीजिए-

1. बिहारीसतसईकीभूमिका (क) पद सिंह शर्मा
2. बिहारीऔरदेव (ख) लालाभगवानदीन
3. देवऔरबिहारी (ग) कृष्णबिहारीमिश्र
4. बिहारीकीबाविभूति (ध) विश्वनाथप्रसादमिस्र

	(क)	(ख)	(ग)	(घ)
(क)	1	2	3	4
(ख)	1	3	2	4
(ग)	4	2	3	1
(घ)	2	1	3	4

38. निम्नमेंसेकौनसारचनामहाराजजसवंतसिंहद्वारारचितनहींहै-

(क) वृत्ततरंगिणी (ख) रसभूषण

(ग) भाषाभूषण (घ) प्रबोधचंद्रोदय

39. केशवदासकृतरसिकप्रिया (1591) काआधारग्रंथहै-

(क) काव्यकलामकर (भामह)

(ख) श्रृंगारतिलक (रूद्भट्ट)

(ग) ह्रदयतरंग (भट्टनायक)

(घ) चंद्रलोक (जयदेवपीयूषवरभामह)

40. भूषणभारतीयजनजीवनकाप्रथमराष्ट्रीयकविहै?

(क) रामचंद्रशुक्ला (ख) रामवृक्षबेनीपुरी

(ग) विश्वनाथ मिश्र (घ) डॉ सत्येंद्र नाथ

41. कवि देव ने प्रबोध चंद्रोदय का पदानुभाव किस नाम से किया
(क) देव प्रबोध (ख) देवमाया प्रपंच
(ग) रसिकआनंद (घ) देव आयन

42. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने बिहारी सतसई के किस पक्ष का उपहास किया है-
(क) भक्ति भाव (ख) प्रकृति चित्रण
(ग) वियोग वर्णन (घ) नीति निरूपण

43. अति सनी है का मार्ग है! यह विचार किस कवि के हैं-
(क) बोधा (ख) आलम
(ग) घनानंद (घ) ठाकुर

44. "भले बुरे सब एक सम जो लो बोलत नाही!
जान परत हैं काक पिक, ऋतु बसंत के माही!!"
यह दोहा किस रचना से लिया गया है-
(क) बिहारी सतसई (ख) विनाशक शतक
(ग) राम सतसई (घ) वृंद सतसई

45. सुदन रचित 'सुजान चरित' का की विषय वस्तु है-
(क) प्रेमिका (सुजान) काउलाहना
(ख) सुजान (कृष्ण) भक्ति
(ग) सुजान (भरतपुरकेराजा) कीवीरता
(घ) अलंकारनिरूपण

46. मती राम का रीतिबद्ध बंद ग्रंथ ललित ललाम पर किस ग्रंथ का प्रभाव है-
(क) काव्यालंकार (ख) कूवलआनंद
(ग) काव्यालंकार सूत्रवृत्ति (घ) चंद्रलोक

47. आचार्य शुक्ल ने मम्मर के काव्यप्रकाश का छाया अनुवाद किस रचना को कहा-
(क) भाषा भूषण (ख) छंद माला
(ग) रस रहस्य (घ) कभी दर्पण

48. यमक सतसई के रचयिता कौन है-

(क) बिहारी (ख) वृंद

(ग) ग्वाल कवि (घ) नपशंभू

49. कालिदासत्रिवेदीकेरीतीग्रंथ 'वरवधुविनोद' काविषयहै?

(क) वृंद (ख) अलंकार

(ग) नायिकाभेद (घ) काव्यगुणएवंरीति

50. महाभारतऔरपुराणपद|अनुवादकिसरीतिकालीनकविनेकिया?

(क) सेनापति (ख) कालिदासत्रिवेदी

(ग) गोकुलनाथगोपीनाथ (घ) रामसहाय

	उत्तरमाला
1	क
2	क
3	ख
4	ग
5	ख
6	ग
7	घ
8	ग
9	ग
10	ग
11	ख
12	घ
13	ग
14	ग
15	ख
16	ग
17	ख
18	घ
19	घ
20	ग
21	क

22	घ
23	ग
24	घ
25	ग
26	घ
27	ख
28	ग
29	घ
30	ग
31	ग
32	घ
33	ग
34	ख
35	ख
36	ग
37	क
38	ख
39	ख
40	ग
41	ख
42	क
43	ग
44	घ
45	ग
46	घ
47	ग
48	ख
49	ग
50	ग

टेस्ट - 10 भारतेंदु काल

1. भाषा योग वशिष्ठ के रचयिता का नाम क्या है-
(क) गंग (ख) गोकुलनाथ
(ग) नाभादास (घ) रामप्रसाद निरंजनी

2. उदय भान चरित्र किस रचना का दूसरा नाम है-
(क) प्रेम सागर (ख) सुख सागर
(ग) रानी केतकी की कहानी (घ) नाथेतोपख्यान

3. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी गद्य की प्रवृत्तियों में इनमें से किस लेखक ने पुरजोर ढंग से किया-
(क) श्रद्धा राम फुलौरी (ख) श्रद्धा शुक्ला
(ग) इंशा अल्लाह खान (घ) भारतेंदु

4. इतिहास तिमिरनाशक पुस्तक के लेखक का नाम क्या है-
(क) भारतेंदु (ख) बालकृष्ण भट्ट
(ग) प्रताप नारायण मिश्र (घ) शिवप्रसाद सितारेहिंद

5. मानव धर्म सार पुस्तक के रचयिता का नाम बताइए-
(क) राजा लक्ष्मण सिंह (ख) शिवप्रसाद सितारे हिंद
(ग) बालकृष्ण भट्ट (घ) अध्यापक पूर्ण सिंह

6. हमारे मत में हिंदी और उर्दू दो बोली न्यारी न्यारी है- यह कथन किस लेखक का है
(क) सर सैयद अहमद खान (ख) राजा लक्ष्मण सिंह
(ग) सितारे हिंद (घ) इंशा अल्लाह खान

7. इनमें से परीताओपन किस लेखक की भाषा में शुक्ल जी ने माना है-
(क) सदल मिश्र (ख) इंशा अल्लाह खान
(ग) सदा सुख लाल (घ) लल्लू लाल

8. हिंदी साहित्य को नवीन विषयों की ओर प्रवृत्त करने का श्रेय किस लेखक को दिया गया है?
(क) प्रेमचंद (ख) भारतेंदु
(ग) प्रसाद (घ) हजारी प्रसाद द्विवेदी

9. “चूरन साहब लोग जो खाता, सारा हिंद हजम कर जाता|”
यह पंक्ति किस कवि की है?
(क) प्रताप नारायण मिश्र (ख) जयशंकर प्रसाद
(ग) भारतेंदु (घ) राधाचरण गोस्वामी

10. इनमें से भारतेंदु मंडल का लेखक कौन है?
(क) बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन (ख) सरदार पूर्ण सिंह
(ग) मैथिलीशरण गुप्त (घ) अयोध्या सिंह उपाध्याय

11. भारतेंदु ने किस नाटक में अभिनय किया था?
(क) विद्या सुंदर (ख) जानकी मंगल
(ग) नील देवी (घ) सती प्रताप

12. भारतेंदु युग के कवियों में से “हर गंगा” कविता किसने लिखी-
(क) भारतेंदु (ख) बालकृष्ण भट्ट
(ग) बद्रीनारायण चौधरी (घ) प्रताप नारायण मिश्र

13. ‘हमारे उत्तम भारत देस’ नामक कविता किसकी रचना है-
(क) राधाचरण गोस्वामी (ख) राधा कृष्ण दास
(ग) बद्रीनारायण चौधरी (घ) भारतीय हिंदू

14. जो विषय संतन ताजी मूड लैपटॉप, जो नर डारत वमन करी स्वाद स्वाद सौ खात- यह दोहा किस कवि का है-
(क) कबीर (ख) भारतेंदु
(ग) तुलसी (घ) राधा कृष्ण दास

15.भारतेंदु युगकाकौनसाकविपुष्टिमार्गमेंदीक्षितथा-
क) बालकृष्ण भट्ट ख) भारतेंदु हरिश्चंद्र
ग) बद्रीनारायण चौधरी घ) प्रताप नारायण मिश्र

16. इनमें से कौन सी प्रवृत्ति भारतेंदु काल की है-
क) भाषा में लाछानकता ख) समस्या पूर्ति
ग) इतिवृत्तआत्मकथा घ) संस्कृत वर्ण वृत्त का प्रयोग

17. नीति विनोद के रचयिता का नाम क्या है?

क) गोविंद गिल्ला भाई　　ख) राधाचरण गोस्वामी

ग) भारतेंदु　　घ) अंबिकादत्त व्यास

18. प्राचीन और नवीन का योग इस ढंग से करते थे कि कहीं से जोड़ नहीं पर जान पड़ता था| भारतेंदु युग के कवियों के विषय में यह टिप्पणी किसकी है?

क) रामविलास वर्मा　　ख) आचार्य शुक्ल

ग) डॉ नागेंद्र　　घ) हजारी प्रसाद द्विवेदी

19. जगन्नाथदास रत्नाकर के काव्य गुरु इनमें से कौन है?

क) नवनीत चतुर्वेदी　　ख) भारतेंदु

ग) रामकृष्ण वर्मा　　घ) हरिऔध

20. “हो हो होरी” किसकी काव्य कृति है?

क) अंबिकादत्त व्यास　　ख) जगमोहन सिंह

ग) राधा कृष्ण दास　　घ) नवनीत चतुर्वेदी

21. कानपुर के रसिक समाज से किस कवि को संबंध था?

क) भारतीय हिंदू　　ख) अंबिकादत्त व्यास

ग) प्रताप नारायण मिश्र　　घ) राधा कृष्ण दास

22. नागरी नीरद नामक साप्ताहिक पत्र के संपादक कौन थे?

क) प्रतापनारायण मिश्र　　ख) भारतेंदु

ग) हरिऔध　　घ) बद्रीनारायण चौधरी

23. कौन सा हिंदी कवि ‘अब्र’ उपमान से उर्दू मैं कविता लिखता था?

क) भारतेंदु　　ख) श्रीधर पाठक

ग) अंबिकादत्त व्यास　　घ) प्रेमघन

24. बिहारी के दोहों का कुंडलिनी मैं विस्तार कवि ने किया है?

क) अंबिकादत्त व्यास　　ख) जगन्नाथ दास रत्नाकर

ग) प्रेमघन　　घ) नवनीत चतुर्वेदी

25. रहीम के दोहे पर कुंडलियां किसने बनाई है?
क) ठा. जगमोहन सिंह ख) अंबिकादत्त व्यास
ग) राधा कृष्ण दास घ) दुर्गा दत्त व्यास

26. "फूलों का गुच्छा" रचना के रचनाकार है-
क) उदय शंकर भट्ट ख) राधा कृष्ण दास
ग) भारतेंदु घ) निर्मल वर्मा

27. "प्रेम संपत्तिलता" के रचयिता कौन हैं?
क) ठा. जगमोहन सिंह ख) गयाप्रसाद शुक्ल
ग) निराला घ) प्रसाद

28. "बकरी विलाप" किसकी कृति है?
क) मैथिलीशरण गुप्त ख) भारतेंदु
ग) श्रीधर पाठक घ) मुकुटधर पांडे

29. पावस पचासा कृति के रचयिता है-
क) सुभद्रा कुमारी चौहान ख) अंबिकादत्त विलास
ग) दिनकर घ) निराला

30. "सुकवि सतसई" कृति के रचनाकार है?
क) नाथूराम शर्मा शंकर ख) राधा कृष्ण दास
ग) अंबिकादत्त व्यास घ) गया प्रसाद शुक्ल

31. "हार्दिक हर्ष आदर्श" किसकी रचना है?
क) बालकृष्ण भट्ट ख) प्रेमघन
ग) सुभद्रा कुमारी चौहान घ) दिनकर

32. उर्दू का स्यापा के रचनाकार है?
क) माखनलाल चतुर्वेदी ख) रामनरेश त्रिपाठी
ग) भारतेंदु घ) रामचरित उपाध्याय

33. देवयानी किसकी रचना है?

क) ठा. जगमोहन सिंह ख) भारतेंदु

ग) राधा कृष्ण दास घ) सत्यनारायण

34. धन्य भूमि भारत सब रत्ननी की उपजबनी पंक्ति किस कवि की है?

(क) प्रेमघन (ख) भारतेंदु

(ग) नरेश मेहता (घ) राधा कृष्ण दास

35. भारतेंदु ने अपने किस कविता में विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की प्रत्यक्ष रूप से प्रेरणा दी है?

(क) फूलों का गुच्छा (ख) उर्दू का स्यापा

(ग)प्रबोधिनी (घ) प्रेम सरोवर

36. रोवहु सब मिली, आवहू भारत भाई ! पंक्ति किसकी है-

(क) ठाकुर जगमोहन सिंह (ख) नाथूराम शंकर

(ग) भारतेंदु (घ) उदयशंकर

37. इनमें से भारततेंदू हरिश्चंद्र के काव्य की विशेषता नहीं है-

(क) राष्ट्रीयता का स्वर

(ख) लोकगीत की शैली पर सामाजिक कविता

(ग) उपयुक्त सभी

(घ) प्रकृति के उद्दीपन रूप का चित्रण

38. पूरी अमी की कटोरिया सी, चीरजीवो विक्टोरिया रानी, समस्या के पूरा होने पर किस कवि को सुकवि की उपाधि प्रदान की गई-

(क) भारतेंदु (ख) मैथिलीशरण गुप्त

(ग) अंबिकादत्त व्यास (घ) श्रीधर पाठक

39. खड़ी बोली हिंदी की प्रथम गद्य रचना किसे माना गया है-

(क) भाषा योग वशिष्ठ (ख) प्रेम सागर

(ग) सुख सागर (घ) चंद्र छंद बरनन की महिमा

40. हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में हम आधुनिक शब्द का क्या अर्थ ग्रहण करेंगे-

(क) परंपरा विरुद्ध दृष्टिकोण

(ख) वैज्ञानिक दृष्टिकोण

(ग) मध्यकाल से भिन्न और नवीन ईहलौकिक दृष्टिकोण
(घ) वेद समस्त जीवन दृष्टि

41. आधुनिक हिंदी गध के प्रवर्तन का श्रेय किसे जाता है-
(क) भारतेंदु हरिश्चंद्र (ख) राजा लक्ष्मण सिंह
(ग) बालकृष्ण भट्ट (घ) सितारे हिंद

42. लल्लू लाल जी कृत प्रेम सागर के विषय में कौन सा कथन सत्य है?
क) यह एक अनुवाद ग्रंथ है
ख) इसकी भाषा कथा वार्ता के अनुरूप है| इसके शब्द रूप अनिश्चित, भाषा ब्रजी रंजीत तथा शैली पंडिताऊं है|
ग) इसका अनुवाद अंग्रेजी भाषा में भी हुआ है
घ) यह भारतेंदु पर्वती रचना है

43. किस आरंभिक खड़ी बोली गद्य के कौन से दो आधार स्तंभन फोर्ट विलियम कॉलेज में भाषा मुंशी के नाम में नियुक्त है|
क) लल्लू लाल और सदल मिश्र
ख) इंशा अल्लाह खान और मुंशी सदासुखलाल
ग) लल्लू लाल और मुंशी सदासुखलाल
घ) सदल मिश्र और इंशा अल्लाह

44. किस आरंभिक खड़ी बोली के लेखक ने निसार उपनाम से उर्दू में भी साहित्य रचना की?
क) मुंशी सदा सुखलाल ख) लल्लू लाल
ग) सदल मिश्र घ) दौलत राम

45. राजा लक्ष्मण सिंह का खड़ी बोली के स्वरूप संबंधी मत क्या था?
क) विशुद्ध उर्दू परक ख) हिंदी उर्दू मिश्रित
ग) संस्कृत उर्दू मिश्रित घ) विशुद्ध संस्कृतनिष्ठ

46. भारतेंदू द्वारा स्थिर किए गए खड़ी बोली गद्य के स्वरूप निर्माण के निम्नांकित आधारों में असत्य है?
क) हिंदी के तद्भव और प्रचलित शब्दों का प्रयोग
ख) शब्दों को तोड़ मरोड़ कर निर्मित करना
ग) उर्दू फारसी के व्यवहत शब्द
घ) संस्कृत के मूल स्त्रोत से शब्दों का ग्रहण

47. 19वीं सदी के आरंभ में चार ऐसे लेखक अभिभूत हुए जिन्होंने हिंदी गधे की आधारशिला रखी| इनमें से किस की गद्य शैली परवर्ती गद्य लेखकों द्वारा बनाई गई|

क) इंशा अल्लाह खान ख) सदल मिश्र

ग) सदा सुख लाल घ) लल्लू लाल

48. हिंदी उर्दू विवाद को किस राजनेता ने सांप्रदायिक रंग देते हुए उर्दू को मुसलमानों की निशानी बताया|

क) मोहम्मद अली जिन्ना ख) इंशा अल्लाह खान

ग) सैयद अहमद खान घ) कैफ़ी आज़मी

49. इनमें से कौन था तेंदू मंडल का लेखक नहीं है-

क) बालकृष्ण भट्ट ख) प्रताप नारायण मिश्र

ग) ठा. जगमोहन सिंह घ) गुलाब राय

50. भारतेंदु जी के संपादकत्व मैं इनमें से कौन सी पत्रिका निकलती थी|

क) हंस ख) सुधा

ग) हरिशचंद्र चंद्रिका घ) मित्र विलासविला

	उत्तरमाला
1	घ
2	ग
3	ख
4	घ
5	ख
6	ख
7	ग
8	ख
9	ग
10	क
11	ख
12	घ
13	क
14	घ
15	ख
16	ख

17	क
18	ख
19	क
20	क
21	ग
22	घ
23	घ
24	क
25	ग
26	ग
27	क
28	ख
29	ख
30	ग
31	ख
32	ग
33	क
34	क
35	ग
36	ग
37	घ
38	ग
39	क
40	ग
41	क
42	ख
43	क
44	क
45	घ
46	ख
47	ख
48	ग
49	घ

50	ग

टेस्ट - 11 द्विवेदी युग

1. द्विवेदी युग में भारततेंदू प्रज्ञदू की उपाधि किस कवि को मिली-
(क) नाथूराम शर्मा शंकर (ख) गया प्रसाद शुक्ला
(ग) प्रेम अगन (घ) रामनरेश त्रिपाठी

2. किस कवि को राष्ट्रकवि की उपाधि मिली-
(क) मैथिली शरण गुप्त (ख) श्रीधर पाठक
(ग) प्रताप नारायण मिश्र (घ) सोहनलाल द्विवेदी

3. मैथिलीशरण गुप्त को किस रचना के आधार पर राष्ट्रकवि की उपाधि प्रदान की गई है-
(क) विकट भट्ट (ख) किसान
(ग) भारत भारती (घ) पंचवटी

4. प्रियप्रवास काव्य का प्रकाशन वर्ष कौन सा है?
(क) 1920 (ख)1921
(ग) 1914 (घ)1922

5. आचार्य शुक्ल ने खड़ी बोली की प्रथम रचना किसे माना है?
(क) श्रात पथिक (ख) एकांत वासी योगी
(ग) कामायानी (घ) प्रियप्रवास

6. नकुल महाकाव्य के रचनाकार कौन है-
(क) निराला (ख) सियारामशरण गुप्त
(ग) श्रीधर पाठक (घ) रामनरेश त्रिपाठी

7. अधिकार खोकर बैठे रहना यह महा दुष्कर्म है पंक्ति किस रचना में है?
(क) भारत भारती (ख) श्रात पथिक
(ग) बापू (घ) आद्रा

8. मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं का प्रकाशन वर्ष के आधार पर सही क्रम में बताइए-

(क) भारत भारती -द्वापर-साकेत-यशोधरा

(ख) भारत भारती- साकेत- यशोधरा - द्वापर

(ग) द्वापर -साकेत- यशोधरा- भारत भारती

(घ) यशोधरा -साकेत- द्वापर- भारत भारती

9.वृत्त संहार रचना किसकी है?

क) रामनरेश त्रिपाठी ख) मैथिलीशरण गुप्त

ग) मुकुटधर पांडे घ) श्रीधर पाठक

10. प्रियप्रवास की भाषा कौन सी है?

क) भोजपुरी ख) बागरू

ग) अवधि घ) खड़ी बोली

11. मैथिलीशरण गुप्त के रहस्यवादी गीतों का संयोजन किस कृति मैं किया गया है?

क) झंकार ख) यशोधरा

ग) साकेत घ) द्वापर

12. "वेनू लो गूंजे धरा" के रचयिता है-

क) गोपाल शरण सिंह ख) भारतेंदु

ग) माखनलाल चतुर्वेदी घ) दिनकर

13. 'बड़ी धूम से टेसू आए लड़के लांडी साथ लगाएं' पंक्ति के रचयिता है-

क) रत्नाकर ख) बालमुकुंद गुप्त

ग) शुक्ल घ) दिनकर

14. 'मेरे चपल योवन बाल अंचल में पड़ा सो मचल कर मत साल'- इन पंक्तियों के रचयिता है-

क) बाबू जगन्नाथ दास ख) प्रसाद

ग) मैथिलीशरण गुप्त घ) दिनकर

15. "जगत है सच्चा तनिक न कच्चा, समझो बच्चा इसका भेद"- पंक्ति किसकी है?

क) श्रीधर पाठक ख) रत्नाकर

ग) दिनकर घ) द्विवेदी

16. मैथिलीशरण गुप्त किस छंद का प्रयोग अधिक करते थे?

(क) गीतिका (ख) रोला

(ग) मात्रिक (घ) हरिगीतिका

17. उस महाकाव्य का नाम बताइए जिसमें राधा कृष्ण का योगानुरूप परिवर्तन कर दिया गया है-

(क) वैदेही वनवास (ख) कृष्ण यान

(ग) प्रियप्रवास (घ) उद्धव शतक

18. मैथिलीशरण गुप्त के गुरु कौन थे?

(क) श्रीधर पाठक द्विवेदी (ख) बालमुकुंद गुप्त

(ग) पूर्ण पाठक (घ) भारतेंदु

19. धरती हिला कर नींद भगा दे, वज्रनाद से व्योम जगा दे!
पंक्तियां के रचयिता है?

(क) नाथूराम शर्मा शंकर (ख) दिनकर

(ग) पंत (घ) श्रीधर पाठक

20. कानन कुसुम रचना के रचयिता है?

(क) मुकुटधर पांडे (ख) श्रींधर पाठक

(ग) महावीर प्रसाद द्विवेदी (घ) लोचन प्रसाद पांडे

21. प्लासी के युद्ध के रचनाकार है?

(क) श्रीधर पाठक (ख) रामनरेश त्रिपाठी

(ग) मैथिलीशरण गुप्ता (घ) माखनलाल चतुर्वेदी

22. सुमन किसकी काव्य रचना है?

(क) महावीर प्रसाद द्विवेदी (ख) श्रीधर पाठक

(ग) रत्नाकर (घ) दिनकर

23. अनुराग रतन के रचनाकार है?

(क) अंबिकादत्त व्यास (ख) भारतेंदु

(ग) नाथूराम शर्मा शंकर (घ) बालकृष्ण भट्ट

24. कृषक क्रंदन किसकी कृति है?

(क) भारत तेंदू (ख) पंत

(ग) गयाप्रसाद शुक्ला (घ) श्रीधर पाठक

25. कविता कलाप के रचनाकार है?

(क) दिनकर (ख) बालकृष्ण शर्मा नवीन

(ग) महावीर प्रसाद द्विवेदी (घ) माखनलाल चतुर्वेदी

26. राष्ट्रीय वीणा नामक रचना के रचयिता है-

क) प्रसाद ख) भारतेंदु

ग) गया प्रसाद शुक्ल घ) राय देवीप्रसाद पूर्ण

27. गर्भरंडा रहस्य कृति के रचयिता कौन हैं?

क) श्रीधर पाठक ख) नाथूराम शर्मा शंकर

ग) श्याम नारायण पांडेय घ) जगन्नाथ दास

28. काव्य-मंजूषा किसकी रचना है?

क) मुकुटधर पांडेय ख) सोहनलाल द्विवेदी

ग) महावीर प्रसाद द्विवेदी घ) जगन्नाथ दास

29. पद-पुष्पांजलि के रचनाकार है?

क) लोचन प्रसाद पांडेय ख)शिवमंगल सुमन

ग) श्रीकांत वर्मा घ) जगदीश गुप्त

30. राष्ट्र भारती किसकी रचना है?

क) रामचरित उपाध्याय ख) माखनलाल चतुर्वेदी

ग) सोहनलाल द्विवेदी घ) मैथिलीशरण गुप्त

31. पद्य प्रसून किसकी रचना है?

क) निराला ख) हरिऔध

ग) प्रसाद घ) मैथिलीशरण गुप्त

32. पथिक नामक रचना किसकी है?

क) हरिऔध ख) मैथिलीशरण गुप्त

ग) रामनरेश त्रिपाठी घ) बालकृष्ण शर्मा नवीन

33. हिमकीरीटीनी किसकी रचना है?

क) सुभद्रा कुमारी चौहान ख) माखनलाल चतुर्वेदी

ग) दिनकर घ) सोहन लाल चतुर्वेदी

34. "वसंत वियोग" की रचयिता है?

क) राय देवी प्रसाद पूर्ण ख) रामचरित उपाध्याय

ग) हरिऔध घ) श्रीधर पाठक

35. हिमतरंगिणी किसकी रचना है?

क) राधा कृष्ण दास ख) नाथूराम शर्मा शंकर

ग) माखनलाल चतुर्वेदी घ) महावीर प्रसाद द्विवेदी

36. "स्वप्न" किसकी कृति है?

क) रामनरेश त्रिपाठी ख) सोहनलाल द्विवेदी

ग) श्याम नारायण पांडे घ) श्रीधर पाठक

37. वैदेहीवनवासकिसकीरचनाहै?

(क) सोहनलाल (ख) हरिऔध

(ग) सुभद्राकुमारीचौहान (घ) दिनकर

38. संपन्नऔरमातारचनाएंकिसकीहै-

(क) माखनलालचतुर्वेदी (ख) बालकृष्णशर्मा

(ग) भारतेंदुहरिश्चंद्र (घ) हरिऔध

39. मौर्यविजयनामकरचनाकेरचयिताहै?

(क) सियारामशरणगुप्त (ख) प्रेमघन

(ग) मैथिलीशरणगुप्त (घ) महावीरप्रसाददविवेदी

40. त्रिधाराकेरचनाकारहै?

(क) सुभद्राकुमारीचौहान (ख) सोहनलालद्विवेदी

(ग) जगन्नाथप्रसाद (घ) दिनकर

41. रेणुकानामकरचनाकिसकीहै?

(क) अंबिकादत्तव्यास (ख) दिनकर

(ग) राधाकृष्णदास (घ) नाथूरामशर्माशंकर

42. महावीरप्रसाददविवेदीकेछदमनामकेअपनीरचनाएंसरस्वतीमेंछपतेथे?

(क) त्रिशूल (ख) भुजंगभूषणभट्टाचार्य

(ग) हनुमान (घ) अनामदास

43. कुरुक्षेत्रकिसकीरचनाहै?

(क) हरिऔध (ख) रामधारीसिंहदिनकर

(ग) मैथिलीशरणगुप्त (घ) मोहनलालमोहती

44. हुंकारनामकरचनाकेरचयिताकौनहै?

(क) सोहनलालद्विवेदी (ख) रामधारीसिंहदिनकर

(ग) श्रीधरपाठक (घ) जगन्नाथप्रसादमिलिंद

45. रश्मिरेखाकिसकीरचनाहै?

(क) बालकृष्णशर्मानवीन (ख) श्यामनारायणपांडेय

(ग) मुकुटधारीपांडे (घ) जगन्नाथदासरत्नाकर

46. हल्दीघाटीकेरचनाकारहै-

(क) मैथिलीशरणगुप्त (ख) महावीरप्रसाददविवेदी

(ग) श्यामनारायणपांडे (घ) श्रीधरपाठक

47. कश्मीरसुषमाकेरचयिताकौनहै?

(क) श्रीधरपाठक (ख) गयाप्रसादशुक्ल

(ग) राधाकृष्णदास (घ) उदयशंकरभट्ट

48. काननकुसुमकिसकीरचनाहै-

क) सोहनलालद्विवेदी ख) मुकुटधरपांडे

ग) श्रीधरपाठक घ) श्यामनारायणपांडे

49. गुप्त का भावकाव्य जो राष्ट्रीय भावना और हिंदूवादी दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति करता है तथा राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना जगाने में अपनी असमांतर लोकप्रियता रखता है वह है-

क) भारतभारती ख) साकेत

ग) जयद्रथवध घ) श्रीपथगा

50. मैथिली शरण गुप्त की इन रचनाओं को कालक्रम में अनुसार बताइए-

क) साकेत- भारतभारती -हेमंत -रंगमेंभंग

ख) रंगमेंभंग -हेमंत- साकेत- भारतभारती

ग) हेमंत- रंगमेंभंग -भारतभारती- साकेत

घ) भारतभारती- हेमंत- रंगमेंभंग- साकेत

	उत्तरमाला
1	ग
2	ख
3	घ
4	ख
5	ग
6	क
7	ग
8	क
9	क
10	क
11	क
12	क
13	ग
14	क
15	ग
16	घ
17	क
18	घ

19	क
20	ग
21	ग
22	क
23	घ
24	घ
25	ग
26	क
27	ख
28	क
29	क
30	ख
31	ग
32	क
33	क
34	ग
35	ख
36	ख
37	क
38	ग
39	क
40	ख
41	ग
42	क
43	क
44	क
45	ग
46	क
47	ग
48	क
49	क
50	ख

टेस्ट - 13 प्रगतिवाद और प्रयोगवाद

1. भारत में प्रति लेखक संघ की स्थापना कब हुई थी?

(क) 1935 (ख)1936

(ग) 1937 (घ)1938

2. प्रगतिवाद का आधार है-

(क) रहस्यवाद (ख) छायावाद

(ग) प्रकृतिवाद (घ) द्वंदात्मक भौतिकवाद

3. निम्न में से कौन प्रगतिवादी कभी नहीं है-

(क) सुमित्रानंदन पंत (ख) निराला

(ग) अज्ञय (घ) शिवमंगल सिंह सुमन

4. प्रसिद्ध काव्यसंग्रह सतरंगी पंखों वाली के रचनाकार है-

(क) केदारनाथ अग्रवाल (ख) नागार्जुन

(ग) त्रिलोचन (घ) भगवती चरण वर्मा

5. पंच ने अपनी किस कृति में प्रगतिवाद को युग की वीणा बताया है-

(क) पल्लव (ख) वीणा

(ग) युगवाणी (घ) ग्रंथि

6. निराला की वह रचना जिसमे सर्वहारा वर्ग की दीन दशा का उल्लेख हुआ है-

(क) वह तोड़ती पत्थर (ख) सरोज स्मृति

(ग) वन बेला (घ) अनामिका

7. निम्नलिखित में से कौन सुमेलित नहीं है-

(क) मुक्तीमार्ग -भारत भूषण अग्रवाल

(ख) पिघलते पत्थर- रंगेय राघव

(ग) अजय खंडहर- निराला

(घ) प्रलय सृजन- शिवमंगल सिंह

8. मांझी ना बजाओ बंसी कविता के रचयिता है-

(क) सुमित्रानंदन पंत (ख) नागार्जुन

(ग) रंगिय राघव (घ) केदारनाथ अग्रवाल

9. फूल नहीं रंग बोलते हैं नामक काव्य संग्रह के रचयिता है-

(क) मुक्तिबोध (ख) निराला

(ग) केदारनाथ अग्रवाल (घ) त्रिलोचन

10. नागार्जुन का वास्तविक नाम है-

(क) वेद नाथ मिश्र (ख) केदारनाथ पांडेय

(ग) दया नाथ मिश्र (घ) गिरजा शंकर पांडेय

11. नागार्जुन ने लाहौर में किस पत्रिका का कुछ दिनों के लिए संपादन किया था-

(क) हंस (ख) आलोचना

(ग) सुबंधु (घ) दीपक

12. इंदिरा गांधी की राजनीति को केंद्र बनाकर किस कवि ने उन पर आरोप लगाकर कविता की-

(क) नागार्जुन (ख) निराला

(ग) पंत (घ) महादेवी वर्मा

13. सिंदूर तिलक भाल और तुम्हारी दंतुरित मुस्कान कविताओं का रचनाकार कौन है-

(क) नागार्जुन (ख) बच्चन

(ग) निराला (घ) हरिऔध

14. रतनगर्भ खंड काव्य के रचयिता कौन है-

(क) नागार्जुन (ख) निराला

(ग) हरिऔध (घ) दिनकर

15. कबीर के उपरांत हर विदवंशकारी और जनविरोधी शक्ति और को सर्वाधिक खुली चुनौती देने वाला साहित्यकार है-

(क) निराला (ख) नागार्जुन

(ग) दिनकर (घ) हरि ओम

16. चमगादड़ की वृत्ति ना लेकर मैंने सीखी,
ब्रेड निष्ठा अपना ना सका मै स्वान सरीखी–
उपयुक्त पंक्तियों में वर्णित चमगादर और स्वान किसके प्रतीक है-
(क) संता लोलुप नेताओं के
(ख) लालची और स्वार्थी व्यक्तियों के
(ग) चाटुकार कवि और लेखक के
(घ) शोषक वर्ग के

17. प्रगतिवादी काव्य की समय सीमा क्या है–
(क)1920-1936 (ख)1936-1943
(ग) 1950-1960 (घ)1900-1918

18. हिंदी का कौन से कवि मैथिली में यात्री नाम से लिखता था-
(क) त्रिलोचन (ख) धूमिल
(ग) सुमन (घ) नागार्जुन

19. इनमें से कौन प्रगतिवादी कवि नहीं है-
(क) हरिऔध (ख) त्रिलोचन
(ग) नागार्जुन (घ) केदारनाथ अग्रवाल

20. मारो मारो मारो हंसिया हिंसा और अहिंसा क्या है यह पंक्ति किस कवि है-
(क) केदारनाथ अग्रवाल (ख) रामविलास शर्मा
(ग) रंगेय राघव (घ) जयशंकर प्रसाद

21. ऐसे प्रगतिवादी कभी जो बड़े कभी तो नहीं बन पाए किंतु बड़े आलोचक बन गए-
(क) रामविलास शर्मा (ख) प्रकाश चंद्र गुप्त
(ग) नागार्जुन (घ) केदारनाथ अग्रवाल

22. लंदन में गठित भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का नेतृत्व की किया था-
(क) प्रेमचंद्र
(ख) निर्मल वर्मा
(ग) मुल्कराज आनंद व सज्जाद जहीर
(घ) नागार्जुन व केदारनाथ अग्रवाल

23. निम्नलिखित में से किसे प्रगतिवाद का प्रवर्तक माना गया है-

(क) प्रेमचंद्र (ख) निराला

(ग) पंत (घ) बालकृष्ण शर्मा नवीन

24. प्रगतिवाद की प्रमुख प्रवृत्तियों में से कौन-सी प्रवृत्ति नहीं है-

(क) यह मार्क्सवादी चिंतन धारा पर आधत है

(ख) यह सामाजिक यथार्थ को साहित्य का उद्देश्य मानता है

(ग) इसमें प्रकृति चित्रण को प्रधानता दी गई

(घ) यह भाषण के सरल अभीआत्मक रूप को समर्थक रहा

25. निम्न में से कौन सी रचना रांगेय राघव की नहीं है-

(क) अजय खंडहर (ख) पांचाली

(ग) मेधावी (घ) युग धारा

26. शिवदान सिंह का लेख भारत में प्रगतिशील साहित्य की आवश्यकता किस पत्रिका में प्रकाशित हुआ था

(क) हंस (ख) जागरण

(ग) आलोचना (घ) विशालभारत

27. हिललोक नामक रचना के रचनाकार है-

(क) नागार्जुन (ख) त्रिलोचन

(ग) नरेंद्र शर्मा (घ) शिवमंगल सिंह सुमन

28. सबका अपना आकाश किसका काव्य संग्रह है

(क) नागार्जुन (ख) त्रिलोचन

(ग) ++अग्य (घ) मुक्तिबोध

29. रहा के दीपक किसकी रचना है

(क) रांगेय राघव (ख) वीरेंद्र मिश्र

(ग) कुंवर बेचैन (घ) अनूप अशेष

30. संशय की एक रात का कथानक किससे संबंधित है

(क) कृष्ण कथा (ख) महाभारत

(ग) राम कथा (घ) कोई नहीं

31. तार सप्तक का प्रकाशन कब हुआ था

(क) 1943 (ख) 1944

(ग) 1945 (घ)1946

32. आंगन के पार द्वार काव्य संग्रह कितने खंडों में विभक्त है-

(क) 2 (ख) 3

(ग) 4 (घ) 5

33. दुख सबको मांजता है किसने कहा है-

(क) निराला (ख) मुक्तिबोध

(ग) अज्ञय (घ) नेमी चंद्र जैन

34. सन 1947 में अज्ञेय ने किस पत्रिका का संपादन किया है जिसके माध्यम से प्रयोगवादी काव्यलोनदोलन को शक्ति मिली?

(क) हंस (ख) प्रतीक

(ग) रूपाभ (घ) समन्वय

35. धर्मवीर भारती की रचनाएं किस तत्व में प्रकाशित हुई थी

(क) तार सप्तक (ख) दूसरा सप्तक

(ग) तीसरा सप्तक (घ) उपयुक्त सभी

36. समकालीन समीक्षा में अस्तित्ववादी किसे घोषित किया गया है?

(क) आज्ञय (ख) नागार्जुन

(ग) निराला (घ) मुक्तिबोध

37. मैं प्रयोगवाद का अगुवा नहीं पिछड़गवा हूं- यह उपयुक्त कथन किसका है

(क) अज्ञ (ख) जगदीश गुप्त

(ग) दिनकर (घ) मुक्तिबोध

38. प्रयोगवाद का सबसे बड़ा दोष था-

(क) लोक कल्याण की उपेक्षा

(ख) नवीन के प्रति अतिशय मुंह

(ग) रूढ़ियों का विरोध

(घ) नए प्रतीकों का सर्वथा अभाव

39. भवानी प्रसाद मिश्र की कविता को किस सप्तक में स्थान मिला है-

(क) तार सप्तक (ख) दूसरा सप्तक

(ग) तीसरा सप्तक (घ) चौथा सप्तक

40. आह मेरा स्वास है उत्तरत्र धमनियों में उमड़ आई है लहू की धार तुम कहां हो नारी? पंक्तियां किस कवि की है-

(क) मुक्तिबोध (ख) दुष्यंत

(ग) गिरिजाकुमार माथुर (घ) आगय

41. ब्रह्मराक्षस नामक कविता के रचयिता का नाम क्या है-

(क) धर्मवीर भारती (ख) भवानी प्रसाद मिश्र

(ग) मुक्तिबोध (घ) गिरिजाकुमार माथुर

42. शीला पंख चमकीले किस कवि की रचना है-

(क) अज्ञ (ख) सर्वेश्वर

(ग) गिरिजाकुमार माथुर (घ) शमशेर

43. इनमें से विजयदेव नारायण साही की काव्य कृति कौन सी है-

(क) मछली घर (ख) त्रास

(ग) मृग और कृष्णा (घ) सूर्य का स्वागत

44. इनमें से कौन सा वर्ग प्रयोगवाद का केंद्र है-

(क) मध्यवर्गीय लघु मानव (ख) उच्च वर्ग

(ग) निम्न वर्ग (घ) युक्त सभी

45. आगे का प्रथम काव्य संग्रह भग्नदूत किस वर्ष में प्रकाशित हुआ था-

(क) 1943 (ख)1930

(ग) 1950 (घ)1933

46. सांप अज्ञ की एक कविता है-

(क) भावनात्मक (ख) व्यंग

(ग) आदर्शवादी (घ) यथार्थवादी

47. धर्मवीर भारती ने बहुत लंबे समय तक संपादन किया था-

(क) साप्ताहिक हिंदुस्तान (ख) सारिका

(ग) धर्मयुग (घ) सरिता

48. मुक्तिबोध की ब्रह्मा राक्षस और अंधेरे में कविताओं की वर्णन शैली है-

(क) मिथकी य (ख) फेंटेसी

(ग) पूराकथातमक (घ) बीमबातम्या

49. निम्नलिखित में से सर्वेश्वर की काव्य रचना नहीं है-

(क) जंगल का दर्द (ख) खोडियो पर टंगे लोग

(ग) काऊ की घंटियां (घ) मुक्ति मार्ग

50. तार सप्तक की परिकल्पना किस की बुद्धि की उपज है-

(क) अज्ञ (ख) प्रभाकर मांचव

(ग) रामविलास (घ) मुक्तिबोध

	उत्तरमाला
1	ख
2	घ
3	ग
4	ख
5	ग
6	क
7	ग
8	घ
9	ग
10	क
11	घ
12	क
13	क
14	क
15	ख
16	ग
17	ख

18	घ
19	क
20	क
21	क
22	घ
23	ग
24	ग
25	घ
26	घ
27	घ
28	घ
29	क
30	ग
31	क
32	ख
33	क
34	ख
35	ख
36	घ
37	क
38	क
41	क
42	क
43	क
44	क
45	घ
46	ख
47	क
48	ख
49	घ
50	ख

टेस्ट - 14 आधुनिक काल और कहानी विद्या

1. भारततेंदूयुगीन गद्य को हंसमुख गद्य किसने कहा है-
(क) रामविलास शर्मा (ख) रामचंद्र शुक्ला
(ग) बालमुकुंद गुप्त (घ) बच्चन सिंह

2. भारतेंदु का निधन कब हुआ-
(क) 1 जनवरी 1985 (ख) 30 दिसंबर 1984
(ग) 6 जनवरी 1985 (घ) 3 दिसंबर 1985

3. पत्र पत्रिकाओं के प्रकाशन का सही अनुक्रम क्या है-
(क) हरिश्चंद्र मैगजीन- प्रजा हितैषी -ब्राह्मण -हिंदी प्रदीप
(ख) हिंदी प्रदीप- ब्राह्मण- हरिश्चंद्र मैगजीन- प्रजा हितैषी
(ग) ब्राह्मण- प्रजा हितैषी -हिंदी प्रदीप -हरिश्चंद्र मैगजीन
(घ) प्रजा हितैषी- हरिश्चंद्र मैगजीन- हिंदी प्रदीप- ब्राह्मण

4. गोवर्धन दास भारतेंदु के किस नाटक का पात्र है-
(क) वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति (ख) नील देवी
(ग) अंधेर नगरी (घ) भारत दुर्दशा

5. ब्रेंडल स्वागत किसकी रचना है-
(क) प्राप्त नारायण मिश्र (ख) भारतेंदु हरिश्चंद्र
(ग) महावीर प्रसाद द्विवेदी (घ) राधा कृष्ण दास

6. समाचार सुधावर्षण पत्र कहां से प्रकाशित होता था?
(क) बनारस (ख) कोलकाता
(ग) इलाहाबाद (घ) मिर्जापुर

7. पत्रकार प्रकाशन स्थल में कौन विषम संयोजन है-
(क) हिंदी प्रदीप -प्रयाग (ख) आनंद- कादंबिनी मिर्जापुर
(ग) ब्राह्मण -काशी (घ) भारतेंदु -बृंदावन

8. “ठेठहिंदीकाठाठ” रचना का संबंध किस विद्या से है?

क) निबंध ख) प्रहसन

ग) नाटक घ) उपन्यास

9. भारतेंदु की ब्रज भाषा में लिखित काव्य रचना का मुख्य विषय है?

क) भक्ति श्रृंगार ख) राष्ट्रीयता देश प्रेम

ग) सामाजिक सुधार घ) उपयुक्त सभी

10. बुड्ढे मुंह मुंहासे रचना किस विधा की है?

क) निबंध ख) नाटक

ग) कहानी घ) प्रहसन

11. तेंदू अशोक का साहित्य हिंदी भाषा जनता का जातीय साहित्य है, वह हमारे जातीय नवजागरण का साहित्य है|

किसका कथन है?

क) नामवर सिंह ख) बच्चन सिंह

ग) राम चंद्र शुक्ल घ) रामविलास शर्मा

12. निज भाषा उन्नति आहे, सब उन्नति को मूल|

बीनू निज भाषा ज्ञान के मिटे, मिटे ना हीय उसूल|

उक्ति किसकी है?

क) नारायण मिश्र ख) भारतेंदु हरिश्चंद्र

ग) प्रेमघन घ) अंबिकादत्त व्यास

13. पढ़ी कमाई किनहो कहा, हरे न देश क्लेश|

जैसे कनता घर रहे, कैसे रहे विदेश

पंक्ति किसकी है?

क) भारतेंदु हरिश्चंद्र ख) राधाचरण गोस्वामी

ग) बालकृष्ण भट्ट घ) प्रताप नारायण मिश्र

14. बज्र के लता -पता मोहि कीजय ,
गोपी पद पंकज पावन कि रज् क्या जामैं सिर भीजे!
पद किसका है-
(क) गिरधरदास (ख) भारतेंदु
(ग) ब्रज रतन दास (घ) वल्लभाचार्य

15. निज भाषा बोल हूं लिखाहूं पढ़ाउ गुनाउ सब लोग ,
करहु सकल विश्यनी विषय निज भाषा उपयोग!
किस कवि की है-
(क) भारतहिंदू (ख) प्राप्तनारायणमिश्र
(ग) बालकृष्ण भट्ट (घ) श्रीधर पाठक

16. कविता कामिनी कांत किस कवि को कहा गया-
(क) मैथिलीशरण गुप्त (ख) हरिऔध
(ग) जगन्नाथदास रत्नाकर (घ) नाथूराम शर्मा

17. कवियों का वरिष्ठ क्रम बताइए-
(क) श्रीधर पाठक, महावीर प्रसाद , हरिऔध ,मैथिलीशरण
(ख) मैथिलीशरण ,हरिऔध, महावीर प्रसाद ,श्रीधर पाठक
(ग) महावीर प्रसाद ,मैथिलीशरण ,श्रीधर पाठक ,हरिऔध
(घ) हरिओम, श्रीधर पाठक, मैथिलीशरण, महावीर प्रसाद

18. कवि और उपनाम में कौन सा विषय संयोजन है-
(क) अयोध्या सिंह उपाध्याय- हरिऔध
(ख) गया प्रसाद शुक्ल -स्नेही
(ग) राय देवी प्रसाद- पूर्ण
(घ) मैथिलीशरण गुप्त -कलाधर

19. हरिऔध की कौन सी रचना रीतीनिर्गुण ग्रंथ है-
(क) प्रियप्रवास (ख) रस कलश
(ग) वैदेही वनवास (घ) इनमें से कोई नहीं

20. रचना और रचनाकार में कौन विषय संयोजन है-

(क) भारत भर्ती- 1910 (ख) साकेत -1931

(ग) प्रियप्रवास -1914 (घ) पंचवटी- 1925

21. हरिऔध को किस रचना पर मंगला प्रसाद पुरस्कार मिला-

(क) वैदेही वनवास (ख) प्रियप्रवास

(ग) रस कलश (घ) पद् प्रसून

22. कौन सी रचना गौतम बुद्ध के जीवन चरित्र पर केंद्रित है?

(क) यशोधरा (ख) प्रिय प्रवास

(ग) जय भारत (घ) विष्णु प्रिया

23. भुजंग भूषण भट्टाचार्य के छद्म नाम से किसने लिखा है?

(क) भारतेंदु हरिश्चंद्र (ख) बालमुकुंद गुप्त

(ग) महावीर प्रसाद द्विवेदी (घ) इनमें से कोई नहीं

24. "चींटी से लेकर हाथीपर्यंत पशु, भिक्षुक से लेकर राजा पर्यंत मनुष्य अनंत आकाश, अनंत पृथ्वी, अनंत पर्वत- सभी पर कविता हो सकती है|"

(क) रामचंद्र शुक्ल (ख) भारतेंदू हरिश्चंद्र

(ग) मैथिलीशरण गुप्त (घ) महावीर प्रसाद द्विवेदी

25. "हम कौन थे, क्या हो गए, पर क्या होंगे अभी|"

(क) भारतेंदु हरिश्चंद्र (ख) महावीर प्रसाद द्विवेदी

(ग) हरिऔध (घ) मैथिलीशरण गुप्त

26. "इसकी कथावस्तु एक महाकाव्य क्या, अच्छे प्रबंध काव्य के लिए भी अपर्याप्त है|" रामचंद्र शुक्ल का यह कथन किस रचना के संदर्भ में है?

(क) प्रियप्रवास (ख) साकेत

(ग) द्वापर (घ) कामायनी

27. द्विवेदी युग की किस काव्य प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया स्वरूप छायावाद का उदय हुआ?

(क) ब्रज भाषा में काव्य रचना

(ख) इतिवृत्तआत्मकथा

(ग) राष्ट्रीय भावों की अतिरंजना

(घ) सिंगार भक्ति भावना

28. कवियों की वरीयता क्रम बताइए-
(क) प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी
(ख) प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी
(ग) पंत, प्रसाद, महादेवी, निराला
(घ) महादेवी, पंत, निराला, प्रसाद

29. छायावाद को प्रतिबिंबवाद किसने कहा है?
(क) रामचंद्र शुक्ल (ख) नामवर सिंह
(ग) नागेंद्र (घ) बच्चन सिंह

30. रसीकमंडल के संस्थापक थे-
(क) जगन्नाथ दास रत्नाकर (ख) भारतेंदु हरिशचंद्र
(ग) निराला (घ) गया प्रसाद शुक्ल स्नेही

31. पंत की रचनाओं का वरीयता क्रम बताइए-
(क) पल्लव,वीणा ,युगांत, गुंजन
(ख) वीणा, पल्लव, गुंजन, युगांत
(ग) गुंजन, युगांत, वीणा, पल्लव
(घ) युगांत, गुंजन ,पल्लव, वीणा

32. छायावाद को अभिव्यंजना का नूतन विधान किसने कहा है-
(क) रामचंद्र शुक्ल (ख) विश्वनाथ प्रसाद
(ग) मुक्तिबोध (घ) नागेंद्र

33. युगीन यथार्थ के प्रति सर्वाधिक जागरूक छायावादी कवि है-
(क) जयशंकरप्रसादनिराला (ख) सुमित्रानंदनपंत
(ग) निराला (घ) राजकुमार वर्मा

34. सुमित्रानंदन पंत को किस रचना पर ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ-
(क) युगांत (ख) लोकायतन
(ग) कला और बूढ़ा चांद (घ) चिदंबरा

35. छायावादी किस कवि को शब्द शिल्पी कहा गया-
(क) निराला (ख) सुमित्रानंदन पंत
(ग) जयशंकर प्रसाद (घ) महादेवी वर्मा

36. प्रसाद की रचनाओं का वरीयता क्रम बताइए-
(क) कामायनी, लहर ,झड़ना, आंसू
(ख) आंसू, कामायानी, लहर, झड़ना
(ग) लहर, झड़ना, आंसू, कामायानी
(घ) झरना, असूल, लहर, कामयानि

37. पुष्प की अभिलाषा कविता के रचनाकार है-
(क) माखनलाल चतुर्वेदी (ख) सुभद्रा कुमारी चौहान
(ग) सुमित्रानंदन पंत (घ) रामनरेश त्रिपाठी

38. परिमल किसका काव्य संग्रह है?
क) सुमित्रानंदन पंत ख) अगय
ग) निराला घ) नरेश मेहता

39 "परमात्मा की छाया आत्मा में पड़ने लगती है और आत्मा की छाया परमात्मा में, यही छायावाद है|" छायावाद की उक्त परिभाषा किसकी है?
क) जयशंकर प्रसाद ख) महादेवी वर्मा
ग) राजकुमार वर्मा घ) रामचंद्र शुक्ल

40. प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना का वर्ष है-
(क) 1930 (ख)1931
(ग) 1936 (घ)1939

41. प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना में किसका संबंध है-
(क) मुल्क राज आनंद (ख) सज्जाद जहीर
(ग) उपयुक्त दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं

42. युग की गंगा के रचनाकार है-
(क) राहुल सांकृत्यायन (ख) नागार्जुन
(ग) मुक्तिबोध (घ) केदारनाथ अग्रवाल

43. किस कवि की अधिकांश कविताओं को सपाट उबर खाबर दलिय और पोस्टरिया कहा गया है-

(क) मुक्तिबोध (ख) नागार्जुन

(ग) केदारनाथ अग्रवाल (घ) निराला

44. बालइंदु उपनाम के काव्य रचना प्रारंभ करने वाले कभी है-

(क) केदारनाथ अग्रवाल (ख) शंकर प्रसाद

(ग) मैथिलीशरण गुप्त (घ) इनमें से कोई नहीं

45. प्रयोगवाद का आरंभ किससे माना जाता है-

(क) तार सप्तक (ख) नई कविता

(ग) रूपाभ (घ) नई समीक्षा

46. तार सप्तक और प्रकाशन वर्ष में कौन सुमेलित नहीं है-

(क) तार सप्तक 1943 (ख) दूसरा सप्तक 1950

(ग) तीसरा सप्तक 1959 (घ) चौथा सप्तक 1979

47. हमें प्रयोगवादी कहना उतना सार्थक या निरर्थक है जितना हमें कविता वादी कहना है !किसका कथन है-

(क) अग्य (ख) नरेश मेहता

(ग) धर्मवीर भारती (घ) मुक्तिबोध

48. फैंटेसी का प्रयोग किस रचना में प्रमुखता से हुआ-

(क) अंधेरे में (ख) ब्रह्मराक्षस

(ग) उपयुक्त दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं

49. नई कविता की कौन सी प्रवृत्ति नहीं है-

(क) जीवन के प्रति आस्था (ख) लघु मानव की प्रतिष्ठा

(ग) सामाजिक बोध का प्रभाव (घ) बौद्धिक यथार्थवादी दृष्टि

50. अज्ञेय को किस रचना पर ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ-

(क) कितनी नावों में कितनी बार (ख) महावृक्ष के नीचे

(ग) सागर मुद्रा (घ) आंगन के पार द्वार

	उत्तरमाला
1	घ
2	ग
3	घ
4	ग
5	क
6	ख
7	ग
8	घ
9	क
10	क
11	घ
12	ख
13	घ
14	ख
15	घ
16	घ
17	क
18	घ
19	ख
20	क
21	ख
22	क
23	ग
24	घ
25	घ
26	क
27	ख
28	ख
29	क
30	क
31	ख

32	ख
33	ग
34	घ
35	ख
36	घ
37	क
38	ग
39	ग
40	ग
41	ग
42	घ
43	ख
44	क
45	क
46	ख
47	क
48	ग
49	ग
50	क

टेस्ट - 15 नाटक, आत्मकथा व जीवनी

1. अंग्रेजी नाटक मर्चेंट ऑफ वेनिस का अनुवाद भारतेंदु ने किस नाम से किया-

(क) विद्या सुंदर (ख) विनरी का व्यापारी

(ग) मुद्राराक्षस (घ) दुर्लभ बंधु

2. भारतेंदु ने किस प्रसन्न में भ्रष्ट शासन तंत्र पर प्रहार किया है-

(क) नील देवी (ख) अंधेर नगरी

(ग) विद्या सुंदर (घ) धनंजय विजय

3. चोर पंचाशिखा का नाटक अनुवाद भारतेंदु जी ने किस नाम से किया है-

(क) विद्या सुंदर (ख) पाखंड विडंबन

(ग) कर्पूर मंजरी (घ) मुद्राराक्षस

4. इनमें से कौन सा नाटक बालकृष्ण भट्ट का नहीं है-

(क) वृहदनता (ख) वेणीसंहार

(ग) तप्ता सनवरण (घ) कलीराज की सभा

5. भारतेंदु काल के प्रहसनो की रचना का मूल उद्देश्य इनमें से क्या था-

(क) लोगों का मनोरंजन

(ख) व्यंग के द्वारा समाज की कुरीतियों का समापन

(ग) नए प्रयोग करना

(घ) उपयुक्त सभी

6. प्रसाद जी इनमें से किस वर्ग के नाटककार है-

(क) आदर्शवादी (ख) ऐतिहासिक

(ग) समाजसुधारवादी (घ) कोई नहीं

7. विवाह मुक्ति एवं पूर्ण विवाह की समस्या को प्रसाद जी ने किस नाटक में प्रस्तुत किया है-

(क) चंद्रगुप्त (ख) ध्रुवस्वामिनी

(ग) स्कंदगुप्त (घ) विशाख

8. प्रसाद जी का कौन सा नाटक अभिनेता की दृष्टि से अपेक्षाकृत सफल है?

क) जन्मेजय का नाम यज्ञ ख) स्कंद गुप्त

ग) ध्रुवस्वामिनी घ) राज्यश्री

9. हरीश कृष्ण प्रेमी किस युग के नाटककार है?

क) भारतेंदु युग ख) प्रसाद युग

ग) प्रसादोत्तर योग घ) कोई नहीं

10. “युगे युगे क्रांति” नामक नाटक के रचयिता कौन है?

क) धर्मवीर भारती ख) मोहन राकेश

ग) विष्णु प्रभाकर घ) जगदीश चंद्र माथुर

11. 'प्रियदर्शी सम्राट अशोक' नामक नाटक की रचना इनमें से किसने की है?
क) विष्णु प्रभाकर ख) वृंदावनलाल वर्मा
ग) दशरथ ओझा घ) चतुरसेन शास्त्री

12. कोणार्क नाटक के रचयिता कौन है?
क) जगदीश चंद्र माथुर ख) गोविंदबल्लभ पंत
ग) मोहन राकेश घ) कोई नहीं

13. 'रस गंधर्व' तथा 'बुलबुल सराय' नामक नाटकृतियों की रचना किसने की है?
क) मणि मधुकर ख) रमेश बक्षी
ग) मुद्राराक्षस घ) सुरेंद्र वर्मा

14. मिस्टर अभिमन्यु किस नाटककार की नाटक कृतीय है-
(क) लक्ष्मी नारायण मिश्रा (ख) रमेश बक्षी
(ग) लक्ष्मीनारायण लाल (घ) ह

15. मादा कैक्टस के रचयिता नाटककार का नाम बताइए
(क) लक्ष्मीनारायणमिश्र (ख) लक्ष्मीनारायणलाल
(ग) धर्मवीर भारती (घ) मणि मधुकर

16. एक और द्रोणाचार्य नाटक के रचयिता का नाम बताइए-
(क) लक्ष्मी नारायण लाल (ख) चंद्र वर्मा
(ग) मणि मधुकर (घ) शंकर शेष

17. आधे अधूरे की रचना मोहन राकेश ने किस वर्ष में की थी-
(क) 1960 ईसवी (ख) 1969 ईसवी
(ग) 1979 ईसवी (घ)1950 ईसवी

18. चंद्रगुप्त नाटक का रचनाकाल क्या है-
(क) 1920 ईसवी (ख) 1931 ईसवी
(ग) 1951 ईसवी (घ) 1965 ईसवी

19. नाटक जारी है रचना किस विधा की है-

(क) नाटक (ख) निबंध

(ग) कविता (घ) उपन्यास

20. दीपदान एवं बादल की मृत्यु नाम संकलन किस एकांकीकार के हैं-

(क) रामकुमार वर्मा (ख) जगदीश चंद्र माथुर

(ग) उदय शंकर भट्ट (घ) विष्णु प्रभाकर

21. डॉ रामकुमार वर्मा की कृति इनमें से कौन सी है-

(क) धूम शिखा (ख) मान मंदिर

(ग) कॉमडी महोत्सव (घ) प्रकाश और परछाई

22. भारतेंदु युग के किस नाटककार को प्रहसन लिखने में कुशलता प्राप्त थी-

(क) बालकृष्ण भट्ट (ख) राधा कृष्ण दास

(ग) राधाचरण गोस्वामी (घ) गोपाल राम गहमरी

23. नाटक में पात्रों की संख्या अधिक होने से किस में बाधा पड़ती है-

(क) अभीनेता एवं रंगमंचयत्ता (ख) देशकाल एवं वातावरण

(ग) संवाद योजना (घ) उद्देश्य विधान

24. तेंदू जी ने विद्या सुंदर नाटक कब लिखा?

क)1863 ई. में ख)1865 ई. में

ग)1868 ई. में घ) 1869 ई. में

25. 'बिना दीवारों का घर' किसकी नाट्यकृति है?

क) गोविंद चातक ख) शिव प्रसाद सिंह

ग) सोनू भंडारी घ) रमेश बक्षी

26. कौन सी कृति हरि कृष्ण प्रेमी की नहीं है?

क) प्रतिशोध ख) रक्षाबंधन

ग) विषपान घ) सिंदूर की होली

27. प्रसाद जी का अंतिम नाटक कौन सी है?

क) स्कंदगुप्त ख) चंद्रगुप्त

ग) ध्रुवस्वामिनी घ) विशाख

28. 'चार बेचारे' किस नाटककार की कृति है?

क) गोपाल राम गहमरी ख) उपेंद्रनाथ अश्क

ग) पांडे बेचन शर्मा 'उग्र' घ) हरिकृष्ण प्रेमी

29. सेठ गोविंद दास किस काल के नाटककार हैं?

क) भारततेंदू युग ख) द्विवेदी युग

ग) प्रसाद युग घ) प्रसाद उत्तर युग

30. गरुड़ध्वज इनमें से किस नाटककार की कृति है?

क) जयशंकर प्रसाद ख) राजकुमार वर्मा

ग) लक्ष्मी नारायण वर्मा घ) लक्ष्मी नारायण लाल

31. नारी समस्या को इनमें से किस नाटककार ने अपने नाटकों में स्थान दिया है?

क) भारतीय हिंदू ख) हरि कृष्ण प्रेमी

ग) लक्ष्मी नारायण मिश्र घ) लक्ष्मी नारायण लाल

32. भारतेंदु जी का अंधेर नगरी इनमें से किस वर्ग का नाटक है-

(क) प्रहसन (ख) भाण

(ग) विथी (घ) गीतिनाट्य

33. आवारा मसीहा किस उपन्यासकार की जीविका है-

(क) प्रेमचंद्र (ख) शटर चंद्र

(ग) रविंद्र नाथ टैगोर (घ) विष्णु प्रभाकर

34. सत्य के प्रयोग किसकी आत्मकथा है-

(क) जवाहरलाल नेहरू (ख) राजेंद्र प्रसाद

(ग) गांधी (घ) काका कालेलकर

35. कुछ आप बीती कुछ जग बीती किस विद्या की रचना है-
(क) आत्मकथा (ख) जीवनी
(ग) संस्मरण (घ) रेखाचित्र

36. कलम का सिपाही के लेखक कौन है-
(क) प्रेमचंद्र (ख) अमृतराय
(ग) दयानंद सरस्वती (घ) रामविलास शर्मा

37. पंत की जीवनी इस में से किसने लिखी है-
(क) विष्णु प्रभाकर (ख) अमृतराय
(ग) जीवन प्रकाश जोशी (घ) डॉक्टर शांतिजोशी

38. प्रेमचंद्र की जीवनी किस नाम से लिखी गई है-
(क) कलम का मजदूर (ख) कलम का सिपाही
(ग) दुर्दांत योद्धा (घ) आवारा मसीहा

39. रसीदी टिकट इनमें से किसकी आत्मकथा है-
(क) खुशवंत सिंह (ख) अमृतराय
(ग) अमृता प्रीतम (घ) वियोगी हरि

40. मनीषी की लोक यात्रा किस विधा की रचना है-
(क) आत्मकथा (ख) जीवनी
(ग) संस्मरण (घ) रेखा चित्र

41. कौन सी रचना आत्मकथा नहीं है-
(क) सत्य के प्रयोग (ख) क्या भूलूं क्या याद करूं
(ग) आवारा मसीहा (घ) मेरी असफलताएं

42. कौन सी रचना जीवनी नहीं है-
(क) कलम का सिपाही (ख) आवारा मसीहा
(ग) निराला की साहित्य साधना (घ) सुबह-सुबह प्रवासी की डायरी

43. कौन सी कृति उपेंद्रनाथ अश्क की नहीं है-

(क) चरवाहे (ख) साहब को जुकाम

(ग) क्रांतिकारी (घ) पक्का गाना

44. 'कबीरा खड़ा बाजार' मैं नाटक के रचयिता के नाम बताइए?

क) सुदर्शन चोपड़ा ख) गिरिराज किशोर

ग) भीष्म साहनी घ) गोविंद चातक

45. 'अंधेर नगरी' नाटक की रचना कब हुई थी?

क) 1868 ई. में ख) 2881 ई. में

ग)1890 ई. में घ)1900 ई. में

46. महाकवि कालिदास के जीवन पर आधारित मोहन राकेश का नाटक कौन सा है?

क) आषाढ़ का 1 दिन ख) लहरों के राजहंस

ग) आधे-अधूरे घ) कोई नहीं

47. इनमें से कौन सा नाटक उपेंद्रनाथ 'अश्क' का है?

क) छठा बेटा ख) अंधी गली

ग) उड़ान घ) उपयुक्त सभी

48. 'शारदिया' नाटक के रचयिता कौन है?

क) मोहन राकेश ख) धर्मवीर भारती

ग) जगदीश चंद्र माथुर घ) विष्णु प्रभाकर

49. इनमें से किस नाटककार ने अपने नाटकों के माध्यम से हिंदू मुस्लिम एकता स्थापित करने का प्रयास किया है?

क) जयशंकर प्रसाद ख) हरिकृष्ण प्रेमी

ग) लक्ष्मीनारायण मिश्र घ) विष्णु प्रभाकर

50. तपता सनवरण, रणधीर प्रेम मोहिनी नाटकों के रचयिता इनमें से कौन है?

क) राधाकृष्ण दास ख) भारतेंदु

ग) लाल श्रीनिवासदास घ) कोई नहीं

	उत्तरमाला
1	घ
2	ख
3	क
4	ग
5	ख
6	ख
7	ख
8	ग
9	ख
10	ग
11	ग
12	क
13	क
14	ख
15	ख
16	घ
17	ख
18	ख
19	ग
20	क
21	ग
22	ग
23	क
24	ग
25	ग
26	घ
27	ग
28	ग
29	ग
30	ग

31	ग
32	क
33	ख
34	ग
35	क
36	ख
37	घ
38	ख
39	ख
40	ख
41	ग
42	घ
43	ग
44	ग
45	ख
46	क
47	घ
48	ग
49	ख
50	ग

UGC NET

Hindi

A COMPLETE PREPARATION FOR UGC NET HINDI

We holds a team of learned educators, practitioners, and subject matter experts that puts in effort to handcraft every product for our aspirants to excel in their exams. With a dynamic approach towards education, our experts are driven towards making your learning a fascinating experience from the length and expansiveness of the nation. It is with their aptitude, direction, and a sharp eye for particularities for the competitive exams that the content in each Online test Series addresses the issues of the aspirant. Evidently. Our Books give a remarkable impact to any aspirant's preparation.

Study Of Education

- Trust of **1 Lakh+** UGC NET Aspirants
- Covers all **Teaching Exams**
- **Multidisciplinary** Exam Preparation
- Provides **Online Test Series**

Contact Us

+91- 9179115985

mail@studyofeducation.com

www.studyofeducation.com

Scan QR Code